यूनिक ट्रेडर्स, चौंड़ा रास्ता, जयपुर

समर्पण

अनाचार

अत्याचार

अतिक्रमण

अन्याय से
उत्पीड़ित

असहाय

दुर्बल

दीन

दलित

निर्धन

विपन्न

शोषित
वर्ग को

एक न्यायाधीश द्वारा

सामाजिक न्यायार्थ

धर्म संघर्षरत

के लिए

समर्पित

मंत्री
विधि और न्याय
नई दिल्ली-११०००१ (भारत)
MINISTER
LAW AND JUSTICE
NEW DELHI-110001 (INDIA)

श्री गुमानमल लोढ़ा एक सुपरिचित और अनुभव प्राप्त न्यायाधीश हैं। मैंने उनके द्वारा लिखित पुस्तक "सामाजिक न्याय" पर पढ़ी है। आज हमारे देश के अनेक न्यायाधीश और विधिवेत्ता विचार कर रहे हैं कि हम कैसे न्याय पद्धति में सुधार कर सकते हैं जिससे हम जन-साधारण के लिए समुचित और अविलम्ब न्याय उपलब्ध करने में समर्थ हो सकें।

श्री गुमानमल लोढ़ा ने अपने अनुभव और अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत पुस्तक में न्याय प्रणाली का विश्लेषण करके अपने विचार प्रकट किए हैं। मुझे आशा है कि इस पुस्तक में जो विचार श्री गुमानमल लोढ़ा ने प्रकट किए हैं उनसे हमारी सामाजिक न्याय की व्यवस्था सुधारने के लिए मूल्यवान सुझाव प्राप्त हो सकेगा।

–अशोक सेन

प्रेरणा के स्रोत:

आमुख

न्यायाधिपति श्री गुमानमल लोढ़ा ने स्वयं को उच्चतम स्तर का विधि वेत्ता एवं प्रगतिशील विधि लेखक के रूप में स्थापित कर लिया है। उन्होंने अपने न्यायिक अनुभव एवं ज्ञान का मानव-हित की न्यायिक सेवा के लिए पूरा-पूरा उपयोग किया है। बहुत कम न्यायाधीश इस प्रकार के उत्तरदायित्वपूर्ण विवेक को समझ पाते है और बहुधा उनमे इस प्रकार की लेखनी का अभाव पाया जाता है। न्यायिक साहित्य की श्रीवृद्धि में श्री लोढ़ा के विदेश भ्रमण के ज्ञान व अनुभव की भी महति भूमिका रही है।

प्रस्तुत पुस्तक को मातृभाषा में लिखकर न्यायाधीश श्री लोढ़ा ने विधि को सामान्य नागरिक तक पहुंचाने का अति उत्साह प्रदर्शित किया है। हिन्दी भारत के अधिसंख्य समुदाय द्वारा बोली और समझी जाती है। अंग्रेजी जो कि अति विशिष्ठ व्यक्तियों की भाषा है, ही एक मात्र विधिक भाषा है, और इसने विधि और जीवन, न्यायिक न्याय और समुदाय के बीच की खाई को चौड़ा ही किया है। न्यायाधीश श्री लोढ़ा ने यह बहुत अच्छा किया जो उन्होने अपनी लेखनी से हिन्दी में विधि साहित्य की शुरूआत की है, जिससे अधिसंख्य पाठक इससे लाभान्वित हो सकेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक के विचारणीय विषय महत्त्वपूर्ण और विविधता लिए हुए हैं। ये विषय यह दर्शाते हैं कि लेखक सामाजिक न्याय के प्रति पूर्ण समर्पित है। विधि मानव के लिए है, न कि मानव विधि के लिए। "हमारा विधि शास्त्र सामाजिक न्याय के लिए कृत सकल्प होना चाहिए" यही आधार-भूत अनुभूति और लेखक के सम्यक विचार प्रस्तुत पुस्तक के आधार हैं। श्री लोढा का लेखन विस्तृत रूप से न्यायालय की समस्याएं एवं उनके क्रियाकलाप को दर्शाता है तथा साथ ही हमारे क्रियात्मक विधि में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता को भी इंगित करता है। तथ्यों एवम् आंकड़ों का इतना विस्तृत विवेचन अन्य पुस्तकों में कदाचित ही देखने को मिले जितना श्री लोढा ने इस पुस्तक के माध्यम से पाठकों के ज्ञान हेतु एकत्रित किया है।

हमारी न्यायिक प्रणाली के बहुग्रायामी दृष्टिकोण यथा लोकहितकारी वाद का न्यायाधीश लोढ़ा ने विस्तारपूर्वक इस पुस्तक में विवेचन किया है। इन सबसे अधिक योगदान तो यह रहा है कि लेखक ने न्यायिक प्रक्रिया में यान्त्रिकी की भूमिका की अनिवार्यता के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की है। प्रस्तुत पुस्तक के इस भाग को पढ़ने से साधारण पाठक भी यह जान सकेगा कि किस प्रकार कम्प्यूटर एवं अन्य यन्त्र न्यायिक कार्यों मे क्रान्ति ला सकेंगे। यान्त्रिक इक्कीसवीं सदी ग्रौर भारतीय न्यायिक प्रक्रिया, लोक प्रक्रिया के रूप से प्रथम बार इस विधि लेखन में मूर्त हुई है।

मैं ग्राशा करता हूं कि एक राष्ट्रीय विधिवेत्ता के रूप में लेखक का यह सद्प्रयत्न भारत के सामान्य नागरिक को वास्तविक न्याय प्रदान करने मे सम्बल सिद्ध होगा।

शुभकामनाग्रों सहित।

—वी. ग्रार. कृष्णा ग्रय्यर

FOREWORD

Shri Justice G. M. Lodha has now established himself as an avant-garde Jurist and progressive legal writer, using his judicial experience and learning for the people 's benefit. Not many judges feel this sense of accountability or have this penmanship. Even Justice Lodha's foreign travels have become a source of enrichment of legal literature.

The present book is the product of a passion to take law to the common people by writing in the language of the common man. Hindi is spoken by the largest number of Indians; and if English, the language of the Indian elite, is the only language of the law, an alienation creeps in between law and life, between judicial justice and the communtiy. It is good that Lodha's legal pen writes in Hindi and benefits a wider audience.

The subjects covered by the present book are important and varied and reveal the author's commitment to social justice. Law is for Man (the little man in large numbers) and not Man (the masses of men) for law. Our jurisprudence must bear the stamp of social justice and this new spirit inspires his look. Shri Lodha's work deals extensively with the problems of courts and how they work, as well as the radical

changes now burgeoning in our law-in-action. A wealth of facts and figures, rarely collected and found in other books, are presented here for the readers' information. New developments in our judiciary like public interest litigation, are dwelt upon interestingly. Most valuable of all is the contribution made by the author to the role of technology in the legal process. How computers and other modern techniques can revolutionize our courts is best understood by reading these pages. The technological 21st century and the Indian judicial process, as part of the People's Process, come alive in this integrated legal work.

I hope the author's efforts, as a patriotic jurist, will strengthen the cause of justice for the common Indian.

—V. R. Krishna Iyer.

चिर-प्रेरक : शत-शत-नमः

न्याय क्षेत्र में मेधावी चिर प्रसिद्ध
अभिभाषक स्वर्गीय पूज्य पिताजी
श्रीमान हिम्मतमलजी लोढा
डीडवाना, नागौर (राजस्थान)

(1886-1939)

धर्म क्षेत्र में समर्पित
मातु श्री, श्रीमती जड़ावकंवर
जोधपुर (राजस्थान)

(1892-1957)

प्रस्तुति

"लॉ, मोरेलिटी एण्ड पोलिटिक्स" के प्रथम पुष्प के पल्लवित होने पर "सामाजिक न्याय" से संबधित इस समाज ने उत्साहवर्द्धक प्रतिक्रिया व्यक्त की। लार्ड डेनिंग, छागला, पालकीवाला, सीरवाई आदि ने आशातीत प्रोत्साहन दिया। उत्साहित हो मुझे द्वितीय हिन्दी पुस्तक "भारतीय न्याय प्रणाली–आवश्यकता है संपूर्ण कायाकल्प की" के प्रकाशन की प्रेरणा मिली। न्यायिक क्षेत्रों में अब वृहत व विस्तृत चिन्तन को लिपिबद्ध करने की अपेक्षा प्रकट हुई, जिसे मैंने "ज्यूडिशियरी फ्यूम्स् फ्लेम्स् एण्ड फायर" (न्याय प्रणाली की अग्नि परीक्षा) के प्रकाशन में पूर्ण करने का प्रयास किया।

विधि जगत में इसे एक न्यायाधीश के परम्परागत मूक दर्शक व निष्क्रिय चिन्तक की भूमिका मे "विद्रोह के गूंजते स्वर" की संज्ञा दी गई। शीर्षस्थ विधि-वेत्ता व विश्व प्रसिद्ध न्यायाधिपति कृष्णा अय्यर तथा भगवती ने इसे "क्रान्तिकारी सृजनात्मक रचना" कहकर अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा की एवं मुझे असीम उत्साह व प्रेरणा प्रदान की। साधारण फुटपाथियो, झौंपड़ पट्टी, कच्ची व गंदी बस्तियों तथा खुली सड़कों पर सोने वाले दीन-हीन, भूमिहीन किसानो व सर्वहारा की पढ़ने योग्य भाषा मे, सामाजिक न्यायिक क्रान्ति का चिन्तन लिखने की पुरजोर मांग कई क्षेत्रों मे मुखरित हुई व आग्रहपूर्ण पत्रों के अम्बार लग गये।

इधर भारतीय न्यायिक जगत मे दरिद्रनारायण व दीनहीन को घर बैठे न्याय-गंगा में स्नान कराने के मौलिक चिन्तन के नये क्षितिज "लोक अदालत", "लोकहित वाद", "निर्धन को निःशुल्क न्यायिक सहायता" के रूप में उभरने लगे।

20वी सदी से 21वी सदी मे प्रवेश के परिवेश में न्यायिक प्रक्रिया में भी "कम्प्यूटर युग" के प्रवेश का द्वार खुला, जिसे विश्व-भ्रमण के अध्ययन मे मैंने उपयोगी व आवश्यक पाया और "भगवती न्यायालय" के ऐतिहासिक काल की प्रतीक्षा की जाने लगी।

जब विधि इतिहासकार न्यायिक जगत मे "चन्द्रचूड़ न्यायालय से भगवती न्यायालय", राजनैतिक राष्ट्रीय क्षितिज पर "इन्दिरा गांधी से राजीव गांधी" व न्यायिक प्रशासन में "शिवशंकर कौशल से सेन व भारद्वाज", के काल के संक्रमण का मूल्यांकन करते रहे हैं, मैं यह चतुर्थ पुष्प–"न्यायिक क्रान्ति के बदलते आयाम" के रूप मे लिपिबद्ध करता रहा हूं।

छपते-छपते, पुस्तक के अन्तिम अध्यायों के लेखन के समय "भगवती न्यायालय" गतिमान अभियान प्रारम्भ कर, नये आयाम प्रस्तुत करने में तल्लीन रहा है अतः "लोकहित वाद", "लोक अदालत", "निर्धन को न्याय" व "न्यायिक स्वायत्तता" के अध्याय में न्याय के इन नये आयामों के मूल्यांकन का सीमित चिन्तन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

इस लेखन मे संकलन अधिक है व मौलिक चिन्तन कम। यदि चिन्तन अधिक भी है तो भी वह "न्यायाधिपति" की बेड़ियों व मर्यादाओं को अक्षुण्ण रखने के लोभ के सम्मुख समर्पण करने के कारण परोक्ष रूप से अन्य विधि-वेत्ताओं, पत्रकारों, न्यायाधीशों व लेखकों की कलम को "शिखंडी" की ढाल बनाकर प्रकट करने की प्रक्रिया के रूप में ही अधिक उभरा है। स्वतन्त्र, उन्मुक्त और स्वच्छन्द लेखन करने का साहस जुटाकर रण बांकुरे के रूप में अपनी शहादत न कर सका, यह तो कुण्ठा ही बन गई जो सतत् सताती रही है।

उन्मुक्तता के एक स्वर में यदि स्पष्ट-वादिता का दुस्साहस करूं तो मैं यह सीमित सकेत अवश्य करूंगा कि "सामाजिक न्याय" के बढ़ते चरणों के विरुद्ध "न्यायिक शोषण" पुनः जन्म लेने को है और "न्यायिक क्रान्ति" के प्रारम्भ में ही प्रतिक्रान्ति द्वारा उसे गर्भ में ही नष्ट कर भ्रूण हत्या करने का षड्यन्त्र किया जा रहा है। प्रतिक्रान्ति का क्रूर कंस देवकी के वंश को ही नष्ट करने का धृष्टतापूर्ण संकल्प लेकर हर पुत्र-जन्म पर, चाहे उसका नामकरण "निःशुल्क कानूनी सहायता", "निर्धन को न्याय", "लोक न्यायालय", "लोकहित वाद" या "न्यायिक गतिशीलता" हो अथवा "सामाजिक न्याय" या "नीति-निर्देशक सिद्धान्तों की मौलिक सिद्धान्तों पर प्राथमिकता" हो, अंधी न्याय देवी की नंगी तलवार से उन सबका वध करने को तत्पर है। अतः यह पुष्प (पुस्तक) सातवें पुत्र को यशोदा के संरक्षण मे रख, कंस की नगी तलवार से बचाने की सामाजिक न्याय की विचारधारा का पुष्ट पोषण मात्र है।

इसी चिन्तन-मंथन मे प्रस्तुत "पुष्प" का नामकरण, एक नवीन चिन्तन का विषय लगभग पूरे वर्ष तक बना रहा व मेरे मानस को आन्दोलित, उत्साहित व उद्वेलित करता रहा।

जाने-माने न्याय-वेत्ताओं, हिन्दी जगत के साहित्यकारो, लेखको व पत्रकारो के साथ विचार विमर्श करने से इस पुष्प के शीर्षक के चिन्तन के नये क्षितिज खोले हैं।

भारतीय न्याय-प्रणाली व न्यायपालिका का विश्लेपण, विवरण व समालोचनायुक्त इतिहास व चिन्तन, बकाया वाद व विलंब संबंधी अंकगणित का विस्तृत चित्रण इस पुष्प की प्रमुख पंखुड़िया है—अतः प्रथम चिन्तन में जो नाम आये उनमें "भारतीय न्याय-प्रणाली दशा, दिशा एवं दृष्टि", "भारतीय न्याय-प्रणाली–उत्तम-उत्कर्ष," "भारत के न्याययंत्र की प्रगति-यात्रा", "न्याय-पद्धति की युग यात्रा," "न्याय-व्यवस्था : स्थिति व संभावनाए" उल्लेखनीय हैं परन्तु इनको परम्परागत शैली का द्योतक समझ मेरा मानस अपना न सका।

भगवती द्वारा मुख्य न्यायाधिपति की शपथ के साथ "भगवती काल" के परिवेश में यह सुझाया गया कि इस पोथी में चूंकि भगवती अय्यर शैली व "सामाजिक न्याय" को पर्यायवाची संवेदनशीलता को प्रशासित किया गया है व प्रेरणा ली गई है, अतः इसे "महर्षि मनु से मसीहा भगवती", "विक्रमादित्य से भगवती", "भगवती न्यायालय की चुनौतियां" से नामाकित किया जावे। कुछ क्षणों में यह शीर्षक लुभावने व आकर्षक लगे, परन्तु गम्भीर व गहरे चिन्तन पर लगा कि यह व्यक्तिगत महत्व देने की दरबारी शैली होगी, जो मेरे मौलिक चिन्तन के अनुकूल नही।

एक चिन्तन 'न्यायिक तुला व अंधी न्याय देवी' से संबंधित शीर्षक पर हुआ। पर न्याय तुला के पीछे "न्याय की देवी अब तो आंखे खोल", "न्याय की देवी तेरे रूप अनेक" शीर्षक भी विचारणीय रहे, परन्तु इन्हें सामाजिक व सराहनीय निर्णीत करने पर भी, पुष्प की समस्त पंखड़ियों को दिग्दर्शित करने के लिए सक्षम न पाया।

भूमिका लिखते-लिखते भारतीय राजनैतिक क्षितिज पर "21वीं सदी" की जोर-शोर से तैयारी की जा रही है व प्रधानमन्त्री का यह मूलमंत्र हो चुका है, चहुं ओर इसके चर्चे हैं। अतः स्वाभाविक था कि कुछ विचार आये कि नामकरण में इसे महत्त्व दिया जावे। प्रथम अध्याय इसी को इंगित करता है। इस हेतु—

"21वी सदी व न्यायिक क्रान्ति,"

"न्यायिक क्रान्ति 21वी सदी की ओर",

"न्यायिक क्रान्ति के बदलते आयाम व 21वीं सदी",

"न्याय, 21वी सदी की ओर", "सामाजिक न्यायतंत्र, 21वी सदी,"

भी विचारणीय बने। अन्ततोगत्वा यह भी सिद्धान्ततया स्वीकारने पर भी प्रधानमन्त्री की न्यायिक सेना का झंडा लहराने की परिकल्पना से अधिक प्रभावित न लगा। जैसा कि डूले ने अमरीकी न्यायपालिका के लिए कहा है, अतः इसे भी परिपूर्ण न समझा गया।

विद्यार्थी जीवन मे 1940 से 42 तक विद्यालय में ही गांधी के स्वतन्त्रता आन्दोलन मे "करो या मरो" की प्रेरणा ने अंगारों से खेलना सिखाया व अंग्रेज फिरंगियों की सहायतार्थ सरदार स्कूल के नाटक मंच को फासफोरस डालकर जब मैंने आग लगाई तो क्रान्ति की लपटें मेरे रक्त में आ बसीं जो कालान्तर में दब तो गईं पर बुझ न सकी इसीलिए नामकरण की प्रक्रिया में भी उनकी प्रमुखता रही- उदाहरणतया "न्याय के धधकते अंगारे", "न्यायिक क्रान्ति", "सामाजिक न्यायिक क्रान्ति के उभरते आयाम", "सामाजिक न्यायिक, क्रान्ति-प्रतिक्रान्ति"। मेरे मानव ने इन्हें स्वीकारा परन्तु पुष्प की अप्रस्फुटित कलियों का प्रस्फुटन भी तो आवश्यक था।

मानवीय मूल्यों व सामाजिक न्याय के संदर्भ में कई कलियां पुष्प में खिली हैं, जहां महिलाओं पर अत्याचार, अनुसूचित जन जाति के उद्धार पर चिन्तन किया गया है—अतः सुझाव आये कि "न्याय व्यवस्था मानविकी गरिमा की ओर", "न्यायिक प्रक्रिया मानव मूल्यो के परिवेश मे", "सामाजिक न्याय : विविध आयाम" "विविध विधाओं से, बिंधा सामाजिक न्याय"—"सामाजिक न्याय की बलिवेदी पर", "सामाजिक न्याय के बदलते आयाम व 21वीं सदी" नामकरण में रखे जावें। इन्हें मन व बुद्धि दोनो ने स्वीकारा परन्तु जी न भरा। खोज अपूर्ण रही।

मेरे प्रारम्भिक चिन्तन व अध्ययन में मार्क्स, टॉलस्टाय, राहुल व यशपाल की प्रधानता रही। प्रगतिवादी विचारधारा से प्रेरित मानस "न्याय प्रणाली-प्रगति के आयाम", "न्यायतन्त्र अस्मिता की कसौटी पर", "न्यायतन्त्र समय की कसौटी पर", "न्याय से सत्य तक", पर चिन्तन केन्द्रित हुआ, परन्तु फिर एक मर्यादा का झोंका आया कि मैं प्रगतिशील लेखक के रूप मे अपने आपको उजागर करने का अवास्तविक प्रयास तो नहीं कर रहा हूं। यह आलोचना भी सत्य के निकट ही होगी, क्योंकि मर्यादित न्यायाधीश परम्परागत अधिक व प्रगतिशील सांकेतिक ही हो सकता है।

अतः समन्वय के रूप में "न्यायिक क्रान्ति के उभरते आयाम" अथवा "बदलते आयाम" मे ही चयन किया गया। अन्तिम चरण मे प्रारम्भ हुई साहित्यिकता व ठेठ हिन्दी के ठाठ को छोड़ सर्वहारा, दीन-दुःखी, कम पढ़े-लिखे जन-मानस में बदलते संकेत समझने मे सहजता होगी क्योंकि परिवर्तन ही उभर रहा है।

वर्ष भर के चिन्तन-मन्थन के निचोड़ में "न्यायिक क्रान्ति के बदलते आयाम" ही चयनित किया गया - अतः यह चतुर्थ पुष्प इसी रूप में प्रस्तुत है।

यह तो सर्व विदित है कि इस पुष्प के समर्पण का इष्टदेव "सामाजिक न्याय" है। न्याय की देवी को मुखपृष्ठ पर आदि, वर्तमान व भावी—तीन रूपों में मैंने प्रस्तुत किया है जो पुस्तक की सामग्री व विचार-दर्शन के अनुकूल है।

म्रादिकाल से रोमन, लेटिन, म्राग्ल, संक्सन न्याय देवी को शासन की नंगी तलवार की शक्ति से व हाथ में विधि पुस्तक देकर इंगित किया गया। इसे रोम व म्रन्य कई स्थानों पर मैंने देखा परन्तु प्रस्तुत चित्र टोकियो के सुप्रीम कोर्ट के म्रन्दर का है, क्योंकि यूरोप में लिये म्रनेक चित्र न्यूयार्क कैनेडी हवाई म्रड्डे में ठगी चोरी में चले गये।

द्वितीय, वर्तमान मे भारत मे "म्रन्धी न्याय देवी" का चित्र प्रचलित है—परिकल्पना यह है कि वह शक्तिशाली से भयभीत न हो, वह पक्ष, मोह, लोभ में न म्राये, म्रत: म्रांखें बन्द रखती है कि कौन पक्षकार है। यही रूप इंगलैंड में प्रचलित है। परन्तु युग-परिवर्तन के साथ म्रब न्याय देवी की तुला म्रंधेपन से सर्वहारा, निर्धन, व्यक्ति, उत्पीड़ित, त्रस्त, शोषित, दीन-हीन, दु:खी, दरिद्रनारायण की पीड़ा को म्रनुभव न करने के कारण म्राज के समाज की महती म्रावश्यकताम्रों पर दीवारों पर लिखी इवारत को देख कर न्याय करने में म्रक्षम व म्रसमर्थ है। म्रंधेपन का लाभ शक्तिशाली, सामर्थवान, शोषक, साधन-संपन्न वर्ग तुला में म्रप्रत्याशित कणी बांधकर ले लेता है व निर्बल तथा विपन्न न्याय से वंचित ही नही बल्कि प्रवेश भी नहीं पा सकता।

म्रत: भावी न्यायदेवी की प्रतिमा म्रब "म्रांखे खोल" कर जो बन्धुम्रा मजदूरी को मालिक की बन्द तिजोरी में, शोषित कामगारों के विधेयक प्रतिकूल शोषण को कारखानों की बन्द चार दीवारी में, भूमिहीन किसान पर म्रतिक्रमण को खेत-खलियान के लहलहाते फसल के नीचे रौंदते म्रांसुम्रों को देख सके।

म्रत: न्याय देवी का तीसरा भित्ति चित्र "म्रांखें खोल" कर है जो न्यायिक जगत की म्रांखें खोलने वाला भी है, मेरी पोथी इसी स्वप्न को संजोये है।

न्याय देवी के चारों म्रोर धुम्रां व लपटें हैं, म्राग के म्रंगारे भी हैं—भगवती के वेदनापूर्ण स्वरों मे इनका सर्वश्रेष्ठ संकेत है। धुंम्रा जहां न्यायपालिका म्रनीति तथा म्रन्याय के प्रति मूक दर्शक बन जाती है, म्रौर लपटें जहां म्रन्याय एवं शोषण के विरुद्ध म्रपने धर्मयुद्ध मे न्यायपालिका वीरतापूर्ण सक्रिय भूमिका म्रदा करती है, किन्तु यह म्रधिक महत्त्वपूर्ण है कि न्यायपालिका को म्रात्मशुद्धि के लिए प्रायश्चित एवं पश्चाताप की म्राग से गुजरना है क्योंकि वर्षों तक न्यायपालिका ने, न्याय के पलड़ों को बराबर रखने के नाम पर लाखो लोगों के सन्ताप एवं दु:खो की म्रोर म्रपनी म्रांखें बन्द कर, म्रंधी देवी का रवैया म्रपनाया है। समान न्याय के म्रादर्श की हम घोषणा तो करते हैं किन्तु हमे स्वयं से प्रश्न करना है : "क्या वास्तव मे विधि के म्रधीन समान न्याय है ?" नि:सन्देह, यह सर्वमान्य तथ्य है कि म्राज कम से कम सिद्धान्त विधि के समक्ष तो सब समान हैं उनका जाति, रंग म्रथवा धर्म चाहे कुछ भी हो, कोई बहिष्कृत नही है, म्रर्थात बस्ती से कोई बाहर नहीं है। यह वास्तव

में हमारी न्याय-प्रणाली की महान विशेषता है, जो जीवन की प्रजातांत्रिक प्रणाली के लिए आवश्यक है।

परन्तु इस समानता की सतह के नीचे, अमीर व गरीब के बीच, असमानता के प्रति न्याय-प्रणाली की उदासीनता के कारण न्याय-प्रणाली के वास्तविक कार्यकरण में गहन असमानता रह जाती है। अमीर व गरीब के साथ समान व्यवहार कर, अन्धी समानता की स्थिति अपना कर न्याय-प्रणाली अपने प्रभाव में भेदमूलक हो जाती है। गरीब का सह-सम्बन्ध असमानता पैदा करता है। गरीब तथा अमीर में इतनी असमानता है कि उनमें किसी विवाद की दशा में अमीर की तुलना में गरीब विशेषतः अहितकर स्थिति में ही होता है। अमीरों की तुलना में जो अधिक भाग्यवान हैं, गरीबों के पास समान स्तर पर मोल-भाव करने के लिए सूचना, प्रशिक्षण, अनुभव तथा आर्थिक साधनों का अभाव होता है। किन्तु न्याय दोनों पक्षों की साक्ष्य के प्रति उदासीनता अपनाये आंखें बंद किये रहता है। परिणामतः विधि के समक्ष वाली समानता भ्रामक समानता बन जाती है और न्याय-प्रणाली की यह निरपेक्षता भी असमानता का साधन बन जाती है।

हमारे देश में गरीबों ने युगों से मौन रह कर अन्याय सहन किया है किन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि वे निरे पाषाण नहीं हैं। लाईमैन अबॉट के शब्द प्रस्तुत हैं, जिसने भविष्यवाणी की है कि :—

"यदि कभी ऐसे युग का प्रादुर्भाव होगा, जब मानव विधि न्याय को संदेहास्पद अभ्याशी के स्वरूप में ही प्राप्त कर सकेगा, जब निर्धन, गरीब, दीन-हीन, न्याय-प्राप्ति में असमर्थ व असफल हो हताश हो जायेगा, जब मंदिर के बन्द द्वार केवल स्वर्ण-चाबी से ही खुल सकेंगे तब समझ लेना कि खूनी क्रांति के बीज बोए जा चुके हैं, तब उस खूनी क्रान्ति की आग व मशाल मानव धधका देगा तथा ज्वाला व अंगारों को कोई भी नहीं रोक सकेगा। उन दुखःदायी परिस्थितियों में खूनी क्रान्ति होकर रहेगी और वह न्यायोचित भी होगी।"

लाईमैन अबॉट की यह चेतावनी आज भी उतनी ही प्रासंगिक व सामयिक है।

महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, जैसे महापुरुषों तथा संविधान के निर्माताओं ने भारत के करोड़ों लोगों की आशाओं तथा आकांक्षाओं को स्वर प्रदान कर आग जगाई है, और यह आग परम्परागत, सामन्तवाद मर्यादाओं पर आधारित समाज की असमान संरचना को अपने में समेट रही है और सामान्य नागरिक के लिए सामाजिक एवं आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान कर रही है। न्यायपालिका को भी उससे गुजरना होगा, जिससे उसकी समस्त खोट समाप्त हो सके, निष्कलंक बन सके तथा अपनी शुद्धता एवं कान्ति को पुनः प्राप्त कर सके। समाज के कमजोर वर्ग की सेवाओं के लिए विधि का विकास एवं उसमें परिवर्तन कर न्यायपालिका को लाखों

लोगों की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं को पूरा करना है, सामाजिक न्याय प्रदान करने के साधन के रूप में विकसित करने के उद्देश्य से व्यावहारिक व्याख्या करनी होगी, पुराने एवं अनुपयोगी नियमों एवं प्रथाओं को समाप्त कर नये साधन, नये तरीके विकसित कर, सामान्य नागरिक तक न्याय पहुंचाने के लिए नयी व्यूह-रचना करनी होगी। देश में न्यायपालिका के लिए यह चुनौती है और इसका सामना सृजन एव चिन्तन से ही किया जा सकता है ताकि मूल अधिकार तथा राज्य की नीति के निर्देशक तत्व के अध्यायो में वर्णित मानव के मूलभूत अधिकारो को करोड़ों लोगों के लिए सार्थक बनाया जा सके और न्यायपालिका अपने प्रति विश्वासपैदा कर सके तथा अपना आत्मबल बढ़ा सके।

आज दुर्भाग्य से न्याय प्रशासन की हमारी प्रणाली मे दो गम्भीर दोष हैं— विलम्ब तथा व्यय। विधि के समक्ष अमीर व गरीब समान स्तर पर नहीं खड़े हैं। न्याय प्रदान करने के परम्परागत तरीकों के कारण गरीब के लिए न्यायालयों के द्वार बन्द हो गये हैं और देश के विभिन्न भागो से करोड़ो लोगो को न्याय प्रदान करने से बिल्कुल इन्कार कर दिया गया है जबकि अधिक लाभदायक कल्याणकारी विधियां उनके पक्ष में पारित की गयी हैं। प्रथम तो वे अपने अधिकारों से ही अन-भिज्ञ हैं और जहां अगर उन्हें ज्ञान है भी तो समाज के उस शक्तिशाली वर्ग के विरुद्ध, जो परम्परागत रूप से उनका दमन एवं शोषण करता आ रहा है, अपने अधिकारों की मांग करने के लिए उनके पास साहस, इच्छा एवं साधन नहीं हैं। इस तरह उनके लिए न्याय का कोई अर्थ ही नही रह गया है। यह शब्द उनके घर-परिवार तक कठिनाई मे ही पहुंच पाता है। वे संज्ञा-शून्य हो गये हैं और उनमें अधर्म तथा अन्याय का विवेक समाप्त हो गया है। ऐसे करोड़ों गरीब तथा दलित, अनभिज्ञ तथा अनपढ़, दीन तथा दरिद्र लोगों को हमारी न्याय-प्रणाली बार-बार एवं लगातार न्याय से वंचित रख रही है। यह एक दुःखद विसंगति है जो हमारे आजकल के विवेकशील आत्म-विवेचन में बाधक है। यह एक कटु सत्य है कि हमारे न्याय के प्रति बड़े-बड़े शब्दो मे विरोध प्रदर्शित करने के बावजूद भी हम हमारे करोड़ो लोगो को, जो इसके लिये भुगतान कर सकने के लिये अति निर्धन हैं, इससे वंचित रहते हैं, वस्तुतः यह अतिभयानक विस्फोटक स्थिति है और जितना जल्दी हम इसको गम्भीरता को समझ सकें उतना ही हम सबके लिये अधिक अच्छा है।

यह नितान्त आवश्यक है कि विधि का अन्तिम उद्देश्य न्याय होना चाहिये। जब हम हमारे देश में न्याय की बात करते हैं तब हमारा तात्पर्य "सामाजिक न्याय" से है। इसमें सन्देह नहीं है कि विधि को वैधता न्याय से मिलती है और अन्तिम विश्लेषण मे इसका अनुमोदन समाज से मिलता है। जनता विधि को वैध करती है

ग्रौर यदि यह उचित है तो इसका पालन करती है, ग्रतः न्याय प्रणाली का सर्वोपरि उद्देश्य सामाजिक न्याय होना चाहिये।

ग्राज हो क्या रहा है ? गरीब को न्याय-प्रणाली में तथा उनको न्याय देने की उसकी क्षमता में विश्वास ही नही रहा है। गरीब जब भी न्याय-प्रणाली के सम्पर्क में ग्राया है उस पर, "गरीब की विधि" लागू करने के बजाय, सदैव "गरीब के लिए विधि" लागू की गई है। गरीबो के द्वारा विधि को कुछ रहस्यमय ग्रनिष्ठ माना गया है जो उनको कुछ देने के स्थान पर सदैव उनसे कुछ लेती ही रही है। परिणामतः उनमें विधि एवं न्याय-प्रणाली के प्रति विश्वास उठ गया है। ग्रतः न्याय-प्रणाली को स्वय को परिष्कृत करना है ताकि वह गरीब एवं समाज के शोषित वर्ग मे स्वय के प्रति विश्वास पैदा कर सके ग्रौर उनमें यह जागरूकता ला सके कि वे ग्रपने रहन-सहन मे न्याय-प्रणाली के माध्यम से भी परिवर्तन ला सकते हैं।

न्याय-प्रणाली के उपरोक्त कतिपय पहलुग्रों पर इस पुस्तक के माध्यम से प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक में इन महत्त्वपूर्ण विषयों पर निष्पक्ष एवं प्रेरक ढग से तृतीय विश्व के न्याय-शास्त्र की मूलधारणा एवं विचारों को प्रस्तुत किया गया है।

लेखो मे निडरता एवं क्रान्तिकारी विचारों के समावेश से न्याय प्रदान करने के नये तरीकों की खोज की गई है। जनहित के वादकरण, जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय ने विकसित किया है, के सम्बन्ध में नये न्यायशास्त्र के विकास की रूपरेखा तैयार की गयी है। संवैधानिक मूल्यों से तालमेल बिठाने का प्रयास किया गया है क्योंकि यह पुस्तक संविधान के उद्देश्यों को प्राप्त करने के प्रति समर्पित है।

यह स्पष्ट है कि न्यायपालिका भारत के भूखे-नंगे करोड़ों लोगो की गरीबी एवं दुःखो से ग्रछूती एवं ग्रप्रभावित नही रह सकती।

न्यायपालिका एक चौराहे पर खड़ी है ग्रौर वहीं यह ग्रौर महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी खडा होता है कि क्या ग्राने वाले वर्षों में यह साहसिक एवं क्रियाशील रुख ग्रपनायेगी ग्रथवा एक मूकदर्शक के रूप मे, ग्रकर्मण्यता में डूब कर विधि की भूमिका में यथास्थिति बनाये रखना चाहेगी ? क्या न्यायपालिका विधि की प्रक्रिया द्वारा सामाजिक-ग्रार्थिक परिवर्तन के कार्य मे विवेक एवं साहस द्वारा योगदान करना चाहेगी, जिससे सामाजिक न्याय जनसाधारण तक पहुँच सके ग्रथवा क्या वह स्वयं को किसी शासन ग्रथवा ग्रार्थिक समर्थन के ग्राधार पर नगण्य भाग्यशाली लोगो के हाथ की कठपुतली बनकर एक निरर्थक संस्था सिद्ध होने देगी ? "लोकहित वाद", "लोक न्यायालय", "निर्धन को निःशुल्क न्यायिक सहायता" व "21वीं सदी के

परिवेश में कम्प्यूटर युग का न्यायपालिका में प्रवेश" आदि विषयों पर राष्ट्रीय स्तर पर चिन्तन व वाद-विवाद वर्तमान में चरम सीमा पर हैं। भगवती न्यायालय के प्रादुर्भाव से व प्रधान मंत्री राजीव गांधी तथा विधि मंत्री द्वारा उपरोक्त परिकल्पनाओं को पूर्ण समर्थन देने से अब नये क्षितिज व नये आयाम गतिमान हो रहे हैं, अतः गतिमान न्यायपालिका की साकार कल्पना को पुस्तक के प्रथम व अन्तिम चार अध्यायों में नवीनतम सामयिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

विभिन्न प्रसंगो व परवेश में मैंने लगभग समस्त महत्त्वपूर्ण न्यायाधिपतियों व निर्णयों का. जो कि न्यायिक इतिहास, क्रान्ति-प्रतिक्रान्ति में प्रासंगिक हैं, समावेश किया है। यदि सम्राट जेम्स व न्यायाधिपति कोक के शीत-युद्ध को वर्णित किया है तो रूजवेल्ट की "केले की मज्जा में से सशक्त रीढ की हड्डी वाले न्यायाधीश निर्माण करने" की गर्वोक्ति व होम्स को ताड़ना तथा उसका स्वाभिमानी प्रत्युत्तर भी दिया है। यदि जेम्स के सम्मुख अन्य न्यायाधीशों को दरबार में जाकर साष्टांग दण्डवत कर समर्पण करना बताया है तो अमेरिका के नौ न्यायाधीशो के समर्पण व विश्व इतिहास की घृणात्मक कालिख "ए स्टिच इन टाइम सेव्स नाइन" का भी उल्लेख किया है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में न्यायाधीशों की कानिया से भगवती तक, स्वतंत्र निर्णय व नये क्षितिजो का प्राकृतिक न्याय, मानवीय सवेदनशीलता व मौलिक अधिकारों में गौरवपूर्ण उल्लेख कर भारत को विश्व की सबसे अधिक शक्तिशाली स्वतंत्र न्यायपालिका का शोध निबन्ध व सामाजिक न्याय के बढ़ते चरणों की नयी कहानी सुनाई है, वहां चांद में कालिख के रूप मे "शिवकान्त", ए. के. गोपालन व लोगेवाला प्रकरणो का उल्लेख भी किया है। सम्पत्ति संरक्षण में न्यायापालिका की निहित स्वार्थों के प्रतिपादन की भूमिका भी वेला वनर्जी, गोलखनाथ के कालिख के रूप में चर्चित की गई है। संविधान की धारा 311(2) में राज्य कर्मचारियो को बिना सुने सेवा च्युत करने का निर्णय भी प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों के विस्तृत क्षितिज में "कालिख" के रूप में चर्चित हुआ है।[1] प्रयास किया गया है कि सन् 1950 से 1985 तक के न्यायिक विश्व के इतिहास, भूगोल, अंकगणित, खगोल, समाज-शास्त्र—सबका "गागर में सागर" भर दिया जावे।

"महिला-शोषण, दहेज-मृत्यु", अनुसूचित जाति व जनजाति उद्धार से सबन्धित सामाजिक न्याय की संवेदनशीलता को मुखरित करने वाले व मूल्यांकन करने वाले दो अध्यायो को न्यायिक परिवेश मे प्रस्तुत किया गया है। "राजनीति, विधि व नैतिकता का संगम तथा परस्पर सम्बन्ध व आधार" के चिन्तन का

1. यूनियन आफ इण्डिया बनाम तुलसी राम पटेल, 1985 (3) एस. सी. सी. 398

अध्याय भी सामयिक रूप से सम्मिलित किया गया है—क्योंकि यह सब अन्ततोगत्वा हमारे "सामाजिक न्याय" की परिकल्पना के शक्तिशाली स्तम्भ हैं व उनके सामंजस्य पर ही हमारे सविधान का उद्बोधन साकार हो सकेगा।

निडरता के साथ क्रान्तिकारी परिवेश में विचारों को परम्परागत बेड़ियों से मुक्त ही रखने का प्रयास किया गया है। मूल भावना आदि से अन्त तक यही शोध करने की रही है कि दीन-हीन, न्याय से वंचित, कमजोर वर्ग, जो प्रायः शोषित, दलित, त्रस्त और उत्पीड़ित हैं की ओर न्यायिक देवी कैसे आंखें खोले और सवेदनशीलता से उन्हे न्याय-मदिर मे प्रवेश करा कर कैसे न्याय प्रदान करे।

बकाया मुकदमों व न्याय विलम्ब का दर्दनाक चित्र मैंने 54 मानचित्रों (ग्राफ) व 56 से अधिक तालिकाओं मे विभिन्न सन्दर्भों में किया है। इनके संकलन करने में विभिन्न शीर्षकों व विषयों मे बांटते, जोड़-बाकी-भाग करने व चित्रित करने तथा चित्र बनाने मे अत्याधक कठिनाई हुई, समय व श्रम लगा, क्योंकि विधि विभाग प्रायः चार वर्ष पीछे चलता है तथा बिना साधनो के तथा अलग-अलग न्यायालयों से सूचनाएं प्राप्त करना अत्यन्त दुष्कर है। अधिकतर तो सहयोग मिला, हाँ कहीं-कहीं परम्परागत सकोच से असहयोग भी मिला। संतोष व हर्ष का विषय यह है कि लगभग 1984 तक के अधिकतर आंकड़े तथा आंशिक स्वरूप 1985 के कुछ आंकड़े भी प्रस्तुत कर सका हूं।

ऐसे ही पहिले प्रयास मेरी पूर्व पुस्तक को अय्यर आदि ने "इनसाईक्लोपीडिया व न्यायायिक बाईबल" की संज्ञा से विभूषित किया था। आशा है कि विधि आयोग, शोधकर्ता व विश्वविद्यालयों व उच्चतम व उच्च न्यायालयों में ये नवीनतम आंकड़े, न्यायिक प्रक्रिया के सुधारो हेतु चिन्तन की, प्रमाणिक आधारशिला बनेंगे। यह अपेक्षा की जाती है कि अब विधि आयोग, विधि विभाग व उच्चतम न्यायालय इन आंकड़ों की प्रमाणिकता को प्रत्यास्थापन कर कम्प्यूटराइज कर लेगा व भविष्य में नवीनतम आंकडों को कम्प्यूटर पर तुरन्त हर माह में लिया जावेगा जैसाकि मैंने रोम, टोकियो, वाशिंगटन व लन्दन के उच्चतम न्यायालयों के "कम्प्यूटर डेटा बैंक" में देखा व अध्ययन किया है। यदि कम्प्यूटर भी अंधी न्याय देवी की आखें खोल न्याय-मंदिर मे अधिकार-युक्त प्रवेश कर आंशिक न्याय भी प्राप्त करा सकेगा, तो मेरा श्रम व स्वप्न साकार हो सकेगा।

कार्यरत न्यायाधीश के समयाभाव से पुस्तक मे त्रुटियां, अभाव एवं अपूर्णता स्वाभाविक है, विशेषकर इस कारण कि यह रचना व प्रकाशन "एकला चलो" की दुष्कर यात्रा में ही किया गया है। परन्तु मेरे सर्वहारा पाठक, भाषा के स्थान पर भावना ही देखेंगे व छपाई की सुन्दरता के स्थान पर न्याय की परिकल्पनाओं को ही

निहारेंगे तथा मुझे निश्चित रूप से उत्साहित करेंगे, ऐसा मेरा अडिग, अटूट विश्वास है ।

राष्ट्र के विभिन्न उच्च न्यायालयों ने आंकड़े भेजकर व मुख्य न्यायाधिपतियो व अन्य विधि-वेत्ताओं ने मेरे पिछले तीन पुष्पों के समर्पण को सुगन्धित, उपयोगी बताकर मेरा उत्साह बढ़ाया है–अतः मैं उन सबका व प्रकाशन मे सहयोग देने वाले अन्य समस्त व्यक्तियों का आभारी हूं, विशेषतः श्री देवेन्द्र मोहन कासलीवाल, सेवा निर्वत्त आर. ए. एस. अधिकारी का, जिन्होने इस पुस्तक में निष्ठा व लगन से निरन्तर सहयोग दिया ।

आशा है कि यह पुष्प भी अंधी न्याय देवी के कोमल नेत्रों की शल्य-चिकित्सा कर, अंधापन दूर कर उन्हें ज्योति प्रदान करने मे सफल होगा । यह पुस्तक रूपी पुष्प अंधीदेवी को "चक्षुदान" नही "चक्षु भेंट" है, काश देवी इसे स्वीकार कर सके !

उद्धृत निर्णय क्रमणिका

'अ'

'आ'

'इ'

'उ'

'ए'

'क'

'ख'

'ग'

'च'

'ज'

ट

ड

'त'

'द'

'न'

प

फ

य

र

मुख्य क्रमणिका

परिशिष्ट

क्रमणिका–तालिका

क्रमणिका–मानचित्र

न्यायपालिका
इक्कीसवीं सदी में—कम्प्यूटर युग ?

विधि मन्त्रालय के मंत्री पद का कार्यभार सम्भालने के पश्चात् प्रख्यात विधिवेत्ता तथा भारतीय बार के अग्रणी श्री अशोक सैन ने कलकत्ता में अपने सर्व प्रथम भाषण में न्यायपालिका की प्रतिष्ठा और मर्यादा की पुनर्स्थापना को प्राथमिकता देने में अपना पुनीत ध्येय माना था।[1] उनके कनिष्ठ श्री भारद्वाज ने भी यही किया। नूतन मंत्री मण्डल की यह उद्घोषणा नव-वर्ष की भेंट स्वरूप स्वागत योग्य है। किन्तु क्रियान्विति का प्रश्न अत्यन्त जटिल और दुरूह है, विशेष रूप से सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एस. पी. गुप्ता की रिट याचिका के निर्णय[2] देने के पश्चात् जिसमें कि न्यायाधिपतियों की आत्मघाती विवशता को अंगीकार किया गया है[2] व आत्म-हत्या कर "मुख्यन्यायाधिपति" के वर्चस्व व प्राथमिकता को स्वयं समाप्त किया है।

श्री राजीव गांधी जिन्हें बहुत से पत्रकार मि. क्लीन, भी कहते हैं[3], ने भी जनता का भारी समर्थन प्राप्त करने के पश्चात् समस्त विचाराधीन मुकदमों का पांच वर्ष की अवधि में निर्णय करने की दृष्टि से सक्रिय कदम उठाने का विधि मंत्रालय को निर्देश दिया है, जैसा कि दिनांक 22-1-85 ई. को लोकसभा में विधि-मंत्री श्री अशोक सैन के दिये गये भाषण से प्रकट है। उन्होंने(श्री राजीव)भारत के प्रशासनिक क्षेत्र में कम्प्यूटर प्रणाली के प्रयोग का नूतन सुझाव देकर भारतीय प्रशासनिक क्षेत्र में विद्युत् वैज्ञानिक तकनीकि प्रगति (इलेक्ट्रोनिक साइण्टिफिक टेक्नोलोजीकल प्रोग्रेस) के नए क्षितिजों का सृजन किया है। भारत के विकासोन्मुख युवा प्रधान मंत्री द्वारा नव वर्ष की इस भेंट की परिधि में भी विस्तार की आवश्यकता है ताकि अछूत समझी जाने वाली न्यायपालिका का भी इसमें समावेश हो सके।

सितम्बर 1984 में श्री राजीव का जयपुर के बुद्धिजीवियों के समक्ष अपनी विचाराभिव्यक्ति यदि उनके अन्तर्निहित विचारों का द्योतक है तो उन्होंने न्यायपालिका के प्रति भारी सम्मान व्यक्त किया है। उन्होंने कहा है कि भारतीय क्षितिज पर छाए हुए गहन अंधेरी घटनाओं के बीच न्यायपालिका ही आशा की एक मात्र पून्जीभूत

---

1. इण्डियन एक्सप्रेस दि. 5-1-85 (दिल्ली) पृष्ठ 1
2. एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ ए.आई.आर. 1982 एस.सी पृष्ठ 149
3. ट्वन्टी पोइन्ट्स फॉर मि. क्लीन—बी. जी. वर्गीस इण्डियन एक्सप्रेस 13-1-1985 (मेगजीन रवीवार) पृष्ठ 2

पुनीत किरण है। अपने इस कथन को नए जनादेश प्राप्त करने के पश्चात् भी उन्होंने दोहराया है।

घटनाओं के उपरोक्त ऐतिहासिक क्रमानुक्रम में सन् 1984 तक 1,48,891 विचाराधीन तथा लगभग 98,683 नवीन मुकदमों के मिस्री पिरामिड़ो की तलहटी मे भारत के मुख्य न्यायाधीश ने न्यायाधीशों के सम्मेलन का आयोजन दिल्ली में 1985 मे दो बार किया, जिसमे विचारणीय मुख्य विषय इन बढ़े हुए मुकदमों की समस्या का निस्तारण भी रहा है। इनकी संख्या उच्च न्यायालयो मे 13,00,000, सर्वोच्च न्यायालय मे 1,50,000 और अधीनस्थ न्यायालयों में लगभग ढाई करोड है।[1]

जहा तक विलम्ब का प्रश्न है तो तीसरे एव चौथे दशक (1930 40) के मुकदमों का निर्णय करना भी अभी शेष है। यह अपेक्षा की जाती है कि रचनात्मक परिणाम दायक विचार-विमर्श के पश्चात् न्याय-प्रशासन क्षेत्र में भी कम्प्यूटर तथा विद्युत् उपकरण प्रयोग की उपादेयता को भी स्वीकारा जावेगा। कलकत्ता के मुख्य न्यायाधीश श्री सतीश चन्द्र की अध्यक्षता मे गठित एरियर्स कमेटी ने अपनी अन्तरिम रिपोर्ट में अन्तर्राष्ट्रीय न्याय जगत में प्रयुक्त होने वाले आधुनिकतम अन्तर महाद्वीप मारक प्रक्षेपास्त्र कम्प्यूटर तथा विद्युत्-उपकरण की अपेक्षा परम्परागत सुधारों का ही सुझाव दिया है। यहाँ तक कि शोधकार्य, परम्परागत निर्णय, विधि-अध्यादेशों के संकलन हेतु भी इनका प्रयोजन उपेक्षित रहा है, किन्तु इस अनभिप्रेत अन्धकार के उपरान्त भी देश के प्रधान-मत्री के सस्वर आह्वान का देश के मुख्य न्यायाधीश स्वागत करेंगे और न्याय प्रशासन क्षेत्र में कम्प्यूटर तथा विद्युत्-उपकरण के प्रयोग को मान्यता देकर 19वी सदी की न्यायपालिका को 21वी सदी में छलांग लगा प्रवेश करायेंगे।

सक्षेप मे, मेरे इस लेख का उद्देश्य न्यायिक व्यवस्था में "कम्प्यूटराइजेशन एण्ड इलैक्ट्रोनिक्स" युग मे प्रवेश की महती आवश्यकता को प्रतिपादित करने के लिए भारत के उपरोक्त "तीन बड़ो" का निश्चित ध्यान, विशेष रूप से, व न्यायिक ससार का ध्यान साधारणतया इस ओर आकर्षित करना है।

इलेक्ट्रोनिक्स के इस युग में कम्प्यूटर की प्रासगिकता सदेह से परे है। औद्योगिक क्षेत्र के अतिरिक्त अब कम्प्यूटर औषधि निर्धारित कर रहे हैं तथा बुलगारिया मे हृदय रोग से पीड़ित रोगियों के लिए दवा की खुराक नियंत्रित कर रहे हैं। अमरीकी, जर्मन, रूसी तथा अनेक देशों के वैज्ञानिक अब ऐसे कम्प्यूटराइज्ड इलैक्ट्रोनिक उपकरणों का आविष्कार या डिजायनिंग कर रहे है जो मानव मूड और व्यवहार को नियंत्रित करेंगे, अवसाद और उदासी को हंसी-खुशी मे बदल देंगे, उदासी और

1. ज्युडिशियरी, पयूम्स, फ्लेम्स एण्ड फायर—गुमानमल लोढा।

ऐसे क्षणों में जब मनुष्य का मन रोने को हो रहा हो, उसे हंसायेंगे और ब्लड प्रेशर का न्यूरोसर्जरी के बिना मस्तिष्क के स्नायु केन्द्रों पर नियंत्रण रखेंगे।

आगामी इक्कीसवी सदी में चन्द्रमा और मंगल में एक नई पूर्णता प्राप्त होगी और इस सदी में सुपर कम्प्यूटर ब्रेन का अन्तरिक्ष क्षितिज और एक नए बहु-आयामी विस्तार के साथ उत्कर्ष दृष्टिगोचर होगा।

यद्यपि भारत जैसा तीसरे विश्व का विकासशील देश भी एक सीमित रूप मे ही सही, इस दौड़ मे प्रवेश कर गया है किन्तु यहां की न्याय व्यवस्था आज भी केवल "बैलगाड़ी" पर पीछे घिसट रही है। "रोम" जैसे कम्प्यूटर एवं इलैक्ट्रोनिक्स केन्द्रों की तो बात दूर रही, यहां डिक्टोफोन, केलक्यूलेटर्स, विद्युत् टाइपराइटर जैसे साधारण इलैक्ट्रोनिक उपकरण भी हमारे बजट के बाहर हैं। इलैक्ट्रोनिक विज्ञान औद्योगिकी से न्यायपालिका, लोकोक्तीय अस्पृश्य हिन्दु विधवाओं की तरह अभी तक अस्पृश्य है।

नई "लोक अदालतों" के विधिक एम्बूलेंस भी, जो न्यायाधीश भगवती-अय्यर की नई ईजाद है, पारम्परिक बैलगाडी की चाल से यात्रा मे पीछे घिसट रही है। जस्टिस अय्यर के सामाजिक न्याय के सिद्धान्त से प्रेरित भगवती-देसाई-ठक्कर-चिन्नापा की नई धारा भी ज्यादा दूर नही जा सकती और केवल "लघु परियोजनाओं" मे सिकुड कर रह गई है जिसका आंशिक कारण उसका इलैक्ट्रोनिक्स से अलग होना भी है। जब तक कि समय की आवश्यकताओं को महसूस करने वाले कोई नूतन विचार या स्पष्टोक्तियां न हों, न्यायाधीशगण आमतौर पर पूर्व निर्णयों का ही अनुसरण करते हैं। पूर्व-निर्णयों और आंकड़ों की तलाश अदालतों का तीन चौथाई कीमती समय ले लेती है। ऐसी हालत मे इलैक्ट्रोनिक साधन हमें इस कठिनाई से उबारते हैं जैसा कि विकसित विश्व में हो रहा है।

अभी हाल मे, मैं कुछ पश्चिमी और पूर्वी देशों की यात्रा पर गया था, विशेष-रूप से यूरोप, अमेरिका और जापान। मैंने रोम में "उच्चतम न्यायालय इलैक्ट्रोनिक केन्द्र" देखा है। कोई 800 छोरों (टर्मिनल्स) तक न्यायिक आंकड़े पहुँचाने का यह एक जाल है। यूरोपीय देशों के कानून, न्यायिक नजीरें, विधिक साहित्य, न्यायालयों के संवैधानिक, सिविल और आपराधिक मामलों के निर्णय इन आंकड़ों में सम्मिलित होते हैं। इटली के इलैक्ट्रोनिक्स केन्द्र के आंकड़े सारे यूरोप अमेरिका के छोरों पर उपयोग में लाये जा सकते हैं और यह केन्द्र आपके विकसित प्रश्नों का उत्तर देने के के लिए दृश्य प्रदर्शन इकाई (वी. डी. यू.) के रूप में कार्य करता है।

1945 में हीरोशिमा और नागासाकी में बम विस्फोट के कारण हुए विनाश के बावजूद जापान ने अपना पुनर्निर्माण किया और 1951 में डेटा बैंक के रूप में न्यायपालिका के क्षेत्र मे इलेक्ट्रोनिक्स और कम्प्यूटराइजेशन की शुरुआत की।

अमेरिका और इगलैण्ड में "लेक्सिस" के हजारों छोर हैं जहां कानूनी राय कम्प्यूटराईज्ड की जाती है और वी. डी. यू. पर प्रदर्शित की जाती है। अब सारे

विश्व में 48 घण्टो के भीतर वी. डी. यू. पर नवीनतम नजीरों की जानकारी मिल सकती है जब कि भारत मे आज भी नजीरो के ढेर में से डाइजेस्ट्स से नजीरों की तलाश और अनुसधान मे ही हमारी शक्ति लग जाती है।

इटली के उच्चतम न्यायालय में लीगल डोक्यूमेंटेशन के लिए इलेक्ट्रोनिक केन्द्र

इटली के उच्चतम न्यायालय में इलेक्ट्रोनिक डोक्यूमेण्टेशन केन्द्र है जो ज मजिस्ट्रेटों, वकीलो और जन-साधारण को कानून और उसके लागू होने से सम्बन्धि सभी आवश्यक कानूनी जानकारी उपलब्ध कराता है।

यह केन्द्र स्पैरी यूनिवैक 1100/81 कम्प्यूटिंग सिस्टम से युक्त है जिसक लगभग 800 ओलिविटी टी. सी. वी. 275 छोरों की क्षमता का आंकड़ों के प्रसारण का जाल है।

1.211 छोर — ये उच्चतम न्यायालय मे—सभी विधि न्यायालयों और न्यायालय भवनो में अवस्थित दण्डनायक, न्यायालयो के दण्डनायकों, वकीलो अटार्नी एट लॉ, नोटरी और चार्टर्ड एकाउन्टेण्टस् के लिए खुले हैं

2.201 छोर — अन्य अधिकारिताओं में—राज्य प्रशासनिक कार्यालयों, विभिन्न सार्वजनिक पुस्तकालयों और सस्थानो के लिए।

3.339 छोर — अन्य निजी और सार्वजनिक सस्थानों पर—विभिन्न शुल्क की अदायगी पर।

केन्द्र का प्रबन्धक मण्डल रोम मे प्रयोगी आधार पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रमो (रोम मे दो मासिक पाठ्यक्रम) की व्यवस्था करता है। जो विदेशी इस सेवा का उप-योग करना चाहते हैं, वे वर्तमान मे यूरोपियन नैटवर्क के जरिये इस केन्द्र से जुड़े हुए है।

मीड डाटा सैन्ट्रल इन्टरनेशनल

विश्व अधिकाधिक प्रायोगिक विकास की ओर अग्रसर है और अपने दैनिक जीवन मे इस विकास का लाभ उठाने के लिए अथवा कार्य को तेजी से सुविधाजनक रूप से निपटाने की दृष्टि से, मीड डाटा सैन्ट्रल इन्टरनेशनल एक उदाहरण है।

किसी पुस्तकालय मे अनगिनत समाचार-पत्रो, पुस्तको, पत्रिकाओं अथवा विधि-पत्रिकाओं को देखने की बजाय अब हमे वांछित जानकारी इलैक्ट्रोनिक्स से कम समय मे सुगमता से उपलब्ध हो जाती है।

ऐसे समाचारों से बराबर सम्पर्क बनाये रखने के लिए, जिनका प्रभाव निर्णयो पर होता है, वकील अपने एक दिन का 80 प्रतिशत समय ऐसी जानकारी जुटाने में लगा देते हैं, जो बाहरी सूत्रों जैसे समाचार माध्यमों, पत्र-पत्रिकाओं, उद्योग और व्यापार, प्रेस, विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा विधि के क्षेत्र से प्राप्त होती है।

मीड डाटा सेन्ट्रल, प्राप्त पत्रिकाओं, विधिक तथा सामान्य जानकारी और समाचारों का पूर्ण विवरण विविध व विस्तृत रूप से उपलब्ध कराता है, क्योंकि इनमे सम्पूर्ण पत्रिकाए', समाचार-पत्रों में प्रकाशित लेख, सम्पूर्ण विधान और कानून व पुस्तकें संगृहित रहती हैं ।

इसके अलावा वकीलों और न्यायाधीशों को इस पद्धति का सुलभता तथा कारगर ढंग से इस्तेमाल करने के लिए कम्प्यूटर के अनुभव की आवश्यकता नही है। ये जानकारियां न्यायाधीशों/वकीलों जैसे व्यक्तियो के लिए खासतौर पर एकत्रित की जाती हैं ।

इस प्रकार हमारी मेज पर या कार्यस्थान पर कम्प्यूटर छोर (टर्मिनल) हमें बहुमूल्य जानकारी दे सकता है, जो बेहतर निर्णय लेने और कानून के बारे मे अधिक जानने मे हमारी मदद कर सकती है ।

यह केन्द्र विभिन्न क्षेत्रों की सूचनाएं एकत्रित करता है, जिनमें से कुछेक निम्न हैं —

विधिक सूचनाएं—
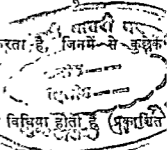
1. उनमें अमरीकन, इंगलिश, फ्रांसीसी निर्णय विधियां होती हैं (प्रकाशित एव अप्रकाशित दोनों प्रकार के मामले)।
2. अमेरिका के संघीय कानून, संहिताएं एव विनियम, ब्रिटेन के कानून और कानूनी प्रलेख, फ्रांसिसी विधियां और विनियम ।
3. यूरोपियन न्यायालयों के प्रकाशित एव अप्रकाशित दोनों प्रकार के मामले ।
4. लगभग तीस लाख मामले और अन्य दस्तावेज जो लगातार और शीघ्रता से अद्यतन (अपटूडेट) रखे जाते हैं । इनमें से कुछ मामले ऐसे होते हैं जो निर्णय के 48 घण्टे के भीतर वहा उपलब्ध होते है ।
5. विश्व की बड़ी से बड़ी विधिक अनुसंधान टिप्पणियां ।
6. करो, प्रतिभूतियो, ऊर्जा, श्रम, बैंक व्यापार विनिमयों, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, समुद्री मामलों के निर्णयों, संचार सनदों, कापी राइट्स और ट्रेडमार्क्स् पर विशेष पुस्तकालय ।
7. विश्व की बड़ी से बड़ी विधिक अनुसंधान सेवाएं ।
8. किसी विशेष न्यायाधीश विधिवेत्ता द्वारा विचारित मामलों का परिचय ।
9. अमरीकी या इंगलैंड के न्यायालयों में उद्धृत किसी भी मामले की तुरन्त जानकारी प्राप्त करना ।

यह सहज ही कहा जा सकता है कि मीड डाटा सैन्ट्रल सारे विश्व मे सर्वाधिक पूर्ण-टैक्स-डाटा-आधार प्रस्तुत करता है । आप अपनी मेज छोड़े बिना 45 लाख से अधिक लेखो, विधिक मामलो, सनदो एवं संदर्भों का अध्ययन या छानबीन कर

सकते हैं या किसी मामले का निर्णय से लेकर अपील तक अध्ययन कर विधिक सिद्धान्त के विकास की खोज कर सकते हैं। ये सब मीड डाटा सैन्ट्रल की सूचना-सेवाओं की क्षमताओं के कारण ही सम्भव तथा सुलभ है।

संयुक्त राज्य अमरीका में विधिक व्यवसाय ने ही कम्प्यूटर की सहायता से सूचना का पता लगाने की समय बचाने वाली युक्ति को मान्यता देने में पहले की है। इंग्लैंड, अमरीका और फ्रान्स के अधिवक्ता विधि के किसी विनिर्दिष्ट प्रश्न पर नवीनतम नजीरें तय करने के लिए, कांग्रेस में किसी विधेयक की प्रगति का पता लगाने के लिए, ब्रिटिश तथा अमरीकी विधिक समीक्षाओं में विशेषज्ञों का परीक्षण करने या विधि के किसी विनिर्दिष्ट बिन्दु पर फ्रांसिसी सरकार की नवीनतम कार्यवाही के लिए आफीशियल पत्रिका देखने हेतु "लैक्सिक डेली" का उपयोग करते हैं।

मीड डाटा सैन्ट्रल इनफॉरमेशन सेवाएं विधि वेत्ताओं और उनके कर्मचारियों की कई तरह से निम्नलिखित रूप में सहायता कर सकती है :—

अमरीका में यू एस इन्टरनल रेवेन्यू सर्विस मैन्युअल, प्राइवेट लॉटर निर्णयों और तकनीकी ज्ञापनों की प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त करना,

अमरीकी फैडरल रजिस्टर तथा कोड ऑफ फैडरल रेगुलेशन्स की सहायता से नवीनतम यू एस फैडरल लॉज एवं रैगुलेशन्स उपलब्ध कराना;

अमरीकी ब्रितानी एवं फ्रांसीसी रेगुलेशनों, कानूनों और कानूनी अनुदेशों के पूर्ण टैक्स्ट प्रदाय करना;

विद्यमान मुवक्किलों जैसे समरूपी मामलों का पता लगाना; शीघ्रता से यू एस या इंगलिश न्यायालयों में प्रोद्धरित मामलों का पता लगाना;

किसी मामले के तकनीकी पहलू या किसी मामले में अन्तर्ग्रस्त लोगों की पृष्ठभूमि की जानकारी उपलब्ध कराना;

किसी भी विषय पर विशेषज्ञ साक्षियों का पता लगाने में सहायता करना;

दोहरे कराधान संघ पत्र के, जिसमें यूनाइटेड स्टेट्स, यूनाइटेड किंगडम या फ्रांसिसी पक्षकार हैं, पूर्ण टैक्स्ट उपलब्ध कराना;

किसी विशेष न्यायाधीश या किसी वकील द्वारा विचारित मामलों का परिचय प्राप्त करना।

प्रतिधित समस्त निर्णय विधियों के अलावा, विधिक व्यवसाय में सहायता करने हेतु निम्न प्रकाशन सम्मिलित किए गए हैं:—

दी यूरोपियन कोर्ट ऑफ जस्टिस;
रोफर्डम गाइटेशन सर्विस;
इन्टरनेशनल टैक्स एलर्ट;
1875 से यू के टैक्स केसेज;

फेडरल रजिस्टर;
ब्रितानी और अमरीकी अप्रकाशित मामले;
जर्नल आफीशियल डेस कम्यूनिट्स यूरोपियन्स;
अमरीकी फेडरल रिजर्व बुलेटिन;
आल इंग्लैंड लॉ रिपोर्ट्स;
नेशनल लेबर रिलेशन्स बोर्ड रिपोर्ट्स;
दी एक्सपर्ट एण्ड दी लॉ;
आटो साइट;
अमेरिकन बार एसोसिएशन लाइब्रेरी एण्ड मैम्बर फाइल;
फोरेन्सिक सर्विस डाइरेक्टरी;
सोसायटी ऑफ मैरीटाइम आर्बिटर्स अवार्ड डिसीजन;
लीगल टाइम्स;

यूनिवर्सिटी लॉ रिव्यू (जिनमें हारवर्ड, येल, कोलम्बिया, शिकागो विश्वविद्यालय, पैनसिल्वानिया विश्वविद्यालय, वर्जिनिया विश्वविद्यालय सम्मिलित हैं।)

पब्लिकेशन ऑफ मैथ्यू बोण्डर, इन्क (जिनमें निम्मर ऑन कापीराइट्स, मॉडर्न यू सी सी लिटिगेशन फार्मस, टैक्स प्लानिंग फॉर कॉरपोरेशन्स एण्ड शेयर होल्डर्स एण्ड टेल्यूसेन ऑन इन्टरनेशनल इन्सोलवैन्सी एण्ड बैंकरप्टसी सम्मिलित हैं)

आपकी मेज या कार्य के केन्द्र पर कम्प्यूटर टर्मिनल ऐसी प्रचुर जानकारी दे सकता है, जिसके उपलब्ध होने का आपको पहले अनुमान न हो। ऐसी जानकारी जो अच्छे निर्णय देने में आपकी सहायता कर सकती है, जिसके न्यायिक संसार के संबध में आप ज्यादा सीखते है और आपके व्यवसाय में जो कुछ हो रहा है उसकी पूर्ण जानकारी आपको मिलती है। विश्व के सर्वाधिक प्रतिष्ठित समाचार-पत्रों से लेकर विस्तृत तकनीकी न्यूज लेटर्स तक से आप जो भी जानकारी चाहते है वह मीड डाटा सैन्ट्रल इन्फोरमेशन सर्विस के माध्यम से आपकी उंगलियों पर होती है। ज्ञान और विशेषज्ञीय जानकारी का संसार आपके सम्मुख होता है। "लैक्सिस" विश्व की सबसे बड़ी विधिक अनुसंधान सेवा है जिसमें लगभग 30 लाख मामले व अन्य दस्तावेज है जिन्हें शीघ्रता से लगातार अद्यतन रखा जाता है। (कुछ मामले तो ऐसे होते हैं जो निर्णय होने के 48 घण्टे के भीतर इसमें शामिल कर लिए जाते है) इसमे अमेरीकी, ब्रितानी, फ्रांसिसी कानून संहिताएं एवं विनियम, ब्रिटेन के कानून और कानूनी दस्तावेज, फ्रांसिसी विधि एव विनियम, यूरोपियन कोर्ट ऑफ जस्टिस के प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनो प्रकार के मामले, कर प्रतिभूतियां, ऊर्जा, श्रम, दिवालियापन, व्यापार, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विनियम, समुद्री कानून के निर्णय, संचार, सनद, कापीराइट और ट्रेडमार्क विषयों पर विशेष पुस्तकालय तथा प्रतिस्पर्द्धा से सम्बन्धित यूरोपियन समुदाय के आयोग के निर्णय आदि इसमें शामिल हैं।

यदि आपके पास भारतीय कराधान विधि के निर्णयों से सम्पूर्ण जानकारी वाला "लैक्सिस टर्मिनल" हो तो इस बात को जानने में आपको केवल कुछ मिनट ही लगेंगे कि पुनर्निर्धारण के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय में इण्डियन एण्ड ईस्टर्न न्यूज पेपर्स सोसाइटी बनाम सी. आई. टी , 119 आई. टी. आर. 996 में, कल्याणजी भावजी एण्ड कम्पनी बनाम सी. आई. टी. 102 आई. टी. आर. 287 और. आई. टी. ओ. बनाम कस्तूर भाई लाल भाई, 109 आई. टी. आर. 537 को अनुमोदित कर दिया है। यदि आप सट्टों के सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय के नवीनतम दृष्टिकोण का पता लगाना चाहते हैं तो चाक्षुप प्रदर्शन इकाई आपको बताएगी कि आपको रघुनाथ प्रसाद पोद्दार बनाम आयकर आयुक्त, 90 आई टी आर 140 का निर्देश नही करना है वरन् दावेन पोर्ट एण्ड कम्पनी बनाम सी. आई टी. 100 आई. टी. आर. 715 का निर्देश करना है। इलेक्ट्रोनिक्स केन्द्र तुरन्त ही इस बात की ओर संकेत करेगा कि "न्यासो" के लिए कर विधि से संबधित विधि व्यवसायी को अपर सी. आई. टी. बनाम सूरत आर्ट सिल्क मेन्यूफैक्चरर्स ऐसोसियेशन 121 आई. टी आर. का निर्देश करना चाहिए क्योंकि इण्डियन चैम्बर ऑफ कामर्स बनाम आयकर आयुक्त, 101 आई. टी. आर. 796 का विनिश्चय अब मान्य विधि नही रही है। समस्त नवीनतम सदर्भों के लिए वकील या न्यायाधीश को निर्णय-सारों और सदभों को तलाश करने मे रात काली नही करनी पड़ेगी। कराधान विधियों, नियमों, अधिसूचनाओं, अधिकरणों के विनिश्चयों मे से सभी को उनके किए जाने या बनाए जाने के 48 घण्टे के भीतर-भीतर जाना जा सकता है।

अभी कुछ समय पहले मैं एक अभिकथित आंतकवादी श्री "एस" की एक बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका की सुनवाई राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन उनके कारावास दिए जाने के विरुद्ध कर रहा था। जिनमें पूर्ण बिन्दुओं पर बहस की गई। उनमे से एक का सम्बन्ध किसी ऐसे व्यक्ति को भारत के सविधान के अनुच्छेद 226 के उपचार का हकदार नही मानने से या जिसने भारत की अखंडता और संप्रभुता को बनाए रखने के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 के अधीन के मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण "खालीस्तान" की मांग से हुआ है। भरसक प्रयास के बावजूद राजस्थान के विद्वान अधिवक्ताओं ने न तो अन्य संविधानों के अधीन के मौलिक कर्तव्यो के तत्समान प्रावधान दिखाए, न विश्व के किसी न्यायालय के किसी ऐसे विनिश्चय को दिखाया जिसमे मौलिक अधिकारों की बात करते समय संविधान मे मौलिक कर्तव्यों के पालन करने की आवश्यकता पर बल दिया गया हो।

यदि इटलीय पद्धति के या लैक्सिस या नैक्सिस पद्धति के कम्प्यूटर चाक्षुप प्रदर्शन इकाई टर्मिनल होते तो यह पता लगाने के लिए कुछेक सैकण्ड ही लगते कि अन्य देशों के संविधान के तत्समान प्रावधान क्या हैं। इसी तरह, अन्य देशों के उच्चतम न्यायालयो के नवीनतम विनिश्चयो की ओर संकेत करने के एक मामूली से

निर्देश के उत्तर में कम्प्यूटर ने निर्णयों के उन अंशों को प्रदर्शित कर दिया होता जिनमें राज्य की अखण्डता और प्रभुत्व सम्पन्नता को बनाए रखने से संबंधित मौलिक कर्तव्यों पर बल दिया दया हो।

इसी तरह, जब यह प्रश्न आता कि क्या नागरिक की स्वतन्त्रता राष्ट्रीय सुरक्षा से अधिक महत्त्वपूर्ण है, कम्प्यूटर ने तुरन्त ही इस बिन्दु पर सभी उपलब्ध नवीनतम मामले प्रदर्शित कर दिए होते।

जहां तक राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन के सलाहकार बोर्ड को अभ्यावेदनों के भेजे जाने मे लगने वाले समय पर जोर देने का संबध है, कम्प्यूटर तुरन्त ही वे विभिन्न विनिश्चय दिखा देगा जिन्हें दिखाने मे संबंधित पक्षकारों को आठ दस घण्टे लग गये थे। कम्प्यूटरो पर ए.के. गोपालन[1] से लेकर ए.के. रे[2] तक के निवारक निरोध से संबंधित समस्त सिद्धांतों को और अकाली नेता तलवंडी के मामले में उच्चतम न्यायालय के नवीनतम निर्णयो[3] तक को कुछेक मिनट के भीतर ही दिखा दिया होता।

नजरबन्दी के आधार और साक्ष्य के बीच मे इसने जो सुभिन्नता दिखाई है उसे, और इस बात को कि क्या किसी नजरबन्द व्यक्ति के भाषण से संबंधित पुलिस आसूचना रिपोर्ट को, अभ्यावेदन करने के लिए उसे दिखाया जाना चाहिए या नहीं, चाक्षुष प्रदर्शन इकाई के द्वारा ए. के. गोपालन से लेकर तलवंडी तक के संबंध मे कुछेक मिनटों में ही दिखा दिया गया होता, जिसमें अगले पांच सात घण्टे लग गए थे।

इसी तरह, जब हम संविधान के अनुच्छेद 368 के अधीन संविधान को संशोधित करने की संसद की शक्तियों पर और संविधान के मूलभूत ढाचे के भीतर बने रहने की उसकी तथा-कथित सीमा पर विचार-विमर्श करते हैं तब अनेक दिनो और हफ्तों को, पूर्व-निर्णयो को खोजने मे गंवाने के स्थान पर हमे कम्प्यूटरीकृत चाक्षुष प्रदर्शन इकाई के द्वारा यह बता दिया गया होता कि किस तरह सज्जनसिंह[4] के पूर्व दिए गए निर्णय को गोलकनाथ[5] के मामले मे बदल दिया गया और किस तरह केशवानन्द भारती[6] के मामले में उठाए गए मूलभूत ढाचे के सिद्धांत को मिनर्वा

---

1. ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य/ए. आई. आर./1950 एस. सी. पृष्ठ 27।
2. ए. के. राय बनाम भारत संघ/1982 (1) एस. सी. सी. 271।
3. पंजाब राज्य बनाम जगदेवसिंह तलवंडी/ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 444।
4. सज्जनसिंह बनाम राजस्थान राज्य, ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1845।
5. गोलकनाथ बनाम पजाब राज्य, ए आई. आर. 1967, एस. सी. 1643।
6. केशवानन्द भारती का मामला 1973 (4) एस. सी. सी. 225।

मिल्स[1] के मामले में बनाए रखा गया और बहुमत और अल्पमत का दृष्टिकोण क्या था।

यहां एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि भारत के संविधान की आधारभूत विशेषताएं क्या हैं ? अब हर कोई यह चाहेगा कि वह इन आधारभूत विशेषताओं का सूचीपत्र तैयार करने के लिए केशवानन्द भारती[2] के सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध का और इन्दिरा, नेहरू, गांधी बनाम राजनारायण ए.डी.एम. जबलपुर बनाम शिवकान्त शुक्ला, राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ, मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ, भीमसिंह बनाम भारत संघ, वामनराम बनाम भारत संघ में दिए गए निर्णयों का अध्ययन करे और फिर बहुमत और अल्पमत निर्णयों का और अलग-अलग न्यायाधीशों के परस्पर एक जैसे निर्णयों का अध्ययन करे।

ऐसा करने का अर्थ है कि लगभग 3000 पृष्ठों का अध्ययन और उसके बाद सार संग्रह और संक्षिप्त वर्गीकरण तैयार करने के लिए किया जाने वाला विश्लेषण किसी भी न्यायशास्त्री का अधिक नहीं तो कम से कम एक सप्ताह लेगा और विधि के विद्यार्थियों और अनुसंधान छात्रों को कुछेक महीने लग जाएं गे। तथापि, यदि आपकी डेस्क पर कोई कम्प्यूटर टर्मिनल रखा हो तो आप कुछ ही क्षणों में उत्तर प्राप्त कर सकते हैं। और तो और, आधे घण्टे के भीतर ही आप सुसंगत उद्धरणों की मुद्रित प्रतिलिपियां प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, जैसे ही आप न्यायाधीशवार और अलग-अलग मामलों में "आधारभूत विशेषताएं" नामक सूचीपत्र से पूछेंगे वैसे ही केशवानन्द भारती[2] के निर्णय में निम्नलिखित से उत्तर मिल जाएगा—

1. गणतन्त्रात्मक और प्रजातन्त्रात्मक स्वरूप की सरकार (मुख्य न्यायाधीश सीकरी, न्यायाधीश शैलट, ग्रोवर और जगमोहन रेड्डी के अनुसार)।
2. विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के मध्य शक्तियों का पृथक्करण (उपर्युक्त के अनुसार)।
3. देश की सम्प्रभुता (न्यायाधीश शैलट, ग्रोवर, हेगडे और मुखर्जी के अनुसार)।
4. भाग 3 में अन्तर्विष्ट लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए जनादेश।
5. संविधान का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप (मुख्य न्यायाधीश सीकरी, न्यायाधीश शैलट, ग्रोवर और खन्ना के अनुसार)।
6. संविधान की सर्वोच्चता (मुख्य न्यायाधीश सीकरी, न्यायाधीश शैलट और ग्रोवर के अनुसार)।
7. संविधान का संघीय स्वरूप (उपर्युक्तानुसार)।

---

1. मैसर्स मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 1789।
2. केशवानन्द भारती बनाम भारत सरकार 1973 (4) एस. सी. सी. 225।

8. सरकार का प्रजातन्त्रात्मक रूप (न्यायाधीश हेगड़े, मुखर्जी और खन्ना के अनुसार)।
9. नागरिकों के लिए सुनिश्चित वैयक्तिक स्वतन्त्रताओं की अनिवार्य विशेषताएं (मुख्य न्यायाधीश सीकरी, न्यायाधीश हेगडे और मुखर्जी के अनुसार)।
10. व्यक्तियों की महत्ता (मुख्य न्यायाधीश सीकरी, न्यायाधीश शैलट और ग्रोवर के अनुसार)।
11. राष्ट्र की एकता और अखण्डता (न्यायाधीश शैलट और ग्रोवर के अनुसार)।
12. प्रभुत्व सम्पन्न प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य (न्यायाधीश जगमोहन रेड्डी के अनुसार)।
13. देश की एकता (न्यायाधीश हेगडे और मुखर्जी के अनुसार)।
14. सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय (उपर्युक्तानुसार)।
15. विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, निष्ठा और पूजा की स्वतन्त्रता (उपर्युक्तानुसार)।
16. प्रतिष्ठा और अवसर की समता (उपर्युक्तानुसार)।
17. संसदीय प्रजातन्त्र (उपर्युक्तानुसार)।
18. सीमित न्यायिक पुनरावलोकन (न्यायाधीश खन्ना के अनुसार)।

केशवानन्द की परवर्ती आधारभूत विशेषताओं का सूचीपत्र

1. प्रजातन्त्र[1]।
2. प्रभुत्व सम्पन्न प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य[2]।
3. प्रतिष्ठा और अवसर की समता[2]।
4. धर्म निरपेक्षता[2]
5. नागरिक का धार्मिक पूजा का अधिकार[2]।
6. विधि शासन[2]।

---

1. श्रीमती इन्दिरा, नेहरू, गांधी बनाम राजनारायण, ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 2299; न्यायाधीश खन्ना (पैरा 213), न्यायाधीश मैथ्यु ने इसे संविधान द्वारा स्थापित प्रजातन्त्र नाम दिया है। (पैरा 329), राजस्थान राज्य बनाम भारत का संघ, ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 1361; न्यायाधीश बेग ने इसे अनुच्छेद 356 के उपयोग के लिए प्रजातन्त्र को आधारभूत कसौटी कहा है (पैरा 41)।
2. श्रीमती इन्दिरा नेहरू गांधी बनाम राजनारायण, ए. आई. आर. 1981 एस. सी., 234, न्यायाधीश सेन (पैरा 82), एस. पी. गुप्ता बनाम भारत का राष्ट्रपति, ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 149, न्यायाधीश भगवती (पैरा 26) केवल "विधि का शासन" के लिए।

7. अनुच्छेद 359 (1) आपातकाल के दौरान मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए न्यायालय को समावेदन करने के अधिकार का निलम्बन–44वें संशोधन द्वारा अंशतः संशोधित[1]।
8. आपात उपबन्ध[2]।
9. नीति निदेशक सिद्धान्त[3]।
10. संविधान की सर्वोच्चता[4]।
11. मूल अधिकारों और नीति निर्देशक सिद्धांतों के बीच सामन्जस्य और संतुलन[5]।
12. संसद की सीमित संशोधन शक्ति[6]।
13. न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति[7]।
14. सम न्याय[8]।
15. लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए सामाजिक और आर्थिक न्याय की अवधारणा[9]।
16. अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 31 (जिसे बाद में 44वें संशोधन द्वारा लोपित कर दिया गया)[10]।
17. न्यायपालिका की स्वतन्त्रता[11]।

---

1. ए. डी. एम. जबलपुर बनाम शिवकान्त शुक्ल, ए. आई. आर. 1976 एस. सी. 120, मुख्य न्यायाधीश चन्द्रचूड़ (पैरा 438)।
2. उपर्युक्तानुसार, न्यायाधीश बेग (पैरा 383)।
3. राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ, ए. आई. आर 1977 एस. सी. 1362 (न्यायाधीश बेग) (पैरा 42)।
4. उपर्युक्तानुसार (पैरा 44)।
5. मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 1789. मुख्य न्यायाधीश चन्द्रचूड, न्यायाधीश गुप्ता, कटवालिया और कैलाशम् (पैरा 61)।
6. उपर्युक्तानुसार (पैरा 22) न्यायाधीश भगवती (पैरा 91)।
7. उपर्युक्तानुसार न्यायाधीश भगवती (पैरा 91)।
8. कमलराव बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 271, मुख्य न्यायाधीश चन्द्रचूड़, न्यायाधीश कृष्ण अय्यर, न्यायाधीश तुलजापुरकर (पैरा 29)।
9. भीमसिंह बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 234, न्यायाधीश सेन (पैरा 82) न्यायाधीश कृष्णा अय्यर ने इसे भाग IV कहा है जो हमारे संवैधानिक अनुशासन के लिए सामाजिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना करना चाहता है।
10. भीमसिंह बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 234, न्यायाधीश तुलजापुरकर (पैरा 49)।
11. एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 149 न्यायाधीश भगवती ने इसे एक श्रेष्ठ अवधारणा बताया है (पैरा 26)।

यहाँ पर इस बात का उल्लेख कर देना महत्वपूर्ण है कि हमारे द्वारा सुनी जाने वाली बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका जिसमें लगभग 50 घण्टे लगे, 5 घण्टे में पूरी कर ली जाती यदि हमारे पास सन्दर्भ के लिए अपनी डेस्क पर लैक्सिस कम्प्यूटरीकरण का टर्मिनल होता। इसी प्रकार निर्णय का डिक्टेशन जिसमें लगभग 8 घण्टे लगे और उसका टंकण जिसमें लगभग 7 कार्यदिवस समाप्त हुए, कुल मिलाकर 6–8 घण्टे में समाप्त हो जाता, यदि हमारे पास स्वचालित इलेक्ट्रोनिक टंकण यंत्र वाले डिक्टोफोन होते।

संविधान के 52 संशोधनों को चाक्षुष प्रदर्शन इकाई कम्प्यूटर की सहायता से कुछेक मिनटों में ही जाना जा सकता है किन्तु यदि किसी को पुस्तकालय से अन्यथा ढूंढना पड़ता तो इसे ढूंढने में कम से कम 8–10 घण्टे लग जाते। विधियों के सभी संशोधनों, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों और कराधान के केन्द्रीय राजस्व बोर्ड और उत्पाद प्राधिकरणों आदि के विनिश्चयों को चाक्षुष प्रदर्शन इकाई कम्प्यूटरीकरणों से कुछ ही मिनटों में जाना जा सकता है। कालक्रम के अनुसार, प्रत्येक नवीनतम निर्णय को भी चुम्बकीय टेप पर विश्व के दूरातीदूर भागों से 48 घण्टे के भीतर टेप किया जा सकता है, चाहे वे अमेरिका का उच्चतम न्यायालय हो या प्रीवी काउन्सिल या सोवियत रूस की सुप्रीम सोवियत। यह हमारे लिए "अल्लादीन का चिराग और जादू" जैसी बात है। मैंने रोम में उच्चतम न्यायालय इलेक्ट्रोनिक्स केन्द्र में और फिर लन्दन, न्यूयार्क में इसका विस्तृत अध्ययन किया है जहां पर लेक्सिस मप्लाई डेटा है और मैंने उसे वास्तविकता पाया है।

हमारी सभी पत्र-पत्रिकायें, चाहे वे सरकारी इण्डियन लॉ रिपोर्ट हों या ऑल इण्डिया रिपोर्टर (नागपुर) या श्रम विधि, कराधान विधि, उत्पाद विधि, समुद्र सीमा-शुल्क और पेटेण्ट और विधियों को संशोधित करने वाली संसदीय कार्यवाहियों को सम्मिलित करते हुए, विधि के विभिन्न क्षेत्रों मे विभिन्न राज्यों के लॉ रिपोर्टर, भारत में कार्यरत चाक्षुष इकाई कम्प्यूटर पर भी अभिलिखित की जा सकती है, बशर्ते कि सरकार निश्चय कर ले।

यदि न्यायालय में डिक्टाफोन का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया जावे तो नवीनतम डिजाइन के इलेक्ट्रोनिक टंकण यंत्रो और सगणकों की सहायता से तीन से चार-गुने तक मामले निपटाए जा सकते हैं।

विस्तृत अध्ययन के आधार पर मैं इस बात से आश्वस्त हूं कि यदि 2 से 4 वर्ष तक सभी स्तरों पर आन्दोलन और अभियान चलाकर इनका प्रयोग प्रारम्भ कर दिया जाये तो बकाया कार्य और विलम्ब की समस्या का काफी हद तक समाधान किया जा सकता है और दक्षता, निर्णयों की शुद्धता, सुनिश्चितता और आधुनिकता और गुणवत्ता को भी सुनिश्चित किया जा सकता है। इससे विधि मंत्रियों को भी और इसी प्रकार विधान मण्डल की कार्यप्रणाली और राज्यो के विभिन्न अन्य अंगो को भी सहायता मिलेगी।

यदि कम्प्यूटर से यह प्रश्न पूछा जाएगा कि भारत व रूस में संविधानों में क्या समानता व असमानता है तो वह तुरन्त उत्तर देगा कि मौलिक कर्तव्य भारतीय संविधान में अनुच्छेद 51ए मे है व रूस के विधान की धारा 61, 62 से 68 तक मे हैं। दोनो राष्ट्रों में समाजवाद का लक्ष्य है। असमानता यह है कि भारत में अब तक मूल अधिकारों पर महत्त्व दिया जाता रहा है परन्तु रूस में मूल कर्तव्यो को प्राथमिकता व महत्त्व दिया गया है।

कम्प्यूटर तुरन्त इसके समर्थन मे बता देगा कि भारत में मौलिक अधिकारों पर केवल सम्पत्ति के लिए हजारों निर्णय सुप्रीम कोर्ट के हुए हैं, जिनमें मोतीलाल, मज्जनसिंह, शंकरी प्रसाद, बेलाबेनर्जी शोलापुर मिल्स, गोलकनाथ, केशवानन्द भारती, मिनर्वा मिल्स, भीमसिंह, आरसी कपूर, माधवराज सिंधिया व वामनराव के निर्णय प्रमुख हैं। इसके विपरीत अब तक मूल कर्तव्यों पर सुप्रीम कोर्ट ने एक भी महत्त्वपूर्ण निर्णय नही दिया है व केवल उच्च न्यायालय राजस्थान ने सूर्यनारायण चौधरी बनाम सरकार, विजय मेहता बनाम सरकार में मूल कर्तव्यों को न्यायपालिका से क्रियान्विति में असमर्थता व्यक्त की है व सिक्किम उच्च न्यायालय में प्रेमप्रकाश अग्रवाल की रिट याचिका में केवल मुख्य न्यायाधीश ने इसके विपरीत निर्णय दिया। कम्प्यूटर यह भी बता सकेगा कि चौधरी व अग्रवाल के निर्णयों में उन्हीं न्यायाधीशों ने विपरीत विचार व्यक्त किए हैं। किसी भी निर्णय के न्यायाधीश का नाम व किसी भी महत्त्वपूर्ण न्यायाधीश के निर्णय, विभिन्न न्यायिक प्रश्नों पर कम्प्यूटर आख झपकते ही बता देगा, जिसे कई महीनो की छानबीन के बावजूद भी विधि का शोधकर्त्ता शायद ही प्राप्त कर सकेगा। अतः न्यायिक जगत में कम्प्यूटर का प्रवेश 21वीं सदी की क्रान्ति होगी।

पश्चिमी जर्मनी मे कम्प्यूटर को विधि एवं न्याय के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के साथ जापान, अमरीका, इटली की तरह उपयोग में लिया है। इसे वहा "ज्यूरिस" कहते हैं, इसमें निर्णय, न्याय प्रणाली व न्यायपालिका का साहित्य, सम्पूर्ण सांख्यिकी आंकडे अधिनियम, नियम आदि प्रस्तुत किए जाते है। अब 1985 से तो उन्होने राजकीय क्षेत्र से, निजी व्यावसायिक क्षेत्र मे "सारबूकेओन" के नाम से प्रचलित किया है। यदि कम्प्यूटर से यह प्रश्न पूछा जावे कि विधि मन्त्री ने सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों की सख्या में वृद्धि के बारे में कब क्या घोषणा की तो तुरन्त उत्तर मिलेगा कि लोकसभा में दिनांक 15/5/85 को श्री अशोक सैन ने घोषणा की कि सुप्रीम कोर्ट मे अब 18 के स्थान पर 30 न्यायाधीश होंगे।

अतः भारत मे यदि राजकीय क्षेत्र मे सम्भव न हो तो निजी औद्योगिक क्षेत्र में भी इसे प्रोत्साहन दिया जाकर प्रारम्भ किया जा सकता है।

शेडोजूरी

अब तो अमरीका में "शेडीजूरी" के प्रयोग का युग आ गया है। यह वैज्ञानिक जूरी न्यायालय में वकीलों के तर्कों मुकदमों के तथ्यों व न्यायाधीश के प्रश्नों को संकलित कर अपने दिमाग से बताएगा कि निर्णय की संभावना न्यायाधीश के मस्तिष्क में कैसे कैसे क्या बन रही है। वकील की बहस का असर, इस शेडोजूरी मे कम्प्यूटराइज होकर दिग्दर्शित होता रहेगा। शेडोजूरी की प्रमाणिकता व सार्थकता इससे भी है कि वकील को अपने तर्कों का परिणाम सामने कम्प्यूटर पर दिखेगा व न्यायाधीश भी साधारणतया जूरी की राय के विरुद्ध जाने में कठिनाई अनुभव करेगा। इसमे पक्षपात व भ्रष्टाचार पर भी रोक लगेगी।

भारतीय परिप्रेक्ष में "कम्प्यूटर" व "शेडो जूरी" की कल्पना अर्थाभाव व न्यायपालिका के लिए प्राथमिकता के अभाव में चन्द्रलोक व तारों की सैर जैसी लगती है परन्तु अन्ततोगत्वा भारतीय वहां भी अब तो पहुंच ही चुका है अतः न्यायपालिका में "बैलगाड़ी ही क्यों हांकी जावे"। यह दु:खद सत्य है कि अभी हम "डिक्टोफोन" "कैलकुलेटर" व इलेक्ट्रिकल टाइप राइटर न्यायपालिका को उपलब्ध नही करा सके है। परन्तु इससे निराश होने की आवश्यकता नही। इन सबकी योजनाएं साथ-साथ भी साकार हो सकती है।

"मीड डेटा सेन्ट्रल" या इतालवी उच्चतम न्यायालय इलेक्ट्रोनिक सेन्टर के पेटर्न पर भारत सरकार के माध्यम से हम स्वय अपना प्रोजेक्ट क्यों नही लगा सकते ? सरकार मीड डेटा सेन्ट्रल इन्टरनेशनल या ऐसी किसी अन्य फर्म से सहयोग लेने पर भी विचार कर सकती है ताकि भारत के सभी कानूनों, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के विनिश्चयों को उसके पुस्तकालय मे सम्मिलित किया जा सके। अब लैक्सिस सेवायें भारत मे भी उपलब्ध हैं। ग्राहक बन जाने पर आप अमेरिका के "मीड डेटा सेन्ट्रल" से टर्मिनल और अन्य आवश्यक उपकरण प्राप्त कर सकते हैं किन्तु जब तक भारत की विधिक जानकारी उसे नहीं दी जाती तब तक वह उतना उपयोगी नही हो सकता। इसलिए मैं उच्चतम न्यायालय और भारत सरकार से निवेदन करना चाहूंगा कि वह इस प्रोजेक्ट के लिए पहल करे।

मैं आशा करता हूं कि विशेषतः 'न्याय और विधि के शीर्षस्थ और न्याय प्रशासन के सभी शुभ चिन्तक रोम के पैटर्न पर दिल्ली में' 'उच्चतम न्यायालय इलैक्ट्रोनिक्स केन्द्र' और 'लैक्सिस/नेक्सिस' जैसी कम्प्यूटरीकरण सेवा या ऐसी ही अन्य उच्च ऐजेन्सी के लिए, सामूहिक रूप से मेरे साथ अपनी आवाज उठायेंगे ताकि हम उस व्यक्ति को शीघ्र सामाजिक न्याय दिलवाने के उद्देश्य को जल्दी ही प्राप्त कर सकें जो पंक्ति में सबसे अन्त मे खड़ा है।

चाक्षुप प्रदर्शन इकाई के लिए कम्प्यूटरीकरण रिकार्डिंग विधि और न्याय की बड़ी मात्रा मे जानकारी रखेगी, उस सारी जानकारी या उसके ग्रन्थों को याद रखेगी और तुरन्त उसका स्मरण करायेगी तथा जब भी एवं जहां भी वादी, वकीलों, विधि का न्याय निर्णयन करने वाले न्यायाधीशों और लोक अदालतों से लेकर विधि मन्त्रालयों तथा विधि आयोग तक के लिए उक्त जानकारी अपेक्षित होगी, तभी वह उसे मुहय्या करेगी।

कम्प्यूटर मनुष्य का तेजी से भागीदार बनता जा रहा है और 'अलादीन का चिराग' साबित होता जा रहा है। इधर मनुष्य ने सोचा और उधर कम्प्यूटर हाजिर, पूरे विनत भाव से और बिना थके, उस सोचे हुए को क्रियान्वित करने के लिए। हमें इस इति विश्वसनीय और निर्भरणीय भागीदार "कम्प्यूटर" से आज ही भागीदारी कर लेनी चाहिये क्योंकि कल इसमें बहुत विलम्ब हो जायेगा और प्रधानमंत्री का पांच वर्ष का पुराने बकाया, मुकदमों को निपटाने का आदेश काल्पनिक रह जायेगा। कम्प्यूटर युग तुम्हारा न्यायपालिका में स्वागत।

भारतीय न्याय प्रणाली

आवश्यकता है सम्पूर्ण कायाकल्प की .

विश्व के जाने-माने दार्शनिक, भारत के शीर्षस्थ न्यायवेत्ता व "सामाजिक न्याय" के मसीहा न्यायाधीश कृष्णा अय्यर ने घोषणा की है कि "जनतन्त्र की तरह न्यायपालिका में भी आत्महत्या करने की प्रवृत्ति गतिमान हो रही है और भारत की न्यायपालिका का विनाश सम्भावित ही नहीं, निकट भविष्य में सुनिश्चित है।" नई दिल्ली में आयोजित 13 मार्च, 82 के अखिल भारतीय अधिवक्ता सम्मेलन में न्यायाधीश एच. आर. खन्ना व न्यायाधीश गुप्ता ने भी महर्षि अय्यर के कथन का समर्थन किया ।

न्यायाधीश खन्ना द्वारा खतरे की घंटी

खन्ना ने कहा "साधारणतया ये संस्थाएं बाहरी बाधाओं से निपटने के लिए पर्याप्त रूप से सशक्त होती है, परन्तु इन संस्थाओं की रक्षा करने वाले व्यक्ति ही जब स्वार्थपरता, व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा या अन्य बातें प्रक्रिया मे सुस्थापित संहिता तथा व्यावहारिक आदर्शों का उल्लंघन कर बैठते है, तब वे संस्थाएं जीर्ण होकर धराशायी होना प्रारम्भ हो जाती है ।"

कृष्णा अय्यर का साइरन व अग्नि-परीक्षा

2 भारत के न्यायिक जगत् के ये चमचमाते सितारे लगभग आधी सदी तक चिन्तन, अनुभव व विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत रहे है तथा इन शीर्षस्थ न्यायाधिपतियों की यह कटु चेतावनी महत्त्वपूर्ण ही नही बल्कि चौंकानेवाली है । "अय्यर" बीसवी सदी के "महर्षि" हैं व उनका कथन राजनीति, समाजशास्त्र, विधि व भारत की *न्याय-प्रणाली के मंथन से प्रकट हुआ है । उनके ही प्रदेश केरल में उनके कथन की* "अग्नि-परीक्षा" न्यायालय की अवमानना व अपमान की याचिका की पैरवी करके भूतपूर्व एडवोकेट जनरल कर रहे है ।

शीर्षांग पत्रकारों व न्यायविधि शास्त्रियों की चेतावनियां

3. ऐसा नही कि अय्यर ऐसा उद्घोष अकेले ही कर रहे हैं क्योंकि इसके पहले भारत के प्रमुख समाचार व विचार-पत्रों में गत पूरे दशक में विभिन्न चेतावनियां दी जाती रही हैं; जो कि वी. एम. सिन्हा[1] के "जुडिशियरी एट दी क्राम रोड्स" में न्यायाधीशों के स्थानान्तरण तथा अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति के

1. दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया, 12 जुलाई 1981 ।

प्रश्न पर मात न्यायाधीशों की विशेष संवैधानिक पीठ के निर्णय को प्रदीप्त कर हैं या जब वे अपने लेख "गवर्नमेन्ट वर्सेज जुडिशियरी" में सरकार और न्यायपालिका के संघर्ष का विवेचन करते हैं, या श्री ए. राघवन जो मनमनीपूर्ण शीर्षक "कांग्रेस (आई) मूव टू आउस्ट चीफ जस्टिस ऑफ इण्डिया"[1] के साथ प्रकट होते हैं "दी गवर्नमेन्ट वर्सेज दी सुप्रीमकोर्ट[2] में श्री अनिल दीवान या जस्टिस श्री पी. एन. भगवती के पत्र का बम के समान विस्फोटक प्रमुख आख्यान[3] या "दी क्वालिटी ऑफ जस्टिस" में श्री चैतन्य कालबाग[4] या मुख्य न्यायाधीश श्री एम. एम. इस्माइल का मतव्य कि "विश्वास पैदा करने के लिऐ राजनीतिविहीन न्यायाधीश आवश्यक है"[5] या श्री राजीव धवन का "जस्टिस ऑन ट्रायल-सुप्रीम-कोर्ट टुडे"[6] पर अन्वेषण प्रबन्ध, जिसमें श्री धवन ने यह राय व्यक्त की है कि "उच्चतम न्यायालय एक मरणासन्न संस्था है", या इसके विरुद्ध श्री नानी ए. पालकीवाला[7] का दृढ़ विश्वास कि "उच्चतम न्यायालय अमर है" में संकलित हैं।

न्यायाधीशों पर एटम बम

4. ये सब न्यायपालिका के असंदिग्ध भविष्य के लिए खतरे की घण्टी बजा चुके है। न्यायपालिका पर बमबारी जारी है, चाहे वह अरुण शौरी द्वारा न्यायाधीशों के सुप्रीम कोर्ट के निर्णय पर लिखे गये अग्रलेख द्वारा हो अथवा "चाचा, न्यायाधीश" के शीर्षक से अन्य पत्रकार द्वारा न्यायपालिका में आरोपित भाई-भतीजावाद की आलोचना द्वारा।

अय्यर पर अतिशयोक्ति का आरोप

5. अय्यर की घोषणा कोई अन्तिम मरणासन्न घोषणा नहीं कही जा सकती, क्योंकि अभिभाषकों, न्यायवेत्ताओं, न्यायाधीशों का एक बहुत बड़ा समुदाय अय्यर की घोषणाओं को अतिशयोक्ति व राजनीति-प्रेरित कहता है।

उदाहरण के लिए :—

"लिंक" का सर्वेक्षण

6. न्यायाधीशों के निर्णय के पश्चात् "लिंक" के संवाददाता द्वारा लिए गये

---

1. ब्लिट्ज, जून 6, 1981, दिल्ली ब्यूरो पृष्ठ 1।
2. सण्डे स्टेण्डर्ड पत्रिका पृष्ठ 1, जून 28, 1981।
3. करण्ट, अप्रैल 13, 1980, पृष्ठ 8।
4. करण्ट, मई 18, 1980, पृष्ठ 6, सर्वोच्च न्यायालय जो न्यायपालिका तथा संविधान को ध्वंस करने के सरकारी प्रयत्नों का केन्द्र बिन्दु रहा है।
5. ऑन लुकर, अगस्त 15, 1980, पृष्ठ 11।
6. दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया, मई 4, 1980 पृ. 2।
7. दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया मई 11, 1980।

रुकावट को दूर करने के लिए सुविधाजनक नमनीय न्यायाधीशों की नियुक्तियां करके एक "मूल्य परिवेष्ठित" न्यायालय अभियन्त्रित किया जाए।

मृदुल द्वारा गर्ग की शंकाओं का खण्डन

9. श्री गर्ग की शंकाओं का निवारण करते हुए विधि मन्त्री के अभिभाषक श्री पी. आर. मृदुल ने यह राय व्यक्ति की है कि ऐसे न्यायाधीशों के निर्णय न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच निकट सम्बन्ध स्थापित करने वाले युग का सूत्रपात हैं। उन्हें प्रसन्नता थी कि दबाव डालनेवाला दल न्यायालयों पर अपना दबदबा नहीं रख सका। श्री मृदुल के अनुसार उच्चतम न्यायालय ने अब जीवन की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक वास्तविकताओं के प्रति जागरुकता प्राप्त करली है।

चिताले द्वारा उज्ज्वल भविष्य में विश्वास

10. डॉ. वाई. एन. चिताले जो एक संवैधानिक विशेषज्ञ एवं न्यायशास्त्री है, श्री गर्ग से भिन्न मत रखते हैं तथा कहते हैं कि वे न तो न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के प्रभाव से ही भयभीत हैं और न न्यायपालिका की भविष्यता के बारे में चिन्तित। यह सदैव स्वतन्त्र एवं सर्वोपरि रही है और रहेगी। उच्चतम न्यायालय के एक अन्य प्रख्यात विधिवेत्ता श्री आर. के. जैन इतने आशावादी नहीं हैं। उन्होंने यह प्रेषित किया कि यद्यपि वे अनुभव करते हैं कि न्यायालय स्वतन्त्र हैं परन्तु वादों में जहां प्रमुख व्यक्तित्व और मुख्य विषय फंसे रहते हैं वहां न्यायालय मध्य की स्थिति का अनुसरण करते हैं जैसा कि विधान सभा भंग करने के वाद[1] में घटित हुआ है।

अय्यर, खन्ना और गुप्ता बनाम मृदुल और शांतिभूषण

11. यह एक कितना रोचक और विचारणीय विषय है कि जहां तीन प्रतिष्ठित न्यायाधीश कृष्णा अय्यर, एच. आर. खन्ना और ए. सी. गुप्ता ने न्यायविदों के समक्ष यह आह्वान किया कि उनके मतानुसार न्यायपालिका अपनी स्वतन्त्रता और प्रतिष्ठा को दाव पर लगाकर "आत्महत्या" कर रही है, उसे विनाश से बचाया जाये, वहां तीन विधि मंत्री श्री शांतिभूषण, गोखले और शिवशंकर ने अपने विश्वास की पुष्टि इस प्रकार की कि न्यायपालिका की स्वतन्त्रता तथा संविधान के प्रति वचन-बद्धता को न्यायाधीशों को कश्मीर से कोचीन तक स्थानान्तरण करके ही बहाल रखा जा सकता है। यद्यपि उपरोक्त वर्णित विषयवस्तु पर वकील व्यवसाय मे से प्रमुख न्यायशास्त्रियों का भिन्न मतावलम्बन है, फिर भी "लिंक" के साक्षात्कार के परिणाम को दृष्टान्त के रूप में लेने पर श्री मृदुल और श्री शांतिभूषण न्यायाधीशों के निर्णयों के अधिमत द्वारा न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को यथावत् रखने के विषय पर विचित्र शय्यासंगी बन गये हैं। यदि

1. 'राजस्थान' राज्य बनाम भारत संघ, 1977 (3) एस. सी. सी., पृष्ठ 592।

पूर्णरूप से विचार किया जाये तो यह विचित्र असंगति है कि पत्रकारों और स्तम्भ-लेखकों ने न्यायाधीशों के वादों के निर्णय को आत्मघाती कह कर इसे भारतीय न्यायपालिका के इतिहास का सबसे कलुषित एवं तिमिराच्छादित अध्याय कहा है।

न्यायाधीशों का पोस्ट-मार्टम : न्यायाधीशों का मूल्यांकन

12. चिन्ता के इस सामूहिक उद्बोधन तथा सचेतनता की घंटी बजाने वाले प्रमुख न्यायशास्त्रियों में सर्वश्री नानी ए. पालकीवाला,[1] सीरवाई,[2] सोली जे. सोराबजी[3] तथा नारीमन,[4] ने सर्वश्री अरुण शौरी,[5] अरुण पुरी,[6] सुमीत मित्रा,[7] ए. जी. नूरानी,[8] ए. राघवन्,[9] अनिल दीवान,[10] कृष्णा महाजन,[11] बी. एम. सिन्हा,[12] आई. के. गुजराल,[13] हिमाद्री ढाढा,[14] केदारनाथ पांडे[15] एम. चलपति राव,[16] राजीव धवन,[17] चैतन्य कालबाग,[18] कुलदीप नय्यर तथा अन्य पत्रकारों का साथ दिया है। इस प्रकार की विस्फोटक प्रकृतिवाली स्थिति में कोई एक पीठासीन न्यायाधीश से इन मतभेदों में प्रवेश करा कर अपनी राय प्रकट करने की आशा नहीं कर सकता। परन्तु यह तथ्य स्वयं यह प्रदर्शित करता है कि समाज के

---

1. आस्पेक्ट्स ऑफ जजेज़ केस, नानी ए. पालकीवाला, दी इण्डियन एक्सप्रेस, फरवरी 3-5-1982।
2. दी जजेज केस एण्ड दी सुप्रीम कोर्ट, इण्डियन एक्सप्रेस, जनवरी 22, 1982।
3. दी जुडीशियरी, दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया, 11-11-1977।
4. इण्डियन एक्सप्रेस, जनवरी, 1982।
5. एज कन्सिस्टेन्सी इज बट ए होली गोब्लिन 24-1-82। जजेज ब्राइब्ड 26-1-1982 फिलप पिलप फिलोप, फ्लिप जनवरी 25, 1982, दी इण्डियन एक्सप्रेस।
6. जुडिशियरी युटन्ड बाई दी एग्जीक्यूटिव, इण्डिया टुडे, जनवरी 15, 1982।
7. सिनिस्टर इम्पलीकेशन्स, इण्डिया टुडे, फरवरी 28, 1982।
8. विल दी कोन्स्टीट्यूशन सरवाइव, इण्डियन एक्सप्रेस, मार्च 4, 1982।
9. कांग्रेस (आई) मूव टू आउस्ट चीफ जस्टिस ऑफ इण्डिया, ब्लिट्ज-जून 6, 1981।
10. दी गवर्नमेन्ट वर्सेज दी सुप्रीम कोर्ट, सण्डे स्टेन्डर्ड जून 28, 1981।
11. कोर्टस इन क्राइसिस, हिन्दुस्तान टाइम्स, रविवार, अगस्त 23, 1981।
12. गवर्नमेन्ट वर्सेज जुडीशियरी, दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया, जुलाई 12, 1981। जुडीशियरी एट क्रास रोड्स, दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया, जनवरी 6, 1981।
13. फ्री सबोर्डिनेट जजेज फ्रॉम एक्जीक्यूटिव डिपेन्डेन्सी, ब्लिट्ज, अगस्त 15, 1981।
14. जजिंग दी जजेज तथा भगवतीज लेटर एक्सप्लोडेड लाइक ए बॉम्ब, करन्ट, अप्रैल 13, 1980।
15. रिकोगनाइज दी जुडिशियरी—लिंक, जनवरी 10, 1982।
16. जस्टिस ऑन ट्रायल—दी सुप्रीम कोर्ट टू डाई—इलस्ट्रेटेड वीकली, मई 4, 1980।
17. लोयल जजेज फॉर सुप्रीम कोर्ट, ऑन लुकर, अगस्त 15, 1980।
18. दी क्वालिटी आफ जस्टिस, ऑन लुकर, 15-8-1980।

भिन्न मतावलम्बी भागों द्वारा प्रकट किये गये विपरीतगामी और विरोधाभासी मतान्तर हमें कम से कम भाषण देने और समाचारपत्रों द्वारा विचार प्रकट करने स्वतन्त्रता देते हैं। हमारे संविधान के अधीन जब तक इसे एक गौरवपूर्ण उच्च स्थान प्राप्त है, तब तक न्यायपालिका के निर्णय भी एक विधिक और तर्कसम्मत अनुसिद्धान्त के रूप में समान रूप से स्वतन्त्र रहेंगे, ऐसा मेरा अडिग विश्वास है।

13. इन विदारक विप्लवकारी परिस्थितियों में आप एक सेवारत न्यायाधीश से यह आशा नहीं कर सकते कि वह अपने आप को विवादों में उलझाने की परवाह न कर स्वतन्त्र विचार-अभिव्यक्ति का साहस कर सके। अतएव मैं यह विषय आप-जैसे विद्वान् आभिजात्य वर्ग के चिंतन-मनन हेतु छोड़ा जाना अधिक उपयुक्त समझूंगा, क्योंकि आप ही का समाज मौखिक एवं लेखन द्वारा विचार-अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की अधिक दुहाई अलापता है। जब तक भावाभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भारतीय संविधान में गौरवशाली उच्चस्थ स्थान पर प्रतिष्ठित है, वैधानिक, तर्क-वितर्क के दायरे में रहकर न्यायपालिका के निर्णय भी उतने ही स्वतंत्र-निर्भीक एवं निष्पक्षता के परिचायक होने चाहिए। मैं अभी इसी अजर अक्षुण्ण विश्वास का हामी हूं।

गोपालन से मेनका गांधी तक

14. भारत की न्यायपालिका की सर्वैधानिक व्याख्याओं के संदर्भ में स्वतन्त्र भारत की न्याय-पालिकाओं के इतिहास का मूल्यांकन भी इसी संदर्भ किया जाना चाहिये। यदि हम एक विहगावलोकन करें तो देखेंगे कि स्वतंत्रता के बाद के प्रथम दशक का सूत्रपात "व्यक्तिगत मानव स्वतन्त्रता" के ए. के. गोपालन[1] के बहुचर्चित निर्णय से हुआ। संविधान के अनु. 21 व 22 का क्रूरतम उपहास वी. के. शुक्ला बनाम अतिरिक्त जिलाधीश जबलपुर[2] से पहुंचा, परन्तु रसातल में गिरे अनु. 21 व 22 को मेनका गांधी[3] के निर्णय ने हिमालय की एवरेस्ट चोटी पर पहुंचा दिया। गोपालन के पश्चात् शंभूनाथ बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य[4] के निर्णय में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का जीर्णोद्धार व उत्थान करने का प्रयास किया गया परन्तु शिवकान्त[5] ने उसे मरणासन्न अवस्था में पहुंचा दिया।

मेनका गांधी के निर्णय में संविधान के अनु. 21 व 22 को अमृत्व मिला उसे फ्रांसिस मूलक[6], ए के राय[7], सुनील बत्रा[8] व हुसैन आरा

1. ए. के गोपालन बनाम मद्रास राज्य ए. आई. आर 1950 एस. सी. पृ 27।
2. अति. जिला दण्डनायक बनाम शिवकान्त शुक्ला ए. आई. आर. 1976 एस. सी. पृ. 1207।
3. श्रीमती मेनका गांधी बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1978, एस. सी. पृ. 597।
4. शम्भुनाथ सरकार बनाम पं. बंगाल ए. आई. आर. 1973 एस. सी. पृ. 1425।
5. अति. जिला दण्डनायक जबलपुर बनाम शिवकान्त शुक्ला ए. आई. आर. 1976 पृ. 1207।
6. फ्रांसिस बनाम संघीय क्षेत्र ए. आई. आर. 1981 एस. सी. पृ. 746।
7. ए. के. राय बनाम भारत राज्य ए. आई. आर. 1982 एस. सी. पृ. 710।
8. सुनील बत्रा बनाम देहली प्रशासन ए. आई. आर. 1978 एस. सी. पृ. 1675।

खातून[1] के निर्णय में अधिक विकसित कर गतिशील बनाया गया व व्यक्तिगत स्वतंत्रता के द्वार खुले। इसमें जेलों में क्रूरता व अमानवीयता को समाप्त करने, बंदियों के भाग्य के निर्णय में देरी व विलम्ब को मिटाने व गरीब अपराधियों पर जमानत की सख्ती के प्रावधानों में परिवर्तन हुआ। मोहम्मद सलीम[2] में अपराधियों को पागल करार देकर लम्बे समय तक रखने पर प्रतिबन्ध लगाया व बीना सेठी[3] व सन्तवीर[4] के प्रकरणों में यही निर्णय दिए गए।

शिवकान्त से लोंगेवाल

परन्तु शिवकांत का भूत तलवंडी व सन्त लोंगेवाल प्रकरण में पुनर्जन्म लेकर फिर प्रकट हुआ। प्रो. बख्शी के मतानुसार सुप्रीम कोर्ट द्वारा हरचन्दसिंह लोंगेवाल की रिट याचिका का निर्णय न करने में जो दुर्बलता व निर्भीकता की कमी प्रदर्शित की है वह क्षमा करने योग्य नहीं। जस्टिस वेंकटारमैया ने जब अकेले मे इतने महत्त्वपूर्ण बड़े प्रश्न पर निर्णय करने में असक्षमता बताई तो प्रो. बख्शी ने इसे "न्यायधिपति के कर्त्तव्य से विमुख होकर त्यागपत्र की संज्ञा दी" व राष्ट्रपति को स्वीकार करने की अपील की।

डा. बख्शी ने तो मुख्य न्यायाधिपति श्री चन्द्रचूड द्वारा अपनाई गई प्रणाली को भी *टालमटोल व असक्षमता की संज्ञा देते हुए व्यंगात्मक शैली में कहा कि—* 'सुप्रीम कोर्ट ने राष्ट्र को इंगित कर दिया है कि जब रणभेरी बजेगी व हिंसा का तांडव होगा तो विधि, कानून व न्यायालय मूक दर्शक व निष्क्रिय चिंतक बन तमाशा देखता रहेगा"। न्यायाधीशों को चुनौती देकर इसका उत्तर देते हुए उन्होने कहा "न्यायाधीश यह न भूलें कि यदि विधि, कानून, व न्यायालय निष्क्रिय होकर केवल मूक दर्शक बन गये तो राष्ट्रीय विवाद सड़कों पर खून की नदियों से ही तय होंगे।"

डा. बख्शी ने मुख्य न्यायाधिपति द्वारा अपना कर्तव्य टालने व संत से यह पूछने पर कि वह कानूनी सहायता चाहता है या नहीं भयंकर आपत्ति प्रकट की है व कहा है—"इसका नतीजा यह होगा कि सरकार निरंकुशता से दमन करेगी व न्यायालय "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" को अक्षुण्ण रखने मे असफल होकर, जनता में सम्मान खो देगी।"[5]

संत लोंगेवाल का प्रकरण सर्वोच्च न्यायालय में लगभग 7 माह तक अनिर्णीत रहा व एक बैंच से दूसरी बैंच में आता जाता रहा। इसी कारण डा. बख्शी

---

1. हुसैन आरा बनाम बिहार राज्य ए. आई. आर. *1979* एस. सी. पृ. *1360*-1377 एवं 1819।
2. मोहम्मद सलीम बनाम उ. प्रदेश राज्य 1982 (2) एस. सी. सी. पृ. 347
3. बीना सेठी बनाम बिहार राज्य 1982 (3) ए. सी. सी. पृ. 583।
4. सन्तवीर बनाम बिहार राज्य 1982 (2) एस. सी. सी. पृ. 131।
5. हेबियस कॉरपस, उपेन्द्र बख्शी पापुलर जूरिस्ट, अॉक्टोबर 1984 पृ. 21।

जैसे जागरूक विधि विशेषज्ञों की भौंए तन गईं। हेबियस कॉरपस को राजस्थान हाईकोर्ट ने शीघ्र निर्णीत कर दिया, तो भी न्यायाधीशों को दुधारी तलवार का शिकार होना पड़ा। प्रशासन ने शीघ्रताशीघ्र अपील द्वारा निर्णय को निरस्त कराने का सफल प्रयास किया, जो वैधानिक ही था। उग्रवादियों ने निश्चित तिथि तक रिहा न करने पर न्यायाधीश को हिट लिस्ट में नं. 1 पर लेकर खून की नदियें जयपुर में बहा हत्या करने का पत्र देकर सनसनीखेज सुर्खियें समाचार पत्रों में देदी। मूल पत्र निम्नलिखित है:—

अजमेर
21-12-84

जनाब मोंठा साहिब

हम आपको पहली व आखिर चितावनी दे रहे हैं कि अगर 24-12-84 सुबह तक सरदार शमशेर सिंह को पूर्ण तरह से आजाद न कीया गया तो [illegible] जगह हमारी लिस्ट में नं. 1 के आपका नाम आ जावेगा। अभी काफी दिना से संघ कीता है। अगर साडी गल न रखी तो वड्डे जयपुर विच खून दी नदीयां बह जावेगी।

सतश्री अकाल जय खालिस्तान
[illegible]
[illegible]

न्यायाधीशों को असुरक्षा व भयावह वातावरण में रखने का प्रयास किया

गया । दोनों ओर की मिजाइल्स के बीच भी न्याय की तुला न झुकने पाये यही न्यायाधीश की निर्भीकता की कसौटी है । तत्पश्चात् लोगेवाल व अन्य उग्रवादी रिहा कर दिये गये, पंजाब समझौता भी हो गया, लोगेवाल की हत्या हो गई, राजस्थान हाईकोर्ट के निर्णय से संबन्धित तथाकथित शमशेर सिंह भी राजस्थान हाईकोर्ट के एक अन्य न्यायाधीश की आज्ञा से जमानत पर रिहा है—परन्तु "न्यायपालिका" की निर्भीकता व स्वतन्त्रता पर इतिहास में कई प्रश्नवाचक चिह्न उभर कर आगये ।

रंजन के निर्णय पर मुख्य मंत्री पदच्युत होने पर भी केरल के न्यायाधीश श्री पोटी को मुख्य न्यायाधिपति बना भारत सरकार ने सिद्ध किया है कि वह न्यायपालिका को स्वतंत्र रखना चाहती है । दिल्ली में श्री राजेन्द्र सच्चर की नियुक्ति भी इसी को इंगित करती हैं ।

शिवकान्त और सन्त प्रकरण में समानता या असमानता प्रो. बख्शी जैसे काबिल विधि विशेषज्ञ ही बता सकते हैं—परन्तु सविधान के अनु. 21-22 की मेनका गांधी की ऊंची चढाई ए. के. रॉय के निर्णय व संत लोगेवाल के 7 माह तक के अनिर्णय से फिर ग्लेशियर के झटके से रसातल में नहीं तो धरातल पर तो आ ही गई—यह कटु सत्य वास्तविकता के इतिहास को नही छुपा सकेगा । वह न्यायपालिका की निर्भीकता पर प्रश्न चिन्ह अवश्य है ।

राष्ट्रीयकरण का न्यायपालिका द्वारा विरोध व प्रथम संशोधन

15. प्रथम दशक में जमीदारी जागीरदारी उन्मूलन कानून व मोटर राष्ट्रीयकरण कानून को अवैध करने मे संविधान का प्रथम संशोधन लाया गया व प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने लोक सभा मे जनहित में इसे पारित करा कर सामाजिक न्याय का पथ प्रशस्त किया । चिन्तामन राव[1], बेला बनर्जी[2], शोलापुर मिल्स[3], सुबोध घोष[4], जो प्रथम दशक के संपत्ति के अधिकार व शोषण के कीर्तिस्तम्भ थे, हर दशक में पुनर्जन्म लेते रहे परन्तु अब 44वें संशोधन से धराशायी होकर भूमिगत हो गये हैं ।

---

1. चिन्तामन राव बनाम मध्य प्रदेश राज्य ए. आई. आर. 1951 एस. सी. पृष्ठ 118 ।
2. प. बंगाल बनाम बेला बनर्जी ए. आई आर. 1954 एस. सी पृष्ठ 170 ।
3. द्वारका दास बनाम शोलापुर मिल्स ए. आई. आर 1954 एस. सी. पृष्ठ 119 ।
4. प. बंगाल राज्य बनाम सुबोध घोष ए. आई. आर. 1954 एस. सी. पृष्ठ 92 ।

हिदायतुल्ला न्यायालय : संपत्ति का संरक्षण

16. हिदायतुल्ला न्यायालय व शाह न्यायालय ने "संपत्ति" के मौलिक अधिकार की रक्षा हेतु प्रीवीपर्स[1] व बैंक नेशनलाइजेशन के आर. सी. कूपर में[2] मृत बेला बनर्जी[3] को पुनर्जीवित कर सामाजिक आर्थिक क्रान्ति के विधेयकों को धड़ाधड़ धराशायी कर दिया, जिसमे विधायिका व न्यायपालिका मे तलवारें खिच गई व खुला युद्ध प्रारम्भ हो गया। ससद पेरिस की सुन्दरियों की रातोंरात फैशन-परिवर्तन के साथ साज-सज्जा बदलने की तीव्र गति से संविधान मे संशोधन करने को बाध्य हुई व विभिन्न सविधान संशोधनो का यही इतिहास है।

सुब्बाराव न्यायालय ने गोलकनाथ[4] में, हिदायतुल्ला ने बैंक राष्ट्रीयकरण[5] मे व शाह न्यायालय ने राजाओं के निजी थैली[6] के निर्णयो में सामाजिक आर्थिक क्रान्ति के कानूनों को धराशायी कर मृत घोषित कर दिया व बेला बनर्जी[7] के निर्णय को जीवित कर सम्पत्ति की रक्षा करने का व समस्त प्रगतिशील कानूनो को अवैध घोषित करने का प्रयास किया, जिससे विधायिका व न्यायपालिका के बीच शीत युद्ध प्रारम्भ हो गया।

गोलकनाथ मे पांच के विरुद्ध छः के बहुमत से यह चुनौती दे डाली कि संविधान के भाग 3 के तहत मूल अधिकारों का संशोधन करना संसद के अधिकार क्षेत्र मे नही है व वर्तमान युग के 68 करोड़ का भाग्य निर्णय श्मसान व कब्रों मे दफनाए गए सन् 50 के पहिले की मृतात्माएं करेंगी।

44वां संशोधन—संपत्ति के मौलिक अधिकार की समाप्ति

17. 44वें संशोधन ने तो "सपत्ति के मौलिक अधिकार" का "विदाई-समारोह" कर ही दिया एवं अब इसे कब्रो में दफना दिया गया है।

द्वितीय दशक—प्राकृतिक न्याय का क्षितिज बढ़ा

18. भारतीय न्यायपालिका का द्वितीय दशक अन्य दृष्टिकोण से (1960–70) प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों को नई, विशाल व विस्तृत दिशा का युग कहा

---

1. माधवराव सिन्धिया बनाम भारत संघ ए. आई. आर, 1971, एस. सी. पृष्ठ. 530।
2. आर सी कूपर बनाम भारत संघ ए. आई. आर. 1970, एस. सी. पृ. 564।
3. प बंगाल राज्य बनाम श्रीमती बेला बनर्जी ए. आई. आर, 1954. एस. सी. पृष्ठ 170।
4. एस. सी. गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य आर. 1967, एस. सी. पृ. 1643।
5. आर. सी. कूपर बनाम भारत संघ ए. आई. आर. 1970. एस. सी. पृ. 564।
6. माधवराव सिन्धिया बनाम भारत संघ ए. आई. आर. 1971 एस. सी. पृष्ठ 530 (71)।
7. प. बंगाल राज्य बनाम श्रीमती बेला बनर्जी ए. आई. आर. 1954 एस. सी. पृष्ठ 170।

जायेगा—रिज बनाम बाल्डविन[1], एनीसमिनिक[2] व पेडफील्ड बनाम मिनिस्टर[3] ने इंगलैण्ड में भी इस क्षेत्र मे नयी दिशा दी व मिडानटम्पेड बनाम वेन रिट[4] ने अमेरिका मे अभियुक्त को बचाव के लिये अभिभाषक के अधिकार से भारत के समकालीन प्रगति की।

जी. पी. नागेश्वर राव[5] में प्राकृतिक न्याय को अर्द्ध न्यायिक कार्यवाही में लागू किया गया। माणक लाल बनाम डा. प्रेमचन्द[6] में भी यही सिद्धान्त अपनाकर पूर्वाग्रह या सम्बन्धित पक्षकार के वकील को न्यायिक निर्णय देने से वंचित किया गया। एरुसियन बनाम प. बगाल सरकार[7] ने बिना सुने ठेकेदार को ठेके लेने के अधिकार से वंचित सूचि में न रखने पर आपत्ति की गई। महेन्द्र सिंह गिल बनाम चुनाव आयोग[8] मे चुनाव रद्द करने के पहले प्रत्याशी को सुनने के लिए चुनाव आयोग को बाध्य किया गया। स्वदेशी कॉटन मिल[9] में बिना सुने मिल को सरकारी नियन्त्रण में लेने पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त का हनन माना गया। एस पी कपूर बनाम जगमोहन[10] में नगर परिषद् को बिना सुने समाप्त कर प्रशासक नियुक्त करने पर प्राकृतिक न्याय के विरुद्ध माना गया। कुमारी चित्रा श्रीवास्तव[11] विद्यार्थी को परीक्षा में उपस्थिति कम होने पर वंचित करने के पहले सुनने का अवसर देना आवश्यक समझा गया। जे मोहपात्रा कम्पनी[12] में पाठ्यक्रम पुस्तक का निर्णय करने की चयन समिति में एक प्रकाशक को रखने पर प्राकृतिक न्याय के विपरीत माना गया।

भगत राजा[13] बख्तावर सिंह[14] टैस्टील लि.,[15] सीमेन्स इंजीनियरिंग[16] व

1. रिज बनाम बाल्डविन, 1964, एस. सी. पृ. 40।
2. एनिमिनिक लि. बनाम विदेशी क्षतिपूर्ति आयोग, 1969, (2) एस. सी. पृ. 148।
3. पेडफील्ड बनाम मिनिस्टर, 1968. एस. सी. पृष्ठ 997।
4. अमेरिका गिडीन ट्रम्पेट बनाम वेनरिट 372, यू. एस. पृ 335।
5. जी पी नागेश्वर राव बनाम आन्ध्र प्रदेश रा. प. निगम, ए. आई. आर. 1959 एस. सी. पृ. 308।
6. माणकलाल बनाम डा. प्रेमचन्द, ए. आई. आर. 1957 सु. कोर्ट पृष्ठ 425।
7. एरुसियन इक्विपमेन्टस बनाम प. बंगाल राज्य, ए. आई. आर. 1975, एस. सी पृ 266।
8. महेन्द्र सिंह गिल बनाम चुनाव आयोग, ए. आई. आर. 1978 एस. सी. पृष्ठ 851।
9. स्वदेशी काटन मिल बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1981, एस. सी. पृष्ठ 818।
10. एस एल कपूर बनाम जगमोहन, ए. आई. आर. 1981, एस. सी. पृष्ठ 136।
11. माध्यमिक एवं इंटरमिजिएट शिक्षा बोर्ड यू पी बनाम कुमारी चित्रा श्रीवास्तव, ए. आई आर. 1970 एस. सी. पृष्ठ 1039।
12. जे मोहपात्रा एण्ड क० बनाम उड़ीसा राज्य, 1984 (4) एस. सी. सी. पृष्ठ 103।
13. भगत राजा बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1967 एस. सी. पृष्ठ 1606।
14. बख्तावर सिंह बनाम पंजाब राज्य ए. आई. आर. 1972 एस. सी. पृष्ठ 2353।
15. टैस्टील लि० बनाम एन. एम. देसाई, ए. आई. आर. 1970 गुजरात पृष्ठ 1
16. सीमेन्स इंजीनियरिंग एवं मैनुफेक्चरिंग क० बनाम भारत संघ ए. आई. आर. 1976 एस. सी. पृष्ठ 1785।

महेन्द्रा[1] में अर्द्ध न्याय अधिकरण को निर्णय लिखित व कारण सहित तर्क देने को प्राकृतिक सिद्धान्तों का भाग बताया गया।

इसी सन्दर्भ में सुप्रीम कोर्ट ने खनिज[2] कानून की निगरानी में कारण देना आवश्यक माना। मोनोपोलीज एक्ट[3] व टेरिफ एक्ट[4] में भी आज्ञाओं को कारण सहित देना सुप्रीम कोर्ट ने निर्णीत किया। भगवती ने मुख्य न्यायाधिपति गुजरात हाई कोर्ट के नाते[5] 1970 मे श्रम अधिकरण के निर्णयों को पूर्ण रूप से कारण व तक सगत होने पर बल दिया।

न्यायाधीशों ने करो व "बिनापानी देव" में नई दिशा दी

कस्तूरी लाल, लक्ष्मी रेड्डी[6] ओमप्रकाश[7] बी.एस. मिन्हास[8] रमना दयाराम[9] गुजरात वित्त निगम[10] में –सुप्रीम कोर्ट में सरकार द्वारा ठेके लाइसेन्स परमिट कोटा में भी नागरिकों को समान अवसर देने व बिना पक्षपात निर्णय करने व अकारण किसी के विरुद्ध व किसी के पक्ष में निर्णय न करने पर बल देकर संविधान के अनु. 14 मे नए क्षितिज व मापदण्ड प्रस्थापित किए। राज्य सरकार व निगम को निर्देश दिया कि वह सरकार के समस्त उन प्रशासनिक कार्यों में भी जहां नागरिकों के आपसी निर्णय होते हैं प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त व समकक्षता, स्वच्छता से कार्य करे।

19 हमने विनापानी देव[11] व करियापक[12] के निर्णयों से व्यक्तिगत सुनवाई की आवश्यकता पर नये कीतिमान स्तम्भ स्थापित किये। प्रतापसिंह कैरो[13] के निर्णय

1. महेन्द्रा एण्ड महेन्द्रा बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1979 एस.सी. पृष्ठ 798
2. भगत राजा बनाम भारत संघ ए. आई. आर. 1967 एस. सी. पृष्ठ 1606।
3. महेन्द्र एवं महेन्द्रा बनाम भारत संघ ए. आई. आर. 1979 एस. सी. पृष्ठ 798।
4. सीमेन्स इंजीनियरिंग एव मैनुफैक्चरिंग क० बनाम भारत संघ ए. आई. आर. 1976 सु. कोर्ट पृष्ठ 1785।
5. टैस्टील लि. बनाम एन. एम. देसाई, ए. आई. आर. 1970 गुजरात पृष्ठ 1
6. मैसर्स किस्तूरीलाल लक्ष्मी रेड्डी बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य, ए. आई. आर. 1980 सु. कोर्ट पृष्ठ 1992।
7. ओमप्रकाश बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य ए. आई. आर, 1981 एस. सी. पृष्ठ 1001।
8. बी. एस. मिन्हास बनाम भारतीय साख्यीकि सस्थान, 1983 (4) एस. सी. सी. पृ. 582।
9. रमना दयाराम सेटी बनाम अन्तर्राष्ट्रीय वायु सेवा अधिकारी ए. आई. आर. 1979 एस. सी. पृष्ठ 1628।
10. गुजरात वित्त निगम बनाम लौटम होटल, 1983 (3) एस. सी. सी. पृष्ठ 379।
11. उड़ीसा राज्य बनाम डा. बिनापानीदेव, ए. आई. आर. 1967 एस. सी. पृष्ठ 1269।
12. ए. के. करियापक बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1970 एस. सी. पष्ठ 150।
13. एस. प्रताप सिंह बनाम पंजाब राज्य, ए. आई. आर. 1964 एस. सी. पृष्ठ 72।

ने सुप्रीम कोर्ट की न्यायप्रणाली में न्याय के क्षितिज को अविस्मरणीय विकास दिया। न्यू माणक चौक[1] व राजा रेड्डी[2] में यह भी घोषित किया गया कि असमान व्यक्तियों में समानता का सिद्धान्त नहीं लागू हो सकता व गरीब, दलित, उत्पीड़ित व असित को संरक्षण देना होगा, परन्तु गोलकनाथ भी इसी दशक की देन थी, जो दुर्भाग्यपूर्ण थी।

गोलकनाथ से लोकसभा परलोकसभा बनी

20. गोलकनाथ[3] ने तो संविधान के मौलिक अधिकारों को संशोधन से परे घोषित कर भारत की लोकसभा व विधानसभाओं को विचित्र गोरख-धन्धे में फंसाकर उन्हें लकवा मार दिया व घोषणा कर दी कि वर्तमान पीढ़ी के भाग्य का निर्णय जीवित समाज के स्थान पर "श्मसानों व कब्रों में दफनायी गई भूतात्माएं व प्रेतात्माएं करेंगी" तथा 33 करोड़ के बैलगाड़ी युग के भाग्य विधाता, 68 करोड़ की समस्याओं को "चाद-सितारों की विजय के वैज्ञानिक तकनीकी" युग में "तांत्रिक विद्या" से सुलझायेंगे। लोकसभा, परलोकसभा बन गई।

'भारती' ने 'गोलकनाथ' की अंत्येष्टि की

21. केशवानन्द भारती[4] वाद ने गोलकनाथ वाद को तो मृत प्रायः कर दिया परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान संशोधन की धारा 368 के हाथी पर "संविधान की आत्मा के आधारभूत सिद्धान्तों पर" संशोधन न कर सकने का महावती अंकुश लगा दिया जिसकी इन्दिरा गांधी बनाम राजनारायण[5], मिनर्वा मिल्स[6], वामन राव[7] व भीमसिंह[8] में भी पुष्टि की गई। यह चन्द्रचूड़ न्यायालय का सीकरी न्यायालय की विरासत को निभाना कहा जायेगा। नीति-निर्देशन सिद्धान्तों को प्राथमिकता या उन्हें मौलिक अधिकारों के सिद्धान्तों की समानता न देना, आज भी सर्वोच्च न्यायिक क्षेत्र का विवाद का विषय है, जिससे स्वयं न्यायपालिका में, "भगवती अय्यर देसाई चिनप्पारेडी ठक्कर विचारधारा" असहमत है।

---

1. न्यू माणक चौक स्पिनिंग मिल बनाम मून, ए. आई. आर. 1967 एस. सी. पृष्ठ 1801।
2. आन्ध्र प्रदेश राज्य बनाम राजा रेड्डी ए. आई. आर. 1967 एस. सी. पृष्ठ 1458।
3. 1967 एस. सी. पृष्ठ 1643।
4. 1973 एस. सी प. 1461।
5. 1975 एस. सी. पृष्ठ 2299,।
6. 1980 एस. सी. प. 1789।
7. 1981 एस. सी. प. 271।
8. 1981 एस. सी. प. 235।

संविधान की मूलभूत आधारशिला का संशोधन नहीं

22. अय्यर ने तो भीमसिंह प्रकरण में यहां तक कहा है ।

(केशवानन्द भारती) "भारती की प्रेतात्मा भूत बनकर, समानता के मौलिक अधिकार की नंगी तलवार लेकर न्यायालय के बरामदों मे घूम रही है, जिसने विधायिका (संसद व विधानसभाओं) के कानून बनाने के अधिकार को मरणासन्न कर दिया है व संसदीय जनतन्त्र को लकवा मार गया है ।"

चन्द्रचूड़ बनाम भगवती विचारधारा

23. अतः वर्तमान सर्वोच्च न्यायपालिका का युद्ध विधायिका से ही हो ऐसा नही है, परन्तु चन्द्रचूड़ विचारधारा की शाखा का सघर्ष भगवती विचारधारा से भी है। कतिपय आलोचक जैसे पत्रकार अरुण शौरी[1] व प्रो. उपेन्द्र बख्शी[2] इत्यादि इसे "व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं" का अथवा राजनीति-प्रेरित न्यायिक दावानल भी कहते हैं। मेरे विचार में इसका निर्णय आनेवालीपीढ़ी ही करेगी, क्योकि वर्तमान तो पूर्वाग्रहों से ग्रसित है। अभी तो यही लगता है कि यह आलोचना अतिशयोक्तिपूर्ण है।

चण्द्रचूड़, अय्यर, भगवती न्यायालय–जनहित प्रकरण

24. जनहित प्रकरणों की "सामाजिक न्यायिक क्रान्ति" का सूत्रपात गजेन्द्र गड़कर युग में हुआ, किन्तु उसकी वर्तमान सदी की चरम सीमा चन्द्रचूड़ न्यायालय ने प्राप्त की है। चूंकि इसका श्रेय अय्यर व भगवती को न देना उनके साथ अन्याय करना होगा, अतः भारतीय न्यायपालिका के इस काल को चन्द्रचूड़, अय्यर, भगवती काल कहा जा सकता है ।

भागलपुर बंदियों के अंधे काण्ड ने नवजागरण किया

25. भागलपुर जेल के बन्दियों की आंखें फोड़ने का क्रूर काण्ड[3] अंग्रेज फिरंगियों के ब्लेक होल की ऐतिहासिक दुर्घटना की तरह उभर कर सामने लाकर पुलिस के दर्जनों जघन्य अपराधियों को जेल व चालान करवाना, धौलपुर की कमला[4] को तन बेचने व शरीर के व्यापार मे दर-दर बेचकर वेश्यावृत्ति कराके, भारतीय नारियो को सीता-सावित्री से गिराकर चौराहे पर नीलाम करने के व्यभिचारी व्यापार का भंडाफोड़, दिल्ली व आगरा के नारी-निकेतनों में भी भारतीय बालाओं का "यौन शोषण,[5]" बिहार की जेलों मे 10–10 वर्ष बिना मुकदमे चलाये पड़े हजारो कैदियों

---

1. इण्डियन एक्सप्रेस 24, 25, 26 जनवरी 1982—जजेज आइबुड—अरुण शौरी ।
2. सुप्रीम कोर्ट आन पॉलिटिक्स-प्रोफेसर उपेन्द्र बख्शी ।
3. खत्री बनाम बिहार सरकार 1981 एस, सी. 928 ।
4. कर कपूर, अरुण मौर बनाम मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, दिल्ली सरकार रिट नम्बर 2229 । 1981, जुलाई 30, 1981 को सुप्रीम कोर्ट में प्रस्तुत 1981 (4) एस सी सी., जनरल सेक्शन ।

प्रोफेसर उपेन्द्र बख्शी बनाम उत्तरप्रदेश सरकार 1981 (3) स्केल 1136 ।

की रिहाई[1] बम्बई के कालबा देवी से लेकर नरीमेन पाइन्ट व चौपाटी के फुटपाथों पर लाखो छप्पर-विहीन गरीब, नर कंकालो व दलित, त्रमित स्लमों में नारकीय जीवन व्यतीत करनेवाले लाखों फुटपाथियों के निराश्रित न करने के ऐतिहासिक स्थगन आदेश[2] वर्तमान "नवजागरण" के कीर्तिस्तम्भ हैं।

जहांगीर की घण्टी बजी

26. सामाजिक न्याय का यह स्वर्णिम अध्याय एक बार फिर विक्रमादित्य के न्यायिक सिंहासन व जहांगीर के इन्साफ के घण्टे की याद को ताजा करता है। लगता है जैसे दिल्ली के सर्वोच्च न्यायालय ने "जनहित की फरियादो" की पक्षकार पद्धति को तिलांजली दे व कानून व न्याय-पद्धति की लालफीताशाही को ताक में रख गरीब से गरीब, दलित, उत्पीड़ित व छोटे भारतीय को तुरन्त, अविलम्ब, सस्ता, सुलभ न्याय देने का बिगुल बजा दिया है। यह हमारी न्याय-व्यवस्था द्वारा तेनसिंग की तरह हिमालय शिखर के एवरेस्ट की विजय है जो उल्लेखनीय व श्लाघनीय हे तथा हमें इस पर गौरव है। न्यायाधीशों के निर्णयों[3] में भी "लोकस स्टेण्डी" का विकास काले बादलों में विद्युत प्रकाश के समान है।

प्रशासनिक अन्याय के विरुद्ध न्यायपालिका की तलवार के नये आयाम

27. प्रशासनिक आक्रमणों त अन्याय के विरुद्ध न्यायालय के द्वार अब पूरे खुल चुके हैं क्योंकि "राज्य" धारा 12 की परिभाषा में आयोग व सरकारी कम्पनियां आदि भी आ चुकी हैं। रमना रेड्डी बनाम इन्टरनेशनल एयरपोर्ट[4] व मोतीलाल पद्मपन्त[5] व कस्तूरी लाल' के निर्णयों ने नागरिको की सुरक्षा के नये आयाम स्थापित किये हैं। सरकारी तंत्र द्वारा मनमानी, पक्षपात व अन्याय करने पर जहागीर के घण्टे बजाने की अनुमति अब गरीब से गरीब व दलित को भी दे दी गई है, अब कभी-कभी फुटपाथिये व भिखमंगे भी जंजीर खीचने लगे है, यद्यपि वह जंजीर खर्चे के अनुसार सोने की है व न्याय महंगा है व विलम्बनकारी है।

नेहरू की चेतावनी

28. चिरकाल पहले श्री नेहरू ने खेद व्यक्त किया था तथा न्यायिक मशीन को, जो उनके मतानुसार जंग खा चुकी है तथा अतिभार से दबी हुई है, गति प्रदान करने के लिये सच्चे प्रयास करने की दलील प्रस्तुत की थी।[7] श्री राजीव ने 16 वर्ष पश्चात् यही चेतावनी दी है।[8] अतः न्याय प्रणाली में सम्पूर्ण कायाकल्प की आवश्यकता है।

---

1. हुसैन आरा 1980, एस. सी. सी. 81, 91, 93, 98, 108, 115।
2. पब्लिक इन्टरेस्ट लिटिगेशन, 1982, बार कौंसिल जनरल वोल्यूम (9), पृष्ठ 150– एन. आर. माधव मेनन।
3. 1982 एम. सी. पृष्ठ 149 एस. पी. गुप्ता बनाम भारत सरकार।
4. 1979 एस. सी, पृष्ठ 1628।
5. 1979 एस. सी., पृष्ठ 621।
6. 1980 4–एस. सी. सी., 1।
7. टाइम्स ऑफ इण्डिया, मार्च 11, 1969 पृष्ठ 6।
8. इण्डियन एक्सप्रेस मार्च 19, 1985, बार कौंसिल समारोह।

मनु से मैकाले

आदिकाल से सामाजिक न्याय की खोज

न्याय सस्ता हो

1. गरीबों को सस्ता न्याय दिलाने की आवश्यकता को भारत के भूतपूर्व एटार्नी जनरल एम. सी. सीतलवाड़ ने बल दिया। उन्होंने कहा:—

"कोई भी सच्ची स्वाधीनता बिना किसी न्याय प्रशासन की ऐसी व्यवस्था के नहीं टिक सकती, जिसमें गरीब तबके के लोग लाभ उठाने में समर्थ न हों, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि उसमें साधारणतम नागरिक को स्वतन्त्र न्याय प्रणाली में कम से कम उसका अस्तित्व तो उपलब्ध होना ही चाहिये।"

नेहरू व शीतलवाड़ के विचारों के अनुरूप ही लाइमैन अबोट द्वारा सोने की कुंजी का विरोध

2. लाइमैन अबोट ने यह चेतावनी दी कि जब न्यायालय कक्ष के द्वार केवल एक सोने की कुंजी से ही खुलेंगे तब क्रान्ति के बीज बोये जायेंगे और उसके बाद होनेवाली क्रान्ति में वे प्रायः न्याय प्राप्त करने योग्य होंगे।

चिरकाल से सस्ते न्याय की खोज

3. मानव चिरकाल से सस्ते व सामाजिक न्याय की पुकार करता आया है। बैरिस्टर गोविन्द दास[1] के मत के अनुसार मानव जाति के इतिहास में न्याय की परिभाषा की खोज ईश्वर के अर्थ की खोज के साथ एक प्रामाणिक अनुरूपता रखती है। दोनों ही यथार्थता एवं निश्चितता से वंचित हैं। इनकी अन्तर्वस्तु का अभाव किया जा सकता है, परन्तु बाह्य रेखा को परिभाषित करना दुष्कर है तथा मंथर गतिवाले जलयान समुद्री यात्रा के लिए अब अत्यन्त सुविधाजनक नहीं हैं। एलिस या यूलिसस की भांति कोई भी भटक सकता है, परन्तु उसे अन्त में अपने आपको आइन्स्टीन से सन्तुष्ट होना पड़ता है कि अन्ततोगत्वा ईश्वर और न्याय कूट-तार्किक अवश्य हैं परन्तु दुर्भावनापूर्ण नहीं। यह आश्चर्य नहीं है कि पंडित और पुजारी मौलिक विधि-वेत्ता थे तथा मूसा और मनु मौलिक विधायक थे। अगस्त कॉम्टे ने मानवीय विचारशीलता के विकास में इसे धर्मशास्त्र के प्रथम चरण के रूप में उचित ठहराया है, जिसमें इसे अलौकिक कारणों और दैवीय शक्तियों के निर्देश से समझाया गया है।

4. जब से यूनानवासियों ने प्रयत्न शुरु किये, (निषेच का कहना है कि जब हम यूनानवासियों के बारे में बोलते हैं तो हम वर्तमान और अतीत की बात करते हैं) न्याय, नैतिकता और सत्य का अर्थ समझाने के लिए अथक प्रयास किये गये हैं। परन्तु व्यग्रताजनक साराश बेकन की उस सूक्ष्मतम टिप्पणी में है जिसमें बेकन ने "सत्य" पर अपने लेख का, विदूषक पाइलेट ने किसी उत्तर की प्रतीक्षा नहीं करते हुए यह पूछा कि "सत्य क्या है ?" के साथ प्रारम्भ किया है। जो कुछ सत्य पर लागू होता है उसका न्याय से भी भलीभांति सम्बन्ध है।

---

1. जस्टिस इन इन्डिया—गोविन्द दास, पृष्ठ 6।

5. कठिनाई का अधिमूल्यन न्याय के प्रचलित सिद्धांतों की एक सरलगणना अर्थात् इस प्रश्न के उत्तर द्वारा किया जा सकेगा कि""जिन लोगों के आचरण को विधि शासित करती है उनके लिए इसे क्या करना चाहिए ? पाउण्ड उन्हें अध्यात्मवादी, सामाजिक उपयोगितावादी, नवकाण्टवादी, नवहीगलवादी, नवआदर्शवादी, नव-अध्यात्मवादी, नवसिद्धांतवादी तथा प्रत्यक्षवादी बताते हैं।

विविध न्याय प्रणालियां

6. यदि हम न्याय प्रणालियों के इतिहास का एक विहंगावलोकन करें तो पता लगेगा कि न्यायशास्त्र के लेखकों ने विधिक सिद्धान्तों को निम्नलिखित रूप से सूचीबद्ध किया है : मनु, बृहस्पति का धर्म न्याय, यूनानी और रोमन विधिक सिद्धांत —पूर्व यूनानी विधिक सिद्धान्त, प्लेटो का दृष्टिकोण सिद्धान्त, अरस्तू का विधिक सिद्धान्त, स्टाइक की प्रकृति की विधि, प्रारम्भिक ईसाई मत, मध्यकालीन विधिक विचारधारा, विधि की थोमसी विचारधारा, मध्यकालीन कल्पनावादी, प्राकृतिक विधि का शास्त्रीय काल ग्रोटियस, होब्स, स्पिनोजा, लॉक एवं मोन्टेस्क्यू, संयुक्त राज्य में प्राकृतिक अधिकारों की विचारधारा, रूसो तथा उसका प्रभाव, जर्मन सर्वातिशायी आदर्शवाद— काण्ट की विचारधारा, फिच की विधिक विचारधारा, हीगल की विधि की विचारधारा, विधि की ऐतिहासिक तथा विकासवादी विचारधाराएं— सेविग्नी तथा जर्मनी की ऐतिहासिक विचारधारा, इंगलैण्ड की ऐतिहासिक विचारधारा, विधि की स्पेंसर विकासवादी विचारधारा, विधि की मार्क्सवादी विचारधारा, उपयोगितावाद--बेंथम, मिल, गया तथा भेरिंग का विश्लेषणात्मक यथार्थवाद, जॉन आस्टिन तथा विधि की विश्लेषणात्मक विचारधारा, विधि की विशुद्ध विचारधारा, समाज विषयक न्यायशास्त्र तथा विधिक यथार्थवाद—विधि की यूरोपीय मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय विचारधारा, हितों का न्यायशास्त्र, स्वतन्त्र विधि आन्दोलन, पाउण्ड का समाजविषयक न्यायशास्त्र, कारडोजो तथा होम्स, अमरीकी विधिक यथार्थवाद, स्केण्डिनेवियन का विधिक यथार्थवाद, प्राकृतिक विधि का पुनरुद्धार— नव-काण्टवादी प्राकृतिक विधि का पुनरुद्धार—नव-काण्टवादी प्राकृतिक विधि, नव सिद्धान्तवादी प्राकृतिक विधि, डुगूट का विधिक दर्शन, लासवेल तथा मैकडोगल का नीति विज्ञान, विधि का क्षणभंगुरतावाद और घटनावाद तथा अन्य मूल्य-जनित दर्शन विधि इत्यादि।[1]

विधि में परिवर्तन—पेरिस की सुन्दरियों के फैशन की तरह

7. ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि फ्रांस में महिलाओं के टोप की भांति विधि की विचारधाराओं में सदैव से ही परिवर्तनशील फैशन है। एक गम्भीर लेखक ने "फैशन और दर्शन" पर लिखा है "कारडोजो ने एक बार कहा कि न्यायशास्त्र में साहित्य, कला और पोशाक की भांति विविध फैशन और रीतियां हैं।"

---

1. जस्टिस इन इण्डिया, गोविन्द दास, पृष्ठ 6।

8. वृहद् आरण्यक उपनिषद्[1] का मत है कि कानून राजाओं का राजा है। ''कार्शापिणे भवेद्दण्ड्यो यत्रान्य प्राकृतो जनः। तत्र राजा भवेद्दण्डयः सहस्त्रमिति धारणा ॥
—मनु स्मृति 1/111/336

वैदिक काल में राजा कानून से श्रेष्ठ नहीं था तथा कानून का उल्लंघन करने पर वह किसी अन्य नागरिक की भांति दण्डित किया जा सकता था।

9. महर्षि मनु का आदेश निम्न भांति है—

''धर्म एव हतोहन्ती धर्मो रक्षतिः। तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोवधोत् ॥''
—मनु स्मृति 8/15

न्याय और धर्म के विनाश से समाज का विनाश हो जाता है, न्याय और धर्म की रक्षा का प्रभाव भी रक्षक है। अतः न्याय और धर्म को नष्ट नहीं करना चाहिए।

10. सतपथ ब्राह्मण (4.2.26) व वृहद् आरण्यक उपनिषद् (1.4.14) में भी विधि की सर्वोन्मुखता को ऐसे ही शब्दों में इस प्रकार वर्णित किया है—

''विधि सत्ताधारी के शासन की भी नियंत्रक है। अतः विधि से सर्वोपरि कुछ भी नहीं। विधि की सहायता से एक अशक्त व्यक्ति सशक्त पर भी विजय पा सकता है।''

11. मुख्य न्यायाधिपति मुखर्जी ने विधि का बड़े रोचक ढंग से वर्णन किया है। वे कहते हैं :—

''विधि शास्त्र के आरण्यक या उपवन में अनेकानेक फल है। विधि दिव्य है विधि प्राकृतिक है, विधि रीति है, विधि सविदा है। विधि मानवीय सप्रभुता का एक आदेश है। विधि एक सामाजिक तथ्य है। विधि प्राथमिक तथा आनुषंगिक नियमों की सन्धि है। विधि समादेश है। विधि अनुभव है। विधि एक अप्राप्य अनुभव है। विधि एक व्यावहारिक आदर्श एवं प्राप्य समझौता है।

विधि सामाजिक और व्यक्तिगत हितों का एक संतुलन है। विधि नैतिकता है। विधि वही है जो न्यायाधीश न्यायालय में कहते हैं। विधि परम्परा है। विधि अधिनियमों से भिन्न है। जिस भ्रम ने किसी को यह कहने के लिए विवश कर दिया कि कानून एक सदर्भ है, यह सब भ्रमपूर्ण दिखाई पड़ता है।

इन समस्त सत्यों के मध्य शायद इनकी सायुज्यता का झुकाव है। अगर विधि एक भारवाहक धुरी है तो वह इस कारण है कि विधि को कर्मशील मानव जीवन के अनेकानेक प्राचीन एवं अर्वाचीन, ज्ञेय एवं अज्ञेय भार वहन करने पड़ते हैं।

ऑस्टिन तथा केल्सन

12. विधि के सिद्धान्त की परिभाषा दो चरम अवस्थाएं निश्चित करती हैं : एक बल-प्रयोग की द्योतक है, जबकि दूसरी विधि की सामाजिक स्वीकारोक्ति

---

1. लॉ, मॉरेलिटी एण्ड पोलिटिक्स, 1981, पृष्ठ 3, न्यायाधीश गुमानमल लोढा।

पर जोर देती है। विधि के अब प्रयोगात्मक तरीके में दो प्रकार की विचारधाराओं का समावेश है—(i) अधिकरण का स्रोत व (ii) विभिन्न प्रकार की प्रणालियाँ। ऑस्टिन तथा केल्सन ने विधि के बल-प्रयोग की भूमिका पर जोर दिया है। प्रो० हार्ट भी अपने आपको इसी परम्परा में सम्मिलित करते हैं। ऑस्टिन विधि को उच्चतम वैधानिक प्रभुता-सम्पन्न कहलानेवाली शक्ति का आदेश कहते हैं। केल्सन कहते हैं कि विधि के सिद्धान्त को विधि के साथ उसी प्रकार व्यवहार करना चाहिए जैसी कि वह है, न कि जैसा कि उसे होना चाहिए। विधि का सिद्धान्त मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, इतिहास या राजनैतिक दर्शन से स्वतन्त्र होना चाहिये। दूसरे शब्दों में वह विशुद्ध होनी चाहिये। इस प्रकार दोनों ही विधिवेत्ता नैतिक तत्त्व को विधि की परिभाषा से परे रखते हैं।

प्रो० हार्ट

13. प्रो. हार्ट विधि के आदेशात्मक सिद्धांत को अंशरूप से अस्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति द्वारा भरी हुई बन्दूक दिखाकर किसी को आदेश नहीं दिया जा सकता और विधि निश्चय ही बन्दूक धारीवाली अवस्था नहीं है।

सेविग्नी व एलरिच

14. दूसरा प्रतिवादी दृष्टिकोण हमारा ध्यान सेविग्नी और एलरिच के सिद्धांतों की ओर आकृष्ट करता है। उन्होंने विधि के निर्णायक तत्त्वों के रूप में समाज की वास्तविक मान्यता और रीति-रिवाजों के उदय पर बल दिया। उनके मतानुसार विधि संप्रभु से अधिकार प्राप्त कर सकती है, परन्तु वह उसके द्वारा उत्पन्न नहीं की जा सकती।[1]

धर्म व विधि पर्यायवाची-प्राचीन भारत

15. प्राचीन भारत में विधि का तात्पर्य स्थूल रूप से "धर्म" से था। वेद, जो एक ईश्वरीय अभिव्यक्ति समझे जाते हैं, समस्त संहिताओं हेतु प्राधिकारिता का सर्वोत्तम स्रोत थे, जिनमें उस समय जो कुछ विधि या धर्म समझा जाता था, वह निहित था। कालान्तर में परम्परागत अभिलेखों ने हिन्दू समाज के जीवन और विकास को शासित करके अनेक मोड़ दिये, और अब यह माना जाता है कि इनका स्रोत ऋग्वेद है।

16. कौटिल्य के शब्दों में एक उच्च राजनैतिक आदर्श इस प्रकार था : "प्रजा के सुख में ही राजा का सुख निहित है। उसका भला उसमें निहित नहीं है जिससे उसको स्वयं का आनन्द प्राप्त होता है, बल्कि उसमें निहित है जिससे उसकी प्रजा प्रसन्न हो।"

17. ईसा के जन्म से करीब छः सौ वर्ष पूर्व या उससे कुछ ही पहले भारतीय विधि ने संहिता का रूप ग्रहण किया।

---

1. लॉ मॉरेलिटी व पॉलिटिक्स न्यायाधीश गुमानमल लोढ़ा, 1981—यूनिक ट्रेडर्स जयपुर।

कौटिल्य, मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पति

18. धर्मशास्त्र के रचनाकारों—मुख्यतः कौटिल्य, मनु और याज्ञवल्क्य ने वैदिक अनुश्रुतियों को स्रोत मानकर तथा मनु की विचारधाराओं को प्रतिष्ठित करके एक आधार-शिला की स्थापना की जिस पर भारतीय विधि का प्रारूप निर्मित किया गया। तदोपरान्त नारद, बृहस्पति तथा कात्यायन द्वारा उसे विशुद्ध और विश्लेषित रूप प्रदान किया गया।

वैदिक काल में न्याय-प्रणाली

19. वैदिक काल मे आज्ञा के रूप में "ऋता" के सिद्धात की विद्यमानता का विकास हुआ, जो सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था की स्थापना की ओर अग्रसर हुआ और जिसने मानवीय सम्बन्धों को विनियमित करने के लिए विधि के विकास को पराकाष्ठा तक पहुंचाया। देश की विधि के अनुसार समाज के प्रत्येक व्यक्ति को न्याय प्राप्त होना चाहिए तथा उसके अधिकार सुरक्षित होने चाहियें। यह आत्मदर्शन एक व्यवस्थित न्यायपालिका के सूत्रपात में परिणत हुआ। लोगो को न्याय राज्य के माध्यम से दिया जाता था, अतएव प्राचीन भारतीय राजाओं के लिए न्याय प्रदान करना एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य बन गया। राज्य और न्याय-व्यवस्था के सिद्धात सहज रूप से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। यह राज्य ही था, जिसने विधि को कार्यान्वित करके लोगो को निष्पक्ष न्याय प्रदान किया।[1]

मौर्यकाल, शुंगकाल व गुप्त वंश

20. अगर मौर्यकाल कौटिल्य द्वारा प्रदत्त व्यवस्था के लिए प्रसिद्ध है तो शुंगकाल मनुस्मृति की रचना का साक्षी है। गुप्त वश के राजाओ की गौरवपूर्ण अवधि में नारद, बृहस्पति और कात्यायन ने हिन्दू न्यायपालिका को परिपूर्णता का रग प्रदान किया।[2]

ग्रामसभा से राजसभा तक का भारतीय न्याय

21. भारतीय प्राचीन न्याय-प्रणाली में न्याय ग्रामसभा से प्रारम्भ होकर सर्वोच्च राजसभा के सुसंगठित न्यायालयों की व्यवस्था के माध्यम से ही लोगों को प्रदान किया जाता था। इनके साथ-साथ कुल, श्रेणी और पुग नामक लोकप्रिय न्यायालय भी काम करते थे। लोकप्रिय न्यायालयों की मान्यता यह दर्शित करती है कि न्याय सभी लोगों को उपलब्ध था। यह अधिक खर्चीला भी नही था। राज्य विभिन्न सामाजिक एवं व्यावसायिक तबकों के रीति-रिवाजों को मान्यता देता था, उनके सदस्यो को उनके द्वारा प्रतिपादित लौकिक विधि के अनुसार न्याय प्राप्त करने

---

1. जुडिशियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया,—डॉ. वीरेन्द्र नाथ, पृष्ठ 4 व 5 डा. विरेन्द्र नाथ जानकी प्रकाशन, पटना,1979।
2. जुडिशियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया डॉ. वीरेन्द्र नाथ पृष्ठ 4 व 5 जानकी प्रकाशन पटना, 1979।

का अधिकार था। हम देखते हैं कि मुकदमों का निपटारा सदैव स्थानीय और लोकप्रिय न्यायालयों द्वारा किया जाता था और ऐसे बहुत कम मामले होते थे जिनमें सम्बन्धित पक्ष सर्वोच्च न्यायिक अधिकरण या राजा के न्यायालय में अपील करता था। ग्रामसभा, जो सबसे नीचे का न्यायालय था अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। इस न्यायालय के निर्णय से संतुष्ट नहीं होने पर ही कोई ऊपरवाले न्यायालयों में जाता था। नगर के सदस्य अपने झगड़ों को "श्रेणी न्यायालयों" में निपटाते थे। इस अध्याय में न्यायालयों की संरचना का भी वर्णन किया गया है।[1]

नैतिकता धर्म और न्याय का सामंजस्य : महाभारत व मनुस्मृति

22. नैतिकता जो धर्म की पूरक है, उसका न्याय से संबंध-विच्छेद नहीं किया जा सकता। प्राचीन भारत के विधि-निर्माताओं की सम्मति मे विधि और न्याय के क्रियान्वयन हेतु दण्ड अनिवार्य था। इस प्रसंग को महाभारत, मनुस्मृति और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में बड़े सुन्दर ढंग से निरूपित किया गया है। यह अध्याय दर्शित करता है कि भारतीय विचारधारा के अनुसार दण्ड के भय द्वारा लोगों से अन्य लोगो के अधिकारों का सम्मान कराया जाता था। कानून को भंग करनेवालों को दण्डित करना तथा समाज को सहजरूप से चलाने के उपयुक्त परिस्थितियां उत्पन्न करना राजा का कर्तव्य था। प्रत्येक व्यक्ति को न्याय प्राप्त करने का अधिकार था और राज्य उसको प्रदान करता था।[2]

न्यायाधीश समाज में उत्तरदायी हों–कौटिल्य

23. प्राचीन भारत में न्यायालयों की मान्यता बहुत अधिक थी। न्यायालय भवन एक पवित्र स्थान के रूप मे माना जाता था और प्रत्येक के लिए खुला हुआ था। अन्वीक्षाएँ सार्वजनिक हुआ करती थीं। एक विधिवेत्ता ने प्रतिबद्ध किया कि न तो राजा को और न न्याय-सभा के सदस्यों को ही कभी एकात मे न्याय करना चाहिए। न्यायधीशों की स्वतन्त्रता और सच्चरित्रता की सतर्कता से चौकसी रखी जाती थी। कौटिल्य ने इसी प्रसंग में जो प्रावधान किये, वह न्यायाधीशों के समाज के प्रति उत्तरदायित्व का ज्वलन्त उदाहरण है, जिसके लिये कृष्णा अय्यर, प्रो. उपेन्द्र बख्शी व ललित भसीन आदि आज पुरजोर शब्दों में मांग कर रहे हैं।

लगता है कौटिल्य को भारत में मरणासन्न कर मैकाले व फिरंगियों ने 'न्यायालय की अवमानना' का विधान बनाया, जिससे न्यायाधीश देवताओं से भी अधिक पूर्ण माने गये। कौटिल्य के निम्नलिखित प्रावधानों[3] पर कभी न कभी विचार करना होगा, शुभस्य शीघ्रम् :

(1) "जब एक न्यायाधीश अपने न्यायालय मे विवादियों में से किसी को भी डराता है, धमकाता है, बाहर निकाल देता है अथवा अनौचित्यपूर्वक चुप कर

1. 2. जुडिशियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, डॉ. वीरेन्द्र नाथ पृष्ठ 4 व 5, जानकी प्रकाशन, पटना, 1979।

3. अर्थशास्त्र 224, 225।

देता है तो उसे सबसे पहले व प्रथम कोटि के जुर्माने से दण्डित किया जावेगा। यदि वह उनमें से किसी को भी अपमानित करता है अथवा अपशब्द कहता है तो दण्ड दुगुना हो जायेगा। यदि वह किसी से जो बात पूछनी चाहिये, वह नहीं पूछता अथवा जो बात किसी से नही पूछनी चाहिए, वह पूछता है अथवा स्वयं के द्वारा पूछी हुई बात को छोड़ देता है अथवा किसी को सिखाता है, स्मरण कराता या किसी को पुराने कथन उपलब्ध कराता है तो वह मध्यतम जुर्माने सेदण्डित किया जावेगा"

(2) "यदि एक न्यायाधीश आवश्यक परिस्थितियों में जांच नहीं करता है, अनावश्यक परिस्थितियों मे जांच करता है, अपने कर्तव्यपालन में अनावश्यक विलम्ब करता है, दुर्भावना से कार्य को स्थगित करता है, पक्षों को विलम्ब से थका कर न्यायालय छुड़वा देता है, मुकदमों के स्थिरीकरण हेतु मार्ग-प्रदर्शक कथनों की उपेक्षा करता है अथवा करवाता है, साक्षियों की सुराग देकर उनकी मदद करता है अथवा पहले से ही निर्णीत या विनिश्चित मुकदमों को दुबारा आरम्भ करता है तो वह अधिकतम जुर्माने से दण्डित किया जावेगा। यदि वह अपराध को दोहराता है तो वह उपरोक्त जुर्माने के दुगुने दण्ड से दण्डित और सेवा से निष्कासित किया जावेगा।"

(3) "जब कोई न्यायाधीश या आयुक्त स्वर्ण में अनुचित जुर्माना लगाता है तो उस पर या तो जुर्माने की रकम से दुगुना अथवा उस कर की रकम का आठ गुना, चाहे वह निर्धारित सीमा से कम या अधिक हो, जुर्माना लगाया जावेगा।"

(4) "जब कोई न्यायाधीश या आयुक्त अनुचित शारीरिक दण्ड देता है तो या तो वह स्वयं उसी दण्ड का अपराधी ठहराया जायेगा या वह इसी प्रकार के अन्यायी बंदी को छुड़ाने हेतु वसूल किए गए धन की दुगुनी रकम अदा करने के लिए बाध्य किया जावेगा।"

(5) "जब कोई न्यायाधीश किसी भी सच्ची रकम को मिथ्या सिद्ध करता है अथवा किसी मिथ्या रकम को सच्ची घोषित करता है तो वह उस रकम की आठ गुना रकम से दण्डित किया जायेगा।"

न्यायपालिका कार्यपालिका से स्वतन्त्र

24. न्यायपालिका को कार्यपालिका से स्वतन्त्र रखा गया था। मुख्य न्यायाधीश, निःसन्देह रूप से कानून मन्त्री की हैसियत से राजा के मन्त्रिमण्डल का सदस्य होने के नाते शासकीय प्राधिकरण का भाग होता था, फिर भी उसने अपने निर्णयों को शासकीय विवेक से प्रभावित नहीं होने दिया। उस समय के विधिवेत्ताओं ने इस बिन्दु पर बहुत दबाव डाला है। किसी भी व्यक्ति को कानून से परे नहीं माना गया था, और यहां तक कि राजघराने के सदस्य भी इसी परिधि मे आते थे जिसका राजा भी अपवाद नहीं था।[1]

---

1. अवर ज्युडिशियल सिस्टम—जी. डी. खोसला न्यायाधीश पंजाब 1949।

बिन्दुसार का न्याय

25. यहां पर दो लिखित दृष्टान्त है जो प्राचीन भारत में कानून के शासन की महत्ता को प्रकट करते है। पहला ह्वेन-त्सांग द्वारा अभिलिखित राजा बिन्दुसार से सम्बन्धित है। राजधानी में आग से बचाव के लिए, जो वस्तुतः उस समय बारम्बार घटित होती थी, राजा ने एक ऐसा अध्यादेश, इस आशय का जारी किया कि ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को, जिसके घर से आग सुलगेगी, ठंडे जंगल में निष्कासित कर दिया जायेगा। एक दिन शाही भवन से आग सुलग उठी। तब राजा ने अपने मंत्रियों से कहा–"मुझे स्वयं को निष्कासित किया जाना चाहिए" और उसने अपने सबसे बड़े पुत्र को राज दे दिया और यह कहते हुए जंगल को प्रस्थान किया–"मैं देश के कानूनों की रक्षा की कामना करता हूं। मैं इसलिए अपनेआप वनवास जा रहा हूं।" इस कहानी पर कोई टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि यह एक अतिशयोक्ति है पर यह कम से कम यह तो दर्शाती ही है कि उन दिनों में सही चीज क्या समझी गई थी, और यदि आप अपने आदर्शों को ऊंचा रखते हैं तो आप कम से कम,, उनकी यथोचित दूरी तक आ सकते है।

सुदाता बनाम राजकुमार जैता

26. दूसरी कहानी सुदाता बनाम राजकुमार जैता के मुकदमों का प्रत्याह्वान करती है। सुदाता एक धनवान और धार्मिक प्रवृत्तिवाला व्यापारी था। अनाथो के प्रति उसकी दयालुता के कारण वह अनाथों का संदायाद पुकारा जाता था। जैता एक राजकुमार था जिसके पास एक—"न तो कस्बे से ज्यादा दूर और न ज्यादा नजदीक, आने-जाने के लिए सुविधाजनक और एक निवृत्ति जीवन के लिए सुसगत" बगीचा था। सुदाता ने सोचा कि इस बगीचे को खरीदना और बुद्ध को, जिन्हें उसने आमन्त्रित किया है, समर्पण कर देना एक अच्छी बात होगी। तदनुसार वह राजकुमार जैता के पास गया और उससे कहा–"महाराज, आपका बगीचा मुझे एक विश्राम-गृह बनाने के लिये दे दीजिए।" राजकुमार ने उत्तर दिया–"हे भद्र पुरुष जब तक इस पर करोड़ों सिक्के नहीं डाल दिये जाते, तब तक यह विक्रय के लिए नहीं है।" सुदाता ने उत्तर दिया—"श्रीमान् ! आप जो कुछ कहे उसी मूल्य पर मैं बाग लेने के लिए तैयार हूं।" राजकुमार जैता जैसे-तैसे अपने इस प्रस्ताव की अप्रत्याशित स्वीकृति पर झिझक गया और उसने कहा कि बाग क्रय या विक्रय के लिए तय ही नहीं हुआ है। सुदाता ने मामले को न्यायाधीशों के समक्ष ले जाकर विषय-वस्तु पर उनका निर्णय प्राप्त करने के लिए जोर दिया। जब मामला न्यायाधीशों के समक्ष आया तो उन्होंने यह निर्णित किया कि—राजकुमार ने मूल्य निश्चित किया था, जो सुदाता द्वारा स्वीकार कर लिया गया। अतः बाग का विक्रय किया जा चुका था।

राजा व साधारण नागरिक समान

27. तथाकथित कथा के अन्त में राजकुमार जैता एक हेय व्यक्ति प्रतीत नहीं होता है। सुदाता ने बाग में सोने के सिक्के उछालना शुरू कर दिये और जब

तक वाग के एक भाग मे ऐसा किया गया, जैता ने शेष भूमि विना आगे मूल्य भुगतान के छोड़ दी। कहानी का आदर्श (जिसकी सत्यता पर संशय करने का कोई कारण नही) यह है कि एक राजकुमार और एक साधारण नागरिक ने अपने विवाद को विधिक न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसका निर्णय राजकुमार के भी विरुद्ध गया। राजकुमार ने उस निर्णय को साधारण चर्चा के रूप में स्वीकार किया। यहां पर यह संप्रेक्षित किया जाता है कि यह वाद न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता के सूचक एक दृष्टान्त के रूप में अभिलिखित नहीं किया गया है अपितु सुदाता द्वारा अपने गुरु वुद्ध के प्रति असीम भक्ति दर्शित करने वाला है। कथा मे विधिक प्रक्रिया को सामान्य जीवन की एक साधारण घटना के रूप मे वर्णित किया गया है, यहा तक कि उसमें न्यायाधीशों के नाम का उल्लेख तक नहीं है।

नारद व सामंड में विस्मयकारी समानता

28. इन विन्दुओं पर नारद हमारे उत्तम प्राधिकारी हैं। वे एक विधिक वाद : अनुक्रम को चार भागों में विभाजित करते हैं—

(1) वादी या परीवादी द्वारा अपने वाद का कथन, यह "पूर्व पक्ष" कहलाता था,

(2) प्रतिवादी या अभियुक्त व्यक्ति का वादोत्तर, यह "उत्तर पक्ष" कहलाता था,

(3) वास्तविक परीक्षण—जिसमें वाद को स्थापित या खण्डित करने के लिये साक्ष्य लेना तथा दोनों पक्षों के तर्क-वितर्क समाहित हैं इसको "क्रिया" का नाम दिया गया, तथा

(4) न्यायालय का फैसला–जिसका नामकरण "निर्णय" रखा गया।

यह आत्म-विस्मृति क्यों?

29. सामण्ड न्यायशास्त्र के पाठक इस निरूपण की अन्य वर्तमान योरोपीय न्यायशास्त्रियों द्वारा किये गये वर्गीकरण से भी समरूपता स्वीकार करेंगे। लगता है जैसे नारद की अनुभूत प्रेरणा से ही सामण्ड ने न्यायशास्त्र की रचना की हो। कालान्तर पर भी इतनी अधिक समानता विस्मयकारी है। इस पर भी हम मनु, नारद, कौटिल्य वृहस्पति याज्ञवल्क्य, कौटायन को भूल कर सामण्ड, डाइसी, हार्ट से चकाचौंध हो रहे हैं, यह हमारी मानसिक गुलामी का प्रतीक है व ठीक ऐसा ही है जैसा कि स्वभाषा हिन्दी को भूलकर अंग्रेजी की गोद में चले जाना। आत्मविस्मृति व स्वाभिमान को छोड़ "स्व" की हीनता का क्या यह ज्वलन्त उदाहरण नहीं है?

मेगस्थनीज द्वारा प्रशंसा

30. न्याय-पद्धति प्राचीन भारत में सफल रही इसका उदाहरण विश्व के अन्य राष्ट्रों से आये हुए दूतों की टिप्पणियां हैं। मेगस्थनीज ने लिखा है कि चोरी का अपराध बहुत ही कम होता है। कानून इतने सरल हैं कि नागरिकों को

न्यायालय में जाने की आवश्यकता ही नहीं होती । जमा रकम वापिस लेने के लिये न दावे होते हैं न कोई विश्वासघात करता है । मेगस्थनीज चन्द्रगुप्त मौर्य के यहां पर राजदूत के नाते कई वर्ष रहा व उसने भारत की कानून-व्यवस्था, न्याय-प्रणाली का बहुत गहरा तथा निकट से अध्ययन किया था, अतः उसकी टिप्पणी का महत्त्व कम नहीं किया जा सकता ।

ह्वेनचांग की सराहना

31. चीन के साधु ह्वेनचांग ने सातवीं सदी में भारत का भ्रमण करके लिखा है कि भारत के साधारण नागरिक सभ्य व सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। न्याय-प्रणाली मे सहनशीलता व संवेदना है । शपथ व सकल्प का आदर करते हैं एवं विश्वासघात व जालसाजी से बहुत परे हैं । किन्तु आज यह कहावत है कि न्यायालय के बाहर कहा जाता है—"यहां तो सच बोल, अब न्यायालय थोड़े ही है।"

शक्रांति, मनु, बृहस्पति

32. मनु, नारद, बृहस्पति, शक्रांति के साहित्य को पढ़ने से पता चलता है कि भारत की प्राचीन न्याय-पद्धति बहुत ही सरल परन्तु सुगठित व सुनियोजित थी ।

गोविन्ददास की चेतावनी

33. बैरिस्टर गोविन्ददास ने "भारत मे न्याय" के सम्बन्ध में निम्नलिखित चेतावनी दी है :—

दुर्गम जगल के तरंगायमान तूफानी-समुद्र में "विधि-नियम से समुद्री यात्रा का गौरवपूर्ण प्रयत्न करता हुआ भारत का यह जहाज नितान्त एकाकी प्रतीत होता है। यह इस निर्णय का भविष्य-निदेशक समय है । यदि वह असफल रहता है तो मानव जाति के विशाल भाग में से एक खुले समाज का अन्त हो जायेगा और यदि सफल रहता है तो भविष्य के लिए इसका विश्वसनीय नेता हो जायेगा । परीक्षा की घड़ी आ चुकी है व नतीजे के परिणाम दूरगामी है । विधि की दूरदर्शी-प्रणाली विधि-नियम के राज्य की गुणवत्ता की दृष्टि से एक अपरिहार्य पूर्व-शर्त है, परन्तु भारत में केवल परिनियमो, नियमों, विनियमों और आज्ञाओं का एकीकरण है और कोई प्रणाली नही है । यद्यपि एक अस्पष्ट रूपरेखा दृष्टिगोचर होती है पर यह सन्तोष से बहुत दूर है । भारत में कानून की कहानी अब तक तो आशाओं एवं महत्वाकाक्षाओं के साथ विधान सभा द्वारा कार्यपालिका और यहा तक न्यायपालिका द्वारा भी असन्तोषजनक रही है ।"-मेरे विचार से उपरोक्त अभिव्यक्ति अतिशयोक्तिपूर्ण व अनावश्यक रूप से निराशावादी है ।

गोविन्ददास का मत

"हमने भारत के सुन्दर भूत में झांका तो क्षीण प्रकाश पाया और वहा पर बुराइयां भी थी । वहा पर शंकर और बुद्ध अवतार थे, परन्तु वहां पर बुराइयां, अंधविश्वास, असमानता और निश्चयवाद भी थे। आध्यात्मिक ओज मरणासन्न

समाज के अवसर चारों ओर चिपटी हुई थी। यह एक समाज था जहां पर जितनी अधिक क्रमबद्धता थी, उतनी ही अधिक उसमें धर्मभ्रष्टता थी जिसने गिब्बन को घृणा के लिए प्रेरित किया। प्राचीन इतिहास "बहादुरी, महानता, ऐश्वर्यता, परन्तु नीचावस्था और पतन का एक अनवरत चक्र था।" पश्चात्‌वर्ती युग में हमने जीवन की प्राकृतिक धारा पाई और पाया कि बाहरी प्रभुत्व के विषादमय-मरुस्थल में विधि समाप्त हो चुकी थी। विधि-प्रणाली, जिसे थॉमस से समुद्री यात्रा से लाया जाकर हुगली पर प्रतिरोपित किया गया, एक दुर्बल (क्षीण) भारतीय चेहरे पर न तो उत्तेजना पैदा करने वाली और न प्रोत्साहित करने वाली थी, वह सिर्फ बनावटी सुन्दरता-उपचार के समान थी।"[1] इंगलैण्ड में शिक्षा-प्राप्त भारतीय का उपरोक्त निष्कर्ष मेरे विचार से अर्द्ध सत्य है, व भारतीय जीवन तथा न्याय-प्रणाली के साथ न्याय नहीं करता है।

सुलभ न्याय के अभाव के परिणाम

34. समाज को न्याय सुलभ कराने की विधि-प्रणाली के अभाव के कारण दुखान्तक कथन कहना पड़ता है। जब राजनैतिक संकट बढ़ता है तो सत्ताधारी बढ़ जाते हैं और कार्यकारिणी भ्रष्ट तथा स्वेच्छाकारी हो जाती है। कानून के पास न तो बचाव हेतु मजबूत ढाल होती है और न लड़ने के लिए धारदार तलवार इस असमंजस को बढ़ाने के लिए यह कानून अपनी आत्मा से, स्वरूप से, विषय वस्तुएं और यहां तक कि अपनी भाषा से भारतीय नहीं है। वहां पर व्यक्ति और कानून के मध्य कोई सहमति नहीं है, और इसी कारण आज कानून, अनुपालना, आज्ञाकारिता अथवा श्रद्धा का कोई उत्तरदायित्व नहीं लेता है।[2]

अत: उपरोक्त विविध विधिवेत्ताओं के समुद्र मंथन से स्पष्ट है कि भारतीय न्याय प्रणाली में आवश्यक विकास, परिवर्तन, क्रियात्मकता रचनात्मकता, का अभाव खटक रहा है। गतिशीलता व परिवर्तन–सुधार के रूप में हो या क्रान्ति के रूप में यह अब अगले अध्यायों में मैं वर्णित करूंगा। इतना अवश्य स्पष्ट है कि अब न्याय में विलम्ब तकनीकी बाल की खाल द्वारा उपहास, खर्चीली प्रणाली-सब इंगित करती है कि अब "संपूर्ण कायाकल्प" पर विचार करना ही होगा।

"कायाकल्प" की आवश्यकता किन न्यायिक व्याधियों में है–इसका चित्रण अगले अध्याय में "विलम्ब के कॅंसर" से किया जाना सामयिक होगा—क्योंकि सुधार कायाकल्प या कुण्ठित की आवश्यकता किन न्यायिक व्याधियों, रोगों व बीमारियों के लिये हैं—पहले उनका चिन्तन आवश्यक है।

---

1. भारत में न्याय गोविन्ददास, 1967, पृष्ठ 186-187।
2. भारत में न्याय 1967 गोविन्ददास, पृष्ठ 187 एन० एम० त्रिपाठी एण्ड कम्पनी, बम्बई।

दन्ड प्रक्रिया कठोर या उदार

दण्ड-नीति का महत्त्व

1. दण्ड-नीति प्राचीन भारतीय न्याय-प्रणाली मे अति महत्त्वपूर्ण रही है। धर्मराज युधिष्ठिर के प्रश्न के उत्तर मे भीष्म ने कहा कि—

"दण्डनीतिः सर्वधर्मेष, चतुवर्णयम नियच्छति"

अर्थात् दंडनीति से ही समस्त मानव समाज को अपने कर्तव्य व दायित्व की ओर अग्रसर किया जा सकता है।

2. राजधर्म मे भी इसकी प्रधानता दी गई है। धर्म का आग्ल भाषा मे सही अनुवाद करना संभव नहीं है, कहा है कि—

"धारणात् धर्माइत्यातः धर्मा धारयते प्रजा."

अर्थात् समाज को जो धारण कर सके व नीति, न्याय, व्यवस्था स्थापित कर, मानवता की आध्यात्मिक व आर्थिक उन्नति कर सके वही धर्म है—

3. दार्शनिको ने कहा है कि—

"धर्म एवं हतोहन्ती धर्मा रक्षित रक्षिता"

अर्थात् धर्म उन्हें सुरक्षा प्रदान करता है, जो उसे अपनाते हैं व उन्हें नष्ट करता है, जो उसे नष्ट करते हैं।

महर्षि मनु का विश्वास

4. महर्षि मनु के अनुसार यदि दण्डनीति को छोड़ दिया जाये तब बलवान कमजोर को निगल जायेंगे, जैसे कि मछुआ मछली को मार डालता है।

कौटिल्य द्वारा "मत्स्य न्याय" का विरोध

कौटिल्य ने इसे मत्स्य कानून या 'मत्स्य न्याय' की सज्ञा दी है व कहा है—

"बलीयान बल हि ग्रसते दंडाधारायावे"

हिन्दू न्याय पद्धति में "जैसे को तैसा", "खून के लिए खून" को स्थान नहीं दिया गया, बल्कि केवल दण्ड-नीति को भय के लिये स्थान दिया गया है। महर्षि मनु के अनुसार पहले चेतावनी व भर्त्सना, फिर ताड़ना, फिर सम्पत्ति की सजा व फिर शारीरिक सजा दी जानी चाहिये।

"वागदंड प्रथम धर्याद्विदंड तदनन्तरम्,
तृतीय धन दण्ड तु वधदण्मतः परम।

5. कौटिल्य व मनु दोनों ने अपराध के अनुकूल ही दण्ड देने पर बल दिया है। मनु ने कहा है—

"अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥"[1]

इसी सन्दर्भ मे कौटिल्य की यह चेतावनी महत्वपूर्ण है—

"दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्याम ज्ञाना ह्लानप्रस्थ,
परिव्राजकानपि कोपयति किमङ्ग पुनर्गृहस्थान ।"[2]

अर्थात् 'दण्ड का अनुचित प्रयोग, यदि काम एवं क्रोध से परिचलित होकर किया होता है तो वह वानप्रस्थ एव परिभ्रमण करने वाले महात्माओं तक को क्रोधित कर देता है, गृहस्थों की तो बात ही क्या है।'

संदेह का लाभ व आत्म-रक्षा का अधिकार

6. स्मरण रहे कि कौटिल्य ने दण्ड देने के पहले अपराध को सन्देह से परे साबित होने पर बल दिया है। जैसा कि मैंने तेजसिंह बनाम राजस्थान सरकार[3] में विवेचन किया है, "बैनिफिट ऑफ डाउट" के सिद्धान्त का वूलमिंगटन ने आविष्कार किया हो, ऐसा कुछ नहीं है, बल्कि भारतीय न्याय-प्रणाली से, कौटिल्य के अर्थशास्त्र से अंग्रेजों ने प्रेरणा ली है। कौटिल्य ने कहा है,"—

"न च सन्देह दण्ड कुर्यात ।
सुविधित् विधित् व देव प्रत्येन्हः राजा दण्डाय प्रति पद्युात"[4]

आत्मरक्षा के अधिकार को भी मनु, बृहस्पति कौटायन व याज्ञवल्क्य ने वर्तमान दण्ड-संहिता की धारा 97 से 103 से भी अधिक महत्व दिया है। मैंने इसका विश्लेषण "माना बनाम सरकार"[5] मुकदमें मे किया है व इन महर्षियों का निम्नलिखित विधान उद्धृत किया है—

946—उत्तरला तु माधानां इन्दुर्दोषणो न विघते ।
निवृतास्तु मदारम्भाद् गरुण न वधए स्मृतः ॥
(कात्या 800—क्यू. थाई स्मृतिच—पृ. 315)

सैमुअल बटलर का यूटोपीयन आदर्श एक निरर्थक अवधारणा

7. वर्तमान में अपराधों को रोकने के लिये दण्ड के स्थान पर मनोवैज्ञानिक व मानसिक सुधार पर अधिक बल दिया जा रहा है। सर्वोच्च न्यायालय में मृत्यु-दण्ड

1. वैदिक मनुस्मृति 8 (264) 69।
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1 (4) 15।
3. ए. आई. आर. 1979, राजस्थान पृ. 37।
4. धर्मशास्त्र, पी. वी. काने, 1933 संस्करण, पृ. 261।
5. ए. आई. आर. 1978, राजस्थान, पृ. 245—पैरा 51।

को लेकर उच्च स्तरीय मत-भेद हो रहा है। न्यायाधीश अय्यर अपराध को एक मानसिक बीमारी समझते हैं। उनका कहना है कि अपराधियों को मनोवैज्ञानिक डॉक्टरों के पास इलाज के लिए भेजा जाना चाहिए, सजा देकर जेल में नहीं।

मृत्यु-दण्ड के तो वे भयंकर विरोधी हैं। श्री अय्यर के समर्थकों का कहना है कि मृत्यु-दण्ड समाप्त करना चाहिये व अपराधियों को सजा न देकर मनोवैज्ञानिक उपचार करना चाहिये। यह तो वैसे ही हुआ जैसे कि सेमुअल बटलर के "एरावोन" में आदर्श राज्य की कल्पना है। इस अजीबोगरीब काल्पनिक राज्य में, जो यूटोपियन से भी अधिक विस्मयकारी है, यह कल्पना की गई है यदि कोई व्यक्ति 70 वर्ष की आयु के पहले बीमार हो जाये या अपाहिज हो जाये तो ज्यूरी के पास मुकदमा चलना चाहिये व जुर्म साबित होने पर उसे जेल भेजना चाहिये। परन्तु इस आदर्श राज्य में यदि कोई आग लगाने का, जालसाजी करने का, कत्ल करने का, बलात्कार करने का अपराधी पाया जाये तो उसे चिकित्सालय में भर्ती करवाना चाहिये व राज्य सरकार के खर्चे पर यह उपचार किया जाना चाहिये कि वह मानसिक अनैतिकता की बीमारी से पीड़ित है ताकि उसके मित्र आकर उसके अच्छे स्वास्थ्य की कामना करें।

8. यह तो पाठकों को विचार करना है कि क्या आदर्शवादिता की इस हवाई कल्पना से अपराध व अपराधियों में कमी हो सकेगी? मेरा उत्तर नकारात्मक है।

मुसलमान राष्ट्रों में दण्ड-प्रक्रिया

9. विश्व के अनेक राष्ट्रों में जिसमें मुसलमान राष्ट्रों का बाहुल्य है, सार्वजनिक स्थानों पर प्रचारात्मक सजायें, मृत्यु-दण्ड के रूप में, हाथ-पैर काटने के रूप में आज भी दी जाती हैं। हमारे प्राचीन इतिहास में भी ये विद्यमान थीं, परन्तु आज का सभ्य एवं सुसस्कृत मानव आंख फोड़ने, हाथ काटने या पत्थर की वर्षा से अपराधी को भीड़ द्वारा मारे जाने की सजा को जंगली युग का प्रादुर्भाव समझता है।

अपराध व अपराधी में अन्तर भ्रामक

10. विधिवेत्ताओं ने कहा है कि हम अपराधी को सजा देते हैं, अपराध को नहीं परन्तु अपराधी को सजा दिये बिना अपराध को कसे सजा दी जा सकती है, यह एक जटिल प्रश्न है।

सजा में नरम दृष्टिकोण समाज के लिए घातक

11. भारत में सुधारात्मक दृष्टिकोण से सजा के प्रावधानों में जितनी नरमी काम में ली गई, उसका कानून-व्यवस्था पर बुरा असर पड़ा। अपराधों में भयंकर वृद्धि हुई है। स्व. प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी की हत्या उसका ज्वलन्त उदाहरण है।

रंगा बिल्ला को लाल किले पर फांसी दो

12. कानून में परिपूर्ण सजा नहीं मिलने के कारण अपराधी समझने लगा है कि अपराध करके बच जाना कोई बड़ी बात नहीं है। सामूहिक बलात्कारों की घटना, बैंकों की डकैतियां, बढ़ती हुई यातायात दुर्घटनायें, आर्थिक अपराध के विभिन्न घिनौने

जुर्म इस बात के द्योतक हैं कि सुधारवादी दण्ड व्यवस्था आदर्शात्मक होने पर भी व्यावहारिक नहीं है। दण्ड-नीति को अपनाना जंगली युग का द्योतक नहीं है, बल्कि व्यावहारिक दृष्टिकोण है। मृत्यु-दण्ड का उपयोग उचित अपराधों में अवश्य किया जाना चाहिए। यदि सार्वजनिक रूप से किया जाये तो इसका अधिक लाभ हो सकता है। सचार के साधन टेलिविजन, रेडियो व समाचारपत्र इस हेतु सरकार द्वारा उपयोग में लाये जाने चाहिएँ। खूनी रंगा-बिल्ला को लाल किले के मैदान में फांसी देकर टेलीविजन व सूचना-प्रसार के अन्य माध्यमों से प्रचारित किया जाना समय की मांग है।[1]

13. श्री सुबोध सिन्हा एवं कुछ अन्य विधिवेत्ता, जिनका मार्ग-निर्देशन माननीय कृष्णा अय्यर, भगवती, चिकित्सीय विधिवेत्ता डॉ. हीरा नन्दानी करते हैं, मृत्यु दण्ड की निन्दा इस हद तक करने में भी नहीं हिचकते हैं कि न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत दिया गया मृत्यु-दण्ड न्याय की तुला को ही सजीव बना देने के समकक्ष है। ये ही न्यायविद रंगा-बिल्ला के मृत्युदण्ड पर भी संवेदना एवं विरोध व्यक्त करने का लोभ संवरण न कर निम्नांकित मत प्रस्तुत करते हैं।

"रंगा व बिल्ला को फांसी का प्रश्न स्वयं सर्वोच्च न्यायालय के लिए मृत्यु-दण्ड की उपादेयता अनुपादेयता पर विचार-विमर्श का उचित अवसर नहीं प्रतीत हुआ और इस तर्क-वितर्क को यहीं छोड़कर दोनों को फांसी देने के उपरान्त उनकी लाशों को उनके परिजनों को दे दिया गया जिन्हें समाचार-पत्रों में सचित्र सुर्खियों के साथ प्रथम पृष्ठों पर स्थान मिला।"

14. श्री सिन्हा अपने विचारों की शृंखला में आगे व्यक्त करते हैं कि—इन सुर्खियों ने उन पाठकों की अवश्य आत्मतुष्टि की है, जिन्होंने इस रंगा-बिल्ला दण्डादेश से अपराधिक सामाजिक-आर्थिक ढांचे वाले समाज में अपराधियों को सबक सिखाने से अपराधी प्रवृत्तियों को प्रश्रय नहीं मिलने की कल्पना की हो।

15. अपराध सभी प्रकार के आर्थिक-सामाजिक परिवेशों में प्रश्रय पाकर पनपते हैं, सोवियत संघ या चीन भी इसके अपवाद नहीं कहे जा सकते हैं। इसलिए इस प्रश्न पर मैं स्वयं माननीय अय्यर मत से भिन्न मत रखता हूं। इस सन्दर्भ में सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधिपति ठक्कर ने अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं कहा है कि—सभ्य समाज का ऐसे घृणित, क्रूर हृदयहीन, अपराधी से अपना संरक्षण वापस ले लेना तनिक भी गलत नहीं होगा, जिन अपराधियों ने अपनी आसुरी प्रवृत्ति से समाज की शान्ति-व्यवस्था एवं मर्यादाओं की शृंखलाओं को ही झकझोर दिया हो। विशिष्ट में भी विशिष्ट अपराधिक परिस्थितियों में मृत्यु-दण्ड एक आत्माज्य एवं बलवती आवश्यकता है, जिसे ब्रिटेन जैसी विकसित-सभ्य-अत्याधुनिक-सामाजिक व्यवस्था भी पुनर्विचारणीय प्रश्न अंगीकार कर रही है।

---

1. ए. आई. आर. 1981 एस. सी. पृ. 1572।

कौटिल्य–नगाड़ा बजाकर फांसी

16. प्राचीन युग में कौटिल्य के समय की दण्ड देने की प्रणाली में मृत्यु-दंड के पहले अपराधी को जनता में प्रदर्शित किया जाता था और नगाड़ा बजाकर यह घोषणा की जाती थी कि यह वह व्यक्ति है जिसने ऐसा जघन्य अपराध किया है, जिसके लिये इसे मृत्यु-दण्ड दिया जा रहा है, यदि कोई अन्य व्यक्ति ऐसा अपराध करेगा तो उसे इसी प्रकार सार्वजनिक रूप से मृत्यु-दण्ड दिया जायेगा।

17. जनताजनार्दन की भावनाओं से अभिभूत एवं समय की आवश्यकता को सामने रख कर स्वयं सर्वोच्च न्यायालय भी दहेज की बलिवेदी पर चढाई गई अबलाओं के प्रसगों में अपराधियों को मृत्युदण्डादेशों को मौन स्वीकृति प्रदान कर चुका है। दहेज के लिए नव-वधुओं को जला देने जैसे आसुरी कुकृत्यो में न्यायालयों द्वारा मृत्यु-दण्ड देना कोई अतिशयोक्ति नहीं है अपितु न्याय की अनुपालना में उनका एक दायित्व ही है।

18. माननीय न्यायाधिपतिगण मुर्तजाफजल अली, ए. वर्धराजन् एवं एम. पी. ठक्कर की गठित खण्डपीठ ने भी ऐसे अपराधों की उनकी आसुरी, नृशस, घृणित, असामाजिक प्रवृत्ति के कारण विशिष्ट मे भी विशिष्ट अपराध मानकर उन्हें मृत्यु-दण्ड के लिए उपयुक्त संज्ञा दी है।

19. सर्वोच्च न्यायालय ने 1977 के अगस्त माह में पंजाब प्रांत के पांच गावों में 17 व्यक्तियों की नृशग हत्या के एक अभियोजन मे तीन प्रमुख अपराधियों के मृत्यु दण्डों की पुष्टियों में उपरोक्त विचार प्रकट कर अपने महती दायित्व का बोध किया है।

20. अन्य स्त्री से अनुरक्ति या मात्र दहेज की लालसा में पुनर्विवाह हेतु पत्नी की अमानुषिक हत्या, पूर्ववर्णित के अतिरिक्त, वे अपराध है, जिनमे मृत्युदण्ड एक आवश्यकता समझी गयी है।

21. यदि सभ्य समाज का कोई एक व्यक्ति या समुदाय मानवीय धारणाओं, मान्यताओं का हनन् कर हत्या जैसा जघन्य कृत्य करे तो समाज को भी उन मान्यताओं का परित्याग कर अपना दायित्व निभाने को तत्पर रहना चाहिए, क्योंकि मृतक के प्रति भी समाज का एक गहन कर्तव्य है, जो उस समाज से संरक्षण की कामना करता है।

22. समाज का वह अमानवीय अग यदि स्वयं समाज के प्रति अपना कर्तव्य-बोध भूलकर हत्या का घृणित कृत्य करता है तो यह स्वयं समाज की जीवन-रक्षा के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि ऐसे व्यक्ति से भी सामाजिक सरक्षण का अधिकार छीनकर उसे मृत्युदण्ड ही प्रदान किया जावे। माननीय ठक्कर के इस विचारों का, जो एक नयी धारा का मार्ग-प्रशस्त करते हैं, पौराणिक-कौटिल्य की मान्यताओं के साथ गहन सामजस्य है।

न्याय में विलम्ब चरम सीमा पर

जस्टिस चन्द्रचूड़ की चेतावनी

1. मुख्य न्यायाधिपति श्री वाई. वी. चन्द्रचूड़ ने कई बार कहा है कि हमारी न्याय-प्रणाली में विलम्ब का यही क्रम जारी रहा तो सम्भावना यह है कि न्याय व्यवस्था अपने ही बोझ से दबकर समाप्त हो जायेगी। कृष्णा अय्यर ने तो इस बात की रट ही लगा रखी है कि भारतीय न्याय-प्रणाली आत्मघात की ओर अग्रसर हो रही है व आमूलचूल परिवर्तन के बिना इसकी आत्म-हत्या को कोई भी नहीं रोक सकता।

इंगलैंड में विलम्ब का कारण अभिभावक : क्लार्क का मत

2. न्यायाधीश क्लार्क द्वारा न्यायालय की दुविधा की सुन्दर टीका इस प्रकार की गई है—अगर मुझे यह विश्वास हो जाये, या किसी न्यायाधीश को, यह विश्वास हो जाये कि वादी किसी कारणवश अपने वाद की अन्वीक्षा नहीं करवाना चाहते, तब हम उनकी अन्वीक्षा नहीं करने हेतु स्थगित कर देते हैं, परन्तु, बारम्बार ऐसा आभास होता है कि ये सब वकीलों की सुविधा के लिये है। यह सुविधा वकीलों के व्यावसायिक हितों के लिए हो सकती है तथा विवादियों को यह पता तक नहीं रहता कि न्यायालय अपने वादों को आगे ढकेलने में इच्छुक भी है या नहीं।[1]

विलम्ब घातक

3. न्याय-प्रणाली में आज सबसे अधिक समस्या विलम्ब की है। पति व पत्नी के तलाक अथवा मिलन या गुजारे के मुकदमों में भी दो-दो युग लगा देना असाधारण बात नहीं है। दीवानी वाद तो कई पीढ़ियों तक चलते हैं। जेल के सींखचों में पड़ा अपराधी वर्षों तक बिना निर्णय के रह जाता है व कभी-कभी तो वह समय, अधिकतम दिये जाने वाले कारावास से भी अधिक होता है। पिछले दो वर्ष में सुप्रीम कोर्ट ने भी हजारों व्यक्तियों को रिहा करने की आज्ञा दी जो अपराध निर्णीत होने के पहले ही अधिकतम सजा काटकर भी जेल की सीखचों में बन्द थे। आठ-आठ वर्ष जेल में रहने के पश्चात् कई व्यक्ति सम्मान सहित निर्दोष घोषित किये जाते हैं, यह कैसी विडम्बना है।

---

1. एटोर्नी जनरल कोन्फ्रेन्स, इगलैण्ड, 1956, पृष्ठ 36।

37 वर्ष तक विचाराधीन–देसाई लुहार, जेल में पागल

4. राची जेल के लम्बरदार गोरिया को आर्म्स एक्ट मे अधिकतम सजा के 2 वर्ष के प्रावधान पर भी जून, 1970 से विचाराधीन कैदी रखा गया व 1979 में सर्वोच्च न्यायालय में इस असाधारण अन्याय के भंडाफोड़ पर रिहा किया गया। परन्तु 2 सितम्बर, 1982 को न्यायाधीश भगवती की अदालत मे विश्व मे न्याय-व्यवस्था पर कालिख लगाने वाला देसाई लुहार का हृदय कम्पायमान करने वाला प्रकरण प्रस्तुत हुआ।[1] सन् 1945 मे देसाई उर्फ बांका को गिरफ्तार किया गया जो दरभंगा (बिहार) की जेल में तीन दशक तक सड़ने से पागल हो गया व पहले पुलिस की मारपीट से बहरा गूंगा हो गया। जमशेदपुर विधि सहायता समिति ने इस रोमांचकारी हृदय-विदारक करुण कहानी को दिल्ली दरबार के न्याय देवताओं की पूजा के पुष्पों के रूप मे प्रस्तुत किया है, जिसमें भारत के न्यायिक हिरासतों के सारे काले इतिहासों को लज्जित किया व धिक्कारा है। अभी तक असली जुर्म मे देसाई के अपराधी होने का निर्णय भी नहीं हुआ है, परन्तु "बांका" अपने यौवन को ही नही, जीवन को भी खो चुका है व पागलखाने में चिल्ला रहा है।

अन्वीक्षा विहीन–तीन दशक् का कारावास

5. बिहार प्रांत की जेलों में अन्वीक्षा हेतु विचाराधीन बंदियों की मानसिक-शारीरिक, आर्थिक व सामाजिक वितृष्णा से किंकर्त्तव्यविमूढ़, आत्मचिंतित, आहत मन के लिये माननीय मुख्य न्यायाधिपति वाई. वी. चन्द्रचूड, न्यायाधिपति भगवती, एवं उनके सहयोगी लीक से हटकर मात्र संकलित नियमों-उपनियमो एवं विधान की सीमा को लाघकर उन अभागों की दारुण, हृदय-विदारक कारावास के जीवन की गाथाओं व अधिकारियों के अन्यायों से अभिभूत होकर, हर्जाने के बिन्दु पर भी द्रवित आत्मा से सोचने लगे हैं। मानव अधिकारों, शांति एवं सद्भावनाओ के लिए सघर्षरत् अन्तर्राष्ट्रीय संगठन एमनेस्टी इटरनेशनल, यूनेस्को (UNESCO) आदि यदि-बिहार की जेलों मे विचाराधीन कैदियों की गाथायें सुनें तो अवश्य चौंक कर विस्मृत हो जायेंगे कि किस प्रकार यहा मानवता अपना दम तोड़ रही है। यहा 'हुसैन आरा' प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत तथ्यों को उद्धृत करना सामयिक रहेगा जो बाका लुहार व ऐसे अन्य उदाहरणों के अतिरिक्त हैं।

अपराध–विमुक्ति के बाद भी 14 वर्ष का कारावास

6. संवाददाता के स्वयं के शब्दों में–सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश द्वारा प्रथम दृष्टया दोषारोपण के अभाव में अपराध-विमुक्ति के बाद भी 14 वर्ष कारावास की अवधि भुगत चुके व्यक्ति को बिहार सरकार द्वारा हर्जाना दिये जाने के निर्देश पारित किये, यह आदेश न्याय क्षेत्रों में उदाहरण बनकर दोहराया जावेगा।

1. इण्डियन एक्सप्रेस 3-9-82, पृष्ठ 4।

जून, 1968 में रुदल शाह् को माननीय जिला एवं सत्र न्यायालय द्वारा दोष-मुक्त कर मुक्ति के आदेश पारित किये गये थे, किन्तु लालफीताशाही, अफसरशाही के जाल ने उसे 14 वर्ष तक कारागृह में बन्दी रखा।

7. माननीय मुख्य न्यायाधिपति चन्द्रचूड़ द्वारा पीठासीन खण्डपीठ ने राज्य सरकार की कड़े शब्दों में निन्दा कर प्रताड़ित किया कि सरकार को अपने अधिकारियो की जिम्मेदारियों एवं शर्मनाक कुकृत्यों के प्रति दायित्व बोध हो और वह इसे स्वीकार करे।

8. रुदलशाह् को 30,000/– रुपये पूर्ववर्ती भुगतान 5,000/– रुपये के अतिरिक्त हर्जाना दिलवाने के निर्देश के साथ माननीय न्यायाधिपति ने व्यक्त किया कि यह राशि उसके व उसके परिवार की क्षतिपूर्ति के लिए कोई पर्याप्त नही है या सामन्जस्य नही रखती है। उसके परिवार ने रुदलशाह् का जो सानिध्य खोया है उसे लौटाया जाना सम्भव नही है।

9. सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देशन जारी कर बिहार उच्च न्यायालय का यह मौलिक दायित्व बतलाया कि वह रुदलशाह् जैसे अन्य अभागे-प्रताड़ित विचाराधीन बन्दियों की सूचना प्राप्त कर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदर्शित मार्ग निर्देशानुसार अविलम्ब अग्रसर हो।

10. सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश मे राज्य सरकार को प्रताड़ित व चेतावनी देकर आगाह किया कि वह इस प्रकार 14 वर्ष तक अकारण बन्दी बनाये जाने का आधार प्रकट करे। जेल अधीक्षक, मुजफ्फरपुर द्वारा पेश किये गये आधारहीन स्पष्टीकरण को किसी भी माने मे सतुष्टिजनक नहीं पाया।

11. शाह् को उसके पागलपन के कारण मुक्त नहीं किया गया, यह मात्र मुंह छिपाने वाली बात है। यदि सरकारी तंत्र के कारण विचाराधीन बन्दियो की यही स्थिति है तो शीघ्रातिशीघ्र इस ओर सोचना शीघ्रस्यशुभम् की उक्ति को चरितार्थ करेगा।

अन्वीक्षा काल में 30 वर्ष का कारावास

12. दिसम्बर 1981 मे एक अन्य प्रकरण मे सर्वोच्च न्यायालय ने मुक्ति आदेश पारित कर 5 मार्च, 1982 से किशनगज जेल में विचाराधीन बन्दी बालूजी गाव निवासी रामचन्द्र को दण्ड से मुक्त कर दिया। किन्तु बन्दी को मात्र इस आधार पर कारागृह में रखा गया कि वह बन्दीकाल मे विक्षिप्त अपराधी बन चुका था। राज्य सरकार ने उसे जीवनपर्यन्त 300/– रुपये प्रति माह् की राशि इस सन्दर्भ मे पूर्ववर्ती समुचित क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा पारित आदेश की तिथि से भावी जीवन मे प्रदान किया जाना सशर्म स्वीकार किया, सर्वोच्च न्यायालय ने समस्त बकाया राशि का भुगतान चार सप्ताह मे किये जाने की कड़ी हिदायत के साथ सरकारी पेशकश स्वीकृत की।

न्याय के मन्दिर अन्याय के द्योतक

13. बाका लुहार, रुदल शाह प्रकरणों के श्याह कीर्तिमान् बेशर्म, अन्यायी लालफीताशाही, अफसरशाही एवं अन्याय के ताण्डव नृत्य को नही रोक पायेंगे। यदि इसमें न्यायालय भी सक्षम नही है तो न्याय के ये मन्दिर अन्याय के द्योतक ही होंगे और सम्पूर्ण न्यायव्यवस्था को लपटों, धुम्रा व अग्नि की स्थितियो से गुजरने के बाद भस्म होने से नही बचा पायेंगे। यह अग्नि "मानहानि" रूपी "अग्नि-शमन्" प्रयासो मे भी शान्त नही होगी। अस्तु काल का यह वर्तमान विषम दौर माँ सीता की अग्नि परीक्षा से कम विदारक नही है। यह हमे प्रेरित करता है कि या तो करो या मर जाओ, वैदेही जानकी के समान भूगर्भ में समा जाओ।

14. विश्व के विधिवेत्ता एवं मानवतावादी विचारक् भी निर्दोष विचाराधीन बन्दियों को कई दशक् तक पल-पल तिल-तिल कर दिये गये संतापित मृत्युदण्ड के लिए दोषी ऐसे कारागृह अधीक्षकों की अन्वीक्षा व कारावास का अनुमोदन करेंगे। कुख्यात भागलपुर आंख-फोड़ काण्ड या नात्सी अन्वीक्षायें या अन्याय प्रकरण, जो मानवीय मूलभूत अधिकारो के हनन, नैसर्गिक न्याय-सिद्धान्तों, सामान्य विधि या भारतीय संविधान में अनुच्छेद 14, 19, 20, 21 एव 22 के विरोधाभासी है, ऐसे प्रसंगों मे सर्वोच्च न्यायालय को अपना जैविक स्वतन्त्रता पर विधि-विमोचन मात्र चादी के सिक्को पर ही अवस्थित हर्जाने के रूप में ही मूल्यांकन नही करना चाहिये अपितु, दोषी अधिकारियों की अन्वीक्षा एवं दण्ड पर भी आकलित करना चाहिये। ऐसे विप्लवों में मात्र हर्जाना-राशि ही प्रताड़ना का परिहार्य या पर्याप्त पर्याय समझना श्रेयस्कर नही होना चाहिये।

न्यूयार्क में न्याय में विलम्ब

15. अमेरिका में सन् 1949 मे न्याय व्यवहार तथा अभिवचनो पर न्यूयार्क के आयुक्तों ने न्यूयार्क नगर के सम्बन्ध में यह प्रतिवेदन प्रस्तुत किया—"यह सुविदित है कि उस नगर में सर्वोच्च न्यायालय की सत्ता पिछले सालों मे विलम्ब के अम्बार के कारण कम हो गई है—जब तक उसके भार से मुक्ति नही मिलती है, यह बढ़ते हुए कार्य के सम्बन्ध मे न्यायालय वास्तविक कर्त्तव्य का कदापि पालन नही कर सकता।"

थेम्स से हुगली—वोलगा से गंगा—हांगहो से ब्रह्मपुत्र

16. इंगलैण्ड में न्याय-प्रणाली अत्यन्त विलम्ब वाली रही। एक 'लिटन'[1] के मुकदमें के फैसले मे पूरे 100 वर्ष लगाकर अंग्रेजी न्याय के हमारे पुरखो व पूर्वजों ने नया काला इतिहास बनाकर हमें विरासत मे दिया। फिर भी हम मैकाले का पितृ श्राद्ध करने से नही चूकते। थेम्स नदी के पानी को हुगली मे लाने के इतिहास

1. लिटोन बनाम फुट 1919

को भुलाकर न तो वोल्गा से गंगा लाते हैं न न्याय गंगा के लिए भागीरथ कौटिल्य, वृहस्पति, मनु, याज्ञवल्क्य, कोटायन से प्रेरणा लेते हैं। हां, कलकत्ता में ब्रह्मपुत्र में ह्वांगहो (चीन राष्ट्र की नदी) लाने का प्रयास गतिमान है। परन्तु वहां भी न्यायपालिका तो फिर भी, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारी कूटनीतिक आक्रमणकारी लॉर्ड क्लाइव से प्रेरणा लेती है व थेम्स का पानी आज भी हुगली में बहता है। यह कैसी विडम्बना व मानसिक पराधीनता है ?

मुख्य न्यायाधीश वारेन का मत

17. जैसा कि मुख्य न्यायाधीश वारेन ने भी वाशिंगटन में हुई अमरीकी न्याय सस्थान के सम्मेलन में कहा—

"संयुक्त राज्य के सवैधानिक सरकार के लिए संघीय न्यायालयों में विलम्ब और अवरोध संकुलन ने आज एक दुस्साहस समस्या उत्पन्न करदी है, यह प्रत्येक नागरिक को प्राप्त न्याय के गुण व मात्रा का समझौता कर रहा है और ऐसा करने में यह सयुक्त राज्य की प्रतिष्ठा को समस्त ससार में एक आलोच्य विषय बना देती है।"

न्याय अन्धा स्वीकार, किन्तु विलम्ब अनुचित

18. आम आदमी का न्याय-व्यवस्था से विश्वास हिल रहा है, मान्यता व सम्मान धीरे-धीरे मरणासन्न हो रहा है। उदाहरणतया कई वर्ष पहले एक पत्रिका[1] के सम्पादकीय मे प्रकाशित टिप्पणी की ओर ध्यान आकर्षित करता हूं :—

"अच्छा अन्धा, परन्तु इतना धीमा क्यों"
(ओ. के. ब्लाइन्ड बट व्हाई सो स्लो)

19. मेरे विचार से न्याय, न तो अन्धा होना चाहिए न विलम्बकारी, यद्यपि नवीनतम धारणाओं मे इलियन्स अपील न्यायालय के एक न्यायाधीश "यूलीसम एस स्केवार्टज" ने पुरजोर शब्दों में इंगित किया कि "विधि में विलम्ब एक पुरानी ही नहीं" बहुत पुरानी बुराई है।

हैमलेट द्वारा विलम्ब पर टिप्पणी

20. अनेक देशों मे तथा सम्पूर्ण इतिहास मे विधि मे विलम्ब, दुःखान्त और सुखान्त साहित्य का बिन्दु रहा है। हैमलेट ने मनुष्य पर सात बोझों का विवेचन किया तथा अपनी इस सूची में विधि के विलम्ब को पांचवीं समस्या बताया। यदि उसकी कविता की लय व तुक अनुमति देती तो, न्याय के विलम्ब को वह प्रथम स्थान पर रखता।

---

1. कोलियर्स. जून 18, 1952 पृष्ठ 129 (अमेरीका)।

डिकन्स के साहित्य में न्याय विलम्ब दु:खान्त

21. महान् लेखक डिकन्स ने इसे "ब्लीक हाउस" पुस्तक में संस्मरणीय बनाया। फ्रांसीसी लेखक मोलिइस व रूसी लेखक चेखव ने इस पर आधारित दु:खान्त साहित्य लिखा।

महान कवि गिलबर्ट और सुलीवन

22. गिलबर्ट और सुलीवन ने इसे व्यंगात्मक गीतों में लिखा। अतएव यह किसी व्यवसाय के लिए कोई नई समस्या नहीं है परन्तु अब इसने ऐसा भयंकर स्वरूप धारण किया है कि हमें समाधान करना ही पड़ेगा। "न्याय में देरी करने का तात्पर्य है न्याय से इन्कार करना"[1] और हालांकि यह समस्या बहुत ही पुरानी है व कई मुसीबतों से युक्त है लेकिन फिर भी न्यायालयों को व वकील समुदायों को इसे अपनी ओर से सुलझाने का पूरा प्रयत्न करना चाहिये।[1]

महात्मा गांधी एवं कवि गुप्त

23. विदेशी साहित्य को छोड़, स्वदेश में देखें, तो महात्माजी ने इससे दु:खी होकर ग्राम पंचायती न्याय-व्यवस्था पर बल दिया व "चौपाल पर न्याय" का आह्वान किया।

राष्ट्र कवि मैथलीशरण गुप्त ने आह भरकर व्यंग्य में कहा :—

"देवाला करती दीवानी,
मरे फौजदारी की नानी।
थोड़े में निर्वाह यहा है,
अहा ! ग्राम्य जीवन भी क्या है।।"

खामोश अदालत जारी है

24. अत: न्याय खर्चीला व विलम्बकारी होने से विनाशकारी स्वरूप धारण कर रहा है व समाज को अमान्य हो रहा है। "अदालत" चलचित्र व "खामोश अदालत जारी है" के नाटक व अनेक चलचित्रों में न्यायालयो के दृश्य, आज की न्याय-प्रणाली के विलम्ब, खर्चीलेपन, असंगतियों व विडम्बनाओं को प्रदर्शित करते हैं।

पागल "लुहार" की "पुकार"–क्या कोई अमिताभ 'बच्चन' सुनेगा

25. लुहार "बांका" को बिना फैसले के 3 बार जन्म कैद भुगताने वाले, 37 वर्ष से जेल में विचाराधीन, कुत्सित न्याय-प्रणाली की यातना से पागल की "पुकार" को भगवती न्यायालय ने 2 सितम्बर, 1982 को सुनकर, सोहराब मोदी

---

1. डिले इन कोर्ट, प्रस्तावना पृष्ठ 23, शिकागो विश्वविद्यालय का कानूनी सर्वेक्षण 1959।

की "पुकार" चलचित्र को नये आयाम के रूप में प्रस्तुत कर "लुहार" की करुण कहानी पर चलचित्र बना तथा इस मृत न्याय-प्रणाली को विश्व के चौराहे पर नंगा करने का, बिना लेखक और डाइरेक्टर के किसी भी अमिताभ बच्चनो के लिए एक सशक्त "थीम" दे दिया है। देखना यह है कि क्या कोई "बच्चन" त्रस्त एवं दुःखी पागल लुहार की चित्कार को सुनकर, एक अमर चलचित्र बना कर अपनी कला का मानव समाज को चिरकाल के लिए अमरत्व प्रदान करते है अथवा नही।

आइये, विलम्ब की चरम सीमा व बकाया वादों सांख्यिकी विश्लेषण अब विस्तार से अगले अध्याय में करें।

विलम्ब और बकाया वादों का सांख्यिकीय अम्बार

1 जनवरी, 1985 को उच्चतम न्यायालय में लम्बित 1,48,891, उच्च न्यायालयों में 13 लाख

रिक्तियां : उच्च न्यायालय 57

22 जनवरी, 1985 को उत्तेजित लोकसभा में श्री [अशोक सेन ने बताया कि 1984 के अन्त में शीर्षस्थ न्यायालय ने बकाया वादों की असाधारण वृद्धि के सारे रिकार्ड तोड़ दिये क्योंकि उच्चतम न्यायालय की निर्णयपंजी मे निपटारे के लिए 1,48,891 मामले उच्च न्यायालयों में 30-6-84 तक 13 लाख मामले लम्बित थे ।

अखिल भारतीय सांख्यिकीय आंकड़

अब तक के उपलब्ध सांख्यिकीय आंकड़े ग्राफों, चित्र-पत्रों और तालिकाओ के रूप में अब प्रस्तुत किये जा रहे हैं । इनसे न्यायाधीशो की संख्या, औसत निपटारा, कार्य दिनो और उनके तुलनात्मक विश्लेषण के साथ-साथ अध्ययन के विभिन्न पहलुओं सहित विभिन्न उच्च न्यायालयों, अधीनस्थ न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में दर्ज किये गये, निपटाये गये और लम्बित मामलो का पता लग सकेगा ।

महत्वपूर्ण ब्योरे तालिकाओं व मानचित्रों में दिये गये है और इसे गहन अनुसंधान और अध्ययन के लिए निर्दिष्ट किया जा सकता है । विभिन्न उच्च न्यायालयों के मामलो के 1951 से 1984 तक के मामलों की अखिल भारतीय बढ़ोतरी बताई गई है । संस्थित किये गये और लम्बित मामलों की तुलना में, न्यायाधीशों की कम संख्या और परिणामस्वरूप निपटाये गये वादोका आकलन मानचित्रों मे दिखाया गया है ।

मानचित्र संख्या 1

उच्चतम न्यायालय में मामलों का संस्थान, निपटान और लम्बन

वर्ष 1978—84
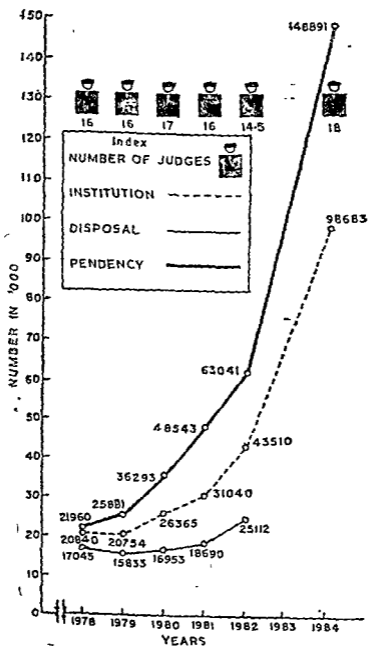
मानचित्र संख्या 2

भारत के उच्च न्यायालयों में बकाया मामलों में वृद्धि को दर्शाते हुए
1962—1982 = दो.दशक
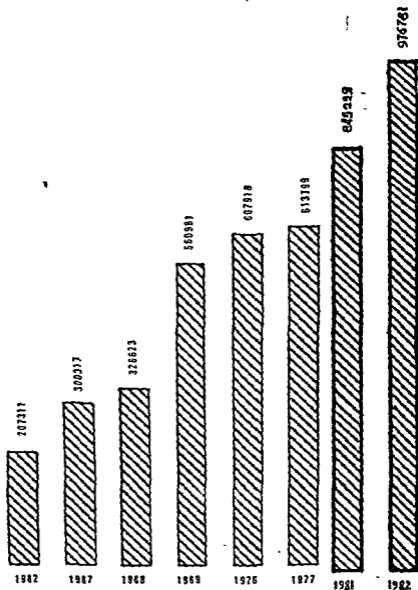
मानचित्र संख्या 3 (1973—1982 वर्षसंस्थन, लम्बन औरन्यायाधीशों की संख्या)

वर्ष 1982

	दा.	ब.	न्या.
1	86407	173586	40.3
2	63543	60901	17.7
3	44907	83331	33
4	51043	103427	30.4
5	32719	46709	20 7
6	5260	12174	7.5
7	24302	27755	15.8
8	8891	9041	3.5
9	9455	17554	4
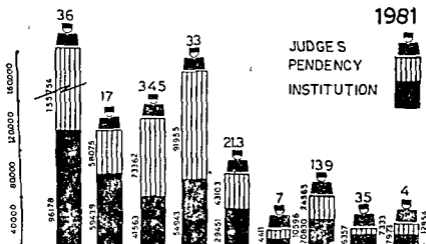
1981

JUDGES

PENDENCY

INSTITUTION
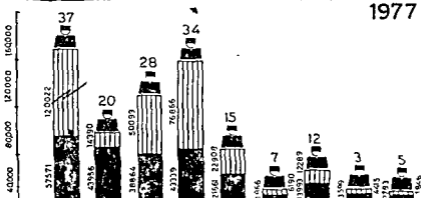
1977
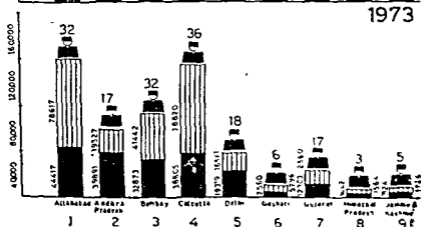
1973

Allahabad Andhra Pradesh Bombay Calcutta Delhi Gauhati Gujarat Himachal Pradesh Jammu & Kashmir

1 2 3 4 5 6 7 8 9
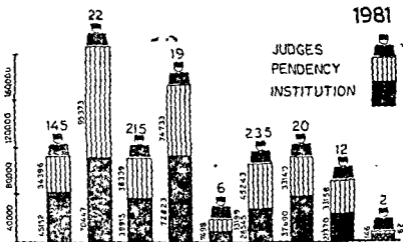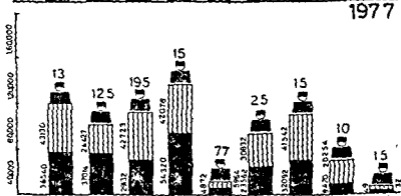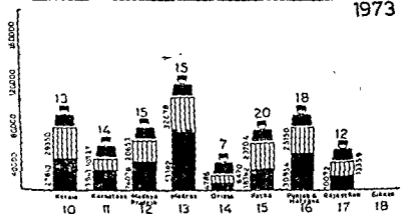
तालिका संख्या 2

1978 से 1983 के दरम्यान उच्च न्यायालय में दायर किये गये मुकद्दमें

उच्च न्यायालय	दायर			
	1978	1979	1980	1983
इलाहाबाद	64734	62696	64359	85136
आन्ध्र-प्रदेश	48750	54290	65630	63543
बम्बई	35898	39930	45539	28619
कलकत्ता	50449	54992	56289	51034
दिल्ली	23424	26504	27408	32674
गौहाटी	2097	2387	2989	4796
गुजरात	14972	16845	18716	24884
हिमाचल प्रदेश	4517	4288	4141	6203
जम्मू और कश्मीर	4285	4639	6221	10751
कर्नाटक	36920	57455	55746	41114
केरल	34275	35511	37679	56982
मध्य प्रदेश	34043	30255	31184	36674
मद्रास	55472	60785	60758	73837
उड़ीसा	5269	5694	6102	7412
*पटना	22506	21562	23778	32168
पंजाब और हरियाणा	34402	36431	37966	42261
राजस्थान	3831	16288	21093	25532
सिक्किम	26	62	91	172
योग	485880	530614	555719	623792

*केवल मुख्य मुकद्दमे

तालिका संख्या 3

1972 से 1983 के दरम्यान उच्च न्यायालयों में निर्णीत मुकद्दमें

उच्च न्यायालय का नाम	निर्णीत 1972	1973	1974	1975
1. इलाहाबाद	37522	31950	43758	42632
2. आन्ध्रप्रदेश	36695	38453	41737	46696
3. बम्बई	26885	29170	31711	32315
4. कलकत्ता	44870	38607	38544	51551
5. दिल्ली	14980	13150	18870	15442
6. गोहाटी	2513	3093	2454	1647
7. गुजरात	13072	12739	11676	12228
8. हिमाचल प्रदेश	1875	1123	1840	2529
9. जम्मू और कश्मीर	1824	1542	1922	1759
10. केरल	34986	26549	32799	32173
11. कर्नाटक	21550	18061	21283	18470
12. मध्य प्रदेश	18982	16264	23730	28282
13. मद्रास	44968	51725	49485	49483
14. उड़ीसा	4784	5395	4697	5928
15. पटना	7785	11086	12987	14569
16. पंजाब और हरियाणा	26921	30784	34525	30498
17. राजस्थान	9244	7900	14601	11136
18. सिक्किम	—	—	—	—
योग	349446	377591	386619	397338

निर्णीत

	1976	1977	1978	1979	1980	1983
	45593	44844	71146	85210	57451	61204
	44266	42459	44597	49287	43081	60717
	41579	36371	33668	36754	36631	24853
	51185	47757	47770	52355	47995	40717
	19390	18310	19881	26213	26842	21494
	2397	1608	1520	2377	1739	3809
	13489	14560	13704	13944	15114	20480
	2686	2995	4255	3440	4275	6191
	1669	1952	2622	4226	4148	6015
	37694	36931	29263	45841	44370	45937
	20489	24992	42462	38361	39227	25352
	24039	25242	37450	35509	32825	31898
	51952	44635	57079	52311	59405	56393
	4963	4794	3412	4269	4558	4398
	15807	14510	16127	22894	20806	26928
	26009	29565	42193	40594	38196	42994
	10330	9116	12339	13534	17261	19746
	51	63	35	45	83	163
योग	413588	400704	479523	527164	494007	499289

केवल मुख्य मुकद्दमे

तालिका संख्या 4

1972 से 1983 भारत के उच्च न्यायालयों में प्रति वर्ष लम्बित

उच्च न्यायालय का नाम	लम्बित वाद पत्र			
	31.12.72	31.12.73	31.12.74	31.12.75
1. इलाहाबाद	78617	89573	95729	108917
2. आन्ध्रप्रदेश	19527	21936	23627	19753
3. बम्बई	41442	45145	46022	47985
4. कलकत्ता	78820	66588	68908	75036
5. दिल्ली	16561	19730	20495	22190
6. गोहाटी	5796	5203	5290	6290
7. गुजरात	12560	12124	12365	12687
8. हिमाचल प्रदेश	1564	1883	2440	3257
9. जम्मू और कश्मीर	1726	2308	2652	2905
10. केरल	29353	30614	28938	33823
11. कर्नाटक	10727	10613	12425	16478
12. मध्य प्रदेश	20653	28417	35268	39051
13. मद्रास	32678	34345	34030	38425
14. उड़ीसा	6470	5867	5997	5992
15. पटना	23704*	25168*	26155*	25610*
16. पंजाब और हरियाणा	25150	25320	28921	32495
17. राजस्थान	13359	15531	16204	19622
18. सिक्किम	—	—	—	10
योग	415707	410365	465466	510326

*विविध मुकद्दमे इसमें सम्मिलित नहीं है।

वादों की संख्या

31-12-76	31-12-77	31-12-78	31-12-79	31-12-80	31-12-83
120022	132749	125852	103338	110246	197516
14390	15887	20050	25053	37602	64746§
50099	52592	54822	57998	66906	93410
76866	72448	75127	77764	86058	109031§
22908	26587	30130	30421	30987	57889
6190	6548	7125	7135	8385	9619
12289	11722	12990	15871	19473	32159
4415	5019	5281	6129	5995	9053
3846	4677	6340	6753	8826	22290
43130	42739	44106	55720	67096	116564
24427	36449	34552	31712	30164	72773
42723	46613	43206	37952	36311	47192§
42078	51763	50156	58630	59983	101879§
5964	6042	7908@	9333	10877	12604
30822*	29435*	35814	34482*	37454*	54582*
41542	46069	38278	34115	33915	33285
20254	20558	22050	24804	28636	42986
32	21	12	29	37	71§
योग 564007	607918	613799	317239	678951	—

*विविध मुकद्दमें इसमे सम्मिलित नही है।

§ — 30-6-83

@ वृद्धि नौ वादो के पुनःसंस्थन के कारण

तालिका संख्या 5

भारत के उच्च न्यायालयों में वर्ष 1980 से 1981 के दरम्यान दर्ज,

उच्च न्यायालयों का नाम	दायर 1980	दायर 1981	निर्णीत 1980	निर्णीत 1981
1. इलाहाबाद	64359	97178	57451	50670
2. आंध्रप्रदेश	55630	59439	43081	38966
3. बम्बई	45530	41563	36631	35107
4. कलकत्ता	56289	54943	47995	49046
5. दिल्ली	27408	29451	26842	17335
6. गोहाटी	2989	4411	1739	2227
7. गुजरात	18716	20830	15114	15738
8. हिमाचल प्रदेश	14141	6357	4275	5019
9. जम्मू और कश्मीर	6221	7973	4148	3945
10. कर्नाटक	55746	70447	54370	42170
11. केरल	37679	45152	39227	40920
12. मध्य प्रदेश	31184	35915	32825	33687
13. मद्रास	60768	72823	59405	58973
14. उड़ीसा	6102	7498	4558	5176
15. पटना	23778	27645	20806	18756
16. पंजाब और हरियाणा	37996	37690	38196	38456
17. राजस्थान	21093	21730	17261	16148
18. सिक्किम	91	146	83	112
योग	555719	638731	493007	472460

निर्णीत और बकाया मामलों का तुलनात्मक विवरण

बकाया 1980	बकाया 1981	दायर 1983	निर्णीत 1983	बकाया 31-12-83
110246	155754	85136	61206	197516
37602	58075	63543	60717	64746❀
66906	73362	28619	24853	93410
86058	91955	51034	40538	109031❀
30987	44103	32674	21494	57889
8385	10569	4796	3809	9619
19473	24565	24884	20480	32159
5995	7333	6203	6191	9053
8826	12854	10751	6015	22290
67096	95373	41114	45937	116364
30164	34396	56982	35003	72773
36311	38339	36674	31898	47192❀
59983	74733	73837	56393	101879❀
10777	13199	7412	4398	17604
37454	45243	32163	26928	54582
33915	33149	42261	42994	33285
28636	33158	25522	19766	42986
37	62	172	163	71❀
योग 678951	845222	507783	623777	—

❀30-6-83

18/सांख्यकीय : विलम्ब और बकाया बाद

मानचित्र संख्या 4

18 उच्च न्यायालनों में दायरी, निपटान के पीछे रह जाने के कारण बकाया का अंबार वर्ष 1973—1982
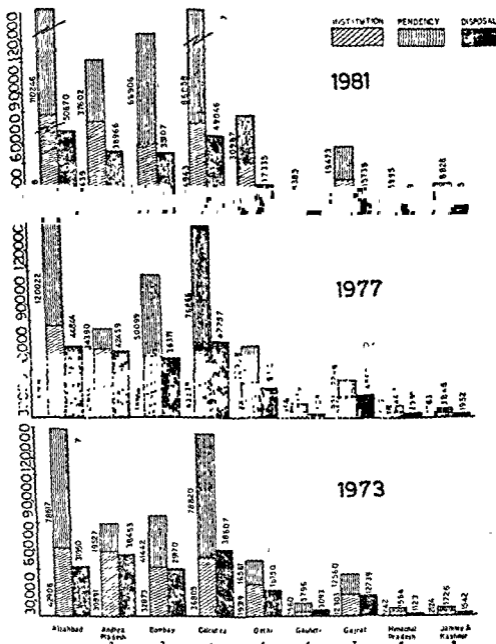
मानचित्र संख्या 4 का द्वितीय भाग

18 उच्च न्यायालयों में दायरी से निपटने, के पीछे रह जाने के कारण, बकाया में हुई वृद्धि को दर्शाते हुए—एक दशक।
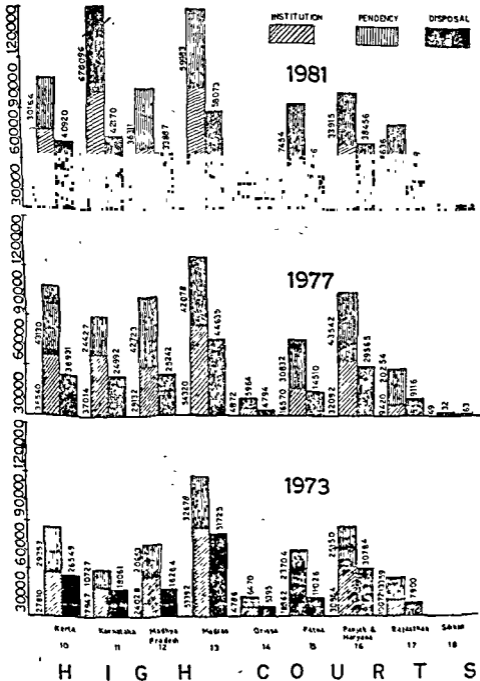
70/सांख्यकीय : विलम्ब और बकाया वाद

मानचित्र संख्या 5

भारत के उच्च न्यायालयों में संस्थान के निपटान से अधिक होने के कारण हाल ही मे होने वाली बकाया की वृद्धि को दर्शाते हुए–1978-1982 उच्च न्यायालय मे मामलों के संस्थान, निपटान और लम्बन
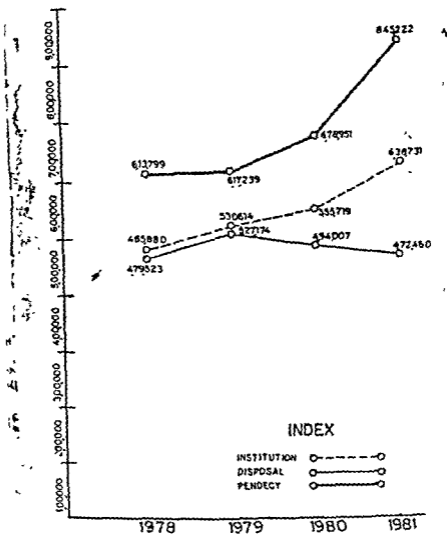
1982	दायर	=	663183			
	निपटान	=	551785	बकाया	=	986781

शीर्षस्थ न्यायालय मे लम्बित 1,50,000 और उच्च न्यायालयों में 15,00,000

न्यायालयो मे मामलों की बकाया और निपटारे में विलम्ब और पिछली तीन दशाब्दियो के दौरान की असामान्य और उल्लेखनीय बढोतरी को प्रदर्शित करने वाली सारणियो का विश्लेषण विस्मयजनक, भयोत्पादक, उद्वेगकारी और समाज को हिला देने वाला और न्यायपालिका को खंडित करने वाला है। उच्च न्यायालयों में 1950-51 में लम्बित लगभग 50,000 मामले अब 15 लाख की सीमा को पार कर गये हैं और उच्चतम न्यायालय के 1950-51 के 5,000 मामले 1985 तक 1,50,000 हो गये हैं।

मानचित्र संख्या 6

भारतीय उच्च न्यायालय में बकाया के दानव को दर्शाते हुए—चार दशक—
वर्ष 1951–1984–18 गुना
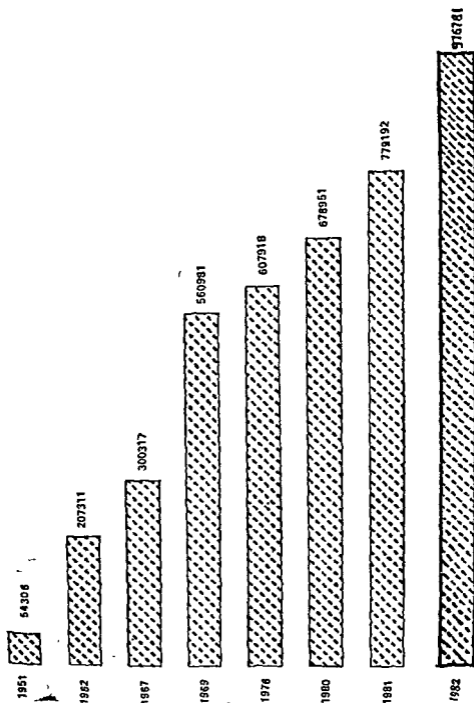
1983
बकाया 30-6-83 तक 10,50,009

72/सांख्यकीय : विलम्ब और बकाया वाद

विलम्ब–एक खतरनाक नीति

उच्च न्यायालयों–उच्चतम और उच्च न्यायालयों के आंकड़ों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक 6 महीने में भारत के उच्च न्यायालयों में एक लाख मामलों की बढ़ोत्तरी हो जाती है। 1-1-1981 को 6,78,951 मामले लम्बित थे और भारत के विधि विभाग द्वारा प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार 30-6-81 को 7,79,192 मामले लम्बित थे। अकेले इलाहाबाद में पिछले छः महीनों के दौरान 35,000 मामलों की बढ़ोतरी हुई जब कि न्यायाधीशों की संख्या में कोई वृद्धि नहीं हुई। यह दुर्भाग्य की बात है कि सम्पूर्ण भारत में जहां प्रत्येक छः माह में 1,00,000 मामलों की बढ़ोतरी होती है न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाने की बात तो दूर, रिक्त पदों तक को नहीं भरा जाता है।

मानचित्र संख्या 7

न्यायाधीशों की संख्या गुना में तीन गुनी वृद्धि की तुलना में लम्बन में सोलह गुना वृद्धि को दर्शाते हुए वर्ष 1951–1982
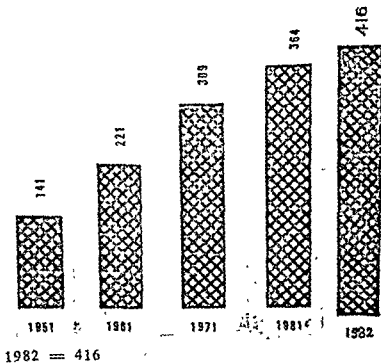
1982 = 416

मानचित्र संख्या 8

निपटान से अधिक संस्थान सहित, उच्च न्यायालयों में कुल लम्बन से निपटान के कम प्रतिशत को दर्शाते हुए–(1972–1983–एक दशक)
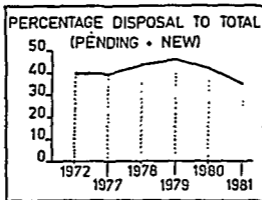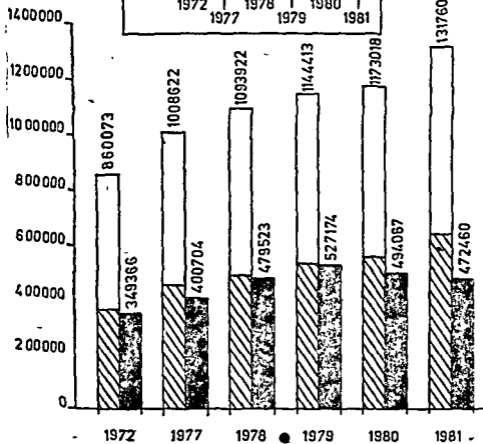
	दायर	निपटान	विचाराधीन
1982 =	663183	551785	976781
1983 =	319435	247776	1050009

(30-6-83 तक)

तालिका संख्या 6

10 वर्ष से अधिक के मामलो के निपटारे मे की गई देरी की विवेचना निम्नलिखित आंकडों से की जा सकती है।

बकाया 31-12-81 और 31-12-82 के मुख्य [मुकदमें केवल] अखिल भारतीय

	दीवानी 1981	दीवानी 1982	दाण्डिक 1981	दाण्डिक 1982	योग 1981	योग 1982
1. एक वर्ष से कम	283026	290680	40830	46799	323856	337479
2. 1 से 2 वर्ष	141741	175026	22969	27764	164710	202790
3. 2 से 3 वर्ष	101136	117938	12460	14875	113596	132813
4. 3 से 4 वर्ष	65585	86130	7536	9303	73121	95433
5. 4 से 5 वर्ष	43448	56603	4317	6340	47765	62943
6. 5 से 6 वर्ष	30050	35775	2254	3247	32304	39022
7 6 से 7 वर्ष	19721	24774	793	1555	20514	26329
8 7 से 8 वर्ष	16378	16564	272	507	16650	17071
9. 8 से 9 वर्ष	9279	13089	124	197	9403	13286
10 9 से 10 वर्ष	6426	6987	17	97	6453	7084
11. 10 वर्ष से ऊपर	14041	16639	20	31	14061	16670
योग :	730831	840205	91602	110715	822433	950920

तालिका संख्या 7

निपटाये गये मामलो की संख्या के संस्थित किये गये मामलों की संख्या से कम होने के परिणामस्वरूप रही बकाया के परिणाम की विवेचना निम्नलिखित से की जा सकती है ।

	दायर	निपटान	अन्तर	न्यायाधीश
1975	441880	396920	54960	—
1976	463697	413588	50105	277.25
1977	447741	400704	47057	280.2
1978	485880	479425	6357	289.55
1979	530614	527174	3440	347.63
1980	555719	494007	61712	322.40
1981	638731	472460	166271	290.70
1982	663183	551785	111398	311.70

1979 वर्ष न्यायपालिका के लिए स्वर्णिम वर्ष रहा जब बकाया बढ़ोतरी नगण्य हो गई। परन्तु 1981 अब इसके विपरीत कालिखमय रहा जब 3440 के स्थान पर 16,6271 मुकदमे बकाया में बढ़े. । स्मरण रहे कि 1979 मे 527174 मुकदमे निर्णित हुए परन्तु 1981 मे केवल 472460 निर्णित किये जा सके, यद्यपि दायरी हर वर्ष बढ़ती है । 1979 में वास्तविक न्यायिक कार्य करने वाले न्यायाधीश 347.63 थे, जो सर्वाधिक रहे ।

इससे प्रकट होता है कि ऊपर उद्धृत 1978 और 1979 मे विधि मंत्री द्वारा की गई घोषणा के पश्चात् भी लगभग छः लाख पुराने मामलों की बकाया के निपटारे को बात तो दूर रही, निपटाये गये मामलों की संख्या ही संस्थित किये गये मामलों की संख्या के बराबर नहीं हो पाई किन्तु 1978 79 में 50 न्यायाधीशों की नियुक्ति हो जाने के फलस्वरूप दोनों का अन्तर 1975, 1976 और 1977 के लगभग 50000 से 1979 के 3000 तक कम हो गया है। अब यह पुनः बढ गया है और बाद के वर्षों में बढता जा रहा है और प्रति वर्ष 1 लाख मामलो की बढोतरी होती है। वर्ष 1981 की उल्लेखनीय वृद्धि को 1980-81 और 1982 में बनाये नही रखा जा सका जैसा कि विधि मंत्री के 26 जुलाई 1983 के कथन से स्पष्ट है :—

"श्री कौशल ने कहा कि 33 न्यायाधीशो को 1981 मे नियुक्त किया गया। 1982 में न्यायाधीशों की 37 नियुक्तियां की गई और 1983 में अब तक 27 नियुक्तिया की जा चुकी है।

उन्होने कहा कि 1980 मे 27 सेवानिवृतियां हुई, 1981 में 18 हुई, 1982 मे 27 हुई और 1983 में अब तक 14 हो चुकी है।

राज्य सरकारों ने यह कथन करने वाले पत्र भेजे थे कि तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति की जा सकती है क्योंकि उन्हें योग्य पाया गया है, यह भी उन्होने कहा।"

इसी 1978 से 1982 के दौरान उच्चतम न्यायालय के मुख्य मामलों से संबंधित, 1978 में लम्बनों में हुई (21960 से 63046 तक) तीन गुनी वृद्धि से संबधित, मामलो के संस्थित किये जाने में हुई कमी, जो .981 और 1982 के वर्षो मे थोडी सी बढी किन्तु डयोडी तक भी नही, से संबधित ग्राफों मे दिखाया गया है। दुःख की बात यह है कि जो न्यायाधीश कार्य कर रहे है उनकी संख्या 16 से घट कर 1405 रह गई हैं। 1983-84 मेइसे फिर नियुक्तियो द्वारा पूरा किया गया जो अब 1985 मे पूरी है।

तालिका संख्या 8

भारतीय न्यायपालिका पर कलंक

(2) हमारी भारतीय न्यायपालिका पर कलंक का धब्बा लगाने वाला प्राचीनतम मामला 761 वर्ष में निपटाया गया। बंटिप्पा राज के मामले (1) ने 200 वर्ष लिए। अन्य परिचित एवं खोजे गए प्राचीनतम मामले जो उच्च न्यायालयों में लम्बित है निम्न प्रकार है :—

उच्च न्यायालय का नाम	विश्व किर्तिमान भारत द्वारा 761 वर्ष मे निपटारा	वर्ष जिससे प्राचीनतम मामले लम्बित है।	30-6-82 लम्बित मामलों का योग
1	2	3	4
1. कलकत्ता	200 वर्ष पुराने विवाद पर अधिमत	1938	93 537

1	2	3	4
2. मद्रास	200 वर्ष पुराना विवाद, जिसे देटिहा	1940	81,528
3. इलाहबाद	राडा के मामले से जाना जाता हैं, इस	1944	1,85,962
4. बम्बई	सप्ताह उच्चतम न्यायालय के आशानु-	1946	78,742
5. मध्य प्रदेश	कूल सक्षम आया जिसमे 170 पृष्ठों	1950	26 872
6. पटना	का फैसला लिखने हुए बिहार सरकार की अपील को मंजूर किया गया ।	1951	46,896
7. केरल	यह विवाद 17 वी शताब्दी में मुगल	1951	39,764
8. गुजरात	पासनकाल में अंतिम दिनों में उत्पन्न	1955	26,661
9. कर्नाटक	हुआ। प्रथम वाद 1895 में फाईल	1956	1,10,075
10. दिल्ली	किया गया एवं 70 वर्षो से उच्चतम	1060	45,412
11. जम्मू एवं कश्मीर	न्यायालय के सक्षम अपीले आने लगी। अर्जीवार एवं प्रत्यर्क्षी की कई पीढियों	1962	15,193
12. राजस्थान	की इस विवाद के लम्बे इतिहास मे मृत्यु	1968	27,590
13. गौहाटी	हो गई। यह विवाद उत्तर प्रदेश एवं	1968	11,614
14. पंजाब एवं हरियाणा	राज्यों में फैली राज की भूमि मकान, जेंवर आदि पर था। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों सहित अनेक न्यायाधीशो ने पिछले वर्षो में इस मामले को सुना।	1969	35,682
15. उडीसा	न्यायमूर्ति मुर्तजा फजल अली, न्याय-	1969	13,306
16. हिमाचल प्रदेश	मूर्ति ए वेरदराजन एवं न्यायमूर्ति वीबी एरामी की खंडपीठ व द्वारा यह निर्णय दिया गया था।	1971	8,139
17. आन्ध्र प्रदेश	विश्व ने सबसे पहले लम्बे समय तक चलने वाले मुकदमेवादी का किर्तिमान भारत के स्थापित किया है एक वाद जो	1972 1974	8,139 65,700
18. सिक्किम	सन् 1205 इसे फाईल किया गया था उसका निर्णय पुने के एक न्यायाधीश द्वारा 761 वर्षों बाद सन् 1966 मे दिया गया।	1980	101
		कुल=	9,12,764

1. इण्डियन एक्सप्रेस, अप्रेल 23, 1983
2. कौशल (एल एम) स्टेटमेन्ट आन 26-6-83

गुनेस बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड के अनुसार इस मामले मे लोक कार्यक्रमों में मध्यस्थता एव धार्मिक त्योहारो मे प्राथमिकता के अधिकार अन्तर्गत थे ।

इससे प्रकट होता है कि ऊपर उद्धत 1978 और 1979 में विधि मंत्री द्वारा की गई घोषणा के पश्चात् भी लगभग छः लाख पुराने मामलों की बकाया के निपटारे की बात तो दूर रही, निपटाये गये मामलों की संख्या ही संस्थित किये गये मामलों की संख्या के बराबर नहीं हो पाई किन्तु 1978 79 में 50 न्यायाधीशों की नियुक्ति हो जाने के फलस्वरूप दोनों का अन्तर 1975, 1976 और 1977 के लगभग 50000 से 1979 के 3000 तक कम हो गया है। अब यह पुनः बढ़ गया है और बाद के वर्षों मे बढ़ता जा रहा है और प्रति वर्ष 1 लाख मामलो की बढ़ोतरी होती है। वर्ष 1981 की उल्लेखनीय वृद्धि को 1980-81 और 1982 में बनाये नहीं रखा जा सका जैसा कि विधि मंत्री के 26 जुलाई 1983 के कथन से स्पष्ट है:—

> "श्री कौशल ने कहा कि 33 न्यायाधीशों को 1981 में नियुक्त किया गया। 1982 मे न्यायाधीशों की 37 नियुक्तियां की गई और 1983 में अब तक 27 नियुक्तिया की जा चुकी है।
>
> उन्होंने कहा कि 1980 मे 27 सेवानिवृतिया हुई, 1981 में 18 हुई, 1982 मे 27 हुई और 1983 में अब तक 14 हो चुकी है।
>
> राज्य सरकारों ने यह कथन करने वाले पत्र भेजे थे कि तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति की जा सकती है क्योंकि उन्हें योग्य पाया गया है, यह भी उन्होंने कहा।"

इसी 1978 से 1982 के दौरान उच्चतम न्यायालय के मुख्य मामलों से संबंधित, 1978 में तम्बनों मे हुई (21960 से 63046 तक) तीन गुनी वृद्धि से संबंधित, मामलों के संस्थित किये जाने मे हुई कमी, जो .981 और 1982 के वर्षों मे थोड़ी सी बढ़ी किन्तु डयोढ़ी तक भी नहीं, से संबंधित ग्राफों मे दिखाया गया है। दुःख की बात यह है कि जो न्यायाधीश कार्य कर रहे है उनकी संख्या 16 से घट कर 1405 रह गई है। 1983-84 मेंइसे फिर नियुक्तियो द्वारा पूरा किया गया जो अब 1985 मे पूरी है।

तालिका संख्या 8

भारतीय न्यायपालिका पर कलंक

(2) हमारी भारतीय न्यायपालिका पर कलंक का धब्बा लगाने वाला प्राचीनतम मामला 761 वर्ष मे निपटाया गया। वैंदिप्ता राज के मामले (1) ने 200 वर्ष लिए। अन्य परिचित एवं खोजे गए प्राचीनतम मामले जो उच्च न्यायालयों में लम्बित है निम्न प्रकार है :—

उच्च न्यायालय का नाम	विश्व किलिमान भारत द्वारा 761 वर्ष में निपटारा	वर्ष जिससे प्राचीनतम मामले लम्बित है।	30-6-82 लम्बित मामलों का योग
1	2	3	4
1. कलकत्ता	200 वर्ष पुराने विवाद पर अधिमत	1938	93 537

1	2	3	4
2. मद्रास	200 वर्ष पुराना विवाद, जिसे देदिहा	1940	81,528
3. इलाहबाद	राडा के मामले से जाना जाता हैं, इस	1944	1,85,962
4. बम्बई	सप्ताह उच्चतम न्यायालय के आशानु-	1946	78,742
5. मध्य प्रदेश	कूल सक्षम आया जिसमें 170 पृष्ठो	1950	26 872
6. पटना	का फैसला लिखने हुए बिहार सरकार की अपील को मंजूर किया गया ।	1951	46,896
7. केरल	यह विवाद 17 वीं शताब्दी में मुगल	1951	39,764
8. गुजरात	पासनकाल में अंतिम दिनों में उत्पन्न	1955	26,661
9. कर्नाटक	हुआ । प्रथम वाद 1895 में फाईल	1956	1,10,075
10. दिल्ली	किया गया एवं 70 वर्षो से उच्चतम	1060	45,412
11. जम्मू एवं कश्मीर	न्यायालय के सक्षम अपीले आने लगी । अर्जीवार एवं प्रत्यर्क्षी की कई पीढ़ियों	1962	15,193
12. राजस्थान	की इस विवाद के लम्बे इतिहास मे मृत्यु	1968	27,590
13. गौहाटी	हो गई । यह विवाद उत्तर प्रदेश एवं	1968	11,614
14. पंजाब एवं हरियाणा	राज्यों में फैली राज की भूमि मकान, जेंवर आदि पर था । उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों सहित अनेक न्यायाधीशो ने पिछले वर्षो मे इस मामले को सुना ।	1969	35,682
15. उड़ीसा	न्यायमूर्ति नुर्तजा फजल अली, न्याय-	1969	13,306
16. हिमाचल प्रदेश	मूर्ति ए वेरदराजन एवं न्यायमूर्ति बीबी एरामी की खंडपीठ व द्वारा यह निर्णय दिया गया था ।	1971	8,139
17. आन्ध्र प्रदेश	विश्व ने सबसे पहले लम्बे समय तक	1972	8,139
	चलने वाले मुकदमेबादी का किर्तिमान भारत के स्थापित किया है एक वाद जो	1974	65,700
18. सिक्किम	सन् 1205 इसे फाईल किया गया था उसका निर्णय पुने के एक न्यायाधीश द्वारा 761 वर्षों बाद सन् 1966 मे दिया गया ।	1980	101
		कुल=	9,12,764

1. इण्डियन एक्सप्रेस, अप्रेल 23, 1983
2. कौशल (एल एम) स्टेटमेन्ट आन 26-6-83

गुनेम बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड के अनुसार इस मामले मे लोक कार्यक्रमो मे मध्यक्षता एवं धार्मिक त्योहारो मे प्राथमिकता के अधिकार अन्तर्गत थे ।

मानचित्र संख्या 9

सिविल और अपराधिक लम्बन वर्षों के अनुसार, 31 दिसम्बर, 1982 को भारत के उच्च न्यायालयों मे बकायाओं को दर्शित करते हुए।

(31-12-1982 को देश में मुकदमों के लम्बन की अवधि)

290680
175026
117938
86130
66603
35775
78053

CIVIL CASES
840,205 (TOTAL)
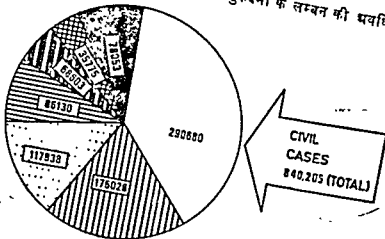
CRIMINAL CASES
110,715 (TOTAL)

48799
27764
14875
8303
6340
3247
←2387
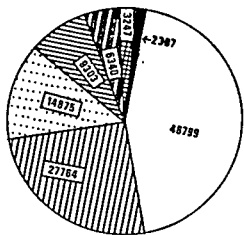
1. LESS THAN ONE YEAR
2. 1 TO 2 YEARS.
3. 2 TO 3 YEARS.
4. 3 TO 4 YEARS.

5. 4 TO 5 YEARS.
6. 5 TO 6 YEARS.
7. OVER 6 YEARS.

तालिका संख्या 9

उच्च न्यायालयों में संस्थापित निस्तारित दीवानी व दाण्डिक मुकदमो का संस्थापित प्रतिशत दर्शाते हुए तालिका (अवधि प्रथम अर्धवर्ष 1983 लम्बन 1-1-1983 को व 30-6-1983) और उनकी बढ़ोतरी व घटोतरी का प्रतिशत दरमयाने अर्धवर्षीय 30-6-1983 को

क्रम सं. उच्च न्यायालय का नाम	1-1-1983 को लम्बन		अर्धवर्षीय 30-6-83 को संस्थापन		निस्तारण अर्धवर्षीय 30-6-83		लम्बन 30-6-83 को		निस्तारण संस्थापन कें प्रतिशत में		लम्बन में घटोतरी व बढ़ोतरी का प्रतिशत	
	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
1. इलाहाबाद	144635	28951	29048	10212	20874	6134	152809	33033	71.9	60.0	+ 5.6	+14.1
2. आन्ध्र प्रदेश	58197	2704	25814	2496	21742	2723	62269	2477	84.2	109 1	+ 7.0	— 8.4
3. बम्बई	78971§	5929§	20691	2708	16133	2548	83529	6089	78.0	94.1	+ 5.8	+ 2 7
4. कलकत्ता*	92239	8953	16459	2796	11870	1839	96828	9910	72.1	65.8	+ 5.0	+10.7
5. दिल्ली	44287	2422	13723	1999	8211	1312	49799	3109	59.8	65 6	+12.4	+28.4
6. गोहाटी	10053	2121	2328	883	2128	726	10263	2278	91.0	87.2	+ 2.1	+ 7.4
7. गुजरात	23773	3982	9042	3055	7011	2619	25804	4418	77 4	85 7	+ 8.5	+10.9
8. हिमाचल प्रदेश	8477	564	2457	419	2474	384	8450	599	100 7	91.6	— 0 2	+ 6 2
9. जम्मू कश्मीर	15177	2377	5387	478	3060	389	17504	2466	56.8	81 4	+15 3	+ 3 7
10. कर्नाटक	119894	1918	26365	1454	23654	1512	122605	1860	89.7	104.0	+ 2.3	— 3 0
11. केरल	46055	3918	26018	1669	16448	1318	55625	4269	63.2	79.0	+20.8	+ 9.0
12 मध्य प्रदेश	32524§	10591§	12245	7243	9191	6220	35678	11614	75.1	85 9	+ 9.4	+ 9.7
13. मद्रास	84382	7795	32100	5083	22293	5190	94189	7690	69 4	102 1	+11.6	— 1.3
14. उडीसा	12468	2122	2755	1049	1391	701	13832	2490	50 5	66.8	+10 9	+16.4
15. पटना*	31789	17558	6090	8296	5587	6983	32292	18871	91.7	84.2	+ 1 6	+ 7 5
16 पंजाब, हरियाणा	29762	4256	15097	5501	15231	5933	29628	3824	100.9	107 8	— 0 5	—10.2
17 राजस्थान	28407§	8793§	9203	3939	5571	3117	32039	9615	60 5	79 1	+12.8	+ 9.3
18 सिक्किम	66	5	29	9	28	10	67	4	96.6	111.1	+ 1.5	—20.0
योग	861156	114959	254851	59291	162887	40654	923120	124596	75.7	83.7	+ 7.2	+ 8.4

* मुख्य मुकदमे केवल; § संशोधित;

तालिका संख्या 10

30-6-1983 को उच्च न्यायालयों में लम्बित मामलें उनके लम्बित समय के क्रम में

उच्च न्यायालय का नाम	एक वर्ष से कम		1 से 2 वर्ष		2 से 3 वर्ष		3 से 4 वर्ष		4 से 5 वर्ष		5 से 6 वर्ष	
	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
1. इलाहाबाद	21138	6509	40516	9489	27676	5823	19037	3330	13295	3432	9494	2796
2. आंध्र प्रदेश	26997	1613	14352	733	10235	123	5922	8	3199	—	1093	—
3. बम्बई	16981	2347	18139	1499	16123	1012	9236	672	7523	330	4414	113
4. कलकत्ता*	16826	2960	15317	2827	11248	2129	13049	1136	11326	399	7482	229
5. दिल्ली	16339	1231	10223	447	6166	403	3847	379	3014	240	2149	187
6. गोहाटी	2671	560	1813	547	1673	434	1016	206	795	197	591	2011
7. गुजरात	11200	2228	4399	998	3620	994	3055	72	2147	24	822	—
8. हिमाचल प्रदेश	1343	154	2122	136	1213	106	468	53	601	88	1061	56
9. जम्मू एवं कश्मीर	7309	867	4394	576	2527	374	1095	303	637	179	527	97
10. कर्नाटक	21545	648	44037	1113	18336	58	12780	40	13174	—	7393	1
11. केरल	16142	1099	19586	1781	12596	1201	4593	187	1982	1	715	—
12. मध्य प्रदेश	17855	5392	5324	2917	3204	1987	2173	743	1498	312	1487	106
13. मद्रास	46151	4860	20670	1847	10649	594	9461	227	4970	108	2029	22
14. उड़ीसा	2815	648	3127	845	2605	641	2194	264	1401	71	735	1
15. पटना	6483	8881	5149	3730	5254	2922	3906	1301	3068	907	2406	572
16. पंजाब हरियाणा	7184	1817	5223	1276	4094	680	3601	35	2867	9	2228	1
17. राजस्थान	8370	1698	7016	1922	4355	1514	3115	1190	2072	1252	1612	883
18. सिक्किम	64	4	1	—	2	—	—	—	—		—	—
योग	247413	43516	221308	32683	141576	20995	98548	10246	73579	7549	46238	5265

* सिर्फ मुख्य मुकदमें।

तालिका संख्या 10 (क्रमशः)

	6 से 7 वर्ष		7 से 8 वर्ष		8 से 9 वर्ष		9 से 10 वर्ष		10 वर्ष से ऊपर		योग		समयोग
	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक	दीवानी	दाण्डिक	
	14	15	16	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26
	6721	1270	5709	282	3463	93	2800	9	2960	—	152809	33033	185842
	389	—	80	—	2	—	—	—	—	—	62269	2477	64746
	3747	87	2890	17	2022	9	955	1	1499	2	83529	6089	89618
	3783	76	2726	48	3791	20	3107	37	8173	49	96828	9910	106738
	1699	156	1502	59	1254	2	920	2	2686	3	49799	3109	52908
	473	55	432	67	423	10	133	11	243	—	10263	2278	12541
	307	2	191	—	24	—	16	—	23	—	25804	4418	30222
	623	5	294	1	267	—	175	—	283	—	8460	599	9059
	382	52	269	13	196	4	88	1	80	—	17504	2466	19970
	3087	—	1807	—	343	—	89	—	14	—	122605	1860	124465
	8	—	1	—	1	—	—	—	1	—	55625	4269	59894
	1250	71	735	56	715	23	734	6	603	1	35578	11614	47192
	278	19	45	13	12	—	18	—	6	—	94189	7690	101879
	311	—	181	—	133	—	108	—	222	—	13832	2470	16302
	1801	334	1083	139	598	36	457	49	2087	—	32292	18871	51163
	1723	1	1374	1	1114	1	152	3	68	—	29628	3824	33452
	1113	496	1253	387	1122	174	1000	89	1011	10	32039	9615	41654
	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	67	4	71
योग	27695	2624	20572	1083	15480	372	10752	208	19959	65	923120	124596	1047716

तालिका संख्या 11

कार्यरत न्यायाधीशों एवं कार्य दिवसों की संख्या

क्र. सं.	उच्च न्यायालय का नाम	1976 कार्यरत न्यायाधीशों की संख्या	1976 कार्य दिवस	1977 कार्यरत न्यायाधीशों की संख्या	1977 कार्य दिवस	1978 कार्यरत न्यायाधीशों की संख्या	1978 कार्य दिवस
1	2	.	4	5	6	7	8
1.	इलाहबाद	38 5	210	37	210	47	210
2.	आन्ध्र प्रदेश	19	209	20	208	18	210
3.	बम्बई	27 5	208	28	207	29	205
4.	कलकत्ता	34	207	34	205	37	208
5.	दिल्ली	13	209	15	207	17.3	210
6.	गौहाटी	6	210	7	210	4.05	210
7.	गुजरात	12	201	12	207	12 5	200
8.	हिमाचल प्रदेश	3	210	3	210	2	210
9.	जम्मू एवं काश्मीर	4	210	5	208	3	210
10.	केरल	15	212	13	203	15 5	209
11.	कर्नाटक	14	212	12.5	215	17.5	212
12.	मध्य प्रदेश	19.5	212	19.5	210	21.7	211
13.	मद्रास	16.5	210	15	210	18 5	209
14.	उड़ीसा	7.3	210	7 7	200	7	210
15.	पटना	22	210	25	210	26	210
16.	पंजाब एवं हरियाणा	16.75	208	15	199	1.5	220
17.	राजस्थान	8.5	210	10	—	10.5	229
18.	सिक्किम	1	205	1.5	—	1.5	217
		277.25		280.2		289.55	

दर्शाने वाली तालिका (1976–1982)

1979		1980		1981		1982	
कार्यरत न्यायालयों की संख्या	कार्य दिवस	कार्यरत न्यायालयों की संख्या	कार्य दिवस	कार्यरत न्यायालयों की संख्या	कार्य दिवस	कार्यरत न्यायालयों की संख्या	कार्य दिवस
9	10	11	12	13	14	15	16
46	210	40	204	36	209	40.5	210
21.5	207	18	208	17	209	17.5	209
35	207	37	208	34.5	208	33	208
33	209	31	205	33	207	30.4	202
20.9	211	22.4	210	21.3	210	20.7	207
4.25	210	5	229	7	230	7.5	214
13	207	14.8	209	13.9	209	15.8	210
3.2	194	3.5	210	3.5	210	3.5	210
4	210	4	210	4	210	4	210
16	219	14	219	14.5	209	14	208
22.5	213	20.5	219	22	236	21.5	236
23.2	210	23.7	210	21.5	210	19.3	208
22.4	204	21	208	19	209	21	208
6.5	210	5.5	211	6	208	6	209
25	210	26	210	23.5	210	24.5	210
29.18	210	20.5	210	—	209	19.5	210
14	212	13.5	215	12	209	11	202
8	220	2	210	2	211	2	210
347.63		322.40		290.70		311.70	

तालिका संख्या 12

31-12-1980 को उच्च न्यायालयों में लम्बित वादों की तालिका : वादों के संस्थान की तिथि के सन्दर्भ में

क्रम सं.	उच्च न्यायालय का नाम	1 वर्ष से कम	1–2 वर्ष	2–3 वर्ष	3–4 वर्ष	4–5 वर्ष	5–6 वर्ष
1.	इलाहबाद	36,383	21,224	16,217	11,759	9,028	5,862
2.	आन्ध्र प्रदेश	21,899	9,803	3,757	1,558	436	145
3.	बम्बई	24,415	11.726	8,432	6,776	5,672	3,464
4.	कलकत्ता*	19,116	16,796	13,294	7,230	6,199	4,623
5.	दिल्ली	9,195	6,394	3,230	2 504	2,040	1,859
6.	गोहाटी	2,243	1,661	1,176	880	722	707
7.	गुजरात	8,448	5,078	2,891	1,528	872	443
8.	हिमाचल प्रदेश	1,571	1,081	1,255	722	364	336
9.	जम्मू एवं कश्मीर	4,060	2,494	1,003	516	405	151
10.	कर्नाटक*	24,195	19,160	8,977	7,667	4,096	1,338
11.	केरल	16,037	8,730	3,453	1,356	568	14
12.	मध्य प्रदेश*	7,979	4,295	3,265	2,775	1,911	1,565
13.	मद्रास	24,409	17,445	10,231	5,566	1,495	407
14.	उड़ीसा	426	2,738	1 858	1,105	309	189
15.	पटना*	12,225	7,963	5,403	3,677	2,320	1,202
16.	पंजाब एवं हरियाणा	11,585	5,420	2,974	2,117	2,494	2,167
17.	राजस्थान*	6,433	4,089	2,858	1,949	1,975	1,558
18.	सिक्किम	28	8	1	—	—	—
	योग	2,34,473	1,46.106	90,275	59,685	40,906	26,030

*केवल मुख्य मुकदमे

उच्च न्यायालय में बकाया मुकदमों के संस्थानो की तारीखों के मद (31-12-80)

क्रम सख्या	उच्च न्यायालयों का नाम	6–7 वर्ष	7–8 वर्ष	8–9 वर्ष	9–10 वर्ष	अधिक 10 वर्ष	योग
1.	इलाहाबाद	4,484	2,311	1,488	788	702	1 10,246
2.	आन्ध्र प्रदेश	3	—	—	—	1	37,602
3.	बम्बई	2,168	1,658	1,033	702	860	66,906
4.	कलकत्ता	4,472	2,019	1,303	833	7,940	83,826
5.	दिल्ली	1,418	1,230	998	893	1,236	30,987
6.	गुहाटी	448	339	121	39	49	8,385
7.	गुजरात	69	22	93	13	16	19,473
8.	हिमाचल प्रदेश	245	133	120	120	53	5,995
9.	जम्मू और कश्मीर	79	51	26	7	34	8,826
10.	कर्नाटक	1,363	88	22	5	9	66,920
11.	केरल	4	2	—	—	—	30,164
12.	मध्य प्रदेश*	1,497	938	643	386	622	25,876
13.	मद्रास	234	47	72	53	24	59,983
14.	उड़ीसा	134	132	88	40	22	10,877
15.	पटना*	933	681	957	958	1,135	37,454
16.	पंजाब और हरियाणा	1,926	1,541	1,243	976	1,422	33,915
17.	राजस्थान	1,448	781	655	393	391	22,530
18.	सिक्किम	—	—	—	—	—	37
	योग	20,970	11,973	8 862	6,206	14,516	6,60,002

*केवल मुख्य मुकदमे

तालिका संख्या 13

देश में, तथा उच्च न्यायालयों में प्रत्येक न्यायाधीश द्वारा निपटान की औसत दर (1976-1982)

क्र. सं.	उच्च न्यायालय का नाम	1976	1977	1978	1979	1980	1981	1982
(ग्र)	देश में	808.2	729.2	819.4	897.7	863.0	855.8	949.3
(ब)	उच्च न्यायालय में							
1.	इलाहबाद	590.9	648 3	860 3	1281 3	1065.3	925.1	1361.2
2.	ग्रान्ध्र प्रदेश	992.0	826 1	839 6	807.2	788.3	831 2	918.2
3.	बम्बई	931.5	627.3	770 0	589.2	555.2	653 5	678.4
4.	कलकत्ता	1078.0	1006 9	799 2	1093.2	1038.4	1085.0	932.5
5.	दिल्ली	525.2	350.3	351.9	440 5	550 2	332.1	362.9
6.	गौहाटी	385.5	210 7	309.6	528.2	282.2	210.9	295.5
7.	गुजरात	884.3	840.5	875 1	817 0	798.9	875.4	1014.1
8.	हिमाचल प्रदेश	225.0	349.3	953.5	626.5	600.6	677.1	721.7
9.	जम्मू एव काश्मीर	280 0	320.2	597.7	752.2	677.8	604.5	613.8
10.	कर्नाटक	952.9	807.7	866 1	992.2	1070.2	1045.0	1630.9
11.	केरल	844.3	1063 4	984.1	987.2	1068.4	948.5	968.8
12.	मध्य प्रदेश	805.2	590.8	855.8	814.6	776.2	852.1	939.7
13.	मद्रास	1001.2	1031 6	1304.3	896.9	1014.9	1177.8	752.9
14.	उड़ीसा	608.1	571.2	430.1	595.2	781.6	806.4	893.3
15.	पटना	718.5	580 4	620 3	915.8	800.2	798.1	912.2
16.	पंजाब	917 4	1216.3	1136.2	1281.0	1103.3	1210.6	1222.6
17.	राजस्थान	604.4	444.9	660.5	547.7	729.6	803.8	820.4
18.	सिक्किम	22.0	30.7	18.7	18.7	15.0	27.5	40.5

मानचित्र संख्या 10

31-12-82 को भारतीय उच्च न्यायालयों में लम्बन की अवधि

337479
202780
132815
95433
62843
39022
17071
12632
13286
7084
16670
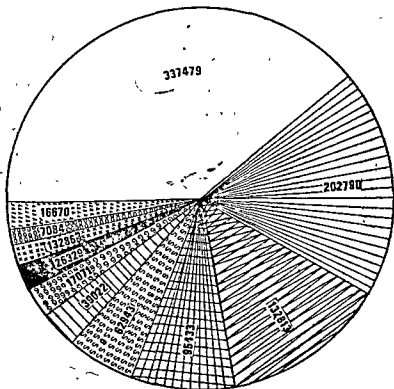
INDEX
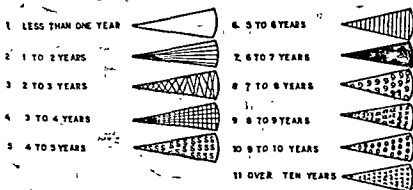
मुकदमों के निर्णय में तीन दशक

120. उच्च न्यायालय में माने से पहले वादकर्ता को विचारण न्यायालय या प्रथम अपील न्यायालय की अग्नि-परीक्षा का सामना करना पड़ता है जहां सिविल मामलों मे औसतन 4 से 5 वर्ष और दाण्डिक मामलों में औसतन 2 से 4 वर्ष लगते हैं। औसतन अरक्षित मुकदमे की तब तक की जिन्दगी सिविल में दो दशक और दांडिक मामलों मे एक दशक होती है जब तक कि उसे उच्च न्यायालय द्वारा न निपटा दिया जाये और यदि उसे उच्चतम न्यायालय तक ले जाया जावे तो कम से कम जब तक अंतिम परिणाम प्राप्त हो तब तक उसकी रजत जयंती मनाई जा सकती है और कम से कम 20 प्रतिशत सिविल मामले ऐसे होते हैं जिनमें परिणाम का निष्पादन अलग दशक ले बैठता है। इस तरह भारतीय संविधान के तीन दशक तक क्रियाशील रहने के पश्चात् हम पाते हैं कि वाद के निपटारे में लगने वाले समय में हम कोई कमी नहीं कर सके। यह समय भी अनेक मामलों में तीन दशक है और उसका औसत दो दशक है। कितनी बढ़िया श्रृद्धांजली हम महात्मा गांधी की उस अवधारणा को कर रहे हैं जो तत्परता से, तुरन्त और सस्ते सामाजिक न्याय के लिए है।

पुराने मामलों को प्राथमिकता दीजिए-सप्ताह के दो दिन इसके लिए अलग से निकालकर रख दीजिए :

121. वाद और न्यायपीठ की जो प्रवृत्ति नये नये संस्थित मामलों को निपटाने की है उसकी रोकथाम करने की आवश्यकता है क्योंकि इसका परिणाम यह निकलता है कि पुराने मामले और भी पुराने होते जाते हैं। ऊपर के पूर्वगामी पदों मे यह दिखाया गया है कि 1938 के भारतीय उच्च न्यायालय मामले अभी तक लम्बित हैं, पुराने मामलों को निपटाने के लिए सप्ताह में दो दिन, सूची में ग्रहण, आदेश मामले के बिना, नियत कर दिये जायें जो कठोरता से स्थगन के बिना, मौखिक बहस के लिए समय की सुव्यवस्था, और लिखित तर्कों के पूर्व प्रस्तुतिकरण के साथ होने चाहिए।

विकासशील अर्थव्यवस्था-मामलों में वृद्धि प्राकृतिक

122. मामलों के संस्थितिकरण में यह वृद्धि विकासशील अर्थव्यवस्था और राष्ट्र की सामाजिक आर्थिक प्रगति के अनुरूप ही है। कुल मिलाकर सर्वसाधारण, पददलितों और निर्धनो में यह बोध और विधिक चेतना स्वागत योग्य है और इससे कार्यपालिका और न्यायपालिका में भय व्याप्त नही होना चाहिए। न्यायालयों, स्टाफ भवनों, साधनो में अनुपातिक वृद्धि के द्वारा न्यायिक मंचों में अनुपातिक वृद्धि करने में राज्य की असफलता और न्यायिक क्षेत्र में विज्ञान-प्रौद्योगिकी और इलैक्ट्रोनिकी के, प्रवेश का पूर्ण अभाव "निपटारे" के संस्थान से पीछे रह जाने का एक मुख्य कारण है और जिसका परिणाम "बकाया" और लम्बन मे वृद्धि का

बहुगुणित होना है। अतः आर्थिक स्वायत्तता की आवश्यकता है। मेरी मान्यता है कि न्यायपालिका को आर्थिक स्वायत्तता प्रदान की जावे।

बढ़ोतरी के मुकाबले के लिए अनुपातिक न्यायालयों व साधनों का अभाव

123. सिविल और दाण्डिक से चलकर श्रम, उद्योग, परिवहन, मोटर दुर्घटनाओं, सहकारिताओं, मोटर गाड़ियों, जल और वायु विवादों, अन्तर-राज्य और अन्तर राज्य विवादों, जन्म से लेकर मरण तक के करारोपणों और संविधानो से संबंधित, और अब सामाजिक कार्यकर्त्ता समूहो के लोकहित-के-वादकरण तक आ पहुंचे, वादकरण के क्षितिजों और आयामों का जो निरन्तर विस्तार हो रहा है, उसके परिणामस्वरूप, संस्थित किये जाने वाले वादो की संख्या असंभावित अनुपात में बढ़ी है। जनसंख्या विस्फोट, अति धनाड्यता, साक्षरता वृद्धि,व्यवसाय, वाणिज्य, व्यापार, उद्योग और विधिक अधिकारों के प्रति सजगता से वादकरण मे गुणवत्तात्मक और संख्यात्मक दोनों ही प्रकार की वृद्धि हुई है। दुखान्तिका यह है कि चू कि न्यायपालिका किसी विकासशील देश की अंतिम प्राथमिकता होती है, इसलिये उसके पास न तो इस चुनौती का सामना करने लिए मूल ढांचा होता है, न इसके समाधान और उपचारों की योजना बनाने के लिए कोई कृतनिश्चय प्रयत्न किये जाते हैं। उपचार है "वित्तीय स्वायत्तता"।

124. एक पत्रकार की यह दिलचस्प टिप्पणी, इस समस्या के संबध मे आम आदमी क्या सोचता है, इसे उजागर कर सकती है–

> "विलम्ब के चाहे कोई भी कारण हो, भारत के न्यायालयों की बकायाओं ने इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही एक समस्या खड़ी कर रखी है। 1924 में, ब्रिटिश उपनिवेश शासकों ने उच्च न्यायालयो और अधीनस्थ न्यायालयो की बकायाओं का पता लगाने के लिए एक आयोग नियुक्त किया था। इस बात के लिए एक दूसरा आयोग 1949 में न्यायाधिपति एस० आर० दास की अध्यक्षता मे नियुक्त हुआ था। फिर, 1969 मे एक केन्द्रीय सरकार समिति ने न्यायाधीशो की अपर्याप्तता का उल्लेख किया था। दो वर्ष बाद, एक अगला आयोग बैठाया गया था।"

प्रत्येक बार की सिफारिशें एक ही प्रकार की हैं। और वे ये हैं कि और अधिक न्यायाधीशो को नियुक्त करिए, न्यायाधीशो के बीच कार्य का बंटवारा बदलिए, प्रक्रिया संबंधी नियमो मे सशोधन करिए, वकीलो की विलम्बकारी युक्तियों को समाप्त करिए। किन्तु स्थिति जैसी थी, वैसी है।

मेरी मान्यता है कि "आयोग" या "समिति" की नियुक्ति को टालना संभव नही परन्तु आवश्यक है उनकी सिफारशों की अविलम्ब क्रियान्विति। 1985 में भी फिर नये "आयोग" की नियुक्ति विचाराधीन है, जैसा कि श्री अशोक सेन व श्री भारद्वाज विधि मंत्रियों ने घोषणा की है।

125. अब हम अधीनस्थ न्यायालयों में मामलों में हो रही छलांग-सी लगाती वृद्धि का पिछले 4 साल की बढोतरी की परीक्षा करके आंकलन करें।

मानचित्र संख्या 11

[सम्पूर्ण भारत में] अधीनस्थ न्यायालयों में सिविल मामलों का संस्थान, निपटान और लम्बन (वर्ष 1978-1981)
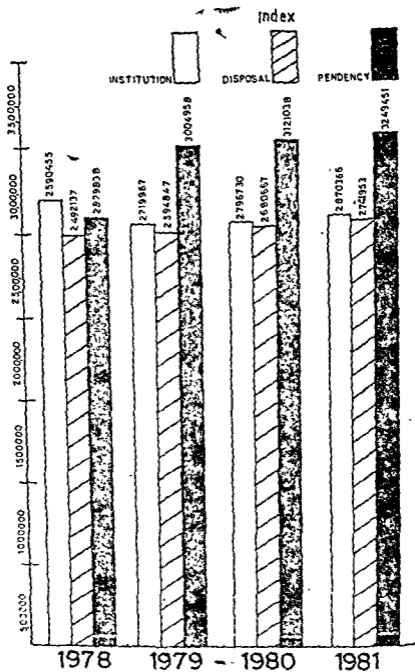
मानचित्र संख्या 12

[सम्पूर्ण भारत मे] सेशन और मजिस्ट्रेटी न्यायालयों में अपराधिक मामलो का संस्थान, निपटान और लम्बन (वर्ष 1978–1981)
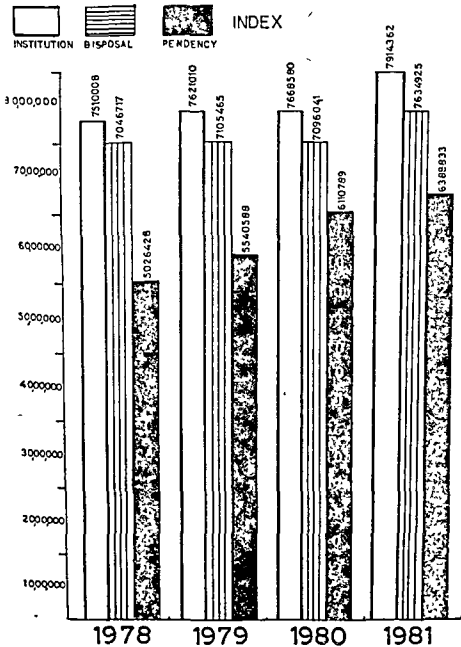
मानचित्र संख्या 13

1981 के दौरान, प्रत्येक राज्य में सेशन न्यायालयों मे अपराधिक मामलो का संस्थान और निपटान व न्यायालयो की संख्या
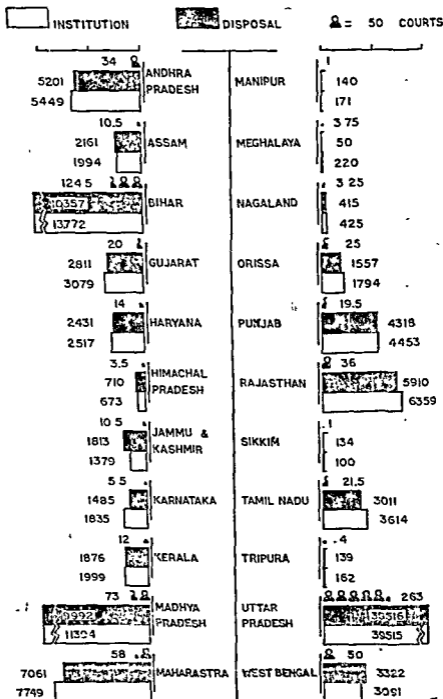
मानचित्र संख्या 14

1981 के दौरान प्रत्येक राज्य मे अधीनस्थ न्यायालयों में अपराधिक मामलों का संस्थान और निपटान व न्यायालयों की संख्या

INSTITUTION | DISPOSAL | ♙ = 50 COURTS

State	Courts	Disposal	Institution
ANDHRA PRADESH	194	366997	368071
ASSAM	137	100788	116182
BIHAR	383	250556	276606
GUJARAT	128	848260	970981
HARYANA	475	54429	57656
HIMACHAL PRADESH	14	14219	16270
JAMMU & KASHMIR	70	122605	119943
KARNATAKA	102 5	334087	369836
KERALA	126	212465	216592
MADHYA PRADESH	168	432942	461738
MAHARASTRA	320	1352922	1434185
MANIPUR	13	2773	6598
MEGHALAYA	6	8304	10021
NAGALAND	10 75	2292	2194
ORISSA	125	112354	113089
PUNJAB	71	73432	71674
RAJASTHAN	223	204811	218494
SIKKIM	1 5	1252	1077
TAMIL NADU	241	778546	807620
TRIPURA	26	14694	15132
UTTAR PRADESH	536	924848	992814
WEST BENGAL	182	762286	561866

मानचित्र संख्या 15

1981 के दौरान, प्रत्येक राज्य में अधीनस्थ न्यायालयों में सिविल मामलों का संस्थान और निपटान व न्यायालयों की संख्या
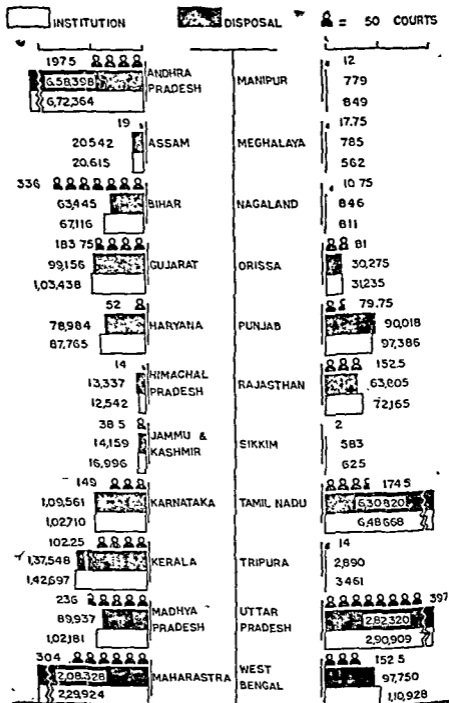
126. इस प्रकार हमारे ग्राज की लम्बन की संख्या कम से कम लगभग दो करोड पच्चीस लाख है, जिसका ग्रर्थ है कि भारत का प्रत्येक छठा या सातवां परिवार मुकदमा लड़ रहा है ग्रौर किसी न किसी मामले से सम्बद्ध है ।

ग्रधीनस्थ न्यायालयों के लम्बनों की संख्या दो करोड़ से ग्रधिक हो गई है ग्रौर यदि इसमें *राजस्व मामलों ग्रौर कर न्यायाधिकरण मामलों को भी जोड़ दिया जाए* तो वह कम से कम एक करोड़ ग्रौर बढ जायेगी।

बम्बई उच्च न्यायालय

127. बम्बई उच्च न्यायालय के बकायाग्रो का ढेर पिछले सात वर्षों मे दुगना हो गया है, जैसाकि एक स्तम्भकार ग्ररविन्द काला[1] ने ग्रपने हाल के नोट मे बताया है । उन्होने बम्बई उच्च न्यायालय की बकायाग्रों के पिरामिड की शोचनीय दशा का वर्णन इस प्रकार किया है :—

> "बम्बई उच्च न्यायालय की स्थापना सन् 1862 में हुई थी ग्रौर वह सर्वोच्च न्याय बुद्धि का श्रेष्ठतम स्वरूप रहा है । ग्राज, 121 वर्ष बाद, इस उच्च न्यायालय की समस्या यह है कि इसके पिछले मामलों की बकाया तेजी के साथ ग्रधिकाधिक बड़ा ग्राकार ग्रहण करती जा रही है, उसके कम होने की तो कोई बात ही नहीं है ।"

128. 1975 के 66,040 से 1980 के 98,746 तक ग्राते-ग्राते लम्बित मामलों की संख्या 33 प्रतिशत बढ़ गई । दो वर्ष बाद, 1982 की समाप्ति तक 20 प्रतिशत ग्रौर बढ़कर यह संख्या 1,20,502 हो गई, जिसका ग्रर्थ यह है कि 7 वर्ष के भीतर बकाया मामले करीब-करीब दुगने हो गये ।

129. बढ़ती जा रही बकायाग्रों का एक कारण यह है कि केन्द्रीय सरकार न्यायाधीशों की रिक्तियो को भरती नही है । बम्बई उच्च न्यायालय की स्वीकृत पद-संख्या 40 स्थायी न्यायाधीशों ग्रौर 7 ग्रपर न्यायाधीशो की है । किन्तु 39 स्थायी ग्रौर 1 ग्रपर न्यायाधीश के इस न्यायालय में ग्राज 7 न्यायाधीशो की कमी है ।

130 चार वर्ष पूर्व उच्च न्यायालय की बकायाग्रो से संबंधित एक विधि ग्रायोग ग्रध्ययन की ग्रध्यक्षता कर रहे न्यायमूर्ति एच. ग्रार. खन्ना ने यह सिफारिश की थी कि चूंकि न्यायाधीश के ग्रवकाश ग्रहण की तारीख का पहले से पता रहता

1. इण्डियन एक्सप्रेस देहली संस्करण दिनांक 31 जुलाई, 1983 पृ० 5 ।

है इसलिए प्राधिकारियों को चाहिये कि वे उसके प्रतिस्थापन की पूर्व-व्यवस्था 6 मास पहले से ही करके रख लें।

131. सिद्धान्ततः एक न्यायाधीश की नियुक्ति मे देरी नहीं होनी चाहिए, उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश राज्य सरकार को एक नाम की सिफारिश करता है जो उसे राष्ट्रपति (अर्थात केन्द्र) को अग्रेषित करती है और राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श कर नियुक्ति आदेश जारी करता है ।

132. तथापि, व्यवहार में नाम की राज्य के विधि और गृह विभागों द्वारा जांच की जाती हैं। गृह विभाग पुलिस को व्यक्ति के पूर्ववृत्त की जांच करने के लिए कहता है, केन्द्रीय विधि मंत्रालय नाम की विधीक्षा करता है। जब तक निरर्थकता समाप्त होती है तब तक कई माह पहले ही निकल चुके होते हैं।

133. बम्बई उच्च न्यायालय के कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश श्री एम. एम. चन्दूरकर ने न्यायधीशों के सात पदों को भरे जाने के लिए उनके द्वारा उठाये गये कदमों को बताने से इन्कार कर दिया। तथापि यह जनसामान्य को भी ज्ञात है कि सिफारिश किये गये नाम बम्बई और दिल्ली की सरकारी फाइलों में फंसकर रह गये हैं।

134. एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ने कहा है कि न्यायालय को अपनी वर्तमान मंजूर 40 न्यायाधीशों की तादाद को दुगना करने की आवश्यकता है। उन्होने कहा है कि जब नये मामलों की संख्या निपटारे से अधिक होती है तो बकाया बढ़ने लगती है। मुकदमेबाजी तेजी से बढ़ रही है और जब तक हम पूर्व बकाया को निपटारा नहीं करते, लोगों का न्यायपालिका मे विश्वास कम होता जाता है जैसा कि पहले ही हो रहा है।

135. डा० कन्हारे और आर. एन. नजीर द्वारा मामलों के दिये गये दो विशिष्ट उदाहरण दुःखद दुर्व्यवस्था को प्रदर्शित करने के लिए नीचे उद्धृत किये गये हैं :—

> "जनवरी 1972 के अन्त में, डा. एस. के. कन्हारे, बम्बई के एक फिजीशियन को जुकाम हो गया और वह शीघ्र निदान चाहता था। कुछ दिनों पूर्व एक प्रसिद्ध फार्मेसी कम्पनी का सेल्समैन उनकी क्लीनिक मे आये थे और एक नई नाक की दवा का आश्चर्यजनक सेम्पल छोड गये थे, और डा० कन्हारे ने विहित मात्रा के अनुसार चार लगातार दिनों में चार कैप्सूल निगल लिये। चौथे कैप्सूल के निगलने के कुछ ही मिनटों मे

डा० कन्हारे की दृष्टि शक्ति धुंधली हो गयी और वे दो मीटर से दूर नही देख पा रहे थे इसके पश्चात् उनकी दो वर्ष चिकित्सा परिचर्या चली और आंख शल्य चिकित्सकों ने पुनर्अनुमोदन किया कि उनकी आंखों की नाड़ियाँ क्षतिग्रस्त हो गयी हैं और वे अपनी दृष्टिशक्ति पुनः नही पा सकेंगे। डा० कन्हारे ने दवा कम्पनी को 5 लाख रु. की नुकसानी के लिए लिखा।"

पूर्व विचारण शुल्क–अधिवक्ता शुल्क–20,000 रु.

136. कम्पनी ने 1974 के अन्त तक कोई प्रत्युत्तर नही दिया। डा० कन्हारे ने यह निश्चित मानकर कि उनका मामला उन्हें शीघ्र न्याय दिलवायेगा, बम्बई उच्च न्यायालय में एक दावा दायर कर दिया। आज नौ वर्ष बाद लगभग अन्धा अविवाहित डाक्टर अधिवक्ता शुल्क पर 20,000 रु. से अधिक खर्च कर चुका है परन्तु अभी तक उसका मामला विचारण के लिए नही आया है।

137. उच्च न्यायालय लम्बित विधि वादो से इतना दबा हुआ है कि प्रत्येक नये मामले की कतार में खड़ा होना पड़ता है। जहां तक नुकसानी मामलो का प्रश्न है न्यायालय अभी 1971-72 के मामलो तक ही पहुचा है। डाक्टर को अपनी बारी आने की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

138. बम्बई उच्च न्यायालय मे 1982 के अन्त में, आरम्भिक अधिकारिता वाले 37,271 वादों में से 7,728 या 20 प्रतिशत पाच वर्ष पूर्व दायर किये गये थे। इसमें से 554 दस वर्ष से भी पहले दायर किये गये थे। जिन मे 1100 वर्गमीटर के भूमि के एक प्लाट संबंधी एक वाद 1963 का है। उस वर्ष, दो याची, श्री आर. एन. नजीर और श्री पी. डी. दुबाश ने उनके द्वारा 1949 में भारत संघ के साथ हस्ताक्षरित किये गये एक समझौते के आधार पर भूमि को अपनी बताते हुए एक वाद प्रस्तुत किया। मामला जटिल था, भूमि मूलतः कच्छ के महाराजा की थी और अब महाराष्ट्र की हो गयी है।

139. आरम्भिक याची अब मृत है और उनके उत्तराधिकारी मामला लड़ रहे हैं विचारण अभी पूरा हुआ है और अधिनिर्णय कुछ ही दिनों में प्राप्त होने की आशा है।

बकाया की यातदता-राज्यवार

140. विभिन्न राज्यों में, उच्च न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालय दोनो मे, संस्थान, लम्बन और मामलों के निस्तारण को 1950 से 1982 तक की वृद्धि को अग्रिम पृष्ठ पर ग्राफ द्वारा दर्शाया गया है।

मानचित्र संख्या 16

बम्बई उच्च न्यायालय मे, 1982 से लम्बन किस तीव्र गति से बढ़ रहा है–यद्यपि 1960 मे निपटान, संस्थान से अधिक था परन्तु बाद में संस्थान, निपटान से अधिक है–को दर्शाते हुए।

मामलो की सख्या सिविल रिट सिविल अपराधिक

NUMBER OF CASES
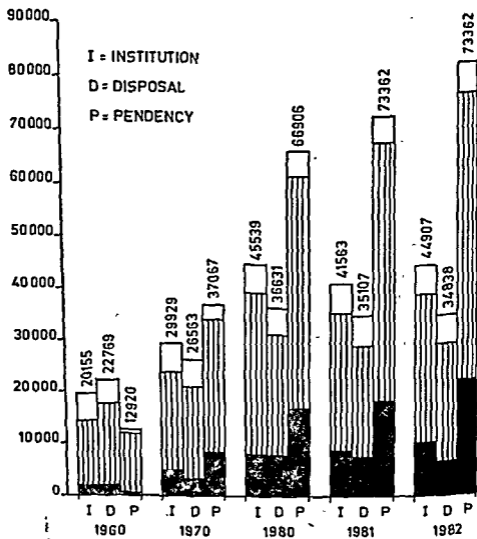
90000
80000
70000
60000
50000
40000
30000
20000
10000
0

I = INSTITUTION
D = DISPOSAL
P = PENDENCY

Year	I	D	P
1960	20155	22769	12920
1970	29929	26563	37067
1980	45539	36631	66906
1981	41563	35107	73362
1982	44907	34838	73362

1983 =	दायर	निपटान	विचाराधीन
दीवानी याचिका	5750	5586	25604
दीवानी	20062	16305	61836
फौजदारी	2807	2962	5960
योग	28619	24853	93400

तालिका संख्या 14

बम्बई उच्च न्यायालय में मुकदमों से सम्बन्धित सांख्यिकीय आंकड़े

1. दायर 2. निर्णीत 3. बकाया

मुकदमों के प्रकार	वर्ष 1950			वर्ष 1970		
	1	2	3	1	2	3
i. दीवानी रिट				5079	3376	8510
ii. दीवानी	*9946	*9649	*7386	19160	17935	25553
iii. फौजदारी (मुख्य)	*3005	*3080	*327	3799	3550	2521
iv. फौजदारी (विविध)				1900	1702	493
योग	12951	12729	7713	29938	26563	37077

मुकदमों के प्रकार	वर्ष 1982			वर्ष 1-7-83 से 31-12-83		
	1	2	3	1	2	3
i. दीवानी रिट	10662	6793	22701	5750	5586	25604
ii दीवानी	28327	23843	54826	20062	16305	61836
iii. फौजदारी (मुख्य)	3177	2263	4698	1240	1298	4587
iv. फौजदारी (विविध)	2741	2339	1106	1567	1664	1383
योग	44907	35238	83331	28619	24853	93410

*वर्ष 1950 के अलग अलग आंकड़े उपलब्ध नहीं होने के कारण दीवानी व फौजदारी मुकदमों के एक जाई आंकड़े दिये गये हैं।

तालिका सं 15

महाराष्ट्र राज्य के अधीनस्थ न्यायालयो मे 1 दायर 2. निपटान 3 बकाया संबंधी मुकदमो को दर्शाते हुए तालिका

मुकदमो के प्रकार	1976		
	1	2	3
(i) प्रारम्भिक	1407203	1308799	721861
(ii) अपीलीय	12974	12801	6091

अधीनस्थ न्यायालयो मे दीवानी मुकदमो का 1 दायर 2. निर्णीत 3 बकाया संबधी सांख्यिकीय आंकड़े (1980 से 1982 तक)

मुकदमो के प्रकार	1980			1981			1982		
	1	2	3	1	2	3	1	2	3
(i) दीवानी प्रार.	217606	193205	443774	212646	195831	460589	228213	205639	483163
(ii) दीवानी अपील	15569	12437	22012	17276	12495	26793	18922	13402	32313
(iii) फौ. प्रारम्भिक	1310080	1166567	908183	1434185	1352922	989446	1361043	1443968	906521
(iv) फौ. अपील	17705	16608	8820	18987	17641	10166	19748	17243	12671
योग	1560960	1388817	1382789	1683094	1578889	1486994	1627926	1680252	1434668

मानचित्र संख्या 17

महाराष्ट्र में पर्याप्त निपटान के बावजूद, संस्थान और लम्बन में असाधारण वृद्धि को दर्शाते हुए–1960–82 सिविल मामलों का सस्थान, निपटान और लम्बन ।

महाराष्ट्र अधीनस्थ न्यायालय

(मामलों की संख्या लाखों में)

सिविल निष्पादन और विविध

NUMBER OF CASES (IN LAKHS)

17 16 15 14 13 12 11 10 9 8 7 6 5 4 3 2 1 0

I = INSTITUTION

D = DISPOSAL

P = PENDENCY

73091 50665 63422

75881 60079 59670

1568960 1388817 1361789

1683094 1578889 1486994

1628026 1680252 1434668

I D P I D P I D P I D P I D P

1960 1970 1980 1981 1982

CIVIL

EXECUTION & MISC.
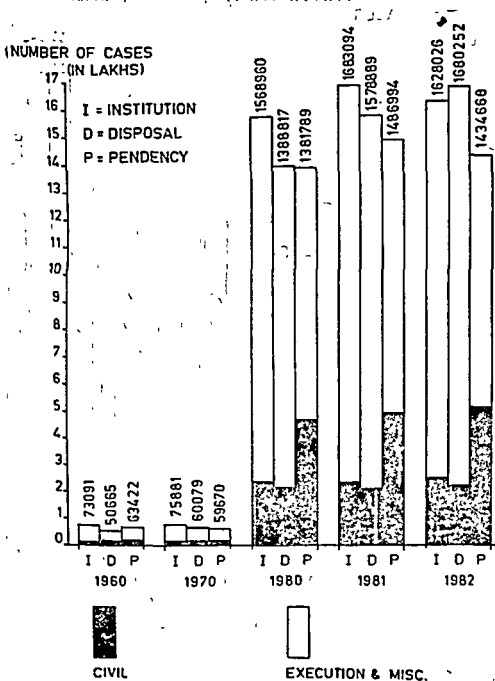
मानचित्र संख्या 18

पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालयों में वृद्धि और काफी अच्छे निपटान सहित 2 दशकों में लम्बन में 3 गुना वृद्धि को दर्शाते हुए (1960–1983)

स–संस्थान, न–निपटान, ल–लम्बन

मामलों की संख्या सिविल रिट, सिविल, अपराधिक विविध

तालिका संख्या 16
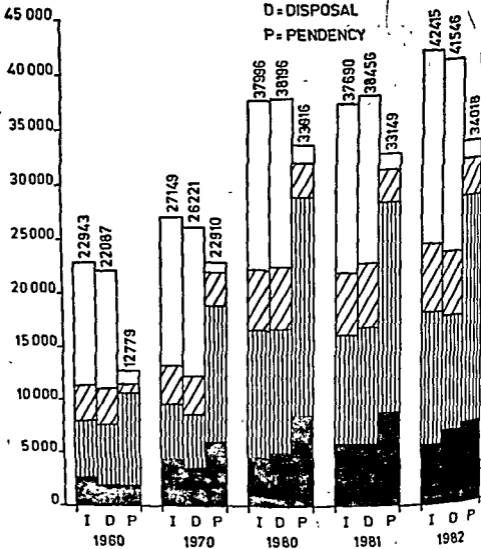
राज्य पजाब हरियाणा व चण्डीगढ संघीय प्रदेश मे सस्थापित निस्तारित व लम्बित सिविल अपीलें, दाण्डिक मूल वाद, व दाण्डिक अपीलें (अधीनस्थ न्यायालयों मे वर्ष 1978 से 1982 का विवरण

वर्ष	दिवानी अपीलें			दाण्डिक मूलवाद			दाण्डिक अपीलें		
	संस्थापन	निस्तारण	लम्बन	संस्थापन	निस्तारण	लम्बन	संस्थापन	निस्तारण	लम्बन
				पंजाब राज्य					
1978	9804	9158	7098	2806	2762	979	5532	5266	2772
1979	10240	9328	8010	2781	2778	982	7096	6749	3119
1980	9296	9008	8298	2691	2550	1123	6282	6397	3004
1981	12001	10290	10009	2667	2596	1194	6122	6096	3030
1982	11617	10979	10647	2975	2929	1240	6177	6741	2466
				हरियाणा राज्य					
1978	10657	11413	4594	2142	2613	593	2271	2439	825
1979	8068	8959	3703	1350	1571	372	2377	2426	776
1980	6859	6839	3723	1493	1435	430	2041	1919	898
1981	6175	6158	3740	1782	1713	499	2203	2140	961
1982	7175	6406	4509	1565	1497	567	2488	2026	1423
				चण्डीगढ़ संघीय प्रदेश					
1978	85	90	62	26	29	6	66	67	32
1979	121	106	77	22	24	4	87	99	20
1980	144	127	94	27	26	5	142	130	20
1981	162	144	112	40	36	9	112	127	17
1982	300	238	174	54	38	25	119	69	67

तालिका संख्या 17

पंजाब व हरियाणा राज्य व चण्डीगढ़ उच्च न्यायालय में संस्थापित निस्तारित व लम्बित दीवानी रिटें, दीवानी, दाण्डिक व विविध मुकदमे (1950 से अप्रेल 1983 वर्ष तक के।)

वर्ष	श्रेणी	संस्थापन	निस्तारण	लम्बन
1950	दीवानी रिटें	—	—	—
	दीवानी मुकदमे	2647	2383	3787
	दाण्डिक मुकदमे	2029	2377	410
	विविध मुकदमे	1648	1547	624
	योग	6324	6307	4821
1960	दीवानी रिटें	2568	1796	1810
	दीवानी मुकदमे	5457	5691	8731
	दाण्डिक मुकदमे	3493	3443	800
	विविध मुकदमे	11425	11157	1438
	योग	22943	22087	12779
1970	दीवानी रिटें	4370	3552	6008
	दीवानी मुकदमे	5283	5100	12721
	दाण्डिक मुकदमे	3657	3640	3149
	विविध मुकदमे	13839	13929	1032
	योग	27149	26221	22910
1977	दीवानी रिटें	3898	6455	11162
	दीवानी मुकदमे	7999	7279	185[illegible]0
	दाण्डिक मुकदमे	5887	4510	8711
	विविध मुकदमे	14308	11321	7646
	योग	32092	29565	46069
1978	दीवानी रिटें	5242	6156	10248
	दीवानी मुकदमे	9108	7391	20267
	दाण्डिक मुकदमे	5238	7472	6477
	विविध मुकदमे	14814	21174	1286
	योग	34402	42193	38278

वर्ष	श्रेणी	सस्थापन	निस्तारण	लम्बन
1979	दीवानी रिटें	4628	5661	9215
	दीवानी मुकदमे	10834	11019	20082
	दाण्डिक मुकदमे	5661	8682	3456
	विविध मुकदमे	15309	15233	1362
	योग	36432	40595	34115
1980	दीवानी रिटें	4528	5055	8688
	दीवानी मुकदमे	12142	11754	20470
	दाण्डिक मुकदमे	5603	5808	3251
	विविध मुकदमे	15723	15579	1506
	योग	37996	38196	33915
1981	दीवानी रिटें	5883	5843	8728
	दीवानी मुकदमे	10425	11172	19723
	दाण्डिक मुकदमे	5740	5987	3004
	विविध मुकदमे	15642	15454	1694
	योग	37690	38456	33149
1982	दीवानी रिटें	5740	6892	7576
	दीवानी मुकदमे	12592	10072	21343
	दाण्डिक मुकदमे	6417	5977	3444
	विविध मुकदमे	17666	17705	1655
	योग	42415	40646	34018
1983	दीवानी रिटें	5912	6474	7014
	दीवानी मुकदमे	11629	10848	22124
	दाण्डिक मुकदमे	6386	7709	2121
	विविध मुकदमे	18334	17963	2026
	योग	42261	42994	33285

तालिका संख्या 18

पंजाब, हरियाणा व चण्डीगढ़ संघीय प्रदेश के अधीनस्थ न्यायालयों में संस्थापित, निस्तारित व लम्बित दीवानी अपीलें, दाण्डिक मूलवाद व दाण्डिक अपीलें (वर्ष 1978–1982)

वर्ष		दीवानी अपीलें			दाण्डिक मूलवाद			दाण्डिक अपीलें		
		संस्थापन	निस्तारण	लम्बन	संस्थापन	निस्तारण	लम्बन	संस्थापन	निस्तारण	लम्बन
1978	(प)	9804	9158	7098	2806	2762	979	5532	5266	2772
	(ह)	10657	11413	4594	2142	2613	593	2271	2439	825
	च)	85	90	62	26	29	6	66	67	32
योग		20546	20661	11754	4974	5404	1578	7869	7772	3629
1979	(प)	10240	9328	8010	2781	2778	982	7096	6749	3119
	(ह)	8068	8959	3703	1360	1571	372	2377	2426	776
	(च)	121	106	77	22	24	4	87	99	20
योग		18429	18393	11790	4163	4373	1358	9560	9274	3915
1980	(प)	9226	9008	8298	2691	2520	1123	6282	6397	3004
	(ह)	6859	6839	3723	1493	1435	430	2041	1919	897
	(च)	144	127	94	27	26	5	147	130	32
योग		16229	15974	12115	4211	3981	1558	8470	8446	3933

वर्ष		दीवानी अपीलें			दाण्डिक मूलवाद			दाण्डिक अपीलें		
		संस्थापन	निस्तारण	लम्बन	संस्थापन	निस्तारण	लम्बन	संस्थापन	निस्तारण	लम्बन
1981	(प)	12001	10290	10009	2667	2596	1194	6122	6096	3030
	(इ)	6175	6158	3740	1782	1713	499	2203	2140	961
	(च)	162	144	112	40	36	9	112	127	17
योग		18338	16592	13861	4489	4345	1702	8437	8363	4008
1982	(प)	11617	10979	10647	2975	2929	1240	6177	6741	2466
	(इ)	7175	6406	4509	1565	1497	567	2488	2026	1423
	(च)	300	238	174	54	38	25	119	69	67
योग		19092	17623	15330	4594	4464	1832	8784	8836	3956

मानचित्र संख्या 20

कर्नाटक उच्च न्यायालय में, रिट पीटिशनों में अपूर्व वृद्धि के परिणाम-स्वरूप, जनसंख्या के अनुपात से भारत में सर्वाधिक बकाया को दर्शाते हुए (1959-83)
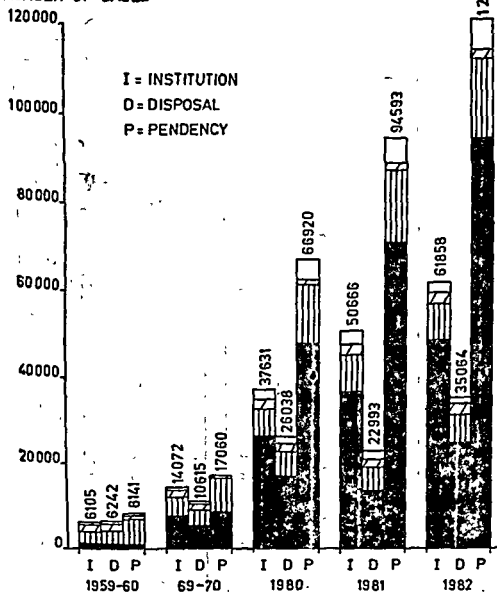
1983	दायर	निपटान	विचाराधीन
दीवानी याचिका	2387	2472	5726
दीवानी	33634	38557	103529
फौजदारी	2202	2370	1750
विविध	2891	2538	5559
योग	41114	45937	116564

कर्नाटक

तालिका संख्या 19

मुकदमों का 1. संस्थापन 2. निस्तारण 3. लम्बन

मुकदमों के प्रकार	1959-1960			1969-1970			1980		
I. उच्च न्यायालय									
दीवानी याचिका	1195	1025	710	7769	5148	8327	26130	16660	47628
दीवानी	2989	3242	6152	4436	3741	8073	6480	5523	13521
फौजदारी	1695	1690	892	1776	1635	658	2320	2069	1049
विविध	226	285	387	91	91	2	2701	1786	4715
योग	6105	6242	8141	14072	10615	17060	37631	26038	66913

	1981			1982			1983		
I. उच्च न्यायालय									
दीवानी याचिका	39621	13304	73945	48493	28448	93990	26951	30567	90954
दीवानी	8574	5564	16531	8233	6673	18091	9070	10462	16699
फौजदारी	2392	1923	1518	2626	2226	1918	2202	2370	1750
विविध	3079	2202	5592	2056	1317	6331	2891	2538	6684
योग	53666	22993	97586	61408	38664	120330	41114	45937	115507

कर्नाटक

मुकदमों के प्रकार	1959-1960			1969-1970			1980		
II. प्रधीनस्थ न्यायालय									
दीवानी प्रारम्भिक	38538	36558	25048	30242	30751	40746	53840	55601	75769
प्रपीलीय	6353	6011	7178	10457	9768	16291	11364	10481	14043
इजराय एवं विविध :									
मुकदमे	114744	113308	46945	578700	113787	639578	105211	196601	539568
फौजदारी प्रारम्भिक	256424	257519	32082	273752	267943	34856	322734	319812	123234
फौजदारी प्रपीलीय	2530	2650	952	1806	1647	962	2154	2029	1136
योग	418589	416046	112205	894957	423896	732433	495303	584524	753750

	1981			1982		
II प्रधीनस्थ न्यायालय						
दीवानी प्रारम्भिक	42827	37563	81033	46046	37403	89676
प्रपीलीय	10264	9830	14477	9817	7833	16461
इजराय एवं विविध						
मुकदमें	99308	100508	538368	174267	136497	576138
फौजदारी प्रारम्भिक	345804	338063	130975	409187	336992	203170
फौजदारी प्रपीलीय	3338	2454	2020	2990	2620	2390
योग	501541	488418	766873	642307	521345	887835

मानचित्र संख्या 21

कर्नाटक अधीनस्थ न्यायालयों में निपटान के संस्थान से पीछे रह जाने के कारण अत्यधिक लम्बन को दर्शाते हुए (1959-82)

मानचित्र संख्या 22

विहार के पटना उच्च न्यायालय में बकाया में 6 गुना वृद्धि, संस्थान में तिगुनी वृद्धि और निपटान के पिछड़ने को दर्शाते हुए (1960-84)

मानचित्र संख्या 21

कर्नाटक अधीनस्थ न्यायालयों में निपटान के संस्थान से पीछे रह जाने के कारण अत्यधिक लम्बन को दर्शाते हुए (1959-82)
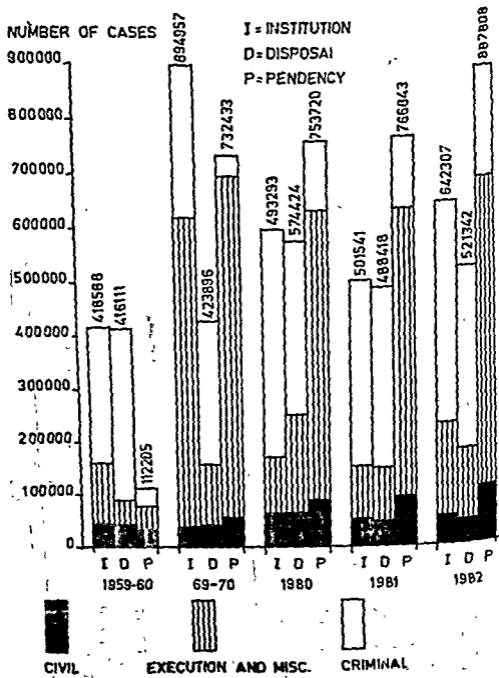
मानचित्र संख्या 22

बिहार के पटना उच्च न्यायालय में बकाया में 6 गुना वृद्धि, संस्थान में तिगुनी वृद्धि और निपटान के पिछड़ने को दर्शाते हुए (1960-84)
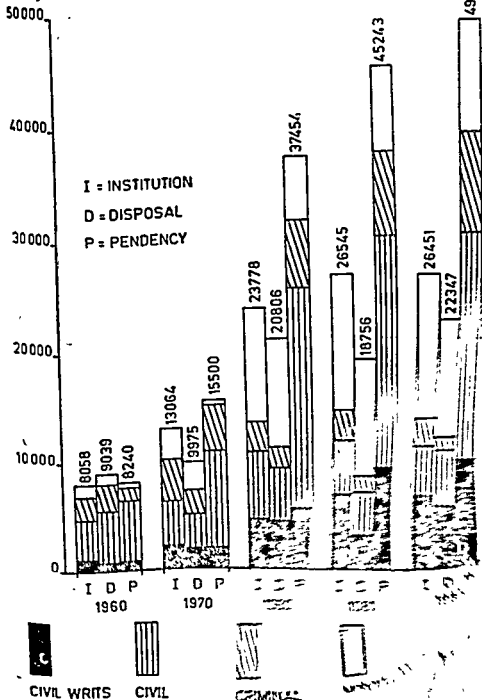
मानचित्र संख्या 22 (क्रमशः)

मुकदमे का प्रकार	दायर	निपटान	विचाराधीन
1983			
दीवानी याचिका	7680	5567	12007
दीवानी	4548	5591	19260
फौजदारी	2436	1569	9878
विविध	17499	14201	13437
योग	32163	26928	54582
1984 (30-6-84 तक)			
दीवानी याचिका	3941	3564	12384
दीवानी	2198	3587	17871
फौजदारी	1490	1637	9731
विविध	8706	6263	15880
योग	16335	15051	56866

मानचित्र संख्या 23 **बिहार**

बिहार के अधीनस्थ न्यायालयों में संस्थान के दुगने तक न होने के बावजूद बकाया मे आठ गुना वृद्धि को दर्शाते हुए (1950–81)

तालिका संख्या 20

बिहार

बिहार राज्य के अधीनस्थ न्यायालयों के दायर, निर्णीत और बकाया मुकदमों से संबंधित सांख्यिकीय आंकड़े

मुकदमों के प्रकार	1950 दायर	1950 निर्णीत	1950 बकाया	1960 दायर	1960 निर्णीत	1960 बकाया	1970 दायर	1970 निर्णीत	1970 बकाया
दीवानी प्रारम्भिक	106209	109222	64999	44356	46262	41896	42583	37608	95508
अपील (रेगुलर+विविध)	7807	9102	6091	6354	5365	6844	4429	4060	13742
विविध न्यायिक मुकदमे	20748	20877	7774	20829	18952	13669	16829	16263	21577
फौजदारी प्रारम्भिक	96883	97856	17812	132124	126845	55562	178376	139030	241686
फौजदारी अपील	4274	4062	956	4890	4362	2326	5702	4367	11403
योग	235921	241119	97632	208553	201786	120297	247919	201328	383916

मुकदमों के प्रकार	1980 दायर	1980 निर्णीत	1980 बकाया	1981 दायर	1981 निर्णीत	1981 बकाया	1982 (30-9-82 तक) दायर	1982 (30-9-82 तक) निर्णीत	1982 (30-9-82 तक) बकाया
दीवानी प्रारम्भिक	36968	44351	96070	37240	35617	97693	37411	35708	99396
अपील (रेगुलर+विविध)	11282	10803	16831	9648	8877	17602	8915	8608	17913
विविध न्यायिक मुकदमे	16762	15909	28520	20228	18951	29797	10554	11338	29020
फौजदारी प्रारम्भिक	253361	246652	531944	253095	250556	534483	193538	185504	542517
फौजदारी अपील	6908	6465	14638	6265	5969	14934	4734	4069	15999
योग	325281	324180	688003	326476	319970	694509	255152	245227	704434

तालिका संख्या 21

पटना उच्च न्यायालय के बकाया, दायर श्रौर निपटाने से संबंधित सांख्यिकीय श्रांकड़े

मुकदमों के प्रकार	1950 दायर	1950 निर्णीत	1950 बकाया	1960 दायर	1960 निर्णीत	1960 बकाया	1970 दायर	1970 निर्णीत	1970 बकाया
सिविल रिट	—	—	--	1008	663	790	2085	1712	1717
सिविल (सिविल रिट व सिविल विविध के श्रलावा)	3321	2835	6401	376	4860	5722	4282	3223	9055
फौजदारी (फौजदारी विविध के श्रलावा)	2720	2153	816	2287	2502	1334	3814	2333	4255
सिविल विविध	4342	4248	284	340	275	352	196	146	261
फौजदारी विविध	554	587	42	717	739	42	2687	2561	212
योग	10937	9823	7543	4728	9039	8240	13064	9975	15500

मुकदमों के प्रकार	1980 दायर	1980 निर्णीत	1980 बकाया	1983 दायर	1983 निर्णीत	1983 बकाया	1984 (30-6-84 तक) दायर	1984 (30-6-84 तक) निर्णीत	1984 (30-6-84 तक) बकाया
सिविल रिट	4307	4383	5303	7680	5567	12007	3941	3564	12384
सिविल (सिविल रिट व सिविल विविध के श्रलावा)	6279	4788	20019	4548	5591	19260	2198	3587	17871
फौजदारी (फौजदारी विविध के श्रलावा)	2613	1864	6212	2436	1569	9878	1490	1637	9731
सिविल विविध	686	461	1448	773	797	1568	528	621	1475
फौजदारी विविध	9893	9410	4472	16726	13404	11869	8178	5642	14405
योग	23778	20906	37454	32163	26928	54582	16335	15051	55866

मानचित्र संख्या 24 मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश अधीनस्थ न्यायालयों में निपटान के संस्थान से पीछे रह जाने के कारण हुए अत्यधिक लम्बन को दर्शाते हुए।

(1977–82)

मध्यप्रदेश अधीनस्थ न्यायालयों में मामलों का संस्थान, निपटान और लम्बन

तालिका संख्या 22

मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर
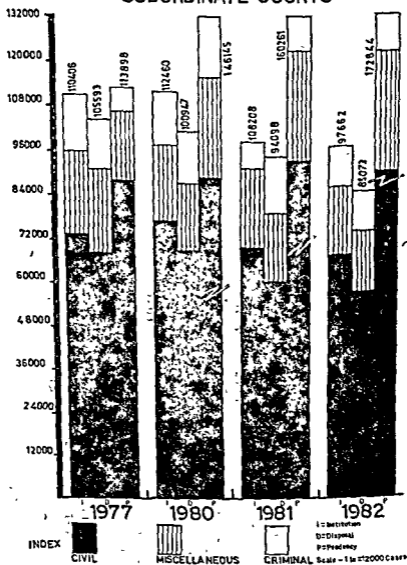
	वर्ष 1960				वर्ष 1970				वर्ष 1980			
	1-1-60 को विचाराधीन	दायर	निपटान	विचाराधीन 31-12-60	1-1-70 को विचाराधीन	दायर	निपटान	विचाराधीन 31-12-70	1-1-80 को विचाराधीन	दायर	निपटान	विचाराधीन 31-12-80
1. दीवानी याचिका	416	550	602	364	1066	1056	907	1215	18/3	1441	1799	1515
2. दीवानी	3943	3766	3808	3918	7904	4286	3757	8433	16208	6827	6790	16245
3. फौजदारी	1248	2441	2802	887	3339	2929	2580	3688	6854	3700	4622	5932
4. दीवानी	368	588	752	187	508	590	580	518	1717	908	1203	1422
5. फौजदारी विविध	97	563	602	58	208	1010	971	247	1044	3714	3996	762
योग :	6072	7908	8566	5414	13025	9871	8795	14101	27696	16590	18410	25876

	वर्ष 1981				वर्ष 1982			
	1-1-81 को विचाराधीन	दायर	निपटान	विचाराधीन 31-12-81	1.1.82 को विचाराधीन	दायर	निपटान	विचाराधीन 31-12-82
1 दीवानी याचिका	1515	2457	1950	2022	2022	2903	2343	2582
2. दीवानी	16245	7064	7320	15989	15989	6954	6931	16012
3 फौजदारी	5932	3978	3985	5925	5925	3830	3178	6577
4. दीवानी	1422	1039	1063	1398	1398	946	1111	1233
5 फौजदारी विविध	762	4099	4000	861	861	4710	4574	997
योग :	25876	18637	18318	26195	26195	19343	18137	27401

मध्य प्रदेश

तालिका संख्या 23

मध्य प्रदेश के अधीनस्थ न्यायालयों में दायर, निपटान और बकाया से संबंधित सांख्यिकीय विवरण

मुकदमो के प्रकार	1960			1970			1977		
	दायर	निपटान	बकाया	दायर	निपटान	बकाया	दायर	निपटान	बकाया
1	2	3	4	2	3	4	2	3	4
दीवानी प्रारम्भिक	33837	35129	28090	40729	31727	48753	62990	58035	78318
दीवानी अपील	6446	6979	5452	6082	6270	10142	10354	10459	9656
दीवानी विविध	11679	13865	6342	10845	10065	10157	23324	22680	20812
फौज. प्रारम्भिक (सत्र)	(आंकडे अप्राप्त हैं।)			(आकड़े अप्राप्त है।)			5470	5561	1749
फौजदारी अपील	(आकड़े अप्राप्त हैं।)			(आकड़े अप्राप्त हैं।)			8268	8858	3363
योग	51962	55973	39884	57656	48062	69052	110406	105593	113898
	1980			1982			1983		
दीवानी प्रारम्भिक	69551	61249	103037	77373	67593	121301	76609	69736	128174
दीवानी अपील	7815	7340	10851	8214	7235	13049	7316	6157	14208
दीवानी विविध	20698	18392	26268	24676	21063	32573	28079	25793	34859
फौज. प्रारम्भिक (सत्र)	7004	7158	2479	8898	7968	4550	10013	8954	5609
फौजदारी अपील	7392	6808	3510	7293	6706	4671	7830	7033	5468
योग	112460	100947	146145	126454	110565	176144	129847	117673	188318

मानचित्र संख्या 25

जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय में संस्थन में दस गुना वृद्धि के साथ बकाया में हुई 40 गुनी वृद्धि को दर्शाते हुए

[1960–83]
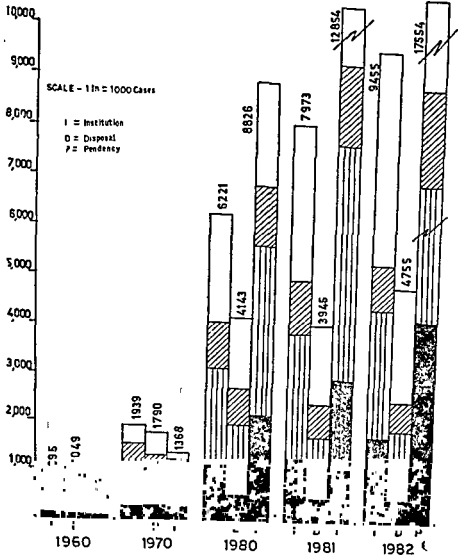
1983	दायर	निपटान	विचाराधीन
31-12-83	10751	6015	22290

मानचित्र संख्या 26

जम्मू और कश्मीर अधीनस्थ न्यायालयों में संस्थन से अधिक हुए निपटारे के कारण बकाया को नियन्त्रण में रहने को दर्शाते हुए

[1970–1982]
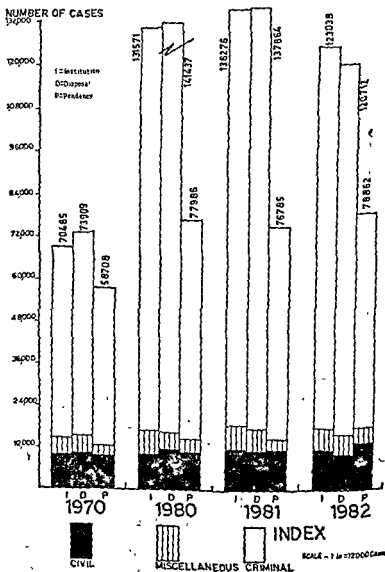
तालिका संख्या 24

जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय में दायर, निपटान तथा विचाराधीन से सम्बन्धी मुकदमो का सांख्यिकीय विवरण (1960-83)

	वर्ष 1960			वर्ष 1970		
	दायर	निपटान	विचाराधीन	दायर	निपटान	विचाराधीन
(i) दीवानी याचिका	102	112	41	268	283	230
(ii) दीवानी	468	469	313	952	777	800
(iii) फौजदारी	286	329	64	353	322	210
(iv) विविध	139	139	28	363	408	128
योग	995	1049	446	1936	1790	1368
	वर्ष 1980			वर्ष 1981		
(i) दीवानी याचिका	1127	507	2153	1270	487	2936
(ii) दीवानी	1952	1466	3439	2559	1274	4724
(iii) फौजदारी	959	733	1212	1058	657	1613
(iv) विविध	2183	1437	2022	3086	1527	3581
योग	6221	4143	8826	7973	3945	12854
	वर्ष 1982			वर्ष 1983		
(i) दीवानी याचिका	1753	471	4218			
(ii) दीवानी	2571	1390	5905			
(iii) फौजदारी	896	694	1815			
(iv) विविध	4235	2300	5516			
योग	9455	4855	17454	10751	6015	22190

तालिका संख्या 25

जम्मू एवं कश्मीर के अधीनस्थ न्यायालयों मे विचाराधीन, दायर तथा निपटान से सम्बन्धित मुकदमों का साख्यिकी विवरण

II. अधीनस्थ न्यायालय	वर्ष 1970			वर्ष 1980		
	दायर	निपटान	विचाराधीन	दायर	निपटान	विचाराधीन
(i) दीवानी प्रारम्भिक	8697	9490	8505	8764	9604	9869
(ii) अपीलें	1728	1591	1083	1453	1463	978
(iii) इजराय एवं विविध	4644	4948	2478	6096	5063	3888
(iv) फौजदारी प्रारम्भिक	54974	57458	46535	114753	124678	62953
(v) फौजदारी अपीलें	442	422	111	505	629	298
योग	70485	73909	58708	131571	141437	77986

	वर्ष 1981			वर्ष 1982		
(i) दीवानी प्रारम्भिक	10529	9878	10520	10533	8675	12378
(ii) अपीलें	1493	1515	956	1386	1581	761
(iii) इजराय एवं विविध	6376	6397	3867	5985	5749	4103
(iv) फौजदारी प्रारम्भिक	116887	119261	60579	104704	104241	61042
(v) फौजदारी अपीलें	991	813	476	430	466	440
योग	136276	137864	76398	123038	120712	78724

मानचित्र संख्या 27

मद्रास उच्च न्यायालय में संस्थन में अपूर्व वृद्धि के परिणामस्वरूप
अत्यधिक बकाया मामलों का संस्थान, निपटान और लम्बन
[1960–1982]
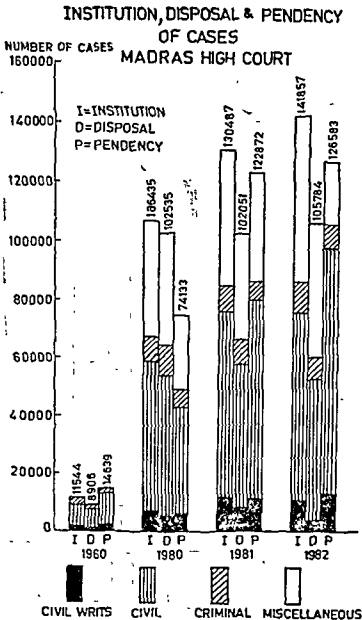
मानचित्र संख्या 28

मद्रास-अधीनस्थ न्यायालयों में अच्छे निपटान के कारण नगण्य लम्बन को दर्शाते हुए

[1960–1982]
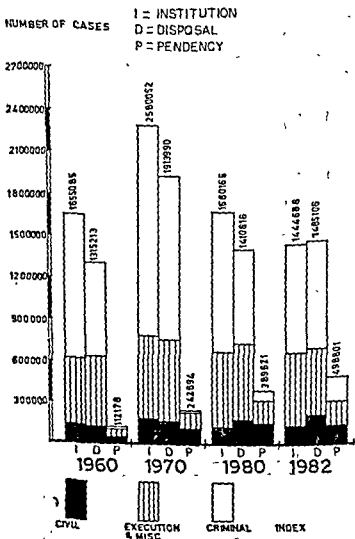
मानचित्र संख्या 29

हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय में संस्थन, निपटान ग्रौर लम्बन में वृद्धि को दर्शाते हुए

[1980–1982]

मानचित्र संख्या 30

केरल उच्च न्यायालय में अच्छे निपटान के कारण बकाया नियंत्रण मे
(1972–1983)

INSTITUTION, DISPOSAL & PENDENCY OF KERALA HIGH COURT
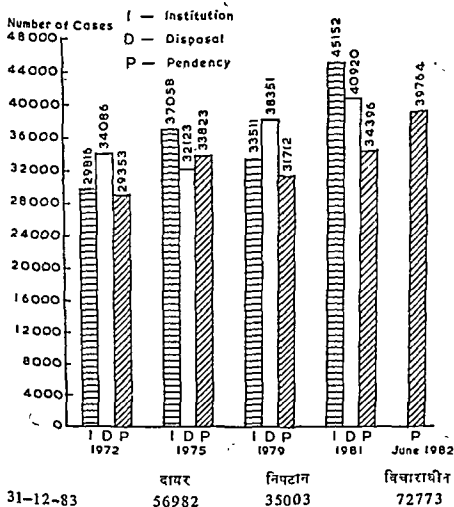
	दायर	निपटान	विचाराधीन
31–12–83	56982	35003	72773

मानचित्र संख्या 31

गौहाटी उच्च न्यायालय मे दशक मे लम्बन के दुगने होने को दर्शाते हुए
(1972–1983)

	दायर	निपटान	विचाराधीन
31–12–1983	4796	3809	9619
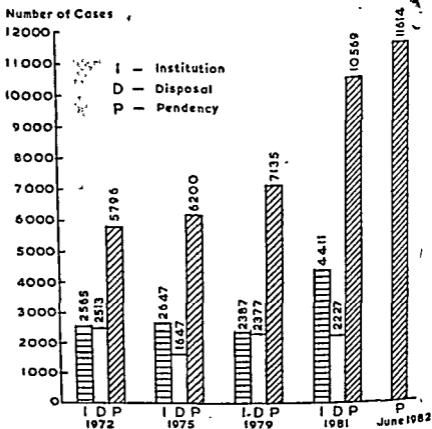
मानचित्र संख्या 32

गुजरात उच्च न्यायालय में दशक में संस्थन के दुगने होने के परिणामस्वरूप बकाया को दर्शाते हुए
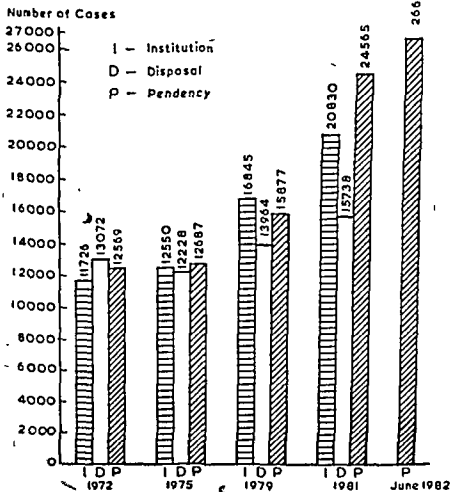
(1972–1983)

31–12–83	दायर	निपटान	विचाराधीन
	24884	20480	32159

मानचित्र संख्या 31

गौहाटी उच्च न्यायालय मे दशक में लम्बन के दुगने होने
(1972–1983)

INSTITUTION, DISPOSAL & PENDEI
GAUHATI HIGH COURT

मानचित्र संख्या 32

गुजरात उच्च न्यायालय मे दशक में संस्थन के दुगने होने के
परिणामस्वरूप बकाया को दर्शाते हुए
(1972–1983)

31–12–83	दायर	निपटान	विचाराधीन
	24884	20480	32159

मानचित्र संख्या 31

गौहाटी उच्च न्यायालय मे दशक में लम्बन के दुगने होने को दर्शाते हुए
(1972–1983)

	दायर	निपटान	विचाराधीन
31–12–1983	4796	3809	9619

मानचित्र संख्या 32

गुजरात उच्च न्यायालय में दशक में संस्थन के दुगने होने के परिणामस्वरूप बकाया को दर्शाते हुए
(1972–1983)

31–12–83

मानचित्र संख्या 33

दिल्ली उच्च न्यायालय में अच्छे निपटान के बावजूद बकाया मे तीन गुना वृद्धि को दर्शाते हुए
(1967–1983)

31-12-83	दायर	निपटान	विचाराधीन
	32674	21494	57839

दिल्ली उच्च न्यायालय में केवल दिल्ली क्षेत्र के ही नहीं बल्कि समस्त भारत की कई कम्पनियों के व कर्मचारियों के वाद दायर होते हैं, क्योंकि कई केन्द्रीय आज्ञाओं को चुनौती दी जाती है। अनेक प्रांतों के उद्योगों के रजिस्टर्ड कार्यालय दिल्ली में हैं। इस कारण जन संख्या के अनुपात में दिल्ली उच्च न्यायालय में मुकदमों के दायर होने की संख्या अधिक है।

तालिका सख्या 27

दिल्ली उच्च न्यायालय के दायर, निपटान तथा विचाराधीन मुकदमों से सम्बन्धित आंकड़े 1967–1983)

मुकदमों के प्रकार	1967			1972			1977		
	दायर	निपटान	विचाराधीन	दायर	निपटान	विचाराधीन	दायर	निपटान	विचाराधीन
	1	2	3	1	2	3	1	2	3
दीवानी याचिकाऐं	1882	1365	3140	1312	1327	3950	1013	870	5038
दीवानी मुकदमे	4082	2814	8065	3653	3101	8423	5022	2927	14674
दीवानी विविध मुकदमे	8589	6742	3140	9465	8551	3218	12085	11316	5359
फौजदारी मुकदमे	1350	873	1133	1002	947	922	1817	1457	1505
फौजदारी विविध मुकदमे	1103	1118	122	1042	1054	48	1724	1740	31
योग	17006	12912	15600	16474	14980	16561	21661	18310	26607
	1981			1982			1983		
	1	2	3	1	2	3	1	2	3
दीवानी याचिकाऐं	2925	1627	6690	4043	2498	8235	2821	2330	8726
दीवानी मुकदमे	5795	4187	17733	5101	3807	19027	13847	8719	24155
दीवानी विविध मुकदमे	17401	9058	15972	19865	19352	16485	11788	6758	21515
फौजदारी मुकदमे	1478	1260	2002	1415	1208	2209	600	400	2409
फौजदारी विविध मुकदमे	1852	1203	706	1755	2248	213	3618	3287	544
योग	29451	17335	43103	32179	29113	46169	32674	21494	57349

मानचित्र संख्या 35

कलकत्ता उच्च न्यायालय मे दो दशक में पाच गुना वृद्धि (1960–1982)

(1-7-83 से 31-12-83)

	दायर	निपटान	विचाराधीन
	15,244	5,991	1,06,081
	1,643	855	10,473
	4,944	4,902	267
योग	21,831	11,748	1,16,821

कलकत्ता उच्च न्यायालय की प्रारम्भिक अधिकारिता के कारण अधिक संख्या मे संस्थन है तीव्र औद्योगीकरण के कारण मामलों का संस्थन और लम्बन बहुत अधिक हो गया है।

मानचित्र संख्या 34
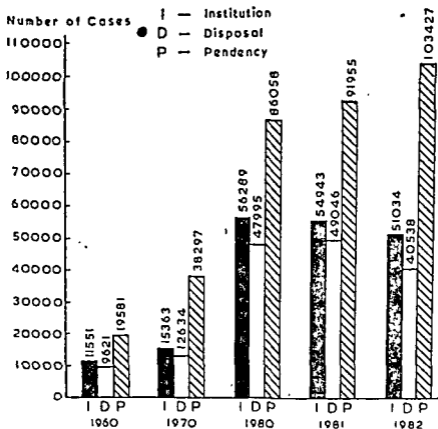
दिल्ली अधीनस्थ न्यायालयों में अच्छे निपटान के बावजूद वादों में असामान्य वृद्धि

[1970–1983]

INSTITUTION, DISPOSAL & PENDENCY OF CASES DELHI SUBORDINATE COURTS
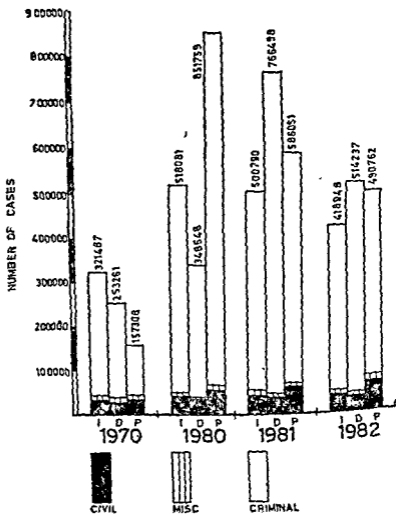
31-12-83	दायर	निपटान	विचाराधीन
दीवानी	42,610	38,797	79,281
फौजदारी	2,29,888	2 37,452	4,43,216
	2,72,498	2,76,249	5,22,497

मानचित्र संख्या 35

कलकत्ता उच्च न्यायालय मे दो दशक मे पांच गुना वृद्धि (1960–1982)
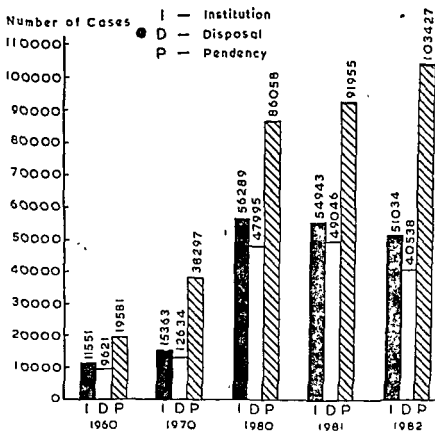
(1-7-83 से 31-12-83)

	दायर	निपटान	विचाराधीन
	15,244	5,991	1,06,081
	1,643	855	10,473
	4,944	4,902	267
योग	21,831	11,748	1,16,821

कलकत्ता उच्च न्यायालय की प्रारम्भिक अधिकारित के कारण अधिक संख्या मे संस्थन है तीव्र औद्योगीकरण के कारण मामलों का संस्थन और लम्बन बहुत अधिक हो गया है।

मानचित्र संख्या 36

पश्चिमी बंगाल के अधीनस्थ न्यायालयों में संस्थन में मात्र पांच गुना वृद्धि के बावजूद बकाया मे दस गुना वृद्धि को दर्शाते हुए

(1960–83)
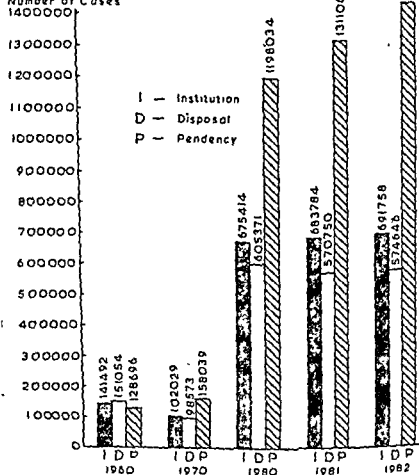
	दायर	निपटान	विचाराधीन
1983	21931	11748	116821

नोट—पश्चिमी बंगाल में मुकदमे दायर होने के प्रतिशत मे अत्यधिक वृद्धि का होना ग्रामीण जनता में चेतना व अपने न्यायिक अधिकारो की जानकारी ही मुख्य कारण है।

पश्चिमी बंगाल

तालिका संख्या 28

पश्चिमी बंगाल उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालयों में दायर, निपटान तथा विचाराधीन मुकदमों सम्बन्धी सांख्यिकीय विवरण

मुकदमों के प्रकार	1980			1981			1982		
उच्च न्यायालय	दायर	निपटान	विचाराधीन	दायर	निपटान	विचाराधीन	दायर	निपटान	विचाराधीन
(i) दीवानी	36,433	29,338	79,178	36,670	32,668	83,180	33,796	25,713	91,263
(ii) फौजदारी	4,309	2,85[illegible]	4,648	5,038	3,136	6,550	5,038	2,635	8 953
(iii) विविध	15,547	15,803	2,232	13,235	13,242	2,225	12,200	12,190	2,235
योग	56,289	47,995	86,058	54,943	49,046	91,955	51,034	40 538	1,02,451
अधीनस्थ न्यायालय									
(i) दीवानी प्रारम्भिक	71,780	63,713	1,78,658	74,762	65,831	1,87,589	72,785	65,506	1,94,868
(ii) अपीलें रेगुलर	8,679	8,940	7,381	9,451	8,422	8,410	11,085	8,329	11,166
(ii) अपीलें विविध	3,814	3,524	2,541	3,659	3,563	2,637	3,466	3 274	2,829
(iii) (अ) इजराय	8,161	7,684	30,002	7,669	7,546	30,125	6,940	6,858	30,207
(ब) विविध मुकदमे	22,295	19,474	44,539	23,056	19,934	47,661	21,457	18,698	50,420
(iv) फौज.प्रारंभिक	5,57,740	4,99,234	9,33,879	5,61,866	4,62,286	10,33,459	5,72,824	4,69,030	11,37,253
(अ) फौज. अपीलें	1,086	1,042	389	1,275	1,155	509	1,236	1,158	587
(ब) फौज.पुनरीक्षण	1,859	1,760	645	2,046	2,013	678	1,965	1793	850
योग	6 75,414	6,05,371	11,98,034	6,83,784	5,70,750	13,11,068	6,91,758	5,74,646	14,28,180
कुल योग	7,31,703	6 53,366	12,84,092	7,38,727	6,19,796	14,03,023	7,42,792	6,15,184	15,30,631

उत्तर प्रदेश

मानचित्र संख्या 37

तीन दशक में संस्थन में छः गुना वृद्धि के परिणामस्वरूप बकाया के सत्रहगुना होने को दर्शाते हुए

(1950–1983)
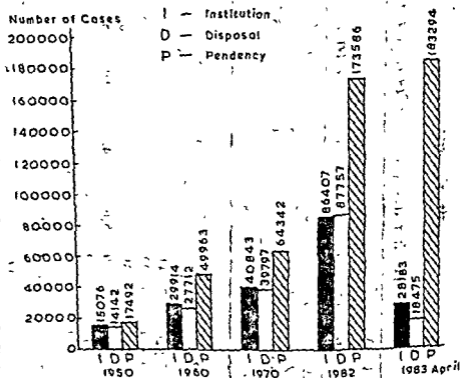
भारत के सबसे बड़े राज्य में लम्बन, सम्पूर्ण राष्ट्र के लम्बन का पांचवा भाग है। वर्तमान में संस्थन प्रति वर्ष लगभग एक लाख मामलों का है।

1983 दिसम्बर तक	दायर	निपटान	विचाराधीन
	85,136	61,206	1,97,516

मानचित्र संख्या 38 उत्तर प्रदेश

उत्तरप्रदेश के अधीनस्थ न्यायालयो मे संस्थन और निपटान, लम्बन से अधिक होने को दर्शाते हुए।
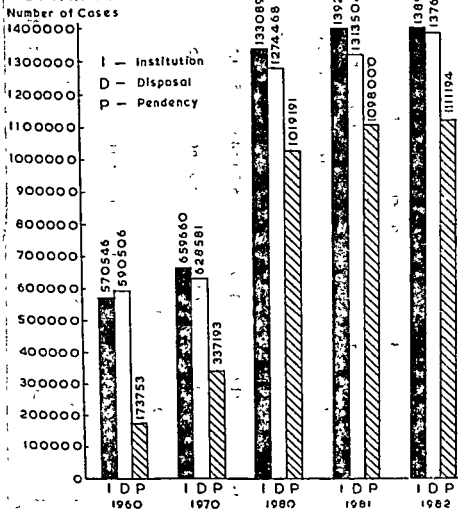
(1960–1983)

1983	दायर	निपटान	विचाराधीन
	85,136	61,206	1,97,516

भारत राष्ट्र मे उत्तर प्रदेश मे प्रति वर्ष 14 लाख अभियोजन या वादो का संस्थन एवं निस्तारण विश्व कीर्तिमान के लिए पर्याप्त हो सकता है तथापि लगभग 20 लाख मुकदमे अधीनस्थ न्यायालयो मे विचाराधीन रहे, यह अपने आप मे खेद का विषय हागा।

तालिका संख्या 29

उत्तर प्रदेश

इलाहाबाद उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालयों में वर्ष 1950, 1960, 1970, 1980, 1981, 1982 व 1983 से सम्बन्धित मुकदमो का सांख्यिकीय विवरण

वर्ष	उच्च न्यायालय			अधीनस्थ न्यायालय		
	दायर	निपटान	लम्बित	दायर	निपटान	लम्बित
1950	15,076	14,142	17,492	उपलब्ध नही हैं		
1960	29,914	27,712	49,963	5,70,546	5,90,506	1,73,753
1970	40,843	39,797	64,342	6,59,660	6,28,581	3,37,193
1980	78,408	69,269	1,29,301	13,30,899	12,74,468	10,19,191
1981	1,08 590	62,955	1,74,936	13,92,313	13,13,504	10,98,000
1982	86,407	87,757	1,73,586	13,89,648	13,76,454	11,11,194
1983	85,136	61,206	1,97,516	उपलब्ध नहीं हैं		

तालिका संख्या 30

महाराष्ट्र

बम्बई उच्च न्यायालय में मुकदमों की 1-7-84 से 31-12-84 तक की स्थिति

	दि. 1-7-84 की स्थिति	दि. 1-7-84 से 31-12-84 तक दायर	दि 1-7-84 से 31-12-84 तक निर्णीत	31-12-84 को शेष
रिट याचिकाऐं	24,325	6,508	5,998	24,835
दीवानी मामले	44,727	8,686	6,108	47,305
फौजदारी मामले	4,862	1,453	1,078	5,237
विविध मामले	21,452	13,760	9,647	25,565
योग	95,366	30,407	22,831	1,02 942

महाराष्ट्र राज्य में वर्ष 1984 में अधीनस्थ न्यायालयों से संबंधित संस्थन, निस्तारण व बकाया मुकदमों का विवरण

	वर्ष 84 में दायर	वर्ष 84 में निस्तारण	31-12-84 को शेष
दीवानी	2,01,441	1,57,735	4,94,554
फौजदारी	12,15,692	12,43,882	11,32,104
योग	14,17,133	14,01,617	16,26,658

बम्बई उच्च न्यायालय में मुकदमे कितने पुराने

एक वर्ष से कम	एक व दो वर्ष के बीच	दो व तीन वर्ष के बीच	3 व 4 वर्ष के बीच	4 व 5 वर्ष के बीच	5 व 6 वर्ष के बीच	6 व 7 वर्ष के बीच	7 व 8 वर्ष के बीच	8 व 9 वर्ष के बीच	9 व 10 वर्ष के बीच	10 वर्ष से अधिक
30,257	19,512	14,540	10,652	9,553	5,404	3,633	3,223	2,522	1,702	1,944

सालिका संख्या 31

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र राज्य मे उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों व अधीनस्थ न्यायालयो के पीठासीन अधिकारियों की स्वीकृत व कार्यरत संख्या व रिक्त पदों की दिनांक 31-12-84 की स्थिति

	बम्बई उच्च न्यायालय	जिला एवं सैशन न्यायाधीश	अपर जिला न्यायालय	सीनियर सिविल व सी.जे.एम. व वम्बई में सी.एम.एम.	सिविल जज (जूनियर) व न्या. एवं मैट्रोपोलीटन मजिस्ट्रेट	न्यायाधीश लघुवाद न्या.	वम्बई में सिटी सिविल एवं सैशन जज
स्वीकृत	47	37	75	99	614	37	37
कार्यरत	37	37	75	99	521	29	37
रिक्त पद	10	—	—	—	93	8	—

मानचित्र संख्या 39
भारतीय उच्च न्यायालयों में एक न्यायाधीश द्वारा निस्तारित किये गये मुकदमों का औसत
AVERAGE DISPOSAL OF A JUDGE IN
INDIAN HIGH COURTS
1981
1980
1979
1978
Allahabad
Andhra Pradesh
Bombay
Calcutta
Delhi
Gauhati
Gujarat
Himachal Pradesh
Jammu Kashmir
1
2
3
4
5
6
7
8
9

मानचित्र संख्या 39 (द्वितीय भाग)

भारतीय उच्च न्यायालयों में एक न्यायाधीश द्वारा निस्तारित किये गये मुकदमों का औसत

तालिका संख्या 32 भारत मे न्यायाधीशों के पदो की संख्या 1-4-1980 को

अदालत का नाम	कार्यरत न्यायाधीशो की संख्या			स्वीकृत पद		
	स्थायी	अतिरिक्त	योग	स्थायी	अतिरिक्त	योग
उच्चतम न्यायालय	16	—	16	18	—	18
1. इलाहाबाद	50	12	62	44	16	60
2. आन्ध्र प्रदेश	17	2	19	18	3	21
3. बम्बई	27	12	39	27	14	41
4. कलकत्ता	32	—	32	33	7	40
5. देहली	14	12	26	15	12	27
6. गौहाटी	5	—	5	8	1	9
7. गुजरात	12	4	16	14	4	18
8. हिमाचल प्रदेश	3	—	3	3	2	5
9. जम्मू कश्मीर	4	—	4	5	2	7
10. कर्नाटक	17	5	22	17	6	23
11. केरल	13	1	14	12	3	15
12 मध्य प्रदेश	19	5	24	20	9	29
13. मद्रास	19	2	21	21	4	25
14. उड़ीसा	7	—	7	7	1	8
15. पटना	25	—	25	30	5	35
16 राजस्थान	9	5	14	10	6	16
17. पंजाब व हरियाणा	17	4	21	17	6	23
18 सिक्किम	2	—	2	2	—	2
योग	308	64	372	321	101	422
1-9-81 की स्थिति	273	49	322	308	98	406
1-9-81 को रिक्त स्थान	—	—	—	35	49	84

मानचित्र संख्या 39 (द्वितीय भाग)

भारतीय उच्च न्यायालयों में एक न्यायाधीश द्वारा निस्तारित किये गये मुकदमों का औसत

तालिका संख्या 32 — भारत मे न्यायाधीशो के पदो की संख्या 1-4-1980 को

अदालत का नाम	कार्यरत न्यायाधीशो की सख्या			स्वीकृत पद		
	स्थायी	अतिरिक्त	योग	स्थायी	अतिरिक्त	योग
उच्चतम न्यायालय	16	—	16	18	—	18
1. इलाहाबाद	50	12	62	44	16	60
2. आन्ध्र प्रदेश	17	2	19	18	3	21
3. बम्बई	27	12	39	27	14	41
4. कलकत्ता	32	—	32	33	7	40
5. देहली	14	12	26	15	12	27
6. गौहाटी	5	—	5	8	1	9
7. गुजरात	12	4	16	14	4	18
8. हिमाचल प्रदेश	3	—	3	3	2	5
9. जम्मू कश्मीर	4	—	4	5	2	7
10. कर्नाटक	17	5	22	17	6	23
11. केरल	13	1	14	12	3	15
12 मध्य प्रदेश	19	5	24	20	9	29
13. मद्रास	19	2	21	21	4	25
14 उड़ीसा	7	—	7	7	1	8
15 पटना	25	—	25	30	5	35
16. राजस्थान	9	5	14	10	6	16
17. पंजाब व हरियाणा	17	4	21	17	6	23
18 सिक्किम	2	—	2	2	—	2
योग	308	64	372	321	101	422
1-9-81 की स्थिति	273	49	322	308	98	406
1-9-81 को रिक्त स्थान	—	—	—	35	49	84

तालिका संख्या 33

भारतीय न्यायपालिका का कैंसर रोग

उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालयों में युगों पुराने अनिर्णीत वाद व न्यायाधीशों की नियुक्ति में विलम्ब

न्यायालय का नाम	रिक्त स्थान न्यायाधीश	प्रति पुराने लम्बित मुकदमे			
उच्चतम न्यायालय	31–3–85	5 वर्ष	10 वर्ष	15 वर्ष	20 वर्ष
[निरन्तर सुनवाई वाले मुकदमे मात्र]	×	11507	2961	16	—

उच्च न्यायालय का नाम	रिक्त स्थान न्यायाधीश	प्रति पुराने लम्बित मुकदमे	
		5 वर्ष से अधिक	10 वर्ष से अधिक
1	2	3	4
		(31–12–84)	(31-12-84)
आन्ध्र प्रदेश	6	4,349	—
बम्बई	7	18,428	1,944
गुजरात	3	4,867	47
हिमाचल प्रदेश	5	2,311	297
केरल	3	922	1
पटना	3	9,539	1,575
पंजाब व हरियाणा	6	5,807	[illegible]
राजस्थान	[illegible]	[illegible]	[illegible]

1	2	3	4
सिक्किम	1	(30-6-84)	(30-6-84)
इलाहाबाद	9	43,845	5,019
कलकत्ता	3	45,069	11,342
देहली	2	12,561	3,418
जम्मू कश्मीर	1	2,771	236
कर्नाटक	2	16,642	64
मध्य प्रदेश	2	6,253	1,067
मद्रास	6	4,471	3
उड़ीसा	1	2,292	250
		(30-6-83)	(30-6-83)
गोहाटी	2	2,629	243
योग	—	1,88,063	26,611

तालिका संख्या 34

न्यायाधीशों की संख्या

1951–84

अदालत का नाम	वर्ष				
	1951	1961	1971	1981	1984
उच्चतम न्यायालय	8	15	16	16	18
इलाहाबाद	19	38	48	60	52
आन्ध्र प्रदेश	10	19	22	19	23
बम्बई	20	19	28	39	41
कलकत्ता	19	25	43	32	41
देहली	—	—	17	26	27
गुजरात	—	9	16	16	19
मध्य प्रदेश	10	15	17	24	28
हिमाचल प्रदेश	1	1	3	3	6
पंजाब व हरियाणा	7	18	17	21	19
राजस्थान	9	10	13	14	14
केरल	—	10	14	14	14
मद्रास	18	14	18	21	21
जम्मू कश्मीर	3	3	5	4	5
आसाम	2	4	4	5	7
मैसूर	5	10	16	22	24
उड़ीसा	4	6	7	7	10
पटना	14	20	21	25	35
सिक्किम	—	—	—	2	3
योग	149	236	325	370	407

तालिका संख्या 35

कर्नाटक राज्य में वर्ष 1984 में उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालयों से सम्बन्धित मुकदमों का विवरण

उच्च न्यायालय

	दिनांक 1-1-84 को स्थिति	वर्ष 1984 में दायर	वर्ष 1984 में निर्णीत	31-12-84 को लम्बित
रिट याचिकाऐं	85,228	20 576	37,288	68,516
दीवानी मामले	25,449	12,363	15,260	22,552
फौजदारी मामले	1,750	2,431	2,096	2,085
विविध मामले	4,167	1,561	2,097	3,631
योग	1,16,594	36,931	56,741	96,784

अधीनस्थ न्यायालय

	1-1-84 को लम्बित	1984 में दायर	1984 में निर्णीत	31-12-84 को लम्बित
दीवानी	6,54,108	1,69,404	1,55,856	6,67,656
फौजदारी	2,80,440	4,54,398	3,73,186	3,61,652
योग	9,34,548	6,23,802	5,29,042	1,02,9308

कर्नाटक राज्य में उच्च न्यायालय (बंगलोर) क न्यायाधीशों व अधीनस्थ न्यायालयों के पीठासीन अधिकारियों की स्वीकृत व कार्यरत सख्या व रिक्त पदों की दिनांक 31-12-84 तक की स्थिति ।

कर्नाटक उच्च न्यायालय		जिला एव सेशन न्यायाधीश	अपर जिला न्यायाधीश न्यायाधीश	सिविल जज एवं सी जे एम	मुन्सिफ एवं न्यायिक मजिस्ट्रेट	लघुवाद न्यायाधीश
1		2	3	4	5	6
स्वीकृत	24	82	—	110	221	—
कार्यरत	23	82	—	109	209	—
रिक्त पद	1	—	—	1	12	—

तालिका संख्या 36

पंजाब व हरियाणा उच्च न्यायालयों में मुकदमों की तारीख 31-12-84 की स्थिति

	दि. 1-1-84 को लम्बित	वर्ष 1984 में दायर	वर्ष 1984 में निर्णीत	31-12-84 को लम्बित
रिट याचिकाऐं	7,077	6,351	6,260	7,168
दीवानी मामले	22,121	12,570	12,153	22,538
फौजदारी मामले	2,061	6,110	6,030	2,141
विविध मामले	2,026	18,924	19,089	1,861
योग	33,285	43,955	43,532	33,708

पंजाब व हरियाणा राज्यो मे उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों व अधीनस्थ न्यायालयों के पीठासीन अधिकारियों की स्वीकृत व कार्यरत संख्या तथा रिक्त पदों की दिनांक 16-7-85 तक की स्थिति

	पंजाब व हरियाणा उच्च न्यायालय	सुपीरियर न्यायिक सेवा		पी.सी.एस /एच.सी.एस. न्यायिक शाखा	
		पंजाब	हरियाणा	पंजाब	हरियाणा
स्वीकृत	23	45	46	178	128
कार्यरत	16	41	45	153	96
रिक्त पद	7	4	1	25	32

पंजाब एवं हरियाणा राज्यों व चण्डीगढ (यू. टी.) में वर्ष 1984 में अधीनस्थ न्यायालयों से सम्बन्धित मुकदमों का विवरण ।

	1-1-84 को लम्बित			1984 मे दायर			1984 में निर्णीत			31-12-84 को लम्बित		
	पंजाब	हरियाणा	चण्डीगढ	पंजाब	हरियाणा	चण्डीगढ़	पंजाब	हरियाणा	चण्डीगढ	पंजाब	हरियाणा	चण्डीगढ
दीवानी	70,309	64,257	3,124	85,931	70,680	4,347	78,025	61,553	3,838	78,215	73,384	3,633
फौजदारी	1,07,891	85,035	11,833	1,65,391	95,165	14 602	1,71,236	80,577	13,530	1,02,046	99,623	12,905
योग	1,78,200	1,49,292	14,957	2,51,322	1,65,845	18,949	2,49,261	1,42,130	17,368	1,80,261	1,73,007	16,53[illegible]

राजस्थान उच्च न्यायलय

राजस्थान प्रान्त में अधिकृत 18 न्यायाधीशों की संख्या के स्थान पर मात्र 13 ही कार्यरत थे जो सूचनांक घटाकर मात्र 11 ही रह गया। 1951 में न्यायाधीशों की अधिकतम स्वीकृत संख्या 12 थी जबकि, कुल लम्बित प्रकरण 3,000 ही थे, तत्पश्चात् यह सख्या घटाकर 6 कर दी गई। 1983 में लम्बित प्रकरणों की सख्या 42,986 थी। 1951 की तुलना में न्यायाधीशों की संख्या 50 होनी चाहिए, जबकि, 1983 मे 16 न्यायाधीश ही कार्यरत थे। 2030 प्रकरण भूमि सुधारों के सन्दर्भ में, 775 मजदूरों सम्बन्धित, 2370 कर्मचारियों की सेवाओं से सम्बन्धित एवं 6881 विविध याचिकायें विचाराधीन हैं, जिनमें से आधी से अधिक तीन वर्ष से भी अधिक समय से लम्बित हैं, जिसके लिए उपरोक्त तथ्य जिम्मेवार हैं। अब 13-7-85 को कुल 22 न्यायाधीश नियुक्त हो चुके हैं व अधिकृत संख्या बढ़कर 25 हो गई है।

तालिका संख्या 37

राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष लम्बित वादों की संख्या

वर्ष	31-12-84 को		
	रिट (विविध सहित)	दिवानी (विविध सहित)	फौजदारी (विविध सहित)
1 से कम	8,619	4,299	2,154
1 से 2	4,523	2,837	1,870
2 से 3	2,552	1,949	1,636
3 से 4	1,938	1,480	1,423
4 से 5	1,435	1,267	1,136
5 से 6	966	950	1,126
6 से 7	734	700	698
7 से 8	314	532	391
8 से 9	172	463	349
9 से 10	39	426	113
10 से 11 और इससे अधिक	1	1,002	37
कुल योग	21,293 +	15,905 +	10,933 =48,131

तालिका संख्या 38

राजस्थान उच्च न्यायालय नवीनतम ग्रांकड़े

मुकदमों का प्रकार	जोधपुर (मुख्यालय) दि. 1-1-85 की स्थिति	जनवरी 85 से मई 85 तक दायर	जनवरी 85 से मई 85 तक निर्णीत	31-5-85 को लम्बित	जयपुर बैंच दि. 1-1-85 की स्थिति	जन. 85 से मई 85 तक दायर	जन. 85 से मई 85 तक निर्णीत	31-5-85 को लम्बित
रिट याचिकाएं	6,659	940	1,323	6,276	7,220	897	560	7,557
दीवानी मामले	4,883	733	733	4,883	7,827	1,031	1,210	7,648
फौजदारी मामले	4822	983	754	5,051	4,587	1,434	1,274	4,747
विविध मामले	7,531	1,841	2,008	7,364	4,602	2,385	2,074	4,913
योग	23,895	4,497	4,818	23,574	24,236	5,747	5,118	24,865

संयुक्त मुख्यालय व बैंच (31-1-85 से 31-5-85)

रिट याचिकाएं	13,879	1,837	1,883	13,833
दीवानी मामले	12,710	1,764	1,943	12,531
फौजदारी मामले	9,409	2,417	2,028	9,798
विविध मामले	12,133	4,226	4,082	12,277
योग	48,131	10,244	9,936	48,439

राजस्थान उच्च न्यायालय में न्यायाधीश स्वीकृति एवं कार्यरत संख्या व रिक्त पद

	स्वीकृत संख्या	कार्यरत	रिक्त पद
1-1-85	18	15	3
31-5-85	18	14	4
13-7-85	25	22	3

मानचित्र संख्या 40

सन् 1951-1984 के तीन दशकों में राजस्थान उच्च न्यायालय में 16 गुना विचाराधीन मुकदमों की संख्या के बावजूद भी न्यायाधीशों की संख्या में मात्र तीनगुनी ही वृद्धि की गई है, जिनमें भी रिक्त स्थान हैं।

तालिका संख्या 39
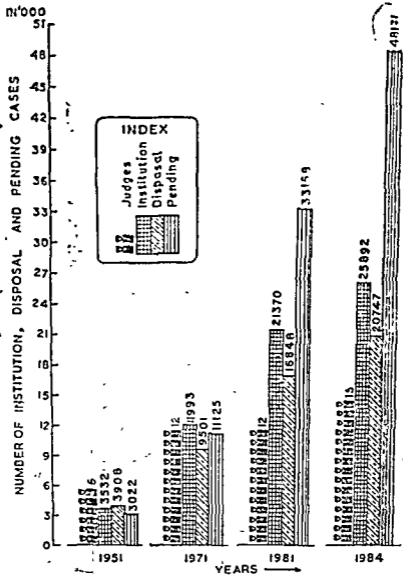
1951 से 1984—राजस्थान के अधीनस्थ न्यायालयों का कार्य-विवरण

वर्ष	न्यायालयों की संख्या		वर्ष के प्रारम्भ में बकाया मुकदमो की संख्या	वर्ष में दायर हुये	कालम संख्या 3 व 4 का योग	वर्ष मे निर्णय हुये	शेष
1	2		3	4	5	6	7
1951	दीवानी 131		दीवानी 66,050	दीवानी 98,923	दीवानी 1,64,973	दीवानी 1,09,512	दीवानी 55,461
1961	135		दीवानी 66,177	दीवानी 1,09,676	दीवानी 1,75,853	दीवानी 1,07,065	दीवानी 68,788
			फौज. 13,616	फौज. 1,34,779	फौज. 1,48,395	फौज. 1,14,628	फौज. 33,767
		योग	79,793	2,44,455	3,24,248	2,21,693	1,02,555
1971	191		दीवानी 95,435	दीवानी 91,314	दीवानी 1,86,749	दीवानी 92,114	दीवानी 94,635
			फौज. 1,41,823	फौज. 1,36,218	फौज. 2,78,041	फौज. 1,29,642	फौज. 1,48,399
		योग	2,37,258	2,27,532	4,64,790	2,21,756	2,43,034

1	2		3	4	5	6	7
1980			दीवानी 3,41,334 फौज. 1,07,066	दीवानी 56,347 फौज 16,275	दीवानी 3,97,681 फौज. 1,23,341	दीवानी 51,967 फौज. 15,077	दीवानी 3,45,714 फौज. 1,08,264
		योग	4,48,400	72,622	5,21,022	67,044	4,53,978
1984	419		दीवानी 1,81,402 फौज. 4,44,478	दीवानी 1,01,205 फौज. 3,01,352	दीवानी 2,82,607 फौज. 7,45,830	दीवानी 84,011 2,51,791	दीवानी 1,98,596 4,94,039
		योग	6,25,880	4,02,557	10,28,437	3,35,802	6,92,635

तालिका संख्या 40

राजस्थान उच्च न्यायालय मे 10 वर्षों से अधिक पुराने लम्बित मुकदमे (30-6-1985 को)

	(1973) 12 वर्ष	(1972) 13 वर्ष	(1971) 14 वर्ष	(1970) 15 वर्ष	(1969) 16 वर्ष	(1968) 17 वर्ष	योग
जोधपुर	67	10	—	—	—	—	77
जयपुर पीठ	93	67	11	6	1	1	179
योग	160	77	11	6	1	1	256

तालिका संख्या 41

राजस्थान उच्च न्यायालय
1951 से 1984–34 वर्षों का कार्य-विवरण

वर्ष	दायरा किस्म मुकदमा	संख्या	रिट	निस्तारण किस्म मुकदमा	संख्या	रिट	शेष किस्म मुकदमा	संख्या	रिट	न्यायाधीशों की संख्या	जन संख्या
1951	दीवानी	1911	570	दीवानी	1541	557	दीवानी	2295	413	12(25-1-51)	1,59,70,744
	फौज.	1621		फौज.	1367		फौज.	727		6 (26-1-51)	
	योग	3532		योग	2908		योग	3022			
1961	दीवानी	2553	891	दीवानी	2684	838	दीवानी	4724	731	9	2,01,55,602
	फौज.	1924		फौज.	1972		फौज.	869			
	योग	4477		योग	4656		योग	5593			
1971	दीवानी	4957	2241	दीवानी	4015	1662	दीवानी	7518	3032	12	2,57,65,806
	फौज.	3691		फौज.	3299		फौज.	1927			
	योग	8648		योग	7314		योग	9445			
1981	दीवानी	7478	4196	दीवानी	5944	3191	दीवानी	15799	7671	13	3,41,02,912
	फौज.	5424		फौज.	4427		फौज.	6213			
	योग	12902		योग	10371		योग	22012			
1984	दीवानी	3822	10755	दीवानी	3285	7678	दीवानी	12710	21293 (विविध सहित)	15	
	फौज.	5516		फौज.	4698		फौज.	9409			
	विविध	5799		विविध	5086		विविध	4719		15	
	योग	15137		योग	13069		योग	26838			

मानचित्र संख्या 41

राजस्थान उच्च न्यायालय में 1951-84 के मध्य लम्बित प्रकरणों की संख्या में सोलह गुना वृद्धि जबकि, संस्थन मात्र छह गुना ही हुई वृद्धि को प्रदर्शित करता है।
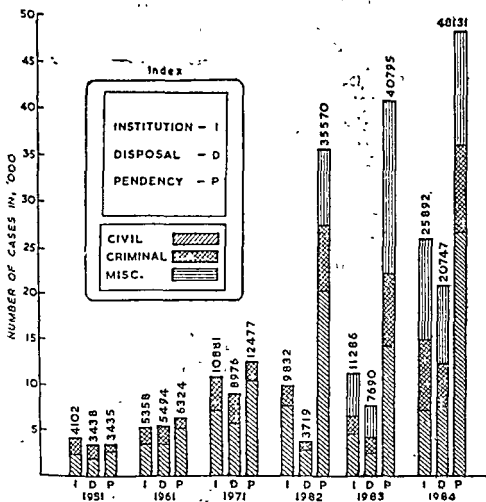
मानचित्र संख्या 42 व 43 (जो अगले पृष्ठों पर हैं) राजस्थान उच्च न्यायालय के संदर्भ मे प्राचीन अभियोजनो की संख्या तथा वे प्राचीनतम् अभियोजन जिनमें दोषी व्यक्ति जेलों मे विचाराधीन कैदी रहते हुए लम्बित अपील एव रिवीज़न की सुनवाई का इन्तजार कर रहे हैं, का चित्रण करते हैं।

मानचित्र संख्या 42

राजस्थान उच्च न्यायालय में अधीनस्थ न्यायालयों में अन्वीक्षा पश्चात् एक दशक से भी अधिक समय से लम्बित वादों एवं अभियोजनों की संख्या।

OLDEST CASES PENDENCY IN RAJASTHAN HIGH COURT
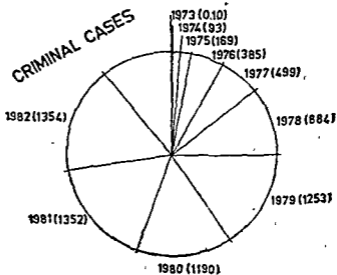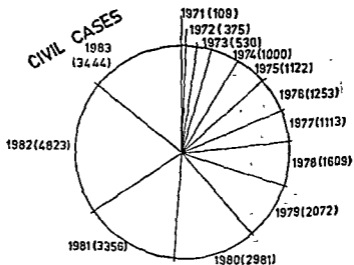
मानचित्र संख्या 43

राजस्थान प्रान्त के कारागृहों में निर्दोष सिद्धि हेतु आतुरता से प्रतिक्षारत् याचक एवं उनके लम्बित प्रकरणों की संख्या (1976-1983)
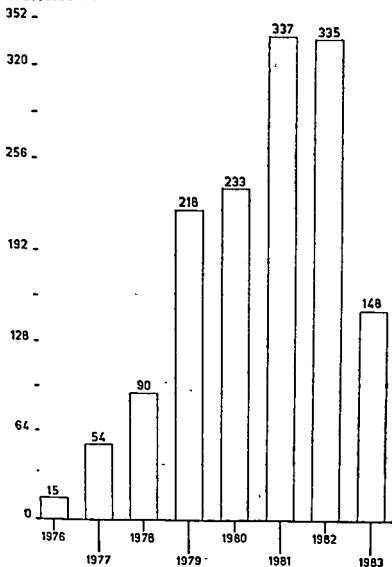
तालिका संख्या 42

अपराधी जेलों में—राजस्थान उच्च न्यायालय के वादों में अपीलों की कुल संख्या जिनमे अपराधी जेल में हैं और अपराधियों की कुल संख्या 27-7-83 तक की विवरणिका:—

वर्ष	अपीलों की कुल संख्या,जिनमे अपराधी जेल में है ।	अपराधियों की संख्या जो जेल में हैं ।
1975	1	1
1976	5	15
1977	8	54
1978	23	90
1979	36	218
1980	48	233
1981	68	337
1982	93	335
1983	32	148
योग	314	1,431

पुनरावेदन जिनमें अभियुक्त कारागृह में हैं की कुल संख्या और अभियुक्तों की कुल संख्या

वर्ष	कुल रिवीजन जिनमे अभियुक्त कारागृहों में हैं ।	अभियुक्तगण जो कारागृह में हैं, की कुल संख्या,
1982	1	1
1983	3	3
योग	4	4

न्यायिक अधिकारियों की संख्या में अल्प वृद्धि

राजस्थान के अधीनस्थ न्यायालयों में सन् 1951 से 1984 के बीच न्यायिक अधिकारियों की संख्या में मात्र 131 से 385 की ही वृद्धि की गई है, जबकि लम्बित प्रकरणों की संख्या 77,956 से बढ़कर 6,92,635 एवं इससे भी अधिक हो गयी है, इसका कारण निस्तारण से संस्थान की संख्या में सदैव वर्ष-प्रतिवर्ष की बढ़ोतरी ही है। मानचित्र स. 46 में 1951 से 1984 के मध्य संस्थान, निस्तारण, व लम्बित प्रकरणों की संख्या, तथा न्यायाधीशों की संख्या को प्रदर्शित किया गया है।

मानचित्र संख्या 44 [दीवानी प्रकरण]

राजस्थान में अधीनस्थ न्यायालयों मे सन् 1951 की तुलना मे सन् 1984 मे दीवानी प्रकरणों की बकाया मे लगभग चार गुना वृद्धि को दर्शाते हुये।

1984	दायरा	निर्णीत	विचाराधीन
(31-12-84)	1,01,205	84,011	1,98,596
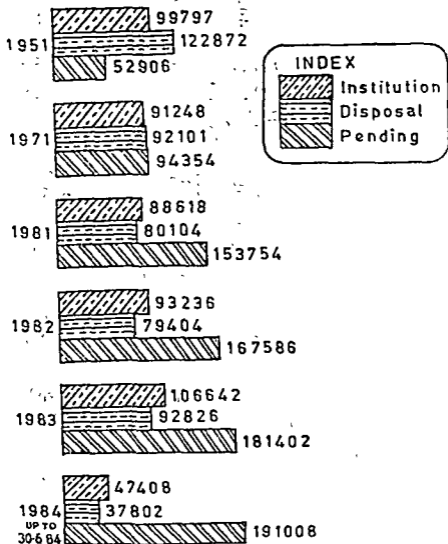
मानचित्र संख्या 45 [आपराधिक प्रकरण]

राजस्थान में अधीनस्थ न्यायालयों में सन् 1951 की तुलना में सन् 1984 में आपराधिक प्रकरणों की बकाया में 19 गुना वृद्धि को दर्शाते हुये
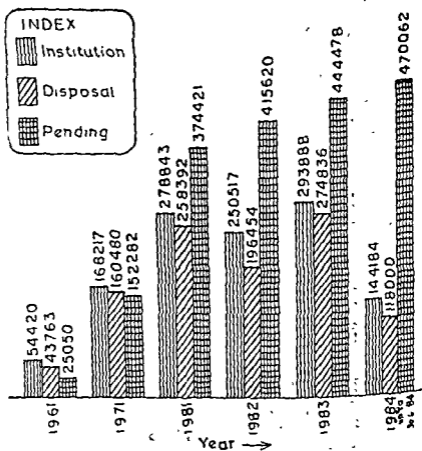
1984	दायरा	निर्णीत	विचाराधीन
(31-12-84)	3,01,352	2,51,791	4,94,039

(मानचित्र में 1961 के स्थान पर 1951 पढ़ा जावे)

मानचित्र संख्या 46 [दीवानी व आपराधिक प्रकरण सम्मिलित]

राजस्थान में अधीनस्थ न्यायालयों मे मुकदमों की दायरा में तीन गुना वृद्धि व बकाया में नौ गुना वृद्धि को दर्शाते हुये

	दायरा	निर्णीत	विचाराधीन
1984	4,02,557	3,35,802	6,92,635

राजस्थान प्रान्त में संबंधित निम्नाकित सारणी से विदित होता है कि, 650 की औसत सख्या से भी अधिक प्रकरण प्रत्येक न्यायधीश द्वारा प्रति वर्ष निस्तारित किये गये हैं, तथापि लम्बित प्रकरणों की संख्या में सदैव वृद्धि ही हो रही है, अब कुल लम्बित प्रकरणों की संख्या 48,131 है जबकि, 1951 मे मात्र 3,000 ही थी, जबकि मानचित्र संख्या 40 के अनुसार प्रमुख वादो का औसत निस्तारण 1981 मे 803.8 प्रति न्यायाधीश निकलता है, न्यायाधीशों की संख्या मे वृद्धि की आवश्यकता इससे और भी बलवती प्रतीत होती है।

तालिका संख्या 43

राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा 1979–82 तक की निर्णीत सख्या

न्यायाधिपतियों के नाम	1979	1980	1981	1982	योग
श्री के.डी शर्मा सी जे.	614	631	427	1249	2921
श्री द्वारिका प्रसाद गुप्ता	791	1362	1159	816	4128
श्री एम. एल. श्रीमाल	1084	1176	1232	1953	5445
श्री पी. डी. कुदाल	1046	1042	982	621	3691
श्री जी. एम. लोढा	2162	2698	2056	3534	10450
श्री एस. के. मल लोढा	1377	1474	1361	1472	5684
श्री एन. एम. कासलीवाल	919	1667	1644	1682	5912
श्री एम. सी. जैन	1557	1663	2044	1420	6684
श्री एस. सी. अग्रवाल	1008	1121	1596	1380	5105
श्री डॉ. के. एस. सिद्दू	990	1664	1780	1980	6414
मिस कान्ता भटनागर	730	1075	1350	1813	4968
श्री एम. बी. शर्मा	1510	1893	1884	789	6076
श्री एम. एन. डीडवानिया	1261	1359	958	—	3578
कुल योग	15,049	18,825	18,473	18,709	71,056

राजस्थान में कार्य दिवसों का ह्रास

यदि राजस्थान में कार्य दिवसो के ह्रास की गणना की जावे तो 1976 से 1983 के मध्य 20 न्यायाधीशों के एक वर्ष के कार्यकाल का उपभोग नही हो पाया है। जिससे तात्पर्य है कि प्रति वर्ष स्वीकृत संख्या से तीन न्यायाधीशों की कमी औसतन महसूस की गई, इन 20 न्यायाधीशों द्वारा एक वर्ष में लगभग 20,000 प्रकरणों का निस्तारण संभावित था, जिससे लगभग आधे लम्बित प्रकरणों की कमी हो पाती।

राजस्थान-दुर्गति से प्रगति-13 जुलाई, 1985

13 जुलाई, 1985 को आठ नव-नियुक्त न्यायाधीशो मे अधिकांश जनवरी, 1984 से विचाराधीन थे। अतः लगभग 18 माह तक 8 न्यायाधीशो का अभाव कम से कम 20,000 मुकदमो की बढोतरी का कारण बना-जो अब 1951 के 3,000 से 1985 जुलाई तक लगभग 50,000 पहुंच चुकी है। यह बकाया संभवतः अब आगे बढ़ोतरी न लेगी, परन्तु तीन न्यायाधीशों की शीघ्र नियुक्ति इस बकाया बढ़ोतरी की "लक्ष्मण रेखा" साबित हो सकती है। फिर 25 न्यायाधीश हर वर्ष 25 हजार मुकदमे निर्णीत कर सकेंगे, जिसमें मुख्य व विविध शामिल होंगे। परन्तु बकाया निपटाने के लिए 10 न्यायाधीश तदर्थ 15 वर्ष के लिए नियुक्त किये जाने चाहिये।

जुलाई, 1985 के जयपुर बैंच के उपलब्ध आकड़े इस सुखद नियुक्तियो से बकाया बढ़ोतरी को रोकने व दायरी से निर्णय अधिक दर्शाते है।

तालिका संख्या 44 **जुलाई, 1985 जयपुर बैंच**

विवरण	बकाया 1-7-85	संस्थन	निर्णीत	बकाया 31-7-85
दीवानी	15384	425	505	15304
फौजदारी	4830	405	345	4890
विविध	5111	528	595	5044
योग	25325	1358	1445	25238
रिट याचिका	7632	231	131	7732

नोट:—रिट आंकड़े, दीवानी के अंको में सम्मिलित हैं-अलग से दुबारा बढ़ती संख्या के महत्त्व के कारण दिखाये गये है।

मानचित्र संख्या 47

उच्चतम न्यायालय में दायर किए गए फौजदारी, दीवानी अपील तथा स्पेशल की अपील एवम् रिट याचिकाओं में 1961 से 1970 तक की बढ़ोतरी दर्शाता है।

राजस्थान में कार्य दिवसों का ह्रास

यदि राजस्थान में कार्य दिवसों के ह्रास की गणना की जावे तो 1976 से 1983 के मध्य 20 न्यायाधीशों के एक वर्ष के कार्यकाल का उपभोग नहीं हो पाया है। जिससे तात्पर्य है कि प्रति वर्ष स्वीकृत संख्या से तीन न्यायाधीशो की कमी औसतन महसूस की गई, इन 20 न्यायाधीशो द्वारा एक वर्ष में लगभग 20,000 प्रकरणो का निस्तारण सभावित था, जिससे लगभग आधे लम्बित प्रकरणों की कमी हो पाती।

राजस्थान-दुर्गति से प्रगति-13 जुलाई, 1985

13 जुलाई, 1985 को आठ नव-नियुक्त न्यायाधीशो मे अधिकाश जनवरी, 1984 से विचाराधीन थे। अतः लगभग 18 माह तक 8 न्यायाधीशो का अभाव कम से कम 20,000 मुकदमो की बढ़ोतरी का कारण बना-जो अब 1951 के 3,000 से 1985 जुलाई तक लगभग 50,000 पहुंच चुकी है। यह बकाया संभवतः अब आगे बढ़ोतरी न लेगी, परन्तु तीन न्यायाधीशों की शीघ्र नियुक्ति इस बकाया बढ़ोतरी की "लक्ष्मण रेखा" साबित हो सकती है। फिर 25 न्यायाधीश हर वर्ष 25 हजार मुकदमे निर्णीत कर सकेंगे, जिसमें मुख्य व विविध शामिल होंगे। परन्तु बकाया निपटाने के लिए 10 न्यायाधीश तदर्थ 15 वर्ष के लिए नियुक्त किये जाने चाहिये।

जुलाई, 1985 के जयपुर बेंच के उपलब्ध आकड़े इस सुखद नियुक्तियों से बकाया बढ़ोतरी को रोकने व दायरी से निर्णय अधिक दर्शाते है।

तालिका संख्या 44 जुलाई, 1985 जयपुर बेंच

विवरण	बकाया 1-7-85	संस्थन	निर्णीत	बकाया 31-7-85
दीवानी	15384	425	505	15304
फौजदारी	4830	405	345	4890
विविध	5111	528	595	5044
योग	25325	1358	1445	25238
रिट याचिका	7632	231	131	7732

नोटः—रिट आंकड़े, दीवानी के अ'कों में सम्मिलित हैं-अलग से दुबारा बढ़ती सख्या के महत्त्व के कारण दिखाये गये है।

राजस्थान प्रान्त में संबंधित निम्नांकित सारणी से विदित होता है कि, 650 की औसत संख्या से भी अधिक प्रकरण प्रत्येक न्यायधीश द्वारा प्रति वर्ष निस्तारित किये गये है, तथापि लम्बित प्रकरणों की संख्या मे सदैव वृद्धि ही हो रही है, अब कुल लम्बित प्रकरणों की संख्या 48,131 है जबकि, 1951 मे मात्र 3,000 ही थी, जबकि मानचित्र संख्या 40 के अनुसार प्रमुख वादों का औसत निस्तारण 1981 मे 803.8 प्रति न्यायाधीश निकलता है, न्यायाधीशों की संख्या मे वृद्धि की आवश्यकता इससे और भी बलवती प्रतीत होती है।

तालिका संख्या 43

राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधीशो द्वारा 1979–82 तक की निर्णीत संख्या

न्यायाधिपतियों के नाम	1979	1980	1981	1982	योग
श्री के.डी शर्मा सी.जे.	614	631	427	1249	2921
श्री द्वारिका प्रसाद गुप्ता	791	1362	1159	816	4128
श्री एम. एल. श्रीमाल	1084	1176	1232	1953	5445
श्री पी. डी. कुदाल	1046	1042	982	621	3691
श्री जी. एम. लोढा	2162	2698	2056	3534	10450
श्री एस. के. मल लोढा	1377	1474	1361	1472	5684
श्री एन. एम. कासलीवाल	919	1667	1644	1682	5912
श्री एम. सी. जैन.	1557	1663	2044	1420	6684
श्री एस. सी. अग्रवाल	1008	1121	1596	1380	5105
श्री डॉ. के. एस. सिद्दू	990	1664	1780	1980	6414
मिस कान्ता भटनागर	730	1075	1350	1813	4968
श्री एम. बी. शर्मा	1510	1893	1884	789	6076
श्री एस. एन. डीडवानिया	1261	1359	958	—	3578
कुल योग	15,049	18,825	18,473	18,709	71,056

राजस्थान में कार्य दिवसों का ह्रास

यदि राजस्थान मे कार्य दिवसो के ह्रास की गणना की जावे तो 1976 से 1983 के मध्य 20 न्यायाधीशों के एक वर्ष के कार्यकाल का उपभोग नही हो पाया है। जिससे तात्पर्य है कि प्रति वर्ष स्वीकृत सख्या से तीन न्यायाधीशों की कमी औसतन महसूस की गई, इन 20 न्यायाधीशों द्वारा एक वर्ष मे लगभग 20,000 प्रकरणो का निस्तारण सभावित था, जिससे लगभग आधे लम्बित प्रकरणों की कमी हो पाती।

राजस्थान-दुर्गति से प्रगति-13 जुलाई, 1985

13 जुलाई, 1985 को आठ नव-नियुक्त न्यायाधीशो मे अधिकाश जनवरी, 1984 से विचाराधीन थे। अत: लगभग 18 माह तक 8 न्यायाधीशों का अभाव कम से कम 20,000 मुकदमों की बढोतरी का कारण बना-जो अब 1951 के 3,000 से 1985 जुलाई तक लगभग 50,000 पहुंच चुकी है। यह बकाया संभवत: अब आगे वढ़ोतरी न लेगी, परन्तु तीन न्यायाधीशों की शीघ्र नियुक्ति इस बकाया वढ़ोतरी की "लक्ष्मण रेखा" सावित हो सकती है। फिर 25 न्यायाधीश हर वर्ष 25 हजार मुकदमे निर्णीत कर सकेंगे, जिसमें मुख्य व विविध शामिल होंगे। परन्तु बकाया निपटाने के लिए 10 न्यायाधीश तदर्थ 15 वर्ष के लिए नियुक्त किये जाने चाहिये।

जुलाई, 1985 के जयपुर बेंच के उपलब्ध आंकड़े इस सुखद नियुक्तियो से बकाया बढ़ोतरी को रोकने व दायरी से निर्णय अधिक दर्शाते है।

तालिका संख्या 44 **जुलाई, 1985 जयपुर बेंच**

विवरण	बकाया 1-7-85	संस्थन	निर्णीत	बकाया 31-7-85
दीवानी	15384	425	505	15304
फौजदारी	4830	405	345	4890
विविध	5111	528	595	5044
योग	25325	1358	1445	25238
रिट याचिका	7632	231	131	7732

नोट:—रिट आंकड़े, दीवानी के अंकों में सम्मिलित हैं-अलग से दुबारा बढ़ती सख्या के महत्त्व के कारण दिखाये गये है।

तालिका संख्या 45

गुजरात, कलकत्ता एवं पटना उच्च न्यायालयो में संस्थित, निस्तारित व बकाया मुकदमों की स्थिति 31-12-1984 तक

उच्च न्यायालय	संस्थान	निपटान	बकाया	स्वीकृत न्यायाधीशों के पद	रिक्त स्थान
1	2	3	4	5	6
गुजरात	24,737	19,947	36,949	21	3
कलकत्ता					
(1) मूल सिविल वाद	4,152	3,342	17,385	39	3
(2) अपीलीय सिविल	34,135	16,301	1,07,340		
(3) अपील फौजदारी	5,583	4,408	11,915		
कुल	43,871	24,051	1,36,641		
पटना					
(1) फौजदारी	19,773	25,372	17,118	35	3
(2) दीवानी	21,376	23,607	39,930		
कुल	41,149	48,979	57,048		

उच्चतम न्यायालय में अम्बार

उच्चतम न्यायालय में बकाया व लम्बित वादों की बाढ

वर्ष 1984 में दायरा 98,684 व दिनांक 1-1-85 को बकाया 14,885

भारतीय उच्चतम न्यायालय मे 1 जनवरी, 1985 में 1,48,851 बकाया वादों में 1951 के बकाया वादो की संख्या 857 की तुलना में 150 गुना वृद्धि हुई है जबकि दायर वादो में 1,951 मे 1,954 मुकदमों की तुलना मे अब 1984 में 98,684 मुकदमों की वृद्धि होने से यह अनुपात लगभग 50 गुना है।

उच्चतम न्यायालय में 1951 के निपटान की सख्या 1,787 की तुलना मे अब 1982 में 29,112 है जो 16 गुना है। महत्वपूर्ण चिन्ता का विषय है कि न्यायाधीशो की संख्या में 1951 के 6 न्यायाधीशों की तुलना में 1985 वर्ष में केवल 18 न्यायाधिपतिगण हैं जो केवल तीन गुना हैं।

चिन्तापूर्ण स्थिति यह है कि संस्थान या दायरी 50 गुना है, बकाया 150 गुना है वहां निपटान केवल 16 गुना हो सका है क्योकि न्यायाधीशों की सख्या मे बढोतरी संस्थान के अनुपात मे कम से कम 50 गुना होनी चाहिये परन्तु केवल तीन गुना हुई है।

यदि विधि मन्त्री श्री अशोक सैन की घोषणा के अनुसार न्यायाधीशो की संख्या 18 से 30 तक बढ़ा दी जाती है तो भी न तो बकाया का निपटान संभव है और न ही हर वर्ष दायर किये गये वादों का ही निपटान हो सकता है। अतः अब समय आ गया है जब उच्चतम न्यायालय के ढांचे में आमूलचूल परिवर्तन करना ही होगा। यह परिवर्तन केवल उच्चतम न्यायालय की सवैधानिक पीठ बनाकर व अपील के लिये एक उच्चतम न्यायालय की अपीलीय पीठ प्रस्थापित कर ही किया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालयों की समस्याओं पर गम्भीरता से विचार करने के लिये हमे विस्तृत विवेचन करना होगा।

अगले पृष्ठ पर अंकित मानचित्र में उच्चतम न्यायालय में दायर एवम् लम्बित की अप्रत्याशित एवम् असाधारण बढ़ती दर को दर्शाता है।[1]

---

1. सुप्रीम कोर्ट अण्डर स्ट्रेन पी 37, भारतीय विधि संस्थान, नई दिल्ली।

मानचित्र संख्या 47

उच्चतम न्यायालय में दायर किए गए फौजदारी, दीवानी अपील तथा स्पेशल लीव अपील एवम् रिट याचिकाओं में 1961 से 1970 तक की बढ़ोतरी दर्शाता है।
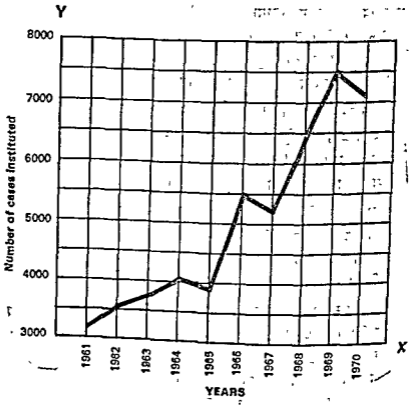
दायर किए गए वादों में बढ़ोतरी

इनको हमें इस प्ररिपेक्ष्य में देखना है कि उच्चतम न्यायालय लम्बित वादों की चुनौती के फलस्वरूप ग्रत्यधिक दबाव में है। इस महत्त्वपूर्ण तथ्य पर ग्रब विचार किया जा सकता है। यदि लम्बित वादों को स्वयं को देखा जाए तो ज्ञात होगा कि दायर किए गए वादों की संख्या 1950 में 1,602 से बढकर 1960 में 6,441 हो गई, 1970 में 15,106 व 1977 में 14,501 तथा 1982 में 43,510 हो गई। जून 1982 तक विचाराधीन लम्बित मामले 48,643 थे।[1]

मानचित्र संख्या 48

दर्शाता है, लम्बित वादों की सामान्य स्थिति में संख्या (ग्रन्य मामलो को समाविष्ट नही करते हुए)

1. इंडिया टुडे, सितम्बर-15, 1982 पृष्ठ 108
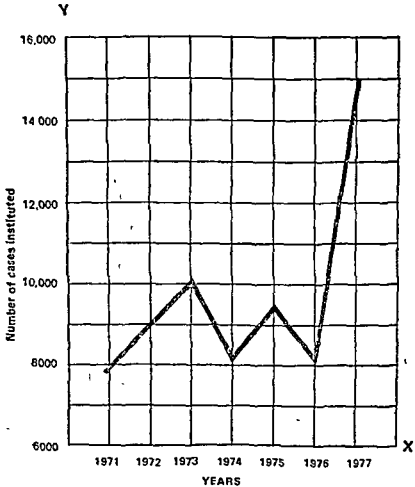
इनमें से 2,047 वाद 3 वर्ष की अवधि से भी अधिक विचाराधीन हैं तथा कम से कम 8,586 मामले 5 वर्ष पुराने हैं।[1] अब उच्चतम न्यायालय में लम्बित वादों की संख्या 1 जनवरी, 1983 को 63,041 मुख्य व 52,000 अन्य वाद हैं।[2] यह संख्या 1-1-85 को 1,48,851 सब मिलाकर हो गई है, व इनका निपटान, एवरेस्ट की चोटी पर विकलांग की चढ़ाई के समान दुष्कर है।

तालिका संख्या 46

दर्शाती है, लम्बित वाद 1960 से 1982

वर्ष	विचाराधीन मुकदमों की संख्या
1960	2,319
1961	1,977
1962	1,703
1963	2,170
1964	2,166
1965	2,282*
1966	3,983
1967	5,039
1968	5,387
1969	6,270
1970	7,104
1971	8,592
1972	10,846
1973	12,845
1974	12,787
1975	13,588
1976	14,109
1977	18,215
1980	36,293
1981	48,643
1982	63,041

1. इंडिया टूडे, सितम्बर 15, 1982, पेज 108
2. लोक सभा प्रश्नोत्तर द्वारा विधि मंत्री श्री कौशल, इण्डियन एक्सप्रेस 17-7-83 पृष्ठ 4,

* एक अन्य वार्षिक तथ्यों पर आधारित गणना से ज्ञात होगा कि आंकड़ों की संख्या 2175 है। इस अन्य आधार के फलस्वरूप अन्य आंकड़ों में भी परिवर्तन होगा। उच्चतम न्यायालय अण्डर स्ट्रेन पृष्ठ. 43 व 51

तालिका संख्या 47

दर्शाती है, सामान्य स्थिति में कार्य का भार

(अन्य मामले समाविष्ट नहीं)

वर्ष	विचाराधीन वर्ष के प्रारम्भ में	संस्थित	निस्तारित	विचाराधीन वर्ष के अन्त में
1971	7,104	7,979	6,491	8,592
1972	8,592	9,076	6,822	10,846
1973	10,846	10,176	8,175	12,847
1974	12,847	8,203	8,261	12,789
1975	12,789	9,528	8,727	13,590
1976	13,590	8,254	7,734	14,110
1977	14,110	14,501	10,395	18,216
जन. 1978	18,216	3,192	1,715	19,693
फर. 1978	19,693	3,014	1,600	21,107
मार्च1978	21,107	2,813	1,391	22,529
अप्रेल1978	22,529	1,355	791	23,093

मूलभूत अधिकारों की उच्चतम न्यायालय द्वारा उदार स्वीकृति

अगले पृष्ठ पर अंकित मानचित्र से यह सुस्पष्ट है कि उच्चतम् न्यायालय मूलभूत अधिकारों से संबंधित मामले अत्यधिक उदारता से स्वीकार करता है।

मानचित्र संख्या 49

दर्शाता है कि, किस सीमा तक उच्चतम न्यायालय ने मूलभूत अधिकार संबंधी मामले प्रारम्भिक सुनवाई के पश्चात् स्वीकार किए ।

सख्त (दुर्लभ-भ्रलम्भ स्वीकृति) एस. एल. पी

तुलनात्मक दृष्टि से स्वीकृत की गई विशेष सुनवाई याचिकाएं (स्पेशल लीव पीटिशन्स) दायर की गई याचिकाओं की 60 प्रतिशत भी नहीं होती तथा जैसा कि आगे स्पष्ट है उनमें से 40 प्रतिशत की भी स्वीकृति नहीं होती ।

मानचित्र संख्या 50

दर्शाता है कि किस सीमा तक उच्चतम् न्यायालय ने विशेष सुनवाई याचिकाओं को विशेष सुनवाई के लिए स्वीकृति प्रदान की।

मानचित्र संख्या 49

दर्शाता है कि, किस सीमा तक उच्चतम न्यायालय ने मूलभूत अधिकार संबंधी मामले प्रारम्भिक सुनवाई के पश्चात् स्वीकार किए ।

सख्त (दुर्लभ-अलभ्य स्वीकृति) एस. एल. पी
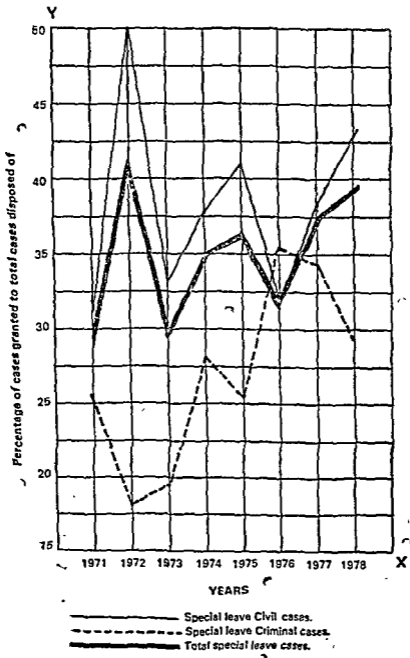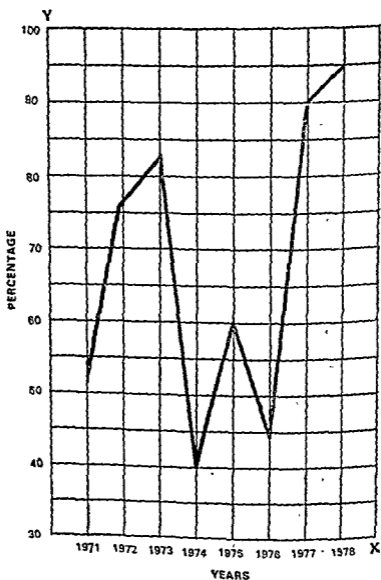
तुलनात्मक दृष्टि से स्वीकृत की गई विशेष सुनवाई याचिकाएं (स्पेशल लीव पीटिशन्स) दायर की गई याचिकाओं की 60 प्रतिशत भी नहीं होतीं तथा जैसा कि आगे स्पष्ट है उनमें से 40 प्रतिशत की भी स्वीकृति नहीं होतीं ।

मानचित्र संख्या 50

दर्शाता है कि किस सीमा तक उच्चतम् न्यायालय ने विशेष सुनवाई याचिकाओं को विशेष सुनवाई के लिए स्वीकृति प्रदान की।

विधि संस्थान द्वारा अध्ययन

उच्चतम् न्यायालय मे लम्बित वादों के अध्ययन के संदर्भ में भारतीय विधि संस्थान ने मूलभूत अधिकारों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला:—

"(ब) मूलभूत अधिकार सम्बन्धित वाद[1]

सामान्यतः उच्चतम् न्यायालय को प्रत्येक मूलभूत अधिकार सम्बन्धित वाद को निपटाने का मूल क्षेत्राधिकार प्राप्त है तथा यह एक संवैधानिक दायित्व है। कार्यरूप में प्रथमत यह जांच प्रारम्भिक सुनवाई के समय होती है। अन्तिम सुनवाई हेतु सभी याचिकाओं को स्वीकृति प्रदान नहीं की जाती जबकि हमने ऐसी याचिकाओ से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी अपेंडिक्स मे नौ सारणियों में प्राप्त की हैं। हम पूर्ण आकड़ो का अवलोकन करें।"

तालिका संख्या 48

दर्शाती है, अन्तिम सुनवाई हेतु स्वीकृत मूलभूत अधिकारो से सम्बन्धित वादो की संख्या

वर्ष	अन्तिम सुनवाई हेतु गृहणित किये गये मुकदमो का प्रतिशत
1971	51.007
1972	77.53
1973	83.9
1974	40.33
1975	60.37
1976	44.196
1977	90.22
1978	94.63

धवन एवम् कल्पकम्

श्री राजीव धवन व पी कल्पकम् ने निम्नलिखित टिप्पणी दी:—

"इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यद्यपि प्रारंभ में उच्चतम् न्यायालय मुख्य न्यायाधिपति की अध्यक्षता में मूलभूत अधिकारों को स्वीकृति प्रदान करने मे उदार था, किन्तु इस उदारता मे स्पष्ट गिरावट 1974 में परिलक्षित हुई। यह 1975 में आपात्काल की घोषणा तक जारी रही। आश्चर्यजनक रूप से आपात्काल की घोषणा के तुरन्त बाद न्यायालय ने अधिकाधिक वादो की स्वीकृति प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया। जुलाई 1975 में 245 में से 224 वाद (91.42%) स्वीकार किए गए। 1975 के अंतिम 6 मास में 547 मे से 487 वाद (89.03%) स्वीकार किये गये। जबकि 1975 के प्रथम 6 मास में 1060 में से 483 (45.57%) वाद ही स्वीकार किए गए। अतएव, प्रारम्भ मे मूलभूत अधिकार सम्बन्धित वादो पर विचार करने में न्यायालय ने उदारता का परिचय दिया।"

1. सुप्रीम कोर्ट अण्डर स्ट्रेन—द चैलेण्ज ऑफ एरियर्स पृष्ठ 56 द्वारा धवन व कल्पकम्।

आपात्काल की समाप्ति के पश्चात् वृद्धि

श्री धवन का विचार था कि:

"वास्तव में विभक्तिकरण रेखा नवम्बर 1975 है, जबकि श्रीमती इंदिरा गांधी का चुनावी प्रकरण निर्णीत किया गया तथा न्यायालय ने केशवानन्द के निर्णय पर पुनर्विचार करने से इन्कार कर दिया। दिसम्बर 1975 से न्यायालय के समक्ष कुछ ही मूलभूत अधिकार सम्बन्धी वाद दायर किए गए। दिसम्बर, 1975 में 10 वाद दायर किए गए जबकि सितम्बर, अक्टूबर व नवम्बर 1975 मे क्रमश: 270, 180 व 38 वाद दायर किए गए। 1976 में दायर किए गए आंकड़ो की संख्या भी अत्यधिक सूक्षम है।[1] मार्च 1977 में आपात्काल की समाप्ति पर न्यायालय ने मूलभूत अधिकारो से सम्बन्धित मामलों पर स्वीकृति प्रदान करनी प्रारम्भ की।

किसी भी प्रकार से यह सुझाव नही दिया जा रहा है कि मूलभूत अधिकार संबंधी वादों पर विचार न कर न्यायालय का झुकाव भूतगामी था। हमे याद रखना है कि उस काल में कतिपय मूलभूत अधिकार निलम्बित कर दिए गए थे। ऐसा होने से उच्चतम न्यायालय का मूलभूत अधिकारों से संबंधित क्षेत्राधिकार पर प्रभाव हुआ था। उसी समय, स्पष्टतः, जुलाई से नवम्बर, 1975 के काल में, न्यायालय अंतिम सुनवाई हेतु स्वीकृति के लिए उद्दत था। इसका प्रतीकात्मक प्रभाव अत्यधिक है। यह परीलक्षित करता है कि आपात्काल में भी कम से कम एक न्यायालय ऐसा है जो कि मूलभूत अधिकार संबंधी वादों मे उत्सुकता से विस्तृत व अंतिम विचार प्रदान करता है।"

विलम्ब बकाया आंकड़ों का निष्कर्ष

विभिन्न प्रदेशों के उच्च न्यायालय, अधीनस्थ न्यायालयो व भारत के उच्चतम न्यायालय के 1950 से 1984 तक के वादों के संस्थापन, लम्बन, निस्तारण, न्यायाधीशो की संख्या व औसत निपटान से यह स्पष्ट हो गया है कि, दायरों की सख्या लगभग 10 गुनी से 100 गुनी तक विभिन्न न्यायालयों में बढ़ी है परन्तु निपटान इससे बहुत कम हुआ है क्योंकि न्यायाधीशो की सख्या 4-5 गुनी ही बढी है व उसमे भी एक चौथाई औसतन रिक्त स्थान रहे हैं। उदाहरण के लिये 1-8-85 को सुप्रीमकोर्ट मे 2 व उच्च न्यायालयों में 60 स्थान रिक्त हैं। सुप्रीमकोर्ट में तो लंबित वादों की संख्या सन् 1950 से 150 गुनी बढ़ गयी है :

उपरोक्त आने वाली विकराल स्थिति को पंडित नेहरू, जस्टिस शाह, हिदायतुल्ला व सीकरी ने अपने-अपने कार्यकाल में खतरे की घंटी बजाकर चेतावनी दी परन्तु 1950 से 1984 तक हम बैलगाड़ी ही चलाते रहे।

पंडित नेहरू की विलम्ब के प्रति चिन्ता

राज्य विधि मन्त्रियों के सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए पण्डित नेहरू ने

1. द सुप्रीम कोर्ट अण्डर स्ट्रेन पृष्ठ 57 द्वारा राजीव धवन

धीमी गति के प्रति जिससे कि न्याय के पहिये चल रहे थे अपनी चिन्ता व्यक्त की और दृष्टिकोण मे परिवर्तन की तथा न्यायिक यन्त्र जो कि उनके मतानुसार जंग खाया हुआ एवं घिसापिटा है को गति प्रदान करने के लिए वास्तविक प्रयास करने की वकालत की।[1]

जस्टिस शाह का मत

भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति श्री जे. सी. शाह ने निम्नलिखित विचार प्रकट किये—

"न्यायालयो में मामले इस सीमा तक एकत्रित हो गये हैं कि यदि न्यायालयो के सामने मामले इसी गति से बढ़ते रहे जिस गति से एकत्रित हो रहे हैं तो कुछ वर्ष में न्याय प्रशासन के बिखराव का खतरा है। मामलों की आमद और उनके निपटारे के बीच मे वर्तमान भारी असमानता यदि जारी रहती है तो मैं इस बात से ही सिहर उठता हूं कि न्याय प्रशासन की आगामी एक या दो दशक में क्या दशा होगी। यदि इस समस्या का समाधान नही कर लिया जाता है तो मुकदमें लड़ने वाले लोग निराशा के शिकार हो जायेंगे और न्यायालयो तथा अधिकरणों के प्रति इनका विश्वास उठ जायगा।"[2]

जस्टिस हिदायतुल्ला का मत

भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति श्री एम. हिदायतुल्ला ने कहा—

"जनगण को त्वरित न्याय देने में बाधक के रूप मे विधान मण्डल भी समान रूप से दोष दिया जाना चाहिए। विधान मण्डल प्रायः गलत रूप प्रारूपित विधान पारित कर देते हैं।"[3]

जस्टिस सीकरी का मत

श्री एस. एम. सीकरी, मुख्य न्यायाधिपति (उच्चतम न्यायालय), ने एक बार कहा था—

"हम शीघ्र ही ऐसे सोपान पर पहुंच रहे हैं कि न केवल कर सम्बन्धी मामले मे अपितु अन्य मामलो में भी जहाँ कार्यभार अधिक हैं, वह वर्तमान न्यायिक प्रणाली को कुचल देगा।"[4]

"यदि विधियों और कानूनी नियमों और आदेशो का सावधानीपूर्वक प्रारूपण किया जाय तो मुकदमेबाजी कम हो जायेगी। परन्तु इसकी संभावना कम ही हैं कि कार्यपालिका या विधानमण्डल अपने तौरतरीको मे कुछ सुधार करेंगे।"[5]

अतः अब इस अंबार के निवारण का विचार अगले अध्याय मे करेंगे न्यायिक सुधार की विफलता के कारण क्रान्ति अवश्यम्भावी है।

---

1. टाइम्स आफ इण्डिया, मार्च 11, 1969–पृष्ठ 6
2. एशियन रेकार्डर, जनवरी 8, 1971, पृष्ठ 9951
3. स्टेट्समैन, मार्च 7, 1970 पृष्ठ 7
4. स्टेट्समैन, अक्टूबर 29, 1972 पृष्ठ 9
5. ट्रिब्यून, मार्च 14, 1971

[माननीय : विचार और बताया याद/176(i)

तालिका संख्या 57

राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णीत मुकदमे

माननीय न्यायाधिपति का नाम	निर्णीत मुकदमे 1983	निर्णीत मुकदमे 1984
1. माननीय मुख्य न्यायाधिपति श्री पी. के. बनर्जी	256	1,100
2. माननीय मुख्य न्यायाधिपति श्री के.डी. शर्मा (से.नि.)	658	—
3 माननीय न्यायाधिपति श्री द्वारका प्रसाद	680	2,077
4. माननीय न्यायाधिपति श्री एम.एल. श्रीमाल (भू.पू.)	1,344	—
5. माननीय न्यायाधिपति श्री जी.एम. लोढ़ा	1,655	1,075
6. माननीय न्यायाधिपति श्री एस. के. मल लोढ़ा	2,300	2,132
7. माननीय न्यायाधिपति श्री एन.एम. कासलीवाल	1,856	1,728
8. माननीय न्यायाधिपति श्री एम.सी. जैन	1,082	2,162
9. माननीय न्यायाधिपति श्री एम सी. अग्रवाल	824	1,519
10. माननीय न्यायाधिपति श्री डा. के.एस. सिद्धू (भू. पू.)	2,368	2,402
11. माननीय न्यायाधिपति कु. कान्ता भटनागर	2,189	1,368
12. माननीय न्यायाधिपति श्री एस.एन. भार्गव	1,788	1,237
13. माननीय न्यायाधिपति श्री डी.एल. मेहता	3,022	1,923
14. माननीय न्यायाधिपति श्री के.एस. लोढ़ा	935	1,598
15. माननीय न्यायाधिपति श्री जी.के. शर्मा	993	1,567
16. माननीय न्यायाधिपति श्री एस.एस. व्यास	844	757
17. माननीय न्यायाधिपति श्री पी.एस. दवे	–	955
योग	22,794	23,600

तालिका संख्या 58

अखिल भारतीय जनसंख्या, साक्षरता, प्रति व्यक्ति आय व लम्बित मुकदमों का तुलनात्मक सांख्यकीय विवरण

जन संख्या 1981	राज्य मे प्रति व्यक्ति आय (अखिल भारतीय प्रति व्यक्ति औसत आय 100 रु. मानते हुए	साक्षरता का प्रतिशत	उच्च न्यायालय में लम्बित प्रकरण (31-12-84को)	अधीनस्थ न्यायालयों मे लम्बित प्रकरण (31-12-84को)	कुल लम्बित प्रकरण	लम्बित प्रकरणो का जनसंख्या का प्रतिशत
2	3	4	5	6	7	8
5,35,49,673	83.80 रु.	29.94	81,007[1]	4,12,334[2]	4,93,341	.92%
1,99,02,826	78.90 रु.	N A.	9,619[3]	1,83,564[2]	1,93,183	.97%
,99,14,734	55.40 रु	26 01	57,048	8,23,301[3]	8,80,349	1.26%
3,40,85,799	118.80 रु	43.75	36,949	5,37,019[2]	5,73,968	1.68%
42,80,818	94.80 रु.	41.94	9,019	45,138	54,157	1.27%
59,87,389	91.60 रु.	N.A.	25,807	95,294	1,21,101	2.02%
3,71,35,714	83.60 रु.	34.81	96,784	10,29,308	11,26,092	3 03%
2,54,53,680	83 50 रु.	70 42	86,763[1]	1,72,642[2]	2,59,405	1 02%
5,21,78,844	69.50 रु.	27.87	49,443[1]	6,28,128[2]	6,77,571	1.30%
6,27,84,171	143 90 रु.	47.18	1,02,942	16,26,658	17,29,600	2.75%
2,63,70,271	74 10 रु.	34.23	20,611[3]	4,98,801[2]	5,19,412	1.97%

पंजाब	1,67,88,915	178 40 रु.	44.86	33,708	1,80,261	2,13,969	1.27%
हरियाणा	1,29,22 618	147.10 रु.	36.14	—	1,73,007	1,73,007	1.34%
राजस्थान	3,43,61,862	81.00 रु.	24.38	48,131	6 12,635	6 60,766	1.92%
सिक्किम	3,16,385	N.A.	35.05	55[3]	804[2]	859	.27%
तामिलनाडु	4,84,08,077	78 50 रु.	46.76	1,25,998[3]	5,17,413	6,43,411	1.33%
उत्तरप्रदेश	11,08,62,013	74 80 रु.	27.16	2,28,952	12,01 519	14,30,471	1 29%
पश्चिमी बंगाल	5,45,80,647	91.10 रु.	40.94	1,36,641	15,30,631[2]	16,67,272	3.05%
दिल्ली	62,20,406	187.30 रु.	61.54	64,293[2]	5,24,356[2]	5,88,649	9 46%
उच्चतम न्यायालय	—	—	—	—	—	1,48,891	0 0217%
भारत की कुल जन संख्या	68,51,84,612			12,13,770	1,07,92,813	1,21,55,474	1.7 %

1. दिनाक 30-6-84 की स्थिति
2. दिनांक 31-12-82 की स्थिति
3. दिनाक 31-12-83 की स्थिति

नोट (1) उपरोक्त विचारणीय मुकदमो की संख्या केवल उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय की सूचि व अधीनस्थ न्यायालयों में दीवानी व दाडिक मुकदमो की है। अन्य राजस्व, टैक्स, कस्टम एक्साइज, विभिन्न अधिकरणो व प्राथमिक वादों की संख्या इसमे शामिल नहीं हैं।

(2) केन्द्र शासित प्रदेशो (दिल्ली के अतिरिक्त) के अधीनस्थ न्यायालयों के मुकदमो की संख्या शामिल नहीं है।

उच्च न्यायालय में नवीनतम-स्थिति

तालिका संख्या 59

उत्तर प्रदेश इलाहबाद उच्च न्यायालय में मुकदमों की 31-12-84 की स्थिति

किस्म मुकदमा	वर्ष 1984 मे दायर	वर्ष 1984 में निर्णीत	31-12-1984 को लंबित
रिट याचिकाएं	23,449	12,780	82,003
दीवानी मामले	10,410	4,620	45,670
फौजदारी मामले	21,561	12,120	44,355
विविध मामले	30,207	24,671	56,924
योग	85.627	54.191	2,28,952

हिमाचल प्रदेश

हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय में मुकदमों की 31-12-84 की स्थिति

किस्म मुकदमा	वर्ष 1984 मे दायर	वर्ष 1984 मे निर्णीत	31-12-84 को लंबित
दीवानी	5,083	4,888	8,543
फौजदारी	857	1,046	476
योग	5 940	5,934	9 019

जम्मू कश्मीर

जम्मू व कश्मीर उच्च न्यायालय से सम्बन्धित आंकड़े

1-1-84 को लंबित	वर्ष 1984 मे दायर	वर्ष 1984 मे निर्णीत	31-12-84 को लंबित
22,290	10,107	6,590	25,807

बिहार

पटना उच्च न्यायालय में मुकदमों की 31-12-84 की स्थिति

किस्म मुकदमा	1-1-84 को लंबित	वर्ष 1984 में दायर	वर्ष 1984 में निर्णीत	31-12-84 को लंबित
रिट याचिकाएं	12,007	7,452	7,266	12,193
दीवानी मामले	30,154	13,924	16,341	27,737
फौजदारी मामले	22,717	19,773	25,372	17,118
योग	64,878	41,149	48,979	57,048

पश्चिमी बंगाल

कलकत्ता उच्च न्यायालय में मुकदमों की दिनांक 31-12-84 की स्थिति

किस्म मुकदमा	1-1-84 को लंबित	वर्ष 1984 में दायर	वर्ष 1984 में निर्णीत	31-12-84 लंबित
रिट याचिकाएं	1,149	258	165	1,242
दीवानी मामले	10,1,014	29,336	10,264	1,20,086
फौजदारी मामले	10,473	3,020	1,946	11,547
विविध मामले	4,185	11,257	11,676	3,766
योग	1,16,821	43,871	24.051	1,36,641

अधीनस्थ न्यायालयों की नवीनतम स्थिति

तालिका संख्या 60

बिहार के अधीनस्थ न्यायालयों में मुकदमों की 1-7-83 से 31-12-1983 तक की स्थिति

किस्म मुकदमा	30-6-83 को लंबित	1-7-83 से 31-12-83 तक दायर	1-7-83 से 1-12-83 तक निर्णीत	1-1-84 को लंबित
दीवानी मामले	1,51,092	33,048	33,143	1,50,997
फौजदारी मामले	6,65,967	1,82,194	1,75,857	6,72,304
योग	8,17,059	2,15,242	2,09,000	8,23,301

तालिका—*61*

उच्च न्यायालयों की मुख्यपीठ का विवरण

नाम	वर्ष	अधिकार क्षेत्र	पीठ का स्थान
इलाहाबाद	1866	उत्तर प्रदेश	इलाहाबाद (खंडपीठ लखनऊ)
आन्ध्र प्रदेश	1954	आन्ध्र प्रदेश	हैदराबाद
बम्बई	1861	महाराष्ट्र और दादरा और नागर हवेली और गोवा, दमन और दीव	बम्बई (पीठ और पनजी) अस्थाई पीठ, औरंगाबाद, नागपुर
कलकत्ता	1861	पश्चिम बंगाल और और निकोबार दीव	कलकत्ता
देहली	1966	देहली	देहली
गोहाटी	1972	आसाम, मनीपुर, मेघालय नागालैंड	गोहाटी (अस्थायी पीठ, इम्फाल, अगरतल्ला, कोहिमा)
गुजरात	1960	गुजरात	अहमदाबाद
हिमाचल प्रदेश	1971	हिमाचल प्रदेश	शिमला
जम्मू एवं काश्मीर	1928	जम्मू और काश्मीर	श्रीनगर और जम्मू
कर्नाटका	1884	कर्नाटका	बेंगलोर
केरल	1956	केरल और लक्षदीव	एरनाकुलम
मध्यप्रदेश	1956	मध्यप्रदेश	जबलपुर (खंडपीठ जबलपुर और इन्दौर)
मद्रास	1861	तमिलनाडू और पाडिचेरी	मद्रास
उड़ीसा	1948	उड़ीसा	कटक
पटना	1916	बिहार	पटना (पीठ रांची)
पंजाब और हरियाणा	1947	पंजाब, हरियाणा और चंडीगढ़	चंडीगढ़
राजस्थान	1949	राजस्थान	जोधपुर (खंडपीठ जयपुर)
सिक्किम	1975	सिक्किम	गंगटोक

जम्मू व कश्मीर

जम्मू व कश्मीर में वर्ष 1984 में अधीनस्थ न्यायालयों में दायरा, निपटान व बकाया मुकदमों का विवरण

किस्म मुकदमा	1-1-84 को लंबित	वर्ष 1984 मे दायर	वर्ष 1984 मे निर्णीत	31-12-84 को लंबित
दीवानी	19,851	21,805	17,875	23,781
फौजदारी	65,743	1,09,314	1,03,544	71,513
योग	85,594	1,31,119	1,21,419	95,294

उत्तर प्रदेश

अधीनस्थ न्यायालयों में मुकदमों की 1-1-1984 से 30-6-1984 तक की स्थिति

किस्म मुकदमा	1-1-84 से 30-6-84 तक		30-6-84 को
	दायर	निर्णीत	लंबित
दीवानी	1,59,152	1,37,437	3,67,632
फौजदारी	4,54,398	4,55,645	8,33,887
योग	6,13,550	5,93,082	12,01,519

हिमाचल प्रदेश

अधीनस्थ न्यायालयों में मुकदमों की 31-12-84 को स्थिति

किस्म मुकदमा	वर्ष 1984 में दायर	वर्ष 1984 मे निर्णीत	31-12-84 को बकाया
दीवानी	21,911	21,016	23,646
फौजदारी	34,316	37,197	21,492
योग	56,227	58,213	45,138

तालिका—61

उच्च न्यायालयों की मुख्यपीठ का विवरण

नाम	वर्ष	अधिकार क्षेत्र	पीठ का स्थान
इलाहाबाद	1866	उत्तर प्रदेश	इलाहाबाद (खंडपीठ लखनऊ)
आन्ध्र प्रदेश	1954	आन्ध्र प्रदेश	हैदराबाद
बम्बई	1861	महाराष्ट्र और दादरा और नागर हवेली और गोवा, दमन और दीव	बम्बई (पीठ और पनजी) अस्थाई पीठ, औरंगाबाद, नागपुर
कलकत्ता	1861	पश्चिम बंगाल और और निकोबार दीव	कलकत्ता
देहली	1966	देहली	देहली
गोहाटी	1972	आसाम, मनीपुर, मेघालय नागालैंड	गोहाटी (अस्थायी पीठ, इम्फाल, अगरतल्ला, कोहिमा)
गुजरात	1960	गुजरात	अहमदाबाद
हिमाचल प्रदेश	1971	हिमाचल प्रदेश	शिमला
जम्मू एवं काश्मीर	1928	जम्मू और काश्मीर	श्रीनगर और जम्मू
कर्नाटका	1884	कर्नाटका	बैंगलोर
केरल	1956	केरल और लक्षदीव	एरनाकुलम
मध्यप्रदेश	1956	मध्यप्रदेश	जबलपुर (खंडपीठ जबलपुर और इन्दौर)
मद्रास	1861	तमिलनाडू और पाडिचेरी	मद्रास
उड़ीसा	1948	उडीसा	कटक
पटना	1916	विहार	पटना (पीठ रांची)
पंजाब और हरियाणा	1947	पंजाब, हरियाणा और चडीगढ	चंडीगढ़
राजस्थान	1949	राजस्थान	जोधपुर (खंडपीठ जयपुर)
सिक्किम	1975	सिक्किम	गंगटोक

तालिका संख्या 62

भारतीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधिपतिगण

1. माननीय श्री पी. एन भगवती मुख्य न्यायाधिपति
2. ,, ,, मुरतजा फाल अली
3. ,, ,, वी. डी. तुलजापुरकर
4. ,, ,, डी. ए. देसाई (सेवा निवृत्त 1985 मे)
5. ,, ,, आर. एस. पाठक
6. ,, ,, ओ चिन्नप्पा रेड्डी
7. ,, ,, ए पी. सैन
8. ,, ,, ई. एस. वेन्कटरमन
9. ,, ,, ए. पा. जी. वरदराजन
10. ,, ,, ए. एन. सैन (सेवा निवृत्त–1985 मे)
11. ,, ,, वी. बालकृष्ण ईरेडी
12. ,, ,, आर. बी. मिश्रा
13. ,, ,, डी. पी. मदान
14. ,, ,, सबयासची मुखर्जी
15. ,, ,, एस. पी. ठक्कर
16. ,, ,, रंगनाथ मिश्रा
17. ,, ,, वी. खालिद (25-6-84 से)
18. ,, ,, जी. एल. ओझा (26-10-85) से
19. ,, ,, श्री वंकिम चन्द्र रे (26-10-85) से

न्यायिक सुधार

डिक्टाफोन व विद्युत टंकण क्यों नहीं ?

1. क्या कारण है कि विज्ञान व तकनीकी आविष्कारों के इस मानवयुग में आज तक विज्ञान व तकनीकी उपकरणों के बढ़ते चरणों का पदार्पण न्यायिक क्षेत्रों में नहीं हुआ तथा वह उनसे पूर्ण रूप से अछूते हैं। सांसदों के भाषणों को एक ही साथ विविध भाषाओं में प्रसारित करने के लिए टंकित करने के स्वचालित उपकरणों को संसद में लगाया जा सकता है परन्तु सर्वोच्च न्यायालय यदि उन सांसदों के या प्रधानमन्त्री के या राष्ट्रपति के चुनाव के निर्णय को लिपि-बद्ध करे तो उनके पास न तो डिक्टाफोन उपलब्ध कराये जाते हैं न बिजली से चलने वाली टंकण मशीनें। जिला स्तर पर प्रशासनिक अधिकारियों को सरकारी वाहन उपलब्ध कराये जा सकते हैं लेकिन यदि न्यायिक मजिस्ट्रेट वाहनों के मुकदमों का मौके पर निपटारा करना चाहें तो उनके लिये वाहन की उपलब्धि दुष्कर है। कस्बों में न्यायिक मजिस्ट्रेट के रहने के लिये सरकारी मकान कुछ प्रदेशों को छोड़ कर साधारणतया उपलब्ध नहीं होते व प्रशासनिक अधिकारियों की ओर उन्हें उनकी दया की भीख मांगने के लिये बाध्य होना पड़ता है, जो उनकी निर्भयता व निर्भीकता में निश्चित रूप से कमी लाती है।

आर्थिक उपेक्षा कब तक ?

2. देश भर में न्यायपालिका के साथ कार्यपालिका द्वारा आर्थिक क्षेत्रों में उपेक्षा के व्यवहार की शिकायतें नयी नहीं हैं। आम चर्चा का विषय यह रहा है कि देश या प्रदेशों में यद्यपि सरकारों में तो परिवर्तन हुआ है, परन्तु न्यायपालिका की उपेक्षा में परिवर्तन नहीं आया है।

सांगानेरी गेट न्यायालयों की पत्रावलियां फर्श पर—रसीद फार्म नहीं

3. उदाहरणतया जयपुर के जिला एवं अधीनस्थ न्यायालयों के निरीक्षण से यह पता लगा है कि वहां पत्रावलियां रखने के लिये आलमारियां नहीं व सम्मन, वारन्ट व यहां तक कि जुर्माना जमा कराने के लिए कोई रसीद बुक व फार्म नहीं हैं। कर्मचारियों के बैठने के लिये कोई स्थान नहीं व अभियुक्त को यदि जेल भेजना हो तो गार्ड रूम के अभाव में पुलिस गार्ड को संदेश देकर बुलाने में तीन-चार घंटे का समय लगना साधारण-सी बात है। इस बीच अभियुक्त भाग भी जाये तो कोई आश्चर्य नहीं।

अलवर महाराजा के अस्तबल न्यायालय बने

4 अलवर के न्यायालय भूतपूर्व महाराजा के पुराने घोड़ों के अस्तबल में लगे हुए हैं व कई न्यायिक मजिस्ट्रेटों के कमरे तो चैम्बर से भी छोटे हैं तथा कई जगह चैम्बर मे न्यायालय चल रहा है, जहां न तो ठीक तरीके से पक्षकार खड़े हो सकते हैं न वकील अपनी बहस कर सकते हैं।

अहमदाबाद उच्च न्यायालय प्राथमिक स्कूल के कमरे

5 अहमदाबाद के उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों के कई न्यायिक कक्ष तो प्राथमिक स्कूल के कमरो से भी छोटे तथा घुटनवाले हैं।

वनीपार्क न्यायालय मछली बाजार–वकीलों के दफ्तर चाट-पकोड़े के खोमचे

6. वनीपार्क, जयपुर में जहां लगभग 40 न्यायालय स्थित हैं, चेम्बरो के अभाव में पूरे बरामदो में अभिभाषकगण चाट-पकोड़े के खोमचों व ठेलों की तरह दफ्तर लगाकर बैठने को बाध्य हैं, जिससे मछली बाजार का गंदा दृश्य व सट्टे हाल का सा शोर न्यायालयों के ठीक बाहर होता रहता है। वहां के न्यायालयों में घुसना व चलना उतना ही दुष्कर है, जितना बम्बई की विद्युत चालित रेलो में प्रवेश करना।

आर्थिक स्वायत्तता आवश्यक

7. न्यायालयों की यह दु:खद कहानी निश्चित रूप से न्यायाधीशों के मानसिक तनाव का कारण बनती है, जिससे उनकी कार्यक्षमता में कमी आती है। यदि आर्थिक दृष्टि से न्यायिक विभाग को स्वतंत्र बना दिया जाये तो न्यायिक क्षेत्र मे नये युग का सूत्रपात हो सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय बार का विद्रोह

8. लम्बी अनावश्यक बहस विलम्ब का प्रमुख कारण रही है परन्तु जब-जब इसे कम करने का या इस पर अंकुश लगाने का प्रयास किया जाता है तो अभिभाषक बन्धुओं के द्वारा उचित सहयोग नहीं मिल पाता। वर्तमान में ही सर्वोच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधिपति द्वारा जब कुछ कम महत्त्व के मुकदमे में बहस की अनिवार्यता को समाप्त करने का सुझाव दिया गया तो अभिभाषक संघ ने केवल असहयोग ही नहीं दिया बल्कि उग्र आन्दोलन करने की धमकी भी दी।

'इंडिया टुडे' की आलोचना–"बार रूम ब्रावल"

9 इस पर टिप्पणी करते हुये श्री पारन[1] बालकृष्णन् ने लिखा है कि जहां 23,298 मुकदमे विचाराधीन हैं व एक माह में केवल 100 मुकदमे निर्णीत करने की क्षमता है तथा आवक इससे कहीं ज्यादा है वहां श्री वाई० वी० चन्द्रचूड़ का सुझाव सामयिक, उचित व आवश्यक था। परन्तु इसका विरोध करते समय

1. बार रूम ब्रावल, इंडिया टुडे, पृष्ठ 83, मई 15, 1982।

जिस अनावश्यक उग्र भाषा का प्रयोग किया गया उससे यह कहना अनुचित नही होगा कि इसमें जहां एक ओर सर्वोच्च न्यायालय की बार एसोसियेशन मे चुनाव-ज्वर से पीड़ित उम्मीदवार अपने जोश व आक्रोश वताकर नये अभिभापकों को आकर्षित करना चाहते थे, वही यह भी निर्विवाद कटु सत्य था कि श्री चन्द्रचूड के सुझाव को स्वीकार करने से सर्वोच्च न्यायालय के अभिभापको को काफी आर्थिक हानि होती इस कारण से इनके निहित स्वार्थ का भी टकराव अस्पष्ट रूप से अंकित था ही। इसी सन्दर्भ मे राज्यसभा में भूतपूर्व केन्द्रीय विधि मंत्री श्री कौशल ने मुख्य न्यायाधिपति के सुझाव के समय में सर्वोच्च न्यायालय के अभिभापको की जो उग्र प्रतिक्रिया थी उसे उचित समझने में असमर्थता प्रकट की। 'इंडिया टुडे' की इस प्रतिकिया को मैंने केवल संकेत के रूप में अंकित किया है, क्योंकि कार्यरत न्यायाधीश होने के नाते इस विवाद में मैं सम्मिलित नही हो सकता। यह तो अभिभापकों को तय करना है कि इस महान् कर्म को व्यापार से बचाकर "मिशन" कैसे बनावें।

लिखित बहस की उपयोगिता

10. अमेरिका मे लिखित बहस की प्रथा है व मौखिक बहस अपवाद। हमने ब्रिटिश प्रथा को अंग्रेजों से विरासत के रूप मे अन्धे होकर स्वीकार किया व अब भी सदियों से मानसिक रूप से पराधीन व हीन भावना से ग्रस्त होने के कारण हम पुनः विचार करने को तैयार नही हैं। लिखित बहस निश्चित रूप से तब ही उपयोगी हो सकती है जब कि अभिभापक पूरा समय देकर उसे महत्वपूर्ण बनायें व न्यायाधीश न्यायालय के समय से अतिरिक्त समय निकाल कर उसे पढ़कर उस पर विचार करें। वर्तमान में जिस गति से मुकदमों की आवक व बढ़ोतरी है, उसमें न्यायाधीश व अभिभापक दोनों इसके प्रति न्याय कर सकें, यह सन्देहजनक है। मेरी अपनी मान्यता है कि मौखिक बहस को निर्धारित समय में समाप्त करने का कार्यक्रम बनाकर जटिल मुकदमो के निर्णय के पहले लिखित बहस की प्रथा प्रारम्भ करना उचित रहेगा।

न्यायपालिका की स्थिति पर माननीय कृष्णा अय्यर का द्रवित हृदय

11. न्याय अधिष्ठात्री देवी की स्तुति व महती अनुकंपा के अतिरिक्त अन्यत्र सभी आयामों में न्यायपालिका के कर्णधारों को सौतेलेपन एवं तिरस्कार का ही मुंह देखने को बाध्य होना पड़ता है। पद-प्रतिष्ठा एवं साधारण भौतिक आवश्यकताओं के लिए भी उन्हें विषम वितृष्णायुक्त दयनीय स्थिति में रखा जाता है। कानून एवं न्याय मंत्रालय से अब यह आशा की जाती है कि वह जनगण के मन में न्यायपालिका की प्रतिष्ठा को ऊंचे सिंहासन पर आरूढ़ करेगा। न्याय-व्यवस्था के चरित्र-हनन के प्रयास तथा स्वयं राष्ट्र द्वारा इस संस्था को दिये जाने वाले

विनाशकारी आघात कालान्तर में घृणित खूनी अराजकता को ही आमंत्रित करेंगे और इसके बाद राष्ट्र को निरंकुश व्यवस्थापिका के आदेशों पर आश्रित बना देंगे। दर-असल, सबसे पहले तो न्यायालयों द्वारा व्यवस्थापिका के कार्यों के किये गये मूल्यांकन एवं गंभीर अध्ययनों को आदरपूर्वक सुनना चाहिए और उसके बाद उनको उपयुक्त ढग से क्रियान्वित किया जाना चाहिए। और दूसरे, न्यायालयों को प्रतिष्ठा दी जानी चाहिए एवं उनको न टाल सकने योग्य एक अनिवार्य बुराई के रूप में स्वीकृति नहीं देनी चाहिये।

महर्षि अय्यर ने गोर्तापति के कथन से उत्प्रेरित होकर कहा है:—

12. "न्यायिक पद्धति-प्रतिदिन वादों-प्रतिवादो की खेपो के नीचे दबकर पतन के गर्त में डूबती प्रतीत होती है, और इसकी संस्थायें वृहद् होती जा रही इन खेपों तथा खर्चीलापन से अनभिज्ञ व अचेतन हैं। सरकार भी विमुख होकर न्यायिक प्रक्रियाओ, उनके जीर्णोद्धार; पद्धति मे सुधार एवं नि:शुल्क प्रभावी विधि-सहायता जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नो से विमुख होकर सौतेला एवं तिरस्कारपूर्ण रुख अपनाये हुए है। न्यायपालिका द्वारा भी आर्थिक प्रदूषण एवं सामाजिक दुर्गुणो से व्याप्त विषम परिस्थितियों से निपटने हेतु, विधिगत सुधारो के सुझाव, कभी प्रकट नहीं किये गये है। उनके आन्तरिक विशिष्ट ज्ञान से यदि सामाजिक चेतना के कल्याण हेतु उद्देश्य रख कर कुछ किया गया होता तो शायद राष्ट्र की महति सेवा होती। यद्यपि, अब अभिभापकों के संगठन इस ओर क्रियाशील व चेतन हैं, अपनी जिम्मेदारी समझकर विधायिका के आग्रहो पर विधि-सुधार एवं नव-निर्माण मे रत हैं, जिसे विधि आयोगों के अनुभवो से स्पष्ट देखा जा सकता है। स्वयं विधि-संस्थाओ का पुनर्गठन, अभिभापक संघ मे विकेन्द्रीकरण कर चल रही बपोतियों की समाप्ति, सभी स्तर पर आयकर नियमों की पालना तथा नयी प्रतिभाओं के लाभकारक विकास को दृष्टिगत रख सद्भाव-प्रोत्साहन से समान सहयोग के अवसर, प्रदान करना, नये सिरे से समाज संरचना, सामर्थ्यहीन के प्रति सौहार्द्र, आदि कुछ ऐसी मूलभूत आवश्यकताएं हैं जिनसे राष्ट्र की न्यायपालिका के ढाचे मे आमूलचूल परिवर्तन कर जीर्णोद्धार करना सम्भव है. किन्तु यह सब दिवास्वप्न ही प्रतीत होता है। सामयिक परि-स्थितियों मे विधि-सस्थाओं मे नयी पद-शृंखलाओं का सृजन हो, जिनसे अनुभवी एवं मेघावी प्रतिभाओ को अवसर प्राप्त हो सके, किन्तु राष्ट्र ने 25 वर्ष के ज्वार-भाटो के थपेडों के पश्चात् भी, अभिभापकों की प्रतिभाओं का समुचित उपयोग करने के स्थान पर विधायिकाओ ने इन्हें सदैव समस्याओं को उलझाने वाला तथा न्याया-लयों को एक अनिच्छिन्न बुराई माना है। इसी कारण कुछ नये विधानों मे न्याया-लयों के क्षेत्राधिकार को निपिद्ध कर दिया है तथा अभिभापकों के प्रवेश को

प्रतिबन्धित कर दिया गया है।

श्रय्यर ने भी विधि में समाज उद्धार के पहलू पर जोर दिया

13. गांधीजी ने 1909 में लिखा था—"भारत का पुनरुत्थान तभी संभव है जब वह 50 वर्ष से ढोये जा रहे जुए को उतार फेंके, थोपी गयी विचारधारा से निजात पाये। पाश्चात्य सभ्यता यूरोपवासियों के लिए उत्तम हो सकती है, किन्तु बन्दर-नकल की भांति इसका अंगीकरण हमारे लिए विनाशकारी व भ्रामक होगा।" पुनः चोट करते हुए उन्होने कहा कि "मैं चाहता हूं कि समस्त विश्व की श्रेष्ठ संस्कृतियों की सरिताएं मेरे घर से होकर प्रवाहित हों, किन्तु इनमे से किसी को कोई प्रवाह मेरे पांवों को ही बहा ले जाए, ऐसा मैं बर्दाश्त नहीं करूंगा।"

14. न्यायाधीश हार्ट ने कनाड़ा के विधि-सुधार आयोग के अध्यक्ष पद से बोलते हुए सटीक लक्ष्य-वेधन कर प्रतिपादित किया है—

"मैं लोगों को विधि के विरुद्ध जाने से रोकना चाहता हूं। मैं तो उन्हें विधि अनुगामी-देखना चाहूंगा।"

विभिन्न क्रान्तियों में न्याय प्रणाली क्षेत्र ही अछूता क्यों ?

15. हरित क्रान्ति, श्वेत क्रान्ति, आर्थिक क्रान्ति, सांस्कृतिक क्रान्ति, औद्योगिक क्रान्ति, कृषक क्रान्ति, शैक्षिक क्रान्ति, दलित क्रान्ति, विद्यार्थी क्रान्ति और विभिन्न सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों की दर्जनों क्रान्तियां, भारत के 70 करोड पुत्रों के अलग-अलग और भिन्न-भिन्न हिस्सो का ध्यान अपनी ओर खीच रही है। किन्तु न्यायपालिका का अति-अल्पसंख्यक वर्ग, संविधान के अनुच्छेद 141 का केन्द्रीय महत्व स्वयं मे समेटे होने के बावजूद, प्रायः उपेक्षित रहा है। इसे प्रशंसा के स्थान पर अवहेलना मिली है, यह लगातार आलोचना का विषय रहा है और तनाव तथा बाधाओं का झेलता रहा है, यह जो कुछ एकदम सामने है, और प्रायः स्पष्ट है, उसकी तुलना में उसे वरीयता देता है जो कि बीत चुका है।

न्यायपालिका रूढ़ीवादी व गतिहीन

16. समाज का यह हिस्सा प्रायः रूढीवादी रहा है और प्रयोगवादी और गतिशील होने के स्थान पर प्रायः गतिहीन रहा है। परम्परा के अनुसार, इसने लॉर्ड क्लाइव की ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय की प्रिवी काउन्सिल से सम्बन्धित नजीरो से मार्ग-दर्शन प्राप्त किया है, आज हमारे द्वारा अनुभूत की जा रही आवश्यकताओं से नही। यदि इधर-उधर के कुछेक अपवादो को छोड दिया जाये तो यह हिस्सा आज के अन्तरिक्ष युग में भी 'बापरदा' होने पर जोर देते हुए भी एक आवरण या 'बुर्के' को अधिक वरीयता देता है।

17. भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति श्री एस. एम. सीकरी के अनुसार बकाया

मामले इसलिए भी बढ़ते हैं, क्योंकि कुछ न्यायाधीश सुनवाई को दृढ़तापूर्वक नियंत्रित नही रखते।

18. उन्होने एक मामले का उदाहरण दिया, जिसमें एकल पीठ के समक्ष 10 दिन लगे, खण्ड पीठ के समक्ष और 10 दिन लगे, किन्तु उच्चतम न्यायालय में, केवल एक दिन ही लगा क्योंकि वकीलों से कहा गया था कि वे अपनी बात संक्षेप में कहें और सुसंगत बातें ही कहे।

बहस के समय का राशन हो-सीकरी

19.-निःसन्देह, वकीलों को पूरी तरह सुना जाना चाहिए किन्तु यदि कोई मुद्दा मात्र तर्क-वितर्क के लिए ही है अथवा मुद्दा या उद्धरित पूर्व निर्णय असंगत है तो न्यायाधीश को चाहिए कि वे विनम्रतापूर्वक वकील को आगे के मुद्दे पर आगे बढ़ने हेतु कहें :

"समय आ गया है जबकि हम न्यायालय के समय को अत्यन्त अल्प रूप में उपलब्ध आवश्यक वस्तुओं के समान नियंत्रित करें। न्यायाधीशों और वकीलो को उन हजारों मुकदमे लडने वालों को ध्यान में रखना चाहिए जो उनके मामले की सुनवाई के संबंध में अधीरता से प्रतीक्षारत हैं।"

समय नियोजन-राजस्थान उच्च न्यायालय में एक सफल प्रयोग

20. न्यायालयों मे अभिभाषकगण व्यस्त समय को अप्रासंगिक बहसों में व्यर्थ ही नष्ट करते हुए देखे गये हैं। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत करते हुए, राजस्थान उच्च न्यायालय में पूर्ण पीठ की सुनवाई के समय पूर्व निर्धारित समय स्वीकृत कर समय की सीमारेखा में ही प्रकरण के प्रमुख मुद्दो को परिसीमित करने का सफल प्रयोग किया गया था। मुझे ऐसी चार पूर्ण पीठ के गठन के समय, 50 से भी अधिक मुकदमो, जिनको निर्धारण हेतु प्रमुख 4 वर्गों में बाँटा जा सकता था, पीठासीन होकर निर्धारित से भी कम समय मे परिसीमन कर मात्र 9 कार्यदिवस में ही स्वस्थ अनुभव प्राप्त हुआ, संवैधानिक प्रकरणो में भी, जिनमें एफ. एस. नरीमन, वरिष्ठ अभिभाषक ने अपने बहस में समय को दो सप्ताहो के समय मे समाप्त किये जाने का लक्ष्य बनाया था, उन्हें भी हमने निर्धारित समय की सीमा का प्रभावी अनुसरण कर मात्र तीन कार्य दिवसो की अवधि में ही सुनकर निर्णीत कर दिया।

चार वाद निर्धारण : पूर्ण पीठ प्रकरण की सुनवाई मात्र 9 कार्य दिवसो में

21. माननीय साथी श्री कासलीवाल एवं सिद्दू के साथ पीठासीन हो, हमने राज्यपाल की भारतीय संविधान के अनुच्छेद 309 के अन्तर्गत नियम बनाने की विधायी शक्ति के विवेचन हेतु प्रस्तुत प्रकरण की [illegible] मात्र 2 दिन में ही पूर्ण

की। एक अन्य प्रकरण राज्य परिवहन निगम द्वारा जारी आदेश एवं नियम धाराएं 25 एफ. जी. एवं एन. की वैधानिकता की पुष्टि के विवेचन, जिसमें कर्मचारियों के सेवाकाल की समाप्ति का प्रश्न कगार पर था, में सुनवाई मात्र चार दिन से भी कम समय में पूर्ण कर ली गई। यद्यपि इस प्रकरण मे एक दर्जन से भी अधिक अभिभाषक वक्ता, जिनमें एल. एम. सिंघवी जैसे मेघावी विधिवेत्ता भी सम्मिलित थे। विद्वान् साथी श्री कासलीवाल एवं डी. एल. मेहता के साथ पीठासीन हो नन्दलाल शर्मा के याचिका प्रकरण विवेचन की सुनवाई को मात्र 30 मिनट में ही पूर्णाहूति दे दी गई, जबकि, श्री शर्मा ने अपने धाराप्रवाह उद्घोष का प्रारम्भ ही श्री अम्बेडकर के संविधान सभा के भाषणो की दुहाई दे कर तथा न्यायालय को ब्रिटिश संसद मे भी संप्रभु-सर्वशक्तिमान, जनतन्त्र के तीसरे सदन की संज्ञा देते हुए, भाई-भतीजेवाद, भ्रष्टाचार, लालफीताशाही, असक्षमता को व्यवस्थापिका-विधायिका एव न्यायपालिका से उखाड़ फेंकने हेतु फरमान जारी करने के आह्वान के साथ किया था।

न्यायाधीश खूब मेहनती-सीकरी

22. एस. एम. सीकरी ने कहा—"कुछ लोगों का यह विचार है कि न्यायाधीश कठिन परिश्रम नही करते।" अधिकांश निर्णय शनिवार रविवार को लिखाये जाते हैं। हमारे लिए कोई अवकाश या छुट्टी का दिन नही होता। औसत रूप मे उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश एक सप्ताह में 60 घंटे या 70 घंटे काम करते हैं। कुछ इसमे भी अधिक कठिन परिश्रमरत है। अतः काम के घंटे बढ़ाने के लिए कोई गुंजाइश नही है।[1]

शाह समिति

23. न्यायाधिपति श्री जे० सी० शाह की अध्यक्षता में गठित उच्च न्यायालय बकाया मामला समिति 1972 ने अनेक सिफारिशें की हैं। विधि आयोग ने 10 मई, 1979 को अपनी 79वी रिपोर्ट मे उच्च न्यायालय मे बकाया मामलों के प्रश्न पर विचार किया है। आयोग के ध्यान में आया कि 1972 से 1977 के बीच 9 उच्च न्यायालयो मे विचाराधीन मामलों मे 50 प्रतिशत वृद्धि हुई है लेकिन तीन उच्च न्यायालयों मे 20 प्रतिशत से अधिक किन्तु 50 प्रतिशत से कम वृद्धि हुई है। राजस्थान में वृद्धि 53.9 प्रतिशत थी। कर्नाटक मे 229.7 तथा मध्य प्रदेश संख्या 225.7 थी।

विधि आयोग को 14वीं रिपोर्ट

24. आयोग ने अपनी 14वी रिपोर्ट के आधार पर निम्नलिखित मानदण्ड

1. ट्रिब्यून, मार्च 14, 1972, पृष्ठ 9

सुझाये हैं :—

द्वितीय अपीलों, लेटर्स पेटेण्ट अपीलों के लिए एक वर्ष, प्रथम अपील के लिए दो वर्ष, अधिकरण के मामलों, रिटों और सिविल रिविजन के लिए 3 महीने आयोग ने अपनी 79वीं रिपोर्ट में इससे सहमति व्यक्त की, परन्तु रिटों के मामले मे अवधि बढ़ाकर एक वर्ष कर दी तथा बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिकाओं की अवधि घटाकर दो माह कर दी। आयोग ने यह भी राय दी कि आयकर के निर्देशन तथा बिक्रीकर के मामले भी एक वर्ष के भीतर निश्चित किये जाने चाहिए। भूमि सुधार अधिनियमों या अभिवृत्ति (टैनेन्सी) विधियों तथा किराया नियन्त्रण अधिनियमों से उत्पन्न होने वाले मामले 6 माह के भीतर विनिश्चित कर दिये जाने चाहिए।

न्यायाधीशों की वृद्धि का सुझाव

25. इस सम्बन्ध में आयोग ने न्यायाधीशों की संख्या, बल एवं उनके कार्य की गुणवत्ता संबंधी क्षमता में वृद्धि किये जाने पर बल दिया है। आयोग ने बकाया मामलो को निपटाने के लिए अतिरिक्त और तदर्थ न्यायाधीशो की नियुक्ति की सिफारिश की है तथा यह कहा है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबध में मुख्य न्यायाधीश की सिफारिश पर तत्परतापूर्वक कार्यवाही की जानी चाहिए। इसके लिए अधिकतम सीमा अवधि 6 महीने हो।

विधि आयोग के सुझाव

26. प्रतिवेदन के पृष्ठ 79 के पैरा 3 में सक्षेप मे सिफारिशें दी गई हैं जो इस प्रकार हैं–

"उच्च न्यायालयो में न्यायाधीशों की संख्या :

संख्या एवं विशेषता सम्बन्धी पक्ष—

(12) निपटारे मे संस्थापन अधिक होने के कारण सुधार की कोई योजना सुनिश्चित करनी चाहिए कि—

(i) निपटारा संस्थापन से कम नही हो, और

(ii) भारी बकाया घटती जाय–एक वर्ष मे एक तिमाही निपटा दी जाय– न्यायाधीशों की संख्या मे वृद्धि की जानी अपरिहार्य है।

(13) गत तीन वर्षों के दौरान औसत सस्थापन को ध्यान मे रखते हुये प्रत्येक उच्च न्यायालय मे न्यायाधीशो की सख्या पुन: विचार कर नियत की जानी चाहिए।

(14) बकाया निपटाने के लिये अतिरिक्त एवं तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति की जानी चाहिये, तथापि इस प्रयोजन के लिये केवल अतिरिक्त न्यायाधीशों को लगाया जाना उचित नही होगा, क्योंकि सामान्यतया इस प्रकार नियुक्तियों को व्यवसाय में अथवा उनके स्थायी न्यायिक पदों पर वापस नही भेजा जाना चाहिये।

(15) न्यायाधीशों की नियुक्ति-सम्बन्धी मुख्य न्यायाधीश की सिफारिश

पर अविलम्ब ध्यान दिया जाना चाहिये। इस बारे में अधिक से अधिक छः माह की सीमा का पालन किया जाना चाहिये।

(16) बकाया निपटाये जाने के लिये संविधान के अनुच्छेद 224-क का लाभ लिया जा सकता है। सेवानिवृत्त न्यायाधीश, जो दक्षता एवं शीघ्र निपटारे के लिये जाने जाते थे और जो तीन वर्ष के भीतर सेवा-निवृत्त हुये है, इस अनुच्छेद के अधीन तदर्थ पुनः नियुक्त किये जायें। ऐसे व्यक्ति जो अन्य उच्च न्यायालयो से सेवा-निवृत्त हुये हैं उनको भी लिया जा सकता है। सामान्यत: नियुक्ति एक वर्ष के लिये होनी चाहिये जिसे प्रत्येक बार एक वर्ष की और अवधि के लिये और कुल तीन वर्ष तक के लिए बढ़ाया जा सकता है।

(17) मुख्य न्यायाधीश निपटारा करने में प्रधान भूमिका अदा कर सकते हैं।

(18) उच्च न्यायालय की न्यायपीठ में सर्वोत्तम व्यक्ति नियुक्त किये जाने चाहियें, योग्यता पर सर्वोपरि ध्यान रखा जाना है।

(19) उचित योग्यता के व्यक्तियों को आकर्षित करने के लिये न्यायाधीशो की सेवा–शर्तों में भी सुधार किया जाना चाहिये।

(20) न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि के साथ–साथ अधिक न्यायालय-कक्ष, कर्मचारी एवं विधि पुस्तको की आवश्यकता पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये।

(21) समय की पाबंदी बनाये रखी जानी चाहिये तथा न्यायालय के समय की सम्यक् पालना की जाये।"

27. आयोग अपील के अधिकार को कम करने के पक्ष में नही था, किंतु राय दी थी कि अपील के शीघ्रता से निर्णय के उपाय ही इसका वास्तविक उपचार है।

28. मौखिक बहस की प्रणाली को सर्वथा समाप्त करने की आयोग की राय नही थी, किंतु इसकी राय थी कि उच्च न्यायालयों में मौखिक बहस प्रारम्भ होने के पहले बहस का संक्षिप्त कथन प्रस्तुत किया जाना चाहिये। यह नियमित द्वितीय अपील या सिविल पुनरीक्षण खारिज करते समय संक्षिप्त निर्णय के पक्ष मे था। इसने दैनिक वाद-सूची के प्रकरणों के स्थगन के विरुद्ध प्रबल राय दी थी और सिफारिश की थी कि इसे व्यवस्था न मानकर अपवाद माना जाना चाहिये।

रिट अधिकारिता के सम्बन्ध में सिफारिशें

29. आयोग ने लिखा है कि राज्य की गतिविधियों में वृद्धि के साथ-साथ रिट अधिकारिता का महत्त्व हो गया है और न्यायाधीशों की विद्यमान संख्या कार्य को निपटाने तथा बकाया को साफ करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

30. तामील में विलम्ब से बचने के लिए, इसकी राय थी कि महाधिवक्ता

अथवा स्थायी अधिवक्ता को सरकार की ओर से नोटिस ले लेना चाहिये।

31. आयोग का विचार था कि रिट याचिका खारिज करते समय संक्षिप्त आदेश लिखा जाना चाहिये।

32. इसका सुझाव था कि बंदी प्रत्यक्षीकरण को छोड़कर रिट याचिका में बहस का संक्षिप्त कथन प्रस्तुत किया जाना चाहिये।

33. आयोग की राय थी कि मूल रूप में रिट एक शीघ्रतम उपाय है और सामान्यतया रिट याचिका का निर्णय यथासम्भव शीघ्र होना चाहिए। उच्च न्यायालयों के रिट नियम उसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर बनाये जाने चाहियें।

34. आयोग ने यह भी लिखा है कि कर-प्रकरणों का निपटारा बहुत कम है और सुझाव दिया कि उच्च न्यायालय में, जो निसंदेह कार्य की मात्रा पर निर्भर करेगा, कर-न्यायपीठ अलग से होनी चाहिये।

शाह समिति के सुझाव

35. 1972 में शाह समिति ने निम्नलिखित सुझाव दिये—

(1) जब कभी त्रुटि का सुधार करने में व्यतिक्रम पाया जाये तो मामला सुनवाई से पूर्व पारित किये जाने वाले आदेश के लिए किसी न्यायाधीश के सामने रखा जाना चाहिये। नियमों में स्पष्ट रूप से प्रावधान होना चाहिये कि अनुपालना करने में असफल होने पर अपील अथवा पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जा सकता है।

(2) हमारी राय में किसी पक्षकार के पक्ष में, उसके द्वारा आदेशिका शुल्क का भुगतान करने के लिये बार-बार समय दिया जाना गलत स्थान पर रियायत दिया जाना है।

(3) विचाराधीन प्रकरणों में, अपील अथवा पुनरीक्षण के नोटिस की तामील उस अधिवक्ता को जिसने नीचे के न्यायालय में प्रत्यर्थी की ओर से पैरवी की थी, पर की जा सकती है।

(4) जब तक न्यायालय विशेष कारण अभिलिखित किये आकर अन्यथा आदेश न करे, उच्च न्यायालय के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत किये बिना कि विनिर्दिष्ट समय तथा विनिर्दिष्ट प्रतिकर के लिये न्यायालय को आवेदन किया जायेगा, स्थगन के लिये अन्तरिम आदेश अथवा निषेधाज्ञा के लिये प्रार्थना नहीं की जायेगी।

(5) राज्य सरकार और सरकार के अधिकारियों को जिनकी शासकीय कार्यवाही को चुनौती दी गई है, सम्बंधित नोटिस एवं आदेश की प्राप्ति के लिये महाधिवक्ता अथवा सरकारी अधिवक्ता को सरकार का अभिकर्ता माना जाना चाहिये। आदेशिका प्राप्त करने के लिये अभिकर्ता के रूप में किसी अधिवक्ता को नियुक्त करने की केन्द्रीय सरकार से भी अपेक्षा की जानी चाहिये।

(6) ऐसी परिपाटी बनाई जानी चाहिये कि ऐसे मामलों में, जिनको सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के उपबंध विचारार्थ ग्रहण करने के लिये पर्याप्त नहीं

है, अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का प्रयोग नहीं किया जायेगा।

(7) श्रम अपील अधिकरण, जिन्हें कुछ वर्षों पूर्व समाप्त किया गया था, पुनः स्थापित किये जाने चाहिये।

(8) पंचायतों के चुनाव में, निर्वाचन अधिकरण के निर्णय से अपील जिला न्यायालय को किये जाने का उपबंध किया जाना चाहिये।

(9) जो विचाराधीन प्रकरण हैं उनकी नियत कालिक छटाई की जानी चाहिये। इसके अंतर्गत रजिस्ट्रार जांच करे कि किन मामलो में राजीनामा हो गया है अथवा पक्षकारों का हित समाप्त हो गया है।

(10) जब तक न्यायालय द्वारा अन्यथा आदेश न किये जायें, सारांश में विवाद उत्पन्न करने वाले तथ्य, वादग्रस्त बिंदु, विधि एवं तथ्य की प्रतिपादना, जिनका सहारा लिया जायेगा और प्रत्येक प्रतिपादना के लिये न्यायालय जिनके निर्णय है और मांगा गया अनुतोष देते हुये संक्षिप्त कथन तैयार कर पक्षकार क अधिवक्ताओ को प्रस्तुत करना चाहिये। सुनवाई से पर्याप्त समय पूर्व ये कथन पक्षकार के अधिवक्ता एक-दूसरे को दे देंगे और सामान्यतया न्यायाधीश अधिवक्ताओ को इस कथन से बाहर जाने की अनुमति नही देंगे।

(11) यदि न्यायालय केवल एक बिन्दु पर निर्णय दे सकता है तो न्यायालय को अन्य प्रश्नों पर, जिनका अंतिम विश्लेषण करने पर अपील के नतीजे से कोई संबध नहीं है, विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

(12) सिवाय ऐसी शर्तों पर कि जीतनेवाले पक्ष तथा हारनेवाले पक्ष की, प्रार्थी से पर्याप्त प्रतिभूति प्रस्तुत करवा कर, रक्षा की जाकर, धन की डिग्री के निष्पादन का स्थगन प्रदान नहीं किया जाना चाहिये और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन क्षतिपूर्ति के आदेशों के प्रति कभी स्थगन नही दिया जाना चाहिये।

रिटें

(13) विधिपूर्ण प्राधिकार के प्रयोगों में बाधा उत्पन्न करने के लिए याचिकाओ में दुर्भावपूर्ण कार्यवाही, विचार नहीं किये जाने तथा शक्तियों के दिखावटी प्रयोग के गम्भीर आरोप सरलता से लगाये जाते हैं। इस बारे मे अधिवक्ताओं का उत्तरदायित्व भी कम नही है।

(14) कभी-कभी ऐसे विवादों को जो वास्तव मे सिविल विवाद नहीं हैं, संवैधानिक संरक्षण के लिए दावे के वेश मे उच्च न्यायालयो के सामने लाये जाने का प्रयास किया जाता है। और ऐसे विवाद जो सामान्यतया सिविल मामलो के

रूप में चलने चाहिए, उच्च न्यायालयों के सामने रिट याचिकाओं द्वारा लाये जाते हैं और प्रत्येक कानून की, चाहे वह कितना ही हानि-रहित हो, वैधता को चुनौती देना फैशन हो गया है। कभी-कभी ऐसी शिकायतें करने से जिनमें उच्च न्यायालय में आनेवाले पक्ष को कोई व्यक्तिगत शिकायत नहीं है, संवैधानिक रिटों के भारी संख्या में आ जाने के कारण, इन प्रवृत्तियों का नतीजा यह होता है कि नागरिकों के सामान्य सिविल प्रकरण पीछे पड़ जाते हैं।

प्रायः पक्षकारों द्वारा उनकी शिकायतों के उपचार के लिए कानूनों में उपबंधित अन्य तरीकों को अपनाये बिना ही याचिकायें प्रस्तुत कर दी जाती हैं। अनेक उच्च न्यायालय के प्रकरणों मे रिट मामले भरे पड़े हैं, उच्च न्यायालयों मे बकाया की भारी संख्या मे रिट याचिकायें प्रमुख हैं और उच्च न्यायालय का पर्याप्त समय रिट याचिकाओं के निपटारे मे ही लग जाता है। संवैधानिक रिटो के अधिवक्ताओ एवं जनता के द्वारा कार्यक्षेत्र एवं उद्देश्य के उचित विवेचन और सुनवाई के लिए स्वीकार करने के प्रक्रम पर उच्च न्यायालय द्वारा अधिक सतर्कता बरतने पर ही अधिकतर उपाय निर्भर करते हैं।

कर और नियमो, अधिसूचनाओं तथा विनियमों के त्रुटिपूर्ण प्ररूपण ने भी रिट याचिकाओं के लिए उपयोगी आधार प्रदान किया है। इसका उपाय सरकार के पास है। यदि ऐसे नियमों, अधिसूचनाओ और विनियमों के प्रारूपण का कार्य सुप्रशिक्षित एवं सक्षम प्रारूपकारो द्वारा किया जाये तो उच्च न्यायालय का भार पर्याप्त हल्का हो जायेगा।

(15) सामान्यतः अधिकरण और अधिकारीगण अपने आदेश में ऐसा आदेश पारित करने के लिये कारण नही देते। ऐसे अधिकरणों और विभागाध्यक्षों से अर्द्ध न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते समय उन आधारो का जिन पर आदेश किया गया हो, कुछ संकेत देने की अपेक्षा की जानी चाहिए।

(16) न्यायालय को उन तथ्यो का, जिनके कारण विवाद उत्पन्न हुआ, उन आधारों का जिन पर विनिश्चय को चुनौती दी गई है और उन प्राधिकारियों का जिन पर निर्भर रहा गया है, एक विवरण प्रस्तुत करने के लिये आग्रह करना चाहिये।

(17) सामान्यतः साधारण कथन मे प्राधिकारियों को सम्मन करने की अपेक्षा नही की जाती।

(18) कभी-कभी मामलों को मात्र इसलिये ही उद्धृत कर दिया जाता है कि वे लागू नहीं होते। ये बातें मुकदमा करने वाले के लिये तो आदर्श प्रयोग हैं, किन्तु उस न्यायाधीश के लिए मामले को विनिश्चित करना होता है, निरर्थक सिद्ध

होती है।

(19) प्रायः कई प्राधिकारियो के माध्यम से किसी सिद्धान्त के विकास का पता लगाने का प्रयास किया जाता है। इससे किसी को भी मदद नहीं मिलती। किसी प्राधिकारी को उद्धृत किया जाना तभी न्यायोचित ठहराया जा सकता है जबकि इस विचार का समर्थन करने वाला सिद्धांत न्यायालय की राय में विवाद-ग्रस्त हो।

(20) निःसंदेह न्यायाधीश अपने निर्णय मे न्यायालय में उद्धृत प्रत्येक वाद को निर्दिष्ट करने के लिये बाध्य नही है।

(21) प्रत्येक न्यायालय में कुछ ही वकीलों के पास कार्य एकत्रित हो जाने से भी भारी विलम्ब होता है।

(22) *अधिवक्ता के अन्य खण्डपीठ में व्यस्त रहने के कारण मामलों को* टालते रहने देने की प्रथा से न्यायालय का काम अस्त-व्यस्त हो जाता है।

(23) अत: उस न्यायालय में जितने भी व्यस्त वकील हों उन्हें वरिष्ठ अधिवक्ता के रूप में नामांकित कर लिया जाना चाहिये।

(24) न्यायालय यह परिपाटी अपना सकते हैं कि सुनवाई के लिये रखे गये मामलो में स्थगन पहले से, अधिमानतः उस तारीख से जिस दिन मामला सुनवाई के लिये नोटिस बोर्ड पर रखा जाय, पूर्व संध्या को रोस्टर तैयार किये जाने से पूर्व, मागा जाना चाहिये और इस आधार पर कि अधिवक्ता अन्य न्यायालय मे व्यस्त हैं, स्थगन हेतु किसी प्रार्थना पर विचार नही किया जायेगा।

(25) बार के सदस्यो और न्यायाधीशों के बीच अनौपचारिक बैठकें होनी रहनी चाहियें जिनमे बार और न्यायालय-प्रशासन की कठिनाइयों पर विचार-विमर्श किया जा सके और बार के सहयोग से न्यायालय का कार्य सुचारु रूप मे चलाये जाने के लिये कोई मार्ग तलाश किया जा सके।

(26) अनिर्णित मामलों को निपटाने के लिए अतिरिक्त एवं तदर्थ न्यायाधीशो की नियुक्ति की जानी चाहिये।

(27) न्यायाधीशो की नियुक्तियाँ इस प्रकार की जानी चाहिये कि किसी न्यायाधीश की सेवानिवृत्ति और नव-नियुक्त न्यायाधीश के पद ग्रहण करने के बीच का समय व्यर्थ न जाये।

(28) न्यायालयों को कुशल सेवायें बनाए रखने में समर्थ बनाने के लिये शीघ्रलिपिकों की सेवा शर्तों और निबन्धनों को संशोधित और आकर्षित बनाया जाना चाहिये। शीघ्रलिपिकों की सेवा निवृत्ति की आयु भी बढाकर 60 वर्ष कर देनी चाहिये ताकि न्यायालयों में अनुभवी शीघ्रलिपिक [illegible]

(29) मामलो को निपटाने की एक सामान्य विधि अवधारित करने के लिए आवश्यक है कि सारे देश में वादों का संस्थित किये जाने और लम्बित रहने तथा उनके निपटारे से सम्बन्धित आंकड़े एक ही आधार पर तैयार किये जायें।

(30) सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन किसी पुनरीक्षण अर्जी या द्वितीय अपील को खारिज करने में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिये यह अनुज्ञेय बना दिया जाना चाहिये कि वह उसमें उठाये गये प्रश्न को बतलाये और यह अभिलिखित करे कि उसके विचार में यह प्रश्न सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता से संबंध नहीं रखता।

(31) यह निश्चित करने के लिए कि क्या मामला निपटाने के योग्य है या नहीं, पक्षकारों का न्यायाधीश के समक्ष मिलने और कौन्सिल के बीच उन बिन्दुओं पर, जिन पर विचारण हेतु वे न्यायालय में जाना चाहते हैं, समझौता हो जाने से विचारण समय में कमी हो जायेगी।

विधि आयोग की 77 वीं रिपोर्ट

36. भारतीय विधि आयोग ने "विचारण न्यायालयों मे विलम्ब और बकाया मामलों" पर 17 नवम्बर, 1978 को प्रकाशित अपनी 77वीं रिपोर्ट में यह विचार व्यक्त किया कि विधि-न्यायालयो मे विलम्ब की समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया है और इसने जनता की शिकायतों का निवारण करने तथा पर्याप्त और समय पर राहत प्रदान करने में न्यायालयों की क्षमता के प्रति उनके विश्वास को हिला के रख दिया है। आयोग ने माना है कि किसी सिविल मामले को पुराना मानकर विचारण-न्यायालय में उसका निपटारा एक वर्ष के भीतर तथा आपराधिक मामले का छः मास के भीतर कर दिया जाना चाहिये।

"निष्कर्षों और सिफारिशों का सारांश" के अध्याय 14 मे उसने कुल 9 प्रस्ताव रखे हैं जिनका इस लेख में संक्षिप्तिकरण नहीं किया जा सकता। आयोग का विचार है कि वैवाहिक एवं वास्तविक आवश्यकता के आधार पर बेदखली के मामलों को तथा मोटर दुर्घटना दावे अधिकरण और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के अधीन के मामलो को निपटाने में सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिये।

37. न्यायिक अधिकारियों की प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिये और न्यायिक सेवा में प्रतिभाशाली युवकों को आकर्षित करने के लिए न्यायिक अधिकारियों के वेतनमान और अन्य सुविधायें ऐसी होनी चाहियें जिससे वे सम्भ्रान्त जीवन व्यतीत कर सकें। न्यायाधीश श्री एच. आर. खन्ना की अध्यक्षता में दी गई 79वीं रिपोर्ट पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है और उस

क्रियान्विति के लिए सरकार और न्यायपालिका दोनों को तत्परता से कार्यवाहियां :नी चाहियें।

विलम्ब समाप्ति हेतु सुझाव

38. विशेषज्ञ समितियो एवं आयोग की सिफारिशों के अलावा मैं अपने जी अनुभव पर और तीन दशकों तक भारतीय न्यायपालिका के कार्य का अध्ययन रने के आधार पर कुछ और सुझाव प्रस्तुत करता हूं—

(1) 42वें संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 226 मे जो संशोधन किये गये थे और न्हें 44वें संशोधन द्वारा निरस्त कर दिया गया था, उन्हें पुन: बहाल किया जाना ाहिये। अनावश्यक मुकदमेबाजी को रोकने के लिए "न्याय की सारवान विफलता" अर्जीदार को "पर्याप्त हानि" के अपर-खण्डों को अधिक सामर्थ्य के साथ पुनः र्तित किया जाना अपेक्षित है। स्थगन पर लगे प्रतिबन्धों को बहाल किया जाना ाहिये।

(2) पंचायत, नगरपालिका के निर्वाचनों और स्वायत्तशासी संस्थाओं, हकारी समितियों के अन्य निर्वाचनों की प्रक्रिया के दौरान न्यायिक हस्तक्षेप को कने के लिए संविधान के अनुच्छेद 329 को संशोधित किया जाये और विधि द्वारा र्वाचन हो जाने के बाद के उपायों की व्यवस्था की जानी चाहिये।

(3) "न्यायिक वित्तीय स्वायत्तता" का सृजन करने के लिए संविधान को शोधित किया जाना चाहिये और रेल्वे बजट के समान ही केन्द्रीय न्यायिक बजट ा उपबन्ध किया जाना चाहिये।

(4) आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी को, जिसे न्यायपालिका से अब तक र रखा गया है, उपलब्ध कराया जाना चाहिये जिससे कि वह उनमे पूर्णत. लिप्त ो जाये। विधियों नियमों, नजीरों के लिए निर्देश-कम्प्यूटरों का प्रचलन प्रारम्भ कया जाना चाहिये। डिक्टाफोनो, टेपरिकार्डरों, विद्युत टाइप मशीनों, टेलेक्स ल्क्यूलेटरो की उदारतापूर्वक व्यवस्था की जानी चाहिये। 'सेडो ज्यूरी' को पनाया जावे।

(5) सभी सेवाओं के सम्बन्ध में होने वाली मुकदमेबाजी और श्रमिक ौद्योगिक, सहकारिता क्षेत्र, किराया-नियंत्रण तथा काश्तकारी के विवादों के लिए शासनिक अधिकरणों का गठन किया जाना चाहिये जिनमे न्यायिक अधिकारियो ो रखा जाये।

(6) अहमदाबाद मे मस्कती महाजन के ढांचे के अनुसार अनिवार्य पंचायत, ुलह, समझौता फोरमो को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये।

(7) न्याय पंचायतो और लोक-अदालतो की स्थापना की जानी चाहिये और छोटे मुकदमों को विनिश्चित करने के लिये उन्हें सिविल एवं आपराधिक अधिकारिता प्रदत्त की जानी चाहिये।

(8) वादों को निपटारे की संख्या से उनके संस्थित किये जाने की संख्या अधिक होने के कारण उच्च न्यायालय में लगभग 13 लाख बकाया मामलों को निपटाने के लिए तीन वर्ष का अभियान चलाया जाना चाहिये। उसके लिए प्रति तीन वर्ष की नियत अवधि के लिए वर्तमान संख्या के बराबर संख्या से तदर्थ या अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति की जानी चाहिये। यदि न्यायाधीशों द्वारा 650 मामलों को निपटाने का औसत मानकर 3 वर्षों के लिए 550 अतिरिक्त न्यायाधीशों की और अपेक्षा होगी। यदि केन्द्रीय सरकार इस बात के लिये सहमत हो जाती है तो सम्पूर्ण बकाया मामले निपट जायेंगे और इतनी ही संख्या में मामलों को निपटाने वाली एक संतुलित संख्या सदा के लिए बकाया मामलो को साफ कर देगी। न्यायालयों को तब तक दो शिफ्ट में चलाया जावे।

(9) विधि की अनिश्चितताओं को हटाने और विभिन्न नजीरों के उद्धरण से बचने के लिए अमेरिका के पैटर्न पर विधि के पुनर्कथन के आधार पर विधि की स्टैण्डर्ड, प्राधिकृत जिल्दें तैयार करने की एक व्यापक परियोजना चालू की जानी चाहिये। जापान में विधि के पुनर्कथन के लिये एक अस्थायी आयोग विद्यमान है।

(10) विलम्ब को कम करने और बकाया मामलों को निपटाने के न्यायाधीशों और बार के सदस्यों की स्थायी समितियों का उच्च न्यायालय के स्तर पर गठन किया जाना चाहिये।

(11) अगले सप्ताह में लिए जाने वाले मामलो की एक अंतिम टंकित सूची शुक्रवार को नोटिस बोर्ड पर रखी जानी चाहिए और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पर्यवेक्षण में रजिस्ट्रार द्वारा इसका निपटारा शनिवार को कर दिया जाना चाहिये।

(12) समय के राशनिंग की व्यवस्था किसी "घिसी-पिटी बात" के सिद्धान्त पर न की जाकर न्यायालय के सम्बन्धित न्यायाधीश के स्वविवेक पर प्रारम्भ की जानी चाहिये। मामले की फाइल देखने के पश्चात् इसकी पहले ही विनिश्चितता कर लेनी चाहिए। इसके बाद न्यायालय को सख्ती से पालन करना होगा और तदनुसार बार को विनियमित करना होगा।

(13) 70 प्रतिशत मामलों में सरकार के पक्षकार होने के कारण ऐसी परम्परा का विकास किया जाना चाहिये जिसमें सरकारी अधिवक्ताओं को जैसे ही वे यह अनुभव करें कि कोई मांग न्यायोचित एवं उचित है और उसका मुकदमा लड़ना उचित नहीं, तो तकनीकी अभिवचनों से बचना चाहिये।

(14) समस्त न्यायालयों में जिनमें उच्च न्यायालय भी सम्मिलित है, सारी कार्यवाही हिन्दी या प्रादेशिक भाषाओं में होनी चाहिये।

(15) अधीनस्थ न्यायालयों के स्थानान्तरण, पदोन्नतियां व सेवा-नियम निश्चित सिद्धातो पर होने चाहियें व इस हेतु केन्द्रीय स्तर पर समस्त प्रदेशो के मार्ग-दर्शन हेतु नियम निर्मित करने चाहियें।

(16) अधीनस्थ न्यायाधीशो के वेतनमान वदलकर महगाई के अनुसार बढ़ाने चाहियें व उन्हे हर दशक में पुन: निर्णीत करना चाहिये।

(17) अधीनस्थ न्यायाधीशो को सरकारी आवास उपलब्ध कराने चाहिये व राजकीय कार्य में वाहन सुविधा मिलनी चाहिये।

(18) कोर्ट फीस साधारणतया समाप्त कर देनी चाहिये व केवल कुछ वादो मे सम्पन्न धनी पक्षकारों पर लगनी चाहिये।

(19) कम्प्यूटर प्रणाली को निर्णयों व अधिनियमो को तुरन्त ढूंढने में अपनाया जावे।

गुजरात के मुख्य न्यायाधिपति के सुझाव

39. गुजरात उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति श्री ठक्कर ने मुझे बतलाया कि उनके यहा 60 प्रतिशत रिट याचिकाओं का फैसला 'कारण बताओ नोटिस" के स्तर पर ही हो जाता है क्योकि सरकार न्यायालय के सुझावो को तत्परता से स्वीकार कर लेती है। ऐसा सभी जगह हो सकता है। लोक-कल्याणकारी कानूनो में राज्य सरकार द्वारा श्रम न्यायालयों अथवा अन्य न्यायालयों के छोटे-छोटे मामलो में निर्णयों को चुनौती नही दी जानी चाहिये।

गोलमेज सम्मेलन हो

40. न्यायाधीशो, विधायकों, समितियों और आयोगों के अधिकतर समान किन्तु कुछ विपरीत सुझावों के संकलन से मुकदमो के निर्णय में विलम्ब और निरंतर एकत्र हो रहे मामलो के प्रति बज रही खतरे की घंटी स्पष्ट सुनाई दे रही है। लगभग सभी एक स्वर में यह तो कहते ही है कि जब तक इस दिशा मे कोई ठोस कार्य नहीं किया जाएगा, हमारी न्याय-प्रणाली अपने ही भार से चकनाचूर होकर बिखर जायेगी। अधीनस्थ न्यायालयों में तो स्थिति और भी गम्भीर है। केवल राजस्थान के ही अधीनस्थ न्यायालयों में लगभग 7 लाख मामले विचाराधीन हैं और इस संख्या मे विभिन्न अधिकरणों के समक्ष विचाराधीन राजस्व, कर और अन्य मामले सम्मिलित नही हैं। फैसलों की अपेक्षा मुकदमों के संस्थापन की अधिकता को देखते हुए मुख्य न्यायाधिपति और विधिमंत्री को एक गोलमेज सम्मेलन आयोजित कर उपर्युक्त सुझावों की क्रियान्विति करने हेतु ऐसे कठोर और प्रभावी उपाय निकालने चाहिये, जिनमे वकील समुदाय और फरीकैन को भी सम्मिलित करते हुए इस दिशा मे कुछ किया जा सके।

सस्ते सामाजिक न्याय की समस्या सबसे महत्त्वपूर्ण

41. विधि मत्री तथा मुख्य न्यायाधिपति भगवती, न्यायाधीशों के स्थानांतरण जैसे अमहत्त्वपूर्ण मामलों मे और न्यायपालिका का अधिनायकत्व बनाम प्रतिश्रुत न्यायपालिका जैसे आरोपों पर अनावश्यक परिचर्चा मे समय नष्ट करने की अपेक्षा, विलम्ब के मामले पर पहले ध्यान देना चाहिये। भारत के लाखो लोग उक्त परिचर्चा को निरर्थक एवं निठल्ले राजनीतिज्ञों और विद्वान न्यायशास्त्रियों की मानसिक कसरत ही समझते रहेंगे जब तक की उन्हें वास्तविक रास्ता, सामाजिक न्याय प्राप्त होने का वचन नहीं दिया जाता, जिससे कि गरीबों के अभिशाप से मुक्ति दिलाई जा सके। लाखो दलितों, सताये गये लोगों और निराश चेहरो से आंसू पोंछने और झुग्गी-झोपड़ियो और सड़क के किनारे रहने वाले उन धरतीपुत्रों मे प्रसन्नता की लहर लाई जा सके, चाहे वे हल जोतने वाले, श्रमिक, मछुआरे, अध्यापक लुहार या चमार ही क्यों न हो। आज की मूलभूत आवश्यकता समाज को वास्तव मे कुछ देने की है, न कि शब्दाडम्बर करने की और इसी कारण स्थिर और सिद्धांतप्रिय न्यायपालिका को भी व्यावहारिक और गतिशील बनाने की आवश्यकता है। समय की अनुभूत आवश्यकता के तराजू का झुकाव क्रांति की ओर हो रहा है। आज न्यायपालिका मे यथास्थिति को तोड़ने और विकास-प्रक्रिया को मजबूत, तेज करने हेतु प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता है।

उपर्युक्त दृष्टि से इन प्रश्नो पर विचार-मंथन की प्रक्रिया तेज होनी चाहिये। विद्वान न्यायशास्त्री तथा वकील समुदाय के गणमान्य सदस्य इन प्रश्नों पर अपनी उदार और स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकते हैं क्योंकि वे उस आचार-संहिता के सीमित क्षेत्र तथा आवरण से मुक्त हैं जिनमे कि एक न्यायाधीश कैद रहता है।

न्यायिक क्रान्ति

1. क्या हम सब न्यायप्रणाली मे क्राति ला सकेंगे ताकि कब्रों से प्रतो की ग्रोर प्लेचट मृतात्माम्रों की ग्रावाज सुनने की ग्रपेक्षा, हम दीवारों पर लिखे ग्रक्षरो को पढ़ें ग्रौर सामाजिक न्याय को समय की ग्रावश्यकतानुसार सस्ता, शीघ्र ग्रौर सुलभ बनाएं। इसी में हमारी ग्रौर हमारे 70 करोड़ मानवों की मुक्ति का भागीरथ प्रयत्न निहित है।

न्यायिक क्रान्ति का ग्राह्वान

2. यदि इसमें हम विफल रहे तो मुकदमा लड़नेवाले लाखों परिवार, जो इस व्याधि से ग्रस्त-त्रस्त ग्रौर ग्रभिशप्त हैं, न्याय-प्रणाली के विरुद्ध ही क्रांति छेड़ देंगे। हम ग्राशा करते हैं ग्रौर ईश्वर से प्रार्थना भी कि इस क्रांति से ग्रपने ग्रापको बचाने के लिए हम स्वयं ही कोई ठोस ग्रौर मूलभूत उपाय निकालने में समर्थ हो। किन्तु हमे यह जान लेना चाहिए कि यदि हमारी गलतियों ने हमे पीछे छोड़ दिया तो जन-ग्रान्दोलन के विरुद्ध "मान-हानि की तलवार" कोई काम नही ग्रायेगी। यदि हमने इस क्रांति को विकास की मरीचिका द्वारा मानहानि के कवच की ग्राड मे दबाना चाहा तो हम मानव हत्या की बजाय ग्रात्महत्या ही करेंगे। यदि हमे 'क्रांति' ग्रौर 'विकास' में से कोई एक चुनना हो तो हम चुनेंगे 'क्रांति', क्योंकि 'क्रांति' तो होनी ही है चाहे इस 'क्रांति' का सेहरा हम स्वय बाधें या दूसरो को इसका श्रेय लेने का निमन्त्रण दें।

एबोट की चेतावनी

3. श्री ले-मेन एबोट ग्रवश्यम्भावी क्रांति की चेतावनी देते हुए कहते हैं :—

"जब न्यायालयो के दरवाजो के ताले मात्र स्वर्ण-निर्मित चाबियो से ही खोले जा सकते हों तो क्रांति के बीज ही उपजेंगे ग्रौर इस सम्भावित क्रांति के लिए वे निःसंदेह न्याय-संगत ठहराये जायेंगे।"

4 यद्यपि मैंने उपरोक्त विवेचन मे जनहित न्याय प्रकरण के संदर्भ मे न्यायपालिका का एवरेस्ट की चोटी पर तेनसिंह की तरह विजय व नवजागरण का नया ग्रध्याय बताया है परन्तु यह संकेत ग्रतिशयोक्तिपूर्ण व प्रेरणात्मक ही है। वास्तव मे भारत का ग्रधिकतर गरीब, दलित, त्रसित तबका ग्राज भी न्याय-पालिकाग्रो के लिए ग्रस्पृश्य व न्याति बाहर किया हुग्रा है। उन करोड़ो ग्रांसुग्रो को ग्रभी हमें न्याय-मन्दिर के द्वार खोलकर पोछना है, जैसा कि मैंने मजूर ग्रहमद बनाम ग्रार टी.ए.[1] प्रकरण में कहा है :—

मंजूर ग्रहमद बनाम क्षेत्रीय परिवहन ग्रधिकरण कोटा व ग्रन्य मे मैंने निम्न-लिखित मत व्यक्त किया है :—

---

1. ए. ग्राई. ग्रार. 1979 राजस्थान, पृष्ठ 98।

"मुझे यह दृष्टिगोचर होता है कि संविधान के अनुच्छेद 226 मे उपरोक्त दो परिच्छेद (ब) तथा (स) का विशिष्ट परिवर्धन निःस्सार नहीं था। संसद ने केवल बौद्धिक रुचि के विवादों का अपसरण व बहिष्कार करने का सोचा होगा, ताकि न्यायालय का बहुमूल्य समय उन मामलों को निर्णीत करने में उपयोग करने हेतु बचाया जा सके, जिनमें नागरिको के अधिकार निहित हैं या वे उन्हें प्रभावित करते हैं। संसद इस तथ्य से परिचित थी कि केवल बौद्धिक या विलासपूर्ण वादिता हेतु यह देश न्यायालयो का समय नष्ट करना बर्दाश्त नही कर सकता। यद्यपि बौद्धिक रुचि के विवाद विश्वविद्यालय के विधि प्राध्यापकों तथा विद्यार्थियों हेतु अत्यन्त अभिरुचिपूर्ण हो सकते हैं, परन्तु उच्च न्यायालय का समय उनमे नष्ट नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह उन पक्षकारो हेतु बाधक और अनिष्टकारी होंगे, जो दशकों से पंक्ति मे प्रतीक्षा कर रहे हैं तथा उच्च न्यायालय मे न्याय प्राप्त करने हेतु अधीर हैं। क्या हमें पावन और पवित्र न्याय-मन्दिरो को विधिक व्यायामशाला सस्थानो विधिक वादविवाद प्रतियोगिता समितियों या विधि के विलासपूर्ण शोध-संस्थानो में रूपान्तरित करना है ?"

विधिक कला-कौशल और व्यायामशालाएं अनुत्साहित

5. "क्या हमें उन हजारो पक्षकारों के जो या तो पिछले पाँच-छः वर्षों मे जेल की कोठरियों मे प्रतीक्षा करते हुए अपने दोष अथवा निर्दोषिता को निर्णीत करवाना चाहते हैं या उन हजारों कर्मचारियो अथवा औद्योगिक कामगारो, छोटे दुकानदारों अथवा किसानो के संवैधानिक अधिकारो पर राज्य के निर्लज्ज नियोजक अधिकारियो द्वारा अतिक्रमण किया जाता है तथा जो कम से कम "विधि के अनुसार न्याय" प्राप्त करना चाहते हैं, भले ही उन्हें वास्तविक अथवा सामाजिक न्याय न मिले, लेकिन वे लम्बी वाद सूची एवं अवशिष्ट वादो के कारण अपने मामले की सुनवाई का अवसर नही पाते हैं; की कीमत पर थोड़े उन भाग्यशाली प्रतिभावान निपुण एव वक्तृत्व शक्ति मे अग्रणी, अमीर और सम्पन्नशील लोगों की कलाबाजिया न्यायालयो में नि.सहाय होकर देखते रहना चाहिये । करीब दस हजार लम्बित मामलों से सम्बन्धित ऐसे लाखों निराश, असहाय, आतुर और उदास चेहरेवाले पक्षकार मेरी ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं। वे मुझे उनके प्रतीक्षित भाग्य को निर्णीत कराने के लिये मार्ग-प्रशस्त करने तथा पिछले दस वर्षों से लम्बित मामलो की अनिश्चितता से उत्पन्न अचेतनता से मुक्ति दिलाने हेतु याद दिला रहे हैं कि सारभूत क्षति व न्याय की सारभूत विफलता सम्बन्धी आवश्यकताओं को कार्यरूप में परिणित करवाने का भारी महत्त्व है।"

न्यायालय गरीबों और दलितों को राहत देने में असमर्थ

6. "पुनः क्या हम अपनी आंखों को बन्द करके इस कटु सत्य के प्रति नेत्रहीन हो जायें कि लाखो निर्धन, पददलित तथा कम विशेषाधिकारयुक्त नागरिक,

अभी तक न्यायालय, न्याय और विधि के क्षेत्र से बहिष्कृत हैं क्योंकि वे विशेषाधिकारयुक्त चतुर, शिक्षित तथा प्रबुद्ध पक्षकारों के मुकाबले प्रतियोगिता मे टिक नहीं सकते और न ही वे लम्बी कतारों में खड़े रहकर प्रतीक्षा करने में ही सक्षम हैं। इस प्रकार यद्यपि ये गरीब न्यायालय द्वारा सुने जाने तथा सहायता प्राप्त करने के अधिकारी हैं, फिर भी हम संविधान के प्रहरी के रूप में कार्य करके उन्हें न्याय प्रदान करने मे असहाय हैं।"

कृषकों की दुर्दशा, उसका निवारण

7. *"इस न्यायालय में बैठे हुये, मैं शाहबाद के भूखे और नग्न अस्थिपंजरवाले* सहरियाओं (शाहबाद उपखंड, जिला कोटा के भूमिहीन कृषकों) के नेत्रों के अनंत अश्रु-प्रवाह देख रहा हूं, जो अपने खेतों पर धनी तथा साधन-सम्पन्न आक्रांताओं द्वारा अतिक्रमण करते हुये, उन्हें जोतते हुए तथा उनकी फसल काटते हुए असहाय देख रहे हैं, लेकिन वे इसके विरोध में रोने तथा चीखने का भी साहस नहीं जुटा सकते। निर्धनों को विधिक सहायता और इस निर्धन कानूनी सहायता के अधिकार को संविधान में सम्मिलित करने की लम्बी-लम्बी बातों के होते हुये भी न तो वे न्यायालय तक पहुंचने की कल्पना ही कर सकते हैं और न वे पुनः स्वामित्व व कब्जा-प्राप्ति की राहत ही प्राप्त कर सकते हैं। यदि मैं हमारी विधि तथा न्यायालयों की उपरोक्त दुखांतक कार्यप्रणाली के कटु सत्यों को गिनाते हुये वर्णन करूं तो मैं क्षणभर के लिये सम्भवतः एक न्यायाधीश की अपेक्षा एक कवि, दार्शनिक अथवा सुधारक की भूमिका अदा करूंगा, परंतु ऐसा न करना ही इस चर्चित विचारधारा के लिये उत्तरदायी है कि "न्यायाधीश उच्च काल्पनिक अट्टालिकाओं मे" निवास करते हैं। यह विचार जो यदि असत्य भी हो या आंशिक रूप से सत्य भी हो तो भी उसका निराकरण समाज में सबसे निम्नस्तरवाले लोगो को यथा कृषक, कामगार, मजदूर, चर्मकार इत्यादि को शीघ्र, सस्ता, सामाजिक और वास्तविक *न्याय प्रदान करके करना चाहिये; न कि केवल "मान हानि" के सुविधापूर्ण* हथियार का प्रयोग करके।"

अनुच्छेद 226 में 'ब' व 'स' अनुच्छेदों का विलोप

8 "44वें संविधान द्वारा ये प्रावधान हटा दिये गये हैं। ये दो दृष्टांत यह स्पष्ट करते हैं कि विधि को गरीबो के नाम पर राजनीतिज्ञों द्वारा अपने राजनैतिक सिद्धांत व नीतिघोष के अनुसार *निर्मित किया जाता है लेकिन गरीबो के* लिए सदैव नही।"[1]

9. उपरोक्त निर्णय के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान की धारा 226 मे 42वें संशोधन से अनावश्यक वादों को रोकने के व जनहितकारी

1. ए. आई. आर. 1979 राजस्थान पृ. 98।

कार्यों में स्थगन आदेश न देने के प्रावधान को जो 44वें संशोधन से लोपित कर दिये गये हैं उन्हे पुनर्जीवित किया जावे ताकि अनावश्यक विलासितापूर्ण मुकदमो को रोका जा सके व अनावश्यक स्थगन आदेश पर अंकुश लगे।

न्यायाधीशों की प्रतिबद्धता के चर्चे

10. स्वर्गीय श्री मोहनकुमार मंगलम् ने न्यायाधीशों की प्रतिबद्धता का बिगुल बजाया था जो न्याय-जगत मे बहुचर्चित व विवादास्पद रहा। श्री शिवशकर ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा कि प्रतिबद्धता राजनैतिक सिद्धांतों के प्रति नही सविधान के प्रति होनी चाहिये। प्रधानमंत्री ने भूमि सुधारों की क्रियान्विति में विलम्ब के दोष में न्यायपालिका को भी भागीदार बताया है। श्री जगन्नाथ कौशल ने इस विवाद से दूर रहकर कोर्ट फीस समाप्त कर व प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के गठन पर बल दिया है।

प्रशासनिक न्यायाधिकरणों में निहित प्रच्छन्न प्रतिबद्धता

11. बेरिस्टर गोबिन्द दास ने दिन-प्रति-दिन न्यायालयों का स्थान लेते न्यायाधिकरणों के प्रति रुंधे गले से क्षोभ प्रकट करते हुए कहा है कि "आज व्यवस्थापिका के पूर्णत: अधीनस्थ न कि न्यायपालिका के इन न्यायाधिकरणों में प्रतिनियुक्ति पर कार्यरत न्यायिक अधिकारियों की स्थिति इस बात की द्योतक है कि विशेषज्ञता को कोई आवश्यक मापदण्ड नही समझा जाता है। व्यक्ति विशेष की स्वतंत्रता, संपत्ति व सुरक्षा मात्र व्यवस्थापिका के विभागीय अधिकारियों की स्वेच्छाचारिता, निरंकुशता एवं दया पर ही आश्रित है।" गोबिंद दास ने न्यायपालिका की व्यवस्थापिका से प्रतिबद्धता के फलस्वरूप उत्पन्न विनाशकारी स्थिति के निम्नांकित प्रमुख कारण बतलाये हैं—"इसका मूलभूत कारण संदेह प्रतीत होता है,.न्यायपालिका की स्वतन्त्र निष्पक्षता में सदेह नहीं अपितु कार्यपालिका की योजनाओं में, इसके स्वतन्त्र निर्णय मे न्यायपालिका के रोड़ा बनकर अवरोधक बनने में संदेह है। इसीलिए न्यायाधिकरणो के दायरे में इसी आशानुकूल औद्योगिक विवाद जैसे मसले रखे गये हैं जिनमें व्यवस्थापिका का अन्तर्निहित मन्तव्य जुड़ा हुआ है। इनके विन्यास उद्देश्यों मे भी कार्यपालिका के वित्त, संपत्ति, कार्यगत सुविधा जैसे महत्वपूर्ण लाभ के मुद्दे प्रच्छन्न रूप से छाये रहते हैं। इनके निर्णयों की अपील के अधिकार अत्यधिक अल्प या व्यर्थ समान ही हैं। या तो अपील का अधिकार ही नही होता और अगर होता भी है तो वहा मात्र निराशा ही हाथ लगती है। व्यथित-हताश व निराश हृदय लिये प्रार्थी एक विभाग से दूसरे विभाग, एक अधिकारी से दूसरे अधिकारी तक चक्कर लगाकर कृपकाय शांत हो अपनी दारुण व्यथा वही समाप्त करता है जहा से शुरू की थी। कार्यपालिका या अदना-अधिकारी अपने अग्रज अधिकारियों की नीति का अनुसरण कर कार्यान्वित करने की अभिलाषा से परे नही होना चाहता है, क्योंकि दोनो एक ही थैली के चट्टे-बट्टे जो ठहरे।

12. "इस प्रकार की कार्यकारी इकाइयों, की नीतियां जिनमें कर-नियम निर्धारण इकाई भी एक है, मात्र लूट का घिनौना रूप प्रदर्शित करती हैं। मार्च माह में वित्त वर्ष की समाप्ति सन्निकट देख उच्चाधिकारी अधीनस्थ को अपने स्वर्णिम भविष्य, पदोन्नति एवं पदसुरक्षा हेतु निर्धारित लक्ष्य से अधिक कर एकत्रण की सलाह देगा और यह लक्ष्य-वेधन हर आगामी बजट वर्ष में विकरालतम् ही होगा। न्यायाधिकरण में तथ्यात्मक निर्णय-निर्धारण की शक्ति जिस अधिकारी में निहित होगी वह अपने विभाग की उस पायदान पर अपने लम्बे कार्यकाल को दृष्टिगत् रखकर, निर्विवाद बना रहकर, विभाग-विरुद्ध नीति का अनुसरण करने की राह नहीं अपनाना चाहेगा। न्यायाधिकरण के निर्णय विभागीय नीति द्वारा ही निर्धारित होते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये कि आज किसी संस्था की शक्ति इसी में निहित समझी जाती है कि वह कितनी कटु चोट पहुंचा सकती है या पहुंचाने की सामर्थ्य उसमें है। ऐसे न्यायाधिकरणों से ऊपर अपील का अधिकार यदि उच्च न्यायालय के पास सुरक्षित है तो वह मात्र कानून की मान्यता हेतु ही सुरक्षित है। वस्तुत: उसकी आवश्यकता या अभिलाषा ही नहीं बची रह पाती है। कार्यपालक इस स्थिति से पूर्णतया परिचित हैं, अत: वे मात्र तथ्यों पर ध्यान केन्द्रित कर दस्तावेजों एवं साक्षियों को मात्र औपचारिक अविश्वसनीयता की प्रवृत्ति रूपी हथियार से कुचलने को प्रेरित रहते हैं।"[1]

चिंतनशील जनमानस की आवश्यकता

13. "कार्यपालिका द्वारा निर्धारित न्याय भारतियों के जन-मानस को अर्द्धचेतन की स्थिति में पहुंचाने का एक अच्छा माध्यम कहा जा सकता है। अंग्रेजों की व्यथायें सीमित हो सकती हैं, यद्यपि वहां के चिंतनशील जनमानस के कारण उन्हें साधारण नहीं समझा जा सकता। लॉर्ड डेनिंग इस क्षुद्र समस्या को भी अत्यावश्यक की संज्ञा देने से नहीं चूके हैं–"यह कहा जाता है कि यदि जर्मनी में जैसे बीयर की कीमतें बढ़ादें या इंगलैण्ड में पेट्रोल पर कर-वृद्धि करदी जाए तो वहां की सरकारें बदली जा सकती हैं, किन्तु भारत जैसे राष्ट्र में जहां साधारण व्यक्ति के लिए सभी इच्छित संस्थाओं से लाभ प्राप्त करने के मार्ग दुर्गम व अलभ्य हैं, जहां अन्य संस्थाएं कार्यपालिका का प्रभावी प्रतिरोध नहीं कर सकती हों वहां कार्यपालिका की संप्रभु, निरंकुश एवं सार्वभौमिक बनी रहती हैं।"[2]

कार्यपालिका द्वारा नियंत्रित न्यायाधिपतिगण

14. गोविन्द दास एक असाधारण निराशावादी तथा काल्पनिक विश्लेषण में, जो कि मेरी दृष्टि में पूर्णत: सत्य नहीं है, इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि कार्य-

1. जस्टिस इन इण्डिया-गोविन्द दास, पृ० 109।
2. वही, पृ० 110।

पालिका यद्यपि न्यायपालिका को नियंत्रित नहीं करती है तथापि वह न्यायाधिपतियों को परोक्ष रूप से तथा परिस्थितिवश अनुबंधित करती है। उन्होंने अपनी राय निम्नांकित सटीक शब्दों में व्यक्त की है :—

"न्यायपालिका पर नियंत्रण का प्रभाव आज प्रतीत हो या न हो, किन्तु ऐसे प्रभाव की आशंका भारत जैसे किसी भी प्रजातंत्र के लिए अंधकारमयी स्थिति है, तथा एक शक्तिशाली सरकार, जो कि न्यायपालिका को पर्याप्त सम्मान से प्रतिष्ठित नही करती हो और जिसको चुनावों मे भारी शक्ति प्राप्त होती हो वह शक्ति का उपयोग या उपभोग करने के लिए लालायित हो सकती है, ऐसी शक्ति का जो कि निरंतर विस्तृत तथा बढ़ती हुई होती है।"

न्यायाधिपति कोक की स्वतंत्रता

15. यद्यपि सभी बातो को दृष्टिगत रखते हुए, मैंने औपनिवेशिक न्याय-दर्शन को ब्रिटिश शासन की वसीयत बताते हुए आरोपित किया है तथापि इसकी कुछ अच्छाइयो मे से एक इसकी स्वतंत्रता तथा पूर्वाग्रह से ग्रसित न होना भी है। इस दृष्टि से न्यायमूर्ति कोक का उदाहरण सबसे पहले आता है। जब राजा जेम्स् प्रथम ने एक वाद के सम्बध मे हस्तक्षेप कर उसे आगे स्थगित करना चाहा तब न्यायमूर्ति कोक ने कहा, 'राजाज्ञा की अनुपालना का परिणाम विधि-विरुद्ध, न्याय मे शिथिलता उत्पन्न करने वाला तथा न्यायाधीशो के कार्य के विरुद्ध होगा।" परिणामतः कोक को 1619 मे पदच्युत कर दिया गया। अन्य ग्यारह चाटुकारी न्यायाधीश राजाज्ञा से सहमत थे तथा अपने पद पर बने रहे—जो कि एक महान् संस्था के लिए शर्मनाक बात थी।

वित्तीय गारंटी की कमी : स्वतन्त्रता पर आघात

16. गोविन्द दास की राय मे स्वतंत्रता को खतरा पहुंचाया जा सकता है यह न केवल जेम्स् प्रथम के मूर्खतापूर्ण तरीके से अपितु अधिक होशियारी एवं तीक्ष्णता से कम वेतन से उत्पन्न वित्तीय अस्थिरता वस्तुतः हीनता का एक कारण हुआ करती है जो कि दासता की भी जननी है। कर्त्तव्य की महत्ता को देखते हुए वेतन भी उसके समकक्ष होना चाहिए। वित्तीय संकटापन्न स्थिति मे इंगलैण्ड ने न्यायाधीशो के वेतन मे वृद्धि कर उनका वेतन 15,000/- रुपये प्रति मास कर दिया तथा इस प्रस्ताव को सर विंस्टन चर्चिल ने पूर्ण ओजस्विता से अपना समर्थन दिया। भारत में उच्च-न्यायालय के न्यायाधीशो का वेतन लगभग 3,500/– रुपये प्रतिमास है तथा सेवामुक्ति, जो कि अवश्यम्भावी है, के पश्चात् उन्हें लगभग 500/– रुपये मासिक पेन्शन का प्रावधान है, इतने कम रुपयो में सम्मान के साथ जीवन-यापन करना कठिन है। भारत जैसे निर्धन देश में यह राशि एक दृष्टि से न्यायोचित् प्रतीत हो सकती है किंतु न्यायाधीशों द्वारा जो जिम्मेदारियां वहन की जाती हैं तथा उनसे जिस प्रकार की सेवाओं की अपेक्षा की जाती हैं वे किसी भी स्थिति में आम व्यक्ति की

1. अब सेवा नियमो मे संशोधन हो गया है। और मासिक पेन्शन में बढ़ोतरी करदी गई है।

दृष्टि मे तुच्छ नहीं है क्योंकि न्यायाधिपतिगणों को जनता की स्वतन्त्रता, सम्पत्ति तथा सुरक्षा के प्रभारी माना जाता है । स्वच्छता तथा निर्भीकता का मूल्य यदि न्यायाधीशों को कुछ सुविधा प्रदान कर के भी चुकाना पड़े तो भी समाज को चाहिए कि वह इस पर नाक-भौं न सिकोड़े । वस्तुतः रक्षक-प्रभारियों को इस स्थिति में रखा जाना चाहिए जहां किसी भी प्रकार के लोभ-लालच की लिप्सा (ऐषणा) न हो । यह सदैव याद रखना चाहिए कि यद्यपि न्यायाधीशगण ईश्वर स्वरूप हैं, किन्तु वे मनुष्य भी हैं ।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि इंगलैण्ड के अतिरिक्त अमेरीका के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति जीवन-पर्यन्त होती है तथा वे स्वेच्छा से ही सेवा-मुक्त हो सकते हैं ।

स्थानान्तरण की तलवार-स्वतंत्रता को आघात

17. कार्यपालिका द्वारा न्यायाधीशों को नियंत्रित करने का दूसरा आधार उनकी पदोन्नति के अवसरों का निर्धारण करना है । मुंसिफ से लेकर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों तक पदोन्नति की यही स्थिति है किन्तु सुचारु व स्पष्ट नियमो तथा उनकी पदोन्नति के विषय मे उनकी कड़ाई से वस्तुपरक अनुपालना के अभाव में यह आशंका बनी रहती है कि महत्त्वाकांक्षी न्यायिक अधिकारी अपनी स्वतंत्रता को गिरवी रख दें तथा कार्यपालिका की मात्र कठपुतली बन जाएं । पदोन्नति के लिए राज्यो की राजधानियों तथा दिल्ली मे बनती गुटबंदियां खतरनाक आयाम प्राप्त करती जा रही हैं तथा केवल नियमो की कड़ी अनुपालना ही इस प्रवृत्ति को रोक सकती है, इससे पहले कि यह कोई षडयंत्रकारी कुख्याति प्राप्त करे जो कि स्थानान्तरण तथा पदोन्नति की नवीन नीति के पश्चात् अवश्यम्भावी हो गई है । यद्यपि नवीन नीति का आधार व उद्देश्य अत्यधिक पुनीत है जैसे कि संकीर्णता व प्रांतीयता को समाप्त करना, किन्तु इस नीति का दुरुपयोग कार्यपालिका की तुलना में महत्त्वाकांक्षी न्यायिक अधिकारी द्वारा अधिक किया जा सकता है ।

न्यायाधीशों की दिल्ली दौड़

18. हाल ही में 23 जुलाई, 1983 को जब मैं श्री सुरेन्द्र कौशल के निमंत्रण पर उपग्रह दूर-दर्शन पर "सामाजिक न्याय" विषय के लिए दिल्ली गया तो मैं सर्वोच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीशो से मात्र सदाचारिता तथा प्रोटोकोल के नाते आदर प्रकट करने के लिए मिला । सामान्यतः उन्होंने उच्च-न्यायालयो के न्यायाधीशों की महत्त्वाकाक्षाओ से ग्रसित दिल्ली-यात्राओं की अचानक बढ़ोतरी पर विक्षोभ प्रकट किया ।

शक्ति के अल्शेशियन

19. ऐसे त्रासद, दुःखान्त एवं हतोत्साहित मूल्यों के अवमूल्यन के समय में कार्यपालिका या राजनीतिज्ञों के बजाय क्या हमें स्वयं की अति महत्त्वाकांक्षा को दोषी नहीं ठहराया जाना चाहिए क्योंकि कोई भी राजनेता हमें दिल्ली दरबार में परेड करने, संसद के बरामदों में घूमने-फिरने, तथा मन्त्रियों के समक्ष कतारबद्ध होने के लिए निमंत्रित नहीं करता और यदि हम "आत्म हत्या" ही करते हैं तो हमें कौन रोक सकता है, विशेषतः तब जब कोई व्यक्ति "मानव-वध" के आरोप से बचा लिया जाता है तथा न्यायपालिका को वशीभूत करनेवाला ऑपरेशन बिना किसी खून-खराबे के कर लिया जाता है। अत्यधिक दुर्भाग्य तो यह है कि इन शर्मनाक तरीको से हम संविधान के "सजग प्रहरी" नहीं रह पाते हैं। यदि हमारे निर्णयों में महत्त्वाकांक्षा परिलक्षित होने लगेगी तो हम "शक्ति के अल्शेशियन" मात्र बनकर रह जाएंगे और बख्शी का आरोप "शक्ति की वैधता की प्राप्ति" सत्य सिद्ध हो जायेगा।

20 श्री कृष्णा अय्यर[1], ने कहा कि विधि सेना, राजनैतिक झंडा लगाकर चलती है वह इसी के ठीक समानान्तर न्यायाधीश डूले ने कहा कि अमेरिका के न्यायालय चुनावो के नतीजों के अनुकूल चलते हैं। प्रोफेसर उपेन्द्र बख्शी का भी यही मत है। परन्तु मोहम्मद घोष[2] की मान्यता है कि भारतीय न्यायालय, समाजवाद को नहीं अपना सके हैं व हमारी न्यायिक मान्यतायें प्राग[3], वामनराव[4], नन्दलाल[5] व मिनर्वा मिल्स[6] की धुरी पर चक्कर काट रही हैं। ललित मसीन ने भी यही मत व्यक्त किया है।

21. उपरोक्त विचार अर्द्ध सत्य हैं या पूर्ण सत्य, यह मत में व्यक्त नहीं कर सकता। न्यायाधीशों को संविधान की प्रतिबद्धता तो रखनी चाहिये, परन्तु अपनी प्रेरणा "युग की बोलती आवश्यकताओं" से लेनी चाहिये जिसे न्यायाधीश होम्स ने

1. नागपुर विश्वविद्यालय, 1976, भारतीय कानून चुनौतियों पर कृष्णा अय्यर का भाषण।
2. कोसियस कौर्प्स ऑफ स्टेट्स को-बार कौंसिल जरनल : वोल्यूम 9 (1) पृ.(1)।
3. प्राग आइस व ऑयल मिल्स बनाम भारत संघ : ए० आई० आर० 1978, एस० सी० 1296।
4. वामनराव बनाम महाराष्ट्र राज्य : 1980 (3) एस० सी० सी० 597।
5. नंदलाल बनाम हरियाणा राज्य : ए०आई०आर० 1980, एस०सी० 2092।
6. मिनर्वा मिल्स लि. बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया, : ए० आई० आर० 1780, एस० सी० 1789।

"फैल्ट नेसेसिटीज ऑफ टाइम्स्" की सज्ञा दी है। न्याय क्षेत्र मे चाहे अभिभाषक हो या न्यायाधीश, हम सबको यह नही भूलना चाहिये कि "न्याय व्यवस्था व कानून" समाज के करोड़ों दलित, त्रसित, उत्पीड़ित, अर्द्ध-नग्न नर-कंकालों के आंसू पोछने के लिये है व उसी भावना से न्याय करना चाहिये। हम यह भ्रम न रखें कि हम "देवता" या समाज व संविधान से ऊपर "थर्ड चेम्बर" हैं, अन्यथा भारत में भी "प्रतिबद्ध न्यायपालिका" के सिद्धांत को; हम समाज की मुख्य धारा से दूर रहकर स्वप्न-लोक में न्याय करने के कारण; निमंत्रण देंगे।

22. सज्जन सिंह[1] व शंकरी प्रसाद[2] के विपरीत चंपाकम[3], कामेश्वर सिंह[4], गोलखनाथ,[5] आर. सी. कपूर,[6] महाराव सिंधिया,[7] वजरावेल[8] मैटल कॉरपोरेशन,[9] वेला वेनर्जी,[10] शोलापुर मिल्स,[11] प्राग आइस मिल्स के निर्णयों ने निश्चित ही समाज में यह भावना पैदा की कि न्यायाधीश "सामाजिक न्याय" की प्रगति के बढ़ते चरणों में बेडियां डालते हैं—इस धारणा पर हमें चिंतन, मंथन व आत्म-निरीक्षण अवश्य करना चाहिये, ताकि "सामाजिक न्याय" के प्रति हम यह विश्वास पैदा कर सकें कि हम जागरूक हैं, अन्धे नही।

अय्यर द्वारा न्यायिक क्रान्ति की वकालत

23. महर्षि कृष्णा अय्यर न्यायिक प्रक्रिया मे संपूर्ण क्रान्ति चाहते हैं, उन्होंने कहा है :—

"क्या न्यायालय डाइनासोर के रास्ते पर चल रहे हैं, यह प्रश्न अमरीकियों से वहाँ की इन संस्थाओं के बारे में पूछिए और यह निष्कर्ष निकाल लीजिए कि उनके जीवित रहने के लिए उनका सम्पूर्ण आधुनिकीकरण आवश्यक है। हम तो पूछते तक नही हैं। ब्रितानियों ने अपनी विधिक संस्थाओं मे अविश्वास की शिकायत छोड़ दी है और वे अब आमूलचूल

1. सज्जन सिंह बनाम राजस्थान सरकार, : ए.आई.आर. 1965, एस.सी 845।
2. शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ : ए. आई. आर. 1951, एस. सी. 458।
3. मद्रास सरकार बनाम चम्पाकम : ए. आई. आर 1951, एस. सी. 226।
4. कामेश्वर सिंह बनाम बिहार सरकार : ए. आई. आर. 1950, पटना 392।
5. गोलखनाथ बनाम पंजाब सरकार : ए. आई. आर. 1967. एस. सी 1643।
6. आर. सी. कोपर बनाम भारत संघ : ए.आई.आर. 1970, एस.सी. 564।
7. महाराव सिंधिया बनाम भारत संघ : ए.आई.आर. 1971, एस सी 530।
8. वजरावेलू बनाम स्पेशल डिप्टी कलक्टर : ए.आई.आर. 1965, एस.सी. 1017।
9. भारत संघ बनाम मैटल कॉरपोरेशन : ए.आई.आर. 1967, एस.सी 637।
10. बंगाल सरकार बनाम वेला बनर्जी : ए.आई.आर. 1954, एस.सी. 170।
11. द्वारकादास बनाम शोलापुर मिल्स् : ए.आई.आर. 1954, एस.सी. 119।

समाधान चाहते हैं। भारतीय विधिवेत्ताओं, जैसे डॉ० पाठक और एम. सी. सीतलवाड़ ने, और बहुत समय पूर्व (1957) एक अखिल भारतीय विधि मंत्री सम्मेलन ने हमारी इस पद्धति के घटते हुए प्राप्य पर प्रश्न किया है। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश अमरीकी बार एसोसियेशन की न्यायपालिका की स्थिति पर प्रतिवर्ष संबोधित करते हैं जबकि आंग्ल भाषी विधिवेत्ता विधिक सुधार पर व्याख्यान कर राष्ट्र को अपने प्रज्ञान और अनुभव का लाभ पहुंचाते हैं। उदहारणार्थ लॉर्ड डेनिंग ने रिहल व्याख्यान में, न्यायाधीश मैक ग्रॉवर्न ने अपने जी. बी. शारवैल व्याख्यान में और न्यायमूर्ति कारडोज़ो ने न्यायिक प्रक्रिया की प्रकृति पर अपने स्टोर्स व्याख्यान में ऐसा किया। सोवियत न्यायाधीश क्रियाशील हैं जो जनता द्वारा किए जाने वाले विचार-विमर्श में भाग लेते हैं और जन-संचार के साधनों पर लोगों से बात करते हैं, यहां तक कि अपनी गरिमा में कमी लाये बिना अपने क्षेत्र और राष्ट्र (प्रदेश) को सूचित करते रहते हैं। परन्तु भारत में न्यायपालिका स्वयं को आकाश-कुसुम बनाये रखती है और स्वयं को समाज से अलग रखते हुए पारम्परिक न्यायिक पृथक्त्ववाद में शरण लेती है। यद्यपि विधि और विधिक प्रक्रिया के क्षेत्र में, जिसमें, उन्हें व्यावसायिक प्रवीणता प्राप्त है, राज्य या विधि आयोग द्वारा उनसे उनकी मूल्यवान राय मांगी जाती है। भारतीय न्यायाधीश न्यायिक क्षेत्र में प्रबल सहभागी हो सकते हैं। मौन रहना लोकतांत्रिक वैधता को असफल करना है और इस संस्था को सापेक्ष महत्त्वहीनता में ढकेलना है।

एक महान् संग्राम

24. महर्षि कृष्णा अय्यर की सामाजिक न्याय की अवधारणा ने बहुत से न्यायाधीशों, बार के सदस्यों और विधिवेत्ताओं को प्रेरित किया है। परन्तु विधिवेत्ताओं, बार और न्यायाधीशों के निजी समीकरणों, महत्त्वाकांक्षाओं, पूर्वधारणाओं, सुसुप्त प्रवृत्तियों और सामाजिक दर्शन ने पददलितों और गरीबों के प्रति अय्यर की न्यायिक सवद्धता को आग में झोंक दिया है। अय्यर के न्यायिक दर्शन को जिसे शीर्ष न्यायालय में पूर्ण रूप से भगवती, देसाई, ठक्कर, रेड्डी आदि द्वारा प्रयुक्त किया जाता है, की सर्वप्रथम उसके सहभागियों द्वारा ही अपने निर्णयों में आलोचना द्वारा "धुआँ, लपटों और अग्नि" में डाल दिया गया है। अब, तुलजापुरकर के पुनः भाषण ने उपर्युक्त पृष्ठभूमि में टीका-टिप्पणी के प्रवाह का द्वार खोल दिया है। सोदाहरण स्पष्ट करने के लिए 'इंडिया टुडे' के कालमनवीस चैतन्य कालबाग के "न्यायपालिका एक महान संग्राम" शीर्षक के अन्तर्गत प्रथम कोटि के आक्रमण पर

ध्यान दिया जा सकता है। पदासीन न्यायाधीश के रूप मे औचित्य इसी में है कि मैं इस पर कोई टीकाटिप्पणी न करू'। निम्नलिखित मुख्य उद्धरण अपनी बात स्वयं ही स्पष्ट करते हैं:—

"कटुता : पूरे 27 लम्बे फुलस्केप पृष्ठों का तुलजापुरकर का भाषण आवेश और वाकपटुता का सम्मिश्रण है और परस्पर विनाशकारी युद्ध की एक खुली घोषणा है। तुलजापुरकर का मुख्य निशाना क्रियाशील न्याय प्रदान करने के नवीन और ओजस्वी स्कूल के विवादास्पद मुख्य आचार्य न्यायाधीश प्रफुल्लचन्द्र नटवरलाल भगवती थे। गत कुछ वर्षों से,[1] भगवती ने एक ऐसे आन्दोलन की शुरुआत की है जिसने लोकहित मुकदमेबाजी का एक विशाल क्षेत्र खोल दिया है, ऐसे मुकदमों मे अर्जीदार के सुने जाने के अधिकार (लोकस स्टेण्डी) की परिभाषा को नाटकीय रूप से विस्तृत कर दिया है, निर्धनों को विधिक सहायता की अवधारणा को एक नया अर्थ प्रदान किया है और उच्चतम न्यायालय को भारी जेबों वाले व्यक्तियो को विधिक वात्सलता के क्षेत्र से बदलकर भारतीय अधिकारविहीन निर्धनों का शुभचिन्तक बना दिया है। दूसरी तरफ तुलजापुरकर न्यायालय के सैद्धान्तिक धारा के दूसरे किनारे पर हैं। वे एक रूढ़ीवादी न्यायाधीश हैं जो न्यायालय द्वारा शिष्टाचार और सदाचार के पालन और उसकी स्वतंत्रता को कार्यपालिका के अतिक्रमण से परिलक्षित रखने की आवश्यकता में उत्कट विश्वास करते हैं।"

'मेरे विद्वान भाइयों' के परिहासजनक कार्य

"पुणे मे अपने भाषण में इस प्रशिष्ट भाषा की तुलजापुरकर ने आलोचना की और व्यंग्यात्मक रूप में पूर्व महाधिवक्ता सी. के. दफ्तरी के इस कथन को उद्धृत किया है"..................."जब न्यायाधीश अपने साथियों को "मेरे विद्वान भाई" से संबोधित करते हैं तो उनका तात्पर्य कुछ भिन्न होता है।" उन्होंने दसवें विधि आयोग, जिसके न्यायमूर्ति के. के. मैथ्यू अध्यक्ष थे, के द्वारा प्रसारित प्रश्नावली पर यह कहते हुए कड़ी चोट की है कि "यह प्रश्न कि क्या उच्चतम न्यायालय को संवैधानिक न्यायालय से प्रतिस्थापित किया जाये ? और क्या उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की कोई राजनैतिक पृष्ठभूमि होनी चाहिए ? न्यायिक स्वतंत्रता के स्पष्ट विरोधी हैं।"

---

1. ज्यूडिशरी—ए बैटल सुप्रीम, द्वारा चैतन्य कालबाग : इण्डिया टुडे, दिसम्बर, 15, 1982 पृ. 118

तथापि अपने भाषण के मुख्य भाग में तुलजापुरकर ने भगवती की, उनका एक भी बार नाम लिए बगैर, धज्जियां उड़ा कर रख दी हैं।

तुलजापुरकर ने पृथक से भी देसाई पर, बगैर उनका नाम लिये, आक्षेप किये हैं। "भगवती द्वारा पोषित एक व्यक्ति।" देसाई ने अपने एक हाल ही के निर्णय में भारतीय न्यायिक पद्धति की आलोचना यह कहते हुए की है कि "यह इस देश की प्रकृति से सर्वथा असंबद्ध है गैर कानूनी रूप से आयातित पद्धति।" अपने श्रोताओं पर गरजते हुए तुलजापुरकर ने कहा कि "मैं यह जानना चाहता हूं कि यदि उनके ये विचार ईमानदारी और यथार्थता से पूर्ण हैं तो वे इस पद्धति को छोड क्यों नहीं देते।"

मुखौती द्वारा लोक-हित मुकदमों का समर्थन

25. मुखौती, जो स्वयं एक अग्रणी सिविल अधिकार क्रियावादी हैं, यह अनुभव करते हैं कि लोकहित मुकदमें काफी अच्छा कार्य कर रहे हैं। वे कहते हैं "वर्तमान समय मे जीवित रहना, यहां तक कि स्वयं का अस्तित्व बनाये रखना भी अत्यन्त कठिन है वस्तुत: प्रक्रिया न्यायालीय कार्यविधि की अनुचरी है न कि इसके विपरीत।"

न्यायाधीश द्वारा कार्यपालिका में भी अपनी दखल रखने की आकांक्षा

26. वरिष्ठ अधिवक्ता आर० के० गर्ग कहते हैं कि न्यायाधीशो के स्थानान्तरण के मामले में न्यायाधीशों के संघर्ष ने इस आशंका को बलवती कर दिया है कि उच्चतम न्यायालय आत्महत्या की प्रवत्ति की जकड़ मे है और उसके बाद जो कुछ घटित हुआ है इन आशंकाओं को न्यायोचित ठहराता है। न्यायधीशो में कार्यपालिका के निर्णयों मे अपनी बात का अधिक से अधिक हिस्सा होने के लिए होड है। उच्चतम न्यायालय के न्यायधीशों को, 70 करोड़ व्यक्तियों द्वारा उनमें व्यक्त आस्था का हकदार होने की बात सिद्ध करनी चाहिए।"[1]

भगवती का संयम

27. जब तुलजापुरकर के आरोपो का उत्तर देने के लिए भगवती से कहा गया तो उन्होंने उत्तर दिया "मैं उसी प्रकार की अभद्रता करने के लिए उत्तेजित नही होऊंगा क्योंकि मैं दृढ़तापूर्वक यह विश्वास करता हूं कि न्यायाधीशो के मध्य एक-दूसरे की बखिया उधेड़ने का यह विवाद न्यायिक संस्था की प्रतिष्ठा और विश्वसनीयता को प्रभावित करता है। संस्था को उन व्यक्तियों से ऊपर रखा जाना चाहिए, जो उसमें समाविष्ट हैं।"

1. इण्डिया टुडे, दिसम्बर 15, 1982 पृ० 119

अय्यर से प्रेरणा

28. भगवती यह स्वीकार करते हैं कि "उच्चतम न्यायालय को लोकायुक्त में परिवर्तित करने के उत्साह में कभी वे न्यायिक स्वतंत्रता की सीमा को दूर तक ले गये हैं। अपने अधिकांश कार्य में उनके प्रेरक न्यायमूर्ति वी० आर० कृष्णा अय्यर हैं, जो नौ वर्ष पूर्व उसी दिन उच्चतम न्यायालय में नियुक्त हुए थे पर 1980 में अवकाश प्राप्त कर चुके हैं।"

कोई कार्यकारी भूमिका नहीं–देसाई

29. वे इस बात को इंगित करते हुए कि "भागलपुर आंख-फोड़ मामले में उन्होंने अन्धे किये गये विचाराधीन कैदियों के वकील की इस दलील को ठुकरा दिया था कि सी० बी० आई० की रिपोर्ट को प्रकाशित किया जाये और उच्चतम न्यायालय को इस बात का निर्णय करना चाहिए कि क्या पुलिस आंखे फोड़ने के लिए जिम्मेदार है, जिससे कि मुआवजे की मांग की जा सके।" वे कहते हैं कि "मेरी तो केवल इतनी इच्छा है कि सरकार भागलपुर अभियोजन के निपटारे मे सोती न रहे। न ही हैदराबाद बहुएं जलाने के मामले में मैंने दोष-सिद्ध करने का प्रयास किया, किन्तु पुलिस को तत्परता से अनुसंधान करने के लिए समुत्तेजित किया।"

लोकहित मुकदमे आवश्यक–अय्यर

30. न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर को भी यह समझ मे नही आता कि किस बात के लिए इतनी खलबली मची हुई है। वे कहते हैं "मैं स्तब्ध हू कि अनुच्छेद 39(अ) के बावजूद किसी न्यायाधीश को लोक-हित मुकदमों और लोकोन्मुखी प्रक्रिया के सरलीकरण का विरोध करना चाहिए। विशेषकर वहां जहां न्याय समाज के कमजोर वर्ग को प्रभावित करता है वहां कमजोर वर्ग का न्याय तक पहुचना मानव अधिकारों में सर्वप्रथम है। अतः अतिशय नियमनिष्ठता, औपचारिकता और बहुत ही सूक्ष्म तकनीकियां, जो निर्धनो, अशिक्षितों और पिछड़े लोगो की सम्मुखीन न्याय तक पहुंच में स्वयं ही रोक लगाती है, में ढील दी जानी चाहिए, लोक न्याय और न्यायालय के बीच में कठोर प्रक्रिया की दीवार नहीं होनी चाहिए।

न्यायाधीशों के खेमे—उच्चतम न्यायालय

31. बैंच मे विभाजन इतना तीव्र है कि कतिपय न्यायाधीश पूर्व अन्य न्यायाधीशों के विनिश्चयों पर ध्यान तक नहीं देते। न्यायाधीशो में खेमे स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं, देसाई, ओ. चनप्पा रेड्डी और ई. एस. वेंकटरमैय्या, भगवती और बहरुलइस्लाम का दृढ़ता पूर्वक समर्थन करते हैं और मिश्रा, बालकृष्ण इरादी और ए० एन० सेन० भी उनकी विचारधारावाले खेमे में हैं। दूसरी तरफ तुलजापुरकर को ए० पी० सेन०, मुर्तजा-फजल अली, और कुछ सीमा तक मुख्य

न्यायमूर्ति चन्द्रचूड़ का समर्थन प्राप्त है और वरदराजन् भी कभी-कभी उनकी तरफ आ जाते हैं।[1]

"पाठक" मध्यमार्गी

32. इस उग्र विभाजन में एक मात्र न्यायाधीश, जिन्होंने बराबर बचनबद्ध मध्यमार्गी होने का उदाहरण स्थापित किया है, वे आर.एस.पाठक हैं। तथापि इन विचारों ने बैन्च स्थिरीकरण को जन्म दिया है, जिसमें बहुधा भगवती, पाठक और ए.एन.सेन के साथ और तुलजापुरकर, ए.पी.सेन और फजल अली के साथ बैठते हैं। कुछ वकीलों के बारे में यह माना जाता है कि वे अपने मामले की सुनवाई के लिए उन न्यायाधीशों के पास ले जाते हैं जिन्हें वे सहानुभूतिपूर्ण मानते हैं और इस प्रकार न्यायालयों में भी पूर्व सूचनीयता का तत्व प्रवेश कर गया है।[1]

न्यायाधीशों की कलह सुस्पष्ट–उच्चतम न्यायालय

33. परन्तु अब संघर्ष-रेखा स्पष्ट हो गयी है विधि व्यवसाय को यह भय है कि भविष्य में उच्चतम न्यायालय के कलहग्रस्त न्यायाधीशों में इस प्रकार के विद्वेषपूर्ण और खुली झड़पें होंगी। इस प्रकार का विभाजन ऐसे समय बन रहा है जब संबद्ध प्रत्येक नागरिक को एक सशक्त और संगठित उच्चतम न्यायालय की आवश्यकता है और जब एक तरफ कार्यपालिका और विधायिका में और दूसरी तरफ न्यायपालिका से कशमकश चरम सीमा पर पहुंच गयी है।[1]

बख्शी का प्रतिवाद और कागजी के आक्रमण

34. तुलजापुरकर के पुणे भाषण के संबंध में चला एक अप्रिय वाद-विवाद और उग्र हो गया जब प्रो. बख्शी[2] ने भगवती के लोकहित के मुकदमेबाजी को 'सामाजिक कार्रवाई की मुकदमेबाजी' की संज्ञा देकर इसे एक सुरक्षात्मक कवच प्रदान करते हुए, तुलजापुरकर के विचारों पर आक्रमण किया। प्रो कागजी[3] ने प्रो. बख्शी को न्यायमूर्ति भगवती और न्यायमूर्ति देसाई के प्रति उत्साहपूर्ण प्रतिरक्षक की संज्ञा दी है। कागजी के अनुसार,[4] "बौद्धिक स्वतन्त्रता संबंधी कारणों और न्यायाधीशों के संबंध में उचित टीका-टिप्पणी मान्य व्यापक गुंजाइश को देखते हुए प्रो. बख्शी द्वारा अपनाये गये तरीके, न्यायाधीशों और उच्चतर न्यायपालिका के प्रति उच्च सम्मान प्रदान करने की परम्परा को बढ़ाने में सहायक नहीं होंगे।"

1. जुडिशियरी–"ए बैटल सुप्रीम", इण्डिया टुडे, दिसम्बर 15, 1983, पृ. 120
2. प्रो. उपेन्द्र बख्शी, कुलपति, दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय, सूरत।
3. प्रो. मगलचन्द जैन कागजी, विधि विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
4. 19, जयपुर लॉ जरनल, (1979), पृ. 26।

प्रो. बख्शी के लेख[1] से कागजी की टिप्पणी को; "न्यायिक आतंक :" श्रीमान् न्यायमूर्ति तुलजापुरकर के पुणे 'भाषण के संबध में कुछ विचार" शीर्षक के अधीन उद्धृत कर उस पर बिना किसी अतिरिक्त टिप्पणी किये विचार किया जा सकता है

"न्यायमूर्ति तुलजापुरकर के विरुद्ध उनके शब्द यदि पूर्णत. आपत्तिजनक न भी हो, तथापि निश्चित रूप से उनका आक्रामक रुख न्यायाधीश के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से पक्षपातपूर्ण है। उदाहरणार्थ उनके द्वारा श्रीमान न्यायमूर्ति भगवती द्वारा प्रधानमंत्री को 1980 मे लिखित पत्र का बचाव और न्यायमूर्ति तुलजापुरकर के विरुद्ध तथाकथित उच्च न्यायपालिका की छवि को धूमिल करने के एकल कार्य का स्वार्थसाधन बनाने के विरुद्ध आरोप और लाख इन्कार करने पर भी पत्र का न्यायमूर्ति भगवती को तंग करने एवं नीचा दिखाने के लिए उपयोग करना, वांछनीय बौद्धिक बोध के अभाव का द्योतक है। भगवती के देर से दिये जाने वाले निर्णयों की प्रतिरक्षा के रूप मे उनकी दी गयी टिप्पणियां नागरिकों की शीघ्र न्याय की मांग को निरुत्साहित करती हैं। न्यायाधीश जो महीनों तक निर्णय नही देते, जैसा कि मिनर्वा मिल्स[2] के मामले मे न्यायमूर्ति भगवती के निर्णय मे हुआ–और विद्वान प्रोफेसर द्वारा निर्दिष्ट बचनसिंह के मामले[3] में भी, उच्चतम न्यायालय ही नही अन्य न्यायालय भी बकाया के बोझ से दबे हुए हैं, और इससे बकाया की समाप्ति के कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता नही मिलेगी। प्रो. बख्शी जो अमरीकी उच्चारण की अंग्रेजी पर अच्छा आधिपत्य रखते हैं और जो अपने झुकाव के अनुसार किसी भी व्यक्ति के समर्थन में या उसके विरुद्ध बोलने में अत्यन्त सक्षम हैं और साथ ही अय्यर की तरह की अंग्रेजी लिखने में भी श्रेष्ठ हैं, उन लोगों की आलोचना से नही बच सकते जो यह कहते हैं कि कानून को ही हम खो देंगे यदि उसे किसी विदेशी भाषा के दबाव से बोझिल कर दें। उच्चतम न्यायालय के कतिपय न्यायमूर्ति जैसे पी एन. भगवती, विधि न योग और न्यायिक क्रियावाद के काफी चर्चित विचारधारा से प्रभावित हो सकते है। ऐसा हो सकता है कि उन्होने प्रभावपूर्ण निर्णय दिये हो पर कहना यह चाहिए कि प्रभावपूर्ण असामान्य अंग्रेजी से प्रभावपूर्ण न्यायिक निर्णय उत्पन्न नही होते। बख्शी की यह शिकायत सही हो सकती है, कि तुलजापुरकर ने अपनी अप्रिय टिप्पणियों द्वारा भगवती को अकेला कर दिया है, पर ऐसा लगता है कि वे इस तथ्य को नजरअन्दाज कर गये हैं कि भगवती भी अपने साथी न्यायमूर्तियों

---

1. न्यायिक आतंकवाद : श्रीमान [illegible] पर कुछ विचार—प्रो उपेन्द्र ब[illegible] . 1।
2. मिनर्वा मिल्स लि. एवं [illegible] 3, एस. सी. सी. पृ. 625।
3. बचनसिंह बनाम पंजाब राज्य (1982), स्केल 713।

के विरुद्ध इसी प्रकार के आरोप लगाने के दोषी हैं। मिनर्वा मिल्स के मामले में उनके कुछ न्यायमूर्तियों के विरुद्ध अकथनीय टिप्पणियाँ उन न्यायाधीशों के न्यायिक आधार के औपचारिक अवमूल्यन के उदाहरण हैं जबकि पुणे में न्यायालय के बाहर न्यायमूर्ति तुलजापुरकर द्वारा न्यायमूर्ति भगवती का विरोध मात्र अनौपचारिक है। प्रो. बख्शी की यह टिप्पणी कि तुलजापुरकर के पुणे भाषण में प्रयुक्त शब्दों में कोई अन्यथा उद्देश्य है, उचित नहीं हो सकता। यह व्यक्तिगत आरोप, न्यायाधीश के कार्य पर उचित आलोचना के लिए स्वीकृत शब्दों के चयन की सीमा का अतिक्रमण है।"

न्यायाधीशों के आन्तरिक कलह से दूर रहें

35. प्रो. कागजी ने बख्शी के विधि शास्त्र पर आक्रमण करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है और वे कहते हैं:—

"परन्तु उनका (बख्शी का) न्यायाधीशों की घरेलू आन्तरिक कलह में उनके द्वारा स्वयं धारित की हुई नायक की भूमिका पूर्णतः अनावश्यक और अनाधिकार चेष्टा है। वास्तव में यदि ऐसा प्रयास उद्देश्यपूर्ण तरीके से, एक-दूसरे से संघर्षरत न्यायमूर्तियों में से मात्र एक के बचाव के लिए ही नहीं किया जाये तो एक व्यक्ति के विरुद्ध अप्रिय टिप्पणी करने की अपेक्षा, आवेग रहित समीक्षात्मक बौद्धिक परीक्षा की आवश्यकता है। वास्तव में, सामान्य जन की न्याय की आंकाक्षा के लिए इस मांग पर टिप्पणी की आवश्यकता है।"

आन्तरिक कलह के प्रति बख्शी की चिन्ता

36. प्रो. बख्शी ने अपनी निम्नलिखित टिप्पणी में दो शीर्ष न्यायाधीशों के मध्य इस विवाद पर दुःख और शोक प्रकट किया है—

"1973 में पद-अतिक्रमण के आघात के बाद से ही भारतीय उच्चतम न्यायालय में विखण्डन प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है।[1] आपातकाल के तुरन्त बाद की उथल-पुथल में बार के नेताओं द्वारा कुछ न्यायमूर्तियों का व्यवस्थित अवैधीकरण[2] और आपातकाल (राय और बेग के मुख्य न्यायाधीशत्वकाल में न्यायालय अवनतिपूर्ण तरीके से व्यक्तियों का सम्मेलन बन कर रह गया और उसने अपनी निगमित संस्थागत प्रकृति को खो दिया है) में "अडिग" रहने की विशिष्ट कसौटी ने इस प्रवृत्ति की ओर अधिक बल दिया है"। 1980 में श्रीमती इन्दिरा गांधी की

1. के. के. मैथ्यू ऑन डेमोक्रेसी, इक्वेलिटी एण्ड फ्रीडम (1978) सं. प्रो. उपेन्द्र बख्शी।
2. द इण्डियन सुप्रीम कोर्ट एण्ड पॉलिटिक्स—प्रो. उपेन्द्र बख्शी, (1980) 188-198

वापिसी ने न्यायमूर्तियों के लिए और अधिक आघात पहुंचाया जो आपातकाल निर्णयों के लोक-शुद्धि मे बहुत आगे तक पहुंच गये थे। और न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती के प्रधानमंत्री को लिखे अलोकप्रिय पत्र से एक नवीन न्यायालय—इतर वैधीकरण का तरीका आरम्भ हुआ है। इस स्थिति के उत्पन्न होने से परिणामो का एक नया सिलसिला चल निकला है जिसमे से प्रमुख और सर्वाधिक प्रचारित और लगातार बढ़ता रहा, मुख्य न्यायाधीश चन्द्रचूड़ और न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती के बीच का मतभेद है। जो "प्रासाद राजनीति" को भलीभांति जानते हैं, उनके अनुसार इस विवाद का प्रमुख राजनीतिक लाभ प्राप्त करने वाली : इन्दिरा गांधी ही इस विवाद की निर्णायक भी रही हैं।

बख्शी द्वारा न्यायिक गृह-युद्ध का प्रतिकार

37. अधिवक्ता बख्शी ने माननीय वी.डी. तुलजापुरकर के पूना-अभिभाषणों को माननीय पी. एन. भगवती के विरुद्ध महाभियोग के समान स्पष्ट निन्दा की संज्ञा दी है। विरोधाभासी वक्तव्यों पर कुठाराघात कर तर्क-वितर्क, कानून एव तथ्यात्मक जानकारी प्रस्तुत कर उन्हें ठुकराया है।

तुलजापुरकर का अगला नया निशाना–देसाई

38. प्रोफेसर बख्शी ने पुनः माननीय तुलजापुरकर के आत्मिकशुद्धि आदोलन का नया शिकार माननीय देसाई को दर्शाते हुए, निन्दनीय कहा है। और इस सदेह की आशंका व्यक्त की है कि शायद माननीय चिनप्पा रेड्डी इस शृंखला मे आगामी व्यक्ति हो। बख्शी ने अपने आलेख-"न्यायिक आतंकवाद" मे श्री देसाई को *पद-दलितों एवं गरीबों का मसीहा अंकित कर न्यायाधिपति तुलजापुरकर को निम्नां*-कित शब्दों में चेतावनी देते हुए, अपने आक्षेपो को सत्यता प्रदान करने का निवेदन किया है।

तुलजापुरकर-आक्षेपों को सत्यता दें

39. माननीय तुलजापुरकर के द्वि-अर्थी आक्षेप, जो सर्वोच्च न्यायालय में प्रतिष्ठित न्यायाधिपति देसाई को इंगित कर उनके अभिभाषणो मे स्थान पाते हैं, अब जन-सामान्य के सामने स्पष्ट अर्थी वक्तव्य के रूप मे प्रस्तुत होने चाहिएं। क्योंकि एक सामान्य नागरिक की भांति किसी के चरित्र-हनन या मानहानि का उन्हे भी सामान्य कानून के अन्तर्गत अधिकार नही है। *स्पष्ट वक्तव्यो के उपरान्त* वे शीलवान न्यायाधिपति के स्थान को ही अलंकृत नही करेंगे अपितु राष्ट्र की भी महति सेवा कर पायेंगे।

आरोपों-प्रत्यारोपों की गुरिल्ला युद्ध-पद्धति श्रेयस्कर नहीं होगी

40. सर्वोच्च-न्यायालय के न्यायाधिपति के अलंकृत सिंहासन पर आरूढ होकर आरोपों-प्रत्यारोपों की गुरिल्ला रीति-नीति, जिसमें सदाचारिता, निष्पक्षता

पर छीटा-कशी हो, कदापि श्रेयस्कर नहीं होगी। यदि इसे प्रश्रय मिला तो यह कालान्तर में न्यायाधिपति-भ्रातृत्व में आणविक विखण्डन की भांति अग्रसर होगी और हो सकता है इसने स्वय माननीय तुलजापुरकर को भी गंभीर-प्रखण्ड मौन की स्थिति स्वीकारनी पड़े। जनता न्यायाधीश के व्यक्तित्व से यह आशा करती है कि वह इस पद की गरिमा-गौरव-सहिष्णुता की मिसाल कायम करे क्योंकि वे जनता के सामने न्यायालय की स्वच्छ छवि और नाम को सुरक्षित रखने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

देसाई को पदत्याग की राय अविवेकपूर्ण—बख्शी

80. जब तुलजापुरकर देसाई की आलोचना करते हैं तो प्रो. बख्शी कड़े शब्दों मे कहते हैं "माननीय तुलजापुरकर की असहिष्णुता जन सामान्य के नये आयामों तक पहुंच जाती है, जब वे माननीय देसाई को वर्तमान न्याय पद्धति से पदत्याग की राय देते हैं। यदि देसाई ने वर्तमान न्याय पद्धति को विदेशों से आयातित, एंग्लो-सेक्शन-काल की व्यवस्था कहकर हमारे राष्ट्र के लिए अनुपयोगी पाया है और त्याज्य कहा है तो ऐसे मे भी श्री देसाई के पदत्याग की स्थिति कही भी आवश्यक प्रतीत नही होनी चाहिए। भारतीय संविधान या न्यायाधिपति की पद-मर्यादा की शपथ कहीं भी यह बंधन प्रस्तुत नहीं करती कि वर्तमान पद्धति की अंधभक्ति की जाये, यदि संविधान ऐसा निषेध प्रदान करता तो, किसी भी न्यायालय के माध्यम से नवीन संस्था का विकास एवं मूल्यांकन का प्रादुर्भाव सभव ही प्रतीत नही होता। न्यायाधिपति किस स्तर तक किसी पद्धति के आकलन की गहन तह मे जाये या किन शब्दों मे आकलन हो, यह उन्ही के मानस पर छोड़ दिया जाये तो उत्तम होगा। अतिशयोक्तिपूर्ण आकलन हो या आरोप-प्रत्यारोप का अणु-विखण्डन, जो उन्हे स्वय को ही वस्त्रहीन बना दे, यह स्वयं उन्हें ही तय करना होगा।

"माननीय तुलजापुरकर स्वयं वर्तमान न्याय-पद्धति को आरक्षण देकर कुछ सुधारों की कल्पना करें ऐसा उन्हें पूर्ण अधिकार है, इसी प्रकार देसाई को अस्वीकार का मार्ग अपनाने से रोकना उनके अधिकारों की अवमानना होगी। सर्वोच्च न्यायालय मे न्यायाधिपतियो के बीच होने वाली सौहार्दपूर्ण एवं दायित्वयुक्त तर्क-वितर्क, जो वर्तमान् न्याय-पद्धति के संकट-मोचन व संस्था के नवीन विकसित आयाम की ओर अग्रसर होता हो, न केवल आज की महति आवश्यकता है बल्कि इन अलंकृत पदों पर आसीन ऋषियो का कर्त्तव्य भी है।"

"माननीय तुलजापुरकर माननीय देसाई को पदत्याग की राय जाहिर कर न्याय-व्यवस्था की आधारशिला को भी ठेस पहुंचा रहे हैं जो न्याय-स्वतन्त्रता के सिद्धान्त रूप में संविधान में विद्यमान है, जिससे स्वयं तुलजापुरकर भी अखण्ड

"सर्वोच्च न्यायालय एवं राजनीति"[1] मे उपरोक्त विचार व्यक्त किये थे, आपातकाल के पश्चात् इससे विरोधाभासी विचारधारा की ओर अग्रसर हैं। उनके आपातकाल में व बाद मे हाल के चिन्तनों में कोई समानता नहीं मिलती है, यद्यपि प्रो. बख्शी उनकी आधुनिक शैली के साथ एक-सुर हैं।

"योग और राजनैतिक धर्म" कह कर अय्यर पर कटाक्ष

44. दोनों ही ने श्री कृष्णा अय्यर द्वारा प्रधानमंत्री प्रकरण मे . . पर अनावश्यक रूप से कटाक्ष कर नैतिक "योग" या "राजनैतिक धर्म" जैसे मुहावरे का प्रयोग किया है।

कागजी का मत[2]

45. "राजनैतिक वास्तविकता एवं कटुता का अनुभव अवकाशकालीन न्यायाधिपति कृष्णा अय्यर के स्नायु-तन्त्र पर अधिक प्रभावी रहा, बनिस्पत नियम विधान एवं पूर्व-निर्णीत आलेखों मे व्यक्त धारणा के, जब उन्होंने श्रीमती गांधी को लोकसभा की सदस्यता से वंचित कर अयोग्य करार दिया। प्रकरण के गुणावगुण या उच्च न्यायालय के आदेश की परिष्कृति की तह में पहुंचे बिना, रोक का आदेश निःसंदेह पूर्णरूपेण न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता है। योग व्यायाम की कठिन व जटिल मुद्रा के विस्तृत वर्णन की भांति, आवश्यकता से अधिक विस्तृत रोक आदेश अप्रासंगिक व अनावश्यक ही कहा जायेगा। अनुनय-विनय की शैली मे रचित यह आदेश स्वयं में ही विरोधाभासी विकेन्द्रित समाविष्टियों से पूर्ण था। उच्च न्यायालय के निर्भीक निर्णय की ऐसी सशंकित भीरू व्याख्या सामान्य जन को विस्मृत करने के लिए पर्याप्त थी। राष्ट्रीय हित की दुहाई मे श्रीमती गांधी के पक्ष मे दिये गये स्पष्ट रोक आदेश को शायद एक आम नागरिक अवश्य प्रशंसा करता, किन्तु न्याय के रक्षक और वह भी श्री कृष्णा अय्यर जैसे निर्भीक ओजस्वी न्यायाधीश की आत्मा से ऐसी भीरुता की आशा उस नागरिक को भी नही थी, इसने उसे हताश ही किया।"

यह समीक्षा बख्शी के चिन्तन से कितनी मिलती है

46. कई दशको तक न्यायिक निर्णीत पूर्वालेखो की मान्यताओं को अपने निर्णयों में स्थान देकर माननीय कृष्णा अय्यर वे पूर्ण रोक आदेश एवं सशर्त रोक

---

1. इण्डियन सुप्रीम कोर्ट एण्ड पोलिटिक्स–प्रो. उपेन्द्र बख्शी, ईस्टर्न बुक कम्पनी पब्लिकेशन, लखनऊ।
2. 'जजेज् क्यूइक्सोटिज्म एण्ड पोलिटिक्स'–मंगल चन्द जैन कागजी, अखिल भारतीय विधि संगोष्ठी जोधपुर, 1981, मे प्रस्तुत पत्र पर आधारित, 19 जयपुर लॉ जर्नल (1979) पृ. 22।

आदेशों की व्याख्या की है, किन्तु श्रीमती गांधी के संदर्भ में दिये गये आदेश की इस रेखा में उन्होंने वैधानिकता की लक्ष्मण-रेखा को लांघ, यह व्यक्त किया है कि परिपूर्ण रोक व सशर्त रोक आदेश में वास्तव में कोई स्पष्ट संभव अन्तर नहीं है यदि वादी राष्ट्र के सबसे प्रतिष्ठित ऊंचे पद पर आसीन व्यक्ति हो तो और ऐसे आदेश मे अन्तर ढूंढना "परछाई पर मुष्टिका प्रहार" या लीक पीटने के समदृश्य होगा।[1]

जनतान्त्रिक धर्म

47. "जनतान्त्रिक धर्म" की अभिव्यक्ति में, सत्ता पक्ष के विरोधियों पर विष-वमन के अतिरिक्त संपूर्ण निर्णय श्रीमती गांधी के पक्ष में है और प्रतिष्ठित पद आसीनता के वशीभूत होकर तथा विशिष्ट परिस्थितियों से अभिभूत होकर पारित किया हुआ प्रतीत होता है। आशा के विपरीत कृष्णा अय्यर जैसे उच्च आदर्शों एवं निष्पक्षता वाले व्यक्तित्व में न्यायिक आदेश में अप्रासंगिक राय की अभिलाषा नहीं की जा सकती है, जो अन्ततः स्वयं न्यायालयों के संदर्भ मे विनाशकारी प्रमाणित हुई।"[2]

राजनैतिक सहयोग की वैधानिकता

48. इस स्थल पर न्यायालय सत्तापक्ष-विपक्ष रूपी दो नावों पर सबल ढूंढता है और स्पष्टतः दोनों को अपरिलक्षित सहयोग कर, राजनैतिक व्यवसाय मे "पूंजी-विनिमय" जैसे कृत्य की ओर उन्मुख है।"[3]

आचार्यों के लिए राय की बनिस्पत आत्मविश्लेषण अधिक उपयुक्त

49. सन् 1979 की मेहरचंद महाजन मेमोरियल विधि व्याख्यानों की श्रृंखला मे मै वैधानिक प्रतिरोधों के बावजूद इन आचार्यों को, सर्वप्रथम, आत्म-शुद्धि एवं विश्लेषण की राय देना, समयोचित समझता हूं क्योंकि विशुद्ध भावना से भी सामयिक न्याय व्यवस्था के परीष्करण हेतु दिये गये उनके सुझाव इस हवनाग्नि मे समिधा का ही कार्य करेंगे। आज चिन्तनशील न्यायविदों में परस्पर कृष्णा अय्यर एवं न्याय-व्यवस्था का वैधानिक स्वरूप ही चर्चा के प्रमुख चर्चित बिन्दु हैं। इन मुखर न्यायाधीशों से किन्हीं प्रच्छन्न उद्देश्यो के अनावरण की आशा व्यर्थ होगी, मैं तो इसे असंभव ही मानता हूं, यद्यपि यह भी चिंतकों के बीच एक विचारणीय मुद्दा हो सकता है। न्यायाधीश के पद पर रहते हुए इसके अतिरिक्त कह पाना मेरे लिए सामयिक एवं संभव नहीं होगा।

1. द इण्डियन सुप्रीम कोर्ट एण्ड पॉलिटिक्स—प्रो. उपेन्द्र बख्शी, ईस्टर्न बुक कम्पनी "पब्लिकेशन" लखनऊ पृ. 49।
2. वही, पृ. 51।
3. वही, पृ 56।

सत्ता के साथ वैधता—अय्यर

50. बख्शी द्वारा 1979 व 1983 में व्यक्त अपने-विचारों की भिन्न
को मात्र सत्ता को वैध बनाने के उद्देश्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सक
है। श्री कृष्णा अय्यर पर कुठाराघात करते हुए श्री बख्शी ने कहा है:—

"इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय एवं सर्वोच्च न्यायालय के आदे
के पश्चात् दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रमुख व्याख्याताओं के साथ मुझे श्रीमती गां
से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ और मैंने इस सत्ता की वैधता एवं इससे प्रश
प्राप्ति का मोह दोनों ही विचार स्वयं उनके समक्ष रखे थे। यद्यपि इस मुलाक
से पूर्व मुझसे इस बात पर स्पष्ट सहमति देने को कहा गया था कि, जब तक उ
आदेश सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचाराधीन है, इसे अधिक चर्चा का विषय न
बनाया जायेगा, और उनकी इच्छा के विरुद्ध प्रश्नोत्तर भी नहीं किया जायेगा
मैंने इसी सहमति के दायरे में उनसे प्रश्न किया कि, क्या सर्वोच्च न्यायालय द्वा
सशर्त रोक के आदेश उपरान्त वे इस जटिल समय व स्थिति में पद-त्याग क
देंगी? यह प्रश्न इस आशा के साथ था कि वे प्रजातान्त्रिक मान्यताओं का निर्व
करते हुए इसका स्वागत करेंगी (किन्तु आशा के विपरीत मुझे इस बात का दु
है कि मैं भी ऐसे शिष्ट-मण्डल का सदस्य था, जिसके नेता ने ही बीच में टोक क
श्रीमती गांधी को इंगित कर कहा कि ऐसी परिस्थिति में भी यह आपका नैति
दायित्व नहीं होगा कि आप पद-त्याग करें।) चाटुकारिता, और वह भी चिंतनशी
वर्ग से, मेरे लिए हतोत्साहित करने वाली स्थिति थी। मुझे ऐसे शिष्टमण्डल
अंग होने में शर्म महसूस हुई और जहां दरबारीपन, राजनैतिक जीवन क
आवश्यकता की द्योतक हो तथा बुद्धिजीवी-वर्ग राजनैतिक शतरंज में हस्तक्षेप क
अभिलाषा करें, वहां ऐसे शिष्ट-मण्डलों मे मैंने भविष्य मे शिरकत नही करने क
प्रण कर लिया।

"यदि कृष्णा अय्यर के न्यायालय की सीमा-रेखा में वैधानिकता ही सर्वोप
होती, जैसी उनसे आशा की जाती है, तो वे वादी प्रधान मन्त्री को पद पर ब
रहने की न्यायिक स्वीकृति नही प्रदान करते। पद पर बने रहने की वैधता क
मुद्दा निर्धारण के लिए न्यायालय के समक्ष था ही नही, अतएव न्यायालय से इस
विस्तृत विवेचन की किंचित भी आशा नही की गई थी। स्पष्ट संक्षिप्त रोक क
आदेश ही पर्याप्त था। किन्तु यहा न्यायालय इस बात से अनभिज्ञ था कि पक्षका
को नानी ए० पालकीवाला जैसे अभिभाषकों की सेवाएं उपलब्ध हैं, जो आदे
की पक्तियों के बीच से पढने के सामर्थ्यानुरूप मार्ग बना ही लेंगे। और यही व
बलवती प्रच्छन्न इच्छा थी जिसने इस आदेश की उत्पत्ति इस न्यायालय से करा
ही ली।"

1983 में डा० बख्शी

51. इस प्रकार अब हम यह देखते हैं कि डा० बख्शी, महान् विधिशास्त्री [illegible] प्रकार पर प्रधानमंत्री की [illegible] का अभिवादन [illegible] 1983 में [illegible] करते हैं।

"न्यायिक क्षेत्र के आन्तरिक समूह के अधिशासकीय पहलुओं पर उनके मौन एवं उनके द्वारा नवीन न्यायपालिका पर उनका नियंत्रण एवं [illegible] के [illegible] लोगों का राजनैतिक उपयोग न कर न्यायिक परम्पराओं को प्रशासनिक आदर देने के लिए प्रधान मंत्री इन्दिरा गांधी को भी मंत्री के द्वारा[1] नमस्कार करना चाहिए, मैं भी ऐसा करता हूं।"

कानूनी की विधि शास्त्रीय दूरबीन

52. चाहे वह केशवानन्द भारती[2], कूपर[3], लिंगप्पा[4], मिनर्वा मिल्स[5], श्रीमती इन्दिरा गांधी[6], [illegible][7], राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ[8], कर्नाटक राज्य बनाम भारत संघ[9] हो, प्रोफेसर बख्शी हमेशा अपनी [illegible] विधिशास्त्रीय दूरबीन द्वारा राजनीति खोजते हैं। वे सारे अप्रत्यक्ष रूप से भगवती, देसाई एवं अय्यर, मुर्तजा, रेड्डी के विरुद्ध टोरे की विचारधारा के निन्दापूर्ण मानतो तथा गुलपतकरूकर की प्रशंसा करते हैं। इसका स्पष्ट यह अभिप्राय है कि बख्शी का [illegible] प्रतिरक्षात्मक शक्तिशाली धारा कानूनी द्वारा एकदम फाड़ दिया जाता है एवं इन्हें जाने-अनजाने, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से, मिथ्या प्रशंसा करनेवाले न्यायाधीशों का मिथ्या प्रशंसक कहा है। 1978 से पूर्व बख्शी न्यायाधीशों के महान् आलोचक थे[10] जो कि निम्न से स्पष्ट है:—

उच्चतम न्यायालय–व्याकुल एवं सताए गयों का अंतिम आश्रय

53. भारतीय राजनैतिक इतिहास के इस समय न्यायपालिका एवं विशेष-रूप से उच्चतम न्यायालय ही निष्पक्ष एवं न्याय के लिए केवल जीवित आश्वासन है एवं व्याकुल तथा सताए गए लोगों के लिए अंतिम आश्रय है। इस समय यह

1. जूडीशियल टेररिज्म (सुप्रा) बख्शी, 19, जयपुर ला जरनल 1979 पृ०।
2. (1973) 4 एस. सी. सी. पृष्ठ 225।
3. (1970) एस. सी. सी. पृष्ठ 248।
4. ए. आई. आर. 1971, एस. सी. 530।
5. ए. आई. आर. 1980, एस. सी. 1789।
6. ए. आई. आर. 1975, एस. सी. 2299।
7. ए. आई. आर. 1976, एस. सी. 7207।
8. ए. आई. आर. 1977, एस. सी. 1361।
9. ए. आई. आर. 1978, एस. सी. 68।
10. दी इंडियन सु. को. एण्ड पोलिटिक्स, उपेन्द्र बख्शी-इन्ट्रोडेक्शन पृ. XI उपरोक्त।

सुझाव देना कि उच्चतम न्यायालय राजनैतिक शान्ति का केन्द्र है जो कि राष्ट्रीय शासन के वैध दायित्व का निर्वहन करता है एवं यह तर्क कि इस स्तर पर प्रयोगीय न्यायिक प्रक्रिया राजनैतिक प्रक्रिया की एक किस्म है. ऐसा मान्यता तर्क एव विवाद को उत्तेजित करता है। वर्तमान दिल दहलाने वाले परिवर्तनशील राजनैतिक संदर्भ में एवं आगे आने वाले विस्फोटक वर्षों में ऐसे नास्तिक विचारों का विस्तार इस सत्य से परिपूर्ण है कि न्यायालय के कार्य एवं ढांचे पर प्राधिकारिक आक्रमण को संयुक्त करने हेतु प्रयोग किया जा सकता है। अगर ऐसा हो गया तो प्रबुद्ध व्यक्ति जो उच्चतम न्यायालय की प्रतिष्ठा करते हैं का पहले से ही कठिन कार्य और भी दायित्वपूर्ण हो जाता है।

हम न्यायपालिका की सरकार नहीं चाहते –बख्शी

54. फिर भी जो कुछ इस पुस्तक में कहा गया है वह कहना पड़ा क्योंकि वह सत्य है। हम न्यायपालिका की सरकार चाहें या नहीं, लेकिन कुछ पहलुओं में तो यह पहले से ही चली आ रही है। न्यायमूर्तियों द्वारा विधि बनाने की शक्ति को एवं संविधान को भी हम चाहें या नहीं, लेकिन वे ऐसी शक्ति रखते हैं एव इसके अलावा वे इसे तत्परता एवं नियमित रूप से प्रयोग में भी लाते हैं। उनके द्वारा इस शक्ति का प्रयोग करना हम चाहे या न चाहें लेकिन वे वास्तविक रूप से इसका प्रयोग करते हैं। लेकिन सत्य यह है कि उनके द्वारा प्रयोग मे ली जाने वाली शक्ति निर्णयात्मक विधि के क्षेत्र मे काफी व्यापक है। तथ्य जो बहुधा अपरीक्षित एव विरासती मान्यताओ एव सत्य के विरुद्ध होते हैं।

नैतिकता का आधार है जो एक बार वह हमेशा के लिए –थामस जक्सले

55. उसने पिकासो के साथ अपनी बात समाप्त की। गोपनीय उल्लेख है– पिकासो ने कहा: "कलाकारों को ऐसा रास्ता खोजना है कि वे आम जनता को उसकी कलाकार की झूठ के बारे में इस तरह संतुष्ट कर सकें कि वे उसे सच ही मानलें। क्योंकि काफी लम्बे समय से विधि से संबंधित व्यक्ति न्यायाधीश, अधिवक्ता एवं विधिशास्त्री संसार के हर कोने मे लोगों को न्यायिक प्रक्रिया की झूठ के बारे में सफलतापूर्वक संतुष्ट करने मे सक्षम रहे हैं।" मैं पूरे पूर्णरूप से इस पुस्तक की बात से सहमत हूं कि मुट्ठीभर लोग ही थामस जक्सले के इस विचार से सहमत होते हैं, नैतिकता का आधार झूठ से विलगाव है।

सीजर्स की "पत्नी एवं सीता" के समान न्यायाधीश

56. 14 नवम्बर, 1979 को "उच्चतम न्यायालय एवं राजनीति" पर व्याख्यान देते हुए बड़े ऊपरी ढंग से उन्होंने सामंजस्य स्थापित किया और कागजी द्वारा इसकी पुष्टि की गई। फिर भी यह सत्य है कि न्यायपालिका को सीता की

तरह "अग्नि परीक्षा" के दौर से गुजरना चाहिए क्योंकि इस प्रकार के शिक्षाशास्त्री और विधिशास्त्री अपनी इस राय में परिवर्तन करने की कुछ गुंजाइश रख सकते हैं कि न्यायाधीशों को सीजर्स की पत्नी तथा सीता की तरह अपनी स्थिति को सन्देह से परे रखना चाहिए।

भारतीयों को गुलाम रखने के संबंधी के प्राप्त –विधिशास्त्री

57. हमारे ऐसे शिक्षाशास्त्री एव विधि शास्त्री जिनकी नसों मे मैंकाले, सालमण्ड एव दिसे का रक्त बह रहा है 1947 मे अंग्रेजी शासन को उखाड फेंकने के बावजूद भी वे अभी भी उन्ही को सर्वोपरि मानते है एवं न्यायिक व्यवस्था को अभी भी उन्ही सिद्धान्तो पर आधारित मानते हुए भारतीयों को स्थाई रूप से गुलाम रखना चाहते हैं और इस दृष्टि से तो कागजी एवं टोपे भी अपवाद नही है। इन लोगो ने भगवती, देसाई, ठक्कर एवं रेड्डी के विधिशास्त्रियों जो कि गरीबों, झुग्गी-झोपडियों के निवासियो, पगडडी वालों, दलितों, लोहार, मोची, भूमिहीन कृषकों, कामगारो एवं आधी भूखी अस्सी करोड़ जनता जो खाली ढ़ांचा लिए हुए लोग जो कि अपना केवल अपने दो वक्त के भोजन के लिये सघर्परत है कि न्यायिक मुक्ति हेतु सक्रिय हैं उनके विचारो से भी अपनी असहमति प्रकट की है। क्या यह दयनीय नही है कि अपनी सारी शक्ति, लोकहित, मुकदमों सामाजिक कार्यों में रत सगठनो विधि परामर्शदात्री संस्थाओं एवं न्याय मे आमूलचूल परिवर्तन के पक्षधरो के विरुद्ध लगायी जाये। बजाय इसके कि यह शक्ति उस पुरानी अप्रचलित न्यायिक विरासत के विरुद्ध लगाई जाए जिसके माध्यम में धनवान द्वारा गरीबो का, सक्षम द्वारा असक्षम का, नियोक्ता द्वारा कर्मचारियों का बुद्धिजीवियों द्वारा ग्रामीणों का शोषण किया जा रहा है।

चाहे वे प्रो० कागजी हो या टोपे या अन्य प्रोफेसर, न्यायाधीश या पत्रकार यह उपयुक्त समय है जबकि इन्हे अपने दिल टटोलने एवं आत्म-परीक्षण की प्रक्रिया अपनानी चाहिए जिससे कि उन्हें यह पता लगे कि क्या ये अपनी सभी तोपें एवं प्रक्षेपास्त्र उन न्यायिक कार्यकर्त्ताओ के विरुद्ध प्रयोग मे नही ला रहे हैं जो समाज के शोषितो एव दलितो के आंसू पोछना चाहते हैं। भले ही इसके लिए समाज के मुठ्ठीभर लोगो की आंखों में आंसू आ जाएं जैसा कि मैंने शक्कर लेवी वाले वाद में कहा भी है।

न्यायाधीशों पर न्यायिक नियंत्रण असफल : कागजी, व बख्शी या माधव मैंनन

58. इसलिए मैं शिक्षाशास्त्रियों के अन्तर्विरोधी कथनों के बारे मे तीक्ष्ण टिप्पणी के बावजूद भी कागजी एवं बख्शी के द्वारा न्यायाधीशों पर न्यायिक नियंत्रण रखने के संबंध में उनके विचारों का आदर करूंगा। मेरी अपनी राय मे

विचारधारा ही हमारी प्रेरणा का स्रोत होना चाहिए एवं
लोक-आधारित अय्यर
भगवती, देसाई, ठक्कर, रेड्डी को मिथ्या प्रशंसा के लिए जनता के समक्ष बदनाम कर
उन्हें परेशान नही करना चाहिए क्योंकि उनका आशय न्यायपालिका मे ऐसा
क्रांतिकारी परिवर्तन लाने से है जो गरीबों, दलितो, पीडितो कुचले हुए एवं मेहनत-
कश लाखों लोगों और गरीबी की रेखा से नीचे मूक से पीडितों का पक्षधर होगा।

अय्यर का सामाजिक न्याय का विधिशास्त्र

59. फिर भी यह सच है इस आशय की नारेबाजी कि वर्तमान न्यायिक
व्यवस्था को ऐसे की ऐसे ही उखाड कर फेंक दें। उदास चेहरों के आंसूओं को
पोछेगी भले ही वह प्रबल प्रशंसा का क्षणिक आकर्षण प्राप्त करले। वस्तुतः[1]
"या तो कोई वैकल्पिक व्यवस्था हो या फिर अय्यर स्कूल के क्रांतिकारी
विचारो का समर्थन किया जाना चाहिये। जैसा कि मार्क्स की पूंजी में है और
वास्तव में न्यायिक उपभोक्ताओं की यही सच्ची सेवा होगी। अय्यर के मत को
सालमण्ड, डिसी, मैकाले, हार्ट, फुल्लर, बैन्थम, मनु, याज्ञवल्क्य, कोटिल्य, कोटायन,
मार्क्स एवं एंजिल्स से ऊपर उठाना चाहिए एवं "अय्यर के सामाजिक न्याय का
विधि शास्त्र" को जांच एवं परीक्षण के लिए तैयार करना चाहिए।

न्यायपालिका गहन लपटों, धुआं एवं अग्नि में

60. बरूशी एवं कागजी विधिवेताओं के उपरोक्त उद्धरणों पर किसी
वर्तमान न्यायाधीश द्वारा टिप्पणी नही की जा सकती। इसलिए मैं इस प्रसंग का
कथन यही इस कथन के साथ समाप्त करता हूं कि भारतीय न्यायपालिका के इति-
हास मे छिड़ी हुयी यह अपूर्ण एव अप्रिय विवाद शिखर के विधिशास्त्रियो को इस
रूप मे ध्यानाकर्षण करे कि इस विवाद का प्रारंभ मे ही दमन कर देना चाहिए
इससे पहले कि यह खतरनाक मोड इसके विनाशकारी परिणाम से न्यायपालिका
कोई बाहर एवं अन्दर से लपटो, धुंआ एवं अग्नि से ध्वस्त हो।

दसवें विधि आयोग की प्रश्नावली : विचार एवं वातचीत

61. दसवें विधि आयोग की प्रश्नावली से प्रतिबद्धता की संभवता प्रकट
नहीं होती, यद्यपि इसके प्रथम प्रश्न मे ही उच्चतम न्यायालय को एक संवैधानिक
न्यायालय बनाने के बिन्दु पर राय चाही गई है। कुछ राजनीतिज्ञों एव विधि-
शास्त्रियों ने इस बिन्दु को दुर्भाग्यपूर्ण बताकर एक विवाद खड़ा कर दिया है।

62. पश्चिमी जर्मन मे इसी प्रकार के संवैधानिक न्यायालय मे आठ
न्यायाधीशों की नियुक्ति की गई थी, जिनमे से छः का चुनाव दो-तिहाई बहुमत से
किया गया था फिर भी आलोचको ने इसे सरकार का अधीनस्थ न्यायालय कहकर

1. ए. आई. आर. 1981, राजस्थान, पृ० 39।

पुकारा ।[1] कुछ क्षेत्रों में उच्चतम न्यायालय के विभाजन पर कड़ा विरोध हो रहा है जिसमें पालकीवाला की विचारधारा प्रमुख है ।

63. संवैधानिक न्यायालय एवं अपीलीय न्यायालय में उच्चतम न्यायालय विभाजन के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रश्न प्रस्तावित किए हैं:—

1. (अ) क्या उच्चतम न्यायालय को पूर्णतः संवैधानिक न्यायालय के रूप में प्रतिस्थापित करना चाहिए जो कि केवल संवैधानिक मामलों का निपटारा करे ?
2. (ब) क्या ऐसा न्यायालय एक ही पीठ के रूप में कार्य करे (वर्तमान में अनेक पीठों के रूप में कार्य करने के स्थान पर) ?
3. (स) इस न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति की प्रक्रिया एवं योग्यता क्या होनी चाहिए ?

64. (1) क्या आप एक अपीलीय न्यायालय की स्थापना के पक्ष में हैं जो कि विधि के विवाद के अंतिम निर्णायक (संवैधानिक विधि के अतिरिक्त) के रूप में काम करे एवं संवैधानिक प्रश्नों को केवल उच्चतम न्यायालय को दे दिया जाये ?

(2) इस संबंध मे ऐसे विचार प्रकट किए गए हैं कि विधि (संवैधानिक विधि को छोड़कर) एवं तथ्यों के प्रश्न एक मध्यवर्ती अपीलीय न्यायालय तक ही समाप्त हो जाने चाहिएं जिससे कि उच्चतम न्यायालय इस उपमहाद्वीप पर विभिन्न वर्गों के रहने वाले लोगों को प्रभावित करने वाले संवैधानिक विधि के प्रश्नो पर बिना रुकावट के ध्यान देने मे समर्थ हो सके ।

(3) क्या उच्चतम न्यायालय द्वारा उतना ही कार्य लेना चाहिये जितना कि वह तीन माह के अन्दर निपटा सके ?

(4) संयुक्त राज्य अमेरिका का उच्चतम न्यायालय प्रत्येक वर्ष लगभग 5,000 मामले प्राप्त करता है जिनमें से सुनवाई के उपयुक्त केवल 200 मामलो को ही चुनता है । ऐसी सुनवाई के लिए चुने जाने वाले मामलों में 9 न्यायाधीशों में से 4 न्यायाधीशों का मत आवश्यक है । 1970 वर्ष के दौरान इंग्लैण्ड में हाउस ऑफ लार्डस् द्वारा सुनी गई अपीलों का वार्षिक औसत केवल 33 रहा जिससे कि न्यायाधीश अपना अधिकांश समय लोकमहत्त्व के मामलों में लगा सके ।[2]

---

1. वैस्ट जर्मनी कोन्स्टीट्यूशन कोर्ट—पोलिटिकल कन्ट्रोल ग्र॰ जजेज्—गिसबर्ट ब्रिकमेन [1981] पब्लिक लॉ 83 पृ.—84
2. विधि आयोग की प्रश्नावली, भारत सरकार, शास्त्री भवन नई दिल्ली दिनांक 1-1-82 ।

उच्चतम न्यायालय की स्थापना एक एकीकृत करने वाली इकाई के रूप में की गई थी जो एक समान विधि का सृजन, विकास व विधिक तथा संवैधानिक मामलों पर सुव्यवस्थित मार्ग प्रशस्त करेगा। कालांतर में जो स्वरूप सृजित हुआ है वह एक लम्बित वादों के भंवर में फंसे हुए न्यायालय एवं एक क्षत-विक्षत न्यायपीठिका के रूप में है। यदि दो शब्द उधार लिए जाएं तो, "समय आ गया है............बहुत अधिक विषयों की बात करने का।" उच्चतम न्यायालय कभी भी पर्याप्त रूपेण लम्बित वादों को निपटाने में सक्षम नहीं रहा है, इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए यह विचारणीय बिन्दु महत्त्वपूर्ण हो सकता है कि, क्या उच्चतम न्यायालय की संरचना, क्षेत्राधिकार व कार्य-प्रक्रिया पर पुनर्विचार, पुनर्मूल्यांकन व पुनः सृजन किया जाना चाहिए।

उच्चतम न्यायालय : प्रिवी कौंसिल व फेडरल (संघीय) न्यायालय का मिश्रण

67. संस्थान के उपर्युक्त अध्ययन में यह अवलोकन किया गया कि 1937 से 1950 तक संवैधानिक वादों का निपटारा संघीय न्यायालय द्वारा किया गया जबकि सामान्य विशेष अपीलें प्रीवी कौंसिल द्वारा निर्णीत होती थीं। भारतीय न्याय को भारतीय जीवन के परिप्रेक्ष्य में दृष्टिगोचर कराने की कामना को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई। पाठ पांच में अध्ययन दल ने निम्नलिखित विचार प्रकट किए हैं:—

"किसी ने भी यह ध्यान नहीं दिया कि क्या उच्चतम न्यायालय स्वयं इतने विस्तृत क्षेत्राधिकार को जो कि प्रिवी कौंसिल न्यायालय के मिश्रित क्षेत्राधिकार से भी विस्तृत था, को वहन करने में सक्षम है अथवा नहीं। वस्तुतः उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार विश्व में किसी भी अन्य सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय से अधिक विस्तृत है।"

न्यायाधीशों की 400% वृद्धि आवश्यक

68. इस अध्ययन के अनुसार, न्यायाधीशों की संख्या में अल्प वृद्धि पुरातन लम्बित वादों के निपटारे हेतु अपर्याप्त होगी। अतएव यह सुझाव दिया गया कि यदि सभी लम्बित मामलों का निपटारा किया जाए तथा भविष्य में कोई मामला लम्बित न रखा जाए तो न्यायाधीशों की संख्या में 300% से 400% की वृद्धि अपेक्षित है। हम यह महसूस करते हैं कि एक ऐसे विशाल न्यायालय का सृजन जो कि सूक्ष्म न्यायपीठिकाओं में विभक्त हो वह अनेक विषम परिस्थितियां उत्पन्न करेगा, अतः न्यायालय एक ऐसी स्पष्ट एवं एकीकृत नेतृत्व प्रदान करने वाली संस्था नहीं रह पाएगा जैसी कि संविधान में कल्पना की गई है।

शोधकर्ता के निष्कर्ष निम्नलिखित हैं

65. "मूलभूत अधिकार संबंधी अन्तिम सुनवाई हेतु न्यायालय द्वारा स्वीकृत वादों मे हाल ही में 1977–78 में वृद्धि हुई है।"[1]

मूलभूत अधिकार का क्षेत्राधिकार अति महत्त्वपूर्ण है। यह उपयोग व दुरुपयोगोन्मुखी है। निश्चित रूप से इस क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत अधिकाश मामले तुच्छ अथवा व्यर्थ होते हैं एवं भक्षक हो सकते हैं। न्यायालय की नीति एवं इतनी अधिक याचिकायें प्रारम्भिक सुनवाई के पश्चात् अस्वीकार कर दी जाने के बारे में कोई सुव्यवस्थित रेकार्ड उपलब्ध नहीं है। यह अत्यावश्यक है कि प्रारम्भिक सुनवाई हेतु एक अधिक सुव्यवस्थित मार्ग अपनाया जाए।

विधि-संस्थान के निष्कर्ष

66. विधि-संस्थान द्वारा निकाले गये निष्कर्ष इस प्रकार हैं:—

"हमारे नमूनों के विश्लेषण से प्राप्त होने वाला विस्तृत निष्कर्ष हम नहीं दोहरायेंगे। हमारे वर्तमान उद्देश्य के लिए साधारण निष्कर्ष पर्याप्त होगा और वह निष्कर्ष यह है कि न्यायालय लम्बित वादों का निपटारा कभी भी नहीं कर सकता यदि यह न्याय-व्यवस्था अपनी संरचना, क्षेत्राधिकार व कार्य-प्रक्रिया मे मूलभूत परिवर्तन नही लाती।

न्यायालय की वर्तमान संरचना व क्षेत्राधिकार ही ऐसा है कि वाद का तो लम्बन इसके अंकुरण से ही अन्तर्निहित है। यह कोई ऐसी बात नहीं है कि छठे अथवा सातवें दशक मे ही अंकुरित-प्रस्फुटित हुई हो। असली तथ्य तो और भी अधिक चौंकाने वाले हैं। न्यायालय की स्थापना से ही लम्बित मामले न्यायालय के साथ रहे हैं। अभी भी यह उनसे पार पाने मे सक्षम नहीं रहा है। कभी-कभार कुछ वर्ष ऐसे रहे हैं जब न्यायालय एक वर्ष मे दायर वादो से कुछ अधिक वाद उ वर्ष में निपटाने में सक्षम रहा है।

हम यह तर्क देते हैं कि यद्यपि 1957-58 व 1960-61 मे न्यायाधी की संख्या में वृद्धि के फलस्वरूप कार्यभार में कुछ सीमा तक कमी आई, f इससे अत्यल्प राहत ही मिली। यदि न्यायालय अत्यधिक विशाल हो जाता है यह एक सुशोभित उच्च न्यायालय जो कि निवर्तमान उच्च न्यायालय के न्यायाधि- पतियों से संचालित मात्र बनकर रह जाएगा। अब तक मात्र दो न्यायाधिपतियों की नियुक्तियां ऐसी हुई हैं जो कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नहीं थे।

---

1. देखें लेखा-चित्र संख्या 51

उच्चतम न्यायालय की स्थापना एक एकीकृत करने वाली इकाई के रूप में की गई थी जो एक समान विधि का सृजन, विकास व विधिक तथा संवैधानिक मामलों पर सुव्यवस्थित मार्ग प्रशस्त करेगा। कालांतर में जो स्वरूप सृजित हुआ है वह एक लम्बित वादों के भंवर में फंसे हुए न्यायालय एवं एक क्षत-विक्षत न्यायपीठिका के रूप में है। यदि दो शब्द उधार लिए जाएं तो, "समय आ गया है............बहुत अधिक विषयों की बात करने का।" उच्चतम न्यायालय कभी भी पर्याप्त रूपेण लम्बित वादों को निपटाने में सक्षम नहीं रहा है, इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए यह विचारणीय विन्दु महत्त्वपूर्ण हो सकता है कि, क्या उच्चतम न्यायालय की संरचना, क्षेत्राधिकार व कार्य-प्रक्रिया पर पुनर्विचार, पुनर्मूल्यांकन व पुनः सृजन किया जाना चाहिए।

उच्चतम न्यायालय : प्रिवी कौंसिल व फैडरल (संघीय) न्यायालय का मिश्रण

67. संस्थान के उपर्युक्त अध्ययन में यह अवलोकन किया गया कि 1937 से 1950 तक संवैधानिक वादों का निपटारा संघीय न्यायालय द्वारा किया गया जबकि सामान्य विशेष अपीलें प्रीवी कौंसिल द्वारा निर्णीत होती थी। भारतीय न्याय को भारतीय जीवन के परिप्रेक्ष्य में दृष्टिगोचर कराने की कामना को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई। पाठ पांच में अध्ययन दल ने निम्नलिखित विचार प्रकट किए हैं :—

"किसी ने भी यह ध्यान नही दिया कि क्या उच्चतम न्यायालय स्वयं इतने विस्तृत क्षेत्राधिकार को जो कि प्रिवी कौंसिल न्यायालय के मिश्रित क्षेत्राधिकार से भी विस्तृत था, को वहन करने मे सक्षम है अथवा नहीं। वस्तुतः उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार विश्व में किसी भी अन्य सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय से अधिक विस्तृत है।"

न्यायाधीशों की 400% वृद्धि आवश्यक

68. इस अध्ययन के अनुसार, न्यायाधीशों की संख्या में अल्प वृद्धि पुरातन लम्बित वादो के निपटारे हेतु अपर्याप्त होगी। अतएव यह सुझाव दिया गया कि यदि सभी लम्बित मामलों का निपटारा किया जाए तथा भविष्य मे कोई मामला लम्बित न रखा जाए तो न्यायाधीशों की संख्या मे 300% से 400% की वृद्धि अपेक्षित है। हम यह महसूस करते हैं कि एक ऐसे विशाल न्यायालय का सृजन जो कि सूक्ष्म न्यायपीठिकाओ मे विभक्त हो वह अनेक विषम परिस्थितिया उत्पन्न करेगा, अतः न्यायालय एक ऐसी स्पष्ट एवं एकीकृत नेतृत्व प्रदान करने वाली संस्था नही रह पाएगा जैसी कि संविधान मे कल्पना की गई है।

राष्ट्रीय अपीलीय तंत्र

69. तत्पश्चात् संस्थान ने सुझाव दिया कि एक राष्ट्रीय अपीलीय तंत्र का गठन होना चाहिए न कि जोनल न्यायालयों का जैसा कि विधि आयोग ने सुझाया था। राष्ट्रीय अपीलीय अधिकरण की अपील का प्रावधान उच्चतम न्यायालय में होना चाहिए या केवल सार्वजनिक महत्त्व के विषय पर विधि का कोई प्रश्न सम्मिलित हो, जिसको की उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत करवाए जाने की आवश्यकता हो।

संघीय संवैधानिक न्यायालय

70. संघीय संवैधानिक न्यायालय का कार्य संविधान की व्याख्या करना होगा (मूलभूत अधिकार सम्मिलित)। समस्त प्रशासनिक-विधि विषय की स्थापना का भी सुझाव दिया गया। उस स्थिति में उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार दीवानी तथा फौजदारी मसलों की अपील तक ही सीमित रह जाएगा।

सार्वजनिक हित प्रकरण का तेज

71. विधि संस्थान अध्ययन दल का यह सुझाव कारगर प्रतीत होता है तथा अपेक्षित है कि विधि-निर्माता इस पर वस्तुपरकता से विचार करें क्योंकि लम्बित वादो की दिन-प्रतिदिन तीव्र गति तथा सार्वजनिक हित प्रकरणों द्वारा प्रदान नवीन ऊंचाइयों के परिणामतः एक ऐसा बिन्दु शीघ्रगामी है जहां दीवानी व फौजदारी अपीलें तथा विशेष अपील याचिकाएं दो या तीन दशाब्दियों तक भी नहीं सुनी जा सकेंगी। परिणामस्वरूप होगा यह कि सर्वोच्च न्यायालय, जिसका कि मूल एवं प्रथम कार्य न्याय सम्पादित करना है, पूर्णरूपेण धूल-धूसरित हो जाएगा।

विभक्तिकरण की चाह

72. अधिक देर हो, इससे पहले ऐसी विपत्ति तथा विप्लव से बचना ही चाहिए। उच्चतम न्यायालय का संविधान न्यायालय व अपीलीय न्यायालय में विभाजन एक राज्य के विभाजन जैसा नहीं समझना चाहिए जैसा कि पहले पालकीवाला जैसे प्रसिद्ध तथा अन्य विधिवेत्ताओं के द्वारा सन्देह किया गया है।

अनुच्छेद 32 का परिसीमन

73. इसके अतिरिक्त एक अन्य महत्त्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या रिट याचिका स्वीकृत करने का अनुच्छेद 32 में वर्णित उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार समूल उखाड़ दिया जाए अथवा उसका परिसीमन कर दिया जाए। वर्तमान में वस्तुस्थिति यह है कि एक बम्बई का फुटपाथी जीव, आगरा नारी निकेतन में प्रताडित नारी तथा भागलपुर के अंधा, जैसे अन्वीक्षणार्थ बंदी सीधे

उच्चतम न्यायालय में दौड़े चले आते हैं, बिना अपने राज्यों के उच्च न्यायालयों की शरण लिए। यदि सम्पूर्ण भारत में यह आवेग गति पकड़ लेता है तो एक क्षण ऐसा आएगा जबकि उच्चतम न्यायालय को अन्य समस्त सुनवाई रोक देनी पड़ेगी।

सार्वजनिक हित प्रकरण : आम साधारण उच्चतम् न्यायालय भारतीयों के लिए

74. सामाजिक कार्यकारी दल, विधिक उपचार, समिति तथा अन्य स्वयसेवी संस्थाएं व सार्वजनिक हितोन्मुखी व्यक्तियों के द्वारा दायर सार्वजनिक हित प्रकरण वाद उच्चतम न्यायालय को वादों से भर रहे हैं। डॉ. उपेन्द्र बख्शी के अनुसार "सामाजिक कार्यकारी वाद" उच्चतम न्यायालय में गतिशीलता पकड़ रहे हैं तथा न्यायाधीशों व जनता के द्वारा उच्चतम न्यायालय "प्रताड़ित व मदाक्रांत व्यक्तियो का अन्तिम शरण-स्थल" के रूप मे जाना जा रहा है।[1] डा. बख्शी संतोष प्रकट करते हैं कि गणतन्त्र की स्थापना के 32 वर्ष के दीर्घ अंतराल के पश्चात् भ रत का उच्चतम न्यायालय अब "भारतीयों का उच्चतम् न्यायालय" बन रहा है।"[2]

न्यायिक परिवर्तन-बख्शी

75. प्रो० बख्शी के अनुसार "एक पारम्परिक, गतिहीन, अत्यल्प सामाजिक संवेदनशील इकाई से स्वतन्त्र, उच्च राजनैतिक, सामाजिक सवेदनशीलन इकाई तक की यात्रा भारतीय अपीलीय न्यायपालिका के लिए एक विलक्षण विकास की परिचायक यात्रा है।[3] यह परिवर्तन जो कि आपात्काल के पश्चात् की विशेषता है, इसे न्यायिक लोकप्रियता (जुडिशियल पापुलरिजम) के रूप में है।" न्यायालय का स्वयं का आधार तथा नैतिक क्षेत्राधिकार एक ऐसे समय मे शक्तिशाली हो रहे हैं जब कि राष्ट्र में अन्य राजकीय संस्थाएं वैधकरण-अभावत से सामना कर रही हैं। इस प्रक्रिया मे अन्य राजनैतिक सस्थाओं की भाति न्यायालय जितना कार्य कर सकता है उससे कही अधिक करने का वायदा करता है, फलस्वरूप यह स्वयं को निरुत्साहिक प्रक्रियाओं के घेरे मे धकेल रहा है।"

---

1. केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य (1973) 4 एस सी. सी. 235 एट 947।
2. राजस्थान राज्य बनाम भारतीय संघ (1977) 3 एस. सी. सी. एट 670 (द्वारा गोस्वामी न्यायाधीश)।
3. प्रशासनिक तथा रेग्यूलेटरी इकाइयो को गतिहीन बताना पारम्परिक है। देखें, उदाहरणार्थ डी.एम, ट्रूबेक "पब्लिक पोलिसी एडवोकेसी, एडमिनिस्ट्रेटिव गवर्नमेंट एण्ड रिप्रेजेन्टेशन आफ डिफ्यूज इण्टरेस्ट्स इन II अक्सेस टू जस्टिस 445, 1979 : एम. केपेलेटी एवं बी कायेड्स तथा उनमे वर्णित साहित्य। किन्तु स्माल काजेज न्यायालयों व ऐसे ही अन्य न्यायालयों को अपवाद स्वरूप मानते हुए, "गतिहीन इकाई" का विचार स्पष्टत: अपीलीय न्यायालयो के लिए लागू नहीं किया जाता है। यद्यपि ये अपीलीय न्यायालय भी कुछ व्यावसायिक स्वार्थियों के लिए, जिनको कि समाज में शक्तिशाली दलों का समर्थन प्राप्त है, गतिहीन हो सकते हैं।

"वर्तमान तथा निकट भविष्य में इस बात की कोई आशा नहीं है कि न्यायालय अपना न्याय-सम्पादन का पारम्परिक रुख, पुनः धारण करेगा जहां कि व्यक्तियों के वाद मात्र मसले प्रतीत हों, जिन्हें अभिभावकगण गोपनीय रूप से प्रस्तुत करें तथा रहस्यमयी कॉमन लॉ न्यायिक प्रणाली द्वारा उन्हें निर्णीत किया जाए। आज व्यक्तियों को यह भान है कि न्यायालय को हस्तक्षेप करने का सवैधानिक अधिकार प्राप्त है तथा यह अधिकार व्यक्तियों की प्रताड़न, राजकीय अराजकता व प्रशासनिक अत्याचारो से पीड़ित व्यक्तियों की दशा सुधारने हेतु उपयोग में लाया जा सकता है। अन्वीक्षण हेतु बन्दी, नारी निकेतनों में महिलाएं, बाल अपराध घरो मे बालक, बंधुआ तथा घुमक्कड़ मजदूर, अस्पृश्य व अनुसूचित जन-जाति, भूमिहीन कृषक मजदूर, जो कि व्यर्थ की तकनीकी उलझनों के कारण प्रताड़ित हैं, महिलाएं, जो कि क्रय-विक्रय की जाती हैं, कच्ची बस्ती–झोपड़-पट्टी निवासी, अन्यायी, नर-बध के शिकार रिश्तेदार, ये तथा अन्य अनेक अब न्याय के लिए उच्चतम न्यायालय की शरण लेते हैं।"[1]

माननीय न्यायाधिपतिगण मुर्तजाफजल अली, वैंकटरमैया की खण्डपीठ ने सुदीपत मजूमदार बनाम मध्य प्रदेश सरकार (निर्णय दिनांक 29, नवम्बर, 82) याचिका स. 1420 में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए ऐसे प्रश्नों को दस निम्नांकित बिन्दुओ मे व्यक्त किया है, जो समाज के क्रियाशील वर्ग द्वारा प्रतिपादित किये जाते हैं, जिन्हे माननीय भगवती ने लोकहित के वादों की सज्ञा से विभूषित किया है, और जिन्हे साधारणतया आसानी से सर्वोच्च न्यायालय की संविधानपीठ को सुनवाई हेतु प्रेषित किया जा सकता है।

(1) क्या न्यायालयो को चाहिए कि वे ऐसे पत्रों की ओर ध्यान आकर्षित करें जिनमें अखबारो की सुर्खीयुक्त खबरों की कटिंग या ऐसे दृष्टात हो जिनमें व्यक्ति-विशेष की स्वतन्त्रता या अधिकारों के हनन की चर्चा की गई हो ?

(2) क्या ऐसे पत्रों को सर्वोच्च न्यायालय की कानूनी सलाहकार संस्था के पास रजिस्ट्रार द्वारा भेजना युक्तिसंगत होगा, जिसमे यह निवेदन किया गया हो कि इन पत्रों की वास्तविकता के प्रति प्रारम्भिक जाच-पड़ताल होनी चाहिये जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि, क्या ऐसे तथ्य मौजूद हैं जिससे किसी प्रकार की विशिष्ट याचिका दायर की जाने की संभावना प्रतीत होती है ?

1. टेकिंग सफरिंग सीरियसली : सोशल एक्शन लिटिगेशन इन द सुप्रीम कोर्ट ऑफ इण्डिया–प्रो. उपेन्द्र बख्शी द्वारा पेपर वी. सी. साउथ गुजरात विश्वविद्यालय, सूरत, गुजरात।

(3) किसी विचारक, सामाजिक कार्य कर्त्ता, अभिभापक या किसी सामाजिक चेतन संस्था के प्रतिनिधियो को इस प्रकार के लोकहित के वादों मे पक्षकार बनने का अधिकार या अधिस्थिति (लोकस स्टेण्डी) को इस संदर्भ में किस हद तक स्वीकार किया जाना चाहिए, जिनके अधिकारो का हनन सरकार के सकारात्मक या नकारात्मक रुख से किया गया है ?

(4) (अ) क्या यह न्यायालय उन व्यक्तिगत पत्रों पर भी किसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करने का अधिकारी है जिनमें किसी प्रकार के मौलिक अधिकारो का हनन प्रथम दृष्ट्या अन्तर्निहित नही हो ?

(ब) ऐसे प्रसगों मे, जहाँ मौलिक अधिकारो के हनन को दर्शाया गया हो किन्तु किसी व्यक्ति को अवैधानिक रूप से गिरफ्त मे रखने की तथ्यात्मक जानकारी नही हो, ऐसी परिस्थिति मे क्या यह न्यायालय वैधानिक अधिकार प्रयुक्त कर कार्यवाही करने की स्थिति में होगा ?

(5) क्या यह न्यायालय ऐसे पत्रो पर कार्यवाही करना चाहेगा, जिनका समाधान साधारण परिस्थितियों में सम्बन्धित फौजदारी, दीवानी राजस्व न्यायालयों या अन्य कार्यालयाधीशों द्वारा किया जा सकना संभव हो, किन्तु क्योंकि अधिक व्यक्ति इससे प्रभावित हैं इस कारण ही उन्हें इस न्यायालय के समक्ष घसीटा गया हो ? पुन: स्पष्ट विवेचन के साथ उदाहरणार्थ—यदि वाद ऐसी प्रकृति का हो जिसमे किसी व्यक्ति विशेष, संगठन या समुदाय द्वारा अन्य समुदाय या संगठन की किसी भूमि पर अनाधिकृत अतिक्रमण किया गया हो ऐसी परिस्थिति में क्या इस न्यायालय को यह हक है कि, वह जिला मजिस्ट्रेट या जिला एवं सत्र न्यायाधीश को इस संदर्भ मे तथ्यात्मक जानकारी प्रस्तुत करने के लिए आदेश जारी करे ? या दोनो पक्षो को इस सदर्भ मे मात्र वैधानिक कानूनी नि.शुल्क सहायता ही प्रदान की जावे, जिससे वे अपने अधिकारो की पुनर्स्थापना हेतु समुचित अधिकार-क्षेत्र के न्यायालय की शरण ले सकें ?

(6) क्या यह न्यायालय ऐसे पत्रो पर कार्यवाही कर सकने मे सक्षम होगा, जिनमे मात्र अपर्याप्त तथ्यात्मक जानकारी दी गई हो ? क्या ऐसे पत्रो को उन साधारण वादों की शृंखला से अलग रखा जा सकेगा जो सामान्य परिस्थितियों मे उस न्यायालय के समक्ष निर्णय हेतु प्रेषित किये गये हों, या ऐसे वादों पर आगामी तथ्यात्मक जानकारी हेतु यह न्यायालय जिलाधीशों या जिला न्यायाधीशों को इस संदर्भ में छानबीन हेतु निर्देश देना उचित समझेगा जिससे यह जाना जा सके कि क्या प्रथम दृष्टया किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता है ?

(7) यदि अन्वेषण के उपरान्त यह प्रतीत होता है कि इस प्रकार का पत्र आधारहीन है एवं उसमे की गई शिकायत मिथ्या है तो ऐसी स्थिति मे प्रार्थी-पत्र-प्रेषक पर हर्जाना आरोपित अवश्य किया जाना चाहिए, अन्यथा यह एक विशिष्ट व्यवहार का द्योतक बनकर सामान्य स्थिति से भिन्न स्थिति दर्शायेगा। उसे अन्य सामान्य व्यक्तियो से अलग रखकर, देखा जाना न्यायोचित नहीं होगा।

(8) यदि किसी व्यक्ति के अधिकारों का हनन हुआ है और उसके अति-रिक्त अन्य व्यक्तियो के अधिकारों का प्रश्न भी उसके साथ जुड़ा हो तो ऐसी स्थिति में क्या वह विशिष्ट व्यक्ति इस प्रकार पत्र लिखकर न्यायालय शुल्क या साधारण नियमों की प्रक्रिया से अलग हटकर या विमुक्त रहकर इस प्रकार अपने अधिकारों की पुनर्स्थापना का आवेदन कर सकता है ? क्या मात्र पत्र लिखकर याचिका प्रस्तुत करने से सर्वोच्च न्यायालय के सभी नियम ताक पर रखे जा सकते हैं ?

(9) यदि सर्वोच्च न्यायालय इस प्रकार के अनौपचारिक पत्रों पर सक्रिय होकर कार्यरत होता है तो क्यों नही यह अधिकार उच्च न्यायालयों या अन्य भारतीय न्यायालयों, राजकीय अधिकारियों एवं संगठनों को सभी सामान्य परि-स्थितियों में एक कार्य-प्रणाली के रूप में प्रदान किया जावे ?

(10) क्या इस प्रकार की अनौपचारिकता न्यायालय की एक पक्ष के साथ मानसिक सहयोग की मनोदशा को व्यक्त नही करेगी, जिसका साधारण तरीके से नियमानुसार प्रस्तुत याचिका मे नितान्त अभाव पाया जाता है ?

लोक-हित के वादों के परिप्रेक्ष मे, उपरोक्त, संशय, इस बिन्दु पर विचार-शृंखला को अधिक जटिल बना देते हैं। ऐसी परिस्थिति मे यही सर्वोत्तम प्रतीत होता है कि इन संशयो को दृष्टिगत रखकर सर्वप्रथम लोकहित के प्रकरणों की उपयोगिता-अनुपयोगिता के सम्बन्ध में संविधान खण्डपीठ की राय जानी जावे।

सामाजिक-कार्यकर्त्ताओं द्वारा प्रेरित प्रकरण

76 यदि सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ताओं या सगठनो द्वारा लोकहित मे प्रस्तुत प्रकरणों के संदर्भ मे सर्वोच्च न्यायालय सुनवाई हेतु स्वीकृति व्यक्त करता है तो यह राष्ट्र के संवैधानिक इतिहास में एक अभूतपूर्व अध्याय व मील का पत्थर साबित होगा। स्वतन्त्र नागरिक सीधे, संवैधानिक अनुच्छेद 32 की शरण लेकर, सर्वोच्च न्यायालय का द्वार खटखटायेंगे और इस प्रकार पद दलित "दरिद्रनारायण" तक सर्वोच्च न्यायालय न्याय के द्वार खोल देने मे सक्षम होगा। न्यायालयो की जटिल औपचारिकताओ एवं नियमो-उपनियमो के जाल से विमुक्त तथा अपील की सेवा युक्त संभावना से परे हटकर, सर्वोच्च आसन से प्रतिपादित न्याय उनके लिए अवश्य वरदान साबित होगा। किन्तु कुछ वर्षों में ऐसे प्रकरणों की बाढ़ की

स्थिति आ जायेगी जब कि वर्तमान 18 की सदस्य संख्या से युक्त सर्वोच्च न्यायालय सामान्य प्रकरणों की सुनवाई हेतु ही समय नहीं प्रदान कर पायेगा। ऐसी परिस्थिति मे अनुच्छेद 32 के क्षेत्राधिकार को खत्म कर क्यों न इस विषय को उच्च न्यायालयों के अधिकार क्षेत्रों में समायोजित कर दिया जावे। यदि ऐसा नही किया जायेगा तो अन्य विकल्प सर्वोच्च न्यायालय का दो टुकड़ों में विभाजन ही होगी, प्रथम भाग अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत प्रकरणों की सुनवाई हेतु एवं अन्य अपील के अधिकार क्षेत्र की सुनवाई नियत रहेगा।

यदि अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को विलुप्त कर दिया जावे तो नागरिक अपने अधिकारों की रक्षार्थ अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत सम्बन्धित उच्च न्यायालयों में याचिकाएं प्रस्तुत करेंगे जिससे उपरोक्त प्रकरणो से होने वाले सर्वोच्च न्यायालय के कार्य के दबाव को सम्भावित 80–90 प्रतिशत या वर्तमान 50–60 प्रतिशत को किसी सीमा तक कम किया जा सकता है।

क्या अनुच्छेद 32 भारतीय संविधान के मूलभूत ढांचे को व्यक्त करता है ?

77. अनुच्छेद 32 को विलुप्त किये जाने से एक संदेह अवश्य पैदा होता है कि क्या यह परिवर्तन संविधान के मूलभूत ढांचे में व्यतिक्रमण पैदा नही कर देगा ? संविधान के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय की उच्च न्यायालयों एवं अधिकरणों पर सार्वभौमिकता सर्व विदित है, अनुच्छेद 32 तो मात्र अतिरिक्त आयाम प्रदान करता है, जिसके अन्तर्गत स्वतन्त्र नागरिक मौलिक अधिकारों की प्रत्यास्थापन ढूंढ़ते हैं। इसके विलुप्त हो जाने पर भी यह कमी अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालयों द्वारा पूर्ण की जा सकती है।

78. प्रत्येक संभावित परिस्थितियों में विधि-विदों, अभिभाषकों एवं राजनैतिज्ञो द्वारा इस विचारणीय प्रश्न पर वाद-विवाद लाभदायक सिद्ध होगा कि अनुच्छेद 32 की संवैधानिक भूमिका एवं अनिवार्यता कहाँ तक आवश्यक है। मैथ्यू आयोग भी इस संदर्भ में मननशील है, विचार-मन्थन की वेला प्रारम्भ हो चुकी है, निष्कर्ष अभी अनुत्तरित है।

सर्वोच्च न्यायालय—गणतंत्र का तीसरा सदन

79. चतुर्थ प्रश्न के उत्तर की खोज में ही यह भी संभावना उभरती है कि क्या सर्वोच्च न्यायालय लोकसभा एवं राज्यसभा के अतिरिक्त तीसरे सदन के रूप में उभर कर सामने आ रहा है, जो स्वयं प्रथम दो से भी शक्तिशाली प्रतीत होता है। पंचम प्रश्न के रूप मे भूमि आदोलन के अन्तर्गत-सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आधारित क्षति-पूर्ति पर तीखी प्रतिक्रियायें व्यक्त कर न्यूजीलैण्ड के मानदण्डों को प्रतिस्थापित किया गया है। षष्ठम् प्रश्न में यह कहा जा सकता है कि—न्यायालय

द्वारा व्यवस्थापिका में मार्ग-भेदन उसी प्रकार का है, जिस प्रकार जुलाई, 1973 मे न्यूयार्क के एक न्यायालय द्वारा एक आदेश जारी कर कम्बोडिया में बम युद्ध रोकने के निर्देश दिये गये थे।

बंध-पत्र योजना—आसाम में सशस्त्र सेना की गतिविधियां एवं बंगाल में मताधिकार जैसा प्रश्न क्या निषेधाज्ञा के क्षेत्राधिकार में है ?

80. ऐसी प्रतिक्रिया व्यक्त की गई है कि यदि बंध-पत्र योजना में सर्वोच्च न्यायालय व्यवधान नही डालता तो भारत सरकार को एक हजार-करोड़ की आमदनी होती, जैसा न्यूजीलैण्ड मे राष्ट्रीय विकास कानून 1979 के अनुसार न्यायाधिपति राष्ट्रीय महत्त्व के प्रश्नों पर मत व्यक्त करने की परम्परा को नहीं अपनाते हैं—उनके अधिकारों को सीमित दायरे मे रखा गया है। क्या हमने आसाम में सेना की गतिविधियों, बंगाल में चुनाव जैसे मुद्दों पर न्यायालय द्वारा निषेधाज्ञा का क्षेत्राधिकार स्वीकृत कर विस्तृत अधिकार-क्षेत्र नही प्रदान कर रखा है ? मेरी सम्मति मे हमे स्वय के आत्म-विश्लेषण की आवश्यकता है, साथ ही ऐसी निषेधाज्ञाओं की परम्परा को भी त्यागना होगा।

क्या न्यायधिपतियों का राजनैतिक इतिहास होना आवश्यक है ?

81. इस प्रश्न माला का सप्तम् प्रश्न अत्यधिक विशिष्ठ है, जिसके अन्तर्गत आयोग ने न्यायाधीशों के राजनैतिक संस्कारो के सन्दर्भ में विचार जानने का प्रयत्न किया है। उदाहरणार्थ मुख्य न्यायाधिपति अर्ल वारेन् इस पद से पूर्व रिपब्लिकन उपराष्ट्रपति एवं तीन बार राज्यपाल के पद पर सुशोभित रह चुके थे। उनके पूर्ववर्ती पद उन्हें एक सफल मुख्य न्यायाधिपति बनाने मे अत्यधिक सहायक सिद्ध हुए थे। इस संदर्भ में इटली का उदाहरण भी दिया जा सकता है। इस प्रश्न का मेरे द्वारा उत्तर दिया जाना, साँप के टोकरे में हाथ देने के समान प्रतीत होता है। तथापि इस राजनैतिक अंगीकरण एवं नियुक्तियो को हमारे देश में अस्वीकृत ही किया गया है, स्वयं मद्रास के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति ने इसे अनुचित बतलाया है। यदि कोई व्यक्ति मौलिक राष्ट्रीय धारा से जुड़ा है तो वह सामाजिक एवं मानवीय समस्याओ पर न्यायाधीश की हैसियत से अधिक सक्षम व उपयोगी निर्णय दे सकता है, राजनैतिक मान्यताएं न तो इसके लिए आवश्यक हैं और न ही उन्हे इस संदर्भ में बाधक माना जाना चाहिए।

इच्छित खण्डपीठ की अभिलाषा

82. मैथ्यू आयोग की प्रश्नमाला का सत्रहवां एवं अठारहवां प्रश्न निम्नांकित हैः—

(17) क्या आज सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों में अभिभाषकों द्वारा इच्छित (मनभावन) खण्डपीठ की अभिलाषा और उसकी आतुरता से प्रतीक्षा जड़ें नही जमा चुकी हैं ?

(18) ऐसे अभिभापक जो न्यायाधीशों से सीधे खून के रिश्ते से जुड़े हैं, अपनी इस स्थिति से लाभान्वित होकर, क्या परोक्ष रूप मे दिन-दुगुनी-रात-चौगनी आर्थिक प्रगति नही कर रहे हैं ? बेचारा ! न्यायानुरागी वादी-प्रतिवादी कभी-कभी तो मात्र एक विशिष्ठ खण्डपीठ से अपने प्रकरण को स्थानान्तरण कराने हेतु ही उन्हें मुंह मांगी शुल्क राशि अदा कर अनिच्छित अभिभापक का दर्जा प्रदान करता है, जिससे ऐसे अभिभापक भी मन ही मन खिन्न रहते हैं।

काका—न्यायाधीश ?

83. वास्तव मे इच्छित खण्डपीठ का चुनाव एक रणनीति के रूप मे किया जाता है, अन्यथा साधारण खण्डपीठ का वरण या उपेक्षा राष्ट्र के किसी भी न्यायालय में जटिल समस्या पैदा करने में पर्याप्त है। एक प्रतिष्ठित बुद्धिजीवी विचारक ने इसे "काका न्यायाधीशों" के शीर्षक से आलेखित किया है। इसी ग्रीष्म में अभिभापिका एस. प्रमिला ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश नेशार्गी से विवाह रचा कर इस मापदण्ड को नया मोड़ दिया है। नूपुर बशु ने अपने आलेख में श्रीमती प्रमिला के आक्रोश को व्यक्त करते हुए लिखा है कि यह समाज मात्र इस शादी के कारण मुझे मेरे सार्वजनिक जीवन से तिरष्कृत नही कर सकता है, बहिरमुखी, नारी-मुक्ति की पक्षधर श्रीमती प्रमिला ने पुरुष साथियो की ईर्ष्या पर कुठाराघात् करते हुए, पति जज के रहते हुए उसी उच्च न्यायालय में अभिभापिका नहीं रहने की बात को नहीं स्वीकारा है। बार मे चाहे यह तथ्य किसी भी परिप्रेक्ष मे, तर्क-वितर्क युक्त रहे।

हाल ही कर्नाटक उच्च न्यायालय ने महाधिवक्ता भारत सरकार एवं अध्यक्ष बार कौंसिल आफ इंडिया को नोटिस जारी कर उन्हें अपने आक्षेप के समर्थन मे पक्ष प्रस्तुत करने को कहा है।

विद्रोही प्रमिला

84. श्रीमती प्रमिला में छुपी मुक्तानाभ शंख-ध्वनि करती है कि यह एक पूर्व नियोजित संगठित योजना है, जिसके अनुसार मुझे मेरे व्यवसाय से निकाल फेंकने का प्रयास किया जा रहा है, और ऐसा करने के पीछे क्या मंतव्य है, उन्हे दर्शाते हुए वे कहती है:—"क्योंकि मैं नारी हूं और पुरुष की थोथी अहम् भावना नारी का समान स्तर पर उभरना तथा बराबर खड़े होना बर्दाश्त नहीं कर सकती है। मैं मुट्ठी भर दंभी पुरुषत्व की डींग हांकने वालों से हारकर अपना मार्ग नही छोड़ूंगी, यदि वे ऐसा सोचते हैं कि अपने पति जज के साथियों के समक्ष मेरा अभिभापिका के रूप मे उपस्थित होना ठीक नहीं है तो यह मात्र उनकी भ्रम का ही परिचायक है।"

इस प्रकार पति-पत्नी के एक जुट होकर न्यायालयों मे कार्य करने के अनगिनत उदाहरण है, जिनकी एक विस्तृत सूची श्रीमती प्रमिला ने प्रस्तुत की है। इसके अतिरिक्त न्यायाधीशों के बच्चो की भी एक लम्बी सूची जो उन्ही न्यायालयों मे कार्यरत हैं, इसके साथ संलग्न की जा सकती है। ऐसी सूची में एक सर्वोच्च न्यायालय के अभिभाषक जो अपने पिता के साथ उसी न्यायालय में कार्यरत हैं, तथा चार कर्नाटक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के नाम संलग्न हैं, जिनके बच्चे उसी न्यायालय मे अभिभाषक बनकर जीविकोपार्जन में लगे हैं। वास्तव में वे न्यायाधीश जो उसकी नेकनीयती पर उंगली उठाते हैं, स्वयं उनके चचेरे भाई-बन्धु भी उसी न्यायालय में व्यवसायरत् हैं।

किन्तु श्रीमती प्रमिला के कथनों से वे व्यक्ति सहमत नहीं हैं जो पुत्र-पुत्रियों एवं पत्नी की दायित्वपूर्ण स्थितियों को दोहरे आयामों से तोलते हैं। पुत्रो की स्थिति से पत्नी की स्थिति उनकी राय में अधिक संकीर्ण है। किन्तु प्रमिला ऐसे दोहरे माप-दण्डों की पक्षधर नही है, यह विभेद हास्यास्पद ही कहा जायेगा, स्त्री व पुत्रों के लिए अलग-अलग नियमो का यह विभाजन युक्तिहीन है। यदि नियमों का पालन करना है तो सभी पर समान नियम लागू होगे, सभी "भतीजों" को घर बैठना होगा।

कर्नाटक अभिभाषक संघ की अध्यक्षा एवं वर्तमान चयनित सदस्या श्रीमती प्रमिला ने व्यावसायिक रूप से अपने को काफी सक्षम बनाया है, राजनैतिक दृष्टि से भी उसका व्यक्तित्व कम दिलचस्प नहीं है। 1978 में उन्होने मुख्यमंत्री गुण्डूराव के एक प्रभावी चर्चित सदस्य को जनता पार्टी के टिकट पर विधानसभा चुनावो में हराकर विधायिका बनने का गौरव प्राप्त किया। हाल के चुनावो मे हार जाने पर वे आज इंदिरा कर्नाटक प्रदेश कांग्रेस कमेटी की सदस्या हैं।

85. अन्ततः भारत के सर्वोच्च न्यायाधीश द्वारा सभी पक्षों को नोटिस जारी कर रण-दुदुंभी का उद्‌घोष जारी कर दिया है, शायद बार कौंसिल के अतिरिक्त कुछ नैतिक मापदण्डो का निर्माण कर 'काका न्यायाधीशो" की गलीज चर्चाओं पर पटाक्षेप किया जा सके।

अतएव, विधि आयोग की प्रश्नावली के इस प्रमुख प्रश्न पर भी विस्तृत एव खुली चर्चा की आवश्यकता है, ताकि न्यायपालिका के क्रान्तिकारी जीर्णोद्धार या प्राण फूंकने में इससे कोई मदद मिल सके।

बहु-आयामी वाद-विवाद

86. मैंने बहु-आयामी परिप्रेक्ष में न्याय संगत दृष्टिकोण रखकर न्यायपालिका की जीर्ण-क्षीण स्थिति में क्रान्तिकारी विकासोन्मुख परिवर्तन की संभावनाओं पर विचार किया है। विकास की गति वास्तव मे ही विकासोन्मुख होनी

चाहिए, अधोमुखी नहीं, ऐसी आशा की जाती है, जैसा निहालचन्द बनाम दांखा देवी 1983 रा. ला. रि. 397 के संदर्भ मे न्यायालय के समक्ष अवतरित हुआ है जिसमें बचाव पक्ष किरायेदार, मात्र 50 पैसे की राशि ही कुल निर्णीत किराये के 1673.75 रु. में से कम जमा कराने के कारण अपना पक्ष खो बैठने पर मजबूर हुआ।

इस प्रकार तकनीकी अनियमितता के कालचक्र की दुहाई में न्याय की इस पावन संस्था द्वारा जो घोर अनर्थ किया जा रहा है वह इसकी नीवों को झकझोर कर, इस मन्दिर को धराशाही कर, सामाजिक-मानवीय न्याय के सिद्धान्तों की हत्या कर मात्र कसाई प्रवृत्तियों का द्योतक बन विषम अंधकारमय स्थिति का ही अवलम्बन मात्र होगा। उक्त प्रकरण में लोकहित के वादों एवं सामाजिक न्याय के सिद्धान्तो की इस इक्कीसवी शताब्दी की वेला मे सोलहवी शताब्दी के नाटक "मर्चेण्ट ऑफ वेनिस" का प्रस्तुतीकरण जैसा हुआ है, युक्तिसंगत नही कहा जा सकता है। वरिष्ठ अभिभाषक श्री कासलीवाल द्वारा, उपरोक्त निर्णय को यथावत रखकर, पुष्ट किये जाने, व "न्याय के पावन मंदिरो" को न्याय के द्योतक न रखकर वास्तव वे "अन्याय के केन्द्र" नामांकित कर प्रतिस्थापित किये जाने के पीछे मात्र कटाक्षयुक्त तकनीकी व्यंगात्मक भावना ही प्रतीत होती है। ऐसा तर्क नम्बूदरीपाद द्वारा प्रतिपादित प्रकरण के अन्तर्गत कहां तक न्यायालय की अवमानना कर खिल्ली उड़ाने के दायरे मे आता है, इस पर अभी बहुत मनन की आवश्यकता है, इस चीर-फाड़ का दायित्व यदि न्यायाधीशो की अपेक्षा न्यायविदों पर डाला जावे तो श्रेयस्कर होगा। यद्यपि इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अन्तर्गत अनुच्छेद 141 में प्रतिपादित मान्यता ही निर्णायक होगी।

क्या तकनीकी कमजोरियो या अनियमितताओं के आधार पर किये गये अन्याय से पीडित आसुओ पर, सम्पूर्ण न्याय जगत हंसी नही बिखेरेगा ? और हम भी ऐसी व्यवस्था को कहां तक स्वीकारेंगे ?

न्यायपालिका मे क्रान्तिकारी सुधारों पर जहां राष्ट्रव्यापी स्तर पर वाद-विवाद-अग्रसर है ऐसी चेतनशील वेला में भी न्यायालय तकनीकी जटिल पक्ष से अधिक महत्त्व वास्तविक न्याय के उद्देश्यों को देने में अभी हिचकते हैं। न्यायदेवी की हृदय-विदारक अश्रुपूर्ण स्थिति पर कानून विद्रूप अट्टहास कर रहा है, जबकि समस्त न्याय जगत कानो में तेल डाले तकनीकी पक्षों पर बाल की खाल निकालने मे व्यस्त है।

"वास्तविक स्वावलम्बी' और "सामाजिक न्याय" की इस दुंदुभी में क्या 'मर्चेण्ट ऑफ वेनिस' का मंचन प्रशंसनीय कहा जायेगा, और कब तक विद्वान्

अभिभापक "पोर्टिया" की भूमिका निभाते रहेंगे ?

इस रिवीजन याचिका में विद्वान् अभिभापक श्री रामचन्द्र कासलीवाल ने पुनः शेक्सपीयर रचित प्राचीन कहानी दोहराते हुए प्रतिवादी से "बिना एक भी खून की बूंद के एक पाउण्ड मांस" शरीर से काट कर लेने की माँग की है। धन लोलुप यहूदी साहूकार शाईलोक से भी अधिक कपटपूर्ण यह माग स्वयं शेक्सपीयर के नाटक की भावना को भी पीछे छोड़ती प्रतीत होती है।

चाय की प्याली मे तूफान खड़ा करने वाली कुल राशि मात्र 50 पैसे ही थी जो धारा 13(3) राजस्थान प्रेमिसेज कण्ट्रोल एण्ड एविक्शन एक्ट के अन्तर्गत कुल बकाया 1673.75 रुपये किराया राशि मे गल्ती से कम गुन ली गई थी।

87. उपरोक्त तथ्यो को दृष्टिगत रखते हुए उक्त रिवीजन याचिका स्वीकृत की गई। इसके अतिरिक्त जोगधय्यन के प्रकरण मे (आल इण्डिया रिपोर्टर 198 सर्वोच्च न्यायालय 57) जहा 25 पैसे या 50 पैसे कम जमा कराने का मसला था, जिसने न्यायालय के व्यस्ततम बहुमूल्य समय के अतिरिक्त फरीक पर अभिभापकगण के मेहनताने आदि के रूप मे 2,500 से 5,000 रु. तक का अतिरिक्त अनावश्यक आर्थिक भार अवश्य डाला होगा। इस प्रकार ऐंग्लो-सैक्सन न्याय-शास्त्र के आमूल-चूल परिवर्तन की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। माननीय भगवती, देसाई, एव अय्यर आदि, न्यायाधीशो, ने इमे पूर्णतया आदि से अन्त तक बदल डालने की प्रेरणा दी है। किन्तु वही माननीय तुलजापुरकर, अवकाश प्राप्त न्यायाधीश एवं वर्तमान अभिभापक श्री तारकुण्डे एव अवकाश-प्राप्त विधि महाविद्यालय के प्राचार्य श्री टोपे ने उदार दृष्टिकोण अपनाकर इसमे मात्र विधिगत सुधारो की कामना की है। माननीय सिरवई ने सविधान पर अपनी टिप्पणियों मे अय्यर के विचारो को नही अपनाकर श्री तुलजापुरकर एवं श्री टोपे के विचारो को समर्थन प्रदान किया है। इस विवादग्रस्त मसले पर विचार प्रगट करते हुए श्री तारकुण्डे ने निम्नांकित मत प्रकट किया है—'क्या हमारे न्याय-तंत्र को बदल देना चाहिए ?"[1]

हमारी न्यायपालिका ब्रिटिश राजशाही के अवशेषों के रूप में विद्यमान है और यह आवश्यकता महसूस की जाती है कि इसको रूपान्तरित कर बदल दिया जावे, (जैसा पूर्ववर्ती केन्द्रीय विधि मत्री ने व्यक्त किया था) उक्त उदघोषणा झूठी राष्ट्र प्रेम की भावना की दुहाई मात्र ही कही जा सकती है। सर्वोच्च न्यायालय के एक वर्तमान न्यायाधीश ने तो अपने विधिवत निर्णय में न्यायालय को ही कैंसर ग्रसित कह कर बहुत ही कड़ा और खुला आक्षेप किया है। उन्हीं के शब्दो मे—

1. वी. एम. तारकुण्डे, टाइम्स आफ इण्डिया, दिनांक 28-11-82 पृष्ठ-4)

"इस राष्ट्र की न्याय निस्तारण प्रक्रिया पूर्ण रूपेण विदेशी है जिसका हमारे संस्कारो से कोई तारतम्य प्रगट नही होता है। समुद्र पार से व्यापार द्वारा आयातित न्याय-व्यवस्था हम पर साम्राज्यवादियों द्वारा अपने राजनैतिक मंतव्यों की पूर्ति हेतु थोपी गयी प्रतीत होती है। विदेशी शासन के अन्तर्गत एक ऐसा वर्ग विकसित हो गया था, जिसने गरीबी के दमन से पिसते लाखों भारतीयों की कीमत पर अपना उल्लू सीधा किया, और इस व्यवस्था के गुणगान में संलग्न रहे।"

"व्यापार द्वारा आयातित" तथा अनिच्छित "थोपी गयी न्याय-व्यवस्था" जैसी संज्ञाओ से क्या हमारे प्रणेता राष्ट्र-निर्माताओं का अपमान नही होता है ? जिन्होने कि इसकी अच्छाइयो से प्रभावित होकर इसे सहर्ष अंगीकार कर सविधान मे अलकृत किया है। एक महत्त्वाकांक्षी धर्म-सुधारक की सी भावना से ओतप्रोत होकर इन्हीं माननीय विद्वान न्यायाधिपति ने अन्यत्र टीका करते हुए प्रक्रिया संहिताओं और साक्ष्य अधिनियम को उठा फेंकने या नष्ट कर दिये जाने तक का सुझाव दे डाला है, ताकि वे एसी न्याय व्यवस्था का संचालन न कर सकें। श्री तारकुण्डे ने इन विचारो की भर्त्सना करते हुए कहा है कि यदि ऐसी मान्यता वाले व्यक्ति मे अपने विचारो के प्रति थोड़ी भी सच्ची आसक्ति है तो उसे स्वयमेव इस व्यवस्था से ही विमुक्त हो जाना चाहिये।

यदि हवन करने मे भी हाथ जलते हों तो मैं इस विवाद मे नही उलझूंगा किन्तु मैं यह विनम्र निवेदन करना चाहूंगा कि चाहे आप इसे सुधारो की संज्ञा दें या आमूलचूल क्रान्तिकारी परिवर्तन बतलायें, आज मूलभूत आवश्यकता तो विधि-प्रक्रिया मे परिवर्तन कर तकनीकी पक्ष की जटिलता, न्याय-प्राप्ति मे दीर्घकालीन देरी, खर्चीलेपन, फौजदारी न्यायशास्त्र में "सदेह का लाभ" जैसे आयामो पर अंकुश लगाने मात्र से है, जिस पर सभी न्यायविद एकमत हैं, चाहे वे अपने विचारो मे इन्हे किन्हीं भी विशेषणो से सम्बोधित कर प्रकट करें। अब समय आ चुका है जब हमारे लिए वास्तविक और अविलम्ब सामाजिक न्याय ही प्रथम आवश्यकता है, जिसके लिए "करो या मरो" जैसी अन्त:प्रेरणा से कार्यरत होकर अग्रसर होना होगा। उपरोक्त प्रस्तुत प्रकरण न्याय-व्यवस्था मे क्रातिकारी परिवर्तन या सुधारों, अनावश्यक खर्चीलेपन एवं विलम्ब जैसे मुद्दों पर हमारी आखें खोल देने के लिए पर्याप्त है। संकलित विधान की अनुपस्थिति मे न्यायालय किस हद तक निर्णयों मे अपनी भावाभिव्यक्ति कर सकते हैं ? आज इसी महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर, सभी के चक्षु टकटकी लगाये अटके हैं।

सामाजिक न्याय से विमुख न्यायपालिका

88. माननीय अय्यर के विचारों में, अमरीका ने साम्राज्यवादी बेंड्यों को

तोड़कर अनूठे व्यक्तित्व वाली न्यायपालिका का निर्माण किया है, सोवियत संघ ने भी प्राचीन राजशाही से नाता तोड़ कर समाजवादी न्याय-व्यवस्था के सिद्धान्तों का अनुसरण कर स्वावलम्बी सहकारिता की पक्षधर लोकानुरक्त न्यायपालिका को अपनाया। ब्रिटेन, फ्रांस एवं अन्य सामाजिक संगठनों ने भी एक-दूसरे से सामंजस्य व प्रेरणा प्राप्त कर अपनी न्याय-वयवस्था मे समय के साथ-साथ होने वाले सामाजिक-आर्थिक, राजनैतिक, मौलिक-नैतिक परिवर्तनानुसार अपने-अपने ढांचो मे आवश्यकता, नुसार परिवर्तन कर उन्हें उद्देश्यपूर्ण उपयोगी बनाया है। ब्रिटेन ने किसी व्यक्ति को निःसंदेह दोषी ठहराने के लिए जूरी दल द्वारा निर्विरोध अभिव्यक्ति, साक्षी के सशपथ परीक्षण और लिखित सुनी-सुनाई साक्ष्य की स्वीकारोक्ति, जैसी परम्पराओं, मान्यताओं को त्याग दिया है, किन्तु यह शर्मनाक स्थिति है कि हम आज भी अपनी दण्ड-प्रक्रिया-संहिता मे उन्हीं त्याज्य मान्यताओं को अलंकृत किये हुए हैं। हमने अपने कानून एवं न्याय-प्रक्रिया के पुराने ताने-बाने की बुनावट को परिवर्तित ही नही किया है। आज भी हमारी न्याय-संस्थायें विदेशी पश्चात्य मार्गदर्शन पर ही अवलम्बित है और मौलिक मानसिक स्व चेतना के बिंदु पर गौण, दकियानूसी समाजवादी न्यायविद् एव न्याय-व्यवस्था से ओतप्रोत शर्मनाक परिलक्षित होती हैं। मोटे रूप में हमारी न्यायशास्त्रीय स्थिति। सिद्धान्तगत् एवं अवसादपूर्ण है तथा एंग्लोअमेरिकन तथा सामाजिक न्याय से विमुख ही प्रतीत होती है।

अकेले मैकाले एवं सामण्ड को न्यायदेव प्रतिष्ठित करना अन्याय होगा

89. मैकाले व स्टीफन की विचारधारा के आधार पर आपराधिक विधि एव साक्ष्य अधिनियम के अवयवो एवं आदर्श संस्कारों की संरचना की गई है, न्यायशास्त्र मे सामण्ड एव शासन विधि मे स्मिथ के विचार समायोजित हैं, भारतीय संविधान के अनुच्छेदों मे कूले, विलोटी, डायसी, केण्ट और जैनिंग जैसे दर्शनशास्त्रियो के सिद्धान्त हमारे न्यायशास्त्र के अनुच्छेदों के पीछे छुपी आत्मा मे विलीन हुए से स्पष्ट प्रतीत होते है। विश्व विधि दर्शनशास्त्र के अध्ययन को ठुकराना समझदारीपूर्ण नहीं समझा जा सकता, किन्तु पाश्चात्य, ब्रिटिश, अमरीकी एवं अन्य विदेशी विधि दर्शनशास्त्र के अंध आकर्षण के पीछे हमारे स्वयं के दर्शन को स्वीकार नही करना या उसका तिरस्कार करना मात्र दासता का ही परिचायक कहा जा सकता है। हमारे प्राचीन राजनैतिक-विधि-दर्शन ग्रंथों में छुपे हुए गूढ़ रहस्यों की खोज मे कभी लगन से चेष्टा नहीं की गई, और इसी कारण हमारा सम्पूर्ण विधिशास्त्र इस राष्ट्र की सौंधी माटी की खुशबू से एकात्मक न होकर, अलग-अलग ही बना रहा, और आज भी हम साम्राज्यवादी मनोदशा से उबर नहीं पाये हैं। आज भी न्यायालयों के काम-काज में प्रयुक्त भाषा मध्य युगीन सामन्तकालीन

विशेषणों की याद ताजा करती है। जिस अंग्रेजी भाषा एवं वस्त्र-विन्यास का प्रयोग-उपयोग अभिभाषक करते है क्या वह ब्रिटिश-कालीन प्रथाओं की द्योतक नही है ? भारतीय न्यायालय प्राचीन मान्यताओं के कैदी एवं न्याय पिपासु वादी-प्रतिवादी जटिल प्रक्रियाओं, अपीलों एवं अत्यधिक महंगे दुर्लभ न्याय की भूल-भुलय्या में फंसे शिकार मात्र रह गये हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारी न्याय-व्यवस्था में भी समाजवादी आदर्शों को समाविष्ट करने के साथ-साथ प्राचीन भारतीय दर्शन एवं वेदान्त की आत्मा का भी अवलम्बन लिया जाना चाहिए था ताकि हमारी संस्कृति के परिष्कृत होने की संभावना बढ़ती, किन्तु दुर्भाग्य से साम्राज्यवादी औपनिवेशिक जुए को उतार फेंकने के स्थान पर उल्टे हमने हमारी न्यायपालिका में इसे और भी मजबूती से ढोना स्वीकार कर लिया है।

चौपाल पर न्याय देने का उद्देश्य

90. यह हमारा परम कर्तव्य है कि प्रत्येक छोटे-बड़े गांव एवं झोपड़ियों में रहने वाले गरीब, कृषक, भूमिहीन, श्रमिक, गन्दी-बस्ती-निवासियों को सस्ता, सुलभ एवं सामाजिक न्याय देकर न्यायिक प्रणाली में नवीनीकरण द्वारा चौपाल पर न्याय देने की प्रणाली पुनः स्थापित करें। क्या चन्द्रचूड़-भगवती न्यायालय एवं विधि मंत्री के विधिक दर्शन को इस जटिल कार्य में सफलता मिलेगी ? हम इस महायज्ञ मे आहुति दें एव विक्रमादित्य और जहांगीर की न्याय-प्रणाली को पुनर्जीवित करें। इसमें हमें भली-भांति विचार कर "न्याय पालिका के सामाजिक न्याय के प्रकरण" की सफलता हेतु तीव्रता से आगे बढ़ना है।

स्थानान्तरण प्रकरण

91. बार के विभिन्न वर्गों में एक नया न्यायिक युग आरम्भ हो गया, जिनमे से कुछ तो उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीशों को उस राज्य के बाहर से लाकर थोपने की सरकार की नीति के विरुद्ध या उसके पक्ष मे बोलने लगे। यह नीति निर्णय सर्व प्रथम श्री शिवशंकर, तत्कालीन विधि मंत्री ने लिया एवं इसके बाद पटना एवं तामिलनाडू के मुख्य न्यायाधीशों का स्थानान्तरण किया गया जिसके फलस्वरूप मद्रास के मुख्य न्यायाधीश श्री इस्माइल ने त्याग-पत्र दे दिया। पटना के श्री सिंह द्वारा तामिलनाडु के मुख्य न्यायधीश का पद ग्रहण के समय मद्रास की बार कौंसिल श्री इस्माइल के पश्चात् स्थानीय मुख्य न्यायाधीश का अभिवाक कर हवा में कलाबाजियां करते हुए प्रारम्भ में आपत्ति करते हुए विशिष्ठ संवैधानिक पीठ के न्यायधीशों के निर्णय के बाद शिथिल पड़ गई। केरल के न्यायाधीश श्री खालिद द्वारा कश्मीर के मुख्य न्यायाधीश का पद ग्रहण करने एव केरल के कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश श्री पोती को गुजरात के मुख्य न्यायाधीश के रूप मे

स्थानान्तरित करने और काश्मीर के मुख्य न्यायाधीश को सिक्किम के मुख्य न्यायाधीश के रूप मे भेजने तथा गोहाटी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का उड़ीसा स्थानान्तरण करने की घोषणा का उड़ीसा एवं कश्मीर की बार ने विरोध किया। जम्मू एवं कश्मीर की विधान सभा ने पूर्ण स्वर से वाद-विवाद के पश्चात् यह मांग की कि राज्य के बाहर से कोई भी मुख्य न्यायाधीश वहां पर नहीं भेजा जाये।

विधिज्ञ परिषद् द्वारा स्थानान्तरण का विरोध

92. भारत की विधिज्ञ परिषद्, ने भी जिसने पूर्व मे राज्य से बाहर के मुख्य न्यायधीश के लिए प्रस्ताव पारित किया था, इन स्थानान्तरणो का विरोध किया। समस्त प्रादेशिक राजधानियों एवं विधि-मंत्री के लोग, भारत में सभी मुख्य न्यायाधीश एवं प्रधानमंत्री की सचिवालय का विधिक प्रकोष्ठ मुख्य न्यायाधीशो के सम्भावित स्थानान्तरणों से अधिभारित हो गए कि तुरन्त बाद कोचीन के 1/3 न्यायाधीशों को काश्मीर लाया गया। बार, पीठ, विधिशास्त्रीयो एवं न्यायपालिका से संबंधित राजनीतिज्ञों का समस्त न्यायिक संसार तीव्र प्रचार एवं आलोचनात्मक टिप्पणियां करने तथा परस्पर विपरीत वर्गों से मिलकर स्थानान्तरण के विरुद्ध गठजोड़ करने में लीन हो गया। यहां तक कि राष्ट्रपति को भी प्रार्थना देने के संबंध मे जोड़ा जाने लगा।

विधिशास्त्रियों का ध्यान हटाया गया

93. इस समय कोई भी विधि शास्त्री या न्यायाधीश या बार का प्रमुख, न्यायपालिका की उस गंभीर समस्या का वस्तुनिष्ठ अध्ययन नहीं कर सकता जिसे मैंने न्यायालयों की प्रक्रिया एवं कार्य न्यायाधीशों एवं स्टाफ की संख्या बढ़ाने तथा निर्णयों को गति प्रदान करने, बकाया कार्य के शीघ्र निपटाने हेतु उन्हें आधुनिक कम्प्यूटर व इलैक्ट्रोनिक युक्तियाँ उपलब्ध कराने और मुख्य न्यायाधीश की प्रधानता की पुनःस्थापना एवं न्यायपालिका को वित्तीय स्वायत्तता देकर शीघ्र न्याय सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर जोर दिया था।

हेतु पक्के इरादे से मजबूत वादा एवं तीव्र इच्छा व वास्तविक समर्पण के साथ स्वतंत्र न्यायपालिका की जड़ों को खोखला कर रहा है।

ऐसी स्थिति में न्यायापालिका में से ग्रय्यर, गजेन्द्र गडकर एवं अब भगवती, देसाई, रेड्डी, ठक्कर आदि और डा० उपेन्द्र बख्शी, कृष्ण महाजन, माधव मेनन, भसीन, घोष अधिवक्ताओं तथा अनेकान्य सामाजिक इंजीनियर, पत्रकार, वकील व विधि शास्त्रियों के नेतृत्व में होने वाले न्यायिक काया-कल्प व क्रांति की प्रक्रिया को अधिक स्थानान्तरणों ने पीछे छोड़ दिया। स्वतंत्र न्याय-पालिका पर रोक की चिन्ता जैसा कि सीरवई एवं अन्य विधि-शास्त्रियों ने अभिव्यक्त किया है, पूर्णरूपेण सही नही हो सकता है लेकिन अगर न्यायपालिका को वास्तविक व शीघ्र न्याय करना है तो विधि मंत्री एवं मुख्य न्यायाधीश का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि वे इन स्थानान्तरणों के बादलों को साफ करें जिससे कि न्यायिक क्षितिज सर्वोच्चता को पुनः प्राप्त कर सके एवं सामाजिक न्याय के नवीन पहलू केवल सेमीनार एव सर्वोच्च न्यायालय के कुछेक व्याख्यानात्मक निर्णय में ही नही बल्कि व्यावहारिक रूप से न्याय-मंदिरों मे सर्वोच्च न्यायालय से न्यायिक मजिस्ट्रेट तक, एवं कलकत्ता से कच्छ तक प्रभावी रूप से अंकित किए जा सकें।

जहांगीर के लोकहित मुकदमों की घंटी अग्नि में

95. आज अगर एक साधारण व्यक्ति किसी आपत्ति मे होता है तो उसके लिए उच्चतम न्यायालय ही एक आशा है। करोड़ों डालर के प्रश्न "खजन-मडल की मृत्यु क्यो हुई" पर बिहार के एक सामाजिक विधिक पत्रकार बसुधा फागम्बर का अध्ययन भारतीय न्यायपालिका की नवीनतम तत्कालीन महत्त्वपूर्ण बातों को लाता है, जो निःसन्देह-प्रणाली की अग्नि परीक्षा मे अन्तरपीठ एवं बार-पीठ प्रक्षेप तथा बाहरी कत्लेआम और इसके पुराने अप्रचलित लार्ड क्लाइव के यूनियन जैक के साथ-साथ न्यायाधीशों के अधिक्रमण एवं स्थानान्तरण के भय का अणु-विस्फोट है।

मंडल की हत्या – लोक-हित मुकदमों के लिए नेत्र खोलनेवाला

96. फागम्बर ने 15 वर्ष के कठिन एवं भयंकर दुःखद विधिक युद्ध का परीक्षण किया, जिसे मंडल ने लड़ा क्योकि धनिक भूस्वामी ने उसकी भूमि एवं निवास से उसे निकाल दिया था एवं अंत में उसने उच्चतम न्यायालय से यह निर्देश प्राप्त करने मे सफलता प्राप्त की कि उसे भूमि वापस देने की बजाय उसकी मुफ्त विधिक सहायता की जाय। भूमिहीन एवं बेघर होने के बाद मंडल को अंधा किया गया, भयभीत किया गया, गिरफ्तार किया गया एवं अंत मे मार दिया गया। यह कीमत उसे इसलिए चुकानी पड़ी कि उसने भूपति कुलक के विरुद्ध

अपनी अंगुली उठाई एवं मुफ्त विधिक सहायता हेतु वह याचिका दायर करने के लिए न्यायालय में गया जिसका कि उसने कभी प्रयोग भी नहीं किया। फागम्बर के अनुसार जो समस्या मंडल की दुर्दशा से स्पष्ट हुई है वह यह कि लोक-चेतनायुक्त वकील इस संरक्षण एवं शक्ति के संसार में अपने पक्षकारों के लिए न्याय तो प्राप्त कर लेते हैं लेकिन वे उनको उसी दलित संसार में वापस भेज देते हैं जिससे वे आते हैं।

97. लेखक का प्रश्न है कि खंजन मंडल का यह भाग्य रहा तो उनकी दुर्दशा कैसी होगी जिनके मामले संयोगवश रिपोर्ट के आधार पर पकड़े जाते हैं एव "लोकहित मुकदमे" के रूप मे उच्चतम न्यायालय मे लाए जाते हैं।

कमला हत्या ?

98. कमला लापता हो चुकी थी सम्भवतः मार दी गई क्योंकि लोकहित मुकदमों में उसके मामले का राष्ट्रीय शीर्षक में आने के बाद उसकी लगातार उपस्थिति सरकार को बहुत ही कष्टदायक थी। लोकहित मुकदमे मे उच्चतम न्यायालय के आदेश के बाद "नारी निकेतन लड़कियां". "लाल बत्ती क्षेत्रों" एवं "कोठावालियों" के पास वैश्यावृत्ति के लिए जाने को विवश की गई। पहाड़िया लड़के, जिन्हें आठ वर्ष से लम्बे समय तक विचाराधीन रहने के बाद जेल से छोड़ा गया, पुलिस के बदले के भय के कारण भी फागम्बर से कभी नहीं मिले। इस पृष्ठभूमि में श्री फागम्बर ने निम्नलिखित सारांश निकाला :—

"लोकहित मुकदमें के प्रत्येक दर्पयोग से यह अर्थ निकलता है कि खंजन मंडल ने गलती की कि उसने हमारी न्याय-प्रणाली पर विश्वास किया। उसे इस अनिवार्यता के समक्ष नत-मस्तक हो जाना चाहिए था। कम-से-कम उसके अंधेपन के बाद एवं अपने बचे हुए दिनो को इंसान की तरह न जीकर कीड़े की तरह तो जीता। खंजन मंडल मर चुका है, लेकिन अगर हम इस अवसर को लोकहित मुकदमें की परिसीमाओं एवं बल के बारे में प्रयोग करें तो उसके जीवन एवं मृत्यु से उस जैसे व्यक्ति की उपयुक्त प्रशंसा करने के बारे में कुछ सीख पाएंगे।"

हम न्यायिक जाग्रति के चौराहे पर खड़े हैं। इसलिए न्यायिक कायाकल्प के उद्देश्य से हमे केवल वाद-विवाद, विचार-विमर्श एवं सेमीनार हेतु "अस्पष्ट एवं बड़े" नारों के बजाय न्यायिक क्रान्ति का संक्षिप्त विचार उद्घोषित करना है। चाहे कृष्णा अय्यर हो या अन्य विधि शास्त्री चन्द्रचूड़, भगवती, देसाई, ठक्कर, या रेड्डी, पाठक अथवा सेन हों, या अन्य बुद्धिजीवी प्रोफेसर उपेन्द्र बक्शी या सीरवाई मेनन हों, सभी को पुराने, अप्रचलित एवं एंग्लो-सैक्सन विधि शास्त्र के

स्थान पर सम्पूर्ण नये जन आधारित विधिशास्त्र का निर्माण करना चाहिए एवं हर सम्भव समाजवाद पर आधारित समाज की वर्तमान आवश्यकताओं के अनुसार इसे आधारभूत रूप से ही परिवर्तित कर देना चाहिए, जिससे कि गरीब एवं दलित वर्ग को सामाजिक, सस्ता, सुलभ एवं शीघ्र न्याय मिल सके। इससे हम न्यायिक आत्महत्या को बचा सकते हैं एवं "निहित स्वार्थी" व शक्ति आधारित समूहों के घातक हमलो से रक्षा कर सकते हैं। गरीब को विधिक सहायता एवं रचनात्मक तथा उपयोगी लोकहित मुकदमे को उत्साहित कर लोक-अदालतों, न्याय-पंचायतों एवं विधिक वाहन के अतिरिक्त घर पर न्याय प्रणाली एवं चौपाल पर न्याय देने हेतु हमें अपनी भाषा, चाहे वह हिन्दी हो या अन्य राज्यों की प्रादेशिक भाषा उसी का उपयोग करना चाहिए। इसी से हमारा न्यायिक उद्धार हो सकता है।

प्रतिक्रान्ति से क्रान्ति—युग परिवर्तन, 12 जुलाई 1985

न्यायिक क्रान्ति व प्रतिक्रान्ति के संघर्ष में नवीन संक्रमण काल का शुभारंभ 12 जुलाई 1985 को भारत में, विश्व की विशालतम न्यायपालिका के सर्वोच्च गौरवमय पद पर मुख्य न्यायाधिपति की शपथ ग्रहण से हुआ है। यह क्रान्तिकारी भगवती न्यायालय का प्रादुर्भाव, विश्व में "भगवती" के "भागीरथ" बन हर गाव, चौराहे व चौपाल पर न्याय गंगा को अवतरित करने के संकल्प की अग्नि परीक्षा भी है।

प्रतिक्रान्ति के सूत्राधारों ने चन्द्रचूड़ न्यायालय में आश्रय पाने की असफल चेष्टा की, परन्तु उनके नायक बनने से नकार कर, चन्द्रचूड़ ने उसे लगभग धूमिल कर दिया व मध्यम मार्ग अपनाकर चन्द्रचूड़ ने क्रान्ति व प्रतिक्रान्ति दोनों को बीच बचाव से संतुलन बनाये रखा, यद्यपि झुकाव रूढ़ीवादी अधिक रहा।

उच्चतम न्यायालय में लगभग साढ़े सात वर्ष तक मुख्य न्यायाधिपति रहने का श्रेय प्राप्त कर, अवकाश पर चन्द्रचूड़ ने, भारतीय न्याय प्रणाली, न्यायपालिका व न्यायाधीशों का विश्लेपण पत्रकारों से साक्षात्कार मे किया।

चन्द्रचूड़ ने रूढ़ीवादिता को तिलांजलि दे अन्तिम क्षणों मे पत्रकारो को साक्षात्कार देकर न्यायिक क्षतिज मे स्पष्टीकरण कर जो आभा ज्योतित की वह तुलजापुरकर विचारधारा व भगवती, अय्यर, देसाई विचारधारा के तीव्रतम संघर्ष मे क्या भूमिका अदा करेगी ? इसका मूल्यांकन 21वी सदी मे हो सकेगा। पाठको के चिन्तन के लिये वह सादर "ज्यों का त्यों" प्रस्तुत है, पत्रकारों की कहानी, उनकी जुबानी, कुलदीप नायर की लेखनी से :

कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीशों की नियुक्ति खतरनाक[1]

भारत के मुख्य न्यायाधीश वाई.वी. चंद्रचूड़ का कहना है कि उनकी सहमति के बिना सर्वोच्च न्यायालय अथवा किसी भी उच्च न्यायालय में किसी न्यायाधीश की नियुक्ति नही की गई और स्वर्गीय श्रीमति इंदिरा गांधी ने तो यहा तक कहा था कि हो सकता है आपकी (चंद्रचूड़) की असहमति से हम नाराज हों किन्तु फिर भी मुख्य न्यायाधीश के नाते आपके फैसलो का हम सम्मान करेंगे। किन्तु फिर भी जहां गलत नियुक्तियों के प्रस्ताव किए गए और कई महीनों और वर्षों से जो मामले लंबित पडे हैं, उन्हें मुख्य न्यायाधीश को अपने कार्यकाल की समाप्ति से पूर्व मंजूर करना होगा।

मुख्य न्यायाधीश चन्द्रचूड़ ने स्वीकार किया है कि उन्होने सरकार के दबाव में आकर न्यायधीशों की नियुक्तिया नहीं की हैं अपितु संस्था के हित मे ऐसा किया है। मान लीजिए मुख्य न्यायाधीश और सरकार के बीच यदि नियुक्तियो पर सहमति नहीं हो तो किसी न्यायाधीश की नियुक्ति ही नहीं होगी। साथ ही मुख्य न्यायाधीश कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीशों की नियुक्ति को सही नही मानते। चंद्रचूड़ का कहना है कि बार बार सरकार के अनुरोध और इस आश्वासन पर वे कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीशों की नियुक्ति की सहमति देते हैं कि नियुक्ति कुछ समय के लिए ही होगी किन्तु इन कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीशो को पूरे तीन साल तक पद पर बनाए रखा जाता है जो खतरनाक परम्परा है।

चंद्रचूड़ ने कहा कि जब मुझे पता चलता है कि उच्च न्यायालयों के प्रशासन की वजह से लोगो को परेशानी हो रही है, तो मैं कर भी क्या सकता हूं? उन्होंने कहा, न्यायाधीशों की नियुक्तियो की प्रक्रिया का लोकतन्त्रीकरण किया जाना चाहिए तथा भारत के मुख्य न्यायाधीश को ही नियुक्तियों संबंधी इतने अधिकार क्यों हों? उन्होने कहा कि इस बारे मे खुली बहस की व्यवस्था की जा सकती है। चंद्रचूड़ ने सुझाव दिया कि भारत के मुख्य न्यायाधीश तथा दो वरिष्ठतम न्यायाधीशो का एक पैनल बना दिया जाए जो जिस राज्य में मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया जाना है उसी राज्य के मुख्य मंत्री तथा केन्द्रीय विधि मंत्री के साथ इस मामले पर विचार-विमर्श कर नियुक्ति करे।

चंद्रचूड़ ने कहा आज क्या होता है कि फलां न्यायाधीश कम्युनिस्ट है अथवा अमुक न्यायाधीश आर. एस. एस. समर्थक है। उन्होने कहा कि जनता पार्टी शासन में कहा जाता था कि अमुक व्यक्ति की नियुक्ति नहीं की जाए क्योंकि वह कांग्रेसी है।

1. राजस्थान, पत्रिका दिनांक 8-7-85 पृष्ठ 1 व 10 कुलदीप नायर द्वारा साक्षात्कार।

जब मुख्य न्यायाधीश से पूछा गया कि क्या वे 'केशवानन्द भारती केस' पर पुर्नविचार करना चाहेंगे जिसमें कहा गया था कि संविधान के मूलभूत स्वरूप को नहीं बदला जा सकता। चंद्रचूड़ ने कहा कि उस समय उस केस में मैं अल्पमत मे था तथा बहुमत का फैसला सही ही है। उन्होने कहा कि इस फैसले से काफी लाभ हुआ है तथा अंततः यह भारत के लोकतांत्रिक स्वरूप को बनाने मे भी सहायक होगा। आपातकाल में 'हेबीयस कोर्पस' के बारे में पूछे जाने पर चंद्रचूड़ ने कहा कि उन्होने ऐसी याचिकाओं का विरोध करने पर दुःख व्यक्त किया था। चन्द्रचूड़ ने कहा कि उन्होंने अपने कार्यकाल के दौरान अनेक बार मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए कानून की खिचाई भी की।

चन्द्रचूड़ ने कहा कि न्यायाधीशो के तबादलों के मामले पर वे शुरू से ही खिलाफ हैं और आशा व्यक्त की कि इस पर पुनर्विचार होगा। उन्होंने कहा इस मामले में मैं अपना विरोध एक से ज्यादा बार सरकार को दोहरा चुका हूं। इसी कारण अभी तक मेरे कार्यकाल में किसी भी न्यायाधीश का तबादला नहीं किया गया। अदालतों के बढ़ते मुकदमों को कम करने के बारे मे चन्द्रचूड़ ने कहा कि समूची व्यवस्था को ही बदलना होगा। उन्होंने कहा कि जिला अदालतों मे दो न्यायाधीश किसी अपील पर विचार करें तथा उस पर आगे अपील की इजाजत न हो।

मुख्य न्यायाधीश ने कहा कि न्यायाधीशो में वैचारिक मतभेद कोई खास मतभेद नहीं हैं कि जाति पर आधारित मतभेद खतरनाक है। उन्होने कहा कि एक उच्च न्यायालय का मैं उदाहरण दूंगा। इलाहबाद उच्च न्यायालय मे जातिवाद का इतना अधिक बोलबाला है कि न्यायाधीश सतीशचन्द्र अग्रवाल की नियुक्ति का पहले क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने विरोध किया। बाद मे जब इन लोगो को पता चला कि यशोनन्दन को मुख्य न्यायाधीश बनाया जा रहा है तो उनसे ब्राह्मण मिले और कहा कि सतीशचन्द्र अग्रवाल को ही मुख्य न्यायाधीश बना दें, वरना क्षत्रिय राज करेंगे।

"भगवती" क्या "भागीरथ" बन सकेंगे ?

इसी संदर्भ में शपथ ग्रहण की वेला पर भगवती न्यायालय क्या न्याय गंगा का भागीरथ न्यायालय बन सकेगा—इन प्रश्नों के घेरे मे भगवती ने अपनी कल्पनाओ को साकार बनाने, भारतीय न्यायिक क्रान्ति की क्या आधार शिला बनाई है व क्या स्वप्न साकार होगे—उसे साक्षात्कार के रूप मे पत्रकारों व पत्रो की कतरन से प्रस्तुत है। भगवती द्वारा "सामाजिक न्याय" का शखनाद निम्न *ऐतिहासिक* शब्दो मे उद्घोषित किया गया है:—

कानून सिर्फ संविधान और भारतीय जनता से प्रतिबद्ध है

प्रश्न : कानूनी व्यवस्था में आपके अनुसार कौन सी बड़ी समस्याएं हैं ? आप उनसे कैसे निपटने वाले हैं ?

उत्तर : दो समस्याएं सबसे बड़ी हैं। एक तो अनिर्णीत मुकदमों की बढ़ती हुई संख्या और दूसरी उनकी ऊंची लागत।

पहले अनिर्णीत मामलों को लेते है। मेरा विश्वास है कि प्रशासन और लागत प्रबन्धन में वैज्ञानिकता लाने और कम्प्यूटर तकनीक की शुरुआत से हम पुराने मामलों को जल्दी निपटा सकते हैं। कम्प्यूटर तकनीक दो तरह से मदद कर सकती है। एक तो वह मामलो का वर्गीकरण कर सकती है जिससे किसी भी समय प्रमुख न्यायाधीश को पता चल जाए कि कानून के एक नुक्ते पर या किसी कानून के किसी विशेष प्रावधान के लागू किए जाने पर कितने मामले अनिर्णीत पड़े हुए हैं। तब जैसे ही कानून के किसी नुक्ते पर निर्णय होता है या किसी विशेष प्रावधान की व्याख्या की जाती है तो कम्प्यूटर से तुरन्त पता चल जाएगा कि दूसरे ऐसे कितने मामले हैं और उच्चतम न्यायालय की उसी खंडपीठ द्वारा उनका निपटारा भी किया जा सकेगा।

दूसरे, मामलाती कानून (केस लॉ) के लिए कम्प्यूटर तकनीक इस्तेमाल की जा सकती है। पहले दिए गए और रोज दिए जाने वाले फैसले कम्प्यूटर में भरे जा सकते हैं और अदालत को जब भी जरूरत हो उनकी छपी हुई प्रतिलिपि निकाली जा सकती है। जिससे यह मालूम पड़ जाएगा कि कानून के किसी खास नुक्ते पर क्या फैसले हुए हैं या एक खास मुद्दे पर उनका कितना पालन किया गया है। इससे अदालतों मे इन मामलों पर खर्च होने वाला समय बहुत बचेगा।

एक स्थिति यह भी आ सकती है जबकि महत्त्वपूर्ण मामलों मे मौखिक बहस पर सीमा लगाई जाए और लिखित पैरवी को प्रोत्साहित किया जाए या उसी की मांग की जाए। एक और काम मैं यह करूंगा कि अमेरिका की तरह यहां भी लॉ क्लर्क के पद की स्थापना करूंगा। न्यायाधीशों को बहुत सारा शोध-कार्य करना पड़ता है, विदेश में कानूनी चिंतन मे क्या परिवर्तन हो रहे हैं इसे देखना होता है, कानून की पत्रिकाओं मे लेख आदि पढ़ने पड़ते है। पठन और शोध से नए विचार मिलते हैं। एक अच्छा लॉ क्लर्क इन सबमे न्यायाधीश की मदद कर सकता है। मैं अपने लिए लॉ क्लर्क नियुक्त करूंगा और यदि दूसरे न्यायाधीश चाहें तो वे भी कर सकते हैं।

मुकदमों की लागत बहुत बढ़ गई है और यह एक विकट समस्या है। मुझे बताया गया है कि विशेष याचिका पर 5 हजार रुपया खर्च आता है। मामूली

हैसियत का आदमी उच्चतम न्यायालय तक आ ही नहीं सकता। इसलिए हमने जनहित वादकरण की नई नीति बनाई है जिसके अंतर्गत कोई भी जनभावना वाला व्यक्ति या सामाजिक पहल करने वाला दल गरीबों तथा अल्प सुविधा प्राप्त लोगों के अधिकारों के लिए अदालत में आ सकता है ताकि उनका शोषण समाप्त हो। यह सिर्फ एक पत्र के जरिए भी किया जा सकता है।

ऐसी कई अर्जियां अदालत में आई हैं और आ रही हैं। गरीबों और कुचले हुए वर्गों के लिए अदालत के दरवाजे पहली बार खुल रहे हैं। अदालत ने सामाजिक-कानूनी जांच आयोग नियुक्त कर सारे तथ्य जानने और व्यापक उपचार करने की पहल की है। यह लीक से हटकर किया गया है। इनके जरिए हम और भी गरीबों तक पहुंचने का यत्न करेंगे।

प्रश्न : जनहित के मुकदमें और दूसरे असामान्य तरीके, जो अदालत ने विशेषतः आपकी पहल से अपनाए हैं, 'लोकप्रियता' प्राप्त करने के हथकण्डे कहे जा रहे हैं। कुछ लोग तो यहां तक कहते हैं कि कानूनी परम्पराओं का हनन करके न्यायाधीश अपनी छवि बनाने की कोशिश कर रहे हैं।

उत्तर : ऐसा कहना अदालत जो कुछ करने जा रही है उसकी कुत्सित व्याख्या करना है। जनहित के मुकदमे देश के उन लोगों तक कानून का लाभ पहुंचाने के लिए स्वीकृत किए जा रहे है जिन्हें पैसों के कारण कानून से बाहर कर दिया गया है और जिन तक कानून कभी नहीं पहुंचता। मुझे समझ में नहीं आता कि लोग जनहित मुकदमो के खिलाफ क्यों हैं। इनसे निर्धनों की पुकार सुनी जा रही है। उनका शोषण खत्म किया जा रहा है। उन्हे सामाजिक न्याय दिलाया जा रहा है। क्या इन आलोचकों का दिल लोगों की दुर्दशा और तकलीफ के आगे नही पिघलता ? न्यायाधीशों मे से कई वकील रहे हैं और सम्पन्न वर्ग से पैसा कमाते रहें हैं। उन्होंने देश के लाखो लोगों की गरीबी नही देखी है। इसीलिए वे सोचते है कि कानन एक आरामगाह है जहां नियमों की सिर्फ यान्त्रिक व्याख्या होती है।

मैंने गरीबी का चेहरा देखा है। मैं गांव मे गया हूं और लोगों की गरीबी और लाचारी देखी है। गरीबी एक शाप है जो हमारी सामाजिक और आर्थिक संस्थाओ का नतीजा है। कानून का काम होना चाहिए गरीबी पैदा करने वाली और बनाए रखने वाली संस्थाओं को बदलना। जनहित मुकदमे इसी समस्या से जूझते हैं।

प्रश्न : सेवा-निवृत्त प्रमुख न्यायाधीश श्री चन्द्रचूड ने कहा है कि न्यायपालिका को खतरा अन्दर से ही है। क्या आप इससे सहमत हैं ?

उत्तर : मैं बिल्कुल सहमत हूं कि अदालतों की आजादी को अंदरूनी खतरा ही अधिक है। सरकार ने कभी न्यायपालिका को प्रभावित करने की कोशिश नहीं की और न यह बताने की कि उसे क्या करना चाहिए। लेकिन कभी-कभी हम न्यायाधीश ही खुल्लमखुल्ला एक-दूसरे पर कीचड़ उछालते हैं। इससे अदालत की छवि पर बुरा असर पड़ता है। प्रकट रूप में आलोचना करने की इस प्रवृत्ति से जनता का विश्वास न्याय और न्यायपालिका से उठने लगता है। मेरे लिए न्यायपालिका की स्वतंत्रता एक बहुत गतिशील विचार है। इसका अर्थ है न सिर्फ राजनीति से स्वतंत्रता बल्कि सामाजिक और आर्थिक बंधनों से भी स्वतंत्रता।

प्रश्न : आर्थिक-सामाजिक संस्थाओं को बदलने के लिए प्रमुख न्यायाधीश की हैसियत से आप क्या करेंगे ?

उत्तर : जनहित मुकदमे सरकार और नौकरशाही द्वारा गरीबों के अधिकारों को नकारने और शक्ति के दुरुपयोग के विरुद्ध हैं। अदालत सरकार को बाध्य कर रही है कि वह अपने संवैधानिक और कानूनी कर्त्तव्यों का पालन करे। लेकिन इसके लिए एक व्यापक तथा गतिशील कानूनी सहायता कार्यक्रम की भी जरूरत है। इसके लिए भारत सरकार ने मुझ से सहमति प्रकट की है और इस विषय पर राष्ट्रीय कानून बनेगा।

प्रश्न : कानूनी सक्रियता की नई चिंतनशैली के क्षेत्र मे नया मार्ग दिखाने वाले के रूप में आप एक न्यायाधीश की भूमिका की व्याख्या किस तरह करेंगे ?

उत्तर : जनतान्त्रिक व्यवस्था में न्यायाधीश को बहुत महत्त्वपूर्ण और सशक्त भूमिका निभानी होती है। न्यायपालिका को ही फैसला देना होता है कि राज्य के किसी अंग ने संविधान की सीमाओं में रहकर कोई कार्य किया है या नहीं ? न्यायपालिका को ही संविधान और कानून की व्याख्या करनी पड़ती है, जो एक बहुत रचनात्मक कार्य है। न्यायपालिका को काम ग्रामोफोन रिकार्ड की तरह जो पहले से भरा गया है, उसे दुहरा देना नहीं है। यह एक भ्रामक और पुरातनपंथी धारणा है। किसी अधिनियम की व्याख्या करते समय भी न्यायाधीश कानून को विकसित कर सकता है, उसे आकार दे सकता है। कानून बनाने वाली संस्थाओ द्वारा दिए गए शुष्क कंकाल मे वही रक्त और जीवन का संचार करता है, ताकि वह एक ऐसी जीवंत वस्तु बन सके, जिससे समाज की आवश्यकताएं पूरी हों। न्यायाधीश नक्काल नही होता। उसका काम नकल करके हूबहू दूसरी आवाज निकालना नही होता। उससे कुछ ज्यादा की उम्मीद की जाती है। हमारे देश मे न्यायाधीश नियुक्त किए जाते है चुने नही जाते। न्यायाधीशो का यह कर्त्तव्य है

कि वे कानून की ऐसी व्याख्या करें, उसे इस तरह लागू करें कि जनता को सामाजिक न्याय मिल सके।

प्रश्न : अब तक उच्चतम न्यायालय ने यह रूख अपनाया है कि मौलिक अधिकार निदेशात्मक अधिकारों से ऊपर होते हैं। लेकिन आपका विचार इससे विपरीत है। क्या इस प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय के रुख में कोई क्रातिकारी परिवर्तन आएगा ?

उत्तर : यह उचित सवाल नहीं है। उच्चतम न्यायालय पहले कैसे काम करता रहा है इस पर मेरा कुछ कहना ठीक नहीं है। यह मेरी संस्था है और मुझे इस पर बहुत गर्व है। भविष्य में यह कैसा रूप लेगी यह इस वक्त कहना मेरे लिए कठिन है।

प्रश्न : सरकार द्वारा चुने गये न्यायाधीशों को लेकर आप अपनी पसंद कैसे लागू करेंगे ?

उत्तर : मैं नहीं समझता कि कोई भी जनतान्त्रिक सरकार प्रमुख न्यायाधीश के विचारों की अवहेलना कर न्यायाधीशो को नियुक्त करेगी। यदि प्रमुख न्यायाधीश अपने विचारों पर अटल रहे तो सरकार को उसकी सलाह माननी ही पड़ेगी।

प्रश्न : मान लीजिए कि सरकार द्वारा चुने गए नामो से आपका मतभेद हो तो ?

उत्तर : ऐसा हो कैसा सकता है ? प्रस्ताव प्रमुख न्यायाधीश से है। भारत सरकार चाहे तो सलाह-मशवरा कर सकती है। मैं ऐसी अपेक्षा करुंगा कि ऐसी कोई नियुक्ति न हो जिसे प्रमुख न्यायाधीश का समर्थन न मिला हो।

प्रश्न : कुछ वकील कहते हैं कि आपकी जगह किसी जूनियर न्यायाधीश को प्रमुख न्यायाधीश बनाया जाना चाहिए था।

उत्तर : जब तक कि कोई बिल्कुल ही अन्याय न हो, मैं इस बात का बिल्कुल कायल नही हूं कि वरिष्ठ आदमी से ऊपर जूनियर आदमी बैठा दिया जाए। ऐसा ही उच्च न्यायालयो में भी होना चाहिए। अगर किसी जूनियर जज को ऊपर करना ही है तो वह प्रमुख न्यायाधीश की अनुमति के बिना नहीं होना चाहिए।

प्रश्न: यह मानकर चला जा रहा है कि आप सुप्रीम कोर्ट का स्वरूप बदल देंगे। इसके लिए आप कैसे न्यायाधीश चाहेंगे ?

उत्तर: मैं पहले ही यह बता चुका हूं कि हमें किस तरह के न्यायाधीशों की जरूरत है। न्यायाधीशों की नियुक्तियों और तबादलों के समय मैंने हमेशा इस बात का ध्यान रखा है कि न्यायाधीश में दृढ़ता होनी चाहिए। वह स्वतन्त्र होना चाहिए। कानून का उसे पूरा ज्ञान होना चाहिए और और संवैधानिक मूल्यों में उसे आस्था होनी चाहिए। राष्ट्रीय दृष्टिकोण के साथ साथ उसमें सामाजिक प्रतिबद्धता भी होनी चाहिए तथा कानून का शिल्पी तथा स्वतन्त्र चेतना होनी चाहिए। मैं इंगलैंड के परम्परावादी दृष्टिकोण से सहमत नहीं हूं कि न्यायाधीश कानून का उद्घोषक मात्र है, वह नया कानून नहीं बनाता। मैं फ्रेडरिक पॉलोक के उस मत से सहमत हूं कि न्यायाधीश कानून बनाता भी है और उसे बदल भी देता है। कानून बना देना न्यायिक प्रणाली का अविभाज्य और अनिवार्य अंग है। न्यायाधीश का काम केवल नकल करना नहीं है। न्यायपालिका का यह भी दायित्व है कि वह मानव अधिकारों की रक्षा करे और उन्हें बढ़ावा दे।

प्रश्न : आज जब चारों तरफ प्रतिबद्धता की चर्चा है....

उत्तर: न्यायाधीश को न तो सत्तारूढ़ पार्टी के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए और न विपक्ष के प्रति और न ही सामाजिक आर्थिक निहित स्वार्थों के प्रति। उसे तो संविधान और भारतीय जनता के हितों के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए।

उपरोक्त "भगवती न्यायालय" की आधारशिला, निश्चित ही "न्यायिक क्रान्ति" के बदलते आयाम हैं, जिन्हें अपनाया जाना चाहिये।

सौभाग्य से विधि मंत्री अशोक सेन ने "संवैधानिक प्रतिबद्धता" को ही न्यायाधीशों के लिए 15 मई 1985 को सदन में घोषित किया है व प्रधान मंत्री ने भी आचरण से इसका समर्थन किया है। अतः न्यायिक क्षेत्र में "सामाजिक न्याय" के हेतु उचित वातावरण में, हम न्यायिक क्रान्ति के आह्वान को साकार करने का प्रयास करें।

चौपाल पर न्याय

घर बैठे न्याय-गंगा क्या आ सकेगी ?

इलेक्ट्रनिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग मे जब कि मानव पृथ्वी पर सूर्य को उतार लाने को लालायित है, और जबकि अन्य ग्रहों पर भूभाग आरक्षित कराने की होड़ सी लगी हुई है, "चौपाल पर न्याय" अथवा सर्वत्र सुलभ न्याय के सिद्धान्त को निरा आदर्शवादी सिद्धान्त नहीं माना जा सकता है। समय आ गया है कि हम अपने आपको हरित क्रान्ति,श्वेत क्रान्ति,सांस्कृतिक क्रान्ति,आर्थिक क्रान्ति, कृषक क्राति औद्योगिक क्रान्ति,दलित क्रान्ति एवं छात्र क्रान्ति को ही भांति न्याय क्रान्ति मे भी व्यस्त रखें। निःसन्देह ऐसा करने पर कतिपय लकीर के फकीर न्यायविद् जो कि प्रगति की राह के रोड़े और भूतपेक्षी हैं और जो वर्तमान सन्दर्भ के अर्थ भी भूतकाल में ढूंढते है, शायद कुपित हो सकते हैं।

न्याय प्रक्रिया व्यावहारिक एवम् गतिशील बनी रहनी चाहिए। इस अन्तरिक्ष युग में जबकि सब कुछ तेजी से बदलता जा रहा है, क्या न्याय प्रणाली को स्थिर ही रखा जाय ? यह एक अमूल्य प्रश्न है। न्यायाधिपति श्री भगवती ने एक साक्षात्कार मे यह माना है कि देश में न्याय सर्वसाधारण को सुलभ होना चाहिये और इसे कानूनी सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत सुलभ कराने के प्रयास किये जाने चाहिएँ।[1] वे यह भी स्वीकार करते हैं कि आज न्याय व्यवस्था महंगी और खर्चीली तथा विलम्बपूर्ण हो गई है और साधारणतया गरीब व्यक्ति इसे हासिल करने का साहस नही जुटा पाता।

भारतीय समाज का एक बड़ा तबका जो कि गरीब, पद दलित-उपेक्षित अथवा पिछड़ा वर्ग है इस तथाकथित् न्याय मन्दिर में प्रवेश से वंचित है। इस निश्चल हकीकत को मैंने भी मंजूर अहमद बनाम आर. टी. ए.[2] मे बहुत दुःख के साथ स्वीकार किया है। भारतीय न्यायविदों के समक्ष उपयुक्त प्रश्न रखते हुए मैंने निम्न विचारण किया :—

"क्या हमें न्याय के पवित्र मन्दिरों को कानूनी दाव पेच के अखाड़े, कानूनीवाद-विवाद समितियों अथवा कानून के आरामदेय अनुसधान केन्द्रों में परिवर्तन करना

---

1. इण्डियन एक्सप्रेस, दिल्ली 31-1-82
2. ए. आई. आर. 1979 राजस्थान पृ. 98

है ? आज हजारों विवादी ऐसे हैं जो पांच-छः सालों से जेलों में अपने अपराध अथवा निर्दोषिता को तय कराने हेतु बन्द हैं। आज हजारों सिविल कर्मचारी, औद्योगिक कामदार, दुकानदार व किसान ऐसे हैं जिनके कि मूल अधिकारों को उनके अविवेकी नियोक्ताओं अथवा सरकारी अधिकारियों ने छीन लिए हैं। वे सामाजिक न्याय अथवा वास्तविक न्याय न सही परन्तु कानून सम्मत् न्याय की प्रतीक्षा में हैं। लेकिन लम्बी वाद-सूची एवम् बकाया मुकदमों के कारण जिनकी सुनवाई की बारी नहीं आती है। वहीं पर कुछ ऐसे भाग्यशाली व्यक्ति भी हैं जो शौकिया मुकदमें बाजी के व्यय को वहन करने में समर्थ है। ये लोग प्रतिभा सम्पन्न अधिवक्ताओं के तर्क-वितर्क की पैंतरेबाजी के कारण विलासिता पूर्ण मुकदमों को भी न्यायालयों द्वारा शीघ्र निर्णीत करा लेने में सफल हो जाते हैं। हम न्यायाधिपति क्या उन दलित लोगों की कीमत पर इन गिने-चुने लोगों के पैंतरों को असहाय होकर देखते रहें ? तकरीबन 40,000 बकाया मुकदमों में उलझे हुए ऐसे लाखों हताश, निःसहाय और उदास लोग जो गरीब, दलित अथवा कम सुविधा सम्पन्न नागरिक कहलाते हैं, मुझे स्मरण कराते हैं कि मैं उन्हें उनकी अपूरणीय क्षति एवम् वास्तविक न्याय की इंतजार से उन्हें मुक्ति दिलाऊं, व बकाया मुकदमों की अधिकता, जो 10 वर्ष से भी अधिक पुराने हैं, के कारण खोये पड़े, उनके भाग्य को जगाऊं और उन्हें निर्णय दिलाऊं।"

"गरीब, दलित अथवा कम सुविधा सम्पन्न नागरिक अभी भी न्यायालयों की पहुंच से वंचित हैं। यद्यपि ये न्यायालयों से अनुतोष पाने के अधिकारी हैं। परन्तु हम इस कटु सत्य से आंखें मूंदे हुए है कि कुछ एक सुविधा सम्पन्न, साधन सम्पन्न शौकिया विवादी लोगों के मुकाबले में ये लोग लम्बी कतारों में खड़े नहीं रह सकते हैं। हम संविधान के सजग प्रहरी हैं। परन्तु इन्हें न्याय प्रदान करने में असमर्थ हैं। एक न्यायाधिपति के रूप में शाहबाद के सहरिया और अन्य किसान लोग मेरी स्मृति में सदैव बसे रहे हैं। ये लोग कोटा-जिले के शाहबाद उपखण्ड के किसान हैं। इन खाली पेट, नंगे बदन और मात्र हड्डी के ढांचों की आंखों से अनवरत आंसुओं की नदी बहती रहती है। धनी एवं साधन सम्पन्न लुटेरों द्वारा इनके खेतों का अतिक्रमण कर लिया गया और इनकी फसलों को काट डाला गया, परन्तु ये लोग असहाय रूप से देखते रहे। गरीबों को मुफ्त कानूनी सहायता की लम्बी लम्बी बातें और इसे संविधान में सम्मिलित करने के बावजूद इन लोगों को न्यायालय द्वारा पुनः कब्जा अथवा किसी भी प्रकार का अनुतोष नहीं दिलाया जा सका। जब-जब भी मैं न्यायालयों और कानून के दुखद कार्य कलापों के बारे में विचार करता हूं तब मैं अपने आप को एक न्यायाधिपति की अपेक्षा एक कवि, दार्शनिक, अथवा सुधारक अधिक महसूस करता हूं। परन्तु आम जनता में फैली भ्रामक धारणा कि न्यायाधिपति उच्च सिंहासन पर आसीन होता है, ऐसा करने में अवरोध बन जाती है। यह धारणा यदि असत्य अथवा आंशिक सत्य भी है तो इसे शीघ्र एवं सस्ता न्याय प्रदान

करके समाप्त किया जा सकता है। दलितों, कृषकों, मिल मजदूरों आदि निम्न वर्ग को शीघ्र, सस्ता एवं वास्तविक न्याय प्रदान करना हमारा हेतु होना चाहिये। अधिकारियों एवं नियोक्ताओं को अवमानना के आरोप में दण्डित करके ही हमें संतोष नहीं मान लेना चाहिये।"

यदि समाज के कमजोर वर्ग के दलन और शोषण को समाप्त करना है तो न्यायपालिका को सक्रिय भूमिका अदा करनी होगी, जैसी कि उच्चतम न्यायालय ने भागलपुर आँख फोड़ कांड,[1] आगरा नारी निकेतन,[2] एशियाड़ कामगार-न्यूनतम मजदूरी वाद,[3] फर्टिलाइजर कार्पोरेशन कामगार यूनियन केस,[4] धौलपुर, कमला फर्लेश-ट्रेड ऐपिसोड[5] और बिहार अण्डरट्रायल प्रिजनर्स केस[6] में अदा की है। श्री के एफ. रुस्तम जी, सदस्य, पुलिस कमीशन के लेख पर भी उच्चतम न्यायालय सक्रिय हुआ, जिसमें यह वर्णित किया गया था कि बिहार में आज भी परीक्षणाधीन बन्दी परीक्षण के लिए तड़फ रहे हैं। इस मामले को श्रीमती हिंगोरानी एडवोकेट ने सर्वप्रथम संविधान के अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत याचिका के रूप में उच्चतम न्यायालय के समक्ष रखा। उच्चतम न्यायालय ने तथ्य एकत्रित करने के पश्चात् ऐसे व्यक्तियों को मुक्ति का निर्णय भी प्रदान किया। इन लोगों ने कभी न्यायालय का द्वार भी नहीं खट-खटाया और आजीवन कारावास में तड़पते रहे। लोकहित मुकदमे बाजी योजना द्वारा इसे वास्तव में 'चौपाल पर न्याय' की संज्ञा दी गई है।

संविधान की अनुच्छेद 21 का आधार मानते हुए उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि शीघ्र न्याय एक मूल अधिकार है और न्यायालय राज्यों को शीघ्र न्याय दिलाने हेतु अधिक से अधिक न्यायालयों की स्थापना करने और अधिक न्यायाधीशों की नियुक्ति करने का निर्देश दे सकते हैं। अधिकारिता का परम्परागत नियम अब बदल गया है। एंग्लोसैक्सन विधि द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त प्रतिकूल न्यायशास्त्र का भी परित्याग कर दिया गया है। "चौपाल पर न्याय" को बोम्बे फुटपाथियों के केस[7] से उपयुक्त रूप से दृष्टान्तित किया जा सकता है। मुख्य न्यायाधीश श्री चन्द्रचूड ने प्रारम्भ में एक पत्रकार जिनका नाम ओगलाटेलिस है की प्रार्थना पर झुग्गी झोपडी वालों को संरक्षण देते हुए आदेश पारित किया। वे लोग जो फुट-पाथ परऔर झुग्गी-

---

1. खत्री व अन्य बनाम बिहार राज्य, ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 928
2. डा. उपेन्द्र बक्शी बनाम उत्तरप्रदेश राज्य, 1983 (2) एस.सी.सी. 308
3. पीपल्स यूनियन बनाम भारत संघ; ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 1473
4. फर्टीलाइजर कार्पोरेशन कामगार संघवाद; (1981) 2 एस. सी. आर. 52
5. अरुणशूरी बनाम मध्यप्रदेश राज्य रिट. नं. 2229/81–1981 (4) एस. सी. सी. जर्नल पृ. 1
6. हुसैन आरा खातून बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य (1980) 1 एस. सी सी. पृ 81, 91, 93, 98, 108, 115
7. पब्लिक इन्टरेस्ट लिटिगेशन लेख–माधव मेनन 1982 बार काम्सिल जर्नल वाल्यम IX पृ. 150

झौंपडियों में रहते हैं अब उच्चतम न्यायालय की सीमा में भी पहुंच गये हैं। यहाँ तक कि सुनिल बत्रा के केस[1] और फ्रांसिस मुलेन के केस[2] मे कारागृह मे भी मानवीय सुविधाओं को सुनिश्चित कराकर एक नया कीर्ति स्तम्भ स्थापित किया गया है।

प्रोफेसर डा. उपेन्द्रनाथ बख्शी और पत्रकार श्री किशन महाजन कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर न्यायपालिका ने समाज के कमजोर वर्ग चमार[3] जाति की सहायतार्थ राज्य को नगरपालिका उपविधि मे संशोधन करने, सहकारी समितिया बनाने और केवल उन्ही लोगों को मृत जानवरों का चमड़ा कमाने का ठेका देने का निर्देश देकर दलित वर्ग को मुफ्त कानूनी सहायता द्वारा शीघ्र न्याय सुलभ कराने में सक्रिय योगदान दिया है।

अजमेर जिले के तिलोनिया[4] गांव के मजदूर अब उच्चतम न्यायालय के रिकार्ड पर हैं जहां पर श्री बंकटराय ने न्यायालय मे ये याचिका प्रस्तुत की है कि हरिजन औरतों को निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से कम पैसा दिया जाता है। इस मुकदमे में अनुच्छेद 23 के अतिक्रमण का प्रश्न उठाया गया था। न्यायालय ने दिनांक 28, जनवरी 1983 के अपने महत्वपूर्ण निर्णय में न्यूनतम वेतन सात रुपये प्रतिदिन दिये जाने का निर्देश देकर उनको जीवन प्रदान किया है।

परम्परागत नियम यह है कि वही व्यक्ति, जिसको कि कानूनी अधिकार अथवा कानून संरक्षित हित के अतिक्रमण से निर्दिष्ट क्षति हुई है, न्यायिक परितोष के लिये निवेदन कर सकता है। इस नियम में कुछ एक अपवाद अवश्य हैं जो हमारे न्यायालयों ने समय समय पर प्रकट किये हैं। उनमें से कुछ निम्न हैं :—

(1) एक करदाता सार्वजनिक संस्था अथवा स्वायत्त संस्था के द्वारा किये गये निधि के दुरुपयोग को चुनौती दे सकता है।[5]

(2) वह व्यक्ति जो किसी विषय पर निर्णय करने की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकारी है, ऐसे विषय पर लिये गये आपत्तिजनक निर्णय के विरुद्ध चुनौती देते हुए वाद प्रस्तुत कर सकता है।[6]

(3) यदि कानून किसी प्रार्थी के अधिकार को स्पष्टतः मान्यता प्रदान करता है तो वह प्रार्थी विधि विरुद्ध कार्यवाही को चुनौती दे सकता है चाहे उस व्यक्ति के

1. सुनिल बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 1579
2. फ्रान्सिस कारिल मुलेन बनाम दिल्ली संघ प्रशासन ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 746
3. हीरालाल बनाम जिला परिषद कानपुर ; 1981 (4) एस. सी. सी. 202
4. जर्नल बार कौंसिल आफ इण्डिया इन्ट–खण्ड 11, अप्रेल 1982–पृष्ठ 11–लेख श्री न्यायाधीश पी. एन. भगवती
5. के. आर. गिनाय बनाम मुख्याधिकारी नगर परिषद 33 पी–ए. आई. आर. 1974 एस. सी. पृ. 2177
6. बारा राजन बनाम नगरपालिका ए. आई. आर. 1973 मद्रास 55

वैधिक अधिकार अथवा विधिरक्षित हित का अतिक्रमण न भी हुआ हो।[1] बम्बई सिनेमाटोग्राफ अधिनियम *1918* एवं *1954* में उसके अन्तर्गत बनाये गये नियम ऐसे व्यक्ति को जो प्रस्तावित सिनेमाघर के 200 गज की सीमा में रहते हों अथवा ऐसी संस्था जैसे स्कूल, मन्दिर, मस्जिद जो कि उस सीमा में स्थित हो से सम्बन्धित व्यक्ति को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रदत्त 'आपत्ति नहीं' प्रमाण पत्र को निरस्त करने के लिये रिट याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार प्रदान करते है।

(4) पुलिस अधिकारी से रिपोर्ट प्राप्त होने पर अथवा अन्य सूचना प्राप्त होने पर दण्ड प्रक्रिया सहिता की धारा 133 मजिस्ट्रेट को लोक न्यूसेन्स के उपचार करने का आदेश पारित करने को अधिकृत करती है। रतलाम में जहां नगरपालिका गन्दे पानी को बहा कर ले जाने हेतु निकास नल का निर्माण करने के अपने वैधानिक कर्त्तव्य को पूरा करने में विफल हुई तो मजिस्ट्रेट ने नगरपालिका को निकास नल के निर्माण करने का आदेश दिया और इस आदेश की उच्चतम न्यायालय ने अपील में पुष्टि की।[2]

यह सुनिश्चित है कि यदि कोई व्यक्ति किसी अयोग्यता के कारण न्यायालय में जाने में अक्षम है अथवा किसी संतोषजनक सामाजिक अथवा आर्थिक असुविधाजनक परिस्थिति के फलस्वरूप याचिका कर न्यायालय से निवेदन करना सम्भव नही है तो कोई अन्य व्यक्ति उस अन्याय के शिकार अथवा क्षतिग्रस्त व्यक्ति को विधिक क्षति पूर्ति दिलाने के उद्देश्य से न्यायालय में सहायता के लिये प्रार्थना कर सकता है, ताकि ऐसे व्यक्ति जिनकी क्षति हुई है उनकी क्षतिपूर्ति हो सके और उनके साथ न्याय किया जा सके।

परन्तु उच्चतम न्यायालय ने ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध न्यायाधीशों को निम्न प्रकार से सचेत भी किया है, जो लोक हित के विवादों में विधिक क्षतिपूर्ति के लिये न्यायालयों में प्रार्थना-पत्र देते हैं। निम्न अपवाद हैं :—

1. यदि वे न्याय के हेतु को उचित ठहराने की दृष्टि से सद्भावपूर्ण कार्य नही कर रहे हों।

2. यदि वे व्यक्तिगत लाभ के लिये कार्य कर रहे हों।

3. यदि वे राजनैतिक प्रेरणा से अथवा परोक्ष प्रतिफल को ध्यान में रखते हुए कार्य कर रहे हों।

4. ऐसे मामलों में न्यायालय को ऐसे प्रार्थना पत्र को चाहे वह पत्र के रूप में हो अथवा नियमित रिट याचिका के रूप में, अस्वीकार कर देना चाहिये।

---

1. जे. एम. देसाई बनाम रोशन कुमार ए. आई. आर. *1976* एस. सी. *578*
2. रतलाम नगर परिषद बनाम वरधीचन्द ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 1622

5. न्यायाधीश श्री भगवती की राय में न्यायालय को अपनी अधिकारिता के प्रयोग को ऐसे मामलों मे सीमित करना चाहिये जहां विधिक क्षति किसी निश्चित वर्ग अथवा व्यक्तियों के समूह को कारित की गई है, अथवा ऐसे निश्चित वर्ग अथवा व्यक्तियों के समूह के संवैधानिक अथवा विधिक अधिकारों का अतिक्रमण कारित हुआ हो और जहां तक सम्भव हो व्यक्तिगत क्षति वाले वादों को विचारार्थ स्वीकार नहीं करना चाहिये।[1]

6. जहां ऐसे मामलो को निपटाने हेतु प्रभावी कोई विशिष्ट न्यायाधिकरण हो वहा भी न्यायालयों को ऐसे मामले ग्रहण नही करने चाहिये।

इंग्लैंड में भी समाज का कोई व्यक्ति जिसका पर्याप्त हित हो कानूनी मदद लोक अधिकारी के विरुद्ध लोक कर्तव्य करने के लिये कार्यवाही कर सकता है। मेकराइटर केस में एटार्नी जनरल ने प्रसारण अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही के लिए स्वीकारोक्ति नही दी, फिर भी लार्ड डेनिंग ने यह निष्कर्ष दिया कि मेकराइटर[2] कार्यवाही करने के लिये पर्याप्त हित रखता था, क्योंकि उसके पास टेलिविजन सैट था जिसके लिये उसने लाइसेन्स शुल्क दिया और यदि कानूनी अपेक्षा को भंग करते हुए अश्लील फिल्म दिखाई गयी तो अन्य लोग जो टेलिविजन देखते हैं कि उनकी संवदेनशीलता को संताप होगा।

लार्ड डेनिंग द्वारा यही सिद्धान्त एक अन्य केस में लागू किया गया जहां ब्लेकबर्न को लन्दन काउन्सिल द्वारा विधि विरुद्ध पोरनोग्राफिक फिल्म दिखाने की अनुमति देने से रोकने के लिये आदेश पारित करने की कार्यवाही करने की अनुमति प्रदान की गई। यह कहा गया कि प्रार्थी को कार्यवाही करने का अधिकार था क्योंकि उसकी पत्नि और बच्चे पोरनोग्राफिक[3] फिल्म दिखाने से हानि के शिकार हो सकते थे।

फर्टिलाइजर कोरपोरेशन कामगार यूनीयन बनाम यूनियन आफ इण्डिया के केस[4] में न्यायाधीश श्री कृष्णा अय्यर ने कहा है कि जहां कोई नागरिक किसी संगठन का सदस्य हो जिसका विषय वस्तु में विशेष हित निहित हो और यदि वह किसी दस्तावेज से अधिक सरोकार रखता हो तो ऐसा व्यक्ति संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत रिट याचिका दायर कर सकता है। "लोकहित मुकदमेंबाजी" भागीदारी न्याय की प्रक्रिया का मार्ग है और दीवानी मुकदमेंबाजी में इस प्रतिमान ... परिस्थिति न्यायिक द्वार पर खुले दिल मे स्वीकार की जानी चाहिये : इस के ... श्री कृष्णा अय्यर ने कहा है—

1. एस. पी. गुप्ता बनाम राष्ट्रपति (
2. अटार्नी जनरल बनाम स्वराज्य सर्वे
3. रेग बनाम ग्रेटर लन्दन काउन्सिल (
4. फर्टीलाइजर कारपोरेश ... ब
पृ 344

"कानून एक सामाजिक लेखा परीक्षक है और लेखा परीक्षण को क्रिया रूप दिया जा सकता है, जब कोई व्यक्ति वास्तविक लोक हित सहित न्यायाधिकारिता का आह्वान करे। कभी-कभी एक प्रकार का भय प्रकट किया जाता है कि यदि हम लोग कर्त्तव्य का प्रवर्त्तन करने हेतु अथवा लोकहित के रक्षार्थ समाज के किसी सदस्य के लिये न्यायालय मे प्रवेश के द्वार को खुला रखेंगे तो न्यायालय मे मुकदमों की बाढ़ आ जायेगी। परन्तु यह भय पूर्णरूप से आधारहीन है।"

परन्तु न्यायाधीश श्री भगवती ने लोकहित मुकदमेबाजी के विरुद्ध न्यायालयों को निम्नलिखित शब्दो मे चेतावनी भी दी है[1]। यह भी अपवाद ही है।

"न्यायालय के लिये यह भी ध्यान रखने योग्य आवश्यक बात है कि अधिकारिता और न्याय प्रदिता में बहुत अन्तर है और सरकार अथवा सरकारी अधिकारी की हर एक गलती को न्याय की तुला मे तोला जाय, यह आवश्यक नही। न्यायालय को यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वह अपने न्यायिक कर्त्तव्य की सीमा से बाहर नही जावे और न ही सविधान अथवा विधायिका द्वारा आरक्षित क्षेत्र में अतिक्रमण करे। न्यायालय के लिये लोक हित के मामलों को निपटाना जैसा कि न्यायालय करते हैं, बड़ा ही मोहक कार्य है, ऐसे मे न्यायशास्त्र न्यायिक विद्वता और रचनात्मक योग्यता की अपेक्षा करता है।"

एस. पी. गुप्ता के केस में न्यायाधीश श्री भगवती ने यह स्वीकार किया कि विनिर्दिष्ट विधिक क्षति किसी व्यक्ति विशेष अथवा समूह विशेष को कारित की जाती है तो वह व्यक्ति अथवा उसका वकील (जो कि न्याय के मन्दिर का पुजारी है) राज्य अथवा लोक अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिये प्रार्थना कर सकता है। इसी केस में न्यायाधीश श्री तुलजापुरकर[2] ने प्रकट किया है :-

"न्यायालयो में विधि व्यवसाय करने वाले प्रत्येक वकील न्यायाधीशों द्वारा जिम्मा लिये गये न्याय प्रशासन के कार्य मे बराबर का भागीदार होता है। पक्षकारों को उचित और भय रहित न्याय सुनिश्चित कराने के लिये न्याय पालिका की स्वतन्त्रता और निर्भयता बनाये रखने मे बहुत रुचि रखते हैं, उनको न्याय मन्दिरों के बाहर नही रखा जा सकता और उनके द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्रों पर कार्यवाही की जानी चाहिये।"

न्यायाधीश श्री वेंकटरमैय्या जो उपरोक्त निष्कर्ष से सहमत नही थे, उन्होंने निम्न मतप्रकट किया :[3]

---

1. एस पी. गुप्ता बनाम राष्ट्रपति भारत; ए. आई. आर. 1982 एस. सी 149
2 उपरोक्त (1) पैरा 609
3 ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 149 पैरा 974

"इसे स्पष्ट करना होगा यह नहीं कहा जा सकता कि केवल वकील जिनको न्यायालय में विधि व्यवसाय करने का अधिकार है, को न्यायार्थीओं, न्यायालयों और न्याय प्रशासन से सम्बन्धित प्रत्येक मामले को लेकर प्रार्थना प्रस्तुत करने का विधि अधिकार है। ऐसे कई मामले हैं जिनमें उनको अनुतोष मांगने का कोई विधि अधिकार नहीं है। दृष्टांत के तौर पर वकील इस आधार पर कि उनके व्यव पर भविष्य में विपरीत प्रभाव पड़ेगा नये न्यायालय की स्थापना के लिये नहीं ला सकते।"

गुजरात उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री ठक्कर जब वे नाश्ता रहे थे तो समाचार पत्र में एक विधवा का समाचार पढ़ा. जिसमें उसने पें प्राप्त नहीं होने के कारण अपनी करुण गाथा लिखी थी और जो पैसों के अभाव कारण न्यायालय का द्वार खटखटाने में असमर्थ थी। उन्होंने इसे याचिका के में स्वीकार किया और आदेश पारित कर दो सप्ताह के बहुत ही अल्प समय भुगतान सुनिश्चित किया। जिस भुगतान को घर पर प्राप्त कर वह विधवा अच में पड गयी।[1] श्री ठक्कर अब उच्चतम न्यायालय में नये आयाम व कीर्तिमान रहे हैं व इन्द्रागांधी हत्याकांड की जांच कर रहे हैं।[2]

"चौपाल पर न्याय" से मेरा यही तात्पर्य है।

जब हम गरीबों को विधि सहायता शीघ्र न्याय बकाया पुराने केसों समाप्त करने और विलम्ब को समाप्त करने की बात करते हैं, हमारा उद्दे पक्षकार को गाव मे सस्ता, शीघ्र, सुलभ और वास्तविक न्याय को प्रदान करना हो चाहिये ताकि इससे भयंकर मंहगेपन को टाला जा सके। ऊपर मैंने उस सम्बन्ध कुछ मुकदमों का उदाहरण के रूप में ऊपर उल्लेख किया है।

परन्तु यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि वे केवल मात्र आकाश में टिमटिम वाले तारे हैं। यदि उन मुकदमों के बारे में कुछ नहीं कहे है जो न्यायालयों के सम नही आये हैं, परन्तु जो न्यायालय के समक्ष लाये गये हैं उनमें से भी लगभग करोड़ मुकदमें हमारे अधीनस्थ न्यायालयों में और दस लाख उच्च न्यायालय विचाराधीन हैं। सुप्रीम कोर्ट में लाखों वाद विचाराधीन हैं।

इसलिये विधि सुधारों को राष्ट्रीय स्तर पर प्राथमिकता दी जानी चाहि समय आ गया है जबकि राज्य को इन्हें समाज के अस्पर्श विषय मानना ब कर देना चाहिये। संविधान की नीति निर्देशक तत्वों में समाविष्ट किये जाने बावजूद तथा अपनी सभी प्रकार की गर्वोक्ति पूर्ण उद्घोषणाओं के उपरा भी विधिक सहायता प्रकोष्ठ ने अभी तक निर्धन पक्षकारों को सुफल प्रदान न किया है। प्राय: बहुचर्चित आलोचना है कि सेमिनारों मे भाषणों और आदर्शों

1. जर्नल बार काउन्सिल आफ इण्डिया खण्ड IX नं. 1, 1982, पृ. 158
2. इण्डियन एक्सप्रेस दिनांक 13-11-84 पृष्ठ 1

अतिरिक्त हम निर्धन पात्रों के एक प्रतिशत को भी सुपरिणाम जुटा पाने में सफल नही रहे। सेमिनारों में हमारे मिलन को बुद्धिजीवी लोग अभियांच्छित परिचारिकाओं (काल गर्ल्स) के मिलन के रूप मे वर्णित करते है। यह कटु अवश्य है परन्तु अंगीकृत करते हुए कतई हिचकिचहाट न होनी चाहिये और न ही आलोचकों को परिभाषा शास्त्र की अयथार्थता के लिये गुनाहगार ठहराया जाना चाहिये।

राष्ट्र में हर जगह विधिक सहायी कार्यक्रमों को प्रभावशाली बनाने और उन्हें गति प्रदान करने के लिये अधिकाधिक हृदय अन्वेषण और अन्तर्दर्शन आज जरूरी हो गया है, क्योंकि इसके अभाव में "चौपाल पर न्याय" नहीं हो सकता।

हम अखबारों में पढ़ते आ रहे हैं कि प्रायः प्रत्येक एकान्तरिक माह मे, यदि सैकडों नहीं तो दर्जनों नागरिक देहाती शिविरों में नीम हकीमो द्वारा आंखों के आपरेशनों में अन्धे बना दिये जाते हैं। क्या मैं पूछ सकता हूं कि हमारे विधिक सहायी प्रकोष्ठों द्वारा कही क्षति के लिये दावा पेश किया गया है ? अथवा अन्धे बनाये गये व्यक्तियों में यह जागरूकता उत्पन्न की गयी है कि वे अपनी आंख गंवा देने के प्रति पक्ष में क्षतिपूर्ति बाबत दावा कर सकते हैं। रोजाना हम पढ़ते हैं कि नगरपालिका की लापरवाही की बदौलत सब सडकों पर गटरों के मुंह खुले छोड़ देने के फलस्वरूप कई व्यक्तियों ने अपनी जानें खो दी है अथवा अपग हो गये हैं। परन्तु क्या हमने यह जागरूकता उत्पन्न की है कि इसके लिये कानून उन्हें क्षतिपूर्ति प्रदान करता है। कारागृहों में हर स्थान पर विचाराधीन अथवा बिना उचित विचारण के सुरक्षा सुविधाएं निष्क्रिय हो गयी हैं परन्तु क्या विधिक सहायी समुदायों ने इसका सर्वेक्षण किया है और बिहार पद्धति के आधार पर उनको सहायता दिलवाने हेतु न्यायालयों को लिखा है ?

कई बांका लुहार कारागृहों में है और पागल हो गये परन्तु हमारे विधिक सहायी प्रकोष्ठों ने इन "काले छिद्रो" कारागृहों के पागलखानों, जहा पर कि गरीब विचाराधीन अभियुक्त पर पागलपन थोप दिया जाता है की गहराई तक जाने की परवाह नही की है।[1]

खुले आम वेश्या बाजारों मे "कमलाएं" नीलाम की जाती हैं और बेची जाती हैं परन्तु क्या हमारे विधिक सहायी प्रकोष्ठों ने उन गरीब जवान लड़कियों का सरक्षण किया है जो रात और दिन वेश्यालयों में अपने जिस्म बेचने के लिये मजबूर की जाती हैं। दलित वर्ग पर अत्याचार के मुकदमों, दर्जनों लड़कियों के सताने व छेड़छाड़ के मुकदमों, दलितों पर अत्याचार और शोषण संबंधित मुकदमों तथा जवान दुल्हनों द्वारा दहेजिक हत्याओं के रूप में आत्म हत्याएं व मानव वध सम्बन्धी मुकदमें हमारे सामने आते हैं परन्तु क्या हम उन्हें अपने वैध अधिकारों से अवगत

1. इण्डियन एक्सप्रेस पृ. 4, दिनांक 3-9-82

कराने और अत्याचारों और शोषणों की विधि न्यायालयों के मार्फत रोकने के लिए किसी विधिक सहायी कार्यक्रम का सहारा ले रहे हैं ? भूमिहीन लोगों तथा किरायेदारों अथवा कृषकों या खेतीहरों को हटाने सम्बन्धी अत्याचारों के मामले अथवा अनेक तादाद में श्रमिकों को येन-केन प्रकारेण छंटनी, बर्खास्त करने के ऐसे मामले जिनमें हमारी विधिक सहायी समितियां उदासीन रहती हैं।

विश्वविद्यालय महीनों तक परीक्षाफल घोषित नहीं करते हैं और तकनीकी शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश बन्द हो जाते हैं, लेकिन अभी तक हमने ऐसे कानूनी मदद करने वाली संस्था या जन जागृति करने वाली कोई संस्था नहीं बनाई है जो कि अदालत में जाकर मेन्डेमस याचिका द्वारा यह घोषित करा सके कि यह परीक्षाफल जल्दी घोषित किये जावें ताकि हजारों विद्यार्थियों का भविष्य नष्ट नहीं हो। हम जब तक कि दुर्घटना नहीं घटती देखते रहते हैं और मूक दर्शक व निष्क्रिय चिन्तक बने रहते हैं।

इन सभी दिक्कतों को दूर करने की कोशिशें की जा रही हैं और न्यायपालिका को विधिक सहायी कार्यक्रमो के द्वारा इस सम्बन्ध में बहुत महत्त्वपूर्ण रोल अदा करना है। क्या मैं इस बात की याद दिलाऊं कि पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि "भारत की सेवा का मतलब उन लाखों लोगो की सेवा है जो पीड़ित हैं" आपका तात्पर्य गरीबी, अनभिज्ञता, बीमारी की समाप्ति और असमान अवसरों को निर्मूल करना था। हर महान् व्यक्ति की हर समय यही इच्छा रही है कि हर व्यक्ति की आंखो के आसू पोंछे जावें। नेहरू जी की उस गूंजती हुई आवाज को याद दिलाते हुये हमारे विधि मंत्री श्री कौशल ने चन्डीगढ़ सेमीनार में भाग लेने वाले व्यक्तियों को 25 फरवरी, 1982 को अपील करते हुये निम्न प्रकार से महत्त्वपूर्ण अपील की—"अधिकतम आंखों में अभी तक आसू हैं"। इसी पृष्ठभूमि में हमे इस सेमीनार के उद्देश्यों व मुद्दों को समझना चाहिये और मैं—"मिशन" शब्द को पुनः दोहराता हू क्योंकि इसी उद्देश्य से यह सेमीनार आयोजित की गई है। हमे अपनी निद्रा से अब उठ जाना चाहिये क्योंकि अब इसमें ज्यादा देर हो गई है।[2]

अतः हमें समाज के कमजोर वर्गों में कानूनी अधिकारों के प्रति जागरूकता का वातावरण पैदा करना चाहिये जो कि कानूनी सहायता की एक महत्त्वपूर्ण योजना है।

मेरे द्वारा पहले के कई प्रकाशन "वान्टेड इवोलूशन और रिवोलूशन इन

1. डाइरेक्टिव प्रिंसिपल्स ज्युरिसप्रुडेन्स–1 भाग पृष्ठ 15–श्री कौशल का स्वागत भाषण–पारस दीवान, चण्डीगढ़
2. उपरोक्त

पित करे, तो कोई विस्मय व अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसी कारण "जेलों की अवधि" दैनिक सूची में लिखने व 5 वर्ष जेल में रहने पर फाईल पर लाल पट्टी व लाल झंडी" लगाने की योजना हमने प्रारम्भ की, पेपर बुक बनाने की व्यवस्था उनमें समाप्त की, व जेल उम्र पर प्राथमिकता दी। "केसर वृद्धा" को 10 वर्ष जेल में रहने पर रिहा, मानसिक विक्षमता से निर्दोष घोषित कर रिहा करने के निर्णय पर निम्न प्रतिक्रिया न्याय विशेषज्ञों के अध्ययन योग्य है :

"दस साल की कैद भुगतने के बाद हत्या के अपराध से बरी"

"जयपुर 1 फरवरी, राजस्थान उच्च न्यायालय की खंडपीठ के न्यायाधीश गुमानमल लोढा एवं गोपालकृष्ण शर्मा के समक्ष मंगलवार को उस वक्त मार्मिक स्थिति पैदा हुई जब दस वर्ष की कैद भुगतने के बाद हत्या के अपराध से बरी हुई वृद्धा केसर ने कहा कि जेल से छूटने के बाद अब वह बाजार से उधार लेकर मशीन से नोट छापकर रोटी खायेगी।

समाज से तिरस्कृत तथा मानसिक रूप से असन्तुलित वृद्धा केसर को निर-अपराध मानते हुए खडपीठ ने न्यायालय मे बुलाकर उससे पूछा था कि "रिहा होने पर वह कहां जाएगी ?"

केसर का जवाब पाकर न्यायाधीशों ने फोन पर समाज कल्याण विभाग के महिला सदन की निरीक्षिका को बुलाया और आदेश दिया कि रिहा होने पर केसर को सरकारी खर्च पर तब तक महिला सदन मे रखा जाए जब तक कि उसका कोई रिश्तेदार आकर उसे न ले जाए।

हत्या के मामले में केसर पर आरोप था कि करीब दस वर्ष पूर्व उसने बाजार मे अपनी भाभी से दस पैसे मागे थे। और भाभी के मना करने पर पहले तो वह कुछ दूर चली गई लेकिन बाद में पागलपन में एक लोहे का डण्डा लेकर आई तथा उसे भाभी के सिर पर दे मारा। इससे उसकी भाभी की मृत्यु हो गई तथा सेशन न्यायाधीश ने केसर को आजीवन कारावास की सजा दी। दस वर्ष के बाद उच्च न्यायालय में अपील की सुनवाई में वह पहली बार उस समय आई जब खण्डपीठ के न्यायाधीशों ने यह आदेश प्रसारित किया कि अभियुक्तों के पाच वर्ष जेल में रहने की अवधि के मामलों की फाईलों पर लाल पट्टी लगा दी जाए तथा न्यायालय की दैनिक वाद सूची मे प्रत्येक मुकदमे के समक्ष यह लिख दिया जाय कि अभियुक्त कितने वर्ष से जेल में है। इस मामले को न्यायाधीशों ने दस वर्ष की कैद भुगतने की लाल पट्टी देखकर प्राथमिकता दी और मामले की सुनवाई करके तुरन्त निर्णय देकर गुण अवगुण के आधार पर केसर को बरी कर दिया।

खण्डपीठ के न्यायाधीशों ने पूर्व की उस व्यवस्था से भी अभियुक्तों को मुक्त कर दिया है जिसके तहत पक्षकार मुकदमे की पेपर बुक बनाकर न्यायालय में देते

करने की इजाजत ले लेते थे और तब उनके मामले प्राथमिकता के आधार पर सुन लिए जाते थे। न्यायाधीश गुमानमल लोढा तथा गोपालकृष्ण शर्मा ने पेपर बुक बनाने की व्यवस्था को स्थगित कर जेल में रहने की लम्बी अवधि के आधार पर प्राथमिकता से मुकदमे सुनना तय किया है।

ज्ञातव्य है कि उच्च न्यायालय की जयपुर पीठ में ही करीब एक सौ ऐसी अपीलें सुनवाई के लिए लम्बित हैं जिनके अभियुक्त पांच से बारह साल तक की सजा भुगत चुके हैं लेकिन अपील का निर्णय होना बाकी है। सुनवाई के लिए प्राथमिकता के नए तरीके से आशा है कि इन अपीलों का इसी वर्ष निर्णय हो जावेगा''।[1]

विलम्ब को दूर करने, त्वरित न्याय को शीघ्रताशीघ्र प्रदान करने व जेल में पड़े कैदियों के भाग्य का निर्णय अविलम्ब करने हेतु ध्यान आकर्षित करने, दैनिक सूचि निम्न प्रकार बनाई जाना प्रारम्भ की है ताकि जेल की अवधि स्पष्ट रूप से सामने आये। इससे स्पष्ट होगा कि रामचन्द्र 12 वर्ष 1 माह से जेल में है व अपील का निर्णय 30-1-84 की सूचि तक नहीं हुआ।

राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ, जयपुर

दैनिक वाद सूची

सोमवार, दिनांक 30 जनवरी, 1984

खण्डपीठ, दाण्डिक वाद-ग्रहणार्थ, आदेशार्थ एवं श्रवणार्थ

न्यायालय संख्या 2

माननीय न्यायाधिपति श्री गुमानमल लोढ़ा एवं माननीय न्यायाधिपति श्री जी. के. शर्मा–'कारागृह में श्रवणार्थ'

(अभियुक्त कारागृह मे):

1. दा. अ. (अंशतः सुना हुआ) (10 साल 4 माह)	382/75	नाथूसिंह बनाम सरकार
2. दा. का अ. (अंशतः सुना हुआ)	208/78	मु. केभर बाई बनाम सरकार
6. दा. अ. (जेल) (12 साल एक माह)	147/76	रामचन्द्र बनाम सरकार
7. दा. अ. (जेल) (7 साल एक माह)	877/76	अमरलाल बनाम सरकार

1. राज. पत्रिका, जयपुर पृ. 1 दि. 2-2-84.

8. दा. प्र. (9 साल 3 माह)	205/77	लक्ष्मण चन्द बनाम सरकार
9. दा. प्र. (7 साल)	241/77	लादू बनाम सरकार
10. वा. प्र. (6 साल 8 माह)	64/78	भंवर लाल बनाम सरकार
11. दा. प्र. (7 साल एक माह)	259/78	भंवर सिंह बनाम सरकार
13. दा. प्र. (7 साल 5 माह)	275/77	नेहरु बनाम सरकार
14. दा. प्र.	331/78	" " "
15. वा. प्र. (7 साल तीन माह)	345/78	धासीया बनाम सरकार
16. दा. प्र. (6 साल 8 माह)	379/78	शिवजी लाल बनाम सरकार
17. दा. प्र. (6 साल 5 माह)	470/78	पदम चन्द व अन्य बनाम सरकार

उपरोक्त विलम्ब से जन मानस में क्षोभ होना स्वाभाविक है। साधारण नागरिक न्याय प्रणाली में विलम्ब के अन्याय से चिंतित है, जिसका संकेत निम्न सम्पादकीय[1] से मिलेगा।

न्याय के नाम पर अन्याय

"न्याय मिलने में विलम्ब के कारण निर्दोष नागरिक को अकारण वर्षों तक जेलों में सड़ना पड़ता है। इसका ताजा उदाहरण राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष आया। एक वृद्ध महिला केसर का मामला है। इस महिला की हत्या के आरोप में सत्र न्यायाधीश ने आजीवन कारावास की सजा दी थी। महिला ने इसकी अपील उच्च न्यायालय में की लेकिन उसकी पहली सुनवाई दस वर्ष वाद हुई। यह भी इसलिए सम्भव हो पाया कि खण्डपीठ के न्यायाधीशों ने यह आदेश दिया कि पांच वर्ष से अधिक जेल में रहने वाले अभियुक्तों की फाईलों पर लाल निशान लगाए जाएं तथा न्यायालय की दैनिक वाद सूची में प्रत्येक मुकदमे के साथ यह लिखा जाए

1. राजस्थान पत्रिका 4 फरवरी 1984.

कि अभियुक्त कितने वर्षों से जेल में है। केसर के मामले पर दस वर्ष की लालपट्टी देख कर न्यायधीशों ने उसे प्राथमिकता दी और मामले की सुनवाई करके केसर को बरी कर दिया। न्यायालयों में मुकदमों की अपील व सुनवाई में देरी किस सीमा तक बढ़ गई है कि इस कारण अभियुक्त को उसके अपराध की कानूनी सजा से अधिक दण्ड भोगना पड़ता है। केसर का मामला भी न्यायालय द्वारा अपनाई गई विधि के कारण सामने आया और ऐसे कितने ही अन्य अभियुक्त जेलों में बन्द होंगे जिनके मुकदमों या अपीलों की सुनवाई वर्षों से अनिर्णय की अवस्था में पड़ी है।

यह प्रचलित न्यायिक प्रशासन व व्यवस्था की विडम्बना है कि देश के उच्च न्यायालयों में पांच छः लाख से अधिक मामले वर्षों से विचाराधीन पड़े हैं। इनमें से ऐसे लोगों की संख्या भी काफी होगी जो अपील में निरपराध घोषित होंगे अथवा उन पर लगाए गए अपराध की कानूनी सजा से अधिक जेल में काट चुके हैं, लेकिन फिर भी जेलों मे पड़े हैं। संविधान में देश के नागरिक को बुनियादी तौर पर जीने का अधिकार दिया है लेकिन न्यायालयों की विलम्बकारी परिपाटी के कारण इस अधिकार का हनन हो रहा है।

न्यायालयों मे विचाराधीन मुकदमों को त्वरित गति से निपटाने का काम दिनों-दिन जटिल बनता जा रहा है। इसके लिए विभिन्न स्तरों पर प्रयास व सुविचारित कदम उठाने होंगे। कानून की बहुलता और क्लिष्टता न्याय प्रणाली विधि व प्रक्रिया, न्यायालयों का बढ़ा हुआ कार्यभार और न्यायाधीशों की संख्या का अनुपात आदि विषयो पर विचारपूर्ण एवं व्यावहारिक निर्णयों से प्रचलित न्यायिक व्यवस्था में सुधार होगा। कानूनों की अधिकता और दैनिक जीवन पर सरकारी नियन्त्रण के विस्तार से मुकदमों की संख्या बढी है। लेकिन न्यायिक ढांचे में अपेक्षित सुधार नहीं होता तो भी न्यायिक प्रशासन में बैठे लोग चाहे तो अपनी बुद्धि व विवेक से प्रक्रिया मे सुधार तो कर सकते हैं। राज. उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने लम्बी अवधि के विवादों और जेल में बन्द अभियुक्तों के मुकदमों की सुनवाई को प्राथमिकता देकर उपयुक्त कदम उठाया है और इस विधि से न्याय के नाम पर अन्याय तथा जेल की यन्त्रणा भोग रहे लोगों को राहत मिलेगी।"[1]

राजस्थान उच्च न्यायालय के विलम्ब दूर करने के "लाल पट्टी" व कार्य सूची में "जेल अवधि" अंकित कर प्राथमिकता देने के उदाहरण को सब न्यायालयों में अपनाया जाये तो फिर "बांका लुहार को 30 वर्ष जेल में सड़ कर" पागलपन में न्याय व्यवस्था की चिता जलाकर क्रूर अट्टहास" कर आत्मघात करने का दुःखद दृष्टान्त न मिलेगा। काश भारत के उच्चतम न्यायालय से यह क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रारम्भ हो सकेंगे।

1. राजस्थान पत्रिका पृ. 6 दि. 4-2-84.

मोटर वाहन दुर्घटनाओं में मृतक के विधवा व नाबालिग बच्चों को मुआवजे के एकल पीठ तक निर्णय में 21 वर्ष का विलम्ब के उदाहरण भी चौपाल पर न्याय को असम्भव व वर्तमान न्याय व्यवस्था के विरुद्ध भूकम्प ज्वालामुखी है। इसके दुफनाने, दैनिक वाद सूची में दुर्घटना वर्ष लिखकर प्राथमिकता देने की प्रणाली कारगर सिद्ध हो सकती है। उदहरणतया राजस्थान की निम्न सूची भारत में अप-नायी जावे तो कायाकल्प हो जावेगा।

(दुर्घटना वाद)

श्रवणार्थ (सिविल वाद)

1. सि. प्र. अ. 96/72 महेन्द्र प्रकाश बनाम गोपालदास (दुर्घटना वर्ष 1961) राजस्थान उच्च न्यायालय, (वाद दैनिक सूची दिनाक 28–8–84 [पृष्ठ 7]) जयपुर

पुराने 30, 40 वर्ष के वादों को, विशेष कर "शादी–तलाक–गुजारा" "कामगर हर्जाना" कर्मचारियों के नौकरी सम्बन्धी वादों को भी दायर होने के वर्ष से प्राथमिकता देने का प्रयोग भी "चौपाल पर न्याय" की दिशा में सही प्रयास पाया गया। शादी का वर्ष दे दिया गया है–सूची में।

राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ, जयपुर,
दैनिक वाद सूची
दिनांक 10 सितम्बर, 1984
पृष्ठ 2
श्रवणार्थ (हिन्दू विवाह अधिनियम)

12. सि. प्रकी. अ. 51/81 चिरंजी लाल
(वर्ष 1936) बनाम छोटी बाई

दैनिक वाद सूची दिनांक 17 सितम्बर, 1984
(पृष्ठ 6)
श्रवणार्थ (हिन्दू विवाह अधिनियम)

1. सि. प्रका. अ. 10/80 बिशनदेवी बनाम लीलावती देवी
(वर्ष 1956)

इसके विपरीत 'प्राथमिकताएं" नहीं देने का, अभाव "न्यायिक प्रणाली" की हत्या किस प्रकार करता है–इसका उदाहरण निम्न विषय सूची से मिलेगा, जिसके अनुसार 1980 में चुने गये लोक सभा की केवल सही मतगणना की चुनाव याचिका, लोक सभा भंग होने व नये 1984 के चुनाव तक निर्णित नहीं हो सकी है। ऐसी अनेकों चुनाव याचिकाएं 1985 तक अनिर्णित हैं।

राजस्थान उच्च न्यायालय, पीठ, जयपुर
दैनिक वाद सूची दिनांक 1984

1. चुनाव याचिका 1/80

चौपाल पर न्याय के विपरीत, यह असहनीय विलम्ब कयामत या कब्र में न्याय मिलने पर भी प्रश्न वाचक चिन्ह पैदा करता है ? नये चुनाव के पश्चात् 5 साल पहले चुने सांसद या विधायक के चुनाव भी अवैध घोषित किये गये है। जो न्याय की मखौल है।

यदि हम बार-बार तारीखें बदलते व लम्बी बहस करने की प्रवृत्ति को त्यागे, जिरह व शहादत को सम्बन्धित तन्कीहात तक ही सीमित रखे, वकीलो व न्यायाधीशो मे परस्पर सहयोग करने की स्वस्थ परम्परा अपनावें, राजीनामो, आपसी समझौता, पंच फ़ैसला आदि को प्रोत्साहना दें, तो हम जल्दी व सस्ता न्याय प्राप्त करने मे अत्यधिक सहयोगी हो सकते हैं व गरीब, जरूरतवन्द व पद दलित लोगों को राहत दे सकते हैं।

हमे न केवल सकल्प ही करना है बल्कि इसे पूरी गति के साथ कार्य रूप मे परिणित भी करना है, ताकि लोगों का न्यायपालिका के प्रति विश्वास, जो डगमगा रहा है, वापिस स्थापित हो जाये।

इसका अर्थ निश्चित रूप से संवैधानिक संशोधन द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश के वर्चस्व को पुनः स्थापित करना होगा, क्योंकि वह न्यायाधीशों के निर्णय[1] से समाप्त हो चुकी है। जब तक वह पुनः स्थापित नहीं हो जाती, न्यायिक गति और स्वतन्त्रता दोनों शिथिल पड़ जायेंगी।

आर्थिक सीमायें जो न्यायपालिका की क्रिया में बाधा हैं, न्यायपालिका को आर्थिक स्वायत्तता प्रदान कर समाप्त की जा सकती हैं। जैसे रेल्वे आदि के लिए विशेष बजट का प्रावधान है, वैसे ही भारत के मुख्य न्यायाधिपति व अन्य मुख्य न्यायाधिपतियों को न्यायपालिका के आर्थिक मामलों को अन्तिम रूप देने में अपने विचार प्रगट करने का पूर्ण अवसर मिलना चाहिये।

अपने "चौपाल पर न्याय" को सजोये हुए स्वप्न को मूर्त रूप दिया जा सकता है यदि हम इसके लिये प्रबल इच्छा का दृढ़ निश्चय और दृढ़ आत्मिक शक्ति के साथ कार्य करें और यह अनुभव करें कि कानून व न्याय लोगों के लिए है न कि लोग कानून व न्याय के लिए। हम सभी को "कानून और न्याय जनता के लिए जनता का और जनता द्वारा" के नारे का उद्घोष कर देना चाहिए और इसी में हमारी और डावाडोल "न्याय प्रणाली" जो आज धधक रही है, का उद्धार निहित है। हम न्यायिक इतिहास के चौराहे पर खड़े हैं अब अधिक इन्तजार हमारे हित मे नही है। गुजरात मे लोक अदालतों और चौपाल पर न्याय वाहनों द्वारा आपसी सुलह, सम-

---

1. एस. पी. गुप्ता व अन्य बनाम भारत का राष्ट्रपति व अन्य ए. आई. आर 1982 सुप्रीम कोर्ट, 149.

झौते करा कर निर्णय किये जाते हैं यह कानूनी ऐम्बूलेंस योजना इस दिशा में कीर्ति स्तम्भ है। गुजरात के निम्नलिखित आंकड़े अन्य राज्यों में इस ओर अनुसरण करने के लिए एक उत्कृष्ट उत्साह जनक और दृष्टान्तमक उदाहरण हैं। इससे यह भी पता लगता है कि श्री तारकुण्डे द्वारा न्याय पंचायत और लोक अदालतो की आलोचना न्यायोचित नही हैं।

इस योजना के दो उद्देश्य हैं :

(1) उन विवादों का जो न्यायालयों में नहीं लाये गये हैं, निपटारा करना।

(2) उन विवादों को जो न्यायालयों में प्रस्तुत कर दिये गये हैं, टीम के अनुभवी सदस्य, जो सुलह कराने के रूप में कार्य करते हैं, की मदद से बातचीत द्वारा निपटारा।

कानूनी एम्बूलेंस की इस योजना पर खर्च नगण्य मात्र है। प्रायः बाह टोली के लिए खाने के पैकेट रोटेरीयन्स, लॉयन्स, जेसीज, जाइन्टस और अन्य सामाजिक संगठनों द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं। प्रभाव और अनुक्रिया साफ दर्शाती हैं कि लोक अदालत का प्रभाव उन लोगों के मस्तिष्क पर सीधा पड़ता है। यह अनुभव होता है कि जन साधारण जो कि न्याय के लिए लालायित हैं, लोक अदालतों के निर्णय से पूर्णतया सन्तुष्ट होकर जाते हैं और उनके चेहरों पर सन्तोष की झलक स्पष्ट दिखाई देती है।[1]

[2]गुजरात विधिक सहायता ऐम्बूलेंस प्रोजेक्ट

1982 में लम्बित मुकदमें एवं मुकदमों से पूर्व की स्थिति पर निपटाये गये मामलों का विधिक सहायता ऐंबुलेंस के अधीन विवरण :

	लम्बित मुकदमें निर्णित	मुकदमों से पूर्व निर्णित
1. सिविल	1046	109
2. सिविल निष्पादन	51	—
3. वैवाहिक	309	65
4. दाण्डिक	1051	53

1. गुड नवर ज्यूडिसियल सिस्टम बी चेंजड बी. एम. तारकुण्डे टाईम्स ऑफ इण्डिया पेज 4 (सण्डे एडिशन) दिनांक 28/11/82
2. गुजरात राज्य विधिक सहायक एवं सलाहकार बोर्ड, गुजरात हाईकोर्ट बिल्डिंग अहमदाबाद द्वारा शोर्ष लोक अदालत पृष्ठ 8 के अधीन प्रकाशित।

5.	श्रम	705	14
6.	राजस्व	8	44
7.	प्रकीर्ण	27	4
		3278	289

उना राज्य स्तरीय शिविर 212+3567=कुल 3779

विधिक सहायता ऐंबुलेंस, लोक अदालत तथा न्याय पंचायतों द्वारा हमें "होम डिलीवरी सिस्टम ऑफ जस्टिस" (चौपाल पर न्याय) का अभियान तब तक बन्द नहीं करना चाहिए जब तक इसे (न्याय को) प्रत्येक नागरिक तक नहीं पहुंचा दिया जावे।

अखबारों समाचारों की कतरन के साथ भेजे नये पत्रों पर सुप्रीम कोर्ट ने सलाल इलेक्ट्रिकल प्रोजेक्टस के मजदूरों को, न्यूनतम मजदूरी दिलाने व ठेकेदारों के शोषण से मुक्त कर घर बैठे न्याय के नये आयाम कायम किये हैं।[1] बन्धुआ मुक्ति मोर्चा की प्रार्थना पर हरियाणा के बंधकों को रिहा कराया गया, व खनिज मजदूर कानून की राहत दी।[2] रूदहनशाह को 68 से 1982 तक अकारण कैद रखने पर उसकी याचिका के अभाव में भी रु. 35000/- हर्जाना दिलाया गया।[3] पत्रकार शीला बर्से के पत्र पर महीलाओं को पुलिस लोक-अप में अमानवीय अभद्र परेशानियों से बचाने नये नियम बनाने की आज्ञा दी गई।[4] मिस-वीना सेठी के पत्र पर बिहार जेल में 1945 से सड़ते गोमियो को 37 वर्ष बाद रिहा करने के आदेश दिये। भोंदू करमी व अनेकों को अकारण 20, 25 वर्ष जेल में रखने की भर्त्सना कर ताड़ना दी व सैकड़ों को जेल से रिहा किया गया।[5] संतवीर को पागलपन से ठीक होने पर भी 16 वर्ष बाद, पता लगने पर सुप्रीम कोर्ट ने रिहाई की।[6] सैंकड़ों आदिवासियों को जेलों मे कई वर्ष बिना मुकदमा चलाये व बिना जुर्म साबित किये सड़ने से रोकने सुप्रीम कोर्ट ने रिहाई के आदेश दिये।[7] यह यह न्याय की गंगा, अन्याय से झकझोरे गये नर कंकालों को देने का क्रम यदि गति पकड़ पाया तो हर जेल में, गांव में व चौपाल पर न्याय गंगा कभी न कभी आ सकेगी।

---

1. 1983 (2) एस. सी. सी 181 सलला इलेक्ट्रिकल्स प्रोजेक्टस बनाम जम्मू कश्मीर
   1984 (3) एस. सी. सी. 538 राज्य उपरोक्त
2. 1984 (3) एस. सी. सी 16 बन्धुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ
3. 1983 (4) एस; सी. सी 141 रुदलशाह बनाम बिहार राज्य
4. 1983 (2) एस. सी. सी 96 शीला बरसे बनाम महाराष्ट्र राज्य
5. 1982 (2) एस. सी. सी 583 वीना सेठी बनाम बिहार राज्य
6. 1982 (3) एस. सी. सी 131 सतवीर बनाम बिहार राज्य
7. 1984 एस. सी 1854 मैंथ्यू बनाम बिहार राज्य

हमें अपने चौपाल पर न्याय के अभियान को तब तक द्रुत गति
चाहिये जब तक कि न्याय प्रत्येक नागरिक को घर बैठे लोक अदालत और विधि सहायता
वाहन द्वारा सुलभ नही करा दिया जाये। मुझे लार्ड बोथ के शब्दों से निष्कर्ष पर
पहुचने का प्रलोभन हो रहा है, जिन्होने ब्रिटिश संसद भवन में कहा था "यह
आगस्टस का शेखी बखारना था कि उसने ईंटों के रोम को पाया और संगमरमर का
छोड़ा।" लेकिन हमारे भारतवासियों के लिये वह सुअवसर कितना सुखद होगा
जब हम यह कह सकेंगे "कि हमें महंगा न्याय मिला, लेकिन हमने सुलभ सस्ता
किया," बन्द पुस्तक में मिला, लेकिन हमने सजीव पत्र के रूप मे किया, सम्पन्न
लोगो की सम्पदा के रूप में पाया परन्तु हमने गरीब लोगों के उत्तराधिकारी के रूप
मे छोड़ा, दमन की दुधारी तलवार के रूप मे पाया परन्तु हमने सच्चाई
के स्तम्भ और निर्दोषिता की ढाल के रूप में ढाला। वह सस्ता सुलभ सामाजिक
न्याय गरीबतम व्यक्ति को प्रदान करवा कर सत्य मेव जयते का उद्घोष किया।" मेरी
कल्पना "चौपाल पर न्याय" की यही है। भगवती को भागीरथ बन घर व गाव मे न्याय
गंगा लानी ही होगी ?

आईये, हम स्वामी विवेकानन्द के उद्घोष "उठो, जागो और रुको मत, जब
तक उद्देश्य की प्राप्ति न हो जाये" को मूर्त रूप दें।

उत्तिष्ठित ! जाग्रत ! न प्राप्य वरान्ति बोधन !

विधि, नैतिकता और राजनीति

1. प्राक्कथन

(1) इस गोष्ठी में भाग लेने हेतु आमंत्रण को मैं अत्यन्त गौरवपूर्ण सम्मान अनुभव करता हूं जिसके विषयों की विस्तृति और महत्त्व ऐसे हैं कि विद्वान प्राध्यापक एवं विधि विशारद ही इसके साथ न्याय कर सकते हैं।

(अ) न्यायाधीश जिज्ञासु नहीं—(2) न्यायाधीशों के लिए पाण्डित्य वहिर्भव है, जैसा कि वर्तमान मुख्य न्यायाधिपति श्री वाई. वी. चन्द्रचूड़ ने मैथ्यू की पुस्तक "प्रजातन्त्र, समानता और स्वतन्त्रता" की प्रस्तावना में न्यायाधीश के. के. मैथ्यू के निर्णय पर आधारित अपनी सम्मति में कहा है—"मुझे इसका खेद नहीं है, क्योंकि मैं यह अनुभव करता हूं कि हमारी वर्तमान व्यवस्था में एक न्यायाधीश सम्मानित अपवादों के अतिरिक्त विधिक पाण्डित्य हेतु युक्तियुक्त दावा नहीं कर सकता।"

(3) मैंने सीखने तथा आपको सुनने की खुशी मे आपका सादर आमत्रण स्वीकार कर लिया है। इस पक्षपोषण के साथ अब मैं अनभ्यस्त प्रयत्न करता हूं।

(ब) मनु से मार्क्स तक—(4) महर्षि मनु से महर्षि मार्क्स, सुकरात, अरस्तु व प्लेटो से महात्मा गाधी तथा वोल्गा से गगा तक नैतिकता, विधि और राजनीति के त्रिकोण की अभिव्यक्ति, मूल्य, अद्यता एव सर्वोपरिता में अनेक परिवर्तन और रूपान्तर आये है व उसने विविध और विभिन्न आयाम ग्रहण किये हैं। प्रो. दयाकृष्ण ने अपने उद्घाटन भाषण मे "नैतिकता" को सार्वभौमिक तथा "विधि," को राज्य तक ही सीमित व संकीर्ण होने की परिभाषा दी परन्तु वह भी सर्वमान्य सत्य नही है। पश्चिम के कुछ देशों मे व्यभिचार, समलिंग काम और वेश्यावृत्ति अपराध नही है, न यह अनैतिक ही है। वहा स्वच्छन्द संभोग एवं रात्रि क्लब दैनिक चर्या है परन्तु हमारे देश मे पति या पत्नि का एक दूसरे को घर पर चुम्बन करना भी, अगर यह किसी अन्य को दृष्टिगत हो जाता है तो, अनैतिक समझा जाता है। खुमानी के "ईरान" मे वर्तमान अन्तरिक्ष काल की प्रगतिशील नारी को "वापर्दा" रहना पड़ता है।

(स) अन्धे व्यक्तियो का हाथी— (5) आप मे से अधिकांश महान् दर्शन-शास्त्री हैं और मुझे भिन्न-भिन्न प्रज्ञाचक्षु लोगों द्वारा हाथी के लिए दिए गए विभिन्न

निरूपण वाली परिनिष्ठित कथा सुनाने की आवश्यकता नहीं है जो उन्होंने उसके शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों के संसर्ग में आने के पश्चात् बताई।

(द) अनेकान्त वाद व स्यादवाद—(6) इस प्रकार नैतिकता पर जैन दर्शन की अनेकान्तवाद या स्यादवाद विचारधारा लागू होती है और यहां तक कि आवालक रूप से नैतिकता सामान्य धारणा होने से वंचित रह जाती है। विधि विभिन्न राजनीतियों की उत्पत्ति है व कुछ लोगों ने राजनीति को "मसखरापन" की संज्ञा दी है। अतः एक दार्शनिक का यह कथन है कि विधि अधिकांशतः असंहित व्यवहार बोध व कभी कभी संहिताबद्ध बकवास है। पुनः यह भी केवल आंशिक सत्य है।

(7) इस भूमि का सहित अब मैं हमारी इस सभा से सम्बद्ध मूल वादपद के विषय पर अग्रसर होता हूं।

(ई) विपयगामी विचार—(8) विधि विचारों के क्षेत्र में, विधि, नैतिकता और राजनीति के आपसी सम्बन्ध पर, विधि विशारदों, दर्शनशास्त्रियों और राजनैतिक विचारकों के बीच, अगणित वादानुवाद हुए हैं। एक व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन न तो विधि द्वारा ही नियन्त्रित किया जा सकता है न अकेली नैतिकता से। समय-समय पर राजनीति ने विधि एवं नैतिकता दोनों को प्रभावित किया है। साधारणतया यह कहा जाता है कि विधि व्यक्तियों के बाह्य कार्यकलापों से सम्बन्धित है और नैतिकता उनके अन्तःकरण से। राजनीति बाह्य कार्यकलाप और अन्तःकरण दोनों को प्रभावित करती है। विधि का आधार सामाजिक आचरण में है, जबकि नैतिकता यह निर्धारित करती है कि मानवीय आचरण के लिए अन्तस्थः मूल्य क्या है।

(फ) बेंथम—(9) बेंथम के मतानुसार विधि का केन्द्र तो ठीक वही है जो नैतिकता का, परन्तु इसका परिवेश किसी स्थिति में समान नहीं। विधि और नैतिकता के सम्बन्ध के बारे में विधि विशारद और दर्शनशास्त्री दो विचारधाराओं में विभक्त हैं। एक विचारधारा विधि और नैतिकता के विघटन में विश्वास करती है जबकि दूसरी का मत है कि विधि और नैतिकता के मध्य पूर्ण सायुज्यता है।

2. विधि का सिद्धान्त

(अ) बृहद् आरण्यक उपनिषद्—(10) (i) बृहद् आरण्यक उपनिषद् का मत है कि कानून राजाओं का राजा है। "कार्शापिण भवेद्दण्डयो यत्रान्यः। प्राकृतो जनः। तत्र राजा भवेद्दण्डयः सहस्त्रमिति धारणा ॥"

मनु 1/111/336

वैदिक काल में राजा कानून से श्रेष्ठ नहीं था तथा कानून का उल्लंघन करने पर वह किसी अन्य नागरिक की भांति दण्डित किया जा सकता था।

(ब) मनु का आदेश—(10) (ii) महर्षि मनु का आदेश निम्न भांति है :

धर्म एवं एतेहन्ति धर्मो रक्षतिः ।
तस्माद् धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोवधोत् ॥

मनु 8/15

न्याय और धर्म के विनाश से समाज का विनाश हो जाता है, न्याय और धर्म की रक्षा का प्रभाव भी रक्षक है। अतः न्याय और धर्म को नष्ट नहीं करना चाहिये।

(स) सत्पथ ब्राह्मण वृहद् आरण्यक उपनिषद्—(10) (iii) सत्पथ ब्राह्मण (xiv. 4.2.26) व वृहद् आरण्यक उपनिषद् (1.4.14) में विधि की सर्वोन्मुखता को रद्रूप शब्दों में इस प्रकार वर्णित किया है :

"विधि सत्ताधारी के शासन की भी नियन्त्रक है। अतः विधि से सर्वोपरि कुछ भी नहो। विधि की सहायता से एक अशक्त व्यक्ति सशक्त पर भी विजय पा सकता है।"

(द) मुख्य न्यायाधिपति मुखर्जी—मुख्य न्यायाधिपति मुखर्जी ने विधि का बड़े रोचक ढंग से वर्णन किया है। वे कहते हैं :

"विधिशास्त्र के आरण्यक या उपवन में अनेकानेक फल हैं। विधि दिव्य है। विधि प्राकृतिक है। विधि रीति है। विधि संविदा है। विधि मानवीय संप्रभुता का एक आदेश है। विधि एक सामाजिक तथ्य है। विधि प्राथमिक तथा अनुपगिक नियमों की सन्धि है। विधि समादेश है। विधि अनुभव है। विधि एक अप्राप्य आदर्श है। विधि एक व्यावहारिक और प्राप्य समझौता है।

विधि सामाजिक और व्यक्तिगत हितों का एक संतुलन है। विधि नैतिकता है। विधि वही है जो न्यायाधीश न्यायालय में कहते है। विधि परम्परा है। विधि अधिनियमों से भिन्न है। जिस भ्रम ने किसी को यह कहने के लिए विवश कर दिया कि कानून एक गदर्भ है। यह सब भ्रमपूर्ण दिखाई पड़ता है।"

इस समस्त संशयों के मध्य शायद इनकी सायुज्यता का झुकाव है। अगर विधि एक भारवाहक धुरीण है तो वह इस कारण है कि विधि को कर्मशील मानव जीवन के अनेकानेक प्राचीन एवं अर्वाचीन, ज्ञेय एव अज्ञेय भार वहन करने पड़ते हैं।

(इ) आस्टिन और केलसन—(10) (iv) विधि के सिद्धान्त की परिभाषा दो चरम अवस्थाएं निश्चित करती हैं : एक बल प्रयोग की द्योतक है, जबकि दूसरी विधि की सामाजिक स्वीकारोक्ति पर जोर देती है। विधि के बल प्रयोगात्मक तरीके में दो प्रकार की विचारधाराओं का समागम है—(1) अधिकरण का स्रोत व

विभिन्न प्रकार की आज्ञप्तिया। आस्टिन तथा केलसन ने विधि में बल प्रयोग की भूमिका पर जोर दिया है। प्रो. हार्ट भी अपने आपको उसी परम्परा में सम्मिलित करते हैं। आस्टिन विधि को उच्चतम वैधानिक प्रभुता सम्पन्न कहलाने वाली शक्ति का आदेश कहते है। केलसन कहते हैं कि विधि के सिद्धान्त को विधि के साथ उसी प्रकार संव्यवहार करना चाहिये जैसी वह है न कि जैसी वह होनी चाहिये। विधि का सिद्धान्त नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, इतिहास या राजनैतिक दर्शन से स्वतन्त्र होना चाहिये। दूसरे शब्दो मे यह विशुद्ध होनी चाहिए। इस प्रकार दोनों ही विधिवेत्ता नैतिक तत्त्व को विधि की परिभाषा से परे रखते है।

(फ) प्रो. हार्ट—(11) प्रो. हार्ट विधि के आदेशात्मक सिद्धान्त को प्रबल रूप से अस्वीकार करते हैं। वे संप्रेक्षित करते हैं कि किसी भी व्यक्ति द्वारा भरी हुई बन्दूक दिखाकर ऐसा आदेश नही दिया जा सकता और विधि निश्चय ही बन्दूकधारी वाली अवस्था नही है।

(ग) सेविग्नी और एलरिच—(12) दूसरा प्रतिवादी दृष्टिकोण हमारा ध्यान सेविग्नी और एलरिच के सिद्धान्तों की ओर आकृष्ट करता है। उन्होने विधि के निर्णायक तत्त्वो के रूप में समाज की वास्तविक मान्यता और रीति रिवाजो के उदय पर बल दिया। उनके मतानुसार विधि सप्रभु से अधिकार प्राप्त कर सकती है परन्तु वह उसके द्वारा उत्पन्न नहीं की जा सकती।

(ह) धर्म विधि के सम्बन्ध में हिन्दू शास्त्र की विचारधारा—(13) विधि के सम्बन्ध मे हिन्दू शास्त्र की विचारधारा आस्टिन के दृष्टिकोण से मेल नही खाती। आस्टिन के दर्शन के अनुसार हिन्दू विधि के अधिकाश नियम स्पष्ट नैतिकता से परे कुछ नही कहे जा सकते इसलिए सप्रभु का आदेश नही है। महान् आत्मिक श्रेष्ठता प्राप्त ऋषियों ने हिन्दू विधि की व्याख्या की। मनु याज्ञवल्क्य और नारद की सहिताओं का संप्रभु के आदेश के समान पालन किया जाता था। हिन्दू विधि के नियमों की मान्यता के पीछे मुख्य दर्शन परोक्ष लक्ष्य की प्राप्ति अर्थात् मोक्ष था। यही वह नैतिक दृष्टिकोण है जिससे भारत मे सर्वत्र विधि का शासन व्याप्त था। आदि काल में यह सिद्धान्त था कि राजा विधि का निर्माण नही करते थे वे केवल उनको कार्यान्वित करते थे। जब कभी कोई राजा विधि रचना करता तो उससे शास्त्रों मे वर्णित पवित्र सिद्धान्तों के अनुरूप होने की अपेक्षा की जाती थी। प्रायश्चित द्वारा पाप निष्कृति की पद्धति पूर्णतया मान्य थी जो विधि के भारी उद्भूत नैतिक दृष्टिकोण के सिद्धान्त को दर्शाती है।

(इ) विधि एवं उपनिषद्—(14) "धारणात धर्म" ही विधि का उपनिषदीय सिद्धान्त है। विधि जो धर्म है (कर्मकाण्डो से आशय नही) वही आत्मोन्नति को चिरस्थायी और जीवित रख सकती है। "ध्रियते अनने प्रजः इतिधर्म" अर्थात् धर्म या विधि जो समाज को एकत्रित रखता है, वही उसे संहत बनाता है।

(ज) विधि की मुस्लिम विचारधारा—(15) यही स्थिति मुस्लिम विधि की है। यह किसी संप्रभु के आदेश पर आधारित नहीं है परन्तु यह पावन पुस्तक कुरान की हिदायतों पर आधारित है। मुगल शासकों ने विधि की रचना नहीं की अपितु उन्होंने कुरान की विधि को मात्र कार्यान्वित किया। आरम्भिक काल मे अंग्रेजों ने भी व्यक्तिगत विधि में हस्तक्षेप नहीं किया।

(क) ब्रिटिश काल—(16) ब्रिटिशकाल में रीतिरिवाजों के द्वारा विधि के विकास के विरुद्ध विधि के संहिताकरण की प्रणाली उपस्थापित की गई थी। "बेंथम" का यह दृष्टिकोण था कि विधि का प्रत्येक प्रावधान अधिकतम लोगों हेतु अधिकतम प्रसन्नतादायक होना चाहिये। इसका ध्येय प्रत्येक व्यक्ति को कर्म की अधिकतम स्वतन्त्रता और व्यक्तिगत गतिविधियों के प्रतिबन्ध हटाकर आत्माभिव्यक्ति की अधिकाधिक सम्भाव्य स्वतन्त्रता प्रदान करना था। विधि के संहिताकरण की प्रणाली विभिन्न प्रकार की आज्ञप्तियों से सम्पन्न थी।

(17) इन समस्त घटकों पर विचार करने पर हम यह कह सकते हैं कि विधि के सिद्धान्त का आशय एक निश्चित समुदाय हेतु निर्दिष्ट तथा उसके द्वारा स्वीकृत आचरण की कसौटी से है, जो एक शक्ति सम्पन्न अधिकरण द्वारा नियम बनाकर उनके साधारण सम्प्रयोग की अवस्था प्रयुक्त करता है और इन्हें विभिन्न अधिनियमों द्वारा लागू करके पालनीय बनाता है।

अ3. नैतिकता का सिद्धान्त

(अ) सामाजिक स्वीकारोक्तियां : बेंथम—(18) जो कुछ सत्य और उत्तम है, उसके सामंजस्य से नैतिकता आचरण हेतु आदर्श सिद्धान्तों का मार्ग दर्शन कराती है। नैतिक अभ्यर्थना हमारे विवेक को सदसद् का निर्णय करने की क्षमता प्रदान करती है। वस्तुतः नैतिकता एक आन्तरिक शक्ति है जो मानवीय विवेक को अनुरोध करती है तथा इसकी अनुशास्तियां भी मुख्यतया आन्तरिक हैं। बेंथम के मतानुसार वाह्य अनुशास्तियां भी हैं, जैसे सामाजिक अनुशास्ति। सामाजिक अनुशास्तियां उत्कृष्ट नैतिकता की अनुशास्तियां नहीं है बल्कि व्यावहारिक या लौकिक कहलाने वाली अनुशास्तियां हैं। दैवीय विधि के नियमों की भांति सर्वोत्कृष्ट नैतिक विधि के नियम अनवरत और आन्तरिक हैं तथा देश और काल के साथ परिवर्तनशील नहीं है। दूसरी तरफ व्यावहारिक नैतिकता देश और काल के साथ परिवर्तनशील होती है। व्यावहारिक नैतिकता वही है जो एक समुदाय ने एक विशिष्ट देश और काल मे लोगों के विवेक द्वारा अवश्यम्भावी रूप से पालन हेतु सुविधाजनक, उचित और उपयुक्त समझा है।

(ब) नग्नवाद और नैतिकता—(19) नैतिकता को भंग करने वाले कारण के निर्धारण की कठिनाई इस तथ्य से बढ़ जाती है कि अनैतिकता का सिद्धान्त केवल एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य तक ही नहीं बल्कि एक स्थान की समाज की मानुहिक धारणा भी दूसरे स्थान से आश्चर्यजनक भिन्नता रखती है। इस प्रकार जिस देश में क्षय सभी राष्ट्रीय संकट से संघर्ष करने हेतु धूप स्नान करना आवश्यक है वहां समुद्र तट पर नग्नता आपत्तिजनक नहीं हो सकती परन्तु एक दूसरे देश में ऐसा होना आवश्यक नहीं जहां धूप दुर्लभ वस्तु होने के स्थान पर अत्यन्त प्रचुर हो और स्वास्थ्य के हित में उससे रक्षा करना आवश्यक हो। तद्नुसार, यह अधिक प्राचीन नहीं जबकि संतति निरोध को अनैतिक समझा जाता था। परन्तु भारत में जनसंख्या वर्धन की स्थिति में संतति निरोध जनसंख्या पर प्रतिबन्ध का एक वैध माध्यम समझा जाता है। श्रीमती एनीबेसेन्ट को गर्भ निवारक साहित्य का प्रकाशन करने के फलस्वरूप अभिशस्त किया गया था। परन्तु हमारे देश में अब समाचार पत्रों और सार्वजनिक स्थानों पर ऐसे साहित्य का प्रकाशन अपराध नहीं समझा जाता बल्कि उसके प्रोत्साहन हेतु परितोष और पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं।

3ब. राजनीति का सिद्धान्त

(अ) राजनीति-संकीर्णता—(20) वस्तुतः राजनीति देश पर शासन करने वाले लोगों के हाथ में एक उपकरण है। किसी देश की राजनीति स्थिर नहीं रहती और यह राजनैतिक आचरण को प्रभावित करने वाली धारणाओं के परिवर्तन के साथ साथ बदलती रहती है। विभिन्न देशों की राजनैतिक धारणायें समय के अनुसार तथा राजनैतिक विचारको के प्रभाव से परिवर्तित होती रहती है। संयुक्त राज्य अमेरिका और संयुक्त साम्राज्य की राजनैतिक धारणायें सोवियत रूस के संयुक्त राज्यों व चीन से भिन्न है। इसी प्रकार अरब देशों की राजनैतिक धारणायें यूरोपीय देशों की राजनैतिक धारणाओं से भिन्न हैं। किसी देश के राजनैतिक आचरण का ढंग विधि और नैतिकता दोनों को प्रभावित करता है। भारत में भी इस देश पर शासन करने की ब्रिटिश राजनीति का सिद्धान्त वर्तमान स्वतन्त्र भारत में राजनीति के सिद्धान्त से भिन्न था। ब्रिटिश सरकार की नीति थी कि भारतीय भूमि पर अंग्रेजी पद्धति की उपस्थापना की जाय, इसलिए ब्रिटिश काल में हमारी न्याय और विधि की सम्पूर्ण प्रणाली ने क्रमिक परिवर्तन देखे हैं। ब्रिटिश काल में सर्वाधिक प्रभावित होने वाली संस्था ग्राम्य समुदाय की थी, जो पूर्व ब्रिटिश काल में, सामाजिक और आर्थिक रूप से एक आत्म निर्भर इकाई थी। राज्य, गांव के मामले में केवल राजस्व उगाहने और बड़े उपद्रव कुचलने के अतिरिक्त बहुत कम हस्तक्षेप करता था। समस्त सामुदायिक कार्य-व्यापारों की व्यवस्था ग्राम पंचायत द्वारा की जाती थी। अंग्रेजो ने अपनी व्यवहार और न्याय व्यवस्था को गावों तक बढ़ाकर ग्राम पंचायतों

की सत्ता को नष्ट कर दिया। इसी प्रकार 19वीं शताब्दी के अन्त तक विधि के अधिकांश क्षेत्रों में ब्रिटिश ढंग से संहिताएं लागू हो गईं। राजनैतिक कारणों से हिन्दू और मुस्लिम विधियों को असंहित छोड़ दिया गया।

4. विधि और नैतिकता का सम्बन्ध

(अ) फुलर विधि की स्वाभाविक नैतिकता—(21) यद्यपि विधि और नैतिकता समरूप नहीं है; फिर भी दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। अगर विधि लोकमत पर आधारित है तो लोकमन स्वस्थ नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित है। फुलर के शब्दों में—"विधि की अपनी स्वयं की स्वाभाविक नैतिकता है।" यह वस्तुतः सत्य है कि विधि का अधिकांश परिमाण ऐसा है जो नैसर्गिक न्याय या उच्चतम नैतिकता के सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है, और यहां तक कि एक विशिष्ट समुदाय के लोगों की व्यावहारिक नैतिकता पर भी आधारित नहीं है। ऐसी विधि केवल अधिनियमों की शक्ति से ही टिकती है। दूसरी तरफ यह भी सत्य है कि ऐसी भी विधि, विधिक सिद्धान्त और निर्णय हैं जो सुनिश्चित और सुमान्य भौतिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

(ब) हिटलर-नाजियों का न्यूरेम्बर्ग में परीक्षण—(22) यह भी सत्य है कि विधि को न्यूनतम नैतिक सिद्धान्तों के समानुरूप होना चाहिए। अगर यह उस कसौटी पर खरी नहीं उतरती तो सही अर्थ में यह विधि नहीं होती। उदाहरण हेतु न्यूरेम्बर्ग परीक्षण के समय यह प्रकट हुआ कि द्वितीय विश्वयुद्ध में विसंयोधी शिविरों में करीब 57 लाख यहूदियों का नर संहार किया गया। नाजी नेताओं का उत्तर यह था कि यह हिटलर की आज्ञा से किया गया था और हिटलर के शासनकाल में उसकी आज्ञा ही विधि थी। दूसरे शब्दों में यह दावा किया गया कि यहूदियों का संहार करते समय वे जर्मनी की विधि का पालन कर रहे थे। न्यूरेम्बर्ग न्यायालय ने यह तर्क नहीं माना और इंगित किया कि तानाशाह की प्रत्येक आज्ञा या विधि न्यूनतम नैतिकता की कसौटी पर खरी नहीं उतरती तो यह विधि ही नहीं है। विसंयोधी शिविरों में लाखों यहूदियों का संहार प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में न्यूनतम अन्तस्थः नैतिकता के विरुद्ध था, अतः नाजी शासक द्वारा पारित ऐसी तथाकथित विधि का पालन करना एक अवैध विधि का पालन करना था।

(स) शिवकान्त का बन्दी प्रत्यक्षीकरण, जीने का अधिकार नहीं—(23) शिवकान्त बनाम अतिरिक्त जिलाधीश[1] के वाद में सर्वोच्च न्यायालय में किसी नागरिक के नैसर्गिक अधिकारों, स्वाभाविक अधिकारों, मानव अधिकारों या आधारभूत अधि-

---

1. ए. आई. आर. 1976 सुप्रीम कोर्ट 1207

कारों के रहने या उनका अस्तित्व होने को मान्यता देने से यह निर्णय देकर प्रति कर दिया कि केवल अनुच्छेद 21 के प्रभाव से ही इसका अस्तित्व है। प्रो. बख्शी इस पर टिप्पणी करते हुए अपनी पुस्तक "दी इण्डीयन सुप्रीम कोर्ट एण्ड पोलिटिक्स" में लिखा है :—"शिवकान्त की वास्तविक दुखान्तता न्यूनतम, कूट कौशल और कपट पटुता दोनों के अभाव में निहित है और समस्त न्यायाधीशों द्वारा (न्यायाधीश खन्ना सहित) अभिहस्ताक्षरित आदेश द्वारा इस भूमिका पर कठोरता पूर्वक यह निर्णीत किया गया कि अगर आदेश अधिनियम के अन्तर्गत या उसके पालनार्थ हो या अवैध या तथ्यगत या विधिक विद्वेष से कलुषित हो या असंगत विचारों प[र] आधारित हो तो भी याचिका प्रस्तुत करने के किसी आधार को न्यायालय नकारात्मक सम्मति निर्धारित करता है।

(ब) पाकिस्तान बंगलादेश में नृशंसता—(24) इसी प्रकार सन् 1971 में पाकिस्तान सरकार के विरुद्ध विद्रोह में बंगलादेश के करीब 40 लाख लोगों को मौ[त] के घाट उतारा गया। इन लाखों नागरिकों का पाकिस्तान सरकार की आज्ञा से संहार किया गया। पाकिस्तान सरकार के आदेश न्यूनतम नैतिकता की समस्त परम्पराओं के प्रतिकूल थे इसलिए बंगलादेश की जनता ने पाकिस्तान की शासन सत्ता को उखाड़ फेंका जो कि बंगलादेश के लोगों के नैतिक परिसर के समानुरूप नहीं थी।

(इ) वर्णभेद की अभार्थी नीति—(25) दक्षिण अफ्रीका सरकार की रंगभेद नीति नैतिकता के न्यूनतम सिद्धान्तों और विश्व शान्ति के समानुरूप नहीं थी। सुरक्षा परिषद् और साधारण सभा ने दक्षिण अफ्रीका सरकार को तिरस्कृत करते हुए अनेक प्रस्ताव पारित किये परन्तु गोरों की सरकार ने अपनी विधिक व्यवस्था में कोई प[रि]वर्तन नहीं किया। किसी व्यवस्था के सुव्यवस्थित होने हेतु दोहरी आवश्यकता हो सकती है, प्रथमतः जो अधिकरण विधि का सृजन करता है उसका मार्गदर्शन नैतिक विचारों से होना चाहिये, द्वितीय जब तक हमारे विधि निर्माता स्वयं विधि की आन्तरिक नैतिकता को स्वीकार करने हेतु उद्यत न हों तब तक हम अच्छी व्यवस्था स्थापित नहीं कर सकते। एक राष्ट्र के जीवन में, विधि की ये बाह्य और आन्तरिक नैतिकताएं परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करती हैं।

(फ) इंगलैण्ड में व्यभिचार, समलिंग कामुकता और वेश्यावृत्ति—(2[6]) अब हम एक अत्यन्त विवादास्पद प्रश्न में प्रवेश करते हैं कि एक समाज के उद्धार हेतु न्यूनतम नैतिक अवस्थाएं क्या हैं? अंग्रेज लोगों में वेश्यावृत्ति तथा समलिंग कामुकता से सम्बन्धित दाण्डिक विधि के सम्बन्ध में घोर असन्तोष व्याप्त था। व्यभिचार, जारकर्म या वेश्यावृति दण्डनीय अपराध नहीं थे। पुरुषों द्वारा समलिंग काम दाण्डिक अपराध था। अतएव इंगलैण्ड में 1954 में वुल्फेन्डन समिति का गठन हुआ। इस समिति ने 1957 में यह अभिस्थापित किया कि विधि का नागरिकों

के निजी जीवन से कोई सरोकार नहीं होना चाहिए था इसलिए आपस में सहमत बालिगों की समलिंग कामवृति अब दाण्डिक अपराध नही होना चाहिए। वेश्यावृत्ति के सम्बन्ध में भी समिति ने यह अभिस्तावित किया कि विधि का निजी सदाचार से भी सरोकार नहीं है इसलिए वेश्यावृत्ति से जब तक किन्ही अन्य लक्षणों का संयोग नही हो पाता, जैसे अशिष्टता, भ्रष्टाचार या शोषण; वेश्यावृत्ति को दण्डनीय अपराध नही बनाना चाहिये। इसलिए वेश्यावृत्ति को अवैध नही करार दिया गया परन्तु "स्ट्रीट आफेन्सेज एक्ट 1957" नामक एक अधिनियम पारित किया गया। अमेरिका में वूल्फेन्डन कमेटी के अभिस्तावों पर वाद विवाद भी हुआ।

(ग) अमेरिका में नग्न-नृत्य—(27) 1955 में अमरीकी विधि संस्थान ने बालिगों में समस्त साधारण निजी सम्बन्धों को दाण्डिक विधि के क्षेत्र से बहिर्गत रखने का अभिस्ताव करते हुये एक आदर्श दण्ड संहिता का प्रारूप प्रकाशित किया। परन्तु 1974 में अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने रात्रि क्लबों मे इस अभिकथन पर नग्न नृत्य की क्रियाओं को निन्दित किया और विशिष्ट मदिरा का उपयोग विवर्जित कर दिया कि यद्यपि ऐसी क्रियाओं हेतु प्राविधानिक निषेध नहीं है, फिर भी वे जनमानस के सदाचार को प्रभावित करती हैं।

(ह) शा का मामला वेश्याओं की निर्देशिका—(28) सन् 1962 में शा बनाम निर्देशक, लोक अभियोजन का[1] विवाद लार्ड सदन के सम्मुख आया। इस वाद के तथ्यों के अनुसार श्री शा ने "महिला निर्देशिका" नामक एक पत्रिका प्रकाशित की जिसमें वेश्याओं के नाम, पते और टेलीफोन नम्बर समाविष्ट थे। इसके अतिरिक्त उसने पत्रिका में वेश्याओं के कुछ नग्न चित्र भी दिये थे। श्री शा को अश्लील साहित्य के प्रकाशन के लिये दोषी पाया गया, जो कि वेश्याओं की आय पर निर्भर रहने और तथाकथित निर्देशिका द्वारा लोक सदाचार को भ्रष्ट करने का षडयन्त्र था, यद्यपि यह एक प्राविधानिक अपराध नही था।

(29) वूल्फेन्डन समिति के प्रतिवेदन तथा शा के मामले से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि इंगलैण्ड का वर्तमान उच्च संघठित समाज भी अपने समाज में विभिन्न नैतिक मान्यताएँ रखता है। भारतवर्ष में जहां प्रजातन्त्र धर्म निरपेक्ष तथा न्यायानुरूप आधारों पर समाजवादी अर्थतन्त्र का ढाचा निर्मित करने का प्रयास हो रहा है यह आवश्यक है कि सामाजिक नैतिकता के ऐसे अंग्रेजी विचार जो हमारी सास्कृतिक विरासत पर आधारित नहीं हैं, उन्हें विधि के क्षेत्र में पुरस्थापित नहीं किया जाना चाहिये।

1. 1962 ए. सी. 220 (एच. एल.)

6. विधि और राजनीति का सम्बन्ध

(अ)[1] ब्रिटिश विधि द्वारा कुरान तथा धर्मशास्त्रों का निगूहण—(30) वस्तुतः विधि और राजनीति परस्पर सम्बन्धित हैं परन्तु राजनीति सदैव विधि पर हावी रहती है। 19वी शताब्दी मे हमारे देश हेतु राजनीति इस देश मे अपनी स्थिति सुदृढ़ करने तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन को कुचलने वाली रही है। इस देश मे कुरान और धर्म शास्त्रों पर आधारित विधि शनैः शनैः परिवर्तित की गई तथा उसके स्थान पर धीरे धीरे अंग्रेजी विधि पुरस्थापित की गई। अंग्रेज जाति को लाभान्वित करने हेतु जाति अनर्हता निवारण अधिनियम, 1950 तथा भारतीय उतराकार अधिनियम 1965 जैसी विशेष विधियां भी पारित की गई थीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति तक जाति भेद चलता रहा।

(ब) मिन्टोमोर्ले सुधार—(31) 1909 मे मुसलमानों को पृथक प्रतिनिधित्व प्रदान करने हेतु मिन्टोमोर्ले सुधार पुरस्थापित किये गये। ब्रिटिश राजनीति का एक भाग यह था कि हिन्दू और मुस्लिम जातिया एक दूसरे के निकट नही आनी चाहिये

(स) स्वतन्त्रता संग्राम दमनकारी विधि—भारत सरकार अधिनियम 1935 में भी मुसलमानों को पृथक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था। इतना ही नहीं, ब्रिटिश सरकार द्वारा देश की स्वतन्त्रता हेतु लोकप्रिय आन्दोलन को कुचलने के लिये कुछ अधिनियम भी पारित किये गये।

(द) एक पत्नीत्व—(32)(अ) कुछ समाज सुधारों हेतु कोई विधि आवश्यक हो सकती है परन्तु सत्तारूढ राजनैतिक दल, वही सामाजिक सुधार करेगा जो उस राजनैतिक दृष्टि से लाभप्रद हो। 1955 में हिन्दू विवाह अधिनियम पारित करके हिन्दुओं में एक पत्नीत्व प्रथा प्रचलित की गई परन्तु एक पत्नीत्व की वही प्रथा मुसलमानों में प्रचलित नही की गई है। पाकिस्तान तथा कुछ दूसरे अरब देशों में एक पत्नीत्व की प्रथा पुरस्थापित की गई है परन्तु हमारे देश मे कुछ राजनैतिक तत्व लोक सभा को इस देश में ऐसा सामाजिक सुधार पुरस्थापित करने की अनुमति नहीं दे रहे हैं। कम्पनी अधिनियम में राजनैतिक दलों को कम्पनियों द्वारा दान देने हेतु अनेक बार विभिन्न संशोधन किये गये। राज्य का काश्तकारी कानून अभी तक पूर्णावस्था को प्राप्त नही हुआ है तथा सतारूढ़ राजनैनिक दल के अनुकूल अनेक संशोधन पारित किये गये हैं। भूमिहीन कृषकों को भूमि देने हेतु कृषि भूमि पर अत्याचारियों के कृत्यों का अनेक बार वैधानीकरण किया जा चुका है।

(इ) दल बदल विधि विहीन—(32)(ब) अभी तक अन्तर्दलीय पक्षत्याग विधि पारित नही की गई है। पिछले अनेक वर्षों से यह दलील प्रस्तुत की गई है कि पक्ष त्याग अनैतिक है तथा जनता में अपने प्रतिनिधियों के प्रति व्याप्त निष्ठा के साथ विश्वासघात है। परन्तु कांग्रेस तथा जनता पार्टी के दोनों ही सतारूढ़ दलों ने कई राजनैतिक पहलुओं के फलस्वरूप ऐसी कोई विधि पारित नही की। हरियाणा व आंध्रप्रदेश के दल बदल भारत के काले धब्बे हैं।

(फ) 42 वां संशोधन स्थगन आदेश निरोध—(33) विधि पर राजनीति के प्रभाव से हमारे देश के संविधान में संशोधनों की बाढ़ सी आ गई है जिसमें 30 वर्ष की अल्पावधि में ही 45 संशोधन हो चुके हैं। 42वां और 44वां दोनों ही संशोधन बनाने और बिगाड़ने की दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। 42वें संशोधन द्वारा स्थगन आदेश स्वीकृत करने और रिट याचिकाएं ग्रहण करने के संदर्भ में संविधान के अनुच्छेद 226 पर कुछ आरोहक व प्रतिबन्ध लगाये गये थे। स्थगन आदेश स्वीकृत करने के संदर्भ में स्वयं भारतीय विधि संस्थान ने न्यायालयों पर कुछ अवरोध लगाने हेतु अभिस्ताव किये तथा 42वें संशोधन ने यह कहा कि सार्वजनिक उपयोग वाली परियोजनाओं के सम्बन्ध में स्थगन आदेश स्वीकृत नहीं किये जा सकते।

(34) भारत भवन निर्माण सहकारी समिति लिमिटेड, जयपुर बनाम राजस्थान राज्य व अन्य[1] में मुझे इस प्रावधान पर विचारण करने का अवसर प्राप्त हुआ और मैंने यह सम्प्रेक्षित किया है कि एक प्रगतिशील देश और समाज में भवन, पथ, बांध और पुलों के निर्माण के रूप में सार्वजनिक उपयोगिता वाली परियोजनाओं का उत्तरोत्तर विस्तार हो रहा है। स्थगन आदेश की स्वीकृति पर लगाये गये प्रतिबन्ध में बहुत विस्तृत क्षेत्र समाविष्ट होगा और उसका विधायिका के आशय को क्रियान्वित करने के हित में ऐसा ही निर्वचन करना चाहिये। उसमें निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया :

> "अतः एक मेरी यह दृढ़ धारणा है कि सरकार द्वारा सार्वजनिक अभिप्राय हेतु भूमि अवाप्ति अधिनियम तथा नगर सुधार न्यास अधिनियम दोनों के प्रावधानों के अन्तर्गत भूमि की अवाप्ति बिना इस तथ्य की अपेक्षा के सदैव सार्वजनिक उपयोग हेतु ही होगी, चाहे उसका वास्तविक उपयोग एक विशिष्ट योजना हेतु हो जो सिंचाई की हो, विद्युत उत्पादन संयन्त्र हो, सड़क हो राजकीय कार्यालय हो, जटिल विपणि या व्यापारिक केन्द्र हो या उद्यान या आवासन मण्डल की सहायता से गृह हीन लोगों हेतु आवास हो। शब्द "सार्वजनिक उपयोगिता" को समझने की आवश्यकता है क्योंकि साधारण भाषा तथा विस्तीर्ण रूप में उसका व्यापक अभिप्राय है।
>
> "42 वें संशोधन ने उपपरिच्छेद (6) पुरस्थापित किया जावे जिसका उद्देश्य समाज के योजनाबद्ध विकास हेतु सार्वजनिक उपयोग की ऐसी योजनाओं और परियोजनाओं, जैसे सड़कें, बांध, आवासन योजनाएं रेल पथ एवं रेल पार्श्विकाएं तथा अन्य विभिन्न योजनाओं के कार्यान्वयन में रुकावटों और अवरोधों की क्षिप्रता पर नियन्त्रण लगाना है।"

(ग) आसाम में सैनिक कार्यवाही का स्थगन (ह) 44 वें संशोधन का प्रभाव।—(35) परन्तु राजनैतिक परिवर्तन इसके तद्रूप परिवर्तन में फलीभूत

---

1 ए. आई. आर. 1979 राजस्थान 209

हुआ। इस आरोहक को 44 वें संशोधन द्वारा अपमार्जित कर दिया गया है, जिसके फलस्वरूप न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप संभव हो गया है। आसाम राज्य के तथा कथित अशान्त क्षेत्रों में किसी विधि एवं निर्देशों के अन्तर्गत पुलिस तथा सैन्य कार्यवाही के परिचालन के स्थगन ने न्यायालयों को इतनी विस्तृत शक्तियों के औचित्य पर एक गंभीर राजनैतिक और विधिक मतभेद उत्पन्न कर दिया है, जबकि सरकारी प्रमाणक के अनुसार स्थिति अत्यन्त विस्फोटक है और राज्य में विस्तृत अशान्ति दृष्टिगत है।

(इ) 42वां संशोधन सैद्धान्तिक व आनन्दपूर्ण विवादिता का परिहार :—(36)पुनः यह दृष्टान्त दिया जा सकता है कि 42वें संशोधन की शक्ति से विधि के उल्लंघन पर रिट याचिकाएं तब तक नहीं चल सकती थीं, जब तक कोई नागरिक यह बताने मे समर्थ नही होता कि इससे उसको भारी क्षति या अन्याय हुआ है। पुनः इसका तात्पर्य विचाराधीन विवादों के निपटारे में विलम्ब टालने के लिए सैद्धान्तिक व आनन्दपूर्ण विवादिता टालना था, जिसे यह देश वहन नहीं कर सकता।

37. मंजूर अहमद बनाम क्षेत्रीय परिवहन अधिकरण कोटा व अन्य[1] में मैंने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया है :—

> "मुझे यह दृष्टिगोचर होता है कि अनुच्छेद 226 में उपरोक्त दो परिच्छेद (ब) तथा (स) का विशिष्ट परिवर्धन निस्सार नहीं था लोकसभा ने केवल सैद्धान्तिक हित वाले विवादों का अपसरण व बहिष्कार करने का सोचा होगा ताकि न्यायालय का कीमती समय उन मामलों को निर्णित करने में उपयोग करने हेतु बचाया जा सके जिनमें नागरिकों के अधिकार निहित हैं या वे उन्हें प्रभावित करते हैं। लोकसभा इस तथ्य से अनभिज्ञ थी कि सैद्धान्तिक या आनन्दपूर्ण वादिता हेतु यह देश न्यायालय का समय नष्ट करना बर्दाश्त नही कर सकता। यद्यपि सैद्धान्तिक हित के विवाद निश्चित रूप से अत्यन्त उपयोगी एवं विश्वविद्यालय के विधि प्राध्यापकों तथा विद्यार्थियों हेतु अत्यन्त अभिरुचिपूर्ण हो सकते हैं, उच्च न्यायालय से उनमें प्रवेश करना उपेक्षित नहीं होना चाहिये। वे अन्य पक्षकारों हेतु बाधक और अनिष्टकारी होंगे जो एक दशक से पंक्ति में प्रतीक्षा कर रहे हैं तथा उन्न

(ज) विधिक कला कौशल और व्यायाम शालाएं अनुत्साहित—(37) "क्या हमें उन हजारों पक्षकारों की कीमत पर जो या तो पिछले पांच या छः वर्षों से जेल की कोठरियों में प्रतीक्षा करते हुए अपने दोष अथवा निर्दोषिता को निर्णीत करवाना

1. ए. आई. आर. 1979 राजस्थान 98

चाहते हैं या उन हजारों असैनिक कर्मचारियों अथवा औद्योगिक कामगारों, छोटे दूकानदारों अथवा किसानों के संवैधानिक अधिकारों पर राज्य के निर्लज्ज नियोजक अधिकारियों द्वारा अतिक्रमण किया जाता है तथा जो कम से कम "विधि के अनुसार न्याय" प्राप्त करना चाहते हैं, भले ही उन्हें वास्तविक अथवा सामाजिक न्याय न मिले, लेकिन ये लम्बी वाद सूची एवं अवशिष्ट वादों के कारण अपने मामले की सुनवाई का अवसर नहीं पाते है, थोड़े से उन भाग्यशाली, प्रतिभावान, निपुण एव वक्तृत्व शक्ति में अग्रणी और सम्पन्नशील लोगों की कलाबाजियां नि सहाय होकर देखते रहना चाहिये। करीब पचास हजार लम्बित मामलों से सम्बद्ध लाखों निराश, असहाय आतुर और उदास चेहरे वाले पक्षकार मेरी ओर टकटकी लगाये देख रहे है और मुझे उनके प्रतिक्षित भाग्य को निर्णित कराने के लिए मार्ग प्रशस्त करने तथा पिछले दस वर्षों से लम्बित मामलों की अनिश्चितता से कारित अचेतनता से मुक्ति दिलाने हेतु सारभूत क्षति व न्याय की सारभूत विफलता सम्बन्धी अनुपूरक को कार्य-रूप में परिणित कराने के भारी महत्व का स्मरण करा रहे हैं।"

(क) न्यायालय गरीबों और दलितों को रियायत देने में असमर्थ :—"पुनः क्या हम अपनी आंखों को बन्द करके इस कटु सत्य के प्रति नेत्रहीन हो जायें कि लाखों निर्धन, पददलित तथा अछूत व गरीब नागरिक जो अभी तक न्यायालय न्याय और विधि के क्षेत्र से बहिष्कृत हैं क्योंकि वे विशेषाधिकार युक्त, चतुर; शिक्षित तथा प्रबुद्ध पक्षकारों की प्रतियोगिता में टिक नहीं सकते और न वे लम्बी कतारों मे खड़े रहकर प्रतीक्षा करने में ही सक्षम हैं। इस प्रकार यद्यपि उन पर न्यायालय द्वारा विचार किये जाने तथा वे सहायता प्राप्त करने के योग्य हैं, लेकिन हम संविधान के प्रहरी के रूप में कार्य करने तथा उन्हें न्याय प्रदान करने में असहाय हैं।

कृषकों की दुर्दशा व उसका निवारण—न्यायालय मे बैठे हुये, मैं शाहबाद के भूखे और नग्न अस्थिपंजर वाले शाहरियों (शाहबाद उपखण्ड जिला कोटा के कृषक) के नेत्रों से अनन्त अश्रु प्रवाह देख रहा हूं जो अपने खेतों पर धनी तथा साधन सम्पन्न आक्रान्ताओं द्वारा अतिक्रमण करते हुये, उन्हें जोतते हुये तथा उनकी फसल काटते हुये असहाय देख रहे हैं, लेकिन वे इसके विरोध मे रोने तथा चीखने का भी साहस नहीं जुटा सकते। निर्धनों को विधिक सहायता और उनको संविधान मे सम्मिलित करने की लम्बी लम्बी बातों के होते हुये भी न तो वे न्यायालय तक पहुंचने की कल्पना ही कर सकते हैं और न पुनः स्वामित्व प्राप्ति का निराकरण ही प्राप्त कर सकते हैं। यदि मैं हमारी विधि तथा न्यायालयों की उपरोक्त दुखान्तक कार्य-प्रणाली के कटु सत्यों को गिनाते हुए वर्णन करूं तो मैं क्षणभर के लिए सम्भवतः एक न्यायाधीश की अपेक्षा एक कवि, दार्शनिक अथवा सुधारक की भूमिका अदा कर सकता हूं, परन्तु वह अवरोध यही है कि जो इस सुविस्तृत विचारधारा के लिए उत्तरदायी है कि "न्यायाधीश उच्च अट्टालिकाओं में निवास करते हैं।"

यह विचार जो असत्य हो या आंशिक रूप से सत्य भी हो, उसका निराकरण सीढ़ी में सबसे निम्नस्तर वाले लोगों को यानि कृषक, कामगार, चर्मकार इत्यादि को

शीघ्र, सस्ता, सामाजिक और वास्तविक न्याय प्रदान करके करना चाहिये, न कि मात्र "मान-हानि" के सुविधापूर्ण हथियार का प्रयोग करके।"

(स) अनुच्छेद 226 राजनैतिक आरोहकों का विलोप-44वां संशोधन—(38) 44वें संशोधन द्वारा यह आरोहक किसी प्रकार समाप्त करके हटा दिये गये हैं। ये दो दृष्टान्त स्पष्ट करते हैं कि विधि को राजनीतिज्ञों द्वारा अपने राजनैतिक सिद्धान्त व नीति घोष के अनुसार निर्मित किया जाता है। उन्हें बिना इसका अर्थ समझे अपने पक्षपोषण मे अभिवाचित करने के अतिरिक्त इसकी नैतिकता या शीलाचारिकी से कोई वास्ता नहीं। अत एव मेरे दृष्टिकोण से यद्यपि राजनीति एवं विधि का संगम, समागम और सह-अस्तित्व है परन्तु सदाचार व नीतिशास्त्र का अपने शास्त्रीय अर्थों मे राजनीति या विधि से सम्बन्ध न्यूनतम है।

7. नैतिकता और राजनीति का सम्बन्ध

(अ) परफ्यूमों कीलर काण्ड—(39) यद्यपि नैतिकता और राजनीति के सम्बन्ध अत्यन्त गौण है तथापि यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नैतिकता ने राजनीति को समय-समय पर अवश्य प्रभावित किया है। इंगलैंड का प्रसिद्ध परफ्यूमो वाद इस तथ्य का ज्वलन्त उदाहरण है कि जब युद्ध मंत्री कीलर नामक एक जासूसी लड़की के साथ अवैध रूप से सबंधित पाये गये तो सम्पूर्ण सत्ताधारी दल का समस्त राजनैतिक ढाचा बुरी तरह प्रभावित हुआ और जन मानस के दबाव ने युद्ध मंत्री को अपने पद से त्यागपत्र देने के लिए विवश कर दिया। यह सुविख्यात तथ्य है कि अमरीकी और रूसी जासूसी अभिकरण कई देशों मे कार्यरत हैं और उन अभिकरणों की सहायता से कुछ देशों मे अनेक राजनैतिक परिवर्तन लाये गये।

(ब) वाटरगेट : निक्सन पर नैतिकता का कड़ा प्रहार—(40) वाटरगेट कांड ने सयुक्त राष्ट्रों मे आपदयुक्त रूप धारण कर लिया और राजनीति में नैतिकता ने निक्सन पर कड़ा प्रहार किया जो विश्वव्यापी निन्दा और उसके त्याग पत्र में परिणत हुआ।

(स) मूंदड़ा काण्ड टी. टी. कृष्णमाचारी का बहिर्गमन—(41) और समीपस्थ छागला आयोग का मूंदड़ा द्वारा जीवन बीमा निगम संव्यवहार पर दोषारोपण भी, जो एक नैतिक दायित्व के आधार पर तत्कालीन वित्त मंत्री श्री टी.टी. कृष्णमाचारी के त्याग पत्र मे परिणत हुआ, राजनीति पर नैतिकता की विजय थी।

(द) सतीप्रथा—(42) सत्तारूढ सरकार द्वारा समाज सुधारकों की मांग पर कई सामाजिक सुधार भी किये गये। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ मे राजा राममोहन राय जैसे तत्कालीन हिन्दू दार्शनिकों व समाज सुधारकों द्वारा सतीप्रथा तथा बालिका वध जैसी सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन की मांग की गई थी, जिस पर भारत में ब्रिटिश सरकार ने सतीप्रथा, बालिका वध निरोध व शिशु विवाह पर रोक हेतु विधि का निर्माण किया तथा विधवा पुनर्विवाह हेतु प्रावधान निर्मित किये।

(इ) गर्भपात का वैधकरण—(43) प्राचीन हिन्दू दर्शन मे गर्भपात और प्रवैध गर्भ स्राव घोर पाप समझे जाते थे। इसे एक निर्दोष व्यक्ति की हत्या की संज्ञा दी जाती थी, अतः यह नैतिकता के सिद्धान्तों के विरुद्ध था। भारतीय दण्ड संहिता ने ऐसे अपराधों हेतु दण्ड की व्यवस्था की है। परन्तु हमारे देश मे जनसंख्या के विस्फोट ने सत्तारूढ राजनैतिक दल को इस पर पुनर्विचार करने हेतु बाध्य किया है। लोकसभा ने पुराने नैतिक सिद्धान्तों के विरुद्ध "गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम 1971" पारित किया, जिसमें गर्भ को पंजीबद्ध चिकित्सकों द्वारा कुछ दशाओं मे समापित करवाने के प्रावधान हैं।

(फ) राजनीतिज्ञ का गिरगिट की तरह रंग बदलना—(44) जस्टिस अयगर ने, हाल मे जयपुर में डा. अम्बेडकर जयंती पर अपना भाषण देते हुए संप्रेक्षित किया कि इस देश में राजनीति और राजनीतिज्ञ वर्षा ऋतु के बादलों की तरह अपना रंग बदल रहे हैं, और उनके दल परिवर्तन या मत परिवर्तन के कारण उनके नाम स्मरण रखना भी दुष्कर है, फिर, जिस तथाकथित मतावलम्ब का वे प्रतिवेदन करते हैं, उसका तो कहना ही क्या। इस प्रकार नैतिकता का सिद्धान्त समाज या देश के निर्माण, सुधार या स्वदेशीकरण का साधन होने के कारण राजनीति और विधि के लिए वहिर्भव हो चुका है तथा सशक्त राजनीतिज्ञों के हाथों मे शोषण और दमन का साधन होने के कारण विधि व नैतिकता के मत व विचारधाराएं एक दूसरे से इतने भिन्न हैं तथा इतने सहज मे परिवर्तित होते है कि एक को दूसरे से परस्पर सम्बन्धित करना कठिन है। भास्कर राव मंत्रीमण्डल ज्वलन्त उदाहरण है।

(ग) डा. श्रीवास्तव के दृष्टिकोण पर टिप्पणी—(45) डा. श्रीवास्तव के अनुसार विधि के स्वरूप का अंतिम औचित्य राजनीति के पास और राजनीति का नीतिशास्त्र के पास है। हालांकि मैं प्रथम से सहमत हूं यह अवधारणा करना कठिन है कि राजनीति का नीतिशास्त्र पर किस प्रकार न्याय हो सकता है? उसी पत्र के आदि में उन्होंने संप्रेक्षित किया है कि चूंकि मनुष्य विधि या नीति में आशय से आबद्ध होता है जबकि नैतिक दर्शन राजनीति के विषय से सम्बद्ध है। इस प्रकार यह दृष्टिगत होगा कि जहा राजनीति और राजनीतिज्ञ अपनी स्वयं की नीति या नैतिकता गढ़ते हैं वे सुस्थापित विचारधाराओ नैतिकता या नीतिशास्त्र से कम ही मार्गदर्शन या प्रेरणा प्राप्त करते है और उनके आधार पर विरले ही आचरण करते हैं।

(ह) सत्यता राजनीति में प्रथम अपघात—(46) सत्य का ही प्रसग लीजिये। जैसा कि कौटिल्य ने प्रस्तुत किया है, राजनीति मे सच्चाई प्रथम अपघात है। एक अच्छा राजनीतिज्ञ वह है, जो अपनी कथनी के अनुसार कभी आचरण नहीं करता है और जो कुछ वह करता है या करने का सकल्प है, उसे भी कभी प्रकट नहीं करता।

संक्षेप में अनुज्ञय का दृष्टान्त लीजिये जिसका प्रविवरण चुनाव के तुरन्त बाद चोटी के राजनीतिज्ञों सहित प्रत्येक विधि निर्माता द्वारा उच्चतम-राष्ट्रपति, देश के प्रधानमंत्री व राज्यों के मुख्यमंत्री या उनके प्रतिनिधियों द्वारा किये गये व्यय का ब्यौरा देते हुए, प्रस्तुत किया जाता है। अब यह विषय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक अधिशोषण का है एवं लोकसभा में राजनैतिक नेताओं द्वारा स्पष्टतः अंगीकृत है कि उनके द्वारा की गई ऐसी समस्त उद्घोषणाएं मिथ्या हैं। जब एक विधि निर्माता सांसद लोक सभा सदस्य के रूप में अपने पद की शपथ ग्रहण करने के पूर्व ही मिथ्याचरण एवं शपथ भंग प्रारम्भ करता है तो यह कैसे कहा जा सकता है कि राजनीति नैतिकता पर आधारित है या इसका नैतिकता या नीतिशास्त्र से कोई सरोकार है।

चौ. चरणसिंह लोकसभा में व भास्कर राव विधान सभा में एक क्षण भी बहुमत सिद्ध नहीं कर सके। फिर भी प्रधान मन्त्री व मुख्य मन्त्री बनने में अनैतिकता को पाताल में पहुंचा दिया।

(ई) हम सभी अज्ञात अपराधी हैं—(47) न्यायाधीश कृष्ण अय्यर ने गत वर्ष जयपुर में पुलिस विभाग के सेमिनार में संप्रेक्षित किया कि हमारे देश में अपराधियों के दो वर्ग हैं। पकड़े जाने वाले अपराधी बहुत थोड़े हैं जो जेलों में हैं, शेष के अवशिष्ट अपराधी अज्ञात हैं।

(ज) 90 प्रतिशत सांसद राजकीय आवास किराये पर देते हैं—(48) अपने बिन्दु को अभिपुष्ट करते हुए उन्होंने संप्रेक्षित किया कि दिल्ली में एक शोध विद्यार्थी ने विधि निर्माताओं को विधि भजन-कर्त्ताओं के रूप में आचरण करने पर एक मनोरंजक शोध किया तब उसने पाया कि 90 प्रतिशत सांसदों ने अपने राजकीय आवास के अधिकांश भाग को, जो किराया वे स्वयं सम्पूर्ण भवन का राज्य को दे रहे हैं उससे कहीं ऊंची दर पर शिकमी किराये पर दे रखा है।

(क) राजनीति शोषण—(49) इस प्रकार यह अपेक्षा करना कि राजनीति नीतिशास्त्र पर आधारित होगी, विरोधाभासों और प्रत्याख्यानी कथन होगा। यदि सभी प्रकार से गौर किया जाय तो राजनीति स्वार्थ सिद्धि और जनमानस के शोषण पर आधारित है। अतीतकाल में जो कुछ भी हुआ होगा, वह स्थगित हो गया है और इसे ऐसा ही मानना चाहिये। पुनः यह कतई अपवाद रहित, अनन्य नियम नहीं हो सकता। अधिकांश राजनेता अनैतिक मिथ्या अभिनेता हैं।

8. न्यायालय में राजनीति

(अ) सर्वोच्च न्यायालय में राजनीति—(50) प्रो. उपेन्द्र बक्सी के मतानुसार आपातकालोत्तर सर्वोच्च न्यायालय[1] विशाल जनवादी राजनीति की ओर अग्रसर हो रहा है। संवैधानिक न्याय निर्णय विधि एवं न्याय शास्त्र सम्बन्धी भाषा व रूप के माध्यम से व्यक्त की गई एक राजनैतिक गतिविधि है। फिर वे कुछ प्रश्न उठाते हैं, "एक स्वतन्त्रता समाज में किस प्रकार की राजनीति होनी चाहिये," न्यायपूर्ण राजनीति या छलपूर्ण राजनीति? व्यवस्थापूर्ण राजनीति या अव्यवस्थापूर्ण राजनीति?

1. इण्डियन सुप्रीम कोर्ट एण्ड पोलिटिक्स लेखक प्रो॰ उपेन्द्र बक्सी पृष्ठ 28-30.

यथा पूर्व राजनीति या प्रवर्तनकारी राजनीति ? अनुजीवित राजनीति या महत्वाकांक्षापूर्ण राजनीति ? स्थायी राजनीति या विरोधी राजनीति ? वर्तमान की राजनीति या भविष्य की राजनीति ? लोकोपकारी राजनीति या लोक विरोधी राजनीति ? आशापूर्ण राजनीति या निराशापूर्ण राजनीति ?

(ब) गोपालन से मेनका गांधी—(51) गोपालन, गोलकनाथ, केशवानन्द व शिवकान्त से लेकर मेनका गाधी, विधान सभाओ भंग वाद तक प्रो. उपेन्द्र बख्शी ने विभिन्न पीठों पदासीन होने वाले न्यायाधीशों द्वारा अपना बहुमत या अल्पमत निर्णय देते हुए, सहमत या असहमत होने वाली समस्त राजनैतिक प्रवणताओं को दृष्टिगत रख कर सप्रेक्षित करना आरोपित किया है।

(स) संविधान विशुद्ध राजनीति न्यायाधिपति भगवती—(52) विधान सभा भंग पर मे न्यायाधिपति भगवती ने अत्यन्त स्पष्ट रूप से सप्रेक्षित किया कि "प्रत्येक संवैधानिक प्रश्न शासकीय शक्ति के आवंटन और उसके प्रयोग से सम्बन्धित है व कोई भी सवैधानिक प्रश्न राजनैतिक होने से वंचित नही रह सकता। संविधान विशुद्ध राजनीति का मामला है।"

(द) जनता की अपेक्षाएं—न्यायाधिपति चन्द्रचूड़—(53) न्यायाधिपति चन्द्रचूड़ ने उस निर्णय मे एक चेतावनी अभिलिखित की व अन्तिम साराश में कहा कि जिन लोगों के लिये सविधान है, उन्हें इस भय के भ्रमनिवारण से अपना मुंह नहीं मोड़ लेना चाहिये कि न्याय एक तृण सम अभिलाषा के समान है।

(इ) राजनीति और विधि का संयोग : लार्ड राइट—(54) राजनीति, विधि और न्याय का उत्तम संयोग लार्ड राइट के संप्रेक्षणों द्वारा किया गया था। समस्त विधि निर्माण की भाति, निर्णय करना ; जैसा कि लार्ड राइट ने संस्मरणीय ढंग से संप्रेक्षित किया है। इच्छा शक्ति का कृत्य है, और वह कृत्य विरोधी हितों के संतुलन और समाधान की राजनैतिक सक्रियता के द्वारा उद्भूत होता है या उसका शमन (अगर आप इसे उस दृष्टि से विचारें) करता है। राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने की उस प्रवृत्ति पर अनुशासन, और उसका पालन करना अन्ततोगत्वा मानव सभ्यता की चिरस्थायी समस्या है। राजनैतिक कृत्य का सूचित मूल्यांकन—वास्तविकता क एक अविरत अनावरण है, क्योंकि विकल्पों की विचारणीय कार्यावली प्रस्तावित करते हुए, सत्ता—विहीन लोगों की, सत्ताधारियों के साथ एक प्रभावी संघर्ष में प्रवृत्त होने की क्षमता: आदर्श राजनीतिक चातुर्य द्वारा ही प्रशस्त की जाती है, अन्ततोगत्वा, जो, किसी स्वतन्त्र समाज मे राजनैतिक विचारधारा की कार्यान्विति हेतु किसी प्रयोग के लिए आधारभूत तत्व हैं।

(फ) राजनीतिशास्त्र-भौतिक शास्त्र से भी कठोर—(55) इसी कारण महान् आइन्स्टीन को यह अभिस्वीकार करना पड़ा कि "राजनीतिशास्त्र" "भौतिक

शास्त्र से भी कठोर है। न्यायालय के टीकाकार किसी तरह इस प्रत्यक्ष ज्ञान के विषय में जुटे हुए हैं जो अणु भौतिकी से कम जटिल नहीं है, और वह इसके आरम्भ और अनिष्टकारी परिणामों हेतु इतना ही उत्तरदायी है जितना एक वैज्ञानिक।

(56) अतः विधि में हम में से उन लोगों के लिए जो, तब ही सोचना प्रारम्भ करने के अभ्यस्त हैं जबकि प्रमाणों का प्रोद्धरण हो, और अन्य सब के लिए, यह प्रश्न है कि न्यायालय को किस प्रकार की राजनीति से प्रभावित चाहिये ? प्रश्न यह नहीं है कि इसे इसमें बिल्कुल भाग लेना ही नहीं चाहिए।

(ग) राजनीति का विधि पर उपात—(57) प्रो. बक्शी ने अपनी पुस्तक "सुप्रीम कोर्ट एण्ड पोलिटिक्स" में यह कटाक्ष करते समय कि न्यायाधीशों ने राजनीति में प्रवेश कर लिया है, सकल न्यायाधीशों और समूची न्यायपालिका के प्रति अत्यन्त छिद्रान्वेषण किया है। क्या उन्होंने निष्पक्ष मीमांसा की सीमाओं का अतिक्रमण भी किया है यह एक प्रश्न है परन्तु इसके अतिरिक्त यह स्वीकार करना पड़ेगा कि राजनीति ने अपना उपात विधि और नैतिकता दोनों के ऊपर फैला दिया है।

(ह) राजनीति न्यायाधीशों हेतु अप्रासंगिक : (इ) मथुरा का निर्णय।—(58) फिर भी, न्यायाधीशों हेतु यह असंबद्ध और अप्रासंगिक है और उन्हें इस विवादिता में घसीटना स्वयं राजनीति का एक भाग हो सकता है। अगर नहीं, तो मथुरा प्रकरण के निर्णय का दो वर्ष के पश्चात् खुले पत्र द्वारा सार्वजनिक रूप से उपहास क्यों किया गया। न्यायाधीश तुलज़ापुरकर ने अपने विधि संस्थान के भाषण दिनांक 21-3-1980 में संकेत दिया है कि दिल्ली के वे चार अध्यापक इतने दीर्घकाल तक मौन क्यों रहे और आन्दालनों, मोर्चों और दूरदर्शन साक्षात्कारों से अनुगामित एक खुला पत्र क्यों प्रेषित किया ?

(ज) न्यायाधीश से त्रुटि हो सकती है, जस्टिस होम्स—(59) उन्हें यह जानकर दुःख हुआ कि मथुरा वाले मामले में न्यायाधीशों पर दोषमुक्ति के हेतु होने अभ्यारोपित किये गये। खैर, दोषमुक्ति त्रुटिपूर्ण हो सकती है—जैसा कि न्यायाधीश होम्स कहते हैं, "त्रुटि नहीं करने वाला न्यायाधीश पैदा ही नहीं हुआ।" किन्तु षड्यन्त्र का आरोप क्यों लगाया जाय? क्या यह निष्पक्ष आलोचना है ?

(क) प्रधानमन्त्री चुनाव मामला-स्थगन आदेश—(60) इसी प्रकार प्रधानमन्त्री के चुनाव मामले में न्यायाधीश बेग द्वारा पुनर्विलोकन याचिका पर विचार करने के आचरण को "सर्वोच्च न्यायालय पर कलंक" की संज्ञा दी गई है।

(ल) न्यायाधीश बेग व न्यायाधीश अय्यर—(61) श्रीमती इन्दिरा गांधी के मामले में न्यायाधीश कृष्ण अय्यर के स्थगन आदेश को श्रीमती इन्दिरा गांधी एवं विरोधी पक्ष दोनों को सान्त्वना देने वाले "चतुर राज" की दृष्टि से देखा गया है।

(म) प्रो. बख्शी हेतु संयम का सुझाव—(62) विधी एवं कानून शास्त्र के भारतीय इतिहास में प्रो. बक्शी ने ऐसा करके स्वस्थ समालोचना की सीमाओं के बारे में विवाद के नये आयाम स्थापित कर दिये हैं और मुझे पूर्ण संयम के साथ यह कहना चाहिये कि उन्हें संयम रखकर इतनी दूर जाने से विरत रहना चाहिये था। न्यायधीशों पर राजनैतिक हेतु का दोषारोपण करना एक अत्यन्त अस्वस्थ प्रवृत्ति है जो न्यायपालिका के स्तर, इसकी गरिमा तथा विधि की भव्यता का जनमानस की दृष्टि में क्षय करेगी, जो न्यायालयों की स्वतन्त्रता का सम्मान करता है और उनकी राय "न्याय मन्दिरों" के समान पूजा करता है।

9. राजनीति का ह्रास तथा विधि और नैतिकता पर इसकी प्रभावी सर्वोपरिता

(अ) राजनीति में सद्गुणों का अभाव : न्या. हिदायतुल्ला—(63) न्यायाधीश हिदायतुल्ला ने 5 फरवरी, 1972 को उदयपुर विश्वविद्यालय के अपने दीक्षान्त समारोह भाषण मे हमारे देश मे राजनीति के मूल्यों के सामान्य अपकर्ष, अवमान की भावना व अशोभनीयता पर खेद प्रकट किया। उन्होंने कहा कि अब राजनीति मे सद्गुण नही रह गये हैं और यह एक विषैला हस्तकौशल बन गया है। इसमें ईमानदारी नही रही रही। दल की ईमानदारी व्यय पर निर्भर करती है। चूंकि आजकल जो लोग राजनीति अपनाते हैं, उनमें से अधिकाश ईमानदार नहीं रहते। दल की शक्ति प्रतिदिन घूंस या पद द्वारा बढ़ाई जाती है किन्तु वह भी सफल नही होती क्योंकि लोगों को जब घूंस का गुरुतर निवेद प्राप्त होता है तो वे अपनी मान्यता परिवर्तित कर देते है। हमारे राजनीतिज्ञ जिन्हें एक बार खरीद लिया जाय, उन्हे कम से कम खरीदा हुआ तो स्थिर रहना ही चाहिये।

(ब) नीग्रो द्वारा रिपब्लिकन को मत देना—(64) उन्होंने एक नीग्रो की प्रशंसा की है और उससे वार्तालाप के दौरान उसने इस प्रकार उत्तर दिया :—

"रस्तुस" उसे पूछा गया, आपने अपना मत किसे दिया ?

"रिपब्लिकन उम्मीदवार को," उसने उत्तर दिया।

"क्यों" उसे पूछा गया ?

"उसका ब्यौरा इस प्रकार है—रिपब्लिकन उम्मीदवार ने मुझे 27 डालर दिये तथा डेमोक्रेटिक उम्मीद्वार ने मुझे 30 डालर दिये। मैंने रिपब्लिकन को मत दिया, क्योंकि दोनो मे वह कम बेईमान था।"

(स) राजनीतिज्ञों ने प्रतिष्ठा खोदी; न्या. तुलजापुरकर—(65) न्यायाधीश तुलजापुरकर ने जयपुर मे विधिवेत्ताओं के समक्ष अपने भाषण में यह कहते हुये अपना विचार प्रकट किया कि "राजनीतिज्ञों ने अपनी प्रतिष्ठा खो दी है और राजनीति एक व्यवसाय बन गई है।"

(द) आयाराम गयाराम पलटूराम—(66) वे उस समय बोल रहे थे जब भारत में तत्कालीन जनता पार्टी का अन्तर्द्वन्द अपने चरमोत्कर्ष पर था। अश्व परिणता, आयाराम, गयाराम और पलटूराम के विषय ही दिन भर के कार्यक्रम था। एक दल के सदस्य अपनी मान्यताओं को अपने वस्त्रों की भांति, और कभी-कभी तो उससे भी तीव्र गति से परिवर्तित करते थे। इसे भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है जैसे—दल बदल व पक्ष त्याग आदि। फिर भी न तो जनता और न कांग्रेस इस पर प्रतिबन्ध लगा कर पक्ष त्याग निषेध कर सकी। उनकी असंगति यह है कि उनके भाषण तो विशुद्ध नैतिकता पर आधारित हैं, किन्तु उनके कृत्य अत्यन्त निर्लज्ज और घिनौने हैं।

(इ) कूटनीतिज्ञ बने कौटिल्य—(67) कपट, कूटनीति और राजनीति सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, और, अब ही क्यों, कौटिल्य ने भी तो इसकी हिमायत की है। चाणक्य ने अपनी रचना "कूटनीति" में वह सब कुछ कहा है जो आज राजनीतिज्ञों और कूटनीतिज्ञों के लिए निन्दनीय है।

(फ) पंच बनाम प्राध्यापक-प्रोटोकोल—(68) इस अवमान, उपहास और तिरस्कार के पर्यन्त भी यह विडम्बना है कि समाज में सर्वोच्च महत्त्व और प्रतिष्ठा राजनीतिज्ञ को प्रदान की जाती है, चाहे वह पंच है या नगर पार्षद, वह सीढ़ी में सबसे ऊपर है या मंत्री हो या विधायक। एक विद्वान प्रोफेसर को एक गरीब अध्यापक समझा जाता है और एक पंच या नगरपालिका सदस्य को "शासक"। यहां तक कि प्रोटोकोल ने इसके पुरः सरण भी प्रस्तुत किये हैं। क्या यह खेदजनक नहीं है? हमारे आचरण में इस असंगति की जनक राजनीति और राजनीतिज्ञों द्वारा शक्ति का अक्ष और केन्द्र बनना है। अतएव विधि और नैतिकता, इस समाज के सत्ता लोलुप और शक्ति संचय के महत्त्वाकांक्षी राजनितिज्ञों तथा राजनीति के हाथों प्रथा अपघात बन चुकी है।

(ग) मनु, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, बृहस्पति—(69) प्राचीन भारत में जब ऋषि मुनि, सन्त और धर्मगुरु नैतिकता के श्रोत थे और राजा द्वारा उनके उपदेश और आदेश का पालन करने के कारण विधि और राजनीति उनकी अनुसेवी थी, उस काल में जो कुछ घटित होता था वर्तमान उसका प्रतिचरम है, यद्यपि मनु, याज्ञवल्क्य, वशिष्ट और बृहस्पति ये सभी इस देश के ऋषियों और महर्षियों के उस सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं जिन्होंने नैतिकता और विधि के स्रोतों के रूप में सदियों तक नियति का पथ प्रशस्त किया है।

(ह) उपनिषद् विधि अधिक शक्तिशाली—(70) उपनिषद का कहना है कि विधि उनसे कहीं अधिक शक्तिशाली और ठोस है। इस प्रकार यह दिखाई देता है कि विधि की ओजस्विता का व्याख्यानक वर्णन जैसा वृहद् आरण्यक उपनिषद में है उस से अधिक कभी नहीं किया गया।

(ई) धर्म-ऋग्वेद—(71) यह सामाजिक ढाचे की रक्षा करता है, ग्रारंभिक विकाम तथा समाज की एकता का हामी है और सूक्ष्म मे "धर्म" के व्यापक प्रयोग मे निहित है, जैसा कि डा. केन ने इंगित किया है, ऋग्वेद मे 56 वार प्रयुक्त हुआ है।

(ज) सामाजिक न्याय–न्याः गजेन्द्र गड़कर—(72) यद्यपि विधि, नैतिकता और राजनीति दिखने में भिन्न सिद्धान्तों वाली तथा समाज मे भिन्न-भिन्न क्षेत्र अभिधारित किये हुये है, किन्तु वह एक दूसरे से सह सम्बन्धित, अन्तर्निर्भर या प्रतिच्छादित हो ही जाती है। मुख्य न्यायाधिपति श्री गजेन्द्रगड़कर ने पुरजोर से "सामाजिक न्याय" के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और पहली वार यह अभिवाचित किया कि सामाजिक न्याय का निर्वचन करते समय, जिसे न्यायाधीश श्री होम्स ने समुचित और वक्तृत्वा पूर्वक "समय की अनुभूत आवश्यकताओं" के नाम से वर्णित किया है, न्यायाधीशों को उसके प्रति विस्मरणशील नही रहना चाहिये।

(क) न्यायाधीशों को उद्घोष न्या. या होम्स–(73) न्यायाधीशों को भित्ति लेखों का पठन करने हेतु यह एक उद्घोष था। यद्यपि न्यायाधीश हिदायतुल्ला के लिए यह पूर्णतया विरोधाभासी था, जिन्होने प्रिवीपर्स के मामले मे, मोहन कुमार मगलम के अधिनिबन्ध "जनता और लोकसभा" की प्रभुसत्ता का उपहास करते हुये यह सप्रेक्षित किया कि उन्हें चांदनी चौक के रेड़ीवालों और रिक्शेवालों द्वारा वह निश्चित करने के लिए प्रेरित नही किया जा सकता है कि लोकसभा सप्रभू है या सविधान।

(ल) वर्तमान प्रसंग मुख्य न्यायाधीश बनाम मोहन कुमार मंगलम व नीरेन डे—(74) यही वह प्रसंग था जिसमे श्री मोहन कुमार मगलम् ने एक जख्मी शेर की तरह मुख्य न्यायाधीश से पूछा "क्या मैं इतनी वेहूदी बात कर रहा हूं ?" मुख्य न्यायाधीश और महाधिवक्ता नीरेन डे के बीच यह अत्यधिक उग्र वाद विवाद से पूर्व घटित हुआ। न्यायाधीश रे को मंगलम और डे दोनों को, यह सप्रेक्षित करके बचाने का श्रेय है कि मैं संविधान पर जनता एवं लोकसभा की प्रभुता का प्रसग और सुनना चाहता हू। अन्ततोगत्वा जब मुख्य न्यायाधीश[1] ने प्रीविपर्स निवर्तन को राष्ट्रपति द्वारा मुगल शहशाह के फरमान की भाति इस पर अर्द्ध-रात्रि मे हस्ताक्षर का परिहास करते हुये इसे बहुमत से समाप्त कर दिया तो पालकीवाला की विजय हुई। न्यायाधीश रे की असहमति एक ऐतिहासिक और शास्त्रीय घटना है। अधिक्रम द्वारा मुख्य न्यायाधीश के रूप में उनकी पदोन्नति ने विधिक और राजनैतिक विवाद के बाहुल्य द्वार खोल दिये। केवल भावी पीढ़ी ही इसका निर्णय करेगी कि विधि पर यह सब उपान्त राजनीति का था या नैतिकता का।

1. ए. आई. आर 1971 सुप्रीम कोर्ट 530

(द) आयाराम गयाराम पलटूराम—(66) वे उस समय बोल रहे थे जब भारत में तत्कालीन जनता पार्टी का अन्तर्द्वन्द अपने चरमोत्कर्ष पर था। अश्व पणिता, आयाराम, गयाराम और पलटूराम के विषय ही दिन भर का कार्यक्रम था। एक दल के सदस्य अपनी मान्यताओं को अपने वस्त्रों की भांति, और कभी-कभी तो उससे भी तीव्र गति से परिवर्तित करते थे। इसे भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है जैसे—दल बदल व पक्ष त्याग आदि। फिर भी न तो जनता और न कांग्रेस इस पर प्रतिबन्ध लगा कर पक्ष-त्याग निषेध कर सकी। उनकी असंगति यह है कि उनके भाषण तो विशुद्ध नैतिकता पर आधारित हैं, किन्तु उनके कृत्य अत्यन्त निर्लज्ज और घिनौने है।

(इ) कूटनीतिज्ञ बने कौटिल्य—(67) कपट, कूटनीति और राजनीति सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, और, अब ही क्यों, कौटिल्य ने भी तो इसकी हिमायत की है। चाणक्य ने अपनी रचना "कूटनीति" में वह सब कुछ कहा है जो आज राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञों के लिए निन्दनीय है।

(फ) पंच बनाम प्राध्यापक-प्रोटोकोल—(68) इस अवमान, उपहास और तिरस्कार के पर्यन्त भी यह विडम्बना है कि समाज में सर्वोच्च महत्त्व और प्रतिष्ठा राजनीतिज्ञ को प्रदान की जाती है, चाहे वह पंच है या नगर पार्षद, वह सीढ़ी में सबसे ऊपर है या मंत्री हो या विधायक। एक विद्वान प्रोफेसर को एक गरीब अध्यापक समझा जाता है और एक पंच या नगरपालिका सदस्य को "शासक"। यहां तक कि प्रोटोकोल ने इसके पुरः सरण भी प्रस्तुत किये हैं। क्या यह खेदजनक नहीं है? हमारे आचरण में इस असंगति की जनक राजनीति और राजनीतिज्ञों द्वारा शक्ति का अक्ष और केन्द्र बनना है। अतएव विधि और नैतिकता, इस समाज के सत्ता लोलुप और शक्ति सचय के महत्त्वाकांक्षी राजनितिज्ञों तथा राजनीति के हाथों प्रथम अपघात बन चुकी है।

(ग) मनु, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, बृहस्पति—(69) प्राचीन भारत में जब ऋषि मुनि, सन्त और धर्मगुरु नैतिकता के स्रोत थे और राजा द्वारा उनके उपदेश और आदेश का पालन करने के कारण विधि और राजनीति उनकी अनुसेवी थी, उस काल में जो कुछ घटित होता था वर्तमान उसका प्रतिचरम है, महर्षि मनु, याज्ञवल्क्य, वशिष्ट और बृहस्पति ये सभी इस देश के ऋषियो और महर्षियों के उस सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं जिन्होंने नैतिकता और विधि के स्रोतों के रूप में सदियों तक नियति का पथ प्रशस्त किया है।

(ह) उपनिषद् विधि अधिक शक्तिशाली—(70) उपनिषद् का कहना है कि विधि उनसे कहीं अधिक शक्तिशाली और ठोस है। इस प्रकार यह दिखाई देता है कि विधि की ओजस्विता का व्याख्यानक वर्णन जैसा बृहद् आरण्यक उपनिषद में है उससे अधिक कभी नहीं किया गया।

(द) आयाराम गयाराम पलटूराम—(66) वे उस समय बोल रहे थे जब भारत में तत्कालीन जनता पार्टी का अन्तर्द्वन्द अपने चरमोत्कर्ष पर था। अश्व पणिता, आयाराम, गयाराम और पलटूराम के विषय ही दिन भर का कार्यक्रम था। एक दल के सदस्य अपनी मान्यताओं को अपने वस्त्रों की भांति, और कभी-कभी तो उससे भी तीव्र गति से परिवर्तित करते थे। इसे भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है जैसे—दल बदल व पक्ष त्याग आदि। फिर भी न तो जनता और न कांग्रेस इस पर प्रतिबन्ध लगा कर पक्ष त्याग निषेध कर सकी। उनकी असंगति यह है कि उनके भाषण तो विशुद्ध नैतिकता पर आधारित हैं, किन्तु उनके कृत्य अत्यन्त निर्लज्ज और घिनौने हैं।

(इ) कूटनीतिज्ञ बने कौटिल्य—(67) कपट, कूटनीति और राजनीति सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, और, अब ही क्यों, कौटिल्य ने भी तो इसकी हिमायत की है। चाणक्य ने अपनी रचना "कूटनीति" में वह सब कुछ कहा है जो आज राजनीतिज्ञों और कूटनीतिज्ञों के लिए निन्दनीय है।

(फ) पंच बनाम प्राध्यापक-प्रोटोकोल—(68) इस अवमान, उपहास और तिरस्कार के पर्यन्त भी यह विडम्बना है कि समाज में सर्वोच्च महत्त्व और प्रतिष्ठा राजनीतिज्ञ को प्रदान की जाती है, चाहे वह पंच है या नगर पार्षद, वह सीढ़ी में सबसे ऊपर है या मंत्री हो या विधायक। एक विद्वान प्रोफेसर को एक गरीब अध्यापक समझा जाता है और एक पंच या नगरपालिका सदस्य को "शासक"। यहां तक कि प्रोटोकोल ने इसके पुरः सरण भी प्रस्तुत किये हैं। क्या यह खेदजनक नहीं है? हमारे आचरण में इस असंगति की जनक राजनीति और राजनीतिज्ञों द्वारा शक्ति का अक्ष और केन्द्र बनना है। अतएव विधि और नैतिकता, इस समाज के सत्ता लोलुप और शक्ति संचय के महत्त्वाकांक्षी राजनितिज्ञों तथा राजनीति के हाथों प्रथम अपघात बन चुकी है।

(ग) मनु, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, बृहस्पति—(69) प्राचीन भारत में जब ऋषि मुनि, सन्त और धर्मगुरु नैतिकता के स्रोत थे और राजा द्वारा उनके उपदेश और आदेश का पालन करने के कारण विधि और राजनीति उनकी अनुसेवी थी, उस काल में जो कुछ घटित होता था वर्तमान उसका प्रतिचरम है, महर्षि मनु, याज्ञवल्क्य, वशिष्ट और बृहस्पति ये सभी इस देश के ऋषियों और महर्षियों के उस सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं जिन्होंने नैतिकता और विधि के स्रोतों के रूप में सदियों तक नियति का पथ प्रशस्त किया है।

(ह) उपनिषद् विधि अधिक शक्तिशाली—(70) उपनिषद् का कहना है कि विधि उनसे कहीं अधिक शक्तिशाली और ठोस है। इस प्रकार यह दिखाई देगा कि विधि की ओजस्विता का व्याख्यानक वर्णन जैसा बृहद् आरण्यक उपनिषद में है उस से अधिक कभी नहीं किया गया।

(ई) धर्म-ऋग्वेद—(71) यह सामाजिक ढांचे की रक्षा करता है, आत्मिक विकास तथा समाज की एकता का हामी है और सूक्ष्म मे "धर्म" के व्यापक प्रयोग में निहित है, जैसा कि डा. केन ने इंगित किया है, ऋग्वेद मे 56 बार प्रयुक्त हुआ है।

(ज) सामाजिक न्याय-न्याः गजेन्द्र गड़कर—(72) यद्यपि विधि, नैतिकता और राजनीति दिखने में भिन्न सिद्धान्तों वाली तथा समाज में भिन्न-भिन्न क्षेत्र अभिधारित किये हुये है, किन्तु वह एक दूसरे से सह सम्बन्धित, अन्तर्निर्भर या अतिच्छादित हो ही जाती है। मुख्य न्यायाधिपति श्री गजेन्द्रगड़कर ने पुरजोर से "सामाजिक न्याय" के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और पहली बार यह अभिवाचित किया कि सामाजिक न्याय का निर्वचन करते समय, जिसे न्यायाधीश श्री होम्स ने समुचित और वक्तृत्वा पूर्वक "समय की अनुभूत आवश्यकताओं" के नाम से वर्णित किया है, न्यायाधीशों को उसके प्रति विस्मरणशील नहीं रहना चाहिये।

(क) न्यायाधीशों को उद्घोष न्या. या होम्स–(73) न्यायाधीशों को भित्ति लेखों का पठन करने हेतु यह एक उद्घोष था। यद्यपि न्यायाधीश हिदायतुल्ला के लिए यह पूर्णतया विरोधाभासी था, जिन्होंने प्रिवीपर्स के मामले में, मोहन कुमार मगलम के अधिनिबन्ध "जनता और लोकसभा" की प्रभुसत्ता का उपहास करते हुये यह सप्रेक्षित किया कि उन्हें चांदनी चौक के रेड़ीवालों और रिक्शेवालों द्वारा यह निश्चित करने के लिए प्रेरित नही किया जा सकता है कि लोकसभा सप्रभू है या संविधान।

(ल) वर्तमान प्रसंग मुख्य न्यायाधीश बनाम मोहन कुमार मंगलम व नीरेन डे—(74) यही वह प्रसंग था जिसमें श्री मोहन कुमार मंगलम् ने एक जख्मी शेर की तरह मुख्य न्यायाधीश से पूछा "क्या मैं इतनी बेहूदी बात कर रहा हूं ?" मुख्य न्यायाधीश और महाधिवक्ता नीरेन डे के बीच यह अत्यधिक उग्र वाद विवाद से पूर्व घटित हुआ। न्यायाधीश रे को मंगलम और डे दोनों को, यह सप्रेक्षित करके बचाने का श्रेय है कि मैं संविधान पर जनता एवं लोकसभा की प्रभुता का प्रसंग और सुनना चाहता हू। अन्ततोगत्वा जब मुख्य न्यायाधीश[1] ने प्रीविपर्स निवर्तन को राष्ट्रपति द्वारा मुगल शहंशाह के फरमान की भाति इस पर अर्द्ध-रात्रि में हस्ताक्षर का परिहास करते हुये इसे बहुमत से समाप्त कर दिया तो पालकीवाला की विजय हुई। न्यायाधीश रे का असहमति एक ऐतिहासिक और शास्त्रीय घटना है। अधिक्रम द्वारा मुख्य न्यायाधीश के रूप में उनकी पदोन्नति ने विधिक और राजनैतिक विवाद के बाहुल्य द्वार खोल दिये। केवल भावी पीढ़ी ही इसका निर्णय करेगी कि विधि पर यह सब उपान्त राजनीति का था या नैतिकता का।

---

1. ए. आई. आर 1971 सुप्रीम कोर्ट 530

(घ) सामाजिक न्याय बनाम रूढ़िवादी न्याय—(75) गजेन्द्रगड़कर सामाजिक न्याय की हामी मुख्य विचारधारा में, हिदायतुल्ला की विपरीतावस्था मे; जो रूढ़ीवादी न्याय पर जोर देते हैं और जिन्होंने नम्बूद्रीपाद्र को मार्क्सवाद का अधिक ज्ञान बता हुये भी मानहानि हेतु दोषसिद्ध घोषित किया, सक्रिय माने जाते हैं।

10. विधि में नैतिकता को जीवित रखने का प्रयास

(क) नागोरी का प्रकरण, काम, नैतिकता और विधि—(76) विधि नैतिकता से वंचित नहीं होनी चाहिये। *गगनराजसिंह नागोरी बनाम भारत संघ व अन्य* एकल पीठ[1] सिविल रिट संख्या *653/79—9* अक्टूबर, *1979* को. निर्णीत में मुझे इस पर विचारण का अवसर मिला तथा मैंने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया :—

(77) इस निर्णय की त्रिकोणात्मक जटिलता-काम, नैतिकता और विधि, प्रार्थी के अभिभाषक का न्यायालय में अस्वाभाविक प्रत्याख्याम एवं ओजस्विता का एक स्वयंस्फूर्त फल है कि यद्यपि उसने रेल्वे स्टेशन के प्रतीक्षालय कक्ष में एक टिकट संग्राहक की वर्दी पहने, कार्य निष्पातिकाल में एक एकाकी महिला यात्री को अपना शिकार बनाकर अपनी काम लोलुपता और इन्द्रिय वासना को संतुष्ट करने हेतु, अन्दर से द्वार की चिटखनियां बन्द करके, कमरे का तथा न्यूनतम सदाचार और नैतिकता का प्रकाश बुझाकर तथा इन लोकोक्तियों "पक्षी भी ऋतुचर्या का पालन करते हैं तथा डाकुओं को भी नैतिक संहिता है" पर कुठाराघात करते हुये लैंगिक संभोग करके तथा एक कामासक्त गिद्ध का कृत्य करके भ्रष्ट और निन्द्य आचरण प्रदर्शित किया, उच्च न्यायालय उसे अवमुक्ति प्रदान करने से मना नहीं कर सकता। यही इस रिट याचिका का एक वाक्य में मूल रूप है। यद्यपि रेल्वे सेवा नियमों के तकनीकि उल्लंघन पर आधारित प्रार्थी की पदच्युति का नोटिस और उसके संक्षेप मे निरसन के कारणों का अक्ष प्रार्थी के पक्ष में तकनीकी रूप से विचारण का एक युक्तियुक्त प्रकरण था। नैतिकता पर रिट खारिज की गई"

(ख) मुरिस कोहेन विधि को सामाजिक की स्थापना करती है—(78) मुरिस कोहेन ने संप्रेक्षित किया है कि—विधि सामाजिक उपकरणों का एक विभाग है जिसका मुख्य उद्देश्य सामाजायिक न्याय की स्थापना करना है और सामाजायिक ढाचे में विद्यमान असंतुलन को हटाना है।

(ग) भ्रष्ट और अनैतिक गतिविधियों हेतु विधिक रक्षा नहीं :—(79) क्या हम अनैतिक दुराचार और अनैतिक कुकृत्यों के बचाव हेतु विधिक कला कौशल को प्रदर्शन करने के लिए न्याय मन्दिरों को अति तकनीकी विधिक क्रीड़ा स्थलों में परिवर्तित करने जा रहे है ? क्या हमें यह धारित करना है कि विधि अन्धी है और

---

1. 1980 (2) एस. एल. आर. 269

नैतिकता से वंचित और हीन है ? क्या हम एक ऐसे कर्मचारी को विधिक रक्षा छत्र प्रदान करके प्रत्यास्थापित कर दें जो विषय वासना और कामान्धता से पागल होकर एक रेल्वे प्रतीक्षालय को वेश्यालय में परिवर्तित कर देता है और रेल्वे टिकट की परीक्षा करने के स्थान पर एक अकेली औरत का कमरे में सतीत्व नष्ट कर अपनी अनैतिक पाशविक वृत्ति को सन्तुष्ट करता है।

(घ) नैतिक न्यायालय बनाम विधिक न्यायालय—(80) श्री सिंघवी के तर्क से उदित कुछ गम्भीर विधिक और समाज—तर्कशास्त्र सम्बन्धी प्रश्न हैं कि मैं एक विधिक न्यायालल मे न्यायाधीश के रूप में पदासीन हूं .अतः मुझे इस प्रकरण की नैतिकता पर विचार नही करना चाहिये और अगर मैं ऐसा करता हूं तो मैं विधिक न्यायालय को नैतिक न्यायालय में परिवर्तन कर दूंगा, जो मैं नहीं कर सकता।

(ङ.) न्याय मन्दिरों द्वारा नैतिकता की हिमायत करना—(81) इसका उत्तर बहुत सादा है। विधि नैतिकता रहित नही हो सकती। नैतिकता की सुनिश्चितता के लिए ही विधि निर्मित और प्रवर्तित की जाती है। नैतिकता विधि से अभिन्न है और जब लोकनीति और नैतिकता के विरुद्ध अनुबन्ध भी अवैध होते है तो विधायिका सार्वजनिक नैतिकता के विरुद्ध विधि पारित नही कर सकती। विधिक न्यायालय अनैतिक न्यायालय नही हैं और कभी भी नैतिकता के विरुद्ध विधि का निर्वचन नही कर सकते। लोकोक्ति के अनुसार विधिक न्यायालय "न्याय मन्दिर" है और न तो न्याय और न कोई मन्दिर ही नैतिकता के विरुद्ध या बिना नैतिकता के अस्तित्व मे रह सकता है। यद्यपि नैतिकता और विधि एक दूसरे के पर्यायी नहीं हैं किन्तु एक दूसरे पर आधारित, एक दूसरे के अनुपूरक, रक्षक और वर्धनकारी तथा परस्पर सम्मान के द्योतक है। उपरोक्त विशाल दृष्टिकोण से न्यायालय नैतिकता के प्रति आंख नही मूंद सकते और उन्हें अनैतिकता को उद्दीप्त करने वाली विधि का निर्वचन करने से नकार देना चाहिये। न्यायालय को दुराचार और अनैतिक परिणामों वाली विधि की व्यवस्था करने से मना कर देना चाहिये और सदैव विधि का निर्वचन नैतिकता के संवर्धन और रक्षण हेतु करना चाहिये।

(च) विधि की नीतिशास्त्र सम्बन्धी विचारधारा:—(82) मैने नीतिशास्त्र सम्बन्धी निम्नलिखित विचार धारा की आवश्यकता को महत्व दिया है और टिकट संग्राहक प्रार्थी के एकाकी भ्रष्ट आचरण के आधार पर ही याचिका को खारिज कर दिया है यद्यपि विधि की तकनीकी में उसके अपदस्थता आदेश को अभिखण्डित करने का औचित्य है।

(83) नैतिकता विधि को किस प्रकार प्रभावित करती है उसे पुनः इस दृष्टान्त द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है कि विधिक न्यायालयों द्वारा ऐस. पी. चतुर्वेदी बनाम राजस्थान[1] राज्य एवं अन्य (1979 डब्लू. एल. एम. पृष्ठ 582)

1. 1979 डब्ल्यू. एल. एन. 582

में विकलांगों हेतु सहानुभूति प्रदर्शित और व्यक्त की गई है जहां मेरे द्वारा निम्नलिखित सम्प्रेक्षित किया गया था :—

(छ) विकलांग और दैवीय अभिशप्त लोगों को न्यायालय रक्षा दें :—(84) "विधान और उसके कार्यान्वयन के मध्य विशाल अन्तराल ने राजस्थान शारीरिक विकलांग नियोजन नियम, 1976 जो एतद्पश्चात 1976 के नियमो के नाम से सम्बोधित किये जायेंगे द्वारा राजस्थान में शारीरिक विकलांग व्यक्तियों हेतु उद्दिष्ट नियोजन की मानवीय राहत को न केवल अवरुद्ध ही किया अपितु नियमों को प्रभावहीन बनाकर पंगु कर दिया है।

(85) विज्ञान और तकनोलोजी के इस अत्यन्त विकसित युग में मानव कुछ घंटों में ही अंतरिक्ष तक पहुंच सकता है, परन्तु राजस्थान की प्रबल नौकरशाही ने, तीन वर्ष से ज्यादा अवधि के पश्चात् भी तथा इस काल में एक महत्वपूर्ण राजनैतिक परिवर्तन देखा है, इस तथ्य के उपरान्त भी 2 प्रतिशत पद भी विकलांगो हेतु सुरक्षित नहीं किये है। विभागों के अध्यक्षों की, जो नौकरशाही के सिरमौर हैं, इस महान् सामाजिक कल्याणकारी विधान के प्रति उदासीनता ज्यों की त्यों बनी हुई है। दैवभिशप्त शारीरिक विकलांगों के प्रति निश्चेष्ठ मन्थर गति हठधर्मित अमानवीय शोचनीय और तिरस्कारपूर्ण दृष्टिकोण अनन्त रूप से चल रहा है ऐसी है दुखान्तक और मर्म स्पर्शी करुणामय स्थिति जो हमारे समक्ष उसी प्रकार का प्रश्न पैदा करती है जैसा कि न्यायाधीश श्री अय्यर ने मदिरा निषेध के प्रकरण पी. एम. कौशल बनाम भारत संघ (ए. आई. आर. 1978 सर्वोच्च न्यायालय, पृष्ठ 1457)[1] में किया था। "हम किस फेर में है" न्यायाधीश अय्यर ने अनुच्छेद 46 की जो "अनाथ" स्थिति पंजाब में होना व्यक्त किया है, अनुच्छेद 41 की वही स्थिति राजस्थान में होना स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है।

(86) एक शारीरिक अक्षम अभ्यर्थी प्रशासनिक और बौद्धिक अक्षम प्रतिवादीगण से निवारण नहीं प्राप्त कर सकता और इस न्यायालय से नियोजन सहायता चाहता है। प्रत्यार्थी की यह दलील है कि समस्त वांछित अनुतोष प्रदान करने में यह न्यायालय भी विधिक रूप से सक्षम है। अतएव यह रिट याचिका एक शारीरिक अक्षम द्वारा, एक प्रशासनिक अक्षम सरकार के विरुद्ध एक विधिक और वैधानिक परिमितताओं से पाबन्द न्यायालय के समक्ष एक मर्मस्पर्शी संघर्ष है।"

(ज) राज्य द्वारा विशेपाधिकार रहित गरीबों और दलितों की रक्षा—(87) न्यायालय ने रिट याचिका को मंजूर करते हुये मानवीय और नैतिक पहलू पर महत्व देकर अनुतोष प्रदान किया और निम्नलिखित समाविष्ट किया :

1. ए. आई. आर. 1978 सुप्रीम कोर्ट 1457

"इस निर्णय से पृथक् होने से पूर्व मैं पुनः यह मन्तव्य प्रकट करता हूं कि प्रकृति अथवा ईश्वर द्वारा अभिशप्त तथा शारीरिक रूप से अनाथ व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने के मामले में अधिक प्रत्यार्थी राज्य एवं इसके अधिकारीगण को सम्पूर्ण मामले में अधिक उदार एवं हितकारी रुख अपनाना चाहिये। इस प्रकरण को एक नागरिक और राज्य के बीच एक विधिक संघर्ष नहीं मानना चाहिये क्योंकि राज्य भाग्यशाली और अभागे, विशेषाधिकार मुक्त और विशेषाधिकार रहित, अमीर और गरीब उच्च पदासीन व्यक्ति और पद दलित सबका प्रतिनिधित्व करता है अतः एक व्यक्ति जो पहले ही अशक्त है और जिसने न्यायालय तक आने का साहस बटोरा है, राज्य को उसका सम्मान करना चाहिये। ऐसे शारीरिक अशक्त व्यक्ति जो सीढ़ी में सबसे निम्नतर हैं, उनका, एक समाज कल्याणकारी राज्य द्वारा जो जनक पिताओं द्वारा प्रदत्त संविधान के अनुसार इस राज्य के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय उपलब्ध कराने हेतु वचनबद्ध है, अधिकतम गौर करना चाहिये।

11. क्या न्यायाधीश अनिवार्य हैं ?

(क) कपोलकल्पित मांग—(88) समाप्त करने से पूर्व, मुझे पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देने का थोड़ा सा प्रयास करता हूं। उपकुलपति हेतु सुविज्ञ प्रो. दयाकृष्ण ने न्यायाधीशों से एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न किया, जब उन्होंने पूछा कि —"क्या न्यायाधीश अनिवार्य हैं" ? संगणकीकरण से इस युग मे, विधि स्वतः प्रशासित क्यों नहीं की जा सकती ? इसका उत्तर बहुत और वरिष्ठ न्यायाधीशों और विधिवेताओं द्वारा देश भर मे वाद विवाद के पश्चात् दिया जाना चाहिये। मेरे समान एक नव आगन्तुक शिशु न्यायाधीश तो इस चरम् कारक प्रश्न से ही स्तम्भित हो जाता है क्योंकि मेरे लिये यह "कपोलकल्पित" है। यह असंख्य प्रश्न उत्पन्न करता है। विधिक न्यायालयों, प्रशासनिक दण्डनायकों और प्रशासनिक न्यायाधिकरणों द्वारा न्याय प्रशासन व्यवस्था मे मानवीय गतिविधियों का एक विशाल क्षेत्र समाविष्ट है।

(ख) संगणक संविधान की आधारभूत संरचना का उच्चारण नहीं कर सकता—(89) लोक सभा की सशोधन करने की शक्तियो के सम्बन्ध में जिसे वे संविधान की आधारभूत संरचना कहते हैं गोलकनाथ, केशवानन्द भारती या मिनर्वा मिल्स लिमिटेड के प्रकरण लीजिये—अल्पमत और बहुमत निर्णय—जिनमे प्रत्येक न्यायाधीश नागरिकों के मूलभूत या अन्तर्निहित अधिकारों को स्वीकृत या अस्वीकृत करते हुए निर्वाचक शक्ति और मूल अधिकारो पर अपना पृथक् ग्रन्वेष प्रबन्ध लिखता है। एक संगणक इसका निर्णय किस प्रकार कर सकता है। प्रो. दयाकृष्ण को ऐसे संगणक का आविष्कार करने हेतु भावी हजार वर्षों तक और अस्तित्व मे रहना पड़ेगा। मेरी ऐसी कामना है और मैं इस हेतु प्रार्थना करता हूं किन्तु यह इतनी ही दुष्कर है जितनी न्यायाधीशों की अनिवार्यता और विधि का संगणकों के द्वारा निर्वचन। हम सभी उनकी हजार वर्ष की दीर्घायु की कामना करते हैं।

(ग) वैवाहिक मामला : तलाक का वाद—पत्नि ने पति को थप्पड़ मारा—संगणक पुनर्मिलन नहीं करवा सकता—(90) मेरे पास एक वैवाहिक मामला था—पति और पत्नि के बीच तलाक का प्रकरण। पत्नि एक अभिभाषक है और पति एक सैनिक अधिकारी। मेरे चैम्बर में पुनर्मिलन के प्रयत्नों ने विधि और व्यवस्था की समस्या पैदा कर दी जबकि पत्नि ने पति पर व्यभिचारी जीवन का आक्षेप लगाकर थप्पड़ मारने की धमकी दी एवम् न्यायालय के चैम्बर में ही शान्ति भंग होने से रोकने हेतु मेरे लिये यह एक बड़ी दुष्कर घड़ी आ गई। विज्ञान और टैक्नोलोजी में अभी वह प्रगति शेष है जबकि संगणक उन्हें ऐसी अशान्ति से रोकेगा और एक दूसरे की बाहों में समेटकर चुम्बन हेतु प्रेरित करने के लिए आगे आयेगा।

(घ) प्रिवी कौंसिल से सर्वोच्च न्यायालय—(91) साक्ष्य लिपिबद्ध करना, प्रतिपरीक्षण में प्रसंगोचित और प्रसंगोनुचित निश्चित करना, प्रवेश्यता का निश्चय करना और फिर साक्ष्य को परखने के पश्चात् विधि को लागू करने में धान्य को भूसी से छांटना—जिसका तात्पर्य है प्रिवी कौंसिल से सर्वोच्च न्यायालय तक के पूर्व निर्देशन, जिनमें बिना किसी संशय के मानवीय मशीनरी की आवश्यकता होती है और न तो भावात्मक विधि और न संगणक ही इसका अनुरूप हो सकते हैं।

(ङ) अनुच्छेद (4) में सर्वोच्च न्यायालय के स्थान पर संगणक की प्रतिस्थापना—(92) हमारे संविधान में आवेक्षण और संतुलन का सम्पूर्ण सिद्धान्त, कार्यपालिका और विधायिका को अपनी परिसीमाओं में रखने के लिए विधि को लागू करने हेतु एक सशक्त, स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायपालिका के अस्तित्व पर आधारित है। अगर न्यायाधीश समाप्त हो जायेंगे तो सम्पूर्ण संविधान ही ढह जायेगा और सर्वत्र अराजकता और स्वेच्छाचारिता फैल जायेगी। अतएवं मैं सर्वोच्च न्यायालय के स्थान पर संगणक का उल्लेख करके अनुच्छेद (4) के अनुकल्प हेतु सहमत नहीं हो सकता।

(च) समाजवादी देशों को भी न्यायाधीशों की आवश्यकता—(93) विज्ञान और तकनोलोजी की सर्वांगीण उन्नति के पश्चात् भी संसार के किसी भी देश ने, यहां तक कि समाजवादी देशों ने भी, न्यायाधीशों को अनिवार्य ही समझा है।

(छ) जब तक वैमनस्य और झगड़े रहते हैं न्यायाधीशों का अस्तित्व सूर्य, वायु और प्रकाश के समान—(94) सभी कालों में मनुष्यों के बीच तथा राज्यों के बीच वैमनस्य व नागरिकों और राज्यों के बीच अन्तर्राज्यीय झगड़े व्याप्त रहे हैं और उत्तरोत्तर बढ़ रहे हैं। वादों की अवशेपिता भी बढ़ रही है। अगर संगणक उन्हें घटा नहीं सकते तो न्यायाधीशों की प्रथा को समाप्त कैसे किया जा सकता है? मैं समझता हूं कि संसार तथा मानवता हेतु इसका अस्तित्व सूर्य, प्रकाश और वायु की भांति अनिवार्य और अवश्यम्भावी है।

(ज) न्यायाधीश अनिवार्य—(95) जब तक लड़ाई, झगड़े, फिसाद, मतभेद, अपक्रय और राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, व्यक्तिगत तथा अवैयक्तिक संघर्ष व्याप्त हैं, न्यायाधीशों की प्रथा अनिवार्य है। उपरोक्त समस्त तथ्यों के बिना किसी आदर्श विश्व की कल्पना करना केवल "कपोल कल्पित" ही नहीं बल्कि जैसा कि आचार्य रजनीश ने अपने अधिनिबन्ध में कहा है—"आदर्श की बात करना केवल अव्यवहारिक ही नहीं अपितु अन्यायोचित और गलत है"। उनके मतानुसार वास्तविकताओं का सामना करना चाहिये और आदर्शों की बात करके समस्याओं को टालना या छिपाना नहीं चाहिये। उनके विचार चरमरूपी हैं।

12. नैतिकता का राजनीति और विधि से संयोग

(क) चिकमंगलूर चुनाव का स्थगन नहीं—(96) न्यायाधीश श्री भगवती के विचारों के अनुसार "संविधान विशुद्ध राजनीति है", किन्तु मुझे इसमें यह जोड़ने में तत्परता करनी चाहिये कि इसका मूल आधार "समय-समय की अनुभूत आवश्यकताओं तथा भित्ति लेखों द्वारा प्रकट और प्रदर्शित नैतिकता" है। संविधान के अनुच्छेद 329 द्वारा चुनाव प्रक्रिया के दौरान न्यायालयों द्वारा निषेधाज्ञा और स्थगन आदेश का विवर्जन इसका एक ज्वलन्त दृष्टांत प्रस्तुत करता है। सुवालाल घाभाई बनाम श्रीमति इन्दिरा नेहरु गांधी व अन्य[1] (ए. आइ. आर. 1979 राजस्थान पृष्ठ 130) में राजस्थान उच्च न्यायालय में चिकमंगलूर चुनाव प्रक्रिया के स्थगन हेतु निषेधाज्ञा की प्रार्थना (माननीय जी. एम. लोढा व माननीय के. एस. सिद्धू की पीठ द्वारा खारिज) की गई और निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया था :

> "यह वर्णित करना असंगत नहीं होगा कि अनुच्छेद 329 में चुनाव प्रक्रिया की अवधि मे हस्तक्षेप हेतु पूर्ण निषेध है क्योंकि एक चुनाव को विधानानुसार, एक चुनाव याचिका द्वारा परिणाम की घोषणा के पश्चात्, एक निश्चित तरीके से, एक निश्चित अधिकरण के समक्ष ही, चुनौती दी जा सकती है। अतएव अभ्यर्थी संख्या 1, श्रीमति इन्दिरा गाधी को चिकमगलूर मे चुनाव लड़ने से रोकने के लिये, जैसा कि इस प्रकरण मे अपीलार्थी ने प्रार्थना की है, कोई निषेधाज्ञा जारी करने मे हम सक्षम भी नहीं हैं।"

(ख) अनुच्छेद 329 अम्बेडकर की दूरदर्शिता—(97) यह डा. अम्बेडकर की दूरदर्शिता थी कि उन्होंने अनुच्छेद 329 की रचना करके, चुनाव प्रक्रिया काल मे पक्ष त्याग की रोकथाम की, जिसका सर्वोच्च न्यायालय ने पुन्नूस्वामी के[2] प्रकरण में सम्यक् निर्वचन किया है। नगरपालिका तथा पंचायत के मामलों मे न्यायालय की शक्तियों पर ऐसा कोई अंकुश नहीं होने से, इसने चुनाव प्रक्रिया काल मे स्थगन विवादों की बाढ के द्वार खोल दिये हैं।

---

1. ए. आई. आर. 1979 राजस्थान 130।
2. ए. आई. आर. 1952 सुप्रीम कोर्ट 64।

(ग) स्थगन सम्बन्धी गोखले के संशोधन अनुच्छेद 226—(98) गोखले ने अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत स्थगन की शक्तियों को संशोधित करके जो कुछ भी किया और जिसे 44 वें संशोधन से विलोपन द्वारा समाप्त कर दिया गया है, एक ऐसा संशोधन है जो भविष्य में कभी न कभी अनुच्छेद 329 के अन्तर्गत चुनाव प्रक्रिया की अवधि में समस्त विधिक चुनावों हेतु निषेध के विस्तारण सहित पुनर्निमित किया जा सकता है। भारत जैसा एक गरीब देश, जिसमें न्यायालय मुकदमों की अवशेषिता से दबे हुये हैं, तिहरी विवादिता सहन नहीं कर सकता। भूतकालीन, भविष्यकालीन तथा चुनाव प्रक्रिया की अवधि में "विधि के शासन" का तात्पर्य प्रजातान्त्रिक कार्य प्रणाली में प्रत्येक चरण पर अड़चनें और बाधाएं पहुंचाना नहीं है। पीठासीन न्यायाधीश के रूप में मेरी असमर्थता मुझे इसके अतिरिक्त और कुछ आगे कथन से रोक रही है कि विधि और न्याय का आशय लोगों की सेवा करना है, अगर दौर उल्टा चलाया तो वे ध्वंस हो जायेंगे।

(घ) कामदार क्षतिपूर्ति बनाम वायुयान दुर्घटना क्षतिपूर्ति–(99) न्यायाधीश होम्स द्वारा "फैल्ट नेसेसिटीज आफ टाइम्स" तथा न्यायाधीश गजेन्द्र गड़कर के "रीडिंग आन दी वाल्स" एवम् "मैनस्ट्रीम आफ दी सोसाईटी" से विस्मरणशील न होने वाली विचारधारा "विधि में नैतिकता" ने एक न्यायाधीश के उपचेतन मस्तिष्क को बार-बार प्रेरित किया। अधिशाषी अभियन्ता, राजस्थान नहर परियोजना बनाम श्रीमति रुकमा, (1978 आर. एल. डब्ल्यू. पृष्ठ 264) एवम् सहायक अभियन्ता, सार्वजनिक निर्माण विभाग (भवन एव पथ),[1] जयपुर व राज्य बनाम श्रीमति धापू (एकल पीठ सिविल रिट याचिका संख्या 390/80 दिनांक 20-2-80 को निर्णीत) में मैंने भारत की उसी धरती पुत्रों को 1 या 2 लाख के स्वेच्छापूर्वक क्षतिपूर्ति भुगतान पर औत्सुक्य प्रकट किया जबकि उनकी मृत्यु सुहागरात आनन्द या आनन्ददायी भ्रमण हेतु कश्मीर यात्रा करते समय, वायुयान में होती है, किन्तु वही राज्य, रातकुड़िया ग्राम के एक श्रमिक की असहाय विधवा, जिसका पति राजस्थान नहर जो मरुस्थल को हरित स्थली में परिवर्तित करेगी और मरुस्थली भाग के लाखों भूखे और गरीब लोगों हेतु समृद्धि लायेगी निर्माण-स्थल पर कार्यरत मृत्युग्रस्त हुआ, उसके 10,000/- के दावे का भी विरोध कर रहा है, निम्नलिखित संप्रेषित किया गया :

> श्रम विधि द्वारा प्रदर्शित किया गया स्पष्ट सामाजायिक दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से क्षतिपूर्ति का प्रावधान करता है। राज्य अथवा उसके अधिकारियों के लिए यह परम्परा एवं प्रथा रही है कि वे ऐसे अवसरों पर मानवीय आधारों पर कार्य करें तथा मृतक के परिवार को अनुग्रह के रूप में भौतिक सहायता प्रदान करें। लेकिन इसके विपरीत राज्य ने प्रथमतः क्षतिपूर्ति दावे का प्रतिवाद किया, जब क्षतिपूर्ति प्रदान की गई तो जले पर

1. 1978 आर. एल. डब्ल्यू. 264।

नमक छिड़कने के लिए इसने एक अत्यन्त असामयिक अनुतोष हेतु असाधारण एवं सामयिक् अधिकारिता का आह्वान करके विधवा को इस नाम मात्र के भौतिक अनुतोष से वंचित रखते हुये, उसको अब चुनौती दी है, जबकि निष्ठुर भाग्य ने उसके पति को पहले ही छीन लिया है।"

"क्या निर्देशक तत्वों में उद्घोषित कामगारों को प्रबन्ध मे भाग एवं हिस्सा मिलने तथा गरीबों को विधिक सहायता दी जाने हेतु राज्य द्वारा प्रदर्शित सम्मान यही है? क्या यह राज्य सविधान की प्रस्तावना को ऐसा ही आदर दे रहा है, जिसे कि संविधान के सृजनकर्त्ताओं ने निम्नलिखित उच्च स्वरों एवं उत्साहवर्धक शब्दो में गंगोत्री के तुल्य संविधान का पावन आधार माना है :

"हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी, धर्म निरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म और उपासना की स्वतत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्रदान कराने के लिए तथा उन सब मे व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाला बन्धुत्व बढ़ाने के लिए दृढ सकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज दिनाक 26 नवम्बर, 1949 को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

"एक कल्याणकारी राज्य जिसने गरीबी उन्मूलन एव गरीबो तथा पददलितों को सर्वोच्च प्राथमिकता के आधार पर सुरक्षा प्रदान करने का बीड़ा उठाया है, अपील की परिसीमा समाप्त हो जाने के बाद, इस विवादास्पद ढग से इस रिट याचिका को प्रस्तुत करके, बेलदार की विधवा को उच्च न्यायालय तक घसीटा है। यह ऐसे मामले मे किया गया है जहा कामगार की मृत्यु सर्वोच्च पद पर आसीन पदाधिकारी यानि भारत के राष्ट्रपति के आदर सत्कार के लिये किये जा रहे प्रबन्ध के समय कार्य करते हुई। यह कार्य कलापों की दयनीयता एवं अस्तव्यस्तता दर्शाती है, जहां निर्देशक तत्वों के उच्च आदेशों का उपहास ही नहीं किया गया है, बल्कि राज्य द्वारा दिन दहाडे गरीबों एवं पददलितों की मौलिक मानवीय अधिकारों, विधि के शासन, निर्देशक तत्वों, मूल अधिकारों, तथा प्राथमिक आदर्शों एव प्रतिमान सामान्यकों पर कुठाराघात किया जा रहा है, जो इस युग मे सुस्थापित हैं और जहां "सामाजिक न्याय" तथा "सारभूत न्याय" के बारे में प्रतिदिन विशिष्टोचारण बढ़ रहा है।"

"मैंने पूर्ववर्ती निर्णय में अधिविष्ट किया कि जब एयरलाइन्स तथा रेल्वे स्पष्ट रूप से घटित दुर्घटनाओं द्वारा हुई मानव क्षति के लिये क्रमशः एक लाख व

पचास हजार रुपये देती है तो कामगार क्षतिपूर्ति अधिनियम तथा अन्य अधिनियमों में दी गई क्षतिपूर्ति का मापमान अत्यन्त तुच्छ है।"

"एक ट्रक चालक का जीवन, जो कार्य पर नियुक्त रहते मृत्यु को प्राप्त होता है, किसी भी प्रकार से उस व्यक्ति के जीवन से जो वायुयान अथवा रेलगाड़ी द्वारा "सुहागरात्रि काल" का आनन्द लेने के लिये कश्मीर की यात्रा पर जाता है, कम मूल्यवान नही है। यद्यपि तकनीकी रूप से अनुच्छेद 14 लागू नही किया जा सकता लेकिन यह विधान मण्डल को विचार करना है कि विधि की समता तथा समान संरक्षण परिच्छेद को वस्तुत: क्यों नहीं लागू करना चाहिये।"

"एक कल्याणकारी राज्य में बिना किसी बारीकी के कामगार यानि मजदूर के पक्ष मे उदार व्याख्या करने से वास्तव मे विधान का मानवीय, सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्य पूरा हो जायेगा, जिसका निर्माण एवं अधिनियम श्रमिक को दासता एवं शोषण से मुक्ति दिलाने के लिये किया गया।

सविधान की यह मान्यता और आवश्यकता कामगारों की प्रत्येक बस्ती की गलियों में सर्व विदित है, जहा अर्द्ध नग्न, आधे भूखे लोग अधिकतर जमीन पर, खुले आकाश रूपी छत के नीचे, सड़क के किनारे और पटरियों पर रहते है जो भद्दी तथा अस्वास्थ्यकारी दुर्गन्ध फैलाने वाली है, जहां वे अपने हड्डियों के तनाव को भी मुश्किल से कम कर पाते हैं, जो रात-दिन धूप, शीत व वर्षा में, भट्टियों के इर्द गिर्द, नहरों के पानी के पास, बाधों तथा सड़कों, पुलों और कारखानों मे पसीना बहाते हुये, इसी आशा से कार्य करते हैं कि इससे उनके रोते हुये एव विलाप करते हुये बच्चे और परिवार के सदस्य, जो उनकी व्यग्रता से प्रतीक्षा करते है, उनको आधे दिन अथवा कम से कम एक समय की रोटी तो प्राप्त हो ही जायेगी। अतः न्यायालय एव राज्य दोनो को ऐसे श्रम कल्याणकारी विधान को कार्यान्वित कर सरती एवं शीघ्र सहायता सुलभ कराने के लिए एक उदार मानवीय दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।

यह अत्यन्त महत्त्व की बात है कि न तो राज्य और न ही न्यायिक अथवा अर्द्ध न्यायिक अधिकारी को चाहिये कि वे ऐसे मामलों को सविदा अथवा बधक शुका अथवा सुखाचार के मामने माने बलिक निर्धन व पददलित श्रमिकों एव कामगारों को सहायता सुलभ कराने के लिए विधायी आशय के गुणों को ठीक प्रकार से समझें। ऐसे मामलों मे न्यायालय की यही व्याकुलता रहनी चाहिये कि वे उन्हे सारभूत, शीघ्र एव प्रभावकारी न्याय सुलभ करायें और किसी भी प्रकार के काइ तकनीकी अथवा प्रक्रिया सबधी नियम उसमे बाधक न बनें। अगर ऐसा नही किया जाता है तो ऐसे श्रम कल्याणकारी विधान का उद्देश्य ही समाप्त हो जायेगा।"

(100) दुराचरण पर आधारित या उससे प्रवृत्त अवसान के मध्य अन्तर स्पष्ट करते समय, राजकीय अधिकारीगण के सनकी परिहास से एक निर्धन राज्य

कर्मचारी की दुर्गति ने निःसन्देह इस न्यायालय की सहानुभूति को आकृष्ट किया। भारत संघ एवं [1] अन्य बनाम एस. बी. चटर्जी में (खण्ड पीठ सिविल विशिष्ठ अपील संख्या 47/1969—जोधपुर धासम दिनांक 17 जनवरी, 1980 को निर्णीत) राजस्थान उच्च न्यायालय (न्यायाधीशगण श्री जी. एम. लोढ़ा व श्री एम. सी. जैन द्वारा) ने निम्नलिखित सप्रेक्षित किया।

(ङ) अनुच्छेद 311 सिविल कर्मचारियों हेतु गीता, कुरान और बाइबिल तुल्य—नकाबफाशी बनाम न्यायिक निर्णय, ध्येय मात्र बनाम कोजा कोसन्स या प्राधारभूत कारण–इस न्याय शास्त्रीय सभा के युगल प्रश्न हैं। क्या हम इस नकाब को प्रनावृत करने में सक्षम हैं या हमें शब्दों के अभिपेय के सक्षम आत्म समर्पण करना पडेगा ? क्या हमारे लिये जो लोकोक्तिनुसार संविधान के "रक्षको" के रूप में कार्यरत हैं, एक राजकीय कर्मचारी की अनुच्छेद 311 के संवैधानिक रक्षा छत्र (एक छत्र जो अणु शक्ति से भी कही अधिक मूल्यवान और महत्वपूर्ण है) द्वारा शाब्दिक मनिहारी के वातायन श्रृंगार प्रसाधनों और व्यवस्थापकीय मेधावितारूपी अनावश्यक नकाब से आवृत्त करने वाले अहिंसा नाम पत्र को उद्रेखित करके, दुराचरण पर आधारित कृत्यों के "कोजा कोसनस" या मूल आधार को उत्पादित करना और उसको पर्दाफाश करके नकावफोशी का अनावरण करना अनुज्ञेय है।

अगर शब्दकोश अधिनायक नही हो सकते तो शब्द भी निषेधाज्ञा नही हो सकते और प्रचलित रीति किसी को मूर्ख नही बना सकती। इससे न्यायालयो द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन का अवसान कैसे हो सकता है जिनसे सविधान के "रक्षक" होने की अपेक्षा की जाती है, जो एक राज्य कर्मचारी हेतु सविधान का अनुच्छेद 311 लिये हुये है, जो इतना पवित्र महान्, महत्त्वपूर्ण रक्षाधिकारी है, जितनी पादरियों हेतु बाईबल, मौलवियों हेतु कुरान और महाभारत के अर्जुन हेतु महान् गीता। अब्राहम लिंकन ने, यद्यपि भिन्न प्रसंग में, यह कहा कि "शासन प्रणालियो हेतु मूर्ख लोग विवाद करते हैं। यह सत्य है कि यह एक राजनैतिक दर्शन का वक्तव्य था परन्तु प्रणालियाँ "न्याय मन्दिरों" में हमारी सत्य और न्याय की खोज में बाधक किस प्रकार बन सकती हैं ? अतः हमने यह धारित किया है कि "शब्दो का उपयोग" प्रतिपेधात्मक नही हो सकता और उपरोक्त वर्णित दृष्टांतो का बाहुल्य इस सन्दर्भ में हमारे दृष्टिकोण की पुष्टि करता है कि "प्रणाली ही निर्णायक नही है"—हम उसका नकाब उठाकर रहस्योद्घाटन कर सकते हैं।

(च) दहेज सम्बन्धी मौतें-कठोर विधि की आवश्यकता-उर्मिला का वाद—(101) द्रुतगति से बढने वाली दहेज संबंधी मौतों की सामाजिक बुराई और नव-विवाहित वधुओं को दी जाने वाली यातनाएं न्यायालय के ध्यान से ओझल नही हो सकती। राजस्थान के उच्च न्यायालय द्वारा उर्मिला के वाद में उसकी कड़ी निंदा की गई

1. 1980 डब्ल्यू. एल. एन. 259

और विधि सृष्टाओं, विधि निर्वचनकारों और समाज सुधारकों को समाज के सिर का यह कलंक और वर्तमान पीढ़ी के इन लांछन को दूर करने के लिये कठोर विधि की रचना हेतु तुमुलनाद से आह्वान किया गया। राजस्थान उच्च न्यायालय ने (माननीय गुमानमल लोढ़ा द्वारा) अशोक कुमार शर्मा व अन्य बनाम राजस्थान राज्य[1] में निम्नलिखित संप्रेक्षित किया :

"दहेज के भूखे गिद्ध, जब दूरवीक्षण यन्त्र, शीतन यन्त्र, स्कूटर और पच्चीस हजार रुपये नकद (तहसीलदारों में चयन होने का मूल्य) प्राप्त करने में असमर्थ रहे तो, एक निरपराध, सुन्दर, शिक्षित, किन्तु असहाय नव विवाहित कन्या को खिझाना, छींटा कशी करना, अपमानित करना और असंख्य यातनाएं देना प्रारम्भ किया, जो भयंकर मानसिक वेदना, ऐसे अपमानजनक पाशविक जीवन के प्रति निःस्पृहता और स्नायविक सन्निपात में परिणित हुये तथा जिसने, इस प्रकार अपने आपको जीवित जला कर आत्मघात करने के लिए बाध्य किया। ऐसी है एक पंक्ति में मृतक उर्मिला की दुःखान्तक, मार्मिक हृदय विदारक रोंगटे खड़े करने वाली, स्नायु विस्फोटक, चेतनता को स्तब्ध करने वाली और समाज को झकझोर देने वाली अभियोजन कहानी और अशोक कुमार तथा दहेज हेतु लालायित उसके परिवार जनों की अनुत्तेजित करने की कहानी। फिर भी दहेजी राक्षसों द्वारा "बिना कारावास के जमानत पर मुक्त करने हेतु असाधारण विशिष्ट न्यायिक अनुकम्पा" हेतु प्रार्थना है।

"यह प्रकरण मृतका के पति प्रार्थी अशोककुमार, अशोककुमार की बहिन कुमारी नीरजा तथा उनके अतिरिक्त मृतका की सास और ससुर के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 306 के अन्तर्गत इस कथन के आधार पर पंजीबद्ध किया गया है कि अभियोगी मृतक उर्मिला को पर्याप्त दहेज नहीं लाने के फलस्वरूप यातनाएं दिया करता था। इस प्रकार अभियोजन के कथनानुसार मृतक उर्मिला की मानसिक वेदनाएं असह्य हो गई, जिसका नतीजा यह हुआ कि आत्महत्या के एक पूर्व कालिक असफल प्रयास के पश्चात् उसने अपनी आत्महत्या कर ली। आत्महत्या कालीन टिप्पणी यह प्रदर्शित करती है कि उर्मिला ने चूहे मारने के काम में ली जाने वाली कुछ विषैली दवाएं खाकर आत्महत्या कारित करने का प्रयत्न भी किया किन्तु वह सफल नहीं हुई। फलतः आत्महत्या के पुनरावृत्त प्रयत्न सामाजिक भावना के विरुद्ध विद्रोह का सूत्रपात है जो इसे जघन्य प्रकृति के भयंकर सामाजिक अपराध के रूप में परिणित कर देता है। यह कोई अप्रत्याशित प्रकरण नहीं है क्योंकि जैसा कि अभियोजन ने सही इंगित किया है आज अनेक उर्मिलाएं दहेज मौतों (चाहे वे आत्म-हत्याएं हों या मानव वध) की शिकार हो रही हैं। यह अपराध समाज के

---

1. 1980 क्रिमिनल ला रिपोर्टर (राज) 154

विरुद्ध है, नारीत्व के विरुद्ध है, और सर्वोपरी गरीबी के विरुद्ध है। यह समाज सुधारकों के अतिरिक्त विधि-निर्माताओं, विधि-निर्वचनकारों और विविध कार्यान्वयनकारी तंत्र प्रणाली के गम्भीर एवं तत्पर ध्यानाकर्षण का विषय है। यह वर्तमान पीढ़ी पर लाछन है, और समाज का कलंक है। इस सामाजिक बुराई हेतु, जो नव विवाहित *कन्याओं के बहुमूल्य जीवन की हननकारी है* और *विरलता से ही प्रकाश में आ* पाती है, अधिक कठोर प्रतिषेधात्मक विधि संरचना की आवश्यकता है।
उपरोक्त निर्णय मे मैने अभिकथित आत्महत्या-पत्र को आरक्षी दैनन्दिनी से उद्‌घृत किया है।

(छ) उर्मिला के त्याग से शिक्षा (102) उर्मिला—का देहत्याग, दुर्बलतर असहाय व निर्बल और पीड़ित भारतीय नारी की करुण और दुखद अवस्थाओं को समेटते हुए समाप्त कर देगा। उसकी प्रभू से प्रार्थना है—

> "हे ईश्वर आपसे प्रार्थना है कि अब आगे से ऐसी सीधी लड़की पैदा न करना जो इतनी दब्बू स्वभाव की हो कि अपने अधिकारों के लिये भी न लड़ सके।"

(ज) भारतीय नारियों उठो जागो और अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करो—परोक्षतः क्यों, विश्व की महिलाओं से प्रत्यक्षतः एक स्पष्ट आह्वान है कि वे पुरुषों के शोषण के विरुद्ध विप्लव करें। आदग्ध मांस और रक्त का यह समाघोष है कि पराभूत और अध्यर्पित न हो न ही भागें, वरन राहुल साकृत्यायन के 'भागो नहीं दुनिया को बदलो' शब्दों के अनुसार समाज का आमूल परिवर्तन करें। स्वामी विवेकानन्द के सन्देश 'उठो और जागो' की तरह ही यह आह्वान है कि उठो और जागो तथा सम्मानपूर्ण अस्तित्व व यथोचित अधिकारो के लिये संघर्ष करो। अग्नि और ज्वाला में झुलसती हुई किसी नववधु की यही अन्तिम चीखे है कि दहेज हत्या जो कि एक सामाजिक कुरीति है और दरिद्रता एवं नारीत्व के प्रति दोहरा अपराध है को उसी तरह अग्नि और ज्वाला मे भस्मीभूत कर दो।

(झ) उर्मिला के अंतिम शब्दों को कोने कोने तक पहुंचाओ प्रार्थनाओं में सम्मिलित करो—(103) में चाहता हूं महिलायें, किन्तु महिलायें ही क्यो विश्व के सभी मानवीय सगठन उर्मिला की उक्त चीत्कार व पुकार को स्वर्णाक्षरो मे अंकित करें और उसे *उक्त महिला की शव भूमि से प्रारम्भ सभी ध्यानाकर्षी स्थानो, विथि*-कोणों, विवाह मण्डपों रसोईयो व कुटियों तक मे घोषित करें। पुरोहितों पुजारियो, मुल्लाओं और पादरियो को चाहिये कि वे इसे मदिरो, मस्जिदो, गिरजाओं और गुरुद्वारों यहां तक कि समस्त महिला वरन् मानवीय विद्यालयो, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयो की प्रातःकालीन प्रार्थनाओं मे इसे अन्तर्ग्रहित करें।

(ण) नारी वासना एवं दहेजमुक्त बंधन से मुक्ति ?—(104) इस प्रकार ही उर्मिला का उत्कृष्ट त्याग, वासना पूर्ति व दहेज शोषण के बंधक से भारतीय नारी को मुक्त और विमोचित करा सकता है।

(ट) पुरुष द्वारा सती सीता, सरस्वती की पूजा का ढोंग–मथुरा, उर्मिला, द्रोपदी के शोषण पर आवरण—यह कैसा क्रूरतम उपहास है कि शोषक, सती सीता, सावित्री, दुर्गा, सरस्वती एवं लक्ष्मी की पूजा के ढोंग के आवरण में नारी को वासना पूर्ति एवं दहेज प्राप्ति का साधन मात्र मानकर नित्य प्रतिदिन नारी समाज को द्रोपदी, उर्मिला एवं मथुरा बनाने के लिए बाध्य करता रहा है। भारत में ही नही इंगलैंड तक में कीलर कांड गुप्तचरी के लिए नारी शोषण का उदाहरण है।

(ठ) शैक्सपीयर व तुलसीदास—(105) शैक्सपीयर और तुलसीदास, अपने समय के प्रसिद्ध साहित्यकार भी कुछ समालोचकों द्वारा अपनी रचनाओ मे नारी के प्रति अप्रतिष्ठाकारी तिक्त अभियुक्ति के कारण आलोचित हुये, यद्यपि उन्होंने सर्वदा स्त्रीयता के प्रति अपना समादर और प्रशंसा ही प्रदर्शित की है। निन्यानवे प्रतिशत जन यह नही जानते कि शैक्सपीयर के साहित्य में 'छलनामयी तुम नारी हो' (हैमलेट) किस संदर्भ में प्रयोग किया गया है और नही वे यह जानते हैं कि वह "समुन्द्र" (सागर) था जिसने तुलसी के रामचरित मानस में आत्म निन्दा की भावना से शूद्र, गंवार, ढोर, पशु और नारी को सम्मानित किया।

> प्रभु भल किन्ही मोहि सिख दीन्ही,
> मरजाद पुनि तुम्हारी कीन्ही।
> ढोर, गंवार, शूद्र, पशु, नारी।
> सकल ताड़न के अधिकारी ॥ 13 ॥

साधारण व्यक्ति की समझ गलत हो सकती है किन्तु यह विद्वानों को निर्णय करना है।

(ड) मैथलीशरण गुप्त-यशोधरा, जयशंकर प्रसाद-कमायनी—(106) राष्ट्र कवि मैथलीशरण गुप्त की महिलाओं के प्रति केवल दया, अनुकम्पा, करुणा और सहानुभूति थी, जब उन्होंने लिखा—

(ढ) अबला अंचल व आंसू—

> "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
> आंचल में है दूध और आंखो मे पानी।

एक अन्य महाकवि प्रसाद ने भी नारीत्व के बहुकोणीय पहलुओं को छूते हुए दुर्बलतर लिंग की परिसीमा, असहायता और बाधाओं को कहीं-कही स्वीकार किया है जब उन्होने यह कहा—

(1) "यह आज समझ तो पायी हूं
मैं दुर्बलता मे नारी हूं
अवयव की कोमल सुन्दरता,
लेकर मैं सबसे हारी हूं।

कवि आंसू ही आंसू पाता है :—

(2) पर मन भी क्यों इतना ढीला
अपने ही खो जाता है।
घनश्याम खड सी आंखों में
क्यों सहसा जल भर आता है।

स्त्री, प्रयास पर भी पुरुष से पराजित होती है :—

(3) मैं जभी तोलने का करती
उपचार स्वयम् तुल जाती हूं
भुज लता फंसा कर नर तरु से
झूले सी झोकें खाती हूं।

उन्होंने यह कहते हुए उपसहार किया :—

(4) नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो।

जयशकर प्रसाद, राष्ट्र कवि मैथलीशरण गुप्त की वाणी में :—

(5) आंसू से भीगे आंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा।

(ण) झांसी की रानी जोन ऑफ आर्क—(107) सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपनी कविताओ मे महिला साहित्य को गौरवान्वित करने के नये आयाम प्रस्तुत किये :—

"खूब लडी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी
— सिहासन हिल उठे

किन्तु झांसी की रानी, और आधुनिक युग की जोन ऑफ आर्क व असख्य महान् महिलाओं और देवियों यथा दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, महासती, सीता, सावित्री, और दमयन्ती के बावजूद महिलाओ का शोषण अभी भी निरन्तर गतिशील है। सभी नैतिकता और राजनीति उनको अभी तक दासत्व मुक्त करने मे विश्वस्तर पर असफल रही है।

(त) भारतीय नैतिकता पुरुषों के प्रति पक्षपाती महिलाओं के प्रति क्रूर—(108) क्या इन सबको हम यह कहकर उचित मान लें कि नैतिकता समय-समय पर और जाति-जाति मे बदलती रहती है।

(थ) क्या यह सब एक शक्तिशाली महिला प्रधानमन्त्री होने से बदलेगा—हम ऐसा नहीं मान सकते। नैतिकता का भारतीय सबोध नि:सन्देह महिलाओं के प्रति असामान्य क्रूर और पुरुषों के पक्ष में झुकाव के कारण पक्षपाती हैं। एक प्रभावी महिला के प्रधान मन्त्री होने पर हम यह आशा करते हैं कि नैतिकता और साथ ही साथ विधि का मूल्य शीघ्रता से बदलेगा, न कि शनै: शनै. किन्तु द्रुत गति से,

(109) प्रधानमन्त्री व हम सब भारत के अथर्ववेद के निम्न श्लोकों से प्रेरणा लें जिसमें नारी को "महारानी" बनने की मान्यता दी है। कहा है "जिस प्रकार बलवान समुद्र ने नदियों का साम्राज्य उत्पन्न किया है। उसी प्रकार तू पति के घर जाकर सम्राज्ञी (महारानी) बन। ससुर, देवरों, ननदों और सासू, इन सबके साथ महारानी बन कर रह।

"यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवेवृषा।
एवात्वं सम्राज्ञयेधि पत्युरस्तं परेत्य॥
सम्राज्ञयेधि श्वमुरेषु सम्राज्ञयुत देवषु।
ननान्दुः सम्राज्ञयेधि सम्राज्ञयुत श्वश्र्वा॥

(110) भारतीय शास्त्रों में नारी को देवता तुल्य पूजन का उपदेश है:—

"मातृदेवो भव, पितृदेवो भव,
आचार्य देवो भव

महर्षि मनु ने भी नारी को देवता की तरह पूजने का अमर निर्देश दिया:—

"यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"

(111) परन्तु "मनुस्मृति" में नारी के लिए अवांछनीय आलोचना है, जिसे कई विद्वान भृगु ऋषि का, अपभ्रन्म संकलन मनु के मूल रचना से अलग, बताते हैं। भक्ति काल के कवियों ने भी नारी को ईश्वर पूजन में बाधक मानकर, अन्याय किया। नैतिकता के विद्यार्थी के नाते मैं पूछना चाहता हूं, यदि नारी को ईश्वर सम पूजनीय भाष्यों में मनु ने माना तो क्या ईश्वर ही ईश्वर की पूजा, अर्चना व उपासना में बाधक हो सकता है? कैसी विडम्बना है। कैसा विरोधाभास है।

(112) सतयुग में क्या हुआ होगा, यह तो विद्वान निर्णय करें लेकिन आज "चांद व नक्षत्रों" में पहुंचने के तथाकथित नवयुग में नारी की पूजा व आदर" रविन्द्र सरोवर कांड में हो रही है। केरल की हजारों लड़कियों का अरब राष्ट्रों में "वासना व गुलामी" के लिए बेचा जाना, हरिजन युवतियों पर हजारों बलात्कार किस "मातृ देवो भव, की नैतिकता के द्योतक हैं—आप ही निर्णय करें।

(113) पाश्चात्य सभ्यता व आंग्ल अमेरिका-फ्रांस आदि में तो रात्री क्लब, सुन्दरियों के नग्न नाच व सुरा की उछाल नारी का आर्थिक व लैंगिक शोषण का क्रूरतम भौंडा प्रदर्शन है।

(114) नैतिकता, राजनीति व कानून तीनों त्रिवेणी बहाकर नारी को 'अबला' से सबला व आंचल को "आंखों के आंसू" से धोने के स्थान पर प्रसन्नता व नवजीवन लाने में असफल रहे हैं। चांद व नक्षत्रों का विजेता पुरुष,"नारी को"वासना व गुलामी से मुक्त नहीं कर सका। वेद, भाष्य व मनु के "नारी" के पूजन, धर्म-शास्त्रों में या मंदिरों में ही रह गये व आज तो मनुष्य उन्हें पढ़कर "मगरमच्छी" आंसू बहा नारी का उपहास करता है।

(द) *उपेन्द्र बक्षी को बलात्कार नियमों में परिवर्तन हेतु विधेयक के लिए धन्यवाद*—मथुरा और उर्मिला का महिला क्रांति के लिए त्याग—(115) उर्मिला की स्पष्ट उत्तीव् पुकार ने विप्लव के एक युग को अग्रमित किया है और वधुओं की दहेज हत्या के सामाजिक पातक के निवारणार्थ नियम बनाने वाले राजनीतिज्ञों को कठोर निवारक नियम बनाने को बाध्य कर नैतिकता और विधि के नये आयाम स्थापित किये हैं। आरक्षक द्वारा मथुरा का सतीत्व हरण और बलात्कारी को अपराधी बना कैद करने में नियमों की असमर्थता, बलात्कार प्रकरणों में इस कानून मे परिवर्तन हेतु नियमों को संशोधित करने के विधेयक में परिणति हुई। विधि की इस कमी को प्रकाश में लाने और नैतिक मूल्यों के प्रवर्तन हेतु प्राध्यापक उपेन्द्र बक्षी व अन्य महिला संस्थाओं को धन्यवाद।

(ध) मथुरा और उर्मिला की प्रकरण लाखों में एक उजागर दशाब्दियों से कभी प्रकाश में आते हैं—(116) *कृपया यह नहीं भूलें कि मथुरा और उर्मिला* तो उन हजारों में एक हैं जो पूर्ण प्रकाश में आ जाने से उपलम्भित हुई। राजनीति और राजनीतिज्ञों से प्रेरित समाज शास्त्र पर आधारित नैतिक प्रभाव विरला होता है, दशाब्दियों में एक और कभी-कभी तो शताब्दियों में। यह सब राजनीतिज्ञों पर उतना निर्भर नहीं है जितना कि निर्वाचकों, समाज सुधारकों बुद्धिजीवियों, कृषकों, *श्रमिकों, मोचियों, रिक्शावालों और तांगेवालों सहित समस्त समाज पर है कि कौन* मे नैतिक मूल्यों के लिए ये कितना प्रयास करते हैं।

(न) दरिद्र, रोटी और अर्थ से संबन्धित हैं न कि राजनीति, विधि और नैतिकता से—(117) निःसन्देह भारत का बहुजन दरिद्रता की सीमा रेखा के नीचे होने से दो जून भोजन से ही सवन्ध रखता है जो कि राजनीति अथवा परमाणु -भौतिकी के बजाय विशुद्ध आर्थिक है। उसके लिए विधि और नैतिकता वृथा है।

(118) 'दो रोटी' अथवा 'दो जून भोजन' की समस्या के दैनिक चक्र से व्यथित विश्व की तीन चौथाई पीड़ित 'दलित' निगृहित, पददलित प्रयुक्त जनसख्या जो साईबेरिया से सीलोन, दक्षिण अफ्रीका से चीन की तरफ फैली हुई है, अधिकांशतः संस्कारवश जन्म से ही धार्मिक प्रभाव के कारण बाईबिल, गीता, रामायण, कुरान, गुरुग्रन्थ साहिब धम्मपद, समदं सुत्तम का पाठ करती है। लेकिन कई धर्म, जाति, राष्ट्र, वातावरण, इतिहास और भूगोल, नैतिकता, विधि और राजनीति, आधार और भौतिकी के सीमा का उल्लंघन करते हुये कार्लमार्क्स के दास कैपीटल से अर्थ-शास्त्र के सिद्धान्तों की तरफ आकर्षित है। मार्शल, माल्थस और मार्क्स ये सभी अर्थशास्त्री थे और उसी प्रकार कौटिल्य भी था जिसने अर्थशास्त्र की रचना की किन्तु मार्क्स ने अर्थशास्त्र मे विधि, नैतिकता और राजनीति तीनों को प्रभावित करते हुये नये आयाम प्रस्तुत किये और सम्पन्न के विरुद्ध विपन्न और शोषक विरुद्ध शोषित को सजग करते हुये इसे अन्तर्राष्ट्रीय और शाश्वत विज्ञान बना दिया। कौन

इसके पक्ष अथवा विपक्ष में है यह एक अलग प्रश्न है और एक पीठासीन न्यायाधिपति होने के नाते इस सम्बन्ध में मैं अपनी राय से स्वयं को अलग रखूंगा।

(प) न्यायाधिपति राजनीति से विमुख—(119) एक न्यायाधिपति का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। फलतः मेरा भी नहीं है। एक न्यायाधिपति के लिये विधि न्याय है, राजनीति समानता है और नैतिकता एक सद् अन्तःकरण है। विधि, नैतिकता और राजनीति का त्रिकोण का अर्थ एक न्यायाधिपति के लिए न्याय, सदअन्तःकरण और समानता है और यह मुझे उसी प्रकार अंगीकृत है जैसा हमारा पवित्र संविधान। इसी से प्रेरित होकर मैंने न्यायाधिपति सुश्री कान्ता भटनागर के साथ पीठासीन दिनांक 2-3-1980 को मुख्य पीठ, जोधपुर में निर्णय युग्म दाण्डिक अवमान याचिका संख्या 527/79 में निम्न सम्प्रेषित किया:—[1]

"न्याय का प्रतीक या सम्प्रतीक सम्भार या तुला है। एक न्यायाधिपति को प्रथमतः यह चाहिये कि वह इस तुला का संतुलन बनाये रखे और हर परिस्थितियों में इसे असतुलित न होने दे। अर्थ लोलुपता से इसे असन्तुलित करना न्याय और न्यायाधिपति के लिये अनिष्ट है और एक न्यायाधिपति के लिए इससे बुरा कोई लान्छन नहीं होता है। एक न्यायाधिपति के लिए स्वतंत्रता उसका हृदय है और सत्यसंधता उसकी मांसें हैं। एक न्यायाधिपति में मात्रा का अभाव कोई अभाव नहीं है, गुण का अभाव कुछ अभाव है परन्तु स्वतन्त्रता सत्यसंधता और निष्पक्षता का अभाव पूर्ण अभाव है।"

(फ) जब एक न्यायाधिपति धर्मयोद्धा बन जाता है—(120) उपरोक्त इन प्रकरणों का निदर्शन प्रचुरतया यह सिद्ध करता है कि नैतिकता और मानवता के उच्चतम सिद्धान्त कभी-कभी न्यायाधिपतियों को भी दरिद्रों और पद—दलितों के प्रति द्रवीभूत कर देते हैं और जब एक न्यायाधिपति अनिच्छितः वेदना जनित उत्साह प्रदर्शित करते हुये धर्म योद्धा बन विधि व नैतिकता को सार्वभौमिक नियमों का रूप प्रदान करता है तब ही विधि और नैतिकता का विलय होता है।

अनायास ही ये न्यायाधिपतियों की कर्त्तव्य विमुक्तता है जिसका पूर्व में विचार किया जा चुका है, क्योंकि कम्प्यूटर (संगणक) कभी भी धर्म योद्धा नहीं बन सकते।

13. मद्य निषेध

नैतिकता, विधि व राजनीति की अन्तःप्रतिक्रियाएं

(क) शुष्क बनाम आर्द्र—(121) नैतिकता विधि और राजनैतिक त्रिकोण की विशद् विभिन्न मिश्रित अन्तः प्रतिक्रियाएं मद्य निषेद और पुरातन कालीन "शुष्क बनाम. आर्द्र" के संघर्ष में भी पाई गई। जिनका संक्षिप्त किन्तु बिन्दुवत

1. उम्मेदसिंह बनाम बहादुरसिंह 1980 डब्ल्यू. एल. एन. 276

व सारयुक्त चित्रांकन रमेशचन्द्र पालीवाल बनाम राजस्थान राज्य व अन्य, याचिका संख्या 861 सन् 1979 में हुआ है। जिसमे माननीय न्यायालय द्वारा (माननीय न्यायाधिपति श्री गुमानमल लोढा द्वारा निर्णीत) निम्न अवलोकन किया गया।

"ये पांच मदिरा समर्थक याचिकाएं, मदिरा विरोधियों के विरुद्ध हैं। "शुष्क बनाम आर्द्र" एक पुरातन कालीन विवाद है जो कई विधिक सघर्षों से गुजर चुका हैं; जिसे सर्व प्रथम कुवर्जी वी. भरुचा बनाम मुख्य आयुक्त, अजमेर व अन्य[1] मे विचारित किया गया जो क्रोले बनाम क्रिस्टेन्सन[2] पर आधारित था और मैसर्स सतपाल एण्ड कम्पनी बनाम उप-राज्यपाल, दिल्ली व अन्य[3] के अभिनव निर्णय द्वारा जिसकी बारम्बार सदन शिखरी तथा उच्चतम न्यायिक शिखरों द्वारा प्रसारित व उद्घोषित किया गया है कि मदिरा का व्यापार व व्यवसाय एक मूल अधिकार नही है। तद्पि नये संघर्ष मोर्चों पर हर बार मदिरा समर्थको का मदिरा विरोधियों पर आक्रमण जारी है और वे उन्हे सविधान के अनुच्छेद 47 के झण्डे तले समाप्त एव लुप्त करने की चेष्टा करते हैं।

(ख) कालिदास के सूत्रों में "सोम" व सुरा—(122) अतीत काल से ही "सोम व सुरा" मदिरा के प्राचीन नाम, यद्यपि उसी विवादास्पद ढग से, जैसे आज विद्यमान है, अस्तित्व में थे। जिनका स्मृति-सूत्र, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, पुराण, जटाक्ष वन्दना एव कई तन्त्रों तक में उल्लेख हुआ है। यहा तक कि महाकवि कालीदास, प्राचीन कवि, ने भी अपने शास्त्रीय साहित्य-अभिज्ञान शाकुन्तला, कुमार सभव व रघुवंश मे इनका उल्लेख किया है।

(ग) अजेटक्स, इस्लाम, बेबू व बौद्ध—(123) निषेध लहर एव मदिरा विरोधियो के मदिरा समथकों को निष्प्राण करने के प्रयत्न प्राचीन काल मे बडे पुर जोर थे। अमेरिका मे, प्राचीन मैक्सिको के अजेटक्स सुरा पान पर नवयुवको को मृत्यु दण्ड से दडित करते थे किन्तु वृद्धो व रुग्णों के प्रति उदार थे। भारत में मनु व याज्ञवल्क्य ने सुरा पान में लिप्त लोगों के लिए कठोरतम दण्ड का प्रावधान रखा। इस्लाम मे मादक पेय प्रयोग मे लेना निषिद्ध कर दिया था। भारत एव परसिया व बेब्रूज के प्राचीन धर्म गुरुओं ने सुरा पान को प्रतिनिदित किया जबकि मुस्लिम व बौद्ध गुरुओं ने मदिरा परिवर्जन निषेध किया। प्राचीन शास्त्रों द्वारा दण्ड का प्रावधान रखा गया व उनके द्वारा मद्य निषेध अन्तःक्षिप्त किया गया।

(124) वेद, मनुस्मृतियों व याज्ञवलक्य के भिन्न उद्धरण यह दर्शाते हैं कि मदिरा सक्त सभी काल मे समस्त स्थानों पर निंदित किए जाते थे।

---

1. ए. आई. आर. 1954, एस. सी. 220।
2. (1980), 34 एल. एड. 620।
3. ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1550।

निताक्षरा की धारा 6–253 में मदिरा पान के दुष्परिणामों का निम्न प्रकार से वर्णन किया गया है :

(घ) मदिरा के आठ दुर्गुण—(125) मद्य कलश में आठ दुर्गुण हैं, : मद, प्रमाद, कलह, जड़ता, बुद्धिक्षय, अनैतिकता, विनाश में आनन्द एवं नरक की राह।

"मद प्रमादः कलहस्च निद्रा ।
बुद्धिक्षमों धर्म-विपर्ययश्च ।
सुखस्य कन्या नरकस्य पन्था ।
अष्टावनर्था : करके वसन्ति ॥

(ङ) सुरा पर मनु के विचार—(126) प्राचीन शास्त्रों द्वारा दण्ड का विधान किया गया था। एवं उनके द्वारा मद्य निषेध अन्तक्षिप्त किया गया था। मनु 11–90, 92, 93

"सुरा पीत्वा द्विजो मोहादग्निर्वर्णां सुरापिबेत् ।
तथा सकाये निरग्धे मुच्यते किल्लिवपान्तुत: ॥ 90 ॥

यदि कोई द्विज (स्वेच्छया) चाहे वो मानसिक विभ्रम की अवस्था में हो सुरा, (प्रासुत मदिरा) पान कर चुका है, स्वयम् को तब तक बाध्यित करे जब तक कि उसके शरीर का पूर्ण द्रव दाह हो, तभी इस पाप से वह मुक्त होता है।"

कणान्वा भक्षयें दद्ब निष्ठाक वा सकृन्निभः ।
सुरापानापनुत्यर्थं बालवासा जटी ध्वजी ॥ 92 ॥

"अथवा, सुरापान के पाप से मुक्त होने के लिए वह एक वर्ष तक दिन में एक बार रात्रि को चावल अथवा खली का भोग करे, स्वयं की जटाओं व अन्य बालों से निर्मित वस्त्र धारण करे तथा सुरा पात्र को ध्वज के समान धारण कर चले।

"सुरा वै मलमन्ना नौ पाप्मांच मलमुच्यते ।
तस्मार्द ब्राह्मण राजन्य वैश्यचन सुरा पिबेत" ॥ 93 ॥

(च) मदिरा पर अर्जुन की प्रतिक्रिया—(127) भगवत पुराण के अनुसार भ्राता युधिष्ठिर द्वारा यह पूछे जाने पर कि यादव क्या कर रहे हैं, अर्जुन ने यह कहा बताते हैं :—

"हे दयानिधे ! हमारे परम् हितैषी आप जिन लोगों के बारे में पूछ रहे हैं वे हमारे ही शुभ चिंतक के घर एक ब्राह्मण के अभिशाप से विचलित अपनी समस्त चेतना की वारुणी द्रव में लिप्त कर एक दूसरे को प्रति स्वीकार न कर परस्पर आघारत करते हुए स्वयं को इस प्रकार नष्ट कर चुके हैं। इस कथा को कहने के लिए अब चार या पांच जीवित शेष रहे हैं।

(छ) मदिरा सम्बन्धी रोमन विचार—(128) कुछ ख्यातनाम रोमन के विचार भी कम रुचिकर नहीं है। मद्‌मत्ता मात्र एक उन्मादावस्था है जो सोद्देश्य-ग्रहण की जाती है।

सेनेका ने अपने तिरासीवें धर्मपत्र में कहा है :—

"एक विषयासक्त एवं असंयमी युवक वृद्धावस्था के जीर्ण-शीर्ण शरीर को निमन्त्रण देता है।

इस पर, जो हमे हजारों अपराध करने को प्रेरित करता है हम मुक्त हस्त से असीमित व्यय करते है। मानव जाति अपनी पापासक्त क्षुद्धा की संतुष्टि के लिए इतनी अधिक धूर्त है कि उसने इस प्रकार जल से ही मादकता उत्पन्न करने की विधि का आविष्कार कर लिया है।"

(ज) वेदों द्वारा मद्य निषेध—(129) वेदों में निषेध निम्न प्रतिक्रिया से विद्यमान है :—

"इत्सु पीतासु यधान्ते दुर्दुदात्री न सुरायाम।
ऊधन नम्ना जरन्ते॥

लोग मद्यपान के पश्चात् लड़ते हैं। उनके स्वास्थ्य का क्षरण होने लगता है और वे यौवनावस्था में ही वृद्ध निर्बल हो जाते है। अतः मद्यपान प्रतिसिद्ध किया जाना चाहिये।

(झ) मनुस्मृति और मदिरा—(130) मनुस्मृति में भी मद्यपान की प्रवृत्ति को इसी प्रकार से निन्दित किया गया है।

मनुस्मृति ने इसे निम्न कथन से और तिरस्कृत किया है :—

यक्षरक्षः विशाचान्न यदर्ग मासं सुराप्रास वमु।
दद् ब्राह्मणेव नात्वव्य देवानामश्यत हवि॥

(ञ) याज्ञवलक्य द्वारा मदिरा की भर्त्सना—(131) याज्ञवलक्य ने अपनी स्मृति में मदिरापान पर टिप्पणी करते हुए इसकी इन शब्दों मे भर्त्सना की है!

"पति लोक न सायाति ब्राह्मणी या सुरा पिपेत।
इहैव साशुती, गृध्री शुकरी चोप जायते॥"

(ट) अध्यक्षीय व्यवस्था—(132) न्यायिक निर्णयो की लम्बी शृंखला और संवैधानिक तया विधि विधान दोनों द्वारा ही मदिरा विरोधियों ने मदिरा समर्थकों के विरुद्ध संग्राम में अधिकांशतः विजय प्राप्त कर ली है। लोक सभा विधि बनाती है और न्यायपालिका विधि के उन आदेशों का निर्वचन करती है और अपने उच्च शिखरों से वारम्वार यह उद्घोषणा कर चुकी है कि मदिरा विरोधी इस संग्राम में

सफल रहे हैं, सदस्य ही विधायिका में अध्यक्ष द्वारा, जब कोई अधिमत या तो विधायिका में पारित होता है अथवा कटु वाद विवाद, कोलाहलपूर्ण दृश्यों व विधायकों में तीक्ष्ण विभाजन के पश्चात् किसी प्रस्ताव पर मतदान होता है, यही अधिमत उद्घोषित किया जाता है।

(ठ) मद्य समर्थकों की न्यायिक समीक्षा—(133) कुवरजी बी. मरचा प्रकरण से प्रारम्भ "शुष्क बनाम आर्द्र" का न्यायिक संग्राम जिसमें पांचवें दशक के प्रख्यात न्यायार्थाशों की प्रभावी उद्घोषणाएं हैं और जिनकी हरिशंकर प्रकरण में पुनरावृत्ति हुई जब ए. एन रे मुख्य न्यायाधिपति, के. के. मैथ्यू, वाई. वी. चन्द्रचूड़ व एन. सी. गुप्ता न्यायाधिपतियों द्वारा यह पुन: उद्घोषित किया गया कि मदिरा का व्यापार करने के लिए कोई मूल अधिकार अस्तित्व में नहीं है तो इसने उस संशय को स्पष्ट कर दिया जिसे माननीय न्यायाधिपति सुब्बाराव द्वारा कृष्ण कुमार नरुला प्रकरण के निर्णय द्वारा उद्घोषित किया कि मदिरा व्यापार भी एक अधिकार है, से उत्पन्न हुआ। अन्ततोगत्वा यह संग्राम अन्य काल के लिए न्यायाधिपति अय्यर, देसाई व चिन्नपा रेड्डी द्वारा पी. एन. कौशल व न्यायाधिपति देसाई व सेन द्वारा सतपाल प्रकरणों में की गई उनकी ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय उद्घोषणाओं द्वारा जीत लिया गया है।

(ड) अमेरिका में मादक वर्जन—(134) तब भी मदिरा समर्थक इस आशा के साथ कि अन्ततोगत्वा वे अब भी यह युद्ध अंतिम रूप से जीत सकते हैं, नये सिरे से कूच कर रहे हैं और नये मोर्चे खोल रहे हैं, यद्यपि वे अधिकाधिक संख्या में न्यायिक, राजनैतिक व संवैधानिक युद्ध हार चुके हैं। वे अपनी प्रेरणा इस तथ्य से प्राप्त करते हैं कि यद्यपि प्राचीन काल में मेक्सिको के अजेटेक्स, चीनी व हमनूरा कानून किसी युवक के मदिरासक्त हो जाने पर मृत्यु दण्ड का प्रावधान रखते थे और सन् 1798 से अमेरिका में मादक वर्जन की तीन अनुक्रमिक लहरों के परिणामस्वरूप अन्ततोगत्वा राष्ट्रीय मदिरा निरोध अधिनियम पारित करना पड़ा और संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में 18वां संशोधन हुआ जिसने मदिरा विरोधी आंदोलन के उच्च वेग को मान्य ठहराया तथापि अन्ततः सन् 1798, 1850 और 1920 की तीनों लहरों का राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा मद्यनिषेध अधिनियम व 18 वें संशोधन अधिनियम को 21वें संशोधन की धारा 1 द्वारा निरस्त करते हुए प्रशमन कर दिया गया और निम्न उद्घोषणा की गई :—

(ढ) अमेरिका द्वारा मदिरा का पुन: समर्थन और राष्ट्रपति रूजवेल्ट की अपील—"मैं इस उद्देश्य के लिये हमारे समस्त नागरिकों से पूर्ण हार्दिक सहयोग की अपेक्षा करता हूं कि नागरिक स्वतन्त्रता के इस प्रत्यावर्तन के साथ किसी अवरोधी स्थिति का समागम नहीं होगा जो कि अठारहवें संशोधन के पारित होने के पहले और इसके अंगीकृत होने के समय से थी।"

"मैं विशेष रूप से अनुरोध करता हूं कि कोई भी राज्य विधि द्वारा या अन्य प्रकार से मधुशालाओं के प्रत्यार्पण इसके प्राचीन या आधुनिक छद्म रूप को प्राधिकृत नहीं करेगा।"

"निश्चित ही यह बहुत अच्छा है कि संयुक्त राज्य में यह मधुशालाएं नहीं हैं। परन्तु यहां पानगृह, मदिरालय, कबाबखाने और मिश्रित सुतलेह किन्तु अधिकतर उसी पुराने ढर्रे के साथ हैं; केवल नाम बदला है।"

(ण) आसबारी एक अतिभ्रम—(135) "शुष्क बनाम आर्द्र" के इस ऐतिहासिक संग्राम का पुनरावलोकन आसबारी ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "दी ग्रेट इलूजन" में किया है, हालांकि यह अमेरिकी प्रयोग पर आधारित है। पृ. 332 पर मदिरा निषेध के 14 वर्षों पर प्रकाश डालते हुए आपने निष्कर्ष निकाला कि सन् 1920 से 1934 तक के 14 वर्षों का समय केवल भ्रष्टाचार और अतुलनीय अपराध वृत्ति का ही नही रहा अपितु एक सर्वथा झूठे काल के रूप में भी स्मरणीय है। मदिराविरोधी मदिरा निषेध को उचित ठहराने के लिए झूठ बोलते थे इसके विपरीत मदिरा समर्थक इसे बुरा सिद्ध करने के लिये झूठ बोलते थे, सरकारी कर्मचारी अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने व व्यय करने के लिए अधिक धन प्राप्त करने हेतु कांग्रेस को डराकर झूठ बोलते थे और राजनीतिज्ञ मिथ्या भाषण की प्रबल आदत से झूठ बोलते थे।

(त) अय्यर-हम क्या हैं—(136) इस देश के प्रख्यात न्यायाधिपतियों के निर्णय भी अत्यन्त सुस्पष्ट एवं भावोत्तेजक हैं। न्यायाधिपति अय्यर ने पी. एन. कौशल के निर्णय को, जो कि एक उत्कृष्ठ निर्णय है, सर्व साधारण से कि हम क्या हैं एक प्रश्न के रूप में प्रारम्भ किया एवं "शुष्क बनाम आर्द्र" के बीच युद्ध की ऐतिहासिक, राजनैतिक व न्यायायिक प्रगति एवं विनिश्चियों का विस्तृत सर्वेक्षण करने के पश्चात् अन्ततोगत्वा यह अवलोकित करते हुये इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि "हमारे पास सामाजिक न्याय व मतपान (मादकवर्जन) पोषको के लिए विधि तथा संविधान के तरीकों को न्यायोचित ठहराने हेतु पर्याप्त कारण हैं। यह चुनौती असफल है व सन् 1978 की याचिकाएं संख्या 4108–4109 व अन्य, एक सुनवाई शुल्क के खर्चे सहित अपास्त की जाती हैं। क्या हम राज्य से असहाय, सर्वधानिक अनुच्छेद 47 के प्रति सच्ची निष्ठा और विश्वास की आशापूर्ण अपेक्षा कर सकते है।"

(छ) असहाय अनुच्छेद 47—(137) यह उल्लेखनीय है कि इस देश के सर्वोच्च न्यायालय का अनुच्छेद 47 के असहाय होने सम्बन्धी अधिमत तब से विचारणीय है जबसे सविधान के आदि निर्माताओं ने सन् 1949 में इसे अधिनियमित किया और राज्यों के नीति निर्देशक तत्वों मे इसे प्रतिस्थापित किया, और तद्रूप ही यह राज्य के तीनो अंगों कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के समक्ष भी

विचारणीय है। मैं इसमें एक और अनुवृद्धि चाहूंगा कि न्यायपालिका विधि का केवल निर्वचन कर सकती है और विधायिका द्वारा निर्मित विधि की वैधता का न्यायोचित निर्णय करते हुये तथा यह सुनिश्चित करते हुये कि अन्य दो अंग संविधान के अनुरूप व विधि नियम से कार्य कर रहे हैं, संविधान के रक्षक के रूप में कार्य कर सकती है।

अनुच्छेद 47 न तो न्यायालय द्वारा न्याय संगत एवं प्रवर्तनीय है और न ही इसे मूल अधिकार के रूप में लिया जा सकता है जबकि अनुच्छेद 37 के बल से यह देश के शासन में मूलभूत है और विधि बनाते समय इन तत्वों का प्रयोग राज्य का कर्तव्य है।"

(138) इस अनन्त संग्राम के सम्बन्ध में मैंने ऐतिहासिक और सामाजिक विकास की विस्तृत खोज की है। उपरोक्त तो मेरे उस सर्वेक्षण की एक झांकी है जो मैंने हर प्रसाद प्रकरण में किया है। मेरे निर्णय के उपरोक्त उद्धरणों से यह भली भांति प्रदर्शित हो जाता है कि नैतिकता पर आधारित मद्यपान (मादकवर्जन) और मद्य निषेध ने सार्वभौतिक नियमों पर बारम्बार प्रभाव डाला। यद्यपि राजनीति द्वारा इसे समय-समय पर ठेस पहुंचाई गई। परन्तु तब भी इस क्षेत्र में नैतिकता राजनीति पर प्रभावी रही, महात्मा गांधी, विनोबा भावे और गोकुलभाई भट्ट के आंदोलन इसके निकटतम जीवन्त प्रमाण हैं जो निश्चित रूपेण यह सिद्ध करते हैं कि अर्थ के मूल्यों पर भी मद्य निषेध कानून कम से कम भारत में अधिनियमित एवं प्रसारित किये गये। इन्हें राजनैतिक व आर्थिक कक्षों से ठेस पहुंचने का भय भी सन्निकट है किन्तु नैतिकता की तभी परीक्षा होती है। यह सब उन्हीं पर निर्भर हैं।

अन्ततोगत्वा आर्थिक राजकीय लाभ से प्रभावित होकर नैतिकता की शव यात्रा निकाल कर *मदिरा निषेध समाप्त किया जा रहा है:*

अपवाद रूप भारत में जो भी मदिरा-निषेध कानून बने, शनैः सबको पलीता लगाकर जलाया जा रहा है व सुरा, मदिरा की मादकता में चंद्र और मधुमालाएं ही नहीं गली चौराहे, थिरक रहे हैं। विश्व की अधिकांश जनसंख्या मदिरापान से त्रस्त है व इसे अनैतिक समझना भी अब दकियानूसी विचार धारा समझी जाती है। "सुरा व सुन्दरी" अब खुले समाज व आधुनिक प्रगतिवादी सभ्यता व संस्कृति की द्योतक है—अतः भारत में भी गांधी नेहरु की कल्पना की धारा 47 मृत हो रही है—नैतिकता के मूल्य बदल चुके हैं।

14. समापन

(ज) वोल्गा से गंगा, गोपालन से गोलकनाथ, आचार्य रजनीश, सत् सांई बाबा—(140) नैतिकता विधि और राजनीति की विवेचना करते हुये मैंने मनु से मार्क्स, बेन्थम, आस्टिन, अरस्तू, सुकरात, प्लेटो से महात्मा गांधी, वोल्गा से गंगा,

दयनीय मुन्सिफ ?

न्यायिक दण्डनायक, सम्पन्न या विपन्न ?

बैलगाड़ी चालक

आज के अन्तरिक्ष युग मे भी, जबकि विज्ञान और टैक्नोलॉजी ने "चन्द्रमा और ग्रहों" पर विजय प्राप्त करली है और उत्साही आधुनिकतावादी अन्तरिक्ष में स्थान आरक्षित करवा रहे हैं, अति उपेक्षित, तुच्छ, अस्पृश्य, समाज का महत्वहीन अंग भारतीय न्यायपालिका बैलगाडी की रफ्तार से चल रही है। इस बैलगाड़ी का लोक कथित चालक, न्यायायिक सीढी का सबसे निम्नतम व्यक्ति, "मुन्सिफ" है जिसे न्यायिक मजिस्ट्रेट भी कहते हैं। उसकी दयनीय शोचनीय दशा पर दो आंसू बहाने वाला कौन है ?

न्यायिक सम्पन्नता

2. न्यायिक अधिकारियो के पदानुक्रम में, भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश सर्वोच्च शिखर पर, इसके बाद उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश तथा इससे नीचे जिला एवं सत्र न्यायाधीश होते हैं जो कि इस सीढी पर सबसे ऊंचे व्यक्ति होते हैं और जो अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीशों पर जाकर यह उच्च सीढ़ी समाप्त होती है। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों को, जो जिले के मुख्य न्यायिक पदों को धारण करते हैं और जिन्हें सुविधायुक्त, प्रशासनिक समर्थन और शक्ति प्राप्त है, न्यायिक सम्पन्नता मे प्रवर्गीकृत किया जा सकता है।

निम्नतम सीढ़ी

3. इसके बाद वह सीढ़ी सबसे निम्नतम तन्तु मुन्सिफ एवं न्यायायिक मजिस्ट्रेटों या न्यायिक मजिस्ट्रेट सिविल जज या अपर मुन्सिफ एव न्यायिक मजिस्ट्रेटों पर जाकर समाप्त होती है जो कि इस सीढ़ी पर सबसे नीचे बैठे होते हैं और जो न्यायिक पद्धति के सबसे दयनीय व्यक्ति होते हैं। अपवाद के रूप मे इनमे से कुछ तो रेल्वे मजिस्ट्रेटों या रोड़वेज मजिस्ट्रेटों के मुख्य प्राइज-पदों को सुशोभित करते हैं। जो या तो वरिष्ठता अथवा अपनी तुलनात्मक योग्यता के द्वारा अथवा मुख्य न्यायाधिपति अथवा उनसे सम्बन्धित वरिष्ठ न्यायाधीशों या रजिस्ट्रार की कृपा पर मिलती है, जो सुविधाजनक, लाभकारी व प्रभावशाली है।

अकेले राजस्थान में ही 428 न्यायिक अधिकारियों में से 342 अधिकारी राजस्थान न्यायिक सेवा के हैं जिनमे से 295 अधिकारी श्री पी. सी. अग्रवाल से

लेकर श्री पूरणमल रैगर तक मुन्सिफ एवं न्यायिक मजिस्ट्रेट या केवल न्यायिक मजिस्ट्रेट होने के कारण इस सीढ़ी पर सबसे नीचे व्यक्ति हैं।

हाकिम विपन्न व्यक्ति-एक विरोधाभास

4. इसमें कुछ विरोधाभास प्रतीत हो सकता है कि ऐसे देश में, जहाँ 50 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करती हो और सुदूर गांव या कस्बे में मुन्सिफ पुराने हाकिम की श्रेणी मे माना जाता हो, मैंने उसे "विपन्न व्यक्ति" के रूप में प्रवर्गीकृत किया है। यह सही है कि विस्तृत एवं व्यापक अर्थ में यह अन्य हजारों व्यक्तियों की तुलना मे अधिक विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति है किन्तु मेरा मूल्यांकन न्यायिक अधिकारियों के पारस्परिक वर्गीकरण और प्रवर्गीकरण तथा निर्धारण तक ही सीमित है और यह केवल विशिष्ट तथा संकुचित अर्थ में सापेक्ष तुलना पर आधारित है।

निरीक्षण द्वारा प्रेरणा

5. प्रारम्भ में झुन्झुनू जिला के मुन्सिफ न्यायालयों के निरीक्षण का उल्लेख करना मेरे लिये आवश्यक है। जहाँ तक आवास का सम्बन्ध है, न केवल न्यायिक अधिकारियों के रहन-सहन की, वरन् न्यायालय-भवनों की दयनीय स्थिति और पीठासीन अधिकारियों की निम्न स्थिति ने सेमीनार के लिये यह लेख लिखने और इसका शीर्षक "दयनीय व्यक्ति" रखने के लिये मुझे विवश किया है।

न्यायालय के विरुद्ध निष्कासन डिक्री

6. खेतड़ी मुन्सिफ का न्यायालय-भवन मकान मालिक द्वारा निष्कासन डिक्री के अधीन चल रहा है जिसके बारे में कहा जाता है कि अब उसकी अपील कर दी गई है। किसी मकान मालिक द्वारा उस मुन्सिफ को जो कि अन्य व्यक्तियों के निष्कासन का आदेश देता है, किसी भी दिन न्यायालय कक्ष के साज सामान के साथ बाहर फेंक दिये जाने के खतरे के साथ ही उसके मस्तिष्क में लाचारी, खींचा तान एवं तनाव की स्थिति बनी रहती है।

छत का गिरना सन्निकट

7. चिड़ावा में मुन्सिफ मजिस्ट्रेट के न्यायालय परिसर के लिये किराये का वाद लम्बित है। किसी जागीरदार के इस छोटे से प्राचीन खण्डहर कमरे की छत अत्यधिक जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। इसका किराया प्रतिमाह 12/– रु. है। भू-स्वामी एक वर्ष में 12/– रु. तक की लागत एक छत एवं भवन के नवीनीकरण की अनुमति देता है जो एक निर्माण सम्बन्धी मजदूर को एक दिन की मजदूरी के लिये भी पर्याप्त नहीं है। बेचारे मुन्सिफ को जो उस छत के नीचे, जहाँ कि पुराना प्लास्टर गिर पड़ने की दुर्घटनाएं पहिले ही हो चुकी हैं, किसी भी समय अपने सिर

पर छत के गिरने का खतरा रहता है और इस कारण उसके मस्तिष्क में लाचारी, खोच तान एवं तनाव की स्थिति बनी रहती है।

न्यायालय कक्ष जीर्ण-शीर्ण

8. एक ओर बेदखली सम्बन्धी कार्यवाहियों का मुकाबला करना और ऊपर से छत गिरने का खतरा होने के कारण बेढंगे माहौल वाले, अन्धेरे, धुन्धले, अव्यवहारिक, अप्रचलित, प्राचीन जीर्ण-शीर्ण कमरे में, जो किसी न्यायालय के लिये परिछाई भी नहीं हो सकती, कोई व्यक्ति गम्भीर प्रकृति के न्यायिक कर्तव्य का पालन किस प्रकार कर सकता है ? यह विडम्बना उलझाने वाला पेचीदगीपूर्ण है—जिसकी ओर उच्च न्यायाधिकारी या तो मौन हैं या उदासीन।

पीठासीन अधिकारी अपमानित

9. खेतड़ी में बार एसोसियेशन की बैठक की समाप्ति पर, बार के एक वरिष्ठतम सदस्य ने, जो कि अब सक्रिय विधि व्यवसायी भी नहीं है, वहां भर्ती किये गये तथा मुन्सिफ के रूप में कार्य कर रहे व्यक्ति की खिल्ली उड़ाते हुए, कविता पाठ करके जले पर नमक छिड़कने का कार्य किया था। इस कठिन समय में मैंने उन व्यक्तियों के प्रति जो समाज के सदियों से दबे हुए, दबाये गये, तिरष्कृत, पृथक्-पृथक् रूप से सताये हुए अंग हैं, और जिन्हें पूर्व में कभी भी शिक्षा प्राप्त नहीं करने दी गई और सेवाओं में हिस्सा नहीं मिला और जिनके साथ अस्पृश्यता का व्यवहार किया गया, कटुता व अपमानजनक सम्बोधन के लिये रोका। राज्य सेवाएं मात्र तथाकथित उच्च वर्ग में जन्में लोगों के लिये विशेषाधिकार मानी जाती थी। मुन्सिफ अत्यधिक संकट महसूस कर रहा था और यदि मैं उसे तुरन्त सांत्वना न देता तो वह मूर्छित हो जाता। क्या अनुसूचित जाति को तिरष्कार करना सामाजिक न्याय है ?

वित्तीय स्वायत्तता आवश्यक

10. जिला मुख्यालयों पर स्थित न्यायालयों को छोड़कर, अधिकांश मुन्सिफ न्यायालय भू-स्वामियों के किराये के परिसर में कार्य कर रहे हैं क्योंकि राज्य, अल्प वित्तीय संसाधनों के कारण और साधारणतया न्यायपालिका की वित्तीय आवश्यकताओं के प्रति हृदयहीनता और उदासीनता के कारण प्रारम्भिक रूप से सरकारी भवनों की व्यवस्था करने में असमर्थ रहा है। इसको केवल "न्यायपालिका के लिये वित्तीय स्वायत्तता" और "मुख्य न्यायाधिपति की वर्चस्वता" को बहाल करके ही सुधारा जा सकता है।

जहां तक पीठासीन अधिकारियों को आवास-सुविधा का सम्बन्ध है, लगभग अस्सी से नब्बे प्रतिशत पीठासीन अधिकारी, जिससे राजस्थान न्यायिक सेवा संवर्ग का गठन होता है, भू-स्वामियों की कृपा, सनक एवं दबाव पर किराये के आधार पर निजी मकानों में रहने के लिये मजबूर हैं। कुछ भू-स्वामी तो इस किरायेदार भू-

स्वामी सम्बन्धों का दुर्पयोग कर सर्वाधिक सिद्धान्तहीन साबित हो रहे हैं और न्यायिक अधिकारियों की छवि उनकी जानकारी या मौन स्वीकृति के बिना ही नष्ट कर रहे हैं और इस पर भी बेचारा मुन्सिफ, ऐसी स्थिति से "भ्रष्ट" के रूप में भारोपित किया जाता है।

अस्सी प्रतिशत किराये के परिसर में निवास करते हैं

11. उपर्युक्त आंकड़ों के गहन तुलनात्मक अध्ययन से यह प्रतीत होगा कि लगभग समान रैंक की प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारी, चाहे वे राजस्थान प्रशासनिक सेवा में हों या राजस्थान पुलिस सेवा में, अनिवार्यतः अपने निवास हेतु सरकारी आवास-सुविधा प्राप्त कर लेते है। इस मामले में राजस्थान न्यायिक सेवा के अस्सी प्रतिशत अधिकारी "विपन्न" निर्बल व दयनीय किन्तु राजस्थान प्रशासनिक सेवा तथा राजस्थान पुलिस सेवा के इतने ही प्रतिशत अधिकारी "सम्पन्न" "सबल" व "प्रभावशाली"। यही दयनीय स्थिति कुछ तमिलनाडू जैसे अपवादी राज्यों को छोड़कर समस्त भारतीय न्यायपालिका की है।

न्यायिक अधिकारी बनाम प्रशासनिक अधिकारी

12. इस प्रकार यह सर्व विदित है कि आवास-सुविधाओं के मामलों मे लगभग एक ही संवर्ग की प्रतियोगितात्मक तुलना में न्यायिक अधिकारी "विपन्न" हैं और प्रशासनिक अधिकारी "सम्पन्न"। आवास ही क्यो वाहन व अन्य सुविधाओं मे भी यही असमानता है।

निगरानी

13. न्यायिक सोपान के सबसे निम्नतम व्यक्ति की शोचनीय अवस्था का अन्दाजा तब तक नहीं लगाया जा सकता जब तक कि इस बारे में आगे विचार नही कर लिया जाय कि मुन्सिफ विभिन्न निरीक्षण-अधिकारियों या उच्च न्यायिक अधिकारियों की निगरानी में काम करता है। प्रारम्भ में, अपर सिविल न्यायाधीश को कुछ सिमित अपीली शक्तियां मिली हुई हैं जहा वह मुन्सिफ द्वारा किये गये कार्य की प्रकृति के बारे में टिप्पणिया दे सकता है। इसके बाद जिले के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को निश्चित सीमा तक उस पर पर्यवेक्षणीय शक्तियां प्राप्त हैं। इसके पश्चात् वह अपर जिला न्यायाधीश तथा अन्तिम रूप से जिले के जिला न्यायाधीश के अधीन होता है जो कि सभी उद्देश्यों एवं प्रयोजनों के लिये उसका न्यायिक अधिकारी होता है।

सतर्कता

14. इसके पश्चात् उच्च न्यायालय का रजिस्ट्रार (सतर्कता) रजिस्ट्रार की अधीक्षण एवं प्रशासनिक शक्तियो के अलावा, सतर्कता बरतने की शक्तियों का प्रयोग करता है। तथापि, यह अन्त नहीं है क्योंकि अधीक्षण एवं निरीक्षण की शक्ति के

परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों दृष्टि से उसके कार्य निर्धारण की जांच तथा निर्धारण उच्च न्यायालय के प्रशासनिक न्यायाधीश की आरक्षित शक्तियां रखने वाले जिले के उच्च न्यायालय के निरीक्षणकर्त्ता न्यायाधीश द्वारा और अन्ततः सर्वोच्च सत्ता, राज्य के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा किया जाता है। कोई भी "भस्मासुर" बन, दयनीय, असहाय मुन्सिफ को जला कर भस्म कर सकता है।

चारों तरफ तोपें

15. जहां तक न्यायिक कार्य का सम्बन्ध है, सिविल न्यायाधीश से लेकर जिले के अपर जिला न्यायाधीश, जिला न्यायाधीश, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश और कभी कभी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश तक, किसी भी अपीली फोरम का पुनरीक्षण फोरम द्वारा कार्य की क्वालिटी के बारे में टीका-टिप्पणी की जा सकती है।

उपर्युक्त शुद्ध और साधारण गणना से यह प्रतीत होगा कि मुन्सिफ चारों ओर तोपों के साथ "धुआं और आग" से घिरा हुआ है। इस दुखदायी स्थिति का वास्तविक वर्णन नहीं किया जा सकता क्योंकि "जाके फटी न पैर बिवाई वो क्या जाने पीर पराई" वाली कहावत वहां चरितार्थ होती है। इसके अलावा, कोई "सुविधा सम्पन्न" किसी "विपन्न" की ज्वलन्त समस्याओं को कैसे समझ सकता है।

गुमनाम शिकायतें

16. कभी-कभी किसी प्रभावशाली अधिवक्ता की, जो सभी आदेश अपने पक्ष में देने के लिए जोर देता है और जो यह चाहता है कि मुन्सिफ न्यायालय में मुन्सिफ उसकी इच्छाओं के अनुरूप नृत्य करे, तनिक भी नाराजगी का परिणाम मिसाईल छोड़ने के रूप में सामने आता है जिसमें गुमनाम शिकायतें, उसके विरुद्ध उच्चाधिकारियों के पास शिष्टमण्डल भेजना और किसी नकली संगठन का प्रायोजित संकल्प भी होता है। यह सही है कि कुछ सीमा तक तो बार का बर्ताव उचित होता है किन्तु कुछ अपवाद तो सभी जगह होते हैं, चाहे बार हो या बैंच।

सब दुखः कोई सुख नहीं

17. इस कीर्तिमान को सुरक्षित रखने के लिए, जबकि उच्चतम न्यायपालिका के न्यायाधीशों को भी इस प्रकार कीचड़ उछालने और ब्लैक-मेल की तकनीकी का शिकार बनाया जा रहा हो जिसके कारण उनमें से कुछेक तो कभी कभी ऐसी दुष्टता के लिए समर्पित या अभ्यस्त हो जाते हैं और अपने अन्य भाइयों के विरुद्ध ऐसे अभियानों को चुपचाप सहन कर लेते हैं, एक नये मुन्सिफ की पीड़ा और स्थिति कितनी दयनीय हो सकती है, इस बात से सहज ही आंखों में "आंसू" आ सकते हैं। उस स्थिति में एक मुन्सिफ मजिस्ट्रेट को सिवाय रंज के कोई खुशी नहीं मिलती।

चन्द्रचूड़ शिकायत अभियान से अप्रसन्न

18. कठिनाइयों की कहानी कहने के लिए, उसकी परेशानी, खिन्नता, अपमान, दबाव की कष्टकारी स्थिति एवं पीड़ाओं का यहां अन्त नहीं होगा क्योंकि उसकी निष्पक्षता, स्वतन्त्रता या अनुगृहित करने में विफलता से अप्रसन्न कुछ मुकदमेबाज, रिश्वत, भ्रष्टाचार, पक्षपात, भाई-भतीजावाद तथा व्यभिचार की घटनाओं का आविष्कार करके समाचार पत्रों में अभियान प्रारम्भ कर उसे ब्लेक-मेल करना शुरू कर देंगे। भारत के मुख्य न्यायाधिपति श्री चन्द्रचूड़ ने अपनी जयपुर यात्रा के दौरान पीठासीन अधिकारियों के विरुद्ध किसी भी बहाने से शिकायतें करने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति पर चिन्ता प्रकट की थी जो उनके अनुसार राजस्थान में भी एक खतरनाक अनुपात में थी। विश्वनीय सूचना से ज्ञात होता है कि भारत के उच्चतम न्यायालय के उच्चतम न्यायाधिपति द्वारा चिन्ता प्रकट करने के बावजूद भी कीचड़ उछालने और ब्लेक मेलिंग का अभियान समाप्त नहीं हुआ है। पूर्णतः विश्वसनीय सूत्रों से ज्ञात हुआ था कि ऐसे आपत्तिजनक तरीकों और अनुचित तकनीकी को निरुत्साहित करने के बजाय सोपान की शिखर पर बैठे अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों द्वारा जानबूझकर या बिना जाने इसे प्रोत्साहन दिया गया है। इससे महत्वाकांक्षा की वही बात सिद्ध होती है जो स्तम्भ-लेखक थी, श्री अरुण शोरी ने अपने मुख्य लेख "न्यायाधीशों के निर्णय" में कही थी। यदि ऊंचे लोग अपने भाईयों की बदनामी वाले ऐसे अभियान को उभरने न देने का कोई गंभीर प्रयत्न किये बिना स्वयं को इसके सम्बद्ध रखते हैं तो मुन्सिफ मजिस्ट्रेट की जो कि ऊंचे लोगों के बीच में "बलि का बकरा" बना हुआ है या उनकी क्रोधीली खिन्नता का शिकार बनता है; कितनी दयनीय स्थिति हो सकती है, इसकी कल्पना करना कठिन है।

बार बार स्थानान्तरण

19. ऐसा न्यायिक अधिकारी, एक लोक प्रसिद्ध हिन्दू विधवा की तरह, जिसकी जुबान बन्द रहती है सार्वजनिक रूप से उनका खण्डन करके न तो विरोध कर सकता है और न ही वह यह जानता है उच्चतर न्यायिक अधिकारियों के कानों में, जो उसके आस-पास के व्यक्तियों की बातों पर ध्यान देते हैं, चाहे वे सत्यनिष्ठ हों या नहीं, कितना जहर उगला जा रहा है और वे उसका सत्यापन या जाच किये बिना और प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों के स्पष्ट उल्लंघन तथा घोर अतिक्रमण की उपेक्षा करते हुए उसके विरुद्ध अपनी विचारधारा बना लेते हैं। बेचारे मुन्सिफ को इस गम्भीर स्थिति का पता तब चलता है जब उसे अनुचित समय पर स्थानांतरण द्वारा राज्य के पूर्व से पश्चिमी और उत्तर से दक्षिणी में, एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैंक दिया जाता है लेकिन तब उन गलत फहमियों को जिन्होने उसकी मानसिक शान्ति पहिले ही भंग कर दी है और जिसके कारण वह लाचारी एवं खींचतान, मानसिक परेशानियों और पीड़ाओं से घिरा रहता है, को स्पष्ट करने में अधिक विलम्ब हो जाता है। अस्थायी रूप से कार्य करने वाले उच्चाधिकारी जो केवल

स्थानान्तरणों के ऐसे मामलों में ही सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं, इस व्यवस्था का शोषण करते है।

इस न्याय प्रयास के दौरान गुजरात उच्च न्यायालय के स्थायी आदेश और नियम जो स्वयं मेरे द्वारा वहां के मुख्य न्यायाधिपति से प्राप्त किये गये थे, पेश किये गये थे जिसमे कि यहां भी स्वस्थ मानदण्ड बनाया जा सके और उन सभी न्यायाधिपतियों को विभिन्न समितियों में, सम्मिलित करके सोद्देश्य पदोन्नति और स्थानान्तरण को विनियमित किया जा सके। दुर्भाग्यवश, न्यायिक प्रशासन को व्यवस्थित करने के सभी प्रयत्नों के बावजूद भी गुजरात के वे मानक नियम और परिपत्र न्यायाधीशो को भी नही भेजे गये और उनके अनुसार कभी काम भी नहीं हुआ। बेचारे मुन्सिफ मजिस्ट्रेट अब इस बात पर आश्चर्य प्रकट कर रहे हैं कि क्या गुजरात, कर्नाटक के पैटर्न पर विभिन्न समितियां बनाये जाने का कभी कोई महत्व-पूर्ण उद्देश्य पूरा होगा। कब और कैसे, यह बिलियन डालर का प्रश्न है? यदि राजनेता सत्ता का विकेन्द्रीकरण नहीं चाहते तो क्या न्यायिक उच्च सत्ता उनसे प्रेरणा लेकर सत्ता का केन्द्रीयकरण करती ही रहेगी?

ईमानदारी–न्यायिक अधिकारी की आत्मा

उपर्युक्त बेलगाम आरोपों से न्यायिक मजिस्ट्रेट की प्रतिरक्षा का कदापि यह अर्थ नहीं है कि सभी शिकायतें झूठी हैं और न ही यह अर्थ है कि उन्हें अदक्षता या बेइमानी के लिए लाईसेंस दिया जा सकता है। इसके विपरीत जैसा कि मैंने उम्मेदसिंह बनाम बहादुरसिंह के मामले में विचार व्यक्त किया था कि ईमानदारी न्यायाधीश की आत्मा होती है, मैंने इसे निम्नलिखित असंदिग्ध, स्पष्ट एवं खुले शब्दों में महत्त्व दिया है :—

"न्याय" का चिह्न का प्रतीक "कांटा" या "तराजू" है। न्यायाधीश से सावधानीपूर्वक इसे सन्तुलित बनाये रखने और किसी भी कीमत पर इसे झुकने न देने की अपेक्षा की जाती है। "न्याय के कांटे या न्याय की तराजू" को "सिक्कों के भार" से झुकाना किसी "न्यायाधीश" तथा "न्याय" का अत्यधिक आत्मघात है। किसी न्यायाधीश के विरुद्ध यह सबसे बुरा कलक है। "स्वतन्त्रता" न्यायाधीश का "हृदय" और "ईमानदारी" उसके "फेफड़े" होते हैं।

किसी न्यायाधीश के लिए—यदि गति व आंकड़ों में कमी हुई तो कुछ नही गया खोया, यदि सही न्याय गया तो बहुत कुछ गया, किन्तु यदि स्वतन्त्रता, ईमानदारी या निष्पक्षता चली गई तो सब कुछ "चौपट हो गया" तब न्याय के मन्दिर अन्याय के कमाई खाने बन जावेंगे।

चाटुकारों को निरुत्साहित करो

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए मैं यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि बार दी या अन्यथा प्राप्त वास्तविक शिकायतों का स्वागत किया जाना चाहिये, जैसा कि

किसी दार्शनिक ने ठीक ही कहा है कि "वे हमें सच्चे दिल से प्यार करते हैं जो हमारा सुधार करते हैं"। इसलिये न्यायिक मजिस्ट्रेट को किसी शिकायतकर्त्ता के प्रति प्रतिशोध या प्रतिकार की भावना नहीं रखनी चाहिये और न उसके अपने इर्द-गिर्द चाटुकारों या चापलूसों को एकत्रित होने देना चाहिये। जिस बात पर मैंने आपत्ति की है वह है, अत्याचार, ब्लेक मेलिंग, दुष्टता और उसे नीचे झुकाने के प्रयत्न और इन सबसे मैंने न्यायिक मजिस्ट्रेट को बचाने का प्रयास किया है।

वेरी आयोग–पदोन्नति के कम अवसर

20. मुन्सिफ के लिये पदोन्नति के अवसार अत्यधिक कम एवं अपर्याप्त हैं जैसा कि भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति श्री वी. पी. वेरी की अध्यक्षता मे गठित राजस्थान वेतन आयोग द्वारा उल्लेख किया गया है :—

"11-3-13. मुन्सिफ के सिविल न्यायाधीश के पद पर पदोन्नति के अवसर 4 प्रतिशत हैं और सिविल न्यायाधीश से मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पद पर 300 प्रतिशत हैं। निम्नलिखित चार्ट से स्थिति स्पष्ट हो जायगी।

	133%	40	राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा
29%	300%	30	मुख्य न्यायिक अधिकारी
	4%		10 सिविल न्यायाधीश
		272	मुन्सिफ मजिस्ट्रेट

वेतन भी मामूली है। यह उद्योग, खान या बैंक के किसी संगठित सेक्टर में कुशल कामगार को मिलने वाली मजदूरी से भी कम है।

वेतन आयोग

21. वेतन आयोग ने यह सिफारिश की थी।

11–3–27

(i) वेतनमान :

क. सं.	पद	वर्तमान	सिफारिशी वेतनमान
1	मुन्सिफ	750–1350	1100–1700
2	मुन्सिफ वेतनमान | चयन		1380–2100
3	सिविल न्यायाधीश	930–1500	समाप्त
4	अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट		1380–2100
5	मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट	1250–1700	1650–2250

(ii) रु. 1380–2100 का चयन वेतनमान 15 वर्ष की सेवा पूरी कर लेने पर सभी मुन्सिफो को अनुज्ञेय होगा बशर्ते कि उनका सेवा-अभिलेख सन्तोषप्रद रहा हो।

(iii) सिविल न्यायाधीशों का संवर्ग समाप्त हो जायेगा।

(iv) अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों का नया संवर्ग बनाया जाएगा। सिविल न्यायाधीश के पद का ग्रेड अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की हैसियत में ऊंचा किया जायेगा। अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों के और पदों का ग्रेड भी समान संख्या में मुन्सिफों के पदों को समाप्त करके ऊंचा किया जायेगा। इन पदों की सही संख्या सरकार द्वारा राजस्थान उच्च न्यायालय से परामर्श करके अवधारित की जायेगी।

(v) एक स्तर से दूसरे स्तर तक पदोन्नति के लिये प्रत्येक मामले में कम से कम पांच वर्ष की सेवा आवश्यक होगी। इसी प्रकार राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा में पदोन्नति के लिये मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में पांच वर्ष की सेवा आवश्यक होगी।

सरकार की उदासीनता

22. न्यायमूर्ति बेरी ने कहा :—

"मैं समान वर्दी भत्ते, पुस्तकालय भत्ते और प्रेक्टिस बंदी भत्ते की मांग पर विचार करने के लिए तैयार नहीं हूं। इसी प्रकार राजस्थान न्यायिक सेवा के अधिकारियों की सेवा निवृत्ति की आयु भी अन्य राज्य सेवाओं के अधिकारियों से ऊंची नहीं रखी जा सकती।"

सरकार ने सिफारिश अभी तक स्वीकार नहीं की है। किन्तु माननीय मुख्य न्यायाधिपति के अथक् प्रयासों के प्रति हम कृतज्ञ हैं कि उन मुन्सिफों के बीच एक नवीन संवर्ग का सृजन किया गया है जिन्हें चयन ग्रेड दी जा रही है। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों और सत्र न्यायाधीशों के बहुत से नवीन पद भी सृजित किये गये हैं।

कोई इलेक्ट्रोनिक कम्प्यूटर नहीं

23. कम्प्यूटरों और इलेक्ट्रोनिक के इस अंतरिक्ष युग में न्यायिक अधिकारियों को कोई भी आधुनिकतम वैज्ञानिक तकनीकी साधन उपलब्ध नहीं कराये गये हैं। विधि पुस्तकालयों के लिए कम्प्यूटर अनुपलब्ध हैं। डिक्टाफोन और विद्युत टंकण यंत्रों की जानकारी नहीं है। यहां तक कि केलकुलेटर, जो टेक्नोलोजी के सभी छात्रों के पास और छोटे से छोटे वाणिज्यिक संस्थानों में भी उपलब्ध हैं, के लिए भी न्यायिक अधिकारियों को इन्कार कर दिया जाता है। कुछ को छोड़कर उन्हें टेलीफोन जैसे संचार माध्यम से भी वंचित रखा जाता है। उच्च न्यायालय की सीट और खण्डपीठ के बीच सम्पर्क के लिए कोई टेलेक्स व्यवस्था नहीं है और बेचारा न्यायिक अधिकारी तो यह बात तब तक जान ही नहीं सकता कि नवीनतम निर्णय क्या हुआ है जब तक कि वह ला जर्नलों में कभी कभी एक वर्ष पश्चात् या कभी कभी कुछ महीनों बाद प्रकाशित नहीं हो जाता। धन की कमी से वह न तो महत्त्वपूर्ण ला जर्नल मंगा सकता है और न ही अच्छा पुस्तकालय ही बना

सकता है। इस प्रकार न्यायिक अधिकारियों को मजबूर होकर पुरानी, अप्रचलित तकनीकी ही काम मे लेनी पड़ती है जो अपनी उपयोगिता खो चुकी है, जिसके कारण उनकी कुशलता और कार्य की प्रगति ही समाप्त हो गई है क्योकि वे मात्र समय नष्ट करने वाली हैं।

न स्थान न लेखन सामग्री–अभाव ही अभाव

24. कुछ समय पूर्व जब मैंने जब जयपुर सिटी में सांगानेरी दरवाजे पर स्थित मुन्सिफ न्यायालयों का निरीक्षण किया तो मैंने पाया कि व ां पत्रावलियां रखने के लिए उचित और पर्याप्त आलमारियां नही थी और पत्रावलिया फर्श पर बिखरी पड़ी थी। कर्मचारियों के बैठने के लिए कोई अलग स्थान नही था। यह जानकर आश्चर्य और दुःख भी हुआ कि अभियुक्तों को सम्मन करने के लिए मुद्रित फार्म नही थे और जुर्माना जमा करने के लिए रसीद पुस्तकें भी उपलब्ध नही थी। वहां पुलिस को सुपुर्द किये जाने वाले अभियुक्तों हेतु न तो कोई गार्ड रूम था और न ही न्यायालय के कर्मचारियों के लिए कोई शौचालय या अन्य आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध थी। राज्य की राजधानी में मुन्सिफ मजिस्ट्रेट मूल-भूत आवश्यकताओं और सुविधाओं के अभाव मे इस प्रकार दुर्व्यवस्था में कार्य कर रहे थे। इस स्थिति में दूर गांवों में या राज्य के दूरस्थ नगरों में करनेकार्य वाले न्यायिक अधिकारियों की कष्टदायक दयनीय व भयावह स्थिति की सहज ही कल्पना की जा सकती है।

कोई मुद्रणालय नहीं

25. हमें न्यायपालिका के लिए अलग मुद्रणालय क्यों नही मिल सकता ? यदि विश्व विद्यालय अपना प्रेस रख सकते हैं तो न्यायिक प्रशासन इससे वंचित क्यो ?

अत्यधिक कार्यभार

26. मजिस्ट्रेट अत्यधिक कार्यभार से कितने दबे हुए है इसकी भली प्रकार जानकारी हाल में 'इन्स्टीट्यूट ऑफ क्रिमनोलोजी' द्वारा,[1] दिल्ली के मजिस्ट्रेट न्यायालय के किये गये अध्ययन में दी गई है :

"यह देखा गया कि एक ही समय तीन मुकदमों पर कार्यवाही की जा रही थी, एक ओर तो न्यायिक अधिकारी को एक मुकदमें में कार्यवाही करते देखा गया था; दूसरी ओर प्रोसीक्यूटर और एडवोकेट दूसरे मुकदमें में व्यस्त थे और तीसरी ओर न्यायालयो का पेशकार तीसरे मामले मे व्यस्त था। यह भी देखा गया कि न्यायाधिकारियों की अनुपस्थिति में भी मुकदमों का निपटारा होता है ...... सम्बन्धित पेशकार ने मनमाने ढंग से मुकदमे स्थगित कर दिये ..... यह भी देखा गया कि

1. जर्नल आफ बार कौंसिल आफ इण्डिया पृ. 630 खण्ड 1 (3) 1982 बुक रिव्यू डिले इन डिस्पोजल आफ क्रिमिनल केसेज इन दि मेट्रोपोलिटन एण्ड लोअर कोर्टस इन देहली।

जिन व्यक्तियों ने पेशकारों और चपरासियों को रिश्वत दी उन्होंने सरलता से स्थगन प्राप्त कर लिया जबकि अन्य व्यक्ति न्यायालय के बाहर असहाय से प्रतीक्षा करते रहे। खेद की बात यह है कि दिल्ली के मजिस्ट्रेटों के न्यायालयों में अपनायी गयी "सब के लिये मुफ्त" निपटान प्रक्रियाओं के बावजूद भी देरी की समस्या में कोई सुधार नहीं देखा गया।"

एक मुन्सिफ से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रति वर्ष 250 प्रतिवादित मूल मुकदमों का निपटारा करे। पक्षकारों द्वारा किसी न किसी बहाने से प्राप्त किये गये स्थगनों की बाढ़ के कारण उसे पत्रावलियों का भारी बोझा 'घर में कार्य करने' हेतु ले जाना पड़ता है और फिर भी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे कठोर संघर्ष करना पड़ता है। निपटान धीमी गति से होता है क्योंकि दोनों में से कोई भी पक्षकार और बहुधा प्रतिवादी या अभियुक्त मुकदमें में देरी करने में रुचि रखते हैं। नया मुन्सिफ इतना अनुभवहीन होता है कि वह दृढ़निश्चयी, कुशल और पुराने अनुभवी एडवोकेट और न्यायालय के कुशल पक्षकारों के सामने स्थगन देने से इन्कार करने का साहस नहीं जुटा सकता, क्योंकि उनकी चढ़ी हुई भृकुटी से ऐसा करना उसे महंगा पड़ सकता है। तब उसके कानों में सदैव यह उपदेशात्मक प्रतिध्वनि गूंजती रहती है "आंकड़ों के चक्र में गुणवत्ता का हनन मत करो" और तो भी आकड़े ही बहुधा उसके 'गोपनीय प्रतिवेदनों' का भी निर्णय करते हैं।

गत कई वर्षों के दौरान मैंने अपने निरीक्षणों में यह देखा कि आंकड़ों में निर्धारित मानक से अधिक निपटान बतलाया गया है। हमारा स्वयं का निपटान भी काफी अच्छा रहा है अर्थात् जैसा सूचित किया गया है, कई वर्षों में लेखक ने लगभग 2000 से 3000 मुकदमें प्रति वर्ष निपटा दिये थे तो भी बकाया मामलों की और देरी की समस्या विकराल रूप धारण कर रही है। अतः बेचारे मुन्सिफ और न्यायिक मजिस्ट्रेट को ही उसके लिए दोष क्यों दें ?

मानसिक रूप से सताये हुए, शारीरिक रूप से टूटे हुए, भौतिक रूप से अवरुद्ध

27. न्यायिक सोपान के निम्नतम संवर्ग में दबे हुए इस प्रकार के मानसिक रूप से सताये हुए और शारीरिक रूप से टूटे हुए तथा भौतिक रूप से अवरुद्ध, अधि--कारियों से आप न्याय की त्वरित और प्रभावी व्यवस्था की आशा कैसे कर सकते है ? अतः यह न केवल आवश्यक है बल्कि लगभग अनिवार्य और अपरिहार्य आवश्यकता भी है कि यदि राष्ट्र न्यायिक अधिकारियों के इस असहाय वर्ग से त्वरित न्याय की आशा करता है तो उनकी दशा सुधारने और उपर्युक्त शारीरिक और मानसिक यंत्रणा और तनाव से उनको छुटकारा दिलाने और मुक्त करने के लिए गंभीरता से कुछ करना होगा।

विचारण न्यायाधीश न्यायपालिका की महत्वपूर्ण नींव है

28. यह नही भूलना चाहिये कि विचारण न्यायाधीश न्यायपालिका क सम्पूर्ण प्रणाली की नींव है ।[1] मैं इस दन्तकथा का खण्डन करूंगा कि सफल न्याय प्रणाली केवल उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से ही प्रारंभ होती है क्योंकि मैं यह अनुभव करता हूं कि वे न्यायिक सोपान के निम्नतम अधिकारी ही हैं जो कुशल और सफल न्याय प्रणाली के वास्तविक स्तम्भ आधार और नीव हैं। न्यायमूर्ति हैन्ना (आयरिश फ्री स्टेट)[2] ने कहा है :–

"कभी-कभी उच्चतर न्यायालयों के न्यायाधीश सोचते हैं और मैं भी यह कहने को बाध्य हूं, कभी कभी स्वयं मैंने भी यह सोचा है कि कानून और व्यवस्था की पुनः स्थापना उस बात पर निर्भर करती है जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने गंभीर श्रेणी के अपराध के संबंध में कार्यवाही करने मे की है। किन्तु अन्त में मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि कानून और व्यवस्था की स्थापना का वास्तविक आधार निम्नतम श्रेणी के न्यायाधीशों की सक्षमता, ईमानदारी और विश्वसनीयता है।

नींव का पत्थर–ट्रायल कोर्ट–खन्ना

29. न्यायालयों के विभिन्न पदों की महत्ता के तुलनात्मक मूल्यांकन के सम्बन्ध में प्रख्यात न्यायमूर्ति श्री एच. आर. खन्ना की अध्यक्षता मे भारत के विधि आयोग के सतहतरवें प्रतिवेदन का निष्कर्ष भी इसी प्रकार का है—

"यदि न्यायिक प्रशासन में अपनी भूमिका निभाने वाले विभिन्न कार्यकर्ताओं के महत्व का मूल्यांकन किया जाए तो विचारण न्यायालयों के न्यायाधीशों को शीर्षस्थ स्थिति देनी पड़ेगी। वही हमारी न्यायप्रणाली का आधारभूत व्यक्ति है जो न्याय के प्रबन्ध में अत्यधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली भागीदार है। अधिकतर जनता विचारण न्यायाधीश के ही सम्पर्क में, या तो पक्षकार के रूप में, या साक्षी के रूप में आती है, अपील न्यायाधीश के साथ ऐसा नहीं होता। जनसाधारण में न्यायिक प्रणाली की छवि विचारण न्यायाधीशों द्वारा ही बनाई जाती है और तत्पश्चात् यह उनके बौद्धिक, नैतिक और वैयक्तिक गुणों पर निर्भर करती है।

विचारण न्यायाधीश का वैयक्तिक गुण महत्वपूर्ण

30. विचारण न्यायाधीश के व्यक्तित्व से विधि द्वारा, न कि मानव द्वारा, स्थापित सरकार में कोई अन्तर नही पड़ता इस बात पर विचारण न्यायाधीश की महत्ता पर जोर देते हुए और इस भ्रांत का खण्डन करते हुए विधि आयोग ने यह

1. भारत के विधि आयोग की 77वी रिपोर्ट–डिले एण्ड एरियर्स इन ट्रायल कोर्ट्स नवम्बर, 1978 पृ. 73
2. भारत के विधि आयोग की 77वी रिपोर्ट डिले एण्ड एरियर्स इन ट्रायल कोर्ट्स नवम्बर, 1973 पृ. 6

स्पष्ट करने का कष्ट किया है कि यह धारणा वास्तविकता से दूर है। उन्होंने टिप्पणी की है:—

"विचारण न्यायाधीश की योग्यता, दक्षता और व्यवहार कुशलता से या उनके न होने से उसके द्वारा कार्यवाही किये जा रहे मुकदमों के परिणाम बदल सकते हैं। यह ध्यान में रखा जाना है कि विधि न्यायालयों में कार्य उस नवीन परिस्थितियों को, जो आज के जटिल समाज में मानवीय संबंधों में उत्पन्न हो सकती हैं, विभिन्नता तक ही सीमित नहीं है। किसी भी न्यायालय, न्यायाधीश द्वारा बनाये गये पूर्वोदाहरण, इन परिस्थितियों में न तो मार्गदर्शन कर सकते हैं और न कोई नियत-सूत्र इनका हल प्रस्तुत कर सकता है। ऐसी परिस्थितियों में, जिनमें न तो कोई मार्गदर्शन सिद्धान्त और न ही पूर्वोदाहरण हैं, न्यायाधीश के वैयक्तिक गुण और योग्यता ही उन्हें स्पष्ट कर सकती है"।

न्यायाधीशों का कार्य कठिन है–कार्डोजो

31. न्यायमूर्ति कार्डोजी ने विचारण न्यायाधीशों के कार्य के अपने लाक्षणिक वर्णन में यह टिप्पणी की है, "जब रंग मेल नहीं खाते, जब अनुक्रमणिका के संदर्भ काम नहीं करते, जब कोई निर्णायक पूर्वादाहरण नहीं हो, तब न्यायाधीश का जटिल कार्य प्रारंभ होता है।"

अधिकांश मुकदमें, अन्तिम–विचारण प्रक्रम पर

32. विचारण न्यायालय के महत्त्व को निर्विरोध बनाने के लिए विधि आयोग ने उच्चतर न्यायालय की भ्रांत धारणा का फिर खण्डन किया तथा यह राय व्यक्त की :—

"विचारण न्यायालय के निर्णयों की अन्तिम प्रकृति के विषय में धारणा, जिसे अपील में संशोधित किया जा सकता है, या जिसे "उच्चतर न्यायालय की कल्पना" कहा गया है, स्थिति की वास्तविकता की अवहेलना करती है। अपील के अधिकार के बावजूद भी ऐसे बहुत से मुकदमें हैं जिनमें अपील नहीं की जाती। इसके अलावा अपील न्यायालय, जिनके समक्ष केवल लिखित अभिलेख ही रहता है, सामान्यतः विचारण न्यायाधीश, जिन्होंने साक्षियों की चेष्टाएं देखी हैं, द्वारा साक्षियों की की गयी साक्ष्य के मूल्यांकन में हस्तक्षेप करने में रुचि नहीं लेते हैं। यह कहा गया है कि अपील न्यायालय मुद्रित अभिलेख के आंशिक शून्य में काम करते हैं। आशुलिपिक द्वारा किया गया प्रतिलेखन, वाणी के भाव और बोली में झिझक, जो वस्तुतः वाक्य का अर्थ उस अर्थ से विपरीत प्रकट करती है जो मात्र शब्द व्यक्त करते हैं, को उद्धृत करने में असफल रहता है। मौखिक परिसाक्ष्य का सर्वोत्तम और शुद्धतम अभिलेख सुखाये हुए आड़ू की तरह है, जिसमें सुखाये जाने से पूर्व न तो स्वाद होता है और न सुगंध।"

विचारण न्यायालयों का पूर्वापेक्षित

33. आंध्रप्रदेश उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति मधुसूदन राव ने विचारण न्यायाधीशों की भूमिका पर जोर देते हुए कहा है[1] :—

"हमारी न्यायिक प्रणाली मे विचारण न्यायाधीश की भूमिका को और अधिक महत्व देने की आवश्यकता है। वे विचारण न्यायालय ही हैं जो प्राय: सभी न्याय चाहने वालों का प्रथम आश्रय स्थल होते हैं और न्यायिक प्रशासन की प्रणाली मे सामान्य व्यक्ति का विश्वास, अधिकतर विचारण न्यायाधीश द्वारा प्रस्तुत छवि पर ही निर्भर करता है। जो छवि प्रस्तुत की जा सकती है वह न्यायाधीश के बौद्धिक, नैतिक और वैयक्तिक गुणों पर निर्भर करती है।

न्यायमूर्ति के. के. मैथ्यू ने वर्ष 1979 में कोचीन में अखिल भारतीय विधि सेमीनार में दिये गये अपने भाषण में कहा था "न्याय प्रशासन में विचारण न्यायाधीश की भूमिका की परीक्षा में कम से कम मस्तिष्क, हृदय और चरित्र जो कि कार्य हेतु आवश्यक हैं, की विशेषताओं का सुझाव दिया जाता चाहिये। अपन भूमिका में प्रमाणिक होने के लिए विचारण न्यायाधीश को बहुधा ईमानदार तथा वित्तीय, सामाजिक रूप से असाधारण निष्ठावान व्यक्ति होना चाहिये। सामान्यत: उसे सर्वप्रथम अर्हता के या ऐसी अर्हता के जो लोक सेवा की न्यायिक शाखा मे अद्वितीय है, विचार विमर्श में रखा जाता है। केवल एक अच्छा वकील ही जो वास्तव में एक अच्छा व्यक्ति भी हो, सारवान विचारण न्यायालय में सेवा के लिये अर्हित समझा जाता है।

न्यायिक अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रम

34. जब तक कि न्यायिक अधिकारी आवश्यक उपकरणों से सम्पन्न और कुशल न हो तब तक उनके द्वारा की जा रही कार्यवाही का निपटारा धीरे ही होगा। संविधान के अनुच्छेद 233 के अधीन उच्च न्यायालय की सिफारिश कर सरकार द्वारा सात वर्ष की वकालत के अनुभव वाले ऐडवोकेटों को जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया जाता है और अपनी नियुक्ति के तुरन्त पश्चात् वे जिला एव सत्र न्यायाधीश का कार्यभार संभालते हैं और उसके न्यायिक और प्रशासनिक कार्य का निर्वहन करते हैं। जिला न्यायाधीशों से भिन्न न्यायिक सेवा के पदों पर नियुक्तियाँ सरकार द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग और उच्च न्यायालय से परामर्श के पश्चात् संविधान के अनुच्छेद 234 के अधीन की जाती हैं। सामान्यत: राज्य द्वारा निर्मित नियमों के अधीन तीन वर्ष या अधिक की वकालत के अनुभव वाले ऐडवोकेट जिला मुंसिफो के रूप में नियुक्ति हेतु पात्र हैं। आंध्रप्रदेश राज्य मे इस प्रकार नियुक्त जिला मुंसिफों को कुछ महिनों का प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है और उनमें से किसी को

1. डाइरेक्टिव प्रिंसीपिल्स ज्यूरिस प्रुडेंस खण्ड II पृ. 283 पारस दीवान

भी न्यायिक अधिकारियों के रूप में अपने कर्त्तव्यों के पालन में इस प्रशिक्षण से कोई व्यावहारिक सहायता मिलती है।

35. न्यायिक अधिकारियों के लिए उनके द्वारा वास्तव में कार्यभार ग्रहण करने से पूर्व, गहन प्रशिक्षण की प्रणाली प्रारंभ करना आवश्यक होगा। सैद्धिक ज्ञान और जानकारी को वे अपनी वकालत की अल्प अवधि के दौरान प्राप्त करते हैं, उनमें से बहुतों को उनके कर्त्तव्यों का कुशलतापूर्वक पालन करने में समर्थ नहीं बना सकेगा। उन्हें न्यायिक प्रशासन के व्यावहारिक पहलू सिखाये जाने चाहिये। आंध्रप्रदेश राज्य में मुख्य न्यायाधिपति न्यायमूर्ति श्री मल्लादी कुप्पूस्वामी ने न्यायिक अधिका-रियों के लिए प्रशासनिक अधिकारी महाविद्यालय का प्रस्ताव किया था और यह जानकर प्रसन्नता हुई कि सरकार ने इस सुझाव को तुरन्त स्वीकार कर लिया है और कुछ दिन पूर्व ही भारत के उपराष्ट्रपति ने न्यायिक प्रशासन अकादमी का शिलान्यास किया।

36. अधीनस्थ न्यायपालिका में सभी नवनियुक्त व्यक्तियों और विद्यमान पदधारकों के लिए भी योजनाबद्ध शिक्षण आयोजित किये जाने का प्रस्ताव है। ऐसे ही संस्थान सभी राज्यों में या सम्पूर्ण देश के लिए एक संयुक्त संस्थान की स्था-पना किये जाने की वांछनीयता पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाए।
न्याय के त्वरित वितरण हेतु प्रत्येक न्यायिक अधिकारी के लिए न्यायिक प्रणाली के वास्तविक कार्यकरण का विस्तृत ज्ञान अत्यावश्यक है।

37. चूंकि राजस्थान राज्य में मुन्सिफ मजिस्ट्रेटों के पद पर्याप्त समय तक रिक्त रहने के पश्चात् ही राजस्थान न्यायिक सेवा में भर्ती की जाती है अतः कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जाता और मुन्सिफ मजिस्ट्रेटों को सीधे ही कार्य प्रारम्भ करने के लिए और कभी-कभी तो दूरस्थ स्थानों पर भेज दिया जाता है जहां वे बिलकुल अकेले होते हैं। पिछले दो बैचों को तो राजस्थान अधिकारी प्रशिक्षण विद्यालय, जयपुर में भी नहीं भेजा जा सका। प्रशिक्षण केन्द्र के निदेशक ने बतलाया कि न्याय-पालिकाओं को छोड़कर, सभी राज्य सेवाओं के अधिकारियों को प्रशिक्षित किया गया है किन्तु इस बारे में उच्च न्यायालय ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की है। सत्र न्यायाधीश या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों के मार्ग दर्शन के अधीन न्यायिक प्रशिक्षण के अभाव में न्यायिक अधिकारियों के समक्ष गम्भीर कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं क्योंकि उनमें बहुत विधिवेत्तर स्रोतों जैसे, डाकघर, लेखापरीक्षा कार्यालय तथा अन्य विभागों से भर्ती किये जाते हैं। राजस्थान में न्यायिक सेवा परीक्षा में बैठने हेतु पात्र होने के लिए अभ्यार्थी के लिए न तो कोई प्रतिबन्ध है और न ही वकील के रूप में न्यूनतम वकालत की अवधि की आवश्यकता। मुन्सिफ के लिए अर्हता में न्यूनतम तीन वर्ष की वकालत की अवधि विहित की जानी चाहिये।

38. यह सुझाव दिया गया है कि उच्च न्यायालय को नये चयन किये गये न्यायिक अधिकारियों को कम से कम दो माह का प्रशिक्षण देने का आग्रह करना चाहिये। आन्ध्रप्रदेश राज्य की भांति न्यायिक अकादमी के विचार को, जैसा कि न्यायाधिपति सुब्रमण्यम ने ऊपर वर्णित किया है, स्वागत किया जाना चाहिये और सरकार द्वारा उसे क्रियान्वित किया जाना चाहिये। यह भी वांछनीय होगा कि स्वयं न्यायिक सेवाओं के नियमों में प्रशिक्षण को अवश्य ही अनिवार्य बना दिया जाये और चयन किये गये अभ्यर्थी के लिए न्यायिक अधिकारी के रूप में कार्य ग्रहण करने से पूर्व, प्रशिक्षण को वैकल्पिक नहीं रखा जाये।

39. हाल ही में एक फौजदारी अपील[1] में, जहां जुर्म के इकबाल करने के आधार पर अपराधियों को भा. द. सं. की धारा 302 के अधीन अपराध हेतु आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया था, यह प्रकट हुआ कि मुन्सिफ मजिस्ट्रेट ने प्रतिपरीक्षा में यह इकबाल किया कि उसने, यह सुनिश्चित करने के लिए कि इकबाल जुर्म स्वेच्छापूर्वक और सत्य है, इकबाल अभिलिखित करने से पूर्व अपराधी से पूछे जानेवाले विभिन्न प्रश्नों का मुद्रित फार्म कभी नहीं देखा। हाई कोर्ट की ओर से यह टिप्पणी की गयी कि नये चयन किये गये न्यायिक अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को एक पूर्व निर्धारित शर्त बनाया जाना चाहिये और उसे न्यायिक अधिकारी के रूप में तब तक कार्य नहीं करने देना चाहिये जब तक कि वह प्रशिक्षण सफलतापूर्वक पूरा न कर ले। यह टिप्पणी अनदेखी नहीं रही व अब 1985 से मुन्सिफों को प्रशिक्षण में भेजे जाने का निर्णय लिया गया है।

विचारण न्यायालय : वास्तविक न्यायपालिका

40. विशेष ज्यूरिस्टों के उपयुक्त सुविचारित मूल्यांकन, अनुमान और निष्कर्षों के आधार पर हमें यह स्वीकार करना होगा कि जब तक विचारण न्यायाद्वारा त्वरित न्याय सुनिश्चित न हो जाए तब तक हम उच्चतर न्यायिक ढांचे को केवल कमजोर नींव पर ही बनाते रहेंगे। यह एक ऐसे स्थान पर, पुल बनाने का यत्न करने की एक बृहदाकार भूल और गलती होगी जहां कोई नदी ही नहीं है।

1954 को लोकसभा विधि आयोग के लिए संकल्प करती है।

41. अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा 26 जुलाई, 1954 को यह संकल्प पारित करने के पश्चात् कि "इंग्लैण्ड की भांति एक विधि आयोग नियुक्त किया जाए जो मैकाले के विधि आयोग द्वारा लगभग एक शताब्दी पूर्व प्रख्यापित किये गये कानूनों का पुनरीक्षण करे और समय-समय पर सामयिक कानूनों के लिए परामर्श[2] दे;" लोकसभा में 19 नवम्बर, 1954 को प्रस्तुत एक गैर-सरकारी संकल्प में न्याय को सरल, त्वरित, सस्ता, प्रभावी और सारवान बनाये जाने की आवश्यकता को महसूस किया गया था।

---

1. डी. बी. क्रि. अपील न. 162/76 धूली बनाम राजस्थान राज्य, जोधपुर में माननीय जी. एम. लोढ़ा तथा एस. सी. अग्रवाल न्यायमूर्ति गण द्वारा 3-3-1983 को निर्णीत।
2. रिफॉर्म ऑफ ज्यूडिशियल एडमिनिस्ट्रेशन पर विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट।

1934 में मैकाले का प्रथम विधि आयोग

42. स्वतन्त्रता से पूर्व भी वर्ष 1934 में प्रथम विधि आयोग गठित किया गया था जिसके अध्यक्ष टी. बी. मैकाले थे और अन्य व्यक्ति सदस्य थे। उसके कुछ समय बाद ही द्वितीय आयोग और वर्ष 1961 में तृतीय तथा 1979 मे चतुर्थ आयोग गठित हुआ।

सप्रू रेनकिन समिति

43. सर तेज बहादुर सप्रू, वायसराय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल के तत्कालीन विधि सदस्य के विशेष प्रयासों के फलस्वरूप न्यायधिपति श्री रेनकिन की अध्यक्षता में वर्ष 1923 में विलम्ब की समस्या पर कार्यवाही करने हेतु एक समिति नियुक्त की गयी।

देरी—बकाया कार्य—शीतलवाड़ से खन्ना

44. लगभग 4 वर्ष कार्य करने के पश्चात् दिनांक 26 सितम्बर, 1958 को प्रथम विधि आयोग की रिपोर्ट देते समय श्री एस. पी. शीतलवाड़ ने मूल्यवान सुझाव दिये थे, तथापि इस लम्बी यात्रा और मैकाले से खन्ना तक के विविध विधि आयोगों के पदचिह्नों पर चलते हुए यह स्पष्ट हो गया है कि देरी और *बकाया काम की समस्या विकराल रूप धारण कर रही है* और यह विश्वास दिलाने को मजबूर कर दिया है कि माल्यस की जनसंख्या का सिद्धान्त सही नहीं है, जिसमें केवल यही प्रत्याशा की गयी है कि जनसंख्या रेखागणितीय सिद्धान्त से बढती है और जीवन-यापन के साधन पिछड़ जाते हैं, क्योंकि वे केवल अंकगणितीय गति से बढ़ते हैं। राजस्थान के अधीनस्थ न्यायालयों के वर्ष 1951 से 1981 तक के सांख्यिकीय आंकड़ों से, जिनका वर्णन आगे किया गया है, यह स्पष्ट होगा कि जहां मूल फौजदारी विचारण मामलों में वृद्धि हुई है वहां अधीनस्थ न्यायालयों में दीवानी मामले दायर किये जाने में कमी हुई है। न्यायिक अधिकारों की संख्या, जो 1951 में 131 थी, वर्ष 1981 तक बढ़कर केवल 386 ही हुई है। विचाराधीन दीवानी और फौजदारी मुकदमे, जो वर्ष 1951 में कुल मिलाकर 77956 थे, वर्ष 1981 में बढ़कर 5,28,175 हो गये हैं।

वर्ष 1951 की तुलना में विचाराधीन मामलों में सात गुनी असाधारण वृद्धि हुई है जब कि निपटान केवल तीन गुना ही हुआ है। अतः विचाराधीन मामलों का पिरेमिड आगामी वर्षों में भी अवश्य ही बढ़ेगा। ग्रॉफ चित्र इस गंभीर समस्या को प्रदर्शित करता है और विधि-सुधारकों, ज्यूरिस्टों और विधायकों के समक्ष ज्वलन्त प्रश्न प्रस्तुत करता है।

कुल मिलाकर भारत के अधीनस्थ न्यायालयों मे विचाराधीन मामलों की *संख्या भयंकर रूप मे बढी है। दिनांक 31-12-81 को इनकी संख्या 98,38,284* बतलायी गयी थी जिसमें फौजदारी मामले कुल विचाराधीन मामलो के दो तिहाई से अधिक थे।

विभाजन इस प्रकार है:—

फौजदारी	न्यायिक मजिस्ट्रेट	62,13,677
	सत्र न्यायाधीश	1,75,156
दीवानी	सिविल न्यायालय (मूल)	30,26,315
	जिला न्यायालय (अपील)	2,23,136
	कुल योग	96,38,284

उपर्युक्त विवरण से यह मनोरंजक तथ्य सामने आता है कि इनमें दो-तिहाई मामले न्यायिक मजिस्ट्रेटों द्वारा ही निपटाये जाते हैं, जो विपन्न हैं।

45. विलम्ब और बकाया कार्य के इस रोग की मनोरंजक कहानी निम्नलिखित चित्रात्मक चार्ट से पता चल जायेगी :—

(i) राजस्थान विचारण न्यायालयों में मूल फौजदारी विचारण मामले 1951–1982 दायर किये गये पांचगुने, निपटान पांचगुने विचाराधीन—पन्द्रह गुने, आधार वर्ष 1951

ग्राफ
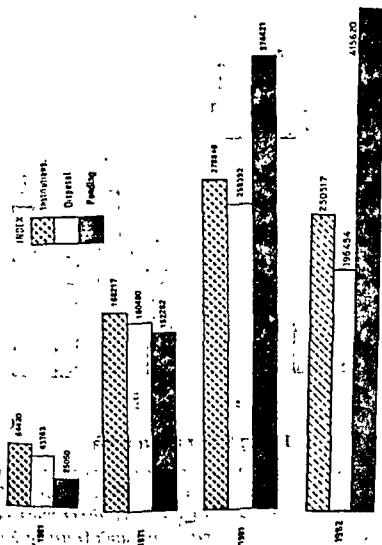
बकाया कार्य में वृद्धि : अणु विस्फोट

46. *यह तो मानना ही पड़ेगा कि यद्यपि बकाया की समस्या हल करने के समाधान मे अंकगणितीय वृद्धि नहीं हुई है, किन्तु मुकदमें दायर करने और विचाराधीन मुकदमों की संख्या न केवल रेखागणितीय रूप से बढ़ी है बल्कि उसमे आणविक ही नही वरन् भयंकर अणु विस्फोट भी हुआ है।*

(ii) राजस्थान में विचारण न्यायालयों में दीवानी मुकदमें 1951–1982

दायर किये गये में गिरावट, निपटान-गिरावट विचाराधीन मामलों में वृद्धि, तीन गुनी, आधार वर्ष 1951

ग्राफ
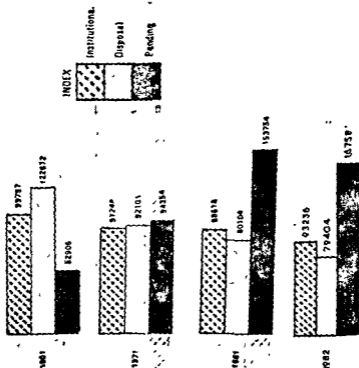
1 करोड़ 8 लाख बकाया मामले

47. *मुकदमों में वृद्धि की उर्वरता माल्थस के सिद्धान्त को भी संत्रस्त करती है। राजस्व न्यायालयों या प्रशासनिक न्यायालयों, अधिकरणों या कार्यालयों मे विचाराधीन राजस्व, कर और प्रशासनिक मामलों को छोड़कर मुन्सिफ न्यायालय से उच्चतम न्यायालय तक लगभग 1 करोड़ 8 लाख मामले विचाराधीन हैं।*

(i) राजस्थान के अधीनस्थ न्यायालयों में कुल मुकदमें 1951—1982
विचारण न्यायाधीशों की संख्या (1 = 20)

दायर किये गये—तीन गुने, निपटाये गये—तीन गुने, विचाराधीन—सात गुने
न्यायिक अधिकारी—तीन गुने, आधार वर्ष—1951

ग्राफ

न्यायिक सुधार आवश्यक
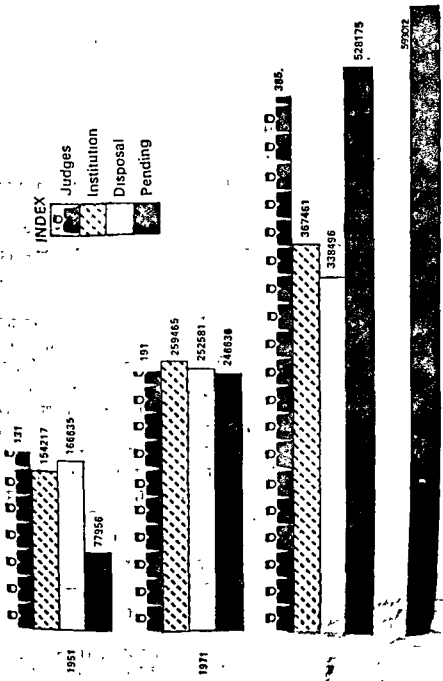
48. सिविल-प्रक्रिया संहिता या दण्ड-प्रक्रिया संहिता में अनेक संशोधन हुए हैं किन्तु वे बकाया काम को समाप्त करने या उनकी गति को बैलगाड़ी की रफ्तार से बढ़ाकर वायुयान की रफ्तार तक बढ़ाने के वांछित प्रभाव उत्पन्न करने मे असफल रहे हैं। मैंने अपने लेखों में न्यायिक क्रान्ति हेतु विधि आयोग और शाह समितियों की सिफारिशों का वर्गीकरण करने के पश्चात् विस्तार से अपने सुझाव दिये हैं जिनके नाम हैं "इवोल्यूशन आर रिवाल्यूशन इन जुडीशियरी" अखिल भारतीय बार कौंसिल सेमीनार, जोधपुर के लिए और "नीड फार टोटल रिवोल्यूशन इन इण्डियन ज्यूडिसियल सिस्टम" अखिल भारतीय हिन्दी विधि प्रतिष्ठान, जयपुर के लिए। दूसरे[1] लेख में मैंने निम्नलिखित आशा व्यक्त की है :—

कौशल-चन्द्रचूड़ का परीक्षण

यह हमारा पवित्र दायित्व और निष्ठापूर्ण धर्म है कि "चौपाल पर न्याय" को पुनःस्थापित करने के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भारतीय न्यायिक प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन करें जिससे कि प्रत्येक छप्पर में, गांव में भूमिहीन कृषकों, गंदी बस्ती और फुटपाथ पर रहनेवालों, कर्मचारियों, मजदूरों और सुविधा-विहीन निर्धनों और समाज के दलित वर्ग को सस्ता और त्वरित या वास्तविक सारवान सामाजिक न्याय दिलाया जा सके। यह एक बिलियन डालर का प्रश्न है कि क्या श्री कौशल के न्यायिक विधिक दर्शनवाला चन्द्रचूड़-भगवती का न्यायालय इस श्रेष्ठ और धार्मिक लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होगा? सामाजिक न्याय के इस शीर्ष लक्ष्य की प्राप्ति श्री जगन्नाथ कौशल की सफलता का अग्नि परीक्षण व श्री चन्द्रचूड़ के ज्ञान का अग्नि परीक्षण करती है कि वे अपने चारों ओर फैले धुएं और आग से, जो उनके लिए वास्तविक परीक्षण और विचारण का कार्य करता है, बिना क्षति और भय के बाहर निकल सकें। हमें सामाजिक न्याय की प्राप्ति के इस यज्ञ में अपनी शक्ति का योगदान करना चाहिए जिससे कि हम विक्रमादित्य और जहांगीर की न्याय देने की महान् प्रणाली को पुनः जीवित कर सकें। इस सम्मेलन में हमें स्वयं आत्मनिरीक्षण, ध्यान, व्याख्याओं का आदान-प्रदान करना है और ऐतिहासिक निर्णय लेना है जिससे कि न्यायपालिका की सामाजिक न्याय की विषयवस्तु को प्रगतिशील दैवी गति प्राप्त हो सके।

सामाजिक न्याय के लिए नारा

"जिन व्यक्तियों ने "चांद" "सितारों" पर विजय प्राप्त कर ली है उनके लिए "चौपाल पर न्याय" को प्रस्थापित कर "चौपाल पर सामाजिक न्याय"

1. भारतीय न्याय प्रणाली : आवश्यकता है सम्पूर्ण कायाकल्प की—दिनांक 11 सितम्बर, 1982 (पृष्ठ 65) को जयपुर में सम्पन्न अखिल भारतीय हिन्दी विधि सम्मेलन में पढ़ा गया गया लेख।

के उद्देश्य को प्राप्त करना असंभव नहीं है। इसमें निराश या हताश होने जैसी कोई बात नहीं है। हमें संकल्प करना चाहिये और न्यायपालिका के सभी अंगों-बार और बैंच को एक संकल्प करना चाहिये कि हम अपने कर्त्तव्यों का मिशनरी भावना से पालन करेंगे, वेतन-भोगी कर्मचारियों या व्यवसायों के रूप में नहीं, जिससे कि हम अपने समाज को दलित, निर्धन, सुविधाविहीन, पीड़ित, दमन और कुंठा से ग्रस्त वर्ग की आंखों से आंसू पोंछ सकें। यदि यह नारा "हमारे हृदय से न्यायिक आकाश" (हृदयाकाश से जगदाकाश) में गूंज सके तो हम निश्चित रूप से सामाजिक न्याय के अपने मिशन में सफल होंगे"।

न्याय को अमर बनायें

"*इस सम्मेलन में, हमें सस्ता न्याय अपनी स्वयं की राष्ट्रीय और क्षेत्रीय भाषा* में समझने योग्य बनाकर, चौपाल पर सामाजिक न्याय दिलाने के अमर पवित्र लक्ष्य को पूरा करने हेतु, तैयार होने के लिए रचनात्मक ऐतिहासिक निर्णय लेने होंगे, *जिससे कि न्यायिक आत्मघात के भय और आशंका से* बचा जा सके और इस क्रान्ति के पश्चात् न्यायिक प्रणाली को सामाजिक न्याय का अमरत्व प्राप्त हो सके।

न्यायिक मजिस्ट्रेटों को प्रभावी कीजिये

49. क्या मैं यह आशा करूं कि अखिल भारतीय न्यायिक अधिकारी सम्मेलन भी उपयोगी एवं उद्देश्यपूर्ण संभाषण में रुचि लेगा और न्याय को त्वरित, सस्ता, प्रभावी, सारवान और वास्तविक, जो न्यायपालिका के निम्नतम सोपान-न्यायिक मजिस्ट्रेट, जो अब भी शक्तिशालियों के बीच असहाय हैं, की मुक्ति की नैतिक शिक्षा, सिद्धान्त के मूल तथ्य और पक्की नींव पर आधारित हो, बनाने के लिए ऐतिहासिक निर्णय लेगा।

सामाजिक न्यायिक क्रान्ति

अनुसूचित व जनजाति उद्धार

स्वतन्त्रता के तीन दशकों और आजादी के प्रभात को अभी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की अधिकांश झुग्गी झोंपडियों मे अविमुख मुस्कान प्रदान करनी शेष है। वे हमारी आधारभूत विधि की आज्ञाओं का लाभ प्राप्त करने की अपेक्षा भाग्य की ही आज्ञाओं को समर्पित करते आ रहे हैं। स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व की भावना को, जिन्हे देश के संविधान में इतनी उच्च कोटि से प्रतिष्ठापित किया गया है, अभी तक उनमें से अधिकांश लोगों के लिये सार्थक उद्देश्य की प्राप्ति करनी है। संविधान के अनुच्छेद 17 द्वारा अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया है, परन्तु जो लोग इस अनिष्टकारी मान्यता में अपने विश्वास के अन्तर्नियमों को उत्कृष्टतर मानते हैं वे मौलिक विधि की खुलकर अवज्ञा करना पसन्द करते है। हमारी स्वतन्त्रता के तीसवें वर्ष में अस्पृश्यता के उन्मूलन हेतु अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955 को संशोधित करके सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, जैसी अधिक कठोर प्रावधानोंवाली विधि का निर्माण करना पड़ा, जो इस तथ्य का प्रचुर प्रमाण है कि हम अपने लोगों के एक पर्याप्त बड़े भाग को मौलिक मानवाधिकारों से वंचित रखनेवाले पाप की पुनरावृत्ति करते जा रहे हैं। देश में ऐसे अनेक भू-भाग हैं जहां अनुसूचित जातियों को पीने के पानी के साधारण स्रोतों से भी वंचित रखा जाता है। कई स्थानों पर तो वे उस रास्ते से श्मशान यात्रा पर जाने का भी साहस नही कर सकते जहां से होकर अन्य लोग जाते हैं।

राष्ट्र का समस्त नागरिको को सामाजिक और आर्थिक न्याय उपलब्ध कराने का निष्ठापूर्ण संकल्प केवल एक वादा बनकर रह गया है जिसका पालन अनुसूचित जातियो और अनुसूचित जन जातियों के सदर्भ मे अनेक व्यवधानों के पर्यन्त ही होता है। सामाजिक और आर्थिक न्याय से रहित यदि राजनैतिक न्याय की उपलब्धि हो, तो भी वह अपनी अधिकाश सार्थकता खो देती है।

विधिक प्रावधान और राज्य के विरोधी प्रयत्नों के उपरान्त भी अनैतिक और अस्वस्थ सामाजिक असमानता चली आ रही है। समाज के उद्देश्य और विधेय के बीच स्पष्ट संघर्ष है। समाज की अनैतिक रीतियां विधि के निर्देशन से भी सशक्त सिद्ध होने की ओर प्रवृत्त हुई हैं। यथार्थ पर अन्याय हावी बना हुआ है। शायद राजकीय कार्यवाही द्वारा आज नक किये गये प्रयत्न सामाजिक धरातल की इस दशा को परिवर्तित करने तथा सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात करनेवाले सक्रमण के लिये, चाहे उसके लिये कोई भी सामाजिक या राजनैतिक मूल्य चुकाना पड़े, दृढ़ सकल्प से

आविर्भूत होने के बजाय व्यावहारिक उपायों के रूप में अधिक प्रयुक्त हुये हैं। परिणाम—समानता के लिये संकोचपूर्ण प्रयत्न और न्याय के घिसटते पैर। इन वर्षों में इन जातियों के लिये जो कुछ किया गया है उसका दावा सही है, परन्तु उसमें सफलता आंशिक मिली है उसमें भी सरलता से इंकार नहीं किया जा सकता।

भारत में अस्पृश्यता का कलंक

2. विधि द्वारा अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया है, परन्तु क्या कोई यह कहने का साहस कर सकता है कि हमारे समाज से दोषपूर्ण कुरीतियां बिलकुल मिट गई हैं ? ग्रामीण क्षेत्रों का तो कहना ही क्या जबकि नगरों में भी अस्पृश्यता किसी न किसी रूप में विद्यमान है ही। अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955 की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव हुई, जो अब सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया जाकर, 19 नवम्बर, 1976 से प्रभावी हुआ। इसमें कोई संशय नहीं कि वर्तमान अधिनियम में दण्ड के प्रावधान अधिक कठोर बनाये गये हैं, परन्तु आवश्यकता यह है कि मुकदमों का निपटारा तत्परतापूर्वक किया जाये। गत अधिनियम के सम्बन्ध में हमारे अनुभव अधिक सन्तोषजनक नहीं रहे। 1955 से लेकर 1976 तक अस्पृश्यता अधिनियम के अन्तर्गत 22,470 मुकदमें पंजीकृत हुये थे, जिनमें न्यायालयों तक ले जाये गये 19,893 मुकदमों में से 3,402 परिमर्पित किये गये, 3,288 अपराधियों को दोषमुक्त किया गया और 6,178 अपराधियों को दोषी पाया गया। मुकदमों को न्यायालयों में लम्बी अवधि तक लटकते रखा गया और अनुसूचित जाति के लोगों को नाना प्रकार के उत्पीड़न के पराभव में रखा गया, अतएव अधिकांश मुकदमों में हार हुई या परिमर्पण हुआ।

बन्धुवा मजदूर

3. इस देश में स्वतन्त्रता के बाद भी दासता और उसके निस्तार का सह-अस्तित्व चला आ रहा है। अनुसूचित जाति के लोगों को बन्धुवा मजदूरों के रूप में कार्य करने के लिये मजबूर करना उनके शोषण के अनेक प्रकारों में से एक है। बन्धुवा मजदूरी देश के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न नामों से जानी जाती है।

विधिक न्यायालयों में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों पर नृशंसता के मुकदमों के व्ययन में विभिन्न स्तरों पर असाधारण विलम्ब होता है, जिसके फलस्वरूप न्यायालयों में मुकदमों की एक बड़ी संख्या लम्बित है। अत्याचारों से पीड़ित अधिकांश अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोग सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े हुये और भूमिहीन लोग हैं और उनके पास इन अत्याचारों के अपराधियों के विरुद्ध, जो साधारणतः सम्पन्न और प्रभावशाली व्यक्ति होते हैं, परिवाद साक्ष्य एकत्रित करने और उसे प्रस्तुत करने हेतु भी आवश्यक साधन नहीं हैं। हमारे कानून अपने तकनीकी औपचारिक सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं के फलस्वरूप इन तथ्यों पर बिना गौर किये ही अपनी गति में प्रवृत्त हैं। जब तक हमारी न्याय-

पालिका अधिक वास्तविकता नहीं प्रदर्शित करती और साक्ष्य के नियमें समाजार्थिक कारणों के फलस्वरूप लोगों के अत्यन्त पिछड़ेपन और असमर्थता को ध्यान में नहीं रखते तब तक न्याय की उपलब्धि नहीं हो सकेगी। अत्याचार के इन मुकदमों का जब व्ययन हो जाता है तो पीड़ित लोगों की न्याय की आवश्यकताएं, विशिष्ट रूप से सामाजिक न्याय की प्राप्ति भी हो जाती है।

क्रूरतायें

4. इसलिये समाज और सरकार को सामाजिक न्याय के लिये आत्रोपित कमजोर वर्गों के विरुद्ध अत्याचारों को मात्र विधि का उल्लंघन ही नहीं बल्कि समाज के विरुद्ध प्रबल वर्गों द्वारा गहन पाप समझना चाहिये, जिसके विरुद्ध विधि और न्यायालय हमारे सामाजिक विकास के निश्चित संदर्भ में संतोषजनक प्रतिरोध नहीं कर सकेंगे। न्यायिक प्रक्रिया में समाजशास्त्र की पद्धति का वर्णन करते समय कारडोजो कहते हैं —

> "अतएव, इतिहास, दर्शन और रीति से हम उसकी ओर झुक जाते हैं जो वर्तमान समय और पीढ़ी में इन सबसे शक्तिशाली बन रहा है, और अपनी अभिव्यक्ति और निष्कर्ष समाजशास्त्र की पद्धति में पाता है।"

जिन अमानवीय परिस्थितियों के अन्तर्गत मेहतर, चर्म निष्कर्षक और चर्मकार कार्य करते हैं, उन पर अभी काबू प्राप्त करना शेष है। मेहतर, जो अनुसूचित जातियों की एक विशिष्ट जाति है, उसके द्वारा विष्ठा हटाने का पतित रिवाज देश के अनेक भागों में प्रचलित है।

समाजार्थिक क्रान्ति के प्रकार की परिचायक उपरोक्त अभियुक्तियाँ इस पत्र के लेखक की नहीं अपितु श्री शिशिरकुमार आयुक्त की हैं, जो उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 338 के आधीन भारत के राष्ट्रपति को दिनांक 29 दिसम्बर, 1977 को अपने प्रतिवेदन में प्रस्तुत की थीं।

हरिजन श्री पहाड़िया का अपमान

5. मैं एक दुःखान्तिक घटना का जिक्र करने से अपने को नियन्त्रित नहीं कर सकता जो यद्यपि निर्दोष है, और बिना किसी उद्देश्य और परिकल्पना के है, यह प्रदर्शित करेगी कि आयुक्त अपने पर्यवेक्षणों में अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है।

मेरे राज्य के मुख्यमन्त्री[1] का एक प्रीतिभोज के अवसर की बात है, जिसमें राज्य के उच्च पदधारियों में से शीर्षस्थ व्यक्ति थे। उनके द्वारा राजस्थान के ढाई करोड़ लोगों का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने पर मुख्यमन्त्री का अभिनन्दन करना था।

1. श्री जगन्नाथ पहाड़िया, मुख्य मन्त्री, राजस्थान।

जैसे ही मुख्य मंत्री पधारे, निमंत्रक महोदय की अर्द्धांगिनी आतंकित हो गई। उसकी दुविधा यह थी कि क्या मुख्य मंत्री की श्रीमती भी आयेगी और उसे उन्हें माला पहनानी पड़ेगी ? जब मुख्यमंत्री अकेले ही आये तो उसको अकस्मात् राहत मुक्ति मिली। प्रीतिभोज प्रारम्भ हुआ। सब लोग भोजन पटल पर मौजूद थे, परन्तु उसने; अपने पति के भोजन करने और मुख्य मंत्री के प्रति सब प्रकार से सत्कार और शिष्टता प्रकट करने के उपरान्त भी; भोजन का बहिष्कार किया।

क्यों ? भोजन पटल पर रखी तश्तरियों को उस दिवस के अतिथि ने छूली। यद्यपि अपने पति के साथ सहयोग देने के लिए उसके मस्तिष्क में मानसिक कशमकश चलती रही परन्तु उस पर मंडराती हुई धर्मान्धता ने उसे भोजन करने की अनुमति नहीं दी। प्रीतिभोज समाप्त होने पर मुख्यमंत्री ने उस स्थान से प्रस्थान किया। ईश्वर ने उसे अधार्मिक होने से बचा लिया, इसलिए उसे नया जीवन मिला, यह दुर्भावना उन्होंने प्रकट की।

उसके पति को उसे रोकना चाहिए था। परन्तु अपने दृढ संकल्प के फलस्वरूप वह इसमे कोई सहयोग न दे सकी, जो हिन्दू समाज और हमारी पीढी पर एक दोष और कलंक की संज्ञा मे आता है। यह 1980 मे अन्तरिक्ष युग मे घटित हुआ और वह भी राजस्थान की राजधानी में। यह बात नहीं है कि उस महिला के मन में कोई मलिनता थी—वह ग्रामीण होने के कारण निर्दोष थी। दोष तो हमारा है क्योंकि स्वतंत्रता के तीन दशक निकलने के बाद भी हम अपने स्त्री समाज को वर्तमान मूल्यों की सच्ची शिक्षा नही दे सके।

उपरोक्त घटना के गूढार्थ अत्यन्त भयंकर और भयावह हैं। मेरा सिर लज्जा से झुक जाता है कि यह मेरे राज्य में घटित हुआ जो अन्य रूप मे हरिजन मुख्य मंत्री होने का गौरवान्वित दावा रखता है—राजनीति अलग चीज है जो एक न्यायाधीश की हैसियत से मेरे लिए निष्कामित है।

श्री शिशिर कुमार आयुक्त, जो ऐसे कठोर सत्य के प्रति जागरूक हैं, पैरा 1.9. में यह पर्यवेक्षण किया—"हम ग्रामीण क्षेत्रों में छुआछूत की प्रथा के विरुद्ध स्त्रियों का मत परिवर्तित करने मे भी सफल नही हुये हैं। अगर हम इस प्रसग में सफल हो जाते हैं तो छुआछूत के विरुद्ध हमारा आधा संग्राम जीत लेते हैं।" इसलिए उन्होने सुझाव दिया—"सिविल अधिकार सरक्षण अधिनियम, 1955 के प्रावधानों को लागू करने के लिए छुआछूत की हानिकारक एवं अनैतिक प्रथा के विरुद्ध सामाजिक चेतना उद्बोधित करने हेतु सरकारी तन्त्र के साथ-साथ अराजकीय अभिकरणों को सम्मिलित करना चाहिये।"

बेलची (बिहार) में श्रीमती गांधी

श्री ए. एन. भारद्वाज [1] के अनुसार बेलची (बिहार) की कराल घटना ने श्रीमती इन्दिरा गांधी को आकर्षित किया जो छः घंटे की हाथी की कष्टदायक सवारी करने के पश्चात् बेलची पहुंची। बेलची में पीड़ित, दलित वर्गों की दशा इतनी दयनीय और मर्मस्पर्शी थी कि उसका वर्णन भी नहीं किया जा सकता। पतनगर, आगरा, बराटिया, दरमापकड़ा, जामट और पाथोडा में हरिजनों और अन्य लोगों पर अत्याचारों ने समाचार पत्रों में शीर्षस्थल पंक्तियों में स्थान प्राप्त किया। उत्पीडन, बलात्कार, अपहरण, कत्ल, मानववध और झोंपड़ियों तथा बस्तियों को आग लगाने की बढ़ती हुई घटनायें उनकी अत्यन्त दयनीय और विपन्न दुर्दशा को दर्शित करती है।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त श्री शिशिर कुमार ने दिनांक 25 दिसम्बर, 1978 को अपनी 25वीं रिपोर्ट में लिखा है, कि भारत में सन् 1977-78 में, 1976 की तुलना में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों पर, अत्याचार के अपराधों में 75% की वृद्धि हुई है। 1976 में पंजीबद्ध कुल मुकदमों की संख्या 6,197 थी, जबकि 1977 में यह संख्या बढ़कर 10,879 हो गई। प्रतिवेदन में प्राक्कथित अभ्युक्ति है कि यद्यपि दलित वर्गों की समाजार्थिक हालत सुधारने के सर्वांगीण प्रयासों ने नये आयाम अर्जित किये हैं, तथापि उन पर अत्याचार बढ़ गये हैं।

राष्ट्रपति एन. संजीवरेड्डी हरिजनों और गिरिजनों की इस दुःखान्तक और कारूणिक दशा से अत्यन्त चिन्तित एवम् प्रभावित हुए। उन्होंने संप्रेक्षित किया:—

> "वर्तमान सप्ताहों मे घटित हिंसक और गुण्डा गर्दी की घटनाओं से मैं वस्तुतः चिन्तित हूं। स्वतन्त्रता और अहिंसा में विश्वास रखने वाले सभी लोग इस चिन्ता के भागीदार हैं। गरीबों और दलितों को सहायता देने के लिए जाति को आधार नहीं माना जाना चाहिए। समस्त गरीब और न्यून लाभान्वित लोग, चाहे वे किसी जाति या धर्म के हों, सहायता पाने के अधिकारी है।"

ये उद्‌गार प्रकट करते समय उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के इन विचारों को पुरजोर ध्वनि से पुनरावृत किया:—

> "मैं चाहे जेल में रहूं या बाहर, हरिजनों की सेवा सदैव मेरे लिए हृदयगम रहेगी और मेरे लिए दैनिक भोजन और मेरे प्राणों से भी अधिक मूल्यवान होगी।"

---

1. प्लाइट ओफ शिड्यूल्ड कास्टस एन्ड शिड्यूल्ड ट्राइब्स इन इण्डिया : ए. एन भारद्वाज।

पंडित नेहरू

नव भारत के निर्माता पंडित नेहरू ने सामाजिक अन्याय के विरुद्ध कटाक्षेप करके संघर्ष छेड़ा तथा कहा—"अस्पृश्यता हमारे समाज पर एक कलक है तथा अस्पृश्यता और जाति प्रथा हमारे सामाजिक जीवन से सदैव के लिए परिहार्य है।"

डॉ. अम्बेडकर

हरिजनों के प्रति घोर अन्याय के विरुद्ध अपनी अन्तिम सांस तक संघर्ष करने वाले महान धर्मयोद्धा मनु महर डॉ. अम्बेडकर ने चेतावनी दी:—

"एक प्रगतिशील समाज को, अपने क्रान्तिकारियों को जो श्रेय देना चाहिए उनकी मुझे परवाह नहीं है। मगर मैं भारत के हिन्दुओं को यह अनुभव करवा दूं कि वे भारत के अस्वस्थ लोग हैं, और उनका रोग अन्य भारतीयों के स्वास्थ्य और खुशहाली के लिए खतरा उत्पन्न कर रहा है, तो मुझे संतोष होगा।"

ठक्कर बापा

हरिजन आन्दोलन के कर्णधार ठक्कर बापा ने भारत के लोगों को उनका महत्वपूर्ण वायदा स्मरण करवाया और कहा:—

"यह याद रखना चाहिए कि अस्पृश्यता को आमूल समाप्त करने हेतु हिन्दु जाति की ओर से गाधीजी द्वारा दिया हुआ महत्वपूर्ण आश्वासन अभी तक पूरा नहीं हुआ है।"

ठक्कर बापा ने स्वतंत्रता प्राप्ति के समय जो कुछ कहा, वह स्वतंत्रता प्राप्ति की तीन दशकों के पश्चात् आज भी स्मरण करने योग्य है। हम भारत के लोगों ने अपने आपको जो संविधान दिया है और इसकी प्रस्तावना में *महत्वपूर्ण वायदे और उद्घोषणाएं की गई है, उन्हें अभी तक परिपूर्ण करना है।*

7. हमारे संविधान के प्रतिष्ठापक पिता इस कटु सत्य पर अत्यन्त उद्विग्नता और अशान्ति अनुभव कर रहे होंगे कि भारतीय संविधान की तीन दशाब्दियां बीत जाने के पर्यन्त भी, उनके द्वारा प्रदत्त पवित्र और प्रतिष्ठित निर्देशों ने, न्याय मन्दिरों तथा औपचारिक स्वतंत्रता के संसद अधिवेशनों के भीतर और बाहर, सामाजिक न्याय के पोषित उद्देश्य की प्राप्ति में विकास की अवरुद्धकारी दरिद्रता का निवारण करने तथा गरीब और अमीर, धनी और निर्धन, विशेषाधिकार प्राप्त और विशेषाधिकारहीन लोगों के बीच असमानता की चौड़ी दरार को मिटाने, तथा लाखों दरिद्र, अर्द्धनग्न और भूखे लोगों का उद्धार और मुक्ति न करा सके। निर्देशकतत्व बनाम मूल अधिकार और न्यायिक सर्वोपरिता बनाम सासदिक सर्वोपरिता के उपरिष्ठ सैद्धान्तिक विवादो में उलझ कर

तथा मनु के सिद्धान्तों और आदेशों द्वारा सदियों से निगृहीत एवम् उत्पीड़ित लोगों, दलित वर्गों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और समाज के आर्थिक दृष्टि से निर्बल वर्गों से सम्बद्ध अधिकांशतः संवैधानिक और विधिक अखाड़ेबाजी की सभाएं और सम्भाषण ही देखे हैं।

संविधान में 45 संशोधन

8. संविधान की प्रस्तावना तथा निर्देशक तत्वों में प्रतिष्ठापित उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अंगीकृत कुछ प्रगतिशील समाजकल्याणकारी विधि रचनाओं का कठोर परीक्षणोपरान्त विखण्डन तथा मूल अधिकारों की परिमितताएँ, विधायकों की चिन्ता मे परिणत हुईं तथा बार-बार विखण्डन और लगातार दिशा-परिवर्तन तथा पुनर्निर्माण ने, संविधान के तीस वर्ष के कार्यकाल में ही पैंतालीस असाधारण संशोधनों वाली शृंखला का सृजन किया।

सज्जनसिंह से मिनर्वा मिल्स तक

9. नई दिल्ली में सर्वोच्च न्यायालय ने, सज्जन सिंह[1] से गोलकनाथ[2] और केशवानन्द भारती[3] से मिनर्वा मिल्स[4] तक के वादों में विधायिका और न्यायपालिका के बीच शक्ति, अधिकार और प्राधिकारिता के प्रश्न का सामना करने, विनिश्चित करने और न्याय निर्णीत करने हेतु उस पर होनेवाले राजकोष के व्यय की कोई परवाह न करके अपने समय, शक्ति और मस्तिष्क का अधिकांश उपयोग किया। न्यायाधीशों ने समय-समय पर विशिष्ठ किन्तु अप्रभावी अल्पसंख्या द्वारा प्रतिरोधित बहुमत से यह उद्घोषित किया कि निर्देशक तत्त्व सर्वोच्च न्यायालय के विनिश्चय को न तो अभिषिद्ध कर सकते हैं, न अभिप्रेरित ही कर सकते हैं।

नीति-निदेशक सिद्धान्त बनाम मौलिक अधिकार

10. एक साधारण व्यक्ति के लिए स्पष्ट अन्तर्विरोध, जो यद्यपि एक न्यायविद् के लिए अनावश्यक और अप्रासगिक है, वह यह है कि सज्जन सिंह से मिनर्वा मिल्स तक के निर्णयों का विश्लेषण इसका प्रमाण है, कि न्यायाधीशों के बहुमत को मिलाया जाये तो सदैव मूल अधिकारों पर नीति निर्देशक तत्त्वों की सर्वोपरिता की राय प्रकट हुई है तथा समय की अनुभूत आवश्यकताओं के अनुसार संविधान में संशोधन करके जनता के भाग्य का पथ-प्रशस्त करने हेतु शीर्ष विधायिका का दावा स्वीकार किया है, परन्तु उन्ही निर्णयों को अगर एक-एक करके लिया जाये, जिनमें अन्तिम और नवीनतम निर्णय मिनर्वा मिल्स का है, न्यायाधीशों के बहुमत ने संविधान

1. सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 845।
2. गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य, ए. आई. आर. 1967 एस सी. 1643।
3. केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य ए. आई. आर. 1973 एस. सी 1461।
4. मिनर्वा मिल्स बनाम यूनीयन आफ इण्डिया, ए. आई. आर. 1980, एस. सी. 1789।

में आमूल चूल संशोधन करने हेतु विधायिका की शक्ति को मान्यता देने से मना कर दिया है।

गतिरोध

11. अतएव निर्देशक तत्वों को घातक धक्का लगा है, क्योंकि स्वयं प्रतिष्ठापक पिताओं के द्वारा मूल अधिकारों तथा संविधान के अनुच्छेद 366, जैसा अभी उसका निर्वचन किया जाता है, दोनों पर लगाई गई सीमाओं द्वारा उत्पन्न अवरोध के कारण, उनके आदेशों का पालन नहीं हो सकता। निर्देशक तत्व न्यायशास्त्र के तीन दशक, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मिनर्वा मिल्स में उद्घोषित न्याय निर्णय से उत्पन्न व्यवधान के कारण, लाखों प्रभावग्रस्त लोगों के आंसू हटाने और उनके चेहरों पर खुशियां लाने तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सतत् प्रयत्नों को विकास के पथ पर तीव्र गति प्रदान नहीं कर सके।

अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए संवैधानिक संरक्षण

12. निर्देशक तत्वों के न्यायशास्त्र और अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ी जातियों की समाजार्थिक क्रान्ति के प्रकार पर उसके प्रयोग को, संविधान में प्रतिष्ठापक पिताओं द्वारा बचाव और रक्षा के बारे में प्रदत्त प्रस्तावना को ध्यान में रखकर दृष्टिपात करना होगा जिसका साराश निम्नलिखित है:—

(1) अनुच्छेद 15

दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश तथा पूर्ण या आंशिक रूप में राज्य निधि से पोषित तथा साधारण जनता के उपयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों तथा सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग के सम्बन्ध में पूर्ण या आंशिक रूप में राज्य निधि से पोषित तथा साधारण जनता के उपयोग के लिए समर्पित किसी असमर्थता, दायित्व, अवरोध या शर्त का निवारण;

(2) अनुच्छेद 16 व अनुच्छेद 335

राजकीय सेवाओं में नियुक्तियां करने में उनके दावों पर विचार करना तथा उनके अपर्याप्त प्रतिनिधित्व के मामलों में उनके लिए आरक्षण करने का राज्य का दायित्व;

(3) अनुच्छेद 17

छुआछूत का उन्मूलन तथा इस प्रथा के प्रत्येक रूप का निषेध करना;

(4) अनुच्छेद 19 (5)

अनुसूचित जाति के समस्त नागरिकों के अबाध संचरण, आवास, संपत्ति अर्जन करने या कोई व्यापार या कारबार करने के साधारण अधिकार हितों में कमी;

(5) अनुच्छेद 25

हिन्दुओं की समस्त जातियों और वर्गों के लिए हिन्दुओं की सार्वजनिक प्रकृति वाली धार्मिक संस्थाओं को प्रविश्य बनाना;

(6) अनुच्छेद 29

राज्याधीन या राज्य निधि से सहायता प्राप्त किसी शिक्षण संस्था में प्रवेश निषेध का प्रत्यादेश;

(7) अनुच्छेद 46

उनके शैक्षणिक और आर्थिक हितों की अभिवृद्धि और सामाजिक अन्याय, तथा सब प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा;

(8) अनुच्छेद 164, अनुच्छेद 338 तथा पंचम अनुसूची

उनके कल्याण में अभिवृद्धि करने तथा उनके हितों की रक्षा के लिए राज्यों में सलाहकार समितियों तथा पृथक विभागों का गठन करना और केन्द्र में एक विशेष अधिकारी नियुक्त करना;

(9) अनुच्छेद 244 पंचम तथा षष्ठ अनुसूची

अनुसूचित तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन तथा नियन्त्रण हेतु विशेष प्रावधान;

(10) अनुच्छेद 330 (अनुच्छेद 332 व 324)

चालीस वर्ष की अवधि तक संसद तथा राज्य विधान सभाओं में विशेष प्रतिनिधित्व;

प्रस्तावना

13. हमारे संविधान की प्रस्तावना में समस्त नागरिकों की प्रतिष्ठा और अवसर की समता सुरक्षित करने का संकल्प किया गया है। यह संकल्प साम्प्रदायिक समाज के अन्दर एक क्रान्तिकारी कदम है जिसका उद्देश्य देश के सम्पूर्ण सामाजिक ढांचे में एक विशाल परिवर्तन करना है। यह संकल्प संविधान के अनुच्छेद 15 (1) में दोहराया गया था जिसमें कहा गया था "राज्य किसी नागरिक के साथ धर्म, जाति, लिंग, जन्म-स्थान या इनमें से किसी के आधार पर भेद-भाव नहीं बरतेगा। शब्द "जाति" हिन्दू समाज के उस विभाग से तात्पर्य रखता है, जिसमें कोई जन्म लेता है। एक अमुक जाति का सदस्य, चाहे वह बुद्धिमान, कठोर परिश्रमी, ईमानदार और सत्यभाषी हो, उसे निम्न स्तर का समझा जाता था। अतएव अनुच्छेद 15 (4) में नीचे लिखा प्रावधान रखा गया था:—

"इस अनुच्छेद का कोई अंश अथवा अनुच्छेद 29 का खण्ड (2), राज्य को, नागरिकों के, सामाजिक या शैक्षणिक रूप से पिछड़े हुए किसी

वर्ग या अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की प्रगति के लिये, विशेष प्रावधान बनाने से नही रोकेंगे।"

14. अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े वर्ग के लोगों को लगातार शोषण से बचाने के लिये यह प्रावधान रखा गया था कि राज्य ऐसे लोगों की उन्नति के लिये विशेष प्रावधान निर्मित करे। इन लोगों का शोषण भारत में वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति की कथा के साथ जुड़ा हुआ है।

अनुसूचित जाति व जनजाति की जनसंख्या इण्डोनेशिया, पाकिस्तान से ज्यादा है।

15. गत जनगणना में, इस कोटि मे 9,45,89,587 लोग आने का अनुमान लगाया गया जो भारत की कुल जनसंख्या का 20% था। अब तक यह 12 करोड़ को पार कर गई होगी जो इन्डोनेशिया, पाकिस्तान, बंगलादेश और श्रीलंका की जनसंख्या से अधिक है। आर्थिक रूप से पिछड़े हुये लोग इसमें सम्मिलित नहीं हैं, क्योकि 50% से अधिक भारतीय गरीबी की रेखा से नीचे रहते है तथा हमारे देश मे 66% लोग अनपढ़ हैं, जिनमें पढ़ने-लिखने की भी योग्यता नहीं है।

16. वैदिक काल में, मातृभूमि की एकता सम्बन्धी ऋग्वेद की शिक्षाओं के दौरान भी, जब एक हिन्दू पूजा करते समय यह कल्पना करता है कि गंगा, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी और सिन्धु, समस्त नदियों का जल आकर उसके अर्घ्य में प्रवेश करे, अनुसूचित जाति का पतन, उत्पीड़न और दमन, जो उस समय "शूद्र" कहलाते थे, अपने चरमोत्कर्ष पर था।

जाति प्रथा की उत्पत्ति

17. हमारे देश में जाति प्रथा की उत्पत्ति के बारे मे अनेक दृष्टिकोण है, जिनमें सर्वाधिक प्रचलित विचार यह है कि इसकी उत्पत्ति हजारों वर्ष पूर्व आर्यों के मध्य एशिया से भारत में आगमन के समय, ईसा के जन्म से करीब 1500 वर्ष पूर्व हुई, जिसकी जड़ें विजेता आर्यों और विजित द्रविड़ जाति के पारस्परिक सामाजिक प्रभाव मे निहित थी। पंडित नेहरू के अनुसार विजित जाति अर्थात् द्रविड़ लोगो के पीछे उनकी सभ्यता की एक लम्बी पृष्ठभूमि थी, परन्तु आर्य लोग अपने आपको उनसे कही अधिक श्रेष्ठ मानते थे। जातियों के इस संघर्ष के बीच शनैः शनैः वर्ण व्यवस्था का उदय हुआ जो विभिन्न जातियों के सामाजिक संगठन तथा उस समय विद्यमान परिस्थितियों के अनुसार उनकी सुव्यवस्था की दिशा में एक प्रयास था।[1] द्रविड़ अपनी सभ्यता मे अधिक उन्नत थे, इसलिये वे आर्यों के लिये सभाव्य सकट थे। विजेताओ से उनकी सक्रिय प्रतिस्पर्धा पर अंकुश लगाने का एक मात्र तरीका उनको सदैव के लिये हेय अवस्था में धकेल देना था और सम्भवतः चार वर्णों (जाति व्यवस्था) की स्थापना के सिद्धान्त के पीछे यही ध्येय था।

1. डिस्कवरी आफ इण्डिया, पं. जवाहर लाल नेहरू (1946) पृ. 49।

18. द्रविड़ो के साथ साम्य के परिणामस्वरूप आर्यों की एकरूपता के विलोप का भय सम्भवतः उनमें विभेद उत्पन्न करने का दूसरा कारण था। प्रारम्भ में अन्तर रंग-भेद का था, द्रविड़ आर्यों से काले रंग के थे (जाति के लिये संस्कृत शब्द "वर्ण" का अर्थ है "रंग") परन्तु दूसरा दृष्टिकोण यह है कि वेदों में प्रयुक्त शब्द "वर्ण" का तात्पर्य रंग नहीं बल्कि वर्ग या श्रेणी है। प्रारम्भिक विभाजन द्विज या आर्यों के बीच का था, जिसमें क्षत्रिय (शासक और योद्धा) ब्राह्मण (पुजारी और शिक्षक) और वैश्य (कृषक और व्यापारी) तथा अनार्य या शूद्र, जो द्विजों की सामाजिक प्रस्थिति से वंचित रखे जाते थे।

नेहरू तथा अनार्यों की पौराणिक कथा

19. पण्डित नेहरू ने आर्यों तथा अनार्यों के इस अन्तर को निम्नलिखित शब्दों में वर्णित किया है[1] :—

> "इस प्रकार एक समय में जब विजेताओं द्वारा विजित जातियों को दास बनाने और उनको उन्मूलन करने की प्रथा थी, जाति ने अधिक शान्तिपूर्ण समाधान सुलभ किया जो कार्यों के उदीयमान विशिष्टीकरण के अनुरूप था। जीवन को वर्गीकृत किया गया। कृषकों के समुदाय से वैश्यों, किसानों, कारीगरों और व्यापारी लोगों का, क्षत्रियों से शासकों और योद्धाओं का तथा ब्राह्मणों से पुजारियों और विचारकों का विकास हुआ, जिनसे राष्ट्र की नीति के निर्धारण तथा आदर्शों को जीवित रखने की अपेक्षा की जाती थी। इन तीनों से निम्नतर, कृषकों के अतिरिक्त, मजदूर और अकुशल कामगार थे, जो शूद्र कहलाते थे। इन देशी जनजातियों मे से बहुतायत धीरे-धीरे आत्मसात् हो गई तथा उनको सामाजिक मापदण्ड के तल पर अर्थात् "शूद्रों" में स्थान दिया गया।"

20. जातियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऋग्वेद में निम्नलिखित पौराणिक कथा विद्यमान है[2] :—

> "जब भगवान ने मनुष्य का बलिदान किया और उसके शरीर के भाग किये तो उसे कितने हिस्सों में बांटा गया ? उसका मुख, हाथ, जंघा और पैर क्या-क्या कहलाये ? उसके मुख से ब्राह्मणों की तथा उसकी भुजाओं से योद्धाओं की उत्पत्ति हुई। उसकी जंघाओं से वैश्यों की उत्पत्ति हुई और उसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुये।"

मनु तथा जाति की उत्पत्ति

21. तत्पश्चात्, ब्राह्मण लेखक मनु ने जातियों की उत्पत्ति निम्न प्रकार से

---

1. उपरोक्त पृ 50।
2. हिस्ट्री आफ इण्डिया, रोमिला थापर (1966 संस्करण से उद्धृत) पृष्ठ 39-40।

वर्णित की[1] :—

"विश्व रचना के आदिकाल में कल्पनातीत जो समस्त रचित वस्तुओं का आधार था, अपनी विचार शक्ति से एक सुनहरे अण्डाकार की रचना की, जिससे विख्यात विश्व के निर्माता ब्रह्मा के रूप में उसने स्वयं जन्म लिया। उसने अपने मुख, भुजाओं, जघाओं तथा पैरों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न किये। ये संक्षिप्ततः मानव समाज में पुजारी, योद्धा, व्यापारी और सेवक वर्ग थे।"

नीची जातियों को उनके अधिकार से वंचित—मनु

22. ऐसा प्रतीत होता है कि मनु अपने सिद्धान्त से एक अन्य उद्देश्य की पूर्ति करना चाहते थे, यथा पुरोहिताई को धर्म से संलग्न करना, जिससे नीचे की जातियों को सदैव के लिये विद्रोह करने के अवसर से वंचित रखा जा सके। संभवतः यही वह कारण है कि नीची जातियों के सदस्य सदैव अपने समुदाय में ही संतुष्ट रहे। उनकी इस निम्नस्तर हेतु स्फूर्त स्वीकारोक्ति में योगदान देनेवाला दूसरा कारण "कर्म" का सिद्धान्त था। इस सिद्धान्त के अनुसार एक व्यक्ति अपने पिछले जन्म के कर्मों के कारण अपने वर्तमान जीवन में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करता है, जबकि उसके वर्तमान जीवन के कर्मों का उसके भावी जीवन में श्रेष्ठतर या निम्नतर स्थान प्राप्त करने में योगदान होता है। जिस समुदाय में मनुष्य का जन्म होता था, उसके नियमों तथा उसके उपयुक्त आदर्शों का पालन करना अच्छा कर्म समझा जाता था, जबकि प्रतिष्ठित स्थान हेतु महत्वाकांक्षा रखना या समाज के किसी बाह्य समुदाय के जीवन आदर्शों के अनुरूप कर्म करना बुरा या पाप कर्म समझा जाता था।

कर्म तथा वर्ग-विद्रोह

23. लेखकों के दूसरे वर्ग[2] ने जाति प्रथा की उत्पत्ति पर मार्क्स का सिद्धान्त लागू किया है। उनके मतानुसार [illegible] ने समाज में अपने स्वयं के लिये एक विशेषाधिकारयुक्त स्थान प्राप्त कर लिया, अर्थात् जिस कार्य के आधार पर लोगों का अस्तित्व बना रहा, वह नीचे वर्ग के लोगों पर डाल दिया गया। वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत [illegible] उत्पीड़ितों के विद्रोह और विरोध के पर्याप्त उपाय उत्पन्न करने के लिये [illegible] तथ्य द्वारा दिया जाता है कि ब्राह्मणों ने [illegible] अपनी स्वयं की पवित्रता और [illegible] के नियम में विश्वास के पौराणिक [illegible] सफलतापूर्वक सुरक्षित रखा। [illegible]

1. दी पीपल ऑफ इण्डिया, जे. ई. [illegible] (1915 संस्करण), पृष्ठ 3[illegible]
2. मेन इन इण्डिया, एन. के. बोस [illegible] संस्करण), पृष्ठ 2[illegible]; [illegible] सिस्टम—एन. प्रसाद (1957 संस्करण)।

ज्यों का त्यों बनाये रखा तथा अन्य वर्गों के बीच शक्ति के वितरण में मतभेदों को, जैसे कि वह पश्चिम में विकसित हुए, अनुमति नही दी।

24. प्रारम्भ से ही जाति को धन्धे से संलग्न किया गया था। सभ्यता के विकास के साथ-साथ नये धन्धों के प्रादुर्भाव ने नई जातियों को जन्म दिया, और अब एक भापीय प्रदेश में ही सैकड़ों जातियां हैं, यद्यपि उनमें से अधिकांश को पांच बड़ी-बड़ी श्रेणियों मे विभक्त किया जा सकता है, चार परम्परागत वर्ण तथा पांचवी "अछूत"।

अछूतों की उत्पत्ति

25. अनन्य वर्ण व्यवस्था में तीन उच्च वर्ण के लोगों को नीच जाति की स्त्रियों से विवाह करने की अनुमति थी, परन्तु इसके विपरीत आचरण की अनुमति नही थी। एक उच्च कुलीन स्त्री का एक निम्न वर्ण के मनुष्य के साथ विवाह दुष्कर्म समझा जाता था और ऐसी दम्पत्ति की सन्तान परम्परागत वंश के बाहर तथा "अछूत" समझी जाती थी। "अछूत" शब्द का संदर्भ अन्य जातियों द्वारा उनके साथ संसर्ग टालने की प्रथा से है। उन समुदायों के सदस्यों के साथ अन्य जातियों के सदस्यों द्वारा शारीरिक संपर्क को भी दूषित समझा जाता था। अब तक उन्हें गांव के सार्वजनिक कुएं से पानी खींचने की अनुमति नही थी, न वे मन्दिरों में प्रवेश पाने के ही अधिकारी थे। अगर कोई व्यक्ति अछूत से छू जाता तो उसे उसके पश्चात् तुरन्त स्नान करना पड़ता था, और कभी-कभी तो उसे अपने दूषण के निवारण हेतु वस्त्र भी धोने पड़ते थे।

परलिया हरिजनों द्वारा सूचक घण्टियों का बांधना

26. दक्षिण भारत के परलिया जाति के सदस्यों को अपनी उपस्थिति अवगत कराने के लिये सूचक घंटियां लेकर चलना आवश्यक था, ताकि उच्च जाति के सदस्य उनके संसर्ग मे आकर दूषित न हो जायें।[1]

नग्न मलाबार तट पर शूद्रों की एक जाति को इस भय से नग्न प्रायः रखा जाता था कि अन्य लोग उनके लहराते हुये वस्त्रों से छू जाते थे। एक अन्य लेखक का कहना है कि एक आधुनिक ब्राह्मण डॉक्टर भी, जब वह किसी शूद्र की नाड़ी देखता है तो पहले बीमार की कलाई पर रेशम का एक छोटा टुकड़ा लपेटता है ताकि वह उसके चर्म को छूने से दूषित न हो जाये[2]।

नीग्रो समस्या तथा हरिजन समस्या

27. अछूत, जिन्हें महात्मा गांधी हरिजन या ईश्वर के मनुष्य कहते थे,

---

1. दी एसेंस एण्ड दी रिएलिटी ऑफ कास्ट सिस्टम, कन्ट्रीब्यूशन्स टू इन्डियन सोशियोलोजी, सी. बोगले (1958 संस्करण) पृष्ठ 217-230।
2. कास्ट एण्ड क्लास इन इन्डिया—जी. एस. गुर्य (1957 संस्करण)।

उनकी समस्या कुछ संदर्भों में संयुक्त राज्य या दक्षिण अफ्रीका की नीग्रो समस्या के समान है, जबकि अन्य प्रसंगों मे भारत के लिये यह अनन्य है । संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा भारत में उच्च जातियां शक्तिशाली अधिकारों का प्रयोग करके अपना वरिष्ठ स्थान बनाये हुये हैं और वे अपनी प्रतिष्ठा को विस्तृत दार्शनिक, धार्मिक, मानसिक या जननिक स्पष्टीकरणों द्वारा प्रमाणित करते है । हरिजन के विपरीत नीग्रो को शारीरिक रूप से श्वेतों के सम्पर्क में आने की अनुमति है ।

सुधारकों का योगदान

28. ईसा से पूर्व सातवीं शताब्दी में महान् विधि और रीति निर्माता याज्ञवल्क्य ने रंग-भेद के विरुद्ध इन शब्दों में अपनी आवाज उठाई :—

> "सद्गुणों की उत्पत्ति हमारे धर्म या धर्म के रंग से नहीं होती, सद्गुणों का तो आचरण होना है । अतएव कोई भी दूसरों के साथ ऐसा आचरण न करे, जिसकी वह दूसरों से स्वयं अपने लिये अपेक्षा न करता हो ।"

बुद्ध : जाति को मान्यता नहीं

गौतम बुद्ध ने अपने आदेश में इस जातिव्यवस्था को मान्यता नहीं दी और इस व्यवस्था को दुर्बल बनाने मे सहयोग दिया । जैनवाद, कबीर और रामदास का वैष्णववाद तथा सिखवाद जाति व्यवस्था के कुछ दुर्गुणों, विशेषतः अस्पृश्यता का उन्मूलन करनेवाले ये प्रमुख आन्दोलन थे । गुरू नानक तथा अन्य सिक्ख गुरुओं ने मानव की समानता का उपदेश दिया तथा जाति, धर्म और धन के विभाजन का प्रबल विरोध किया । राजा राममोहन राय ने अस्पृश्यता के विरुद्ध बुलन्द आवाज उठाई ।

विवेकानन्द जाति प्रथा के विरुद्ध

29. महान् स्वामी विवेकानन्द ने अपनी मातृ-भूमि के लाखों लोगों को अस्पृश्यता तथा शोषण के विरुद्ध खड़े होने के लिये प्रेरित किया । भारत के लोगों के प्रति स्वामीजी की चिरस्मरणीय उद्बोध वाणी का उल्लेख करना आवश्यक है । उन्होंने कहा[1] :—

> "प्रत्येक मनुष्य में समान शक्ति विद्यमान है, एक में यह अधिक प्रकट होती है दूसरे में कम । फिर विशिष्टता का दावा कहां रहा ? समस्त ज्ञान प्रत्येक जीवात्मा में विद्यमान है, यहां तक कि सबसे अनभिज्ञ मे भी । उसने उसकी अभिव्यक्ति नहीं की । शायद-उसको इसका अवसर न मिला हो । शायद वातावरण उसके अनुकूल नहीं रहा हो । जब उसे अवसर प्राप्त होगा तो वह उसकी अभिव्यक्ति करेगा ।

---

1. सोशियो पोलिटीकल व्यूज आफ विवेकानन्द, विनय के. राय, [पृष्ठ 9, 11, 26, 30-31, 34]

वेदान्त में इस विचारधारा का कोई अर्थ नहीं कि एक मनुष्य दूसरे से जन्म से ही श्रेष्ठ हो। दो जातियों में एक जाति श्रेष्ठ है और दूसरी हेय, यह बिल्कुल निरर्थक है। ''

"मनुष्य मे जन्म से अनेकता होगी, कुछ लोगों में अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक शक्ति होगी। हम उसको रोक नहीं सकते '' परन्तु इस शक्ति के आधार पर वे उन लोगों को अन्धाधुन्ध रौंदकर धनोपार्जन करने के लिये आरक्षित करें जो उनके समान इतना अधिक धन अर्जित नहीं कर सकते, किसी विधि का अंग नहीं है और यह संघर्ष उसी के विरुद्ध है। दूसरे का लाभ उठाकर उससे आनन्दानुभूति एक विशेषाधिकार बन गया है और इसके हाथों सदियों से नैतिकता के उद्देश्य का विनाश होता आया है। ''

"हमारे धनी पूर्वज हमारे देश के जन साधारण को तब तक पैरों तले कुचलते चले गये जब तक वे असहाय न हो गये तथा गरीब लोग इस यन्त्रणा के तले दबकर जब तक यह न भूल गये कि वे मानव थे। उन्हें सदियों तक केवल लकड़ी काटने तथा पानी खींचने के लिये मजबूर किया गया है, कि उनका जन्म दास के रूप मे हुआ है, उन्होंने लकड़हारे या भिश्ती के रूप में जन्म लिया है। हमारी वर्तमान समय की समस्त गर्वीली शिक्षा के आधार पर अगर कोई व्यक्ति उनके लिये करुण शब्द कहता है तो मैं अक्सर अनुभव करता हूं कि लोग इन गरीब पद-दलित लोगों को ऊंचा उठाने के अपने कर्तव्य से एकदम विमुख हो जाते हैं। इतना ही नहीं, मैं यह भी देखता हूं कि सब प्रकार के अत्यन्त पैशाचिक और निर्दयी तथा अशुद्ध परम्परागत विचारों से संचारित होकर चुने हुये तथा गरीब लोगों पर और अधिक निर्दयता और जुल्म ढहराने के लिये पश्चिमी ससार द्वारा प्रयुक्त अन्य अण्ट-सण्ट तर्क, वितर्क प्रस्तुत किये जाते हैं। ''

"हे ब्राह्मणो! अगर ब्राह्मण में परिय की अपेक्षा ज्ञानार्जन का श्रेष्ठ प्रवणता का आधार पैतृक है तो ब्राह्मणों पर शिक्षा के लिये अधिक व्यय मत करो बल्कि समस्त परिया लोगों पर व्यय करो। निर्बलों को दो, क्योंकि समस्त दान की उनको आवश्यकता है। अतएव भारत का यह पद-दलित जन-समूह, हमारे करोड़ों लोग, यह चाहते हैं कि हम उनको सुनें और समझें कि उनकी वास्तविक स्थिति क्या है? सदैव प्रत्येक स्त्री, पुरुष और बालक को बिना जन्म या वर्ण भेद के, बिना दुर्बलता और शक्ति के, भेदभाव के, सशक्त या अशक्त से परे, ऊंच और नीच से परे, प्रत्येक से परे, सुने और समझे, वहीं पर विद्यमान हैं सब लोगों की महान् और अच्छे बनने की अनन्त क्षमता और अनन्त सम्भाव्यता का विश्वास दिलानेवाली यह अनन्त आत्मा! हम प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष यह प्रस्थापित करें— उठो, जागो और जब तक अपने उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो जाती, रुको मत! उठो, जागो! दुर्बलता की मोह-निद्रा से जागो। वस्तुतः कोई दुर्बल नहीं, आत्मा अनन्त है, सर्व शक्तिमान है और सर्वज्ञ है। अपने पैरों पर खड़े हो जाओ। अपने अधिकार पर डटे रहो। तुम में विद्यमान ईश्वर का आह्वान करो, उसका बहिष्कार न

करो । हमारी जाति में असीमित अकर्मण्यता, असीमित दुर्बलता और असीमित मोहमाया रही और अब भी है । जब यह सुप्त आत्मा जागृत होकर चैतन्य हो जायेगी तो शक्ति आयेगी, कीर्ति आयेगी, अच्छाई आयेगी, पवित्रता आयेगी और प्रत्येक सुन्दर वस्तु आयेगी। ...

"हमारा श्रमजीवी वर्ग अपना कर्त्तव्य कर रहा है। क्या इसमे बहादुरी नहीं ? अनेक लोग, जब उनको महान् कार्य करने पड़ते हैं तो वे बहादुर निकलते हैं । एक कायर भी निःसंकोच अपने जीवन को न्योछावर कर देता है और अत्यन्त स्वार्थी व्यक्ति भी जनसमूह को प्रसन्न करने के लिये निर्लिप्त भाव से व्यवहार करता है, परन्तु वास्तव में धन्य वह है जो अपने सूक्ष्म से सूक्ष्म कार्य में भी अदृश्य रूप से निःस्वार्थ भावना और कर्तव्य परायणता व्यक्त करता है और वास्तव मे ऐसा करनेवाले वे तुम हो । सदैव सदैव दलित, हे भारत के श्रमजीवी वर्गों ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं । "

दयानन्द का जाति प्रथा के विरुद्ध विद्रोह

30. स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की रचना करके मानवता के इस कलंक के विरुद्ध संघर्ष जारी किया। भारत सेवाश्रम संघ के स्वामी प्रणाभानन्द ने साम्प्रदायिकता विरोधी आन्दोलन शुरू किया । 1977 मे स्वामी सजदानन्द ने दलित जाति के लोगों को संगठित करके ओनकालाम के पवित्र तालाब के जल को स्पर्श करने के लिए आन्दोलन प्रारम्भ किया और मद्रास सरकार ने उनका अभियोजन किया। 1928 मे महाड़ मे हरिजनों के सिविल अधिकार स्थापित करने के लिए सांई बाबा साहब ने डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सत्याग्रह आन्दोलन को प्रारम्भ किया। 1936 में ट्रावनकोर के महाराजा मन्दिर-प्रवेश उद्घोषणा जारी करके हरिजनों के लिये मन्दिरों के द्वार खोलने में अग्रणी बनकर, राजतन्त्रीय होते हुये भी, प्रगतिशील सिद्ध हुये ।

कालारम मन्दिर सत्याग्रह

31. 1930 मे डॉ. अम्बेडकर ने कालारम मन्दिर सत्याग्रह का आयोजन किया और 1932 मे उन्होंने पुनः प्रख्यात मुकन्द सत्याग्रह का आयोजन किया। भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाधी ने तब पूना समझौते में यह घोषित किया कि वे अस्पृश्यता को 10 वर्षों में समाप्त कर देंगे । उन्होंने घोषणा की कि वर्ग के रूप मे छद्मवेशधारी साम्प्रदायिकता के भूत का दमन कर दो ।

हरिजन साप्ताहिक अछूतोद्धार

32. हरिजन सेवक संघ के गठन तथा महात्मा जी के विख्यात साप्ताहिक "हरिजन" के प्रकाशन ने इन पद-दलितों के प्रति उनकी प्राथमिकता दर्शित की । उन्होने अछूतोद्धार को अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य तथा स्वतन्त्रता संग्राम का अविकल भाग बनाया । महात्मा गांधी ने छुआछूत के विरुद्ध अनेक आन्दोलनों का सूत्रपात

किया। अतएव स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् इसके उन्मूलन हेतु संविधान के प्रारूप में अनुच्छेद 17 का समावेश होना प्राकृतिक था। महात्मा गाधी ने अछूतों की अवस्था को सुधारने के लिये अपना सारा जीवन लगा दिया। महात्माजी ने अपने आश्रम में जाति-भेद को स्वीकृति नही दी तथा अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिये उपवास किये। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने संविधान सभा के अन्दर तथा बाहर अछूतों तथा निम्नवर्ग के लोगो की हिमायत की।

डॉ. अम्बेडकर का संविधान सभा में तर्क

33. डॉ. अम्बेडकर द्वारा संविधान सभा मे अन्तिम भाषण समानता संहिता की योजना तथा जाति-रहित समाज के तर्क का निर्वचन करने के लिये नहीं, बल्कि प्रदीप्त करने के लिये हृदयंगम किया गया।[1]

तीसरी चीज जो हमें करनी चाहिये वह यह है कि हमें केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये। हमें अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता को सामाजिक स्वतन्त्रता का रूप देना चाहिये। राजनैतिक स्वतन्त्रता का आधार जब तक सामाजिक स्वतन्त्रता नही होता, वह अधिक समय तक टिक नहीं सकती। सामाजिक स्वतन्त्रता का क्या तात्पर्य है? इसका अर्थ है जीवन का एक तरीका जिसमें स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व को जीवन के सिद्धान्तों के रूप में मान्यता दी जाती है। स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व के ये सिद्धान्त एक त्रित्व में पृथक्-पृथक् प्रकरण नही माने जा सकते। वे त्रित्व का इस अर्थ में सामंजस्य निर्मित करते हैं कि एक को दूसरे से पृथक् करना स्वतन्त्रता के समायोजन को ही असफल कर देना है। स्वतन्त्रता को समानता से अलग नही किया जा सकता। स्वतन्त्रता और समानता को बन्धुत्व से भी पृथक् नही किया जा सकता। बिना बन्धुत्व के स्वतन्त्रता और समानता में प्राकृतिक सामंजस्य उत्पन्न नही हो सकता। उन्हे लागू करने के लिये कान्स्टेबल की आवश्यकता होगी। हमें इस तथ्य से प्रारम्भ करना चाहिये कि भारतीय समाज में दो वस्तुओं का पूर्ण अभाव है। इनमें से एक समानता है। भारत में हमारे यहां सामाजिक धरातल पर वर्गीकृत असमानता के सिद्धान्तो पर आधारित एक समाज है जिसका तात्पर्य है कि कुछ लोगों की उन्नति और शेष का पतन। हमने 26 जनवरी, 1950 को एक विरोधाभासी जीवन में प्रवेश किया। हमारे यहा राजनीति में समानता होगी तथा सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता होगी। राजनीति में हमारी मान्यता 'एक व्यक्ति, एक मत' तथा 'एकमत एक मूल्य' के सिद्धान्त में होगी। हमारे सामाजिक और आर्थिक ढांचे में हम 'एक मनुष्य एक मूल्य' के सिद्धान्त तो निषिद्ध करते जा रहे हैं। हम यह विरोधाभासपूर्ण जीवन कब तक जीते रहेंगे। हम अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को कब तक निषिद्ध करते रहेंगे। अगर हम इसे दीर्घकाल तक निषिद्ध करते रहेंगे तो हम अपनी

1. कीर: डॉ. अम्बेडकर—लाइफ एण्ड मिशन—पोपूलर प्रकाशन, बम्बई, द्वितीय संस्करण पृष्ठ 412।

राजनैतिक स्वतन्त्रता को खतरे में डालकर ही ऐसा करेंगे। हमें इन विरोधाभास को शीघ्रतम संभव क्षण में दूर करना चाहिये, अन्यथा असमानता से पीड़ित लोग राजनैतिक स्वतन्त्रता के इस ढांचे को उखाड़ देंगे, जिसे इस सभा ने इतना श्रमपूर्वक निर्मित किया है। (गहरे शब्द जोड़े गये)

वास्तव में दूसरे दृष्टिकोण से अनुच्छेद 16 (4) सामन्ती इतिहास द्वारा समाजच्युत एक बड़ी सामाजिक विद्रूपता तथा मानव अधिकारों के निषेध को नहीं करने का प्रयोजन पूरा करता है। मानव अधिकारों की सामाजिक विचारधारा के तत्वों में समाजार्थिक अधिकार सम्मिलित हैं। क्योंकि सामाजिक न्याय की आधार-भूत अवस्था के बिना सम्मान सहित मानवीय जीवन एक असंभावना है। इस प्रकार अनुच्छेद 14 से 16 द्वारा उद्घोषित एक जीवंत समानता के लिये हरिजन-गिरिजन समुदाय को ऊंचा उठाने हेतु एक विशाल समाजार्थिक योजना को साकार रूप देना अपरिहार्य है। यहां यह उल्लेख करना चाहिये कि प्रार्थी ने इन अत्यन्त पिछड़े लोगों के समुदायों के सामाजिक क्षेत्रों में विकास हेतु राज्य की कार्यवाही की आवश्यकता का विरोध नहीं किया अपितु उसके सुविस्तृत आधारभूत समानता के अधिकार के स्खलन का विरोध किया जो देश के असम्पन्न लोगों के साथ हो रहा है। हम यह रेखा किस स्थान पर खींचें ?

34. हमारे संविधान के निर्माताओं ने अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिये अनुच्छेद 17 के अधीन विशेष प्रावधान सम्मिलित किये :

"अस्पृश्यता" का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। "अस्पृश्यता" से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।

35. डॉ. मनमोहन दास ने अनुच्छेद 11, जो अन्त में अनुच्छेद 17 बना, के प्रारूप पर अस्पृश्यता निवारण हेतु संविधान सभा[1] में निम्नलिखित वक्तव्य दिया :—

"यह खण्ड कुछ अल्पसंख्यक जातियों को सुरक्षा या विशिष्ट विशेषाधिकार प्रदान करना प्रस्तावित नहीं करता बल्कि भारतीय जनसंख्या के छठे भाग को अविरत पराभव और निराशा तथा निरन्तर तिरस्कार और अपमान से बचाने का प्रस्ताव करता है। अस्पृश्यता की प्रथा ने भारतीय जनसंख्या के एक बड़े भाग को केवल शर्म तथा अपमान और निराशा तथा वैकल्य के घोर रसातल तक ही नहीं पहुंचाया बल्कि इसने हमारे राष्ट्र की शक्ति को नष्ट कर दिया है। श्रीमान्, मुझे इसमें संशय नहीं कि यह खण्ड इस सदन द्वारा निर्विरोध स्वीकार कर लिया जायेगा, इसके लिए केवल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही वचनबद्ध नहीं है, बल्कि इस देश के लाखों अछूतों के साथ न्याय और निष्पक्षता के हित में, भारत की सीमाओं से परे हमारी सद्भावना और सम्मान की रक्षा करने हेतु, यह खण्ड जो अस्पृश्यता की प्रथा को एक

1. कोन्स्टीट्यूएन्ट असेम्बली ऑफ इण्डिया—भाग 5—7, 29 नवम्बर, 1948, पृष्ठ 666।

किया। अतएव स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् इसके उन्मूलन हेतु संविधान के प्रारूप में अनुच्छेद 17 का समावेश होना प्राकृतिक था। महात्मा गांधी ने अछूतों की अवस्था को सुधारने के लिये अपना सारा जीवन लगा दिया। महात्माजी ने अपने आश्रम में जाति-भेद को स्वीकृति नहीं दी तथा अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिये उपवास किये। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने संविधान सभा के अन्दर तथा बाहर अछूतों तथा निम्नवर्ग के लोगों की हिमायत की।

डॉ. अम्बेडकर का संविधान सभा में तर्क

33. डॉ. अम्बेडकर द्वारा संविधान सभा में अन्तिम भाषण समानता संहिता की योजना तथा जाति-रहित समाज के तर्क का निर्वचन करने के लिये नहीं, बल्कि प्रदीप्त करने के लिये हृदयंगम किया गया।[1]

तीसरी चीज जो हमें करनी चाहिये वह यह है कि हमें केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये। हमें अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता को सामाजिक स्वतन्त्रता का रूप देना चाहिये। राजनैतिक स्वतन्त्रता का आधार जब तक सामाजिक स्वतन्त्रता नहीं होता, वह अधिक समय तक टिक नहीं सकती। सामाजिक स्वतन्त्रता का क्या तात्पर्य है? इसका अर्थ है जीवन का एक तरीका जिसमें स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व को जीवन के सिद्धान्तों के रूप में मान्यता दी जाती है। स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व के ये सिद्धान्त एक त्रित्व में पृथक्-पृथक् प्रकरण नहीं माने जा सकते। वे त्रित्व का इस अर्थ में सामंजस्य निर्मित करते हैं कि एक को दूसरे से पृथक् करना स्वतन्त्रता के समायोजन को ही असफल कर देता है। स्वतन्त्रता को समानता से अलग नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्रता और समानता को बन्धुत्व से भी पृथक् नहीं किया जा सकता। बिना बन्धुत्व के स्वतन्त्रता और समानता में प्राकृतिक सामंजस्य उत्पन्न नहीं हो सकता। उन्हें लागू करने के लिये कान्स्टेबल की आवश्यकता होगी। हमें इस तथ्य से प्रारम्भ करना चाहिये कि भारतीय समाज में दो वस्तुओं का पूर्ण अभाव है। इनमें से एक समानता है। भारत में हमारे यहां सामाजिक धरातल पर वर्गीकृत असमानता के सिद्धान्तों पर आधारित एक समाज है जिसका तात्पर्य है कि कुछ लोगों की उन्नति और शेष का पतन। हमने 26 जनवरी, 1950 को एक विरोधाभासी जीवन में प्रवेश किया। हमारे यहा राजनीति में समानता होगी तथा सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता होगी। राजनीति में हमारी मान्यता 'एक व्यक्ति, एक मत' तथा 'एकमत एक मूल्य' के सिद्धान्त में होगी। हमारे सामाजिक और आर्थिक ढाचे में हम 'एक मनुष्य एक मूल्य' के सिद्धान्त तो निषिद्ध करते जा रहे हैं। हम यह विरोधाभासपूर्ण जीवन कब तक जीते रहेंगे। हम अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को कब तक निषिद्ध करते रहेंगे। अगर हम इसे दीर्घकाल तक निषिद्ध करते रहेंगे तो हम अपनी

1. कीर: डॉ. अम्बेडकर—लाइफ एण्ड मिशन—पोपूलर प्रकाशन, बम्बई, द्वितीय संस्करण पृष्ठ 412।

राजनैतिक स्वतन्त्रता को खतरे में डालकर ही ऐसा करेंगे। हमें इस विरोधाभास को शीघ्रतम संभव क्षण में दूर करना चाहिये, अन्यथा असमानता से पीड़ित लोग राजनैतिक स्वतन्त्रता के इस ढांचे को उखाड़ देंगे, जिसे इस सभा ने इतना श्रमपूर्वक निर्मित किया है। (गहरे शब्द जोड़े गये)

वास्तव में दूसरे दृष्टिकोण से अनुच्छेद 16 (4) सामन्ती इतिहास द्वारा समाजच्युत एक बड़ी सामाजिक विद्रूपता तथा मानव अधिकारों के निषेध को सही करने का प्रयोजन पूरा करता है। मानव अधिकारों की सामाजिक विचारधारा के तत्वों में समाजार्थिक अधिकार सम्मिलित हैं। क्योंकि सामाजिक न्याय की आधारभूत अवस्था के बिना सम्मान सहित मानवीय जीवन एक असभावना है। इस प्रकार अनुच्छेद 14 से 16 द्वारा उद्घोषित एक जीवंत समानता के लिये हरिजन-गिरिजन समुदाय को ऊंचा उठाने हेतु एक विशाल समाजार्थिक योजना को साकार रूप देना अपरिहार्य है। यहां यह उल्लेख करना चाहिये कि प्रार्थी ने इन अत्यन्त पिछड़े लोगों के समुदायों के सामाजिक क्षेत्रों में विकास हेतु राज्य की कार्यवाही की आवश्यकता का विरोध नहीं किया अपितु उसके सुविस्तृत आधारभूत समानता के अधिकार के स्खलन का विरोध किया जो देश के असम्पन्न लोगों के साथ हो रहा है। हम यह रेखा किस स्थान पर खींचें ?

34. हमारे संविधान के निर्माताओं ने अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिये अनुच्छेद 17 के अधीन विशेष प्रावधान सम्मिलित किये :

"अस्पृश्यता" का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। "अस्पृश्यता" से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।

35. डॉ. मनमोहन दास ने अनुच्छेद 11, जो अन्त में अनुच्छेद 17 बना, के प्रारूप पर अस्पृश्यता निवारण हेतु संविधान सभा[1] में निम्नलिखित वक्तव्य दिया :—

"यह खण्ड कुछ अल्पसंख्यक जातियों को सुरक्षा या विशिष्ट विशेषाधिकार प्रदान करना प्रस्तावित नहीं करता बल्कि भारतीय जनसंख्या के छठे भाग को अविरत पराभव और निराशा तथा निरन्तर तिरस्कार और अपमान से बचाने का प्रस्ताव करता है। अस्पृश्यता की प्रथा ने भारतीय जनसंख्या के एक बड़े भाग को केवल शर्म तथा अपमान और निराशा तथा वैक्लव्य के घोर रसातल तक ही नहीं पहुंचाया बल्कि इसने हमारे राष्ट्र की शक्ति को नष्ट कर दिया है। श्रीमान्, मुझे इसमें संशय नहीं कि यह खण्ड इस सदन द्वारा निर्विरोध स्वीकार कर लिया जायेगा, इसके लिए केवल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ही वचनबद्ध नहीं है, बल्कि इस देश के लाखों अछूतों के साथ न्याय और निष्पक्षता के हित में, भारत की सीमाओं से परे हमारी सद्भावना और सम्मान की रक्षा करने हेतु, यह खण्ड जो अस्पृश्यता की प्रथा को एक

1. कोन्स्टीट्यूएन्ट असेम्बली आफ इण्डिया—भाग 5—7, 29 नवम्बर, 1948, पृष्ठ 666।

दण्डनीय अपराध मानता है, इसे स्वतन्त्र तथा स्वावलम्बी भारत के संविधान में अवश्य स्थान प्राप्त होना चाहिये। श्रीमान्, मैं विश्वास नहीं करता कि इस गरिमामय परिषद में एक भी व्यक्ति ऐसा हो जो इस अनुच्छेद में निहित उद्देश्य और सिद्धान्तों का विरोध करता हो। अतः श्रीमान् मैं सोचता हूं कि आज 29 नवम्बर, 1948 का दिन हम अछूतों के लिए एक महान् और चिरस्मरणीय दिन है। आज का दिन इस विशाल देश में बसने वाले 5 करोड़ भारतीयों के लिये इतिहास में मुक्ति-दिवस के नाम से, पुनर्जीवन के नाम से विख्यात होगा। इस नये युग के प्रवेश पर खड़े हुए कम से कम हम अछूत लोगों के लिए हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के ये प्रेमपूर्ण तथा सद्भावनापूर्ण, शब्द स्पष्टतः जो मेरे मस्तिष्क में गूंज रहे हैं और जो इन पद-दलित समुदायों हेतु एक व्याकुल हृदय के उद्गार थे। गांधीजी ने कहा-'मैं पुनर्जन्म नहीं चाहता, परन्तु मुझे पुनर्जन्म प्राप्त हो भी तो मेरी यह अभिलाषा है कि मेरा जन्म एक हरिजन, एक अछूत के रूप में हो ताकि मैं जनमानस के इन वर्गों पर थोपी गई उत्पीड़न तथा अपमान के विरुद्ध एक सतत् संघर्ष एक आजीवन संघर्ष का नेतृत्व कर सकूं।' अगर भारत की जनसंख्या के पांचवें भाग को शाश्वत पराभव में रखा जाता है तो 'स्वराज' शब्द हमारे लिए अर्थहीन हो जायेगा। महात्मागांधी अब हमारे समक्ष जीवित नहीं हैं। अगर वे जीवित होते तो आज पृथ्वी पर उनसे अधिक खुश, अधिक प्रसन्न और अधिक सन्तुष्ट कोई नही होता। केवल महात्मा गांधी ही नही, अपितु इस पुरातन भूमि के अन्य महान् तथा दार्शनिक स्वामी विवेकानन्द, राजाराम मोहन राय, रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा अन्य, जिन्होंने इस जघन्य प्रथा के विरुद्ध घोर संघर्ष का नेतृत्व किया, वे भी आज यह देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते कि स्वतन्त्र स्वाधीन भारत ने अन्त में निर्णायक रूप से भारतीय समाज के शरीर से इस घातक वर्ण का अन्त कर दिया है। हिन्दू होने के नाते मैं आत्मा की अजरता में विश्वास रखता हूं। इन महान् व्यक्तियों की आत्माएं, जिनकी साधना तथा जीवन पर्यन्त सेवा के बिना भारत वह नहीं होता जो आज है, हमें देख कर इस समय अस्पृश्यता की इस घातक प्रथा को समाप्त करने की हमारी हिम्मत और साहस पर प्रफुल्लित होगी :

अब मैं निर्देशक तत्वों के बारे में वर्णन करता हूं—

निर्देशक तत्वों का न्याय-शास्त्र

36. निर्देशक तत्वों को देश का शासन चलाने में मूलभूत घोषित किया गया है और अगर कोई सरकार उनकी अवहेलना करती है तो उसके लिए चुनाव के समय उसे मतदाता को अवश्य उत्तर देना पड़ेगा। निर्देशक तत्वों की अन्तर्वस्तु को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) कुछ आदर्श, विशिष्टतः आर्थिक, जिनके लिये संविधान निर्माताओं की अभिलाषा है कि राज्य सरकार उनके लिये प्रयत्न करें,

(2) भावी विधायिका और भावी कार्यकारिणी को यह बताने के लिए कुछ

निर्देश कि वे अपनी विधायी और कार्यकारी शक्तियों का उपयोग किस प्रकार करें,

(3) नागरिकों के कुछ अधिकार जो न्यायालयों द्वारा मूल अधिकारों के रूप में लागू किये जाने के योग्य नही होंगे परन्तु उसके उपरान्त भी जिन्हें राज्य अपनी विधायी एवं शासकीय नीति द्वारा नियमन करके सुरक्षित रखने का उद्देश्य रखेगा।

37. हम यहां उपरोक्त कथित तीसरे वर्ग से सम्बन्धित हैं। निर्देशक तत्वों में (1) अनुच्छेद 38 के अधीन कल्याण की अभिवृद्धि हेतु तथा (2) अनुच्छेद 46 के अधीन अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा कमजोर तबकों के शैक्षणिक और आर्थिक हितों की अभिवृद्धि हेतु दी अनुच्छेद हैं। अनुच्छेद 38 यह दर्शित करता है कि सविधान के निर्माताओं ने एक विशुद्ध पुलिस राज्य की नही अपितु एक कल्याणकारी राज्य की अपेक्षा की थी, जिसके कार्य संविधान के दायरे के अन्दर हों तथा इसकी सीमाओं के अपवाद सहित यह लोक-कल्याण के समानुपातिक हो।[1]

38. अनुच्छेद 46 की नीति लोगों के कमजोर तबकों के शैक्षणिक तथा आर्थिक हितो के लिए कार्य करना तथा विशेष तौर से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की, उनके साथ किये जानेवाले सामाजिक अन्याय और समस्त प्रकार के शोषण से रक्षा करना है। मूल अधिकार तथा निर्देशक तत्त्व हमारे सविधान की अन्तरात्मा हैं। केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य में न्यायाधीश हेगड़े *तथा न्यायाधीश मुखर्जी ने निम्नलिखित सप्रेक्षित किया : 'निर्देशक तत्त्वों का प्रयोजन* अहिंसक सामाजिक क्रान्ति करके कुछ सामाजिक और आर्थिक उद्देश्य निश्चित करके उन्हें अविलम्ब प्राप्त करना है। इस प्रकार की सामाजिक क्रान्ति के द्वारा सविधान साधारण मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना और समाज का ढाचा परिवर्तित करना चाहता है। उसका उद्देश्य भारतीय जनसमूह को यथार्थ रूप से स्वतत्र कराना है। निर्देशक तत्त्वों को निष्ठापूर्वक कार्यरूप में परिणित किये बिना संविधान द्वारा अपेक्षित कल्याणकारी राज्य की प्राप्ति सम्भव नही है।"

उसी मुकदमे में न्यायाधीश रे ने कहा—

'निर्देशक तत्त्व भी मूलभूत है। अगर वे कुछ लोगों के मूल अधिकारों से प्रबल हों तो वे सामान्य हित मे सहायक होने तथा आर्थिक व्यवस्था के सामान्य अहित में परिणत होने से रोकने के लिए प्रभावशाली हो सकते हैं।' न्यायाधीश चन्द्रचूड़ ने भी उसी मुकदमे मे निम्नलिखित कहा—"हमारे सविधान का उद्देश्य मूल अधिकारों तथा राज्य की नीति हेतु निर्देशक तत्त्वों में प्रथम को गौरवान्वित स्थान प्रदान कर तथा दूसरे उत्तरोक्त को स्थायित्व का स्थान प्रदान कर उनके बीच सामंजस्य स्थापित करना है। वे अलग-अलग नही, अपितु अभिन्न रूप से संविधान के अन्तःकरण का निर्माण करते हैं।"

---

1. लोकनाथ बनाम उड़ीसा राज्य, ए० आइ० आर० 1952, उड़

39. 42 वें संशोधन के पश्चात् अनुच्छेद 31ग के अधीन राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों को भी गौरवान्वित स्थान दिया गया था। अगर निर्देशक तत्वों को प्रभावी बनानेवाली किसी भी विधि का सृजन किया गया हो तो वह इस आधार पर अवैध नहीं मानी जावेगी कि वह संविधान में अनुच्छेद 14 और 19 द्वारा प्रदत्त किसी अधिकार से असगत थी, उसका हनन करती थी या उसमें न्यूनता उत्पन्न करती थी। दूसरे शब्दों में निर्देशक तत्वों तथा मूल अधिकारों के बीच टकराव की स्थिति में मूल अधिकार उपरोक्त वर्णित परिणाम तक निति निर्देशक तत्वों पर अभिभावी होंगे, यद्यपि हाल ही में मिनर्वा मिल्स के विनिश्चय ने 42 वें संशोधन द्वारा निर्मित संशोधनों को अभिखण्डित करके निर्देशक तत्वों पर मूल अधिकारों की सर्वोपरिता पुन: स्थापित कर दी है।

40. इस नीति को कार्यान्वित करने के लिये गत 30 वर्षों की कालावधि में शिक्षा, सेवा, अस्पृश्यता, भूमि तथा कृषि, ऋणग्रस्तता, बंधवा श्रमिक, सहकारिता, आवासन, जनजातीय क्षेत्र और लोकसभा तथा राज्य विधानसभा में प्रतिनिधित्व के क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न कदम उठाये गये हैं। राज्य विधि, न्यायालयों के विनिश्चय तथा सविधान के विभिन्न प्रावधानों को ध्यान मे रखकर समय-समय पर किये गये कार्यों पर एक दृष्टिपात करना उचित होगा।

शिक्षा का प्रसार

41. विज्ञान और टेकनालॉजी की दुनिया में लोगों की सुरक्षा, उनके कल्याण और समृद्धि के स्तर को शिक्षा द्वारा ही निर्धारित किया जाता है। अनुच्छेद 46 के अधीन दिये गए निर्देशों को कार्यान्वित करने के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियो तथा पिछड़े वर्गों के लोगों के लिए विभिन्न शैक्षणिक कार्यक्रम अंगीकृत किये गये। इन जातियों के लोग जो कई दशाब्दियों से बहिष्कृत किये जा रहे थे, तथा जिनके लिए वस्तुत: कोई शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम नहीं थे, अब धीरे-धीरे मगर दृढ़तापूर्वक ऊपर उठ रहे है। भारत सरकार द्वारा किये गए विभिन्न सर्वेक्षणों से पता चलता है कि अगर सारे भारत को दृष्टि में रखा जाये तो छात्रवृत्तियो के रूप में सुविधायें उपलब्ध कराने के पर्यन्त भी इन जातियों के प्रत्येक वर्ग मे अब तक शिक्षा का प्रसार अन्य जातियो से पिछड़ा हुआ रहा है, तथा इन लोगों को अन्य जातियों के शैक्षणिक विकास से समता स्थापित करने के लिए अब भी काफी लम्बी राह तय करनी है। पिछड़ी जातियों तथा पिछड़े वर्गों के आयुक्त ने यह प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है कि प्राथमिक स्तर पर पिछड़ी जातियों तथा पिछड़े वर्गों के विद्यार्थियों का प्रवेश काफी उत्साहवर्धक है। परन्तु इन जातियों के माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक शिक्षा के स्तरों की भर्ती के आंकड़ों मे तीव्र ह्रास है। केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने मैट्रिक पूर्व छात्रवृत्ति, मैट्रीकोत्तर छात्रवृत्ति; अतिरिक्त आर्थिक सहायता, प्रवासी छात्रवृत्ति, दक्षता छात्रवृत्ति, परीक्षा शुल्क तथा पाठन शुल्क के भुगतान से विमुक्ति, छात्रावास सुविधायें, शिक्षक सुविधायें, केन्द्रीय पाठ-

शालाओं, आयुर्विज्ञान तथा इंजीनियरी महाविद्यालयों में स्थानों के आरक्षण के रूप में विभिन्न योजनाओं का सूत्रपात किया है।

42. जहां तक आयुर्विज्ञान महाविद्यालयों में प्रवेश का सम्बन्ध है, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के लोगों को दो प्रकार की छूट दी गई है। प्रथमत: ऐसे विद्यार्थियों के लिये स्थानों का आरक्षण किया गया है, द्वितीय, प्रवेश हेतु आवश्यक अंकों के प्रतिशत में छूट दी गई है। वास्तव में, देश में इसकी एकरूपता नही है, तथा अलग-अलग राज्यों ने इस प्रकार की छूट के लिये अलग-अलग सिद्धान्त बना रखे हैं। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त ने यह प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है कि देश के 95 आयुर्विज्ञान महाविद्यालयों में से 17 ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियो के उम्मीदवारों के लिये स्थानों का कोई आरक्षण नही रखा है। जहां तक पिछड़े वर्ग के लोगों के लिये स्थानों के आरक्षण का प्रश्न है, न्यायालयों ने सदैव इस ओर इंगित किया है कि पिछड़े वर्गों के श्रेणीकरण का एक मात्र आधार केवल जाति ही नही होना चाहिये।[1] पिछड़ापन मालूम करने में यह एक यथोचित साधन हो सकता है,[2] तथा साक्षरता[3] या सामाजिक और शैक्षणिक भूमिका[4] पिछड़े वर्ग के निर्धारण का आधार हो सकते हैं। पिछड़ापन निर्धारण करने हेतु जहा उचित नैकल्य स्थापित नहीं किया गया वहां न्यायालयों ने राज्य सरकारों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त को अभिखंडित कर दिया[5]। संविधान के अनुच्छेद 15(4) के अधीन राज्य सरकार की कार्यवाही तथ्यों तथा संयोजित उचित आंकड़ों पर आधारित उद्देश्यात्मक तथा नैकल्यपूर्ण होनी चाहिये।[6]

सेवाओं में प्रतिनिधित्व

43. संविधान के अनुच्छेद 16(1) में जो कुछ वर्णित है, अनुच्छेद 16(4) उसका अपवादस्वरूप है। यह खंड राज्य को अपनी सेवाओं मे नियुक्तियो तथा पद नागरिकों के पिछड़े वर्ग के पक्ष में आरक्षित करने का अधिकार देता है। अनुच्छेद 335 में यह प्रावधान है कि नियुक्तिया करने मे अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के दावों पर प्रशासन की दक्षता को यथावत् रखकर गौर किया जायेगा। डॉ. अम्बेडकर ने यह स्पष्टीकरण दिया कि "पिछड़ा वर्ग अभिव्यक्ति का संदर्भ किसी अन्य अल्पसंख्यक जाति से नहीं बल्कि अनुसूचित जातियो और जनजातियों से है। परन्तु वास्तविकता यह है कि अनुच्छेद 335 मे शब्द 'अनुसूचित जातियां' और 'अनुसूचित जनजातिया' प्रयुक्त किये गये हैं जबकि वर्तमान खण्ड मे एक

1. एम. आर. बालाजी बनाम मैसूर राज्य, ए. आई. आर. 1963, एस. सी. 649।
2. चित्रलेखा बनाम मैसूर राज्य ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 1823।
3. एम. ए. पारथा बनाम मैसूर राज्य, ए. आई. आर. 1961, मैसूर 220।
4. डी. जी. विश्वनाथ बनाम मैसूर राज्य, ए. आई. आर. 1963 मैसूर 132।
5. रामकृष्ण सिंह बनाम मैसूर राज्य, ए. आई. आर. 1960 मैसूर 338।
6. जेकब मेथ्यू व अन्य बनाम केरल राज्य, ए. आई. आर. 1964 केरल 39।

भिन्न अभिव्यक्ति का प्रयोग किया है। यह एक भिन्न विधिक निर्वचन का मार्गदर्शन कराता है, जिससे वर्तमान खण्ड में वे लोग सम्मिलित हो सकते हैं जो अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के नहीं हैं। अनुच्छेद 46 में एक सदृश अभिव्यक्ति "दुर्बलतर अनुभाग" है जिसमें पिछड़े वर्ग भी सम्मिलित हैं। अनुच्छेद 320 (4) के अधीन, केन्द्र या राज्य के लिये अनुच्छेद 16 (4) के अधीन आरक्षण करने के लिये, लोक सेवा आयोग से परामर्श लेना आवश्यक नहीं है।

44. यद्यपि सेवाओं में आरक्षण से सम्बन्धित उपरोक्त प्रावधान तीन दशकों से अधिक अवधि से प्रवृत्त हैं, परन्तु चतुर्थ श्रेणी को छोड़कर सेवाओं की समस्त श्रेणियों मे अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की प्रतिनिधित्व सम्बन्धी स्थिति अब भी निश्चित स्तर से पीछे लड़खड़ा रही है। अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त ने प्रतिवेदित किया है कि प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी की सेवाओं में अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व 3.46 प्रतिशत तथा 5.41 प्रतिशत था और अनुसूचित जनजातियों का क्रमशः 0.69 प्रतिशत तथा 0.74 प्रतिशत था।

45. अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के अधिकारियों का राज्य सरकार की सेवाओं में प्रवेश सुधारने के लिये विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा समय-समय पर कई कदम उठाये गये हैं, जिनमें अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों का लोक सेवा आयोग, चयन मंडलों या समितियों में मनोनयम करना, राज्य सचिवालय में विशेष प्रकोष्ठ, पूर्व परीक्षा प्रशिक्षण केन्द्र तथा शिक्षण और मार्ग-दर्शन केन्द्रों का सृजन, मापदण्ड की तुलना टालने के लिये पृथक् साक्षात्कार, अधिकतम आयु सीमा में छूट तथा प्रतियोगी परीक्षा शुल्क में अनुमोचन की स्वीकृति सम्मिलित हैं। आरक्षित रिक्त स्थानों को तीन वर्ष तक आगे ले जाने से सम्बन्धित योजना का सूत्रपात भी किया गया है।

46. सामाजिक तथा शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग की उन्नति में केवल यही अपेक्षित नहीं है कि सेवाओं के निम्नतर वर्ग में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना चाहिये बल्कि यह कि सेवाओं में चयन पदों पर भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुरक्षित कराने हेतु उन्हें महत्त्वाकांक्षी होना चाहिये[1]। अतएव कई बार यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि उच्च पदों पर पदोन्नति के मामलों में भी आरक्षण होना चाहिये। रंगाचारी[2] के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने यह इंगित किया कि आरक्षण की शक्ति, जो कि राज्य को अनुच्छेद 16(4) के अधीन प्रदत्त की गई है, उसका प्रयोग राज्य द्वारा उचित मामले में, केवल नियुक्तियों के आरक्षण का प्रावधान रख कर ही नहीं अपितु, चयनित पदों के हेतु भी आरक्षण का प्रावधान रखकर किया जा सकता है।

---

1. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयुक्त का प्रतिवेदन, 1976-77, भाग I, 38।
2. महाप्रबन्धक, दक्षिण रेलवे बनाम के रंगाचारी, ए. आई. आर. 1962, एस. सी., पृष्ठ 36।

(केन्द्र सरकार की सेवाओं में 1 जनवरी, 1981 की स्थिति के अनुसार अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधित्व का ब्योरा सारिणी 9.2 में दिया गया है।)

सारणी 9.2

	समूह (श्रेणी)	कर्मचारियों की कुल संख्या	अनुसूचित जातियों के कर्मचारियों की संख्या	कुल संख्या के मुकाबले अनुसूचित जातियों का प्रतिशत	अनुसूचित जातियों के कर्मचारियों की संख्या	कुल संख्या के मुकाबले अनुसूचित जन-जातियों का प्रतिशत
केन्द्रीय सरकार की सेवाओं में अनुसूचित जातियों/जनजातियों का प्रतिनिधित्व	क (श्रेणी एक)	52,773	2,883	5.46	590	1.12
	ख (श्रेणी दो)	62,955	5,298	8.42	824	1.31
	ग (श्रेणी तीन)	18,76,784	2,43,028	12.95	59.228	3.16
	घ (श्रेणी चार)	12,35,016	2,38,989	19.35	62,672	5.07
	(मेहतरों को छोड़कर) कुल=	32,27,528	4,90,198	15.10	1,23,314	3.82
अखिल भारतीय सेवाएँ (1 जनवरी, 1982 की स्थिति के अनुसार)	भारतीय प्रशासन सेवा	4,138	417	10.01	224	5.4
	भारतीय पुलिस सेवा	2,184	219	10.02	77	3.52

अस्पृश्यता

47. जैसा कि ऊपर अनुच्छेद 17 के अधीन वर्णित किया जा चुका है, अस्पृश्यता समाप्त कर दी गई और किसी भी रूप में उसका प्रयोग वर्जित है। हिन्दुओं की लोक अभिज्ञानवाली धार्मिक संस्थाओं के द्वारा हिन्दुओं की समस्त श्रेणियों और अनुभागों हेतु खोलने के लिये भी अनुच्छेद 25(2) (ख) प्रासंगिक है। अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम 1955 सन् 1976 में संशोधित किया गया था, जिसका अब सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 पुन.नामकरण किया गया है। संशोधित अधिनियम के अधीन समस्त अपराध अपरिमर्पणीय घोषित किये गये हैं। निजी स्वामित्ववाले धार्मिक स्थल, जिनके स्वामी ने जनसाधारण द्वारा उनके उपयोग की अनुमति दे दी हो, ऐसे निजी स्वामित्ववाले स्थलों की अनुषंगी भूमि तथा उपसंगी पुण्यस्थानों सहित इन स्थलों को अधिनियम की परिसीमा में लाया गया है। अस्पृश्यता का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रचार करना या इसका ऐतिहासिक दार्शनिक या धार्मिक आधारों पर औचित्य प्रकट करना एक अपराध माना गया है।

48. देश से अस्पृश्यता के उन्मूलन हेतु समय-समय पर अनेक कदम उठाये गये हैं, जिनमें तथाकथित अधिनियम के अधीन कुछ प्रकार के सिविल तथा आपराधिक मुकदमों में अनुसूचित जाति के लोगों को विधिक सहायता की स्वीकृति, अभियोजन पर पर्यवेक्षण रखने हेतु विशेष प्रकोष्ठों की स्थापना तथा अस्पृश्यता की विद्यमानता पर सूचना देने के प्रोत्साहन सम्मिलित हैं। गुजरात में छुआछूत के मुकदमों के स्फूर्ती व्ययन हेतु कुछ चुने हुये क्षेत्रों मे चलते-फिरते न्यायालय स्थापित किये गये हैं। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के आयुक्त ने सप्रेक्षित किया है कि "हम ग्रामीण क्षेत्रों मे अस्पृश्यता के आचरण के विरुद्ध स्त्रियों की विचारधारा परिवर्तित करने में भी सफल नही हुये हैं। अगर इस सम्बन्ध मे हम सफल हो जाते है, तो अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष में हमारी आधी विजय हो जाती है।" यह आवश्यक है कि अस्पृश्यता के हानिप्रद और अनैतिक आचरण के विरुद्ध एक सामाजिक चेतना जागृत करने के लिये गैर-सरकारी अभिकरणों को सम्मिलित करना चाहिये। भयंकर रूप से प्रभावित ग्रामीण क्षेत्रों मे कार्य करने के लिये ऐसे गैर-सरकारी अभिकरणों को अनुदान के रूप में सहायता दी जानी चाहिये।

49. सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया है कि हरिजनों के लिये मन्दिरों मे प्रवेश का जो अधिकार स्वीकृत किया गया है, वह वस्तुतः हरिजनों द्वारा समस्त सामाजिक सुविधाओ तथा अधिकारो के उपभोग का प्रतीक है, क्योंकि यह सदैव स्मरण रखा जाये कि हमारे सविधान मे प्रतिष्ठापित[1] सामाजिक न्याय जीवन के प्रजातान्त्रिक ढग का मुख्य आधार है। वेंकटरमण देवेरू[2] मे सर्वोच्च न्यायालय

1. मजुरुपदासजी बनाम मूलदास, ए. आई. आर. 1966, एस. सी 1120।
2. ए. आई. आर. 1958, एस. सी. 255।

ने यह पहले ही निर्धारित कर दिया है कि यद्यपि जनता के सदस्यों को मन्दिर में पूजा करने के अधिकार से पूर्णतः वंचित रखनेवाला किसी जाति का अधिकार, अनुच्छेद 26 (ख) में निहित है, तथापि मन्दिर में पूजा के लिये प्रवेश हेतु अनुच्छेद 25(2) (ख) द्वारा घोषित अभिभूतकारी अधिकार जनता के पक्ष में उत्पन्न होने चाहिये। कुछ राज्यों में हरिजनों को मन्दिर के पुजारी नियुक्त करने के कदम उठाये जा रहे हैं। केरल सरकार ने हरिजनों को आगम पढ़ाने की व्यवस्था भी कर दी है और कुछ हरिजन उन्हें सीख भी रहे हैं।

50. एक रोचक विवाद में एक उच्च विद्यालय के मुख्याध्यापक ने सिर्फ हरिजन विद्यार्थियों के लिये स्टेन्डर्ड IX एफ नामक एक पृथक् अनुभाग की स्थापना की। अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम 1955 के अधीन अपराध करने के लिये उसके विरुद्ध एक मुकदमा प्रतिष्ठापित किया गया। यह धारित किया गया कि *हरिजन विद्यार्थियों को अस्पृश्यता के आधार पर एक पृथक् अनुभाग में अलग करना एक अपराध था।*[1]

51. महात्मा गाधी ने अस्पृश्यता की अत्यन्त कटु शब्दों में निन्दा की, यद्यपि कटुता उनके लिये अनभिज्ञ थी। उन्होंने घोषित किया, "अगर मुझे यह प्रतीत हुआ कि हिन्दुत्व वास्तव में अस्पृश्यता का समर्थक है तो मुझे स्वयं हिन्दुत्व को तिलांजलि देने मे कोई हिचकिचाहट नही होनी चाहिये। अतः मेरी यह मान्यता है कि अपने नाम की सापेक्षता बनाये रखने के लिये धर्म को नैतिकता और सदाचार के मूलभूत सत्य से असंगत नहीं होना चाहिये।" यह अतिशयपूर्ण घोषणा करते समय उन्होंने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया :—

"अस्पृश्यता के इस स्वरूप ने मुझे सदैव अत्यन्त क्लेश पहुंचाया है क्योंकि मैं हिन्दुत्व की भावना से आसक्त हिन्दुओं में से अपने आपको एक समझता हूं। अस्पृश्यता के जिस स्वरूप मे हम आज इसे मानते हैं, तथा इस पर आचरण करते हैं, उसके अस्तित्व को बनाये रखने के लिये उन समस्त ग्रन्थों में, जिन्हें हम हिन्दू शास्त्र कहते हैं, कोई भी प्रमाण पाने मे असमर्थ हूं। परन्तु जैसा कि मैंने अन्य स्थानों पर बार-बार कहा है कि अगर हिन्दुत्व वास्तव में अस्पृश्यता का समर्थन करता है तो मुझे स्वयं हिन्दुत्व को तिलांजलि देने मे कोई हिचकिचाहट नही होनी चाहिये। अतः मेरी यह मान्यता है कि अपने नाम की सापेक्षता बनाये रखने के लिये नैतिकता और सदाचार के मूलभूत सत्य से असंगत नहीं होना चाहिये। जैसा कि मेरा विश्वास है, अस्पृश्यता हिन्दुत्व का भाग नही है, अतएव मैं हिन्दुत्व से अनुरक्त हूं परन्तु मैं सदैव इस विकराल अन्याय से अधिकाधिक अशान्त होता जा रहा हूं।[2]

"मैं अस्पृश्यता को हिन्दुत्व पर सबसे बड़ा कलंक समझता हूं। यह विचारधारा मुझ में दक्षिण अफ्रीका के संघर्ष के दौरान मेरे कटु अनुभवों से नहीं

1. रामचन्द्र पिल्लई बनाम केरल राज्य (1964) 11 के. एल. आर. 225।
2. यंग इन्डिया—त्रिवेन्द्रम में एक भाषण का अंश, 20-10-27, पृष्ठ 353 व 354।

उत्पन्न हुई, इसका कारण यह तथ्य भी नहीं कि मैं किसी समय नास्तिकवादी था। इस प्रकार जैसा कि कुछ लोग कहते हैं, यह सोचना भी गलत है कि मैंने यह दृष्टिकोण अपने ईसाई धर्म के साहित्य के अध्ययन से ग्रहण किया है। ईसाइ धर्म के अध्ययन से ग्रहण किये हुये मेरे ये विचार उस समय के हैं जब न तो बाइबिल या उसके अनुयाईयों से परिचित था, न उनसे अनुरक्त था ?"[1]

52 केवल महात्मा गाधी ही नहीं, डा. राधाकृष्णन की भी यही धारणा थी कि "हिन्दुत्व ने कभी अस्पृश्यता का प्रचार नहीं किया। उनके मतानुसार चार जातियां क्रमशः विचारशील व्यक्ति, कर्मशील व्यक्ति भावशील व्यक्ति, तथा अन्य जिनमें उपरोक्त मार्गों में से किसी का चरमोत्कर्ष न हुआ हो"। डॉ. राधाकृष्णन ने कहा कि "जाति लक्षण का प्रश्न है। भागवत मे लिखा है कि जिस प्रकार ईश्वर एक है उसी प्रकार जाति भी एक है।" मनु कहते हैं कि "समस्त मनुष्य प्रथम या भौतिक जन्म से शुद्ध होते हैं, परन्तु द्वितीय या आध्यात्मिक जन्म से द्विज बनते हैं।" जाति लक्षण का प्रश्न है। कोई भी अपने कर्म से ब्राह्मण बनता है, अपने परिवार या जन्म से नहीं। अगर एक चाण्डाल भी निर्बल चरित्रवाला है तो वह ब्राह्मण है। ब्राह्मणों द्वारा पूज्य कुछ महान् ऋषि भी मिश्रित जाति के या वर्णसंकर थे। वशिष्ठ एक वेश्या के आत्मज थे, व्यास एक मछियारी के पुत्र थे तथा पाराशर एक चाण्डाल कन्या के पुत्र थे। महत्त्व आचरण का है, जन्म का नहीं। जहां तक उत्कृष्टता प्राप्त करने का प्रश्न है, 'नीच' जाति के लोग भी उतनी ही प्राप्त कर सकते हैं, जितनी 'उच्च' जाति के। श्री कृष्ण मद्भागवत गीता मे कहते हैं—"जो लोग मेरी शरण में आ जाते हैं, चाहे वे जन्म से तुच्छ हों, स्त्री हों या शूद्र, वे भी उच्चतम अवस्था को प्राप्त कर सकते है।"[2]

53. इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द एक विद्रोही और क्रान्तिकारी थे। उन्होंने कहा "आओ, मनुष्य बनो। प्रगति का सदैव विरोध करनेवाले पुरोहितों को लात मारो। क्योंकि वे कभी भी नहीं सुधरेंगे। उनके हृदय कभी विशाल नहीं बनेंगे। वे सदियो पुराने अन्धविश्वास और निरंकुशता का परिणाम हैं। सर्वप्रथम पुरोहित वृत्ति का उन्मूलन करो। आओ, मनुष्य बनो। अपने सूक्ष्म छिद्रों से बाहर आकर विशाल विश्वव्यापी दृष्टि डालो। देखो! राष्ट्र कैसी प्रगति कर रहे हैं? बुद्धजाति! प्रगति पथ पर आने से तुम अपनी जाति खो दोगे ?"[3] दलित और पिछड़े वर्गों के लिए स्वामी विवेकानन्द का हृदय सदैव रक्त स्रावित होता रहता था। उन्होंने कहा—"अल्प संख्यकों पर क्रूरता करना संसार में सबसे अधम कोटि का अन्याय है।"

1. अनटचेबिलिटी—एम. के. गाधी द्वारा—संपादक भारतन कुमारप्पा, पृ 1।
2. दी हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ-राधाकृष्णन-(दी फेमस आप्टन लेक्चर्स ऑफ 1926), पृष्ठ 121.
3. कास्ट, कल्चर एण्ड सोसलिज्म,-स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ 45।

"निम्नतर जातियों मे समाविष्ट जनसमुदाय ने सदियों से उच्च जातियों की लगातार निरंकुशता तथा पग-पग पर कडी चोट पदाघात के फलस्वरूप पूर्णत: अपनी मानवता खो दी तथा भिखारी वृत्ति का रूप धारण कर लिया है।" भंगियों और परियाहों को उनकी वर्तमान पतितावस्था में किसने ढकेला ? एक ओर हमारे आचरण में यह निष्ठुरता तथा दूसरी ओर अद्भुत अद्वैतवात (सर्वेक्यता) की शिक्षा क्या यह घावों पर नमक छिड़कना नही है ? हम कैसी हास्यास्पद स्थिति में पहुंचा दिये गये हैं ? अगर एक भंगी किसी के पास में एक भगी की तरह आता है तो वह प्लेग की भांति उसका परिहार करेगा, परन्तु ज्यों ही वह एक पादरी द्वारा प्रार्थना गुन-गुनाते हुये एक प्याला पानी अपने सिर पर गिरवा लेता है तथा गर्दन पर कोट पहन लेता है, चाहे वह कितना ही जीर्ण क्यों न हो, तथा एक कट्टर हिन्दू के कमरे मे आता है, तो मैं नही समझता हूं कि वह उससे हाथ मिलाने या उसे कुर्सी देने से मना कर सकता है। इससे अधिक कोई विडम्बना नही हो सकती। आओ, देखो ! ये पादरी लोग यहां दक्षिण में क्या कर रहे हैं ? वे लाखों की संख्या में नीची जाति के लोगो का धर्म-परिवर्तन कर रहे हैं। ट्रावनकोर में, जो भारत में प्रमुख पुरोहित-प्रधान राज्य है, जहां भूमि का प्रत्येक भाग ब्राह्मणों द्वारा धारित है""""करीब चौथाई भाग ईसाई बन गये हैं। मैं उनको दोषी नही मान सकता। उन्हें डेविड या जेसी से क्या सरोकार ! हे ईश्वर ! मनुष्य में मनुष्य के प्रति बन्धुत्व की भावना कब जाग्रत होगी !

श्री के. एम. पणिक्कर ने निम्नलिखित राय दी—

"यह प्रश्न ही उत्पन्न नही होता कि अस्पृश्यता, जो हिन्दुत्व के एक लक्षण के रूप मे विद्यमान है, अगले कुछ वर्षों की कालावधि मे समाप्त हो जायेगी। जब वह दिन आयेगा तो उत्तरजीवी हिन्दुत्व का स्वरूप वह नही होगा जिसके लिए मनु ने विधान निर्मित किया, जिससे जाति समाज सदियो तक सम्बद्ध रहा और जिसे राधाकृष्णन जैसे प्रबुद्ध ब्राह्मण आज न्याय-सगत सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। दीर्घकाल से विख्यात इस हिन्दू समाज मे उससे भी कही अधिक आमूल सुधार होता, जिसके लिए बुद्ध ने प्रयत्न किया तथा जिसके लिए उससे अधिक बहुग्राही कल्पना शंकर ने की।"[1]

54. प्रो. एल. पी. विद्यार्थी और डॉ. एन. मिश्रा ने 1960 मे बिहार के हरिजनों पर अपनी शोध में निम्नलिखिक राय प्रकट की है—

"यद्यपि जहां तक अनुसूचित जातियो का सम्बन्ध है, वे अत्यन्त प्राचीन काल से हिन्दू वर्ण-व्यवस्था का अभिन्न अंग तथा हिन्दू यजमानी व्यवस्था के अग के रूप में चली आ रही हैं तथा प्रमुख कार्यों में अपनी भूमिका अदा करती आई है तथापि पौराणिक, ऐतिहासिक तथा प्रसंगागत कारणों के साथ-साथ उनके अपवित्र धन्धों

---

1. हिन्दूइज्म एण्ड दी मोर्डन वर्ल्ड—के. एम, पणिक्कर (1938 संस्करण), पृष्ठ 50।

से सम्बद्ध होने के फलस्वरूप उनके सामाजिक सम्बन्ध में कुछ अपवाद जोड़ दिये गये और उच्चकुलीन हिन्दुओं द्वारा शास्त्रोक्त रूप से उन्हें अपवित्र समझा जाने लगा। इसने विभिन्न प्रकार की सामाजिक असमानता और असमर्थता को बढ़ावा दिया है और आज भी कभी-कभी उन पर अमानवीय अत्याचार ढाहे जाते हैं जिनका वे प्रभावी ढग मे विरोध नहीं कर सकते।"[1]

55. इसके उपरान्त भी हरिजनों और गिरिजनों की दुखान्त और मर्मस्पर्शी हालत अनन्त रूप से चली आ रही है। उन पर किये गये रोंगटे खड़े करनेवाले अत्याचार समाज को झकझोर देनेवाले और विश्व को स्तब्ध करनेवाले हैं। बेलची जैसी घटना का प्रकाश मे आना तो केवल यदा-कदा घटित होता है, जबकि अत्याचार असंख्य होते रहते हैं।

महाराष्ट्र मे अगस्त, 1978 में नव बौद्ध तथा अनुसूचित जातियों के लोगों के 1200 घरों मे आग लगा दी गई। औरंगाबाद, परमाणी और नान्देड़ जिलों के करीब एक सौ गावो मे उन लोगों की बैलगाड़ियां और साइकिलें छीन ली गई। मराठवाड़ा मे एक नौजवान हरिजन को मौत के घाट उतार दिया गया। घटना का कारण यह था कि नव बौद्ध लोग यह मांग कर रहे थे कि मराठवाडा विश्वविद्यालय का नाम परिवर्तित किया जाये और उसके स्थान पर उस विश्वविद्यालय का नाम बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय रखा जाये।[2]

तमिलनाडू मे विल्लूपुरम् ग्राम मे 24 जुलाई, 1978 से 28 जुलाई, 1978 तक अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के करीब 220 घरों और 15 दुकानो मे आग लगा दी गई तथा कई लोगो को मौत के घाट उतार दिया गया। परिवारो के वयस्क पुरुष गांवों से भाग निकले। घटना मे मारे गये अनुसूचित जातियों के लोगों में से छः व्यक्तियों की लाशें एक तालाब मे प्राप्त हुईं तथा उसी जाति के तीन व्यक्तियों की लाशें एक रेल की पुलिया के पास पड़ी हुई मिलीं।[3]

उत्तरप्रदेश में 14 अप्रैल, 1978 को अनुसूचित जाति के लोगों द्वारा आगरा के रावतपाडा बाजार मे से होकर डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के जन्म-दिवस समारोह के उपलक्ष पे जुलूस निकाला जा रहा था। जब रात्रि को जुलूस बाजार से होकर गुजर रहा था तो कुछ लोगों ने तीन पत्थर और एक लकड़ी का टुकड़ा जुलूस पर फेंका जिससे जुलूस के व्यवस्थापकों के मस्तिष्क में रोष उत्पन्न कर दिया। उन्होंने जिला अधिकारियो के समक्ष इसके विरुद्ध शिकायत की। फिर उन्होंने इस घटना के विरुद्ध 23 अप्रैल, 1978 को मौन जुलूस निकालना चाहा। जब जुलूस उस स्थल पर पहुंचा जहां से सड़क रावतपाड़ा बाजार को जाती है, जुलूस मे चलनेवाले

1. हरिजन टुडे–विद्यार्थी और मिश्रा (संस्करण 1977), प्रस्तावना का पृष्ठ 6।
2. अनुसूचित जातियो और अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त के 1977 के प्रतिवेदन से उद्धृत, पृष्ठ 123।
3. पृष्ठ 125।

कुछ लोगों ने उस बाजार से निकलना चाहा जबकि जुलूस का रास्ता भिन्न था। पुलिस को लाठी चार्ज करना पड़ा। 24 अप्रेल, 1978 से 29 अप्रेल, 1978 तक अनुसूचित जाति के नेताओं ने जिलाधीश कार्यालय के समक्ष धारा 144 दण्ड प्रक्रिया संहिता का उल्लंघन करके गिरफ्तारियां दीं। 1 मई, 1978 को आगरा के पांच मोहल्लों में आग लगा दी गई जो अधिकतर हरिजनों की बस्तियां थीं। चाकीपाटा मोहल्ला मे पुलिस द्वारा सात घरों को जला दिया गया। अशोक बाबू नामक एक विद्यार्थी की मैट्रिक की परीक्षा में बैठकर लौटते समय पुलिस सब इन्सपेक्टर की गोली चलने से मृत्यु हो गई। अनुसूचित जाति के अनेक अन्य व्यक्तियों को भी पुलिस लाठी चार्ज में चोटें लगीं। अनुसूचित जाति की औरतों को भी पुलिस ने उनके घरो में घुसकर निर्दयतापूर्वक पीटा।[1]

बिहार में जिला भोजपुर के धर्मपुर गांव में हथियारों से सज्जित साठ व्यक्तियों के एक गिरोह ने अनुसूचित जाति के चार व्यक्तियों को मार डाला।

राजस्थान में 28 अगस्त, 1978 को अलवर जिला के हासोरा गांव में एक हरिजन लड़के के कान काट दिये गये। इसका कारण यह था कि 27 अगस्त, 1978 को अनुसूचित जाति के एक व्यक्ति ने एक पेड़ लगाया जिस पर कुछ स्वर्ण हिन्दुओं ने आपत्ति की और 28 अगस्त, 1978 से सम्बन्धित उस घटना के मतभेद में उस लड़के ने उस हरिजन का पक्ष लिया।[2]

56. ये अत्याचार तो कुछेक ही है क्योंकि सैकड़ों मे से कोई-भी घटना ही प्रकाश में आती है।

57. इस प्रकार यह दृष्टिगत होगा कि अस्पृश्यता का दोष नागरीय क्षेत्रो में घटकर कम से कम रह गया है परन्तु ग्रामीण क्षेत्रो में अभी तक अनन्त रूप से प्रचलित है तथा अधिकांश धार्मिक स्थल अभी तक हरिजनों और गिरिजनों की पहुंच से बाहर हैं। उन पर बढ़ते हुए अत्याचारों का घटना-प्रवाह सरकारी आकड़ो के अनुसार भी प्रदर्शित होता है, जो एक सोचनीय विषय है। यद्यपि उपरोक्त निर्दिष्ट विभिन्न विधियो द्वारा कार्यान्वित संवैधानिक कार्यप्रणाली तथा निदेशक तत्वों के न्याय शास्त्र के तीस वर्षों तथा संविधान ने बहुत अच्छा कार्य किया है, तथापि उद्देश्य की उपलब्धि हेतु अभी तक पर्याप्त कार्य करना शेष है। इसे एक समाजार्थिक क्रान्ति कहना मिथ्या नामकरण होगा, क्योंकि क्रान्ति होने में शताब्दियां या दशाब्दियां कभी नहीं लगती किन्तु इसे सदियों से बहिष्कृत व दलित हमारे समाज के इस भाग का विकास या प्रगतिशील मुक्ति अवश्य समझा जा सकता है।

58. समाजविज्ञान शोध की भारतीय परिषद के अधीन विविध तथा सामाजिक परिवर्तन के एक प्रवृत्त समुदाय ने अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित मुकदमे

---

1. पूर्वोक्त, पृष्ठ 126।
2. पृष्ठ पूर्वोक्त, 132।

तथा विधि-निर्माण विषयक शोध की। उसके परिणामस्वरूप प्रोफेसर जी. एस. शर्मा ने निम्नलिखित राय दी :[1]

"उत्तर संविधान काल तथा उत्तर काल का जो सामान्यीकरण किया जा सका, वह यह है कि राजनैतिक आरक्षणों के क्षेत्र में, सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय शायद उन मुकदमों मे भी गतिशीलता को मान्यता प्रदान करने में अनिच्छुक है जहा यह प्रदर्शित करने के लिए प्रमाण विद्यमान था कि विशेष आरक्षण का दावा करनेवाला अमुक व्यक्ति अपनी निम्न जाति से प्रभावी ढंग से विचलित होकर उच्च जाति के सदस्य की भांति व्यवहार कर रहा था। वी. वी. गिरी बनाम डी. एस. दारा (ए. आई. आर. 1959, एस. सी. 1318) में न्यायाधीश गजेन्द्र गडकर का बहुमत विनिश्चय गतिशीलता की मान्यता हेतु सामाजिक स्वीकारोक्ति के निश्चित तथा स्पष्ट साक्ष्य के आधार पर न्यायालय के आलम्बन का एक आदर्श दृष्टान्त है। बहुमत निर्णय ने गतिशीलता का निश्चय करने के लिए एक त्रिपुटकीय परीक्षण सूत्रबद्ध किया यथा—व्यक्ति द्वारा पुरानी जाति का त्याग करने की स्पष्ट कामना की आवश्यक साक्ष्य, पुरानी जाति द्वारा त्याग का प्रमाण तथा नई जाति द्वारा ग्रहण करने का साक्ष्य। लगातार वर्गों पर आश्रित इस विस्तृत और अनियमित हिन्दू समाज के सामाजिक और धार्मिक मामलों मे जाति गतिशीलता का यह न्यायिक परीक्षण यथार्थ में लागू करने में अभी कोई सदियां लगेंगी। इस मुकदमें में न्यायाधीश कपूर के विमत निर्णय को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है क्योंकि यह एक ऐसे व्यक्ति के हित मे आरक्षण का लाभ प्रदान करने के पक्ष मे नहीं था जो यद्यपि जन्म से अनुसूचित जाति का था परन्तु उसने पिछले अट्ठाईस सालों से क्षत्रियोचित व्यवहार रखा और अपने वैवाहिक एवं अन्य सम्बन्ध इस उच्च जाति के साथ रखे।

"सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय दोनों का न्याय द्वारा धारित दीर्घ विश्वास से विमुख होने हेतु अनिच्छा प्रदर्शित करनी हुई कदाचित यह प्रवृत्ति रही है कि धार्मिक मामलों में जाति-व्यवस्था के कार्य-व्यापारों को स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिये तथा जाति के मुखिया लोगों के निर्णय को अत्यन्त सम्मानपूर्वक मानना चाहिये। जाति स्वायत्तता सिद्धान्त के धार्मिक मामलों मे प्रचलित न्यायिक समर्थन का दो मुकदमों के माध्यम से दृष्टान्त देना पर्याप्त होगा—एक मद्रास उच्च न्यायालय का सन् 1923 का तथा दूसरा सर्वोच्च न्यायालय का सन् 1962 का। महापुनीत श्री शुकरातेन्द्र तीर्थ स्वामी, काशी मठ बनाम प्रभू, ए. आई. आर. 1923, मद्रास, पृष्ठ 587 में गौड़ सारस्वत ब्राह्मण जाति के कुछ सदस्यों को ब्रह्म समाज शताब्दि समारोह में एक सर्वजातीय विवर्जित भोज मे भाग लेने हेतु एक धर्मगुरु द्वारा एक

1. लेजिस्लेशन एण्ड केसेज आन अनटचेबिलिटी एण्ड शिड्यूल्ड कास्ट्स इन इण्डिया — लेखक जी. एस. शर्मा, 1975 संस्करण, प्रस्तावना का पृष्ठ 5।

निषेधाज्ञा को अपमानजनक धारित नहीं किया गया। न्यायाधीश रेमसन ने पृष्ठ 591; कालम 1 पर निम्नलिखित सम्प्रेक्षित किया :—

"यह स्मरण रखना चाहिये कि यद्यपि अभियुक्त ने जो कृत्य किया है वह एक प्रगतिशील जाति के दृष्टिबिन्दु से अत्याचार और दमन का संकेतात्मक है, तथा प्रायः असह्य है, क्योंकि इससे सम्पूर्ण जाति अधिक समुचित बन जाती है। जब तक किसी स्वामी के अधिष्ठातृत्व के प्रति समर्पण विद्यमान रहता है तथा जाति के रिवाज तथा सम्प्रदाय के सदस्य ऐसे अधिष्ठातृत्व से छुटकारा नहीं पा सकते, तब तक स्वामी रीति-रिवाजों के परम्परागत तरीकों का उपयोग करने तथा जाति की प्रथाओं का प्रतिपादन करने में पूर्णतः अपने अधिकारों के अन्तर्गत हैं, बशर्ते कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन न किया जाये। प्रगतिशील जाति अपनी स्वयं की प्रगतिशील धारणाओं को स्वामियों या अन्य निष्ठावान अनुयायियों के मस्तिष्क में प्रतिबिम्बित करने की प्रत्याशा करना न्याय–संगत नहीं है, न उन्हें दाण्डिक अभियोजन के भय से ही समय के अनुसार परिवर्तित होने के लिये विवश किया जा सकता है।"

प्रोफेसर शर्मा का अन्तिम निर्णय यह है कि "हिन्दू समाज में जाति तथा उपजाति समष्टि की बढ़ती हुई जागृति अस्पृश्यता की प्रथा की विद्यमानता के प्रमाण के रूप में नहीं मानी जा सकती। वस्तुतः समाचार–पत्रों में छपे झगड़ों से यह आभास उत्पन्न होने की प्रतीति होती है कि अस्पृश्यता के आधार पर सामाजिक भेद-भाव की समस्या बढ़ गई है जिसकी तथ्यों से पुष्टि नहीं की जा सकती। घटनायें अपने समाचार मूल्य, अनुसूचित जाति के वर्तमान आर्थिक तथा शैक्षणिक रूप से सन्नद्ध समुदाय के सुघोषित शब्दोच्चार, उनके आर्थिक हितों तथा रहने की स्थिति के कारण अधिक अवधारणीय बन जाती है। शब्दोच्चार कभी-कभी अतिक्रामक रूप धारण कर लेता है।"[2]

58. श्री ए. एन. भारद्वाज ने 1979 में प्रकाशित अपनी रचना "प्रोब्लेम्स ऑफ शिड्यूल्ड कास्टस एण्ड शिड्यूल्ड ट्राइब्स इन इण्डिया" में अपनी व्यग्रता का सशक्त वर्णन किया है। यह दृष्टिगोचर होता है कि श्री भारद्वाज समाजार्थिक क्रान्ति के त्रिदशकीय स्वतन्त्रताकाल में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन-जातियों की स्वतन्त्रता के बारे में अपने अन्तिम निर्णयों में प्रो. जी. एस शर्मा से भिन्न मतावलम्बी हैं, जो अधोलिखित से सुस्पष्ट होगा :—[3]

"तथाकथित अछूत अभी तक भी मन्दिरों में प्रवेश नहीं पा सकते, यह कुछ नहीं अपितु, हमारी सभ्यता और संस्कृति पर एक कलंक है। यहां तक

1. प्रस्तावना का पृष्ठ 6।
2. पूर्वोक्त, पृष्ठ 81
3. प्रोब्लम्स ऑफ शिड्यूल्ड कास्टस एण्ड शिड्यूल्ड ट्राइब्ज इन इण्डिया, ए. एन. भारद्वाज।

कि अनेक स्थानों पर उन्हें आपणिकाओं पर चाय तक नहीं पीने दी जाती तथा इसका उल्लेख करना अत्यन्त व्यथायुक्त है कि निर्दोष हरिजन विद्यार्थियों को गांव की पाठशाला के सार्वजनिक जलाशय से जल लेने का भी निषेध कर दिया जाता है, जबकि हम ऐसे कल्याणकारी राज्य में रहने की शेखी मार रहे हैं, जहां समस्त लोगों के समान सामाजिक अधिकार होने की कल्पना की जाती है। यह प्रतिवेदन है कि उन्हें कदाचित अभिमानी अधिकारियों द्वारा कार्य के समय में जाति के आधार पर अपमानित किया जाता है तथा गालियां दी जाती हैं, सम्बद्ध निजी व्यवसाय का तो कहना ही क्या। मन्दिर में प्रवेश करने के कारण अछूतों की मृत्यु के समाचार को समाचार-पत्रों तथा लोकसभा में पर्याप्त प्रचार प्राप्त हुआ। प्रतिवेदन के अनुसार एक निर्दोष बालक एक मन्दिर के पास खेल रहा था तथा खेलते समय वह भूल से मन्दिर में घुस गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि पुजारी द्वारा उसकी पिटाई की गई और वह बेहोश हो गया और अन्ततोगत्वा बालक की मृत्यु हो गई। इस प्रसंग में श्रीमती मृणाल गोरे, संसद सदस्या (जनता) ने अपने राज्य महाराष्ट्र में दुर्व्यवहार एवं अत्याचारों की घटनाओं की विस्तृति की प्रगणना कराई जिसमें उन्होंने बताया कि अछूत जाति के कुछ लोगों के पैर तोड़ दिये गये, सम्पूर्ण ग्राम का बहिष्कार किया गया, और मन्दिर में पूजा के लिये जानेवाली एक हरिजन स्त्री पर आपराधिक हमला किया।"[1]

जम्मू तथा कश्मीर राज्य के मुख्यमंत्री ने श्री ए. एन. भारद्वाज के आलेख की प्रस्तावना लिखकर निम्नलिखित शब्दों में अपनी चिन्ता प्रकट की है:—[2]

"आज स्वतन्त्रता के तीन दशकों से अधिक अवधि के पश्चात भारत के संविधान में यथोचित संत्राण के समावेश पर्यन्त भी अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की अवस्था बेहतरीन होने से दूर है और वे सामाजिक तथा अन्य असमर्थताओं की शिकार होती चली आ रही हैं। यद्यपि ऐसे अत्याचारों के विरुद्ध पर्याप्त रूप से लोक-सम्मति जुटाई गई है, फिर भी सतत् सतर्कता की आवश्यकता अपरिहार्य है। मुझे आशा है कि इस कार्य में वे समस्त लोग, जिन्होंने अपना योगदान इस कार्य में दिया है, अपने प्रयासों को केन्द्रित करके एक समान सामाजिक व्यवस्था की शीघ्र प्राप्ति के लिये कार्य करेंगे।"

59. चोलापुर (देहरादून) में सन् 1961 में चतुर्थ गुर्जर जन जातीय सम्मेलन के उद्घाटन पर पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा व्यक्त अभिलाषा अभी तक अपूर्ण है:—

1. टाइम्स आफ इण्डिया, नई दिल्ली, दिनांक 5 अप्रेल, 1978।
2. प्रस्तावना का पृष्ठ 1।

"हमें सम्पूर्ण राष्ट्र का सुधार करना है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का विभाजन करनेवाली रेखा को समाप्त करना है।"

"यह अच्छा प्रतीत नहीं होता कि कोई यह भीख मांगे कि उसकी सहायता की जावे या उसे विशेष सुविधायें दी जावें क्योंकि वह एक विशिष्ट वर्ग या जाति का है। यह उनके मस्तिष्क में ही नहीं रहना चाहिये। वे हमारी ही तरह हैं और हमारे बराबर हैं।"[1]

कुछ नये वाद

60. प्रो. जी. एस. शर्मा का अध्ययन केवल 1975 से पहले के वादों से सम्बन्धित है तथा श्री भारद्वाज की टिप्पणियां एक प्रोफेसर या न्यायविद् की अपेक्षा राजनीति से अधिक प्रेरित प्रतीत होती हैं, जो शोध के उद्देश्यात्मक अध्ययन पर आधारित हैं।

61. यह दृष्टिगोचर होगा कि सर्वोच्च न्यायालय ने तथा विशिष्टतः सामाजिक न्याय-सम्बन्धी न्यायशास्त्र के पिता श्री कृष्णा अय्यर ने निर्णय की एक लम्बी शृंखला के माध्यम से हरिजनों तथा गिरिजनों की चिन्ता पर आवाज उठाई है, तथा उनका नवीनतम शास्त्रीय निर्णय अखिल भारतीय शोषित कर्मचारी संघ (रेल्वे) बनाम भारत संघ एवं अन्य[2] पर्याप्त रूप से यह सिद्ध करता है कि यदि पूर्ण-रूप से सोचा जाये तो अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़ी जातियों के आरक्षण के मामले मे सर्वोच्च न्यायालय ने प्रागैतिहासिक काल से पद-दलित हरिजनों व गिरिजनों के संवैधानिक अधिकारों को धारित करने का पर्याप्त प्रयत्न किया तथा पुनः पुनः धारित करके समस्त चुनौतियों को प्रतिकृत किया।

62. यह सत्य है कि एक तरफ केरल राज्य बनाम एन. एम. थोमस[3] तथा महाप्रबन्धक दक्षिण रेल्वे बनाम रंगाचारी[4] के मुकदमों मे हरिजनों तथा गिरिजनों के अधिकारों को धारित करते हुये अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के आरक्षण को नये आयाम प्रदान किये, वहां दूसरी ओर एम. आर. बालाजी बनाम मैसूर राज्य[5] तथा टी. देवदासन बनाम भारत संघ[6] के युगल निर्णयों ने संविधान के अनुच्छेद 16 की समान अवसरवाली कसौटी के अधीन यह धारित करके, कि पिछड़ी जातियों के लिये आगे ले जाने का नियम 50 प्रतिशत की सीमा को पार नही कर सकता, नियमो को विखण्डित कर दिया।

---

1. पृष्ठ 83।
2. 1981 (1) एस. सी. सी., पृष्ठ 246।
3. 1976 (2) एस. सी. सी., पृष्ठ 310।
4. 1962 (2) एस. सी. आर., पृष्ठ 586-ए. आई. आर. 1962, एस. सी., पृष्ठ 32।
5. ए. आई. आर. 1963, एस. सी. 649।
6. ए. आई. आर. 1964 एस. सी. पृष्ठ 179।

63. अगर न्यायाधीश श्री कृष्णा अय्यर ने निम्नलिखित संप्रेक्षण जो न्यायिक गतिवाद में युग-प्रवर्तनकारी है, तथा जो न्यायविदों और न्यायाधीशों को भविष्य में सदैव प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन करेंगे, उनका ध्यान नहीं रखा जायेगा तो यह पत्र अपूर्ण रह जायेगा। इन निर्णयों को एन. एम. थोमस तथा रंगाचारी के उपरोक्त वादों के समान महत्ववाले निर्णयों के बराबर मानना पड़ेगा।

8. निःसन्देह जाति एक गहन अवरोध है, जिसके उन्मूलन के लिये संविधान ने जाति पर आधारित असमानता को वर्जित करने में सावधानी बरतीं विशिष्टतः शिक्षा तथा राज्य के अधीन सेवाओं के क्षेत्र में। इस न्यायालय के विनिर्णयों ने सुसंगत अनुच्छेदों का निर्वचन करते समय इस बिन्दु को सुनिश्चित किया है कि जाति के रूप में पिछड़ी जातियों की पहचान सिर्फ जाति पर आधारित रखना संवैधानिक नहीं है। अगर जातियों की एक बड़ी संख्या पिछड़ी जातियों के रूप में छद्मरूप धारण कर लेती है और इस विभाजन को शैक्षणिक संस्थानों तथा सरकारी कार्यालयों में स्थायी रूप प्रदान कर देती है तो जाति-रहित समाज की सम्पूर्ण प्रक्रिया विपथगामी हो जायेगी। इस प्रकार हम पिछड़ी जातियों के साथ प्रत्यक्ष रूप से नहीं बल्कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के सुधारवादी प्रावधानों से सम्बन्धित हैं। फिर भी हमें अनुच्छेद 16 के हमारे निर्वचन के सामाजिक परिणामों का अभिवक्ता की दलील के प्रकाश में गम्भीरतापूर्वक विचार करना है कि पदोन्नतियों के स्तर पर भी अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को अत्यधिक कृपाकारी रियायतों द्वारा स्थायी किया जाकर जाति-व्यवस्था में एक निहित स्वार्थ का सृजन किया जा रहा है जो केवल सम्प्रदायवाद का ही द्योतक है। रिट याचिका में यह दलील प्रस्तुत की गई है कि 'प्रत्येक को अपनी योग्यतानुसार" को "प्रत्येक अपनी जाति के अनुसार" द्वारा प्रतिस्थापन किया जा रहा है तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के कर्मचारियों द्वारा सेवा में अपने वरिष्ठ एवं अधिक प्रतिभाशाली बन्धुओं का अन्यायपूर्ण अवमान और शीर्षारोहण उनकी सफलता का अवरोधक है। जाति पर आधारित पदोन्नतिकारी वरीयता के अभियान का परिणाम उन लोगों के वर्गों में नैराश्य तथा पूर्ण दक्षता में ह्रास बताया जाता है जो जन्म से अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के होने में भाग्यशाली नहीं हैं। वास्तव में "अदक्षता" के ढांचे को इतना सुव्यक्त रूप से प्रस्तुत किया गया कि रेल-दुर्घटनाओं तथा अन्य प्रयोगात्मक आपदाओं तथा प्रबन्धकीय असफलताओं को भी पदोन्नतियों में आरक्षण की नीति के सिर मढ़ा गया। हमारे सम्मुख अधिवक्ता द्वारा सामाजिक पिछड़ेपन की अपेक्षा आर्थिक पिछड़ेपन पर आधारित शैक्षणिक तथा अधिकारिक सफलता और उन्नति हेतु संवैधानि[illegible] कारी नीति की प्रशंसा की गई, [illegible] संवैधानिक भविष्य के साथ सम[illegible] [illegible] तथा साम-एक अवस्था में, न्यायालय की प[illegible] साथ देना हमारे [illegible]

भूषण ने,

यता धारित करने पर, इनके न्याय निर्णय से लाखों हरिजनों-गिरिजनों के लिये जन्म पर आधारित विशेषाधिकार के विरुद्ध गलियों मे एक प्रकार की लड़ाई साम्प्रदायिक युद्ध छिड़ जाने के परिणामों का प्रत्यक्षीकरण करने में सहायता प्रदान की।"

"36. संविधान के अनुच्छेद 14 से लेकर 16 तक अपने आप मे एक संहिता है, जिसमें जाति-रहित तथा वर्ग-रहित समानता के सिद्धान्त का अभिस्रावित सार निहित है। हमारे संस्थापक पिता बड़े यथार्थवादी थे, अतएव उन्होने समानता की उक्ति को निष्प्राण सर्वव्यापकता के रूप में घोषित नही किया वल्कि इसका सदैव अपरिवर्तनीय सिद्धान्त से सदैव परिवर्तनशील सामाजिक अवस्था के साथ अनुयोजन करके कुछ विशिष्ट प्रावधानों के अधीन रखा, जो समानता की आत्मा के विरोध में नहीं है।"

इस प्रकार अनुच्छेद 15 (4) तथा 16 (4), अनुच्छेद 15 (1) तथा 16 (1) से पठित हैं। प्रथम उप अनुच्छेद समानता के बारे में कहता है तथा द्वितीय उप अनुच्छेद जाति-निषेध को भेदभाव के आधार के रूप में व्यक्त करके इसकी अन्तर्वस्तु का विस्तार करता है। अनुच्छेद 16 (4) अनुच्छेद 16 (1) मे न्याविष्ट स्थिर प्रायः समानता को एक गतिमान गुण प्रदान करता है जो उसे समीकरण कूट कौशल देकर अनुज्ञेय राजकार्य के रूप मे समानता की सम्भाव्य उपलब्धि से सम्बद्ध अनुच्छेद 16 (1) का विस्तारण या उसके अपवादस्वरूप में दृष्टिगत किया जाता है। अनुच्छेद 15 के उपबन्ध के लिये भी ये संप्रेक्षण उपयुक्त होंगे। परन्तु हमारी सांस्कृतिक विरासत की यह एक बुरी बात है कि स्वतन्त्रता से पहले भारत में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लोगों को प्रायः मनुष्यत्व से पतित कर दिया जाये। स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष के पहलू ने उन्हे देश के सामाजिक तथा आर्थिक विकास में भागीदार बनने के अधिकार के साथ-साथ पूर्ण मानवता प्रत्यर्पित की। भाग 4 में निहित अनुच्छेद 46 एक निर्देशक तत्त्व है। प्रत्येक निर्देशक तत्त्व देश के शासन में मौलिक है और विधि रचना में उस तत्त्व को प्रयुक्त करना राज्य का कर्तव्य है। अनुच्छेद 46 राज्य पर प्रबल शब्दों में दायित्व डालती है जो लोगों के कमजोर तबकों तथा विशेष रूप से अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के शैक्षणिक और आर्थिक हितो की विशेष सावधानी पूर्वक उन्नति करने के लिए उनकी सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से रक्षा करेगा। अनुच्छेद 46 का अनुच्छेद 16 (4) के साथ पठन से, संविधान रचयिताओं का यह ज्वाजल्यमान आशय प्रकट होता है कि भूतकाल से शोषित हरिजन, गिरिजन वर्गों के समुदाय का राज्य द्वारा विशेष सावधानीपूर्वक उन्मूलन किया जायेगा। अनुमति सुस्पष्ट है कि अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित जनजातियों की प्रशासनिक भागीदारी को राज्य द्वारा विशेष सावधानी पूर्वक बढावा दिया जायेगा। अनुच्छेद 16 (4) के अधीन आरक्षण और अनुच्छेद 46 द्वारा पारित परिकल्पित प्रोत्साहक कूट कौशल निःसन्देह आवश्यक हो सकते हैं, परन्तु इनसे आपसी संघर्ष नही होगा और न ही ये पिछड़ी जातियों

को छूट के नाम पर प्रशासनिक दक्षता को श्रापद्ग्रस्त करेंगे। श्रनुच्छेद 335 इस सन्दर्भ में चेतावनी देता है।

"335. संघ या राज्य के कार्यों से संसक्त सेवाश्रों श्रौर पदों के लिये नियुक्तियाँ करने में प्रशासन कार्य पटुता बनाये रखने की संगति के श्रनुसार श्रनुसूचित जातियों श्रौर श्रनुसूचित श्रादिम जातियों के सदस्यों के दावों का ध्यान रखा जाएगा।"

इस श्रनुच्छेद का सकारात्मक छिद्रान्वेपण यह है कि राज्य के श्रधीन सेवाश्रों में श्रनुसूचित जातियों तथा श्रनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधित्व की समानता के दावों पर, उनकी पतित सामाजिक दशा तथा शक्ति संगठन मे कल्वीता को ध्यान में रखते हुए विचार किया जायेगा। इसका नकारात्मक पहलू, जो इस श्रनुच्छेद का ही भाग है, यह है कि राज्य द्वारा किये गये श्रनुच्छेद 16 (4), 46 तथा 335 के समादेशानुवर्ती उपाय "प्रशासन की कार्यकुशलता के प्रतिपालन" के श्रनुरूप होंगे, उच्छेदक नही।

64. "पिछडी जाति तथा पिछड़ी जनजातियों के श्रायुक्त के प्रतिवेदनों से ग्रहण किये गये कथन के तथ्य निश्चयात्मक रूप से दर्शित करते हैं कि पिछडी जातियों तथा पिछडी जनजातियों के सदस्यों के साथ सिविल सेवाश्रों में एक न्यायोचित या कम से कम एक समानुपातिक व्यवहार करना कहा जा सके, इसके लिए एक लम्बी मंजिल तय करनी है। द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी की समस्त केन्द्रीय सेवाश्रों में श्रनुसूचित जातियों के लिये 3.84 प्रतिशत से 7.37 प्रतिशत श्रौर 9.27 प्रतिशत से 12.53 प्रतिशत तथा श्रनुसूचित जातियों के लिये 0.37 प्रतिशत से 1.03 प्रतिशत श्रौर 1.47 प्रतिशत से 3.11 प्रतिशत की शृंखला है, जबकि उनकी पात्रता का क्रम क्रमशः 15 प्रतिशत श्रौर साढे सात प्रतिशत है। कितना दारुण व्यवहार है ? जो श्राहत समुदाय (श्रर्थात् हरिजनों श्रौर गिरिजनों) द्वारा 33 वर्ष की दीर्घ श्रवधि के पश्चात् भी तीखी टीका-टिप्पणी का विषय है।

65. "श्रनुसूचित जातियों तथा श्रनुसूचित जनजातियो के परिवेदनो से चुने हुये ये सरकारी श्राकड़े केवल रेल्वे तक ही सीमित नही हैं, समस्त केन्द्र सरकार की सेवाश्रों हेतु हैं, जो यह प्रदर्शित करते हैं कि पिछड़ी जातियो तथा पिछड़ी जनजातियों के श्रन्तर्ग्रहण में कछुवेवाली वर्तमान गति श्रपनाकर पिछड़ी जातियों तथा पिछडी जनजातियों के साथ न्याय करने मे किस प्रकार सदियां बिताई जा सकती है।"

तीस वर्ष के संवैधानिक कार्यकाल ने निम्नलिखित परिणाम उत्पन्न किये हैं। क्या श्री श्रय्यर के शब्दों में यह एक सामाजार्थिक क्रान्ति हो सकती है ?

66. "सामाजिक यथार्थवादी पिछले दस साल के इन निराशावादी श्रांकड़ो पर ध्यान देंगे जो पौराणिक उपाख्यान की पुष्टि करते हैं तथा श्रनुसूचित जातियो

और अनुसूचित जनजातियों के विषय में इस उत्तेजना-प्रवण तथा अत्युक्तिपूर्ण भाषण का प्रतिवाद करते हैं कि केन्द्र सरकार में चपरासी से सचिव तक समस्त पदों को 'अदक्ष' सामाजिक तत्त्वों की असमानुपातिक उपस्थिति ने घेर लिया है जिससे प्रशासकीय पतन के लम्बित संकट को और अधिक गति मिली है। केवल आरक्षण का सिद्धान्त ही आप्रवेशन का कार्य नहीं है। यह उद्भ्रांत कल्पना है। सच्चाई तो यह है कि अगर समानता और उत्तमता ही सिद्धांत है तो लिखित आरक्षण की अपेक्षा अधिक आक्रामक नीतियों की आवश्यकता है आरक्षण तो केवल एक नीति है जिसने अपनी सुस्थिति ऐतिहासिक रूप से प्राप्त की है। प्रक्रियाओं के संयोजन द्वारा इससे और अधिक कुछ करना चाहिए जिससे हरिजन/गिरिजन गौरवपूर्ण क्षमता प्राप्त कर सकें और नागरिक सेवाओं से लाभान्वित होने के लिए आगे आ सकें। समाज के सबसे दुर्लभ भाग का लोक-नियोजन क्षेत्र में तुच्छ वार्षिक आत्मसात् हरिजन एकाधिकार का सांख्यिक प्रपंच द्वारा दुःखान्तक परिहास करना है। किसी सिद्धान्त या नियम की कठोर परीक्षा उसके कार्यान्वियन से होती है, उसकी शब्द-रचना से नहीं। निकिता ख्रुश्चेव ने एक बार कहा—"व्यवहार से अलग-थलग सिद्धान्त मृतप्रायः होता है तथा सिद्धान्त द्वारा अप्रदीप्त व्यवहार अन्धा होता है।" जैसाकि गत दस वर्ष के आंकड़े दर्शित करते हैं, लोक-नियोजन में सामाजिक न्याय प्रबन्ध द्वारा अधिक सुविधाओं तथा उच्चतर प्रतिशत को मान्य करके आरक्षण नियम से प्रतिपादित प्रति-प्रतिनिधित्व पर सैद्धान्ति आक्रमण को व्यवहार मे परिणत करना चाहिये। दोनों तरफ के अधिकाराग्रह एक अनिश्चित दिशा मे समाप्त हो जाते हैं। इसी कारण से हमने अनुच्छेद 16 (4) के अधीन अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित जनजातियों के *प्रतिनिधित्व तथा संवैधानिक सिद्धान्त का प्रारूप तैयार करने का प्रयत्न किया* है। मुझे हरफूलसिंह बनाम राजस्थान राज्य व अन्य[1] के मेरे निर्णय की प्रस्तावना प्रस्तुत करते समय महरमनु डॉ. अम्बेडकर के योगदान पर गौर करने का अवसर प्राप्त हुआ, जिन्होंने भारत के दलित पिछड़ी जातियों के स्वतन्त्र आन्दोलन का नेतृत्व किया। उसमे अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियो के आरक्षित वण्टितांश की एक सीट एक'सवर्ण (जाट हिन्दू) द्वारा मिथ्या जनकता बताकर डकारली गई। इसमें मैंने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया—

"महरमनु डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अनुसूचित जातियो और अनुसूचित जन जातियों, गरीबो और पद-दलितों के लिए, जो सदियों पुराने उत्पीड़न, दमन, दबाव और अवनति के शिकार है तथा जो समाज द्वारा निर्दयतापूर्वक कुचले जाकर तिरस्कृत किये गये हैं तथा चतुर लोगों की विचक्षण बुद्धिमानी द्वारा अन्दर ही अन्दर क्षत किए गए हैं, उन्हे "आरक्षण" प्रदान करवाने मे सफलता प्राप्त की

---

1. एकल पीठ सिविल रिट याचिका, संख्या 454/80।
जयपुर पाठ द्वारा दिनाक 25-8-80 को निर्णित।

को छूट के नाम पर प्रशासनिक दक्षता को आपद्ग्रस्त म
सन्दर्भ में चेतावनी देता है ।

"335. संघ या राज्य के कार्यों से संसक्त
नियुक्तियाँ करने में प्रशासन कार्य पटुता बनाये रखने की
जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के सदस्यों
जाएगा ।"

इस अनुच्छेद का सकारात्मक छिद्रान्वेषण यह है
में अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित जनजातियों के
दावों पर, उनकी पतित सामाजिक दशा तथा शक्ति संग
रखते हुए विचार किया जायेगा । इसका नकारात्मक पह
भाग है, यह है कि राज्य द्वारा किये गये अनुच्छेद 16
समादेशानुवर्ती उपाय "प्रशासन की कार्यकुशलता के प्रा
उच्छेदक नही । .

64.."पिछड़ी जाति तथा पिछड़ी जनजातियों के प्र
किये गये कथन के तथ्य निश्चयात्मक रूप से दर्शित करते
पिछड़ी जनजातियों के सदस्यों के साथ सिविल सेवाओं में ए
एक समानुपातिक व्यवहार करना कहा जा सके, इसके लि
करनी है । द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी की समस्त केन्द्रीय से
के लिये 3.84 प्रतिशत से 7.37 प्रतिशत और 9.27 प्र
तथा अनुसूचित जातियों के लिये 0.37 प्रतिशत से 1.(
प्रतिशत से 3.11 प्रतिशत की शृंखला है, जबकि उनक
15 प्रतिशत और साढ़े सात प्रतिशत है । कितना दारुण
समुदाय (अर्थात् हरिजनों और गिरिजनों) द्वारा 33 वर्ष
भी तीखी टीका-टिप्पणी का विषय है ।

65. "अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजाति
हुये ये सरकारी आंकड़े केवल रेल्वे तक ही सीमित नही हैं,
सेवाओं हेतु हैं, जो यह प्रदर्शित करते हैं कि पिछड़ी जा
जातियों के अन्तर्ग्रहण में कछुवेवाली वर्तमान गति अपनाव
पिछड़ी जनजातियों के साथ न्याय करने में किस प्रका
सकती हैं ।"

तीस वर्ष के संवैधानिक कार्यकाल ने निम्नलिखित प
क्या श्री अय्यर के शब्दों में यह एक सामाजायिक क्रान्ति हो

66. "सामाजिक यथार्थवादी पिछले दस साल के इ
पर ध्यान देंगे जो पौराणिक उपाख्यान की पुष्टि करते हैं

"विधि के अनुसार न्याय" प्राप्त करना चाहते हैं, भले ही उन्हें वास्तविक या सामाजिक न्याय न मिले, लेकिन वे लम्बी वाद सूची एवं अवशिष्ट वादों के कारण अपने मामले की सुनवाई का अवसर नहीं पाते हैं, थोड़े से उन भाग्यशाली, प्रतिभावान, निपुण एवं वक्तृत्व-शक्ति में अग्रणी और सम्पन्नशील लोगों की कलाबाजियां निःसहाय होकर देखते रहना चाहिये ? करीब दस सहस्र लम्बित मामलों से सम्बद्ध लाखों निराश, असहाय, आतुर और उदास चेहरेवाले पक्षकार मेरी ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं और मुझे उनके प्रतिक्षित भाग्य को निर्णित कराने के लिये मार्ग-प्रशस्त करने तथा पिछले दस वर्षों से लम्बित मामलों की अनिश्चितता से कारित अचेतनता से मुक्ति दिलाने हेतु सारभूत क्षति व न्याय के सारभूत विफलता-सम्बन्धी अनुपूरक को कार्यरूप में परिणित कराने के भारी दायित्व का स्मरण करा रहे हैं ।"

पुनः क्या हम अपनी आंखों को बन्द करके इस कटु सत्य के प्रति नेत्रहीन हो जायें कि लाखों निर्धन, पददलित तथा कम विशेषाधिकार युक्त नागरिक जो अभी तक न्यायालय, न्याय एवं विधि के क्षेत्र से बहिष्कृत हैं, क्योंकि वे विशेषाधिकार युक्त, चतुर, शिक्षित तथा प्रबुद्ध पक्षकारों की प्रतियोगिता में टिक नही सकते और न ही वे लम्बी पंक्तियो में खडे रहकर प्रतीक्षा करने में सक्षम हैं । इस प्रकार यद्यपि वे न्यायालय द्वारा विचार किये जाने तथा सहायता प्राप्त करने के पात्र हैं, लेकिन हम संविधान के प्रहरी के रूप मे कार्य करने तथा उन्हें न्याय प्रदान करने में असहाय हैं।

न्यायालय में बैठा हुआ मैं शाहबाद के भूखे और नग्न अस्थिपंजर वाले शाहरियों (शाहबाद उपखण्ड जिला कोटा के कृषक) के नेत्रों से अनन्त अश्रुप्रवाह देख रहा हूं जो अपने खेतों पर धनी तथा साधन सम्पन्न आक्रान्ताओं द्वारा अतिक्रमण करते हुये, उन्हें जोतते हुये तथा उनको फसल काटते हुये असहाय देख रहे हैं, लेकिन वे इसके विरोध में रोने और चीखने का भी साहस नहीं जुटा सकते । निर्धनों को विधिक सहायता और उनको सविधान मे सम्मिलित करने की लम्बी-लम्बी बातों के होते हुये भी न तो वे न्यायालय तक पहुंचने की कल्पना ही कर सकते हैं और न पुनः स्वामित्व प्राप्ति का निराकरण ही प्राप्त कर सकते हैं। यदि मै हमारी विधि तथा न्यायालयों की उपरोक्त दुखान्तक कार्य-प्रणाली के कटु सत्यों को गिनाते हुए वर्णन करूं तो मैं क्षणभर के लिये सम्भवतः एक न्यायाधीश की अपेक्षा एक कवि, दार्शनिक अथवा सुधारक की भूमिका अदा कर सकता हूं, परन्तु वह अवरोध यही है, जो इस सुविस्तृत विचारधारा के लिये उत्तरदायी है कि 'न्यायाधीश उच्च अट्टालिकाओं में निवास करते है", एक विचार, जो असत्य हो या आंशिक रूप से सत्य भी हो, उसका निराकरण सीढ़ी में सबसे निम्नस्तरवाले लोगों को, यानि कृषक, कामगार, चर्मकार इत्यादि को तीव्र, सस्ता, सामाजिक और वास्तविक न्याय प्रदान करके करना चाहिये, न कि मात्र "मान-हानि" के सुविधापूर्ण हथियार का प्रयोग करके ।"

है। अम्बेडकर महर-मनु थे; क्योंकि वे जन्म से महर थे तथा विशाल भारत के संविधान का प्रारूप तैयार करके वे मनु की उच्चता तक उदित हुए। पुनः महर्षि मनु अब्राह्मण थे, जिन्होंने मनुस्मृति का सृजन किया तथा (1) स्त्रियों की रक्षा, (2) निर्बलों की सुरक्षा व (3) मानव मात्र की समानता इत्यादि विषयों पर बल देकर हिन्दुओं की सामाजिक विधि की संरचना की। इसी सन्दर्भ के मैंने डॉ. अम्बेडकर को आधुनिक स्वतन्त्र भारत का "महर-मनु" कहा है।

यह मामला चतुराई का एक वैसा ही विशिष्ट उदाहरण है, जहां एक 'जाट' (उच्च वर्ग) विद्यार्थी आयुविज्ञान महाविद्यालय में "आरक्षण" के निर्धारित वण्टितांश में आख्यायिक युक्ति और धूर्तता के बल पर प्रवेश पाने में सफल हुआ।

"वास्तव में ऐसे हथकंडे अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के युवकों को प्रवेश प्राप्त करने या सेवाओं मे नियुक्तियां प्राप्त करने से ही वंचित नही रखते, अपितु अगर कुछ सुरक्षा न हो तो वस्तुतः संविधान स्वयं के लिये एक भयकर खतरे की स्थिति उत्पन्न कर देता है। मैंने ऊपर उल्लेख किया है कि ऐसे हथकंडों द्वारा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के आरक्षण से सम्बन्धित संविधान के प्रति जो भी विरोधी आचरण किया गया है उसको मक्रत न तो प्रत्यार्थी कर सकता है, न यह न्यायालय ही कर सकता है। केवल यही कहा जा सकता है कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को प्रदत्त संवैधानिक सुरक्षणों तथा अभयपत्रों के कार्यान्वयन और उनकी अनुपालना के लिये जिलाधीश तथा शैक्षणिक प्राधिकारियों को ऐसे मामलों में सिद्धान्ततः एवम् यथार्थतः अत्यन्त सतर्क रहना चाहिए तथा यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इसका दुष्प्रयोग या दुरुप्रयोग नहीं हो।"

हमारी विधि तथा न्यायालयों के कार्यकलापों की दुखान्तक स्थिति पर टिप्पणी करते समय मेरे द्वारा अनुसूचित आदिम जातियों (आदिवासियों) की दर्दनाक दुर्गति चित्रित की गई थी। जिनके नाम पर कृषि भूमि आवंटन की गई थी, वे कभी उसकी उपज नहीं ले सके तथा खातों से बाहर निष्कासित कर दिये गये, तथा जहां आदिवासी न्यायालयों के परिसर से भी बहिष्कृत हैं। मैंने निम्नलिखित सप्रेक्षित किया :

> "क्या हमें पावन और पवित्र न्याय-मन्दिरों को विधिक व्यायाम गोष्ठीगृहों, विधिक वाद-विवाद समितियों या विधि के आनन्दपूर्ण शोध-केन्द्रों में रूपान्तरित करना है ? क्या हमें उन हजारों पक्षकारो की कीमत पर, जो या तो पिछले पांच या छः वर्षों से जेल की कोठरियों में प्रतीक्षा करते हुए अपने दोष अथवा निर्दोषिता को निर्णित करवाना चाहते हैं, या उन हजारों असैनिक कर्मचारियों अथवा औद्योगिक कामगारों, छोटे दुकानदारों अथवा किसानों के संवैधानिक अधिकारों पर राज्य के निर्लज्ज नियोजन अधिकारियों द्वारा अतिक्रमण किया जाता है तथा जो कम से कम

"विधि के अनुसार न्याय" प्राप्त करना चाहते हैं, भले ही उन्हें वास्तविक या सामाजिक न्याय न मिले, लेकिन वे लम्बी वाद सूची एवं अवशिष्ट वादों के कारण अपने मामले की सुनवाई का अवसर नहीं पाते हैं, थोड़े से उन भाग्यशाली, प्रतिभावान, निपुण एवं वक्तृत्व-शक्ति में अग्रणी और सम्पन्न-शील लोगों की कलाबाजियां निःसहाय होकर देखते रहना चाहिये ? करीब दस सहस्र लम्बित मामलों से सम्बद्ध लाखों निराश, असहाय, आतुर और उदास चेहरेवाले पक्षकार मेरी ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं और मुझे उनके प्रतिक्षित भाग्य को निर्णित कराने के लिये मार्ग-प्रशस्त करने तथा पिछले दस वर्षों से लम्बित मामलों की अनिश्चितता से कारित अचेतनता से मुक्ति दिलाने हेतु सारभूत क्षति व न्याय के सारभूत विफलता-सम्बन्धी अनुपूरक को कार्यरूप में परिणित कराने के भारी दायित्व का स्मरण करा रहे हैं।"

पुनः क्या हम अपनी आंखों को बन्द करके इस कटु सत्य के प्रति नेत्रहीन हो जायें कि लाखों निर्धन, पददलित तथा कम विशेषाधिकार युक्त नागरिक जो अभी तक न्यायालय, न्याय एवं विधि के क्षेत्र से बहिष्कृत हैं, क्योंकि वे विशेषाधिकार युक्त, चतुर, शिक्षित तथा प्रबुद्ध पक्षकारों की प्रतियोगिता में टिक नहीं सकते और न ही वे लम्बी पंक्तियों में खड़े रहकर प्रतीक्षा करने में सक्षम हैं। इस प्रकार यद्यपि वे न्यायालय द्वारा विचार किये जाने तथा सहायता प्राप्त करने के पात्र हैं, लेकिन हम संविधान के प्रहरी के रूप में कार्य करने तथा उन्हें न्याय प्रदान करने में असहाय हैं।

न्यायालय में बैठा हुआ मैं शाहबाद के भूखे और नग्न अस्थिपंजर वाले शाहरियों (शाहबाद उपखण्ड जिला कोटा के कृषक) के नेत्रों से अनन्त अश्रु प्रवाह देख रहा हूं जो अपने खेतों पर धनी तथा साधन सम्पन्न आक्रान्ताओं द्वारा अतिक्रमण करते हुये, उन्हें जोतते हुये तथा उनकी फसल काटते हुये असहाय देख रहे हैं, लेकिन वे इसके विरोध में रोने और चीखने का भी साहस नहीं जुटा सकते। निर्धनों को विधिक सहायता और उनको संविधान में सम्मिलित करने की लम्बी-लम्बी बातों के होते हुये भी न तो वे न्यायालय तक पहुंचने की कल्पना ही कर सकते हैं और न पुनः स्वामित्व प्राप्ति का निराकरण ही प्राप्त कर सकते हैं। यदि मैं हमारी विधि तथा न्यायालयों की उपरोक्त दुखान्तक कार्य-प्रणाली के कटु सत्यों को गिनाते हुए वर्णन करूं, तो मैं क्षणभर के लिये सम्भवतः एक न्यायाधीश की अपेक्षा एक कवि, दार्शनिक अथवा सुधारक की भूमिका अदा कर सकता हूं, परन्तु वह अवरोध यही है, जो इस सुविस्तृत विचारधारा के लिये उत्तरदायी है कि 'न्यायाधीश उच्च अट्टालिकाओं में निवास करते हैं", एक विचार, जो असत्य हो या आंशिक रूप से सत्य भी हो, उसका निराकरण सीढ़ी में सबसे निम्नस्तरवाले लोगों को, यानि कृषक, कामगार, चर्मकार इत्यादि को तीव्र, सस्ता, सामाजिक और वास्तविक न्याय प्रदान करके करना चाहिये, न कि मात्र "मान-हानि" के सुविधापूर्ण हथियार का प्रयोग करके।"

"उच्च न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका की सुनवाई करते समय जब तक मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण करना कहा जाकर संतुष्ट न किया जाये, "सारभूत क्षति" तथा "न्याय की सारभूत असफलता" की उपरिकामों को लागू करने पर अक्षरशः तथा सदहृदयता के साथ जोर देना चाहिये।"[1]

अतएव मेरा यह दृष्टिकोण है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आयुक्त के विश्लेषण के अतिरिक्त विभिन्न प्राध्यापकों तथा समाज-सुधारकों के अन्य शोध तथा अध्ययन, जिन्हें मैंने विस्तारपूर्वक उद्धृत किया है, यह प्रदर्शित करते हैं कि यद्यपि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के भारत के अधिक विशेषाधिकार सम्पन्न अन्य नागरिकों के समकक्ष लाने के उद्देश्य की प्रगति के लिये काफी कुछ किया जा चुका है, परन्तु अभी तक बहुत कुछ करना शेष है।

विशेषाधिकारहीन, दलित, गरीब, ऐतिहासिक तथा शदियों से उत्पीड़ित, प्रतिरोधित तथा कुचले हुये हरिजनों और गिरिजनों का संघर्ष अभी तक समाप्त भी नहीं हुआ और उसकी विडम्बना यह है कि हमारे संस्थापक पिताओं की अभिलाषा परिपूर्ण होने से पहले ही देश में गुजरात के प्रतिरूपी आरक्षण विरोधी आन्दोलनों का सूत्रपात हो गया। आरक्षण-विरोधी आन्दोलन को क्रान्ति-विरोधी कहा जाये या क्रान्ति-प्रतिकारी, यह विषय तो राजनीतिज्ञों की टीका के क्षेत्र का है, परन्तु इस प्रसंग में, जैसा कि गुजरात उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश ने लिखा था कि यह कहना प्रसंगोचित होगा कि अगर हमारे लोग, उन लोगों के लिये जो सदियों से न केवल पशुओं से भी बदतर स्थिति में रहे हैं, परन्तु, आज भी, अन्तरिक्ष काल में तथा संविधान के 30 वर्षीय कार्यकाल के पश्चात भी, वे मानवीय मल को, जिसे हम पैर से भी नहीं छूते, अपने सिर पर ढो रहे हैं तथा जो अभी तक समस्त मन्दिरों, उपासना के धार्मिक स्थलों तथा सार्वजनिक कुओं से भी निष्कासित हैं, चन्द स्थानों का आरक्षण, चाहे वे शैक्षणिक संस्थाओं में हो या सेवाओं मे, सहन नही कर सकते तो इसके परिणाम पर गहराई से विचार करने पर यह अहसास होता है कि हम वर्ग-संघर्ष, सामूहिक धर्म-परिवर्तन एवं हिंसक क्रान्ति को बुलावा दे रहे हैं।"

संविधान के गत तीन दशको की कालावधि मे, डॉ. अम्बेडकर के पश्चात अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की मुक्ति के लिये समाजार्थिक क्रान्ति का संगठन और किसी द्वारा नहीं किया गया केवल एक व्यक्ति द्वारा किया गया जो समाज के इस दलित समुदाय का प्रतिनिधि होने का दावा रखते हैं तथा जिन्होंने हरिजन होने के नाते प्रधानमन्त्री के सर्वोच्च पद के दावे को दांव पर लगाया, हमें ज्ञानोदीप्त अध्ययन उपलब्ध करेंगे। बाबू जगजीवनराम ने निम्नलिखित कहा:—

1. ए. आई. आर. 1979, राजस्थान, पृष्ठ 98।

"अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए यह एक जीवन और मृत्यु का प्रश्न है तथा वे एक ऐसी परिस्थिति में खड़े हैं जहां उन्हें उपलब्धि के लिये यह निर्णय लेना पड़ेगा कि "या तो अभी अथवा कभी नहीं"। मुक्ति-संघर्ष का उद्देश्य समान मानव अधिकारों की उपलब्धि है, जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत है परन्तु व्यवहार में अन्यों द्वारा निर्वातित की जाती है।"[1]

श्री के. सी. मार्कण्डन ने 1966 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'डाइरेक्टिव प्रिन्सीपल्स इन दी इण्डियन कोन्स्टीट्यूशन" में निम्नलिखित संप्रेक्षित करके सन्तोष प्रकट किया है—

"समाज के निर्बल वर्गों और विशिष्टतः अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण की अभिवृद्धि की दृष्टि से राज्य द्वारा अंगीकृत कार्यक्रमों की अनुसूची जो किसी भी रूप में व्यापक नहीं है, इस तथ्य का द्योतक है कि सरकार का आशय यह नही है कि केवल नीति के निर्देशक तत्त्व ही पवित्र प्रस्ताव हैं, बल्कि वे कर्तव्य हैं जिन्हे एक कल्याणकारी राज्य के उद्दिष्ट लक्ष्यों को साकार करने के लिए उन्हे निभाना है।"

(पृष्ठ 281)

उपर्युक्त सन्तोष व्यक्त करते हुए उन्होने इस तथ्य को दृष्टिगत रखा है कि पंचवर्षीय योजना में अनुच्छेद 46 के इस नीति-निर्देश के महत्त्व पर ध्यान देना आवश्यक है। उनका अध्ययन वैषयिक होने से गौर करने योग्य है। अतएव निम्नलिखित शोधपरिणामों पर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है—

"तत्पश्चात् हमारा ध्यान संविधान के अनुच्छेद 46 के नीति-निर्देशो की ओर आकृष्ट करने पर प्रतीत होता है कि अनुसूचित जातियो, अनुसूचित जनजातियो तथा अन्य पिछड़े वर्गों को अवशिष्ट जन-समुदाय के समान स्तर पर लानेवाले कार्यक्रम, प्रथम तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में अंगीकृत किये गये कार्यक्रमो मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। तृतीय योजना में भी इस दिशा पर जो बल दिया गया है वह ध्यान देने योग्य है। पिछड़े वर्गों के कल्याण हेतु 114 करोड रुपयों के कुल परिव्यय मे से करीब 42 करोड़ रुपये शैक्षणिक विकास की योजनाओं के लिए, 47 करोड़ रुपये आर्थिक उत्थान हेतु तथा 25 करोड़ रुपये स्वास्थ्य, आवास तथा अन्य योजनाओ के लिये पृथक् रखे गये हैं। प्रारम्भतः अनुसूचित जातियो के आर्थिक उत्थान के कार्यक्रमों में भूमि व्यवस्थापन, भूमि सुधार, बीज-वितरण करने तथा सार्वजनिक कृषि प्रदर्शन क्षेत्र, सेवा सहकारिताओं एव वन श्रमिक सहकारिताओ की स्थापना और संचार व्यवस्था में सुधार की योजनाएं सम्मिलित थी। शैक्षणिक

1. हिन्दुस्तान टाइम्स, दिनांक 1 अक्टूबर, 1980।

कार्यक्रम में छात्र-वृत्तियों के रूप में सहायता, शुल्क मुक्ति व अन्य स्वीकृतियों, मैट्रिक पूर्व तथा मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्तियों, आश्रय शालाओं सहित नवीन पाठशालाओं की स्थापना तथा औद्योगिक और कृषि-सम्बन्धी कलाओं के प्रशिक्षण पर जोर दिया गया था। पेयजल की आपूर्ति, आवासीय स्थिति में सुधार, औषधालयों की स्थापना, प्रजनन केन्द्र, शिशु कल्याण केन्द्र तथा चलित स्वास्थ्य दलों की स्थापना की योजनाओं का उपक्रम किया गया था। तीसरी योजना में अन्य चीजों के अतिरिक्त आर्थिक विकास कार्यक्रमों की अपेक्षा परिवर्ती कृषि में लगे हुये व्यक्तियों के आर्थिक पुनर्वास, अनुसूचित जाति के सदस्यों से निर्मित सहकारिताओं द्वारा वनों का प्रबन्ध करना, जन जातीय कृषकों तथा कारीगरों के रुपया उधार लेने की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा उनके उत्पादन के विपणन हेतु बहुद्देशीय सहकारिताओं के गठन को प्राथमिकता देना प्रस्तावित किया गया है। शिक्षा के कार्यक्रम में, सामान्य योजना के अधीन प्राथमिक पाठशालाएं उपलब्ध कराने के अतिरिक्त, उच्च प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर सहायता होगी तथा प्राविधिक प्रशिक्षण के दौरान शुल्क-मुक्ति एवं छात्र-वृत्ति तथा छात्रावासों की व्यवस्था होगी।

चूंकि अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित समस्याएं विशेषतौर से सामाजिक क्षेत्र में, अनुसूचित जनजातियों से सम्बन्धित समस्याओं से भिन्न है, अतः उनके विकास के लिये विशेष कार्यक्रमों की व्यवस्था की गई थी। अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित विशेष कार्यक्रमों हेतु प्रथम योजना में करीब 7 करोड़ रुपये तथा दूसरी योजना में करीब 28 करोड़ रुपये के परिव्यय की तुलना में तीसरी योजना में करीब 40 करोड़ रुपयों का प्रावधान है। राज्यों की योजनाओं में अनुसूचित जातियों के लिये करीब 30 करोड़ रुपयों का प्रावधान रखा गया है। इस रकम का करीब आधा भाग शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं के लिए है तथा शेष (अ) आर्थिक विकास की योजनाओं तथा (ब) स्वास्थ्य, आवासन तथा अन्य योजनाओं पर लगभग समान रूप से विभाजित किया गया है। इन प्रावधानों का आशय योजना में निहित लाभों को अनुपूरित करना है, जो उनको सामान्य विकास कार्यक्रमों से उपलब्ध होंगे। सामुदायिक विकास कार्यक्रम, ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम, भू-प्रबन्ध कार्यक्रम, ग्रामीण एवं लघु उद्योग कार्यक्रम तथा कृषि श्रमिकों के हित में अंगीकृत किये गये अन्य कार्यक्रमों की अनुसूचित जातियों तथा समाज के अन्य कमजोर वर्गों के स्तर को ऊंचा उठाने में सर्वोच्च महत्ता है। यह संलग्न आंकड़ों से इंगित होगा कि इस ओर कितना गम्भीर प्रयास है।

छठी पंचवर्षीय योजना तथा वार्षिक योजना 1981–82 की विशेष संघटक योजनाओं उनके परिव्यय, आदि का ब्योरा सारिणी 9.4 मे दिया गया है।

सारणी 9 4 विशेष संघटक योजनाएं

(करोड़ रुपयों में)

क्र. सं.	राज्य/संघ राज्य क्षेत्र	1980–85		1982–83	
		कुल योजनागत परिव्यय	विशेष संघटक योजनागत परिव्यय	कुल योजनागत परिव्यय	विशेष संघटक योजनागत परिव्यय
1.	आन्ध्रप्रदेश	3,100.00	338.72	605.00	62 67
2.	असम	1,115.00	16.87	238.00	4.31
3.	बिहार	3,225.00	417.19	670.00	58.77
4.	गुजरात	3,680 00	258.46	760 00	17 32
5.	हरियाणा	1,800.00	177.85	320.00	24.68
6.	हिमाचल प्रदेश	560.00	61.60	120.00	10.16
7.	कर्नाटक	2,265.00	342.20	475.00	65 39
8.	केरल	1,550.00	110 00	275.00	15.59
9.	मध्यप्रदेश	3,800.00	297.61	725.00	46 71
10.	महाराष्ट्र	6,175.00	323.60	1,322.00	31.00
11.	मणिपुर	240.00	3.87	48 00	0.30
12.	उड़ीसा	1,500.00	162.55	300.00	11.57
13.	पंजाब	1,957.00	173.05	385.00	20 50
14.	राजस्थान	2,025.00	249.22	340.00	30 73
15.	तामिलनाडु	3,150.00	560.67	711.00	103.41
16.	त्रिपुरा	245 00	12.33	500.00	4 61
17.	उत्तरप्रदेश	5,850.00	597.32	1,132.00	121.00
18.	पश्चिम बंगाल	3,500.00	304.79	490.00	29.17
19.	सिक्किम	122.00	0.87	25.41	0.41
20.	दिल्ली	800.00	56.67	200.00	11 92
21.	चण्डीगढ़	100.75	3.31	23.77	0.99
22.	पांडीचेरी	71.55	12.16	19.19	2.60
23.	जम्मू तथा कश्मीर	—	—	168.00	0.86
24.	गोआ, दमन और दीव	—	—	44.12	0.30
	कुल	46,831.30	4,481.91	9,446 49	675 78

जैसा कि तालिका 9.5 से विदित होता है, विशेष केन्द्रीय सहायता से प्रेरित होकर राज्यों ने अपेक्षाकृत बड़े परिव्यय निर्धारित किए हैं।

तालिका 9 5

केन्द्रीय सहायता

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	राज्य योजना परिव्यय	वि. घ. प परिव्यय	प्रतिशत	विशेष केन्द्रीय सहायता
1979–80	5,967.03	240.54	4 03	5
1980–81	7,140.31	547.84	7.67	100
1981–82	8,229.31	632.76	7.69	110
1982–83	9,445.49	675.76	7.15	120

छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान राज्यों की घटक योजनाओं पर 600 करोड़ परिव्यय पर 1980–81, 1981–82 व 1982–83 में केन्द्रीय विशेष सहायता क्रमशः 100 करोड़, 110 करोड़ व 120 करोड़ रही।

अनुसूचित जाति विकास निगम

आर्थिक विकास से सम्बन्धित ऐसी योजनाओ में जिनमें बैंक की जरूरत होती है, अनुसूचित जाति के परिवारों को वित्तीय संस्थाओं से आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। अनुसूचित जाति विकास निगम भी इन परिवारों को अल्प-राशिवाली सहायता देकर वित्तीय संस्थाओं से मिलनेवाली सहायता मे वृद्धि करते हैं।

ये निगम 17 राज्यों में स्थापित किए गए हैं। केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों को इन निगमों की शेयर पूंजी में 49:51 के अनुपात मे पूंजी निवेश के लिए अनुदान दिये जाते हैं।

मात्रा में पूंजी निवेश के लिए अनुदान दिए जाते हैं।

सारणी 9.6 के अनुसार अब तक निम्नलिखित अनुदान दिए जा चुके हैं :—

तालिका 9.6

अनुसूचित जाति विकास निगमों को अनुदान

(लाख रुपए में)

वर्ष	राज्य सरकार का योगदान	केन्द्र द्वारा दी गई राशि
1978–79	710.55	50.00
1979–80	703.16	1,224.00
1980–81	1,403.00	1,300.97
1981–82	1,367.56	1,332.87
1982–83	1,364.40	1,350.00

इन निगमों द्वारा अर्जित अनुभवों व राज्य सरकार/केन्द्रीय मन्त्रालयों से प्राप्त सुझावों के आधार पर वर्ष 1981–82 में इस योजना में कुछ सुधार किए गए। अब ये निगम कुल 12,000 रुपये अनावर्ती लागत की योजनाओं को अल्प राशि ऋण सहायता दे सकते हैं। पहले यह सीमा 6,000 रुपये तक थी। संविधानात्मक कार्यकलापों, कर्मचारियों, ऋण वसूली अनुश्रवण सूचना=मूल्यांकन, तकनीकी विभागों आदि के लिए अब राज्य सरकारें अनुदान की हकदार हैं। यह अनुदान कुल केन्द्रीय सहायता के एक निश्चित प्रतिशत से अधिक नहीं मिलता।

सारांश यह है कि वर्तमान अन्तरिक्ष युग में भारत ही केवल एक ऐसा देश है, जहां चुनाव, शिक्षा तथा सेवाओं को छोड़कर अन्य प्रयोजनों के लिए करोड़ों लोग अभी तक द्वितीय श्रेणी के नागरिक माने जाते हैं। अन्यत्र, मानव कहीं भी अपने उत्सर्जित गन्दे पदार्थ दूसरे मानव के सिर पर लाद कर ले जाने, दूसरों के मूत्र में यथार्थतः स्नान करने तथा शौचागारों एवं बदबूदार गन्दे गटर-प्रवाहों में रहने के लिए बाध्य नहीं करता। तीन दशकों के बाद भी अस्पृश्यता के दोष, कलंक और कालिमा का उन्मूलन नहीं हुआ है, यद्यपि यह पर्याप्त मात्रा में घट चुकी है। परन्तु पुनः जैसा कि हेरल्ड आर. इशाक ने संप्रेक्षित किया—"विश्व में केवल भारत ही एक ऐसा देश है जहां सरकारी नियोजन के बण्टितांश तथा शैक्षणिक लाभों ने देश की जनसंख्या के निम्नतम स्तर के विशिष्ट समुदायों की सामाजिक और आर्थिक उन्नति को गति प्रदान करने के लिए सर्वत्र अधिकार स्थापित कर दिये हैं।"[1]

सामाजिक कल्याण योजनाओं, शैक्षणिक सुविधाओं तथा इन अपेक्षित द्वितीय श्रेणी के नागरिकों के प्रति सम्मानजनक व्यवहार में हुई प्रगति प्रशंसनीय है, तथापि प्रथम श्रेणी एवं द्वितीय श्रेणी की सेवाओं में आरक्षित पदों की 3% तथा 5% से अधिक पूर्ति नहीं हुई है। यद्यपि उनको भूमि आवंटित की गई, परन्तु गरीबी के शोषण तथा कमजोर तबके के पास सीमित साधनों के कारण वह उनके द्वारा कब्जे में नहीं रखी जा सकी। परन्तु राजनैतिक रूप से "एक व्यक्ति एक वोट" के कारण तथा विधायकों के आरक्षण के फलस्वरूप, अनुसूचित जातियों तथा जन-जातियों ने काफी अच्छा प्रयास किया है तथा राजनैतिक प्रभाव स्थापित किया है।

1. इन्डियाज एक्स अनटचेबिलिटी (1964) पृष्ठ 107।

सारणी 9.7

लोकसभा और विधान सभाओं में स्थानों का आरक्षण

राज्य/संघ राज्य क्षेत्र	लोकसभा			विधान सभा		
	कुल स्थान	अ. जा. के लिए आरक्षित स्थान	अनु. जनजातियों के लिए आरक्षित स्थान	कुल स्थान	अनु. जा. के लिए आरक्षित स्थान	अनु. जनजातियों के लिए आरक्षित स्थान
1	2	3	4	5	6	7
राज्य						
आन्ध्रप्रदेश	42	6	2	294	39	15
असम	14	1	2	126	8	16[1]
बिहार	54	8	5	324	48	28
गुजरात	26	2	4	182	13	26
हरियाणा	10	2	—	90	17	—
हिमाचल प्रदेश	4	1	—	68	16	3
जम्मू और कश्मीर	6	—	—	76[2]	6	—
कर्नाटक	28	4	—	224	33	2
केरल	20	2	—	140	13	1
मध्यप्रदेश	40	6	9	320	44	75
महाराष्ट्र	48	3	4	288	18	22
मणिपुर	2	—	1	60	11	19
मेघालय[3]	2	—	—	60	—	—
नागालैण्ड[3]	1	—	—	60	—	—
उड़ीसा	21	3	5	147	22	34
पंजाब	13	3	—	117	29	—

1	2	3	4	5	6	7
राजस्थान	25	4	3	200	33	24
सिक्किम	1	—	—	32	2	12[4]
तामिलनाडू	39	7	—	234	42	3
त्रिपुरा	2	—	1	60	7	17
उत्तरप्रदेश	85	18	—	425	92	1
पश्चिमी बंगाल	42	8	2	294	59	17
संघ राज्य क्षेत्र						
अंडमान और निकोबार						
द्वीप समूह	1	—	—	—	—	—
अरुणाचल प्रदेश[3]	2	—	—	30	—	—
चण्डीगढ़	1	—	—	—	—	—
दादर और नागरहवेली	1	—	1	—	—	—
दिल्ली[5]	7	1	—	56	9	—
गोवा, दमन और दीव	2	—	—	30	1	—
लक्षद्वीप	1	—	1	—	—	—
मिजोरम[3]	1	—	—	30	—	—
पांडीचेरी	1	—	—	30	5	—
कुल स्थान	542	79	40	3,997	557	315[6]

सारणी 9.8

भारतीय विधायिकाओं में आरक्षित व सामान्य स्थानों पर अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति प्रत्याशियों का प्रतिनिधित्व दर्शाते हुए सारणी (वर्ष 1952 से 1984)

वर्ष		कुल स्थान	आरक्षित स्थान		सामान्य स्थान		जनसंख्या		
			अ. जा.	अ. ज. जा.	अ. जा.	अ. ज. जा.	अ. जा.	अ. ज. जा.	सामान्य
1952	लोक सभा	481	74	29	5	1			1951 जनगणना
	विधान सभा	3177	470	221	7	4	5,50,63,722	2,24,39,740	36,10,88,090
1957	लोक सभा	500	76	31	6	3			
	विधान सभा	3202	470	221	8	7			
1962	लोक सभा	500	76	31	1	2			1961 जनगणना
	विधान सभा	3196	471	222			6,45,11,114	2,98,83,470	43,92,34,771
1967	लोक सभा	521	77	37	0	2			
	विधान सभा	3563	503	262					
1971	लोक सभा	519	77	37	1	4			1971 जनगणना
	विधान सभा	3563	503	262	3	2	6,44,17,366	3,01,72,221	54,81,59,652
1972	लोक सभा	522	77	40	1	4			
	विधान सभा	3771	516	321	3	2			
1977	लोक सभा	542	78	38	1	2			
	विधान सभा	3997	540	282	13	10			
1979–80	लोक सभा	542	79	40	1	0			
	विधान सभा	3997	557	303	1	1			
1981	—	—	—	—	—	—			1981 जनगणना
1984	लोक सभा	—	—	—	—	—	10,47,54,623	5,16,28,638	68,51,84,692

केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन-जातियों के कल्याण पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इनके कल्याण के लिये प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में विशेष कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये हैं और इन विशेष कार्यक्रमों पर किये गये विशेष निवेश की मात्रा मे प्रत्येक योजना में वृद्धि होती रही है जैसा कि सारणी 9.9 मे दिखाया गया है।[1]

सारणी 9.9

(करोड़ रुपये)

योजना	अवधि	व्यय
पहली पचवर्षीय योजना	1951–56	30.40
दूसरी पंचवर्षीय योजना	1956–61	79.41
तीसरी पंचवर्षीय योजना	1961–66	100.40
वार्षिक योजनाएं	1966–69	68.50
चौथी पंचवर्षीय योजना	1969–74	172.70
पांचवी पंचवर्षीय योजना	1974–78	296.19
छठी पंचवर्षीय योजना (परिव्यय)	1980–85	
(1) केन्द्रीय क्षेत्र		240.00
(2) राज्य क्षेत्र		720.00
(3) जन जातीय क्षेत्रों उप-योजनाओं के लिये विशेष केन्द्रीय सहायता		470.00
(4) अनुसूचित जातियों के विकास की संघटक योजनाओं के लिए विशेष केन्द्रीय सहायता		600·00

इसके अतिरिक्त राज्य सरकार अपने अनियोजित बजट के माध्यम से भी इन जातियो के कल्याणार्थ एक अच्छी राशि व्यय कर रही है।

विचित्र का प्रकरण अनुच्छेद 334

विचित्र वनवारी लाल मीना बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया[2] और अन्य, प्रकरण के निर्णय मे जिसमे आरक्षण को और बढ़ाने तथा 44वें संशोधन द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 334 में संशोधन करने को चुनौती दी गई थी, ऊपर वर्णित आधारों पर मैंने अपना मत व्यक्त किया कि मेरी विचारित सम्मति के अनुसार, 30 से 40 वर्षों से आरक्षण को बढाते रहने की उपयोगिता, यथार्थता तथा न्याययुक्तता इस तुलनात्मक अध्ययन से समझी जा सकती है कि अनुसूचित जाति

1. भारत 1983 वार्षिक संदर्भ ग्रंथ 1983।
2. ए. आई. आर. 1982 राजस्थान पृ. 297।

तथा जनजाति से सम्बन्धित कितने प्रत्याशी राष्ट्र की ससद् या विधानसभा मे साधारण सीटों में निर्वाचित हुए हैं। इस सदर्भ मे श्रांकड़े बहुत कम हैं, सूचना प्राप्त करने के लिए मुझे आंकड़े एकत्रित करने वाले राजकीय सूचना केन्द्रों पर निर्भर रहना पड़ा है। कतिपय अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ताओं तथा राजनयिको के मन्तव्यों के अनुसार हमारा देश "भारत" जनता का सबसे बड़ा, विशालतम, सबसे सफल प्रजातन्त्र देश है परन्तु अत्यधिक कठिनाइयों से उपलब्ध आंकडों से यह दर्शित होता है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् विगत चालीस वर्षों मे वयस्क मताधिकार के बावजूद भी ऊपर वर्णित आरक्षित वर्ग के कितने लोग सामान्य (अनारक्षित) क्षेत्रो से चुने जाते है। ऊपर वर्णित आकडों पर गम्भीरता से दृष्टिपात करने से प्रत्येक शिक्षित या अशिक्षित को, राजनैनिक रूप से सजग या इस दृष्टि से तटस्थ नागरिकों तक को; भी यह प्रतीत होगा कि, अनुच्छेद 334 के अन्तर्गत प्रारम्भ किए गए सफलतम सशोधनों तथा अनुच्छेद 330 तथा 334 के समावेशों के पश्चात् भी अनुसूचित जाति या जनजाति वास्तव में, इन शक्तिशाली सदनो या लोक सभा या विधान सभा की प्राचीरों से अछूते ही रह जाते है तथा स्वय द्वितीय श्रेणी के नागरिक के रूप में दयनीय स्थिति में रहकर केवल "परलोक सभा" में ही बैठे रह जाते है।

हरिजन और गिरिजन जो कि अनुसूचित जाति तथा जनजाति से सम्बन्धित हैं, भारत के समाज का केवल कमजोर ही नही दुर्बलतम एवं पददलित तबका है। भारत में स्पष्ट रूप से केवल मन्दिरों और दीवारो में ही नही अपितु सार्वजनिक स्थलो जहा जनता एकत्रित होती है, उत्पीड़न, अवरोध तथा दबाव दृष्टिगोचर होता है वह दीवारों तथा वीथिकाओं (गलियों) तक मे उत्कीर्ण हैं, यह मेरे लिए निर्णीत करने के लिए नही है। यदि मै जस्टिस होम्स् की शब्दावली प्रयुक्त करूँ तो मैं कहूगा कि 45वां संशोधन एक तार्किक परिणति तथा समय की अनुभूत आवश्यकताओ का ही परिणाम है और यह भारत की प्राचीरों पर लिखी गई इबारत के समान है।

संविधान निर्माताओं ने अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़े वर्ग के हितों को विकसित करने के लिए तथा सुरक्षा प्रदान करने के लिए संविधान में कई अनुच्छेदो जैसे 15, 16, 17, 19, 23, 25, 29, 35, 38, 46, 164, 244, 275, 320 (4), 330, 331, 332, 333, 334, 335, 338, 339, 340, 341, 342 को समाविष्ट किया है तथा इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अनुच्छेद 39ए, 371ए, 371 बी और 371सी संशोधन करके सम्मिलित किए गए हैं।

लेकिन मेरे मन्तव्यों में ऊपर वर्णित अनुच्छेदों को आधारभूमि तथ्य वैधानिक भार प्रदान करने के लिए अनुच्छेद 334 अधिकारों के रूप में चट्टान सदृश तथा सुरक्षा कोष व उद्गम है। जो कमजोर तबके को कानून निर्माता, प्रथम श्रेणी नागरिक तथा अपने भाग्य का स्वयं निर्माता बनने के लिए अभ्युत्थान करना है। यदि उसकी आवाज विधान सभा में सहज ढंग से सुनी नही जाती है तो दूसरे अन्य

अनुच्छेद उनके लिए मगरमच्छ के आंसू के समान होंगे जो न प्रवर्तनीय न उत्तरदायित्व पूर्ण होंगे। अनुच्छेद 334 वस्तुतः ऊपर वर्णित अनुच्छेदों का सजग प्रहरी तथा समानता को सरक्षित करता है।

जनसख्या के आकडे प्रदर्शित करते हैं कि भारत में अनुसूचित जाति तथा जनजाति की आबादी 23 प्रतिशत से अधिक है तथा 13 करोड़ से अधिक चली गई है जो इन्डोनेशिया, पाकिस्तान, बागला देश तथा श्री लंका की आबादी से ज्यादा है और विश्व के अन्य देशों का लगभग एक-तिहाई है। कई व्याख्याताओं तथा समाज सुधारकों के अनुसंधान तथा अध्ययन के आधार पर गरीब तबकों के अभ्युत्थान के लिए कार्य करने वाले कई सबधित प्राधिकरणों का मन्तव्य है कि अनुसूचित जाति, जनजाति तथा गरीब तबकों के अभ्युत्थान के लिए अभी भी आरक्षण के संरक्षण की आवश्यकता है।

उनकी सामाजिक एवं आर्थिक मुक्ति, उन्हें चतुर्थ श्रेणी की नागरिकता से उठाकर प्रथम श्रेणी की नागरिकता का दर्जा दिलाना, उन्हें फुटपाथियों झोपड़ पट्टी के स्थान पर घर उपलब्ध करवाना, उनके गर्म एवं सर्द चेहरों पर गुलाबी मुस्कान खिलाना, अभी भी बाकी है एवं आरक्षण अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के रूप में तब तक प्राप्त किया जाना अति आवश्यक है। मेरी निरूपित राय में, अनुच्छेद 334 का प्रत्येक नया सशोधन जो कि हमारे सविधान निर्माताओं की उपरोक्त शपथ का पुनर्निरीक्षण करता है एवं अनुसूचित जाति एवं जनजाति समुदाय को बंधुआ मजदूरी से मुक्त कराने की एक नवीन शपथ लेता है एवं यही हमारे संविधान के अनुच्छेद 14,15 एवं 46 की सच्ची सेवा है।

मेरी ऐसी मान्यता है कि यद्यपि यह न्यायालय 45वें सविधान संशोधन की वैधता एवं वस्तुपरकता के प्रश्न पर राय व्यक्त नही कर सकता परन्तु सीमित पुनर्निरीक्षण के क्षेत्राधिकार की कल्पना को संदर्भगत रखते हुए मैं यह समझता हूं कि 40 वर्ष तक का काल बढ़ाया जाना पूर्णतया न्यायोचित एवं तर्कसंगत था एव इस आवश्यकता के अनुरूप था कि हरिजन एवं गिरीजन का उत्थान हो एवं उन्हें समान रूप से अवसर पाने का हक हो जिससे कि वे अपने भविष्य का स्वयं निर्धारण कर सकें। आरक्षण के अभाव मे वे यह अवसर कभी भी प्राप्त नही कर सकते थे। यदि उन्हें बहुसंख्यकों की दया पर छोड़ दिया जाता जो कि उनका चुनाव वहां करते जहां पर कि उनको सम्पन्नता, संसाधनों एवं सामाजिक स्थिति का अभाव है एव उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता है-जैसे कि वे द्वितीय श्रेणी के नागरिक हों-यह हाल सविधान के कार्यकाल के तीन दशकों से भी अधिक समय गुजर जाने के बावजूद भी इस अन्तरिक्ष युग मे विद्यमान है।

45वां सशोधन न्यायिक परीक्षण के आधार पर भी न्यायोचित, स्पष्ट एवं अति आवश्यक है जो कि अनुच्छेद 14 व 46 की सच्ची एवं कारगर सेवा है।

गहन विश्लेषण के बाद, 45वां भारतीय संविधान का संशोधन मोटे तौर पर इसके सम्पूर्ण आयामों एवं परिणामों मे एक ऐसी व्यवस्था को दर्शाता है जिसमे कि लोग समानता को अपने जीवन का एक अभिन्न अंग बना लेते है। न्याय का निर्धारण विना किसी भेदभाव के करते हुए शताब्दियों पूर्व, इस समानता की ओर भगवान श्री कृष्ण ने गीता में इस प्रकार से उल्लेख किया :

चतुर्वर्णम् मया शृष्टम् गुण कर्म विभागश:

डॉ. राधाकृष्णन् ने प्रसिद्ध अप्टॉन भाषण माला (1926) मे अपना मंतव्य प्रकट किया कि :

"किसी भी समाज, वर्ग अथवा विभाग मे जब तक कुछ लोग दासता की बेड़ी से जकड़े हुए रह रहे हैं उस समाज में सच्ची स्वतंत्रता निहित नही हो सकती।" यह सर्वरूपेण प्रजातांत्रिक आदर्श है जो कि इन शब्दों में व्यक्त किया गया है "जीवन की कठिनता से सभी पार पा जाए, सभी को खुशियों की मंजिल मिले, सभी को सद्ज्ञान का दिग्दर्शन हो, सभी का मंगलमय हो।"

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दु:ख भाग भवेत्।
सर्वे स्वास्तु दर्गाणि सर्वा भ्रद्राणि पश्यतु,
सर्वे स्वास्तद् बुद्धिम अपनोत् सर्वासिर्वात् नन्दनात्॥[1]

डॉ. राधाकृष्णन ने आगे मंतव्य प्रकट करते हुए कहा —"भागवत स्पष्ट रूप से बताती है कि ईश्वर केवल एक है। मनु का कहना है कि सभी मनुष्य शुद्र रूप में पैदा होते हैं—उनके प्रथम अथवा शारीरिक जन्म के रूप मे। परन्तु द्विज बन जाते हैं, स्वयं के द्वितीय अथवा आध्यात्मिक जन्म के आधार पर। जाति केवल मात्र एक चरित्र का प्रश्न है। मनुष्य अपने कर्म के आधार पर ब्राहण होता है न कि परिवार अथवा जन्म के आधार पर। चाण्डाल तक भी ब्राह्मण बन सकता है यदि वह पवित्र चरित्र वाला है।"

"ब्रह्मदासा ब्रह्मदासा ब्रह्मे वेमे किता वह्"

(ix.14.48)

कई महान् ऋषि जो कि ब्राह्मणों द्वारा पूजे जाते हैं अर्द्ध वर्णीय है एवं वर्ण-संकर द्वारा पैदा हुए हैं। वशिष्ठ ऋषि एक वैश्या की सतान थे, व्यास एक मत्स्यप्रािन की एवं परासर एक चाण्डाल स्त्री की।

गणिका गर्भ संभूतो व शिष्ठा का मा हा मुनी,
तपसा ब्रह्मणजात: संस्कारराद तंत्र शरणम्।
जातु व्यासास्तु कैवर्त्यः स्वयकस्यास्तु पराशर:,
बहावो नेपि विप्रत्वम् प्राप्ताये पूर्वमाद्विजम्॥

1. डॉ. राधाकृष्णन के अभिभाषण हिन्दू विचार पर [illegible], आंशिक [illegible] आठवां संस्करण 1949, पृष्ठ 117 व 121।

प्रतिपालन नहीं कर पाएंगे।"

नेहरू को पुनः उद्धरित करते हुए :

"भारतवर्ष की सेवा के माने हैं लाखों करोड़ों त्रस्त व्यक्तियों की सेवा करना। इससे तात्पर्य है कि गरीबी, अज्ञानता, आधि-व्याधि एवं अवसर की असमानता को दूर करना। हमारे जीवन काल के महानतम व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षा हमेशा ही रही-प्रत्येक आंख से आंसू पोंछ डालने की।"

श्री कौशल ने तब निम्नलिखित सिंहनाद किया :

"और अधिकांश आंखों में आज भी आंसू विद्यमान है। इस विचारधारा के संदर्भगत रहते हुए इस गोष्ठी के मिशन एवं दृष्टिकोण को समझा जाना चाहिए, एवं मैं मिशन शब्द को दोहराता हूं, क्योंकि गोष्ठी का आयोजन एक मिशन के लिए ही किया गया है। हमें अपनी चिरनिद्रा से जागृत हो जाना चाहिए कदाचित् बहुत देर हो चुकने से पहले।"

अनुसूचित जाति एवं जनजाति के उत्थान हेतु राजनीतिक एकात्म वैचारिकता

संविधान निर्माताओं को धन्यवाद—महान् संवैधानिक सुरक्षाएं प्रदान करने के लिए। यद्यपि उन्हें कार्य रूप में परिणित करने की गति घोंघे की चाल के समान है, धीमी एवं कार्यबाधक, परन्तु इस सब से निराश होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका पूर्ण रूप से सतर्क हैं—पवित्र संवैधानिक जनादेश एवं मूलभूत सिद्धान्तों के परिपालन से आवश्यकता एवं गतीयमानता को बनाए रखने में। सौभाग्यवश, राजनैतिक धरातल पर भी, इन विचारणीय बिन्दुओं पर लगभग एकात्मवैचारिकता है एवं यदा-कदा प्रतियोगिताएं भी उनके उत्थान मे सहभाजक होती हैं एवं उन्हें प्रथम श्रेणी का नागरिक बनाने मे सहायक। यह तथ्य कि उच्च न्यायिक सेवाओं एवं मुख्यतया उच्च न्यायालयों एवं सर्वोच्च न्यायालय में अपेक्षाकृत बेहतर स्थान प्रदान करने का सिद्धान्त अभी तक लागू नहीं हुआ है—यह एक ऐसा विचारणीय प्रश्न है जिसका कि पुनरावलोकन एवं अन्तरावलोकन प्रत्येक स्तर पर किया जाना आवश्यक है।

विधानयों व सरकारी सेवाओं में आरक्षण के अनुपात को गुजरात व मध्य-प्रदेश मे 1984-85 में बढाने पर, विरोध के स्वर तीव्रगति से आन्दोलन में प्रकट हुऐ हैं—व जन्म जाति को छोड़ आर्थिक कमजोर वर्ग को आरक्षण देने का सुझाव भी दिया जा रहा है। गोलमेज सम्मेलन बुलाये जाकर इस नीति पर पुनःविचार की संभावनाएं भी बढ रही है। यदि सब पहलुओ पर रचनात्मक, क्रियात्मक व सृजनात्मक विचार मंथन हो तो स्वागत योग्य है—परन्तु हिंसा व आंदोलनात्मक विरोध समाज की अखंडता व एकता को अस्थिर कर देगा। अन्ततोगत्वा सदियों से दलित व शोषित अनुसूचित जाति व जनजाति का उत्थान हमारा कर्तव्य है—व समाज की एकात्मकता के लिए भी आवश्यक है।

प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी ने पिछड़े वर्ग के आरक्षण के सम्बन्ध में राष्ट्रीय सम्पत्ति पर निर्णय की संभावना प्रकट करते हुए स्पष्ट किया है कि अनुसूचित जाति व जनजाति के आरक्षण की नीति अक्षुण्ण रहेगी[1] व इसमें परिवर्तन का कोई सवाल नहीं है। गुजरात आरक्षण विरोधी आन्दोलन की प्रक्रिया में धर्म व सांप्रदायिक दंगों में लगभग 240 निरपराध व्यक्ति मर चुके हैं। अन्ततोगत्वा यह प्रश्न राजनैतिक है, परन्तु अनुसूचित जाति व जनजाति के उत्थान हेतु सामाजिक क्रांति व संवैधानिक संरक्षण से ही राष्ट्रीय एकता, अखण्डता व सामाजिक न्याय प्रस्थापित हो सकता है।

महात्मा गांधी व बाबा साहिब अम्बेडकर के पूना पैक्ट व गांधी के अछूतोद्धार का मिशन अभी भी अपूर्ण है इसे पूर्ण न होते देख कर ही डॉ. अम्बेडकर बौद्ध बनने को बाध्य हुए। सामाजिक न्याय के अनुकूल यदि अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्ग को समान नागरिक बना कर सम्मानित एवं आदरपूर्ण व्यवहार नहीं किया गया तो जहां एक ओर धर्म परिवर्तन व जातीय विद्वेष बढ़ेगा वहां दूसरी ओर राष्ट्रीय अखण्डता को असाधारण हानि होगी।

सामाजिक न्याय के लिए यह आवश्यक है कि काका कालेलकर आयोग व मण्डल आयोग के प्रतिवेदन पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये।

प्रश्न यह है कि दलित भाइयों को अपने बराबर उठाने का प्रयास अभी प्रतिक्रांति की ज्वाला में धधक रहा है तथा गुजरात इसी प्रतिक्रांति में धू-धू कर जल रहा है। यदि भारत को एक राष्ट्र के रूप में अखण्ड व शक्तिशाली बनाना है तो ऊंची जाति व नीची जाति तथा वर्ण व्यवस्था का भेद-भाव समाप्त करना ही होगा। जब तक यह भेद-भाव समाप्त न होगा आरक्षण अनिवार्य है अन्यथा सारा राष्ट्र टुकड़ों-टुकड़ों में बंट जाएगा। एक बार समता व समानता का युग आया तो आरक्षण की आवश्यकता स्वतः ही समाप्त हो जायेगी। सामाजिक आर्थिक क्रांति को गति देने के लिए हमें गांधी व डॉक्टर अम्बेडकर के अजर-अमर सन्देश को अपनाना होगा।

---

1. प्रधानमन्त्री की 7 जुलाई 1985 को संवाददाता सम्मेलन में घोषणा—हिन्दुस्तान टाईम्स, 8.7.85, पृष्ठ-2।

भारतीय न्यायपालिका द्वारा ग्रात्म-हत्या

जब मैं सन् 1971 के भारत-पाक युद्ध में प्रसिद्ध लोंगावाला ग्रौर तरणोट प्रतिरक्षा चौकियों को जो सुन्दर रेतीले टीलों से घिरी हुई है, देखने के लिए बम्बई के मुख्य न्यायाधीश एवं ग्रपने सम्मान्य वरिष्ठ मित्र श्री देशपाण्डे के साथ स्वर्णिम पीत पाषाण दुर्ग (ग्रमर सोनाला विला) के सामने से होकर प्रस्थान कर रहा था तो ग्राकाशवाणी से शीर्ष पंक्तियों में एक सद्य समाचार प्रसारित हुग्रा—"उच्चतम न्यायालय ने न्यायाधीशों की रिट याचिकाएं खारिज कर दी है, पटना के मुख्य न्यायाधीश श्री सिंह तथा मद्रास के श्री इस्माइल का स्थानान्तरण यथावत् रखकर विधि मन्त्री शिवशंकर के परिपत्र को वैध घोषित कर दिया है तथा दिल्ली न्यायालय के न्यायाधीश कुमार ग्रौर वोहरा के सेवाकाल की ग्रवधि बढ़ाने से मना करने के विरुद्ध दलील खारिज कर दी है। एक ग्रौर प्रसारण, बहुमत ग्रौर ग्रल्पमत में ग्रल्प-सा ग्रन्तर स्पष्ट ब्यौरे सहित—सात न्यायाधीशों का क्रम-परिवर्तन ग्रौर मिश्रण भगवती यहाँ बहुमत मे तथा वहाँ ग्रल्पमत मे "यह लोंगावाला का भयकर ग्राक्रमण था या या तरणोट का दैविक द्वन्द्व, जहाँ पाकिस्तानी सेना ने ग्रापस मे ही एक-दूसरे पर गोलाबारी की।" बहुत से पर्यटक बडे प्रश्न-चिह्नों के बीच चकचकाने लगे। "यह हत्या है या ग्रात्म-हत्या ?" हमने रूढ़ीवादी हिन्दू विधवाग्रो की तरह ग्रपना मुंह बन्द रखना ठीक समझा।

2. जब से सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पिछले दो मास की कालावधि में न्यायाधीशो के वाद[1] का निर्णय सुनाया गया, तबसे संविधान के ग्रनुच्छेद 141 व 142 के सम्बन्ध में ग्रभिकथित "ग्रात्म-हत्या" के फलस्वरूप भागीरथ के ग्रथक् प्रयत्नो द्वारा ग्रवतीर्ण पावन, ग्रनुद्विग्न तथा परम्परागत् शान्त गगा धधकती ग्राग की लपटों से घिर गई है। इसकी ग्रालोचना ग्रनेक माध्यमों द्वारा की जा रही है, जिसका समाचार-पत्रों मे बाहुल्य है। चन्द तथाकथित कूटनीतिज्ञों के कथनानुसार पाकिस्तान का निर्माण करके भारत के विभाजन की भाँति, मैथ्यू कमीशन द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को सवैधानिक पीठ तथा ग्रपीलीय पीठ मे विभक्त करनेवाली प्रश्नमाला के प्रसग ने ग्राग मे घी डालने का कार्य किया है।

---

1. एस. पी. गुप्ता व ग्रन्य बनाम भारत का राष्ट्रपति व ग्रन्य दिनांक 30-12-81 को विनिश्चित; ए. ग्राई. ग्रार. 1982 एस. सी. पृष्ठ 149, (पीठ न्यायाधीशगण पी. एन. भगवती, ए. सी. गुप्ता, एम. एम. फजलग्रली, तुलजापुरकर, देसाई, पाठक एव वैंकटरमैया)।

प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी ने पिछड़े वर्ग के
राष्ट्रीय सम्पत्ति पर निर्णय की संभावनां प्रकट करते हुए
जाति व जनजाति के आरक्षण की नीति अक्षुण्ण रहेगी[1]
सवाल नही है। गुजरात आरक्षण विरोधी आन्दोलन की
दंगों में लगभग 240 निरपराध व्यक्ति मर चुके हैं। अ
है, परन्तु अनुसूचित जाति व जनजाति के उत्थान हेतु
संरक्षण से ही राष्ट्रीय एकता, अखण्डता व सामाजिव

महात्मा गांधी व बाबा साहिब अम्बेडकर के
द्वार का मिशन अभी भी अपूर्ण है इसे पूर्ण न होते
बनने को बाध्य हुए। सामाजिक न्याय के अनुकूल
पिछड़े वर्ग को समान नागरिक बना कर सम्मानि
किया गया तो जहां एक ओर धर्म परिवर्तन व ज
राष्ट्रीय अखण्डता को असाधारण हानि होगी।

सामाजिक न्याय के लिए यह आवश्यक
मण्डल आयोग के प्रतिवेदन पर गम्भीरतापूर्वक

प्रश्न यह है कि दलित भाइयों को अप
जाति की ज्वाला में धधक रहा है तथा गुजरा
रहा है। यदि भारत को एक राष्ट्र के रूप मे
जाति व नीची जाति तथा वर्ण व्यवस्था का
तक यह भेद-भाव समाप्त न होगा आरक्षण अ
मे बंट जाएगा। एक बार समता व समान
बता स्वतः ही समाप्त हो जायेगी। सामा
हमें गांधी व डॉक्टर अम्बेडकर के अजर-

जस्टिस वी. लेन्टिन द्वारा दिनांक 2 जनवरी, 1982 को अन्तुले का महाभियोजन रातोरात उनकी अपदस्थता मे परिणत हुआ, जिसने व्याकुलता अनुभव कर रहे तथा उपरोक्त एस. पी. गुप्ता के वाद मे न्यायाधीशों के निर्णय के अन्धकार में डूब रहे न्याय-प्रेमियों को पुनर्जाग्रति प्रदान की जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के गौरव को एक राज्य के राज्यपाल के समकक्ष निम्नस्तर पर समझ लिया गया था, अन्यथा जो सदैव एक श्रेष्ठ कोटि का पद माना गया था, यहाँ तक कि ब्रिटिश राज्य के बुरे दिनो मे भी, जबकि भारत उपनिवेशवादी साम्राज्य के अधीन था और गोरे लोग भारतीयों के साथ "भारतीयो और कुत्तों को अनुमति नही" दर्शक संकेत पट लगाकर हमारे साथ दासों का सा व्यवहार करते थे।

7. अमावस्या के श्याम तिमिर घन के पर्यन्त भी भारतीय संविधान के अधीन कार्यरत न्यायपालिका में सूर्योदय की पर्याप्त चमक तथा दीप्तिमय रजत रेखा दृष्टिगोचर हो रही है, चाहे वह दिल्ली उच्च न्यायालय के न्यायाधीश टी. पी. एस. चावला द्वारा इन्दिरा गांधी के विरुद्ध अभियोजन को अभिखण्डित करनेवाला निर्णय हो[1] या जस्टिस लेन्टिन द्वारा अन्तुले को बर्खास्त करना या जस्टिस सिन्हा द्वारा इन्दिरा गांधी का चुनाव अवैध घोषित करते हुए निर्णय सुनाना हो[2]। भारतीय संविधान ने न्यायपालिका में उस समय सर्वोपरि स्वतन्त्रता की झलक देखी जब शक्तिशाली जनता राज में श्री मोरारजी भाई देसाई की सरकार द्वारा श्रीमती इन्दिरा गाधी को गिरफ्तार करके पहनाई हुई हथकड़ियाँ तुड़वाकर एक लघु न्यायिक अधि-अधिकारी-दिल्ली के अतिरिक्त मैट्रोपोलिटेन मजिस्ट्रेट श्री आर. दयाल द्वारा उन्हे बन्धन मुक्त किया गया। उसने न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के परिनिष्ठित अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास का सूत्रपात करते हुए उन्हे पूर्ण स्वतन्त्र कर दिया।

8. अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के उपरोक्त चन्द ऐतिहासिक और परिनिष्ठित निर्णय जो भारतीय न्यायपालिका के क्षेत्र मे युग-परिवर्तनकारी घटनाओं का सूत्रपात है, मेरे द्वारा यह दर्शाने के लिए निर्देशित किये गये हैं कि "आत्म-हत्या" के सम्बन्ध में समस्त हो-हल्ला अन्ततोगत्वा न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के सन्दर्भ मे अगर पूर्ण असत्य नही तो कम से कम अर्द्ध-सत्य अवश्य है। उपरोक्त आधार भूमि तथा ठोस आकड़ों के आधार पर मै पुरजोर शब्दों मे यह कहता हूँ कि भारतीय संविधान के अधीन हमारी न्यायपालिका विश्व की एक अत्यन्त स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष संस्था है।

9. मैं यह कहने मे गर्व अनुभव करता हूं कि "न्यायपालिका की स्वतन्त्रता" के विषय मे संयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य पूंजीपति देश व रूस तथा समाजवादी देशो मे से कोई भी भारत के समकक्ष नही टिक सकता। समाजवादी देशो मे न्याय-

---

1. दिल्ली उच्च न्यायालय का निर्णय—श्रीमती इन्दिरा गांधी बनाम शाह कमीशन, 1979।
2. इलाहाबाद उच्च न्यायालय का निर्णय—श्री राजनारायण बनाम श्रीमती इन्दिरा गांधी—ए. आई. आर. 1975, इलाहाबाद, पृष्ठ 141।

3. श्री नानी ए. पालकीवाला ने घोषित किया कि-"जब तक हमारे संविधान का अस्तित्व मौजूद है, तब तक सर्वोच्च न्यायालय ज्यों का त्यों रहेगा। यहाँ केवल एक राष्ट्रपति व एक प्रधानमन्त्री हो सकता है तथा एक ही सर्वोच्च न्यायालय हो सकता है।"[1]

4. अतएव आप यह अनुभव करेंगे कि जब वातावरण इतना उष्ण तथा अनिभाराक्रान्त हो, एक सेवारत न्यायाधीश जो स्वयं द्वारा थोपे हुए सुखद कारावास से पीड़ित हो, "हमारे संविधान के अधीन न्यायपालिका की स्वतन्त्रता" जैसे महत्वपूर्ण विषय पर अपने विचार प्रकट करने में अपने आप को भयावह रूप से संकटग्रस्त अनुभव करने के लिए वाध्य है। इस समय गंगा में आग लग रही है और मुझे विश्वास है कि आप यह नहीं चाहेंगे कि मैं एक और "आत्म-हत्या" द्वारा उस अग्नि में ईंधन डालकर अपनी ऊंगलियाँ जलाऊँ। किन्तु फिर भी मैं श्री अरूण शौरी[3], श्री अरूण पुरी[3], श्री सुमीत मित्र[4], श्री ए. जी. नूरानी[5] एवं श्री कुलदीप नय्यर की आणविक बमवारी की वेला मे इस अत्यन्त अप्रिय एवं किंकर्तव्यविमूढकारी कार्य का सम्पादन करना अपना कर्तव्य समझता हूं।

6. भारत के विपुल मुखर समाचार-पत्रों द्वारा जस्टिस भगवती को पदाघात और चिकोटियों के बीच, हमें उनके रक्षक-छद्म द्वारा उनकी सफल तथा सार्थक प्रतिरक्षा के लिये, उनके साक्षात्कार[6] में निहित न्यायपालिका के माध्यम से जनहितैषी वादिता तथा सामाजार्थिक सुधारो द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की कर्मण्यता का अन्वीक्षण करना है। बम्बई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश वी. लेण्टिन पर फूलों की वर्षा तथा प्रशंसा-घोष किये जा रहे हैं।

---

1. इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया-4 मई, 1980 में पृष्ठ 22 पर डा राजिव धवन के लेख "जस्टिस आन ट्रायल;दी सुप्रीम कोर्ट टुडे" मे सर्वोच्च न्यायालय के वर्तमान स्वरूप को समाप्त करने वाले तर्क के उत्तर में 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया के ही 11 मई, 1980 के अंक में श्री नानी ए. पालकीवाला का लेख "दी सुप्रीम कोर्ट गुड नाट डाई।'
2. न्यायाधीशों का वार—
   (1) एज कन्सीस्टेन्सी इज बट ए होलो गॅम्बिलन, पृष्ठ 1।
   (2) फिलप फ्लोर फिलप, पृष्ठ 1।
   (3) वाइ वाट आर चर्जेज ब्राइब्ड—
   (इण्डियन एक्सप्रेस, 24, 25, 26 जनवरी, 1982)
3. जुडिशियरी विद्रब्ड बाई दी एग्जीक्यूटिव (इण्डिया टूडे जनवरी 15, 1982 पृष्ठ 86।
4. जुडिशियरी सिलिरटर इम्पलीकेसन्स (इण्डिया टू डे-फरवरी 28, 1982 पृष्ठ 9।)
5. "इण्डिक्टमेन्ट आफ अन्तुले-ब्रजन एब्यूज आफ पावर" (दी इल्लस्ट्रेटेड आफ वीकली इण्डिया, जनवरी 31, 1982 पृष्ठ 22)
6. "इज दी सुप्रिमकोर्ट एनफोर्सेड सीटीजन राइट्स"
   दीना वकील से बात-इण्डियन एक्सप्रेस, दिनांक 31 जनवरी, 1982।

जस्टिस वी. लेन्टिन द्वारा दिनांक 2 जनवरी, 1982 को अन्तुले का महाभियोजन रातोंरात उनकी अपदस्थता मे परिणत हुआ, जिसने व्याकुलता अनुभव कर रहे तथा उपरोक्त एस. पी. गुप्ता के वाद मे न्यायाधीशों के निर्णय के अन्धकार में डूब रहे न्याय-प्रेमियो को पुनर्जाग्रति प्रदान की जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के गौरव को एक राज्य के राज्यपाल के समकक्ष निम्नस्तर पर समझ लिया गया था, अन्यथा जो सदैव एक श्रेष्ठ कोटि का पद माना गया था, यहाँ तक कि ब्रिटिश राज्य के बुरे दिनो मे भी, जबकि भारत उपनिवेशवादी साम्राज्य के अधीन था और गोरे लोग भारतीयों के साथ "भारतीयों और कुत्तो को अनुमति नही" दर्शक संकेत पट लगाकर हमारे साथ दासों का सा व्यवहार करते थे।

7. अमावस्या के श्याम तिमिर घन के पर्यन्त भी भारतीय सविधान के अधीन कार्यरत न्यायपालिका में सूर्योदय की पर्याप्त चमक तथा दीप्तिमय रजत रेखा दृष्टिगोचर हो रही है, चाहे वह दिल्ली उच्च न्यायालय के न्यायाधीश टी. वी. एस चावला द्वारा इन्दिरा गांधी के विरुद्ध अभियोजन को अभिखण्डित करनेवाला निर्णय हो[1] या जस्टिस लेन्टिन द्वारा अन्तुले को वर्खास्त करना या जस्टिस सिन्हा द्वारा इन्दिरा गांधी का चुनाव अवैध घोषित करते हुए निर्णय सुनाना हो[2]। भारतीय सविधान ने न्यायपालिका में उस समय सर्वोपरि स्वतन्त्रता की झलक देखी जब शक्तिशाली जनता राज में श्री मोरारजी भाई देसाई की सरकार द्वारा श्रीमती इन्दिरा गाधी को गिरफ्तार करके पहनाई हुई हथकड़ियाँ तुड़वाकर एक लघु न्यायिक अधिअधिकारी-दिल्ली के अतिरिक्त मैट्रोपोलिटेन मजिस्ट्रेट श्री आर. दयाल द्वारा उन्हे वन्धन मुक्त किया गया। उसने न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के परिनिष्ठित अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास का सूत्रपात करते हुए उन्हें पूर्ण स्वतन्त्र कर किया।

8. अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के उपरोक्त चन्द ऐतिहासिक और परिनिष्ठित निर्णय जो भारतीय न्यायपालिका के क्षेत्र में युग-परिवर्तनकारी घटनाओं का सूत्रपात है, मेरे द्वारा यह दर्शाने के लिए निर्देशित किये गये है कि "आत्म-हत्या" के सम्बन्ध में समस्त हो-हल्ला अन्ततोगत्वा न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के सन्दर्भ मे अगर पूर्ण असत्य नही तो कम से कम अर्द्ध-सत्य अवश्य है। उपरोक्त आधार भूमि तथा ठोस आंकडो के आधार पर मैं पुरजोर शब्दों मे यह कहता हूँ कि भारतीय सविधान के अधीन हमारी न्यायपालिक विश्व की एक अत्यन्त स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष संस्था है।

9. मैं यह कहने मे गर्व अनुभव करता हूं कि "न्यायपालिका की स्वतन्त्रता" के विषय मे सयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य पूंजीपति देश व रूस तथा समाजवादी देशो मे से कोई भी भारत के समकक्ष नही टिक सकता। समाजवादी देशो मे न्याय-

---

1. दिल्ली उच्च न्यायालय का निर्णय—श्रीमती इन्दिरा गांधी बनाम शाह कमीशन, 1979।
2. इलाहाबाद उच्च न्यायालय का निर्णय—श्री राजनारायण बनाम श्रीमती इन्दिरा गांधी—ए. आई. आर. 1975, इलाहाबाद, पृष्ठ 141।

पालिका उपार्जित है, जो विधि या संविधान के प्रति वचनबद्ध नहीं बल्कि सर्वहारा वर्ग के प्रति वचनबद्ध है। अंग्रेजी न्यायपालिका ने अपना उत्तरदायित्व अच्छी तरह निभाया है। अमरीकी न्यायपालिका चुनाव द्वारा राजनैतिक नियुक्तियों का सृजन है।

10. यद्यपि हर प्रकार से विचार किया जाये तो वहां न्यायाधीश लोग स्वतन्त्र रहे हैं, जैसा कि वाटरगेट काड[1] से सुस्पष्ट है, फिर भी जो वाद मशंकित थे, उनमें राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने न्यायालय को समाप्त करने की धमकी दी, जहां उनके "नवीन उपाय विधि निर्माण" को निरस्त करने के कारण वे क्रुद्ध और क्षुब्ध हो गये। फलस्वरूप अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपने पूर्व निर्णय पर पुनविचार करके "नवीन उपाय विधि" का वैधकरण करना पड़ा जो पहले अवैध घोषित की जा चुकी थी। अमरीकी न्यायाधीशों के आत्म-समर्पण पर रूजवेल्ट ने मशहूर कहावत—"समय पर एक टाँका असमय के सौ टाँकों से बचाता है" का प्रतिपादन किया।

---

1. 14 जुलाई, 1973 संयुक्त राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय का राष्ट्रपति निक्सन के विरुद्ध सर्वसम्मत विनिश्चय (बर्जर बारेन व्हाइट, मार्शल, डोगलाज, ब्रेनन, ब्लेकमेन, पॉवेल स्टीवार्ट)। इसने संयुक्त राज्य अमरीका के सदन को न्यायिक समिति में निक्सन के महाभियोग हेतु पथ-प्रशस्त कर दिया। बॉब वूडवार्ड तथा स्कॉट आर्म स्ट्रांग के अनुसार कुछ घण्टों तक न्यायालय तथा न्यायाधीशो के विरुद्ध अपने सहायक अधिकारियों से परिवेदन के पश्चात् निक्सन ने यह निश्चय किया कि पालन करने के अतिरिक्त उनके पास कोई विकल्प नहीं। 17 दिन पश्चात् उन्होंने पद-त्याग कर दिया।

अगले दिन, 24 जुलाई को, प्रात: 11 बजे न्यायालय की बैठक हुई। एक बार पीठासीन रेनक्विस्ट इस समय मौजूद नही थे। मुख्य न्यायाधीश ने कुछ क्षण अर्ल वारेन को श्रद्धांजली अर्पित करने में लगाये क्योंकि दो सप्ताह पहले हुई उनकी मृत्यु के पश्चात् न्यायालय की कोई बैठक नहीं हुई थी। बर्गर ने वाद पुकारा और उसके मुख्य बिन्दुओं की संक्षिप्ति अपनी दृढ़तम ध्वनि के साथ पढ़ना प्रारम्भ किया। उसके दोनों ओर शान्त सर्वसम्मत न्यायालय बैठा हुआ था। अन्त में यह समाप्त हुआ और न्यायालय कक्ष से संवाददाता दौड़ पड़े। राष्ट्रपति निक्सन ने सान क्लीमेन्ट, कैलीफोर्निया में अपने पलंग के पास रखा दूरभाष उठाया। उनके मुख्य सचिव अलकजन्दर हेग ने उन्हें कहा कि सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय इसी क्षण सुनाया गया है। निक्सन ने हारने पर दृढ़तापूर्वक सोच रखा था। टेप के उद्धरणों और मुद्रित प्रतिलेखों का पालन नहीं करने के लिए उनका मत था कि राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रतिलेख को निकालने के समान अपवादस्वरूप है। उन्होंने उसकी गणना राष्ट्रीय सुरक्षा में अपवादस्वरूप मानने जैसी की, अतएव एक असहमति कल्पित की। उन्होंने आशा की थी कि राय में कुछ गुंजायश होगी। "सर्वसम्मत"। निक्सन ने अनुमान लगाया। "सर्वसम्मत", हेग ने कहा- "इसमें कोई गुंजायश नहीं है।"

"बिल्कुल नहीं"? निक्सन ने पूछा। यह बिल्कुल सही है।

कुछ घण्टों तक न्यायालय तथा न्यायाधीशों के विरुद्ध अपने सहायक अधिकारियों से परिवेदन के पश्चात् निक्सन ने यह निश्चय किया कि पालन करने के अतिरिक्त उनके पास कोई विकल्प नहीं। 17 दिन पश्चात् उन्होंने पदत्याग कर दिया।

("दी ब्रेदेन" पृष्ठ 147—"इन साइड दी सुप्रीम कोर्ट")

11. मध्यपूर्व की न्यायपालिका ईरान के आयातुल्ला खुमैनी के राज्यकाल के दृष्टान्त द्वारा अच्छी तरह स्पष्ट किया जा सकता है, जहाँ हजारों लोगों को रातों-रात परीक्षित करके या दूरदर्शन पर मृत्यु-दण्ड का नाटक रचकर फांसी दे दी गई। एक विधवा को अपने पति के अभियोजक और मृत्यु-दण्ड का पता उस समय चला जबकि उसे गोली मारनेवाले दस्ते से काम में ली गई गोलियों और कफन के मूल्य का बिल प्राप्त हुआ।

12. चाहे मिश्र हो या ईराक, लीबिया हो या दक्षिणी अरब, अफगानिस्तान हो या पाकिस्तान, न्यायपालिका, पुलिस और सेना की भांति कार्यपालिका की कठ-पुतली बनी हुई है और भुट्टो के अभियोजन की भांति, परीक्षण न्यायालयों के भद्दे नाटक हैं जो अधिनायकवादी कार्यपालिका के अन्यायपूर्ण, विधि-विरुद्ध, निरंकुश और जोर-जबर्दस्तीपूर्ण कार्य-कलापों पर पर्दा डालने के लिए प्रदर्शित किए जाते हैं। मध्यपूर्व में स्वतन्त्रता न्यायपालिका का प्रथम अपघात है।

13. भारतीय संविधान के जनक महान् देशभक्त, निष्णात राजनीतिज्ञ तथा उनमें से अनेक अनुभवी स्वतन्त्रता सेनानी एवं भारतीय स्वाधीनता के विधाता थे। चाहे पण्डित नेहरू हों या सरदार पटेल, डॉ. अम्बेडकर हों या अनादि कृष्णस्वामी अयंगर, उनका स्वप्न न्यायपालिका को एक देदीप्यमान एवं गौरवान्वित स्थान प्रदान करना था, जो संविधान के प्रहरी और गृहरक्षी कुक्कुर का कार्य कर सके तथा राज्य के कार्यपालिका और विधायी पक्षों के बीच सन्तुलन और नियन्त्रण को बहाल रखकर उनका प्रयोग कर सके।

14. अनुच्छेद 141 का निर्माण करते हुये संविधान के निर्माताओं ने स्पष्ट शैली में यह घोषित किया था कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारतीय राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत समस्त न्यायालयों को बन्धनकारी होगी। सर्वोच्च न्यायालय को पूर्ण न्याय करने के लिए अनुच्छेद 142 के अधीन निर्बाध शक्तियां दी गई थीं और इस प्रकार पारित आदेश भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र में प्रवर्तनकारी बनाये गये थे। संविधान के अनुच्छेद 143 द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया था[1] कि सर्वोच्च न्यायालय को प्रभुतापूर्ण तथा सर्वोपरि बनाने

1. अनुच्छेद 32—

इस भाग द्वारा दिए गए अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए उपचार—(1) इस भाग द्वारा दिए गए अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय को समुचित कार्यवाहियों द्वारा प्रचलित करने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है।

(2) इस भाग द्वारा दिए गए अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय को ऐसे निदेश या आदेश या लेख, जिनके अन्तर्गत बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेरण के प्रकार के लेख भी हैं, जो भी समुचित हो, निकालने की शक्ति होगी।

(3) उच्चतम न्यायालय को खण्ड (1) और (2) द्वारा दी गई शक्तियों पर बिना प्रतिकूल प्रभाव डाले, संसद विधि द्वारा किसी दूसरे न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार की स्थानीय

के लिए भारत राज्य क्षेत्र में स्थित समस्त असैनिक और न्यायिक प्राधिकरण उच्चतम न्यायालय की सहायता में कार्य करेंगे। अनुच्छेद 32 तथा 226 उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय को लेख की अधिकारिता प्रदान करते हैं। उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय दोनों के न्यायाधीशों को संवैधानिक स्तर दिया गया तथा उनकी नियुक्ति, सेवा की शर्तें और वेतन कार्यपालिका की दया या सनकपूर्ण इच्छा पर नहीं छोड़े गये। उन्हें स्वयं संविधान के अन्दर ही सुपरिभाषित करके मूर्तरूप दिया गया है।

सीमाओं के भीतर उच्चतम न्यायालय द्वारा खण्ड (2) के अधीन प्रयोग की जानेवाली सब अथवा किन्हीं शक्तियों का प्रयोग करने की शक्ति दे सकेगी। (4) इस संविधान द्वारा अन्यथा उपबन्धित अवस्था को छोड़कर, इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार निलम्बित न किया जाएगा।

अनुच्छेद 141—

उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि सब न्यायालयों को बन्धनकारी होगी—उच्चतम न्यायालयों द्वारा घोषित विधि भारत राज्य-क्षेत्र के भीतर सब न्यायालयों को बन्धनकारी होगी।

अनुच्छेद 142—

उच्चतम न्यायालय की आज्ञप्तियों और आदेशों को प्रवृत्त करना तथा प्रकटन आदि के आदेश—(1) अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्चतम न्यायालय ऐसी आज्ञप्ति या ऐसा आदेश दे सकेगा जैसा कि उसके समक्ष लम्बित किसी वाद या विषय में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो तथा इस प्रकार दी हुई आज्ञप्ति या आदेश भारत राज्य-क्षेत्र में सर्वत्र ऐसी रीति से, जैसे कि संसद किसी विधि के द्वारा या अधीन विहित करे, तथा जब तक उसके लिए उपबन्ध नहीं किया जाता तब तक ऐसी रीति से, जैसी कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा विहित करे, प्रवर्तनीय होगा।

(2) संसद द्वारा इस बारे में बनाई हुई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, उच्च न्यायालय को भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र के बारे में किसी व्यक्ति को हाजिर कराने के, किन्हीं दस्तावेजों को प्रकट या पेश कराने के, अथवा अपने किसी अवमान का अनुसंधान कराने या दण्ड देने के, प्रयोजन के लिए कोई आदेश देने की समस्त और प्रत्येक शक्ति होगी।

अनुच्छेद 144—

असैनिक तथा न्यायिक प्राधिकारी उच्चतम न्यायालय की सहायता में कार्य करेंगे—भारत राज्य क्षेत्र के सभी असैनिक और न्यायिक प्राधिकारी उच्चतम न्यायालय की सहायता में कार्य करेंगे।

अनुच्छेद 226—

कुछ लेखों के निकालने के लिए उच्च न्यायालयों की शक्ति, (1) अनुच्छेद 32 में किसी बात के होते हुए भी प्रत्येक उच्च न्यायालय को, उन क्षेत्रों में सर्वत्र, जिनके सम्बन्ध में वह अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, इस संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए तथा किसी अन्य प्रयोजन के लिए उन राज्य-क्षेत्रों में से किसी व्यक्ति या प्राधिकारी के प्रति, या समुचित मामलों में किसी सरकार को ऐसे निदेश या आदेश या लेख जिनके अन्तर्गत बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकारपृच्छा और उत्प्रेषण के प्रकार के लेख भी हैं अथवा उनमें से किसी को निकालने की शक्ति होगी।

15. अतः भारतीय संविधान न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की रक्षा करता है। अगर भारतीय न्यायपालिका ने किसी क्षण अपनी स्वतन्त्रता का त्याग करके पराभव प्रदर्शित किया है–जैसा कि बन्दी प्रत्यक्षीकरण के वाद[1] में दोषारोपित है। (यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर मैं पीठासीन न्यायाधीश की हैसियत से अपनी राय प्रकट करने में असमर्थ हूं), वह भारतीय संविधान की भूल नहीं है, अपितु, अगर यह दोषारोपण सत्य भी है तो या तो नैतिक पतन के फलस्वरूप है या कार्यपालिका को प्रसन्न करने के लिए अनावश्यक अनिरजना है, जो भयाक्रान्त मनःस्थिति या अतिमहत्वाकांक्षी न्यायाधीशों के कारण घटित हुई है।

16. गोपालन से गोलकनाथ[2] और केशवानन्द भारती से मिनर्वा मिल्स[3] तक नीति-निर्देशक और मूल अधिकारों का अभिवचन करते समय इस देश के उच्चतम न्यायालय ने दीर्घकाल से स्वतन्त्रता, निष्पक्षता, निडरता और न्यायिक पार्थक्य को प्रदर्शित किया है।

17. यह सत्य है कि उपरोक्त के बावजूद भी इस धारणा में वृद्धि होती जा रही है कि जब न्यायालय ऐसे मामलों में निर्णय सुनाते हैं जिनमें राजनैतिक उलझन हो या राजनैतिक दल या व्यक्ति अन्तर्ग्रस्त हो, उनमें न्यायपालिका राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश कर रही है परन्तु जैसा कि सोली जे. सोहराबजी[4] ने अपने पत्र "न्यायालय और राजनीति" में इंगित किया है कि यह शोर कि न्यायालय राजनैतिक बनता जा रहा है, उतना ही पुरातन है जितना पुरातन इसका प्रत्याख्यान। उन्होंने इंगित किया कि संविधान एक राजनैतिक दस्तावेज है जो नागरिक अधिकारों, शासन की शक्तियों और परिमितताओं से संव्यवहार करता है। परन्तु प्रोफेसर उपेन्द्र बक्सी ने बन्दी प्रत्यक्षीकरणवाद, विधान सभा भंग करनेवाले वाद तथा अन्य निर्णयों में[5] उच्चतम न्यायालय को निःसन्देह राजनीति-रत पाया है।

18. अन्तुले के वाद में जस्टिस वी. लेन्टिन तथा श्रीमती गांधी के वाद में जस्टिस चावला के निर्णयों के सन्दर्भ में सोहराबजी ने यह मन्तव्य व्यक्त किया है कि इन न्यायाधीशों ने संविधान तथा अपनी कानूनी सूझ-बूझ के प्रकाश में सचेष्ट रूप से एक न्यायिक कार्य का सम्पादन किया है और इन निर्णयों को राजनैतिक बताना एक भयंकर भूल है। अगर लेन्टिन के निर्णय से अन्तुले का निष्कासन होता है या

1. ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य
   (ए. आई. आर. 1950, एस. सी. 27)
2. सी. गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य
   (ए. आई. आर. 1967, एस. सी. 1643)
3. केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य (ए. आई. आर. 1973, एस. सी. 1461), मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ (1980) 3 एस. सी. सी. 685।
4. इण्डियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, दिनांक मार्च 13, 1982 सम्पादकीय कालम–पृष्ठ 6।
5. इण्डियन सुप्रीम कोर्ट एण्ड पोलीटिक्स लेखक प्रो. उपेन्द्र बक्सी, दिल्ली।

श्रीमती इन्द्रा गांधी एक अतिरिक्त मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट श्री आर. दयाल द्वारा मुक्त करदी जाती हैं और जस्टिस चावला द्वारा उनके विरुद्ध अभियोजन को अभिखण्डित कर दिया जाता है तो इसमें कोई राजनैतिक प्रभाव नहीं प्रतीत होता। दुर्भाग्य तो यह है कि अपने-अपने राजनैतिक खेमों मे विभक्त टीकाकारों की दृष्टि पर रंगीन चश्में हैं और उनके लिये यह विश्वास करना अत्यन्त दुष्कर है कि ईमानदारी, स्वतन्त्रता और निष्पक्षता नाम की भी कोई वस्तु है। परन्तु इसके लिए भारतीय संविधान के अधीन न्यायपालिका उत्तरदायी नहीं, हमारे राष्ट्रीय चरित्र और सदाचार का निम्न स्तर इसका उत्तरदायी है।

19. जब कोई इन्हीं रंगीन चश्मों के कारण राजनैतिक क्रीड़ाओं से आक्रान्त कार्यपालिका के नाटकों की घटनाओं पर दृष्टिपात करता है तब उसे यह आभास होने लगता है कि न्यायपालिका कार्यपालिका द्वारा धमकाई जा रही है। लोग मेथ्यू की प्रश्नमाला का कूटनैतिक कुचक्र की विद्यमानता के लिए विरोध करते हैं। चाहे वह श्री बी. एम. सिन्हा हो, जो "जुडिशियरी एट दी क्रॉस रोड्स" में न्यायाधीशों के स्थानान्तरण तथा अतिरिक्त न्यायाधीश की नियुक्ति के प्रश्न पर सात न्यायाधीशों की विशेष संवैधानिक पीठ के निर्णय को प्रदीप्त करते हैं या जब वे अपने लेख "गवर्नमेन्ट वर्सेज जुडिशियरी"[1] में सरकार और न्यायपालिका के संघर्ष से संव्यवहार करते हैं, या श्री ए. राघवन, जो सनसनीपूर्ण शीर्षक "कांग्रेस (आई) मूव टू आउस्ट चीफ जस्टिस ऑफ इन्डिया"[2] के साथ प्रकट होते हैं या "दी गवर्नमेन्ट वर्सेज दी सुप्रीम कोर्ट"[3] मे श्री अनिल दीवान या जस्टिस श्री पी. एन. भगवती के पत्र का बम के समान विस्फोटक प्रमुख आख्यान[4] या "दी क्वालिटी ऑफ जस्टिस" में श्री चैतन्य कालबाग[5] या मुख्य न्यायाधीश श्री एम. एम. इस्माइल का मंतव्य कि "विश्वास पैदा करने के लिए राजनीति-विहीन न्यायाधीश आवश्यक है"[6] या श्री राजीव धवन का "जस्टिस ऑन ट्रायल—सुप्रीम कोर्ट टुडे"[7] पर अन्वेषण प्रबन्ध, जिसमें श्री धवन ने यह राय व्यक्त की है कि उच्चतम न्यायालय एक मरणासन्न संस्था है, या इसके विरुद्ध श्री नानी ए. पालकीवाला का दृढ़ विश्वास कि "उच्चतम न्यायालय अजर है"[8] ये सब "भारतीय न्यायपालिका की स्वतन्त्रता" की

---

1. दी इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इण्डिया, जुलाई 12,1981।
2. ब्लिट्ज, जून 6, 1981, दिल्ली ब्यूरो, पृष्ठ 1।
3. सण्डे स्टेन्डर्ड पत्रिका पृष्ठ 1, जून 28, 1981।
4. सन्डे, 13 अप्रेल, 1980 पृष्ठ 8;
5. सन्डे, मई 18, 1980 पृष्ठ 5, "सर्वोच्च न्यायालय जो न्यायपालिका तथा संविधान को ध्वस्त करने के सरकारी प्रयत्नों का केन्द्र बिन्दु रहा है।"
6. आन लुकर, अगस्त 1-15, 1980 पृष्ठ 11।
7. दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया, मई 4, 1980 पृ. 2।
8. दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया, मई 11, 1980।

सुरक्षा और निश्चिन्तता के लिए हमारे देश के करोड़ों लोगों की उत्कण्ठा का पक्का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

20. संविधान न्यायविदों, राजनयिकों, राजनीतिज्ञों तथा प्रबुद्ध जनों के प्रतिपक्षी दलों के मध्य ऐसे जीवन्त विचार-विमर्श और वार्ता की अनुज्ञा सुनिश्चित करता है। जहां तक भारतीय संविधान का सम्बन्ध है, भारतीय न्यायपालिका की पूर्ण स्वतन्त्रता को सुनिश्चित करके उसे सर्वोच्च प्रत्याभूति प्रदान की गई है तथा वह न तो कार्यपालिका पर निर्भर है और न राज्य के राजनैतिक पक्ष पर ही आश्रित है।

21. कुछ लोग इसकी स्वतन्त्रता पर संशय करते हैं तथा अन्य लोग इसकी सराहना करते हैं। इसके राजनैतिक समाजार्थिक, कार्यपालिका तथा विभिन्न अन्य पहलू एक न्यायशास्त्री द्वारा शोध का विषय हो सकते हैं, इन पर वाद-विवाद के लिए एक पूर्ण प्रबन्ध लेख की आवश्यता होगी, इस प्रकार के एक लघु भाषण द्वारा उसका समापन करना सम्भव नहीं है। फिर भी, मैंने न्यायपालिका की सर्वोपरि स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में जो सूक्ष्म बिन्दु ढूंढ़ निकाले हैं वे कुछ भूले-भटके कलुषित बिन्दुओं को छोड़कर चाहे वे कथित न्यायाधीशों के निर्णयों के रूप में हों या न्यायाधीश ए. एन. रे द्वारा केशवानन्द भारती के निर्णय के पुनरावलोकन के प्रयास के रूप में हों, इसके लिए प्रदर्शित सामान्य चिन्ता द्वारा पक्ष-पोषित तथा सिद्ध हैं। उत्तरवर्ती पक्ष ने भारत की स्वतन्त्र न्यायपालिका के हाथों इस वाटर लू के संग्राम में उस समय हार मानी जबकि उसने इसे अमरीकावाली "वक्त का एक टांका बेवक्त के सौ टांकों से बढ़कर है" वाली कलुषित ऐतिहासिक घटना की पुनरावृत्ति करने के लिए भी इसका पुनरावलोकन करने की अनुमति नहीं प्रदान की। जब मुख्य न्यायाधीश श्री चन्द्रचूड़ ने अभी हाल ही में मिनर्वा मिल्स के वाद में अपने चारों ओर घोर तिमिराच्छादित घटाओं तथा प्रतिस्पर्धाकारी दौड़धूप और अटकलों के पर्यन्त भी केशवानन्द भारती के विनिश्चय को बहाल रखा तो स्वतन्त्रता के विनाश के लिये किये गये समस्त कूट प्रयत्न ढह गये। केवल भावी पीढ़ी और भविष्य के न्यायशास्त्री ही इसका निर्णय करेंगे कि विधि का विशुद्ध निर्वचन किसने किया, बहुमत ने या अल्पमत ने ? क्योंकि अन्ततोगत्वा यह "मन्त्रणा का विषय" है।

22. *13 मार्च, 1982 को नई दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय अभि*वक्ताओं के सम्मेलन में जस्टिस कृष्णा अय्यर ने न्यायपालिका के प्रत्याशित विनाश पर घोर चिन्ता व्यक्त की तथा संप्रेक्षित किया–"स्वतन्त्रता की तरह न्यायपालिका में भी आत्महन्तायी प्रवृत्ति है और यह आत्महत्या कर रही है।" जस्टिस एच. आर. खन्ना ने उनका साथ दिया और चेतावनी दी कि यद्यपि कार्यपालिका तथा राजनीतिज्ञों की धमकियां सुविदित हैं[1], किन्तु अन्तर्निहित धमकियां अधिक

1. इण्डियन एक्सप्रेस (रविवारीय संस्करण, पृष्ठ 1) नई दिल्ली, मार्च, 1982।

खतरनाक हैं। उन्होंने कहा कि महान संस्थाओं को आन्तरिक खतरे का जितना सामना करना पड़ा उतना बाहर से नहीं।" निपुण न्यायविद् श्री खन्ना ने आगे सप्रेक्षित किया—"साधारणतः ये संस्थाएं बाहरी धमकियों से निपटने के लिए पर्याप्त रूप से सशक्त होती हैं परन्तु इन संस्थाओं की रक्षा करनेवाले व्यक्ति ही जब स्वार्थपरता, व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा या अन्य प्रतिफलों द्वारा प्रधिगृहीत होकर प्रक्रिया में सुस्थापित सहिता तथा व्यावहारिक आदर्शों का उल्लंघन कर बैठते हैं, तब वे संस्थाएं जीर्ण होकर खण्डित होना प्रारम्भ हो जाती हैं।

23. न्यायाधीशों के निर्णय के पश्चात् "लिंक" के संवाददाता द्वारा लिए गये साक्षात्कार से निम्नलिखित पूर्वानुमान लगाये गए—

> "विधिक व्यवसायी स्वभावगत न्यायपालिका की स्वतन्त्रता में अडिग विश्वास रखते हैं। न्यायाधीशों के स्थानान्तरण को उचित ठहरानेवाले हाल के निर्णय को विधिवेत्ता एक ऐसी संस्था की स्वतन्त्रता पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं मानते, जिसका वे दशकों से रसास्वादन ले रहे हैं।"[1]

24. यह इसी साक्षात्कार में पता चला कि भूतपूर्व विधि मन्त्री श्री शान्तिभूषण, श्री गोखले, जो कि आपातकाल में न्यायाधीशों के विवादग्रस्त स्थानान्तरण के प्रवर्तक थे, तथा श्री शिवशंकर, जिन्होंने राज्य के तीनों पक्षों में स्थानान्तरण की योजना का संचालन किया तथा श्री जे. एन. कौशल, जिन्हें तब श्री शिवशंकर की योजना को कार्यरूप में परिणत करना था, इनके विचारों से सहमत थे। श्री शान्तिभूषण ने सप्रेक्षित किया—

> "सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायाधीशों के स्थानान्तरण को यथावत् रखकर न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की रक्षा का प्रवर्धन किया है।" उन्होंने न्यायपालिका की स्वतन्त्रता में अपना सबल विश्वास दर्शित और व्यक्त किया तथा कहा कि वे समस्त स्वतन्त्र हैं, और स्वतन्त्र रहेंगे तथा बाह्य शक्तियां इनको क्षत नहीं कर सकती।

25. वरिष्ठ अभिवक्ता श्री आर. के. गर्ग ने उपरोक्त साक्षात्कार से यह अनुभव किया कि 1977 में सत्ता-विनाश से पहले कुख्यात बन्दी प्रत्यक्षीकरण वाद की एक विधिक चेतावनी है कि सुविधापूर्ण न्यायपालिका अल्पकाल के लिए ही सुविधा-जनक प्रतीत हो सकती है, परन्तु अन्ततोगत्वा वह स्वयं स्वाधीनता के शासन को हानि पहुंचा सकती है। जस्टिस कुमार के मामले में दिल्ली के मुख्य न्यायाधीश द्वारा सीधा विधि मन्त्री को पत्र लिखना तथा उसकी अन्तर्वस्तु का भारत के मुख्य न्यायाधीश को बोध न कराने की ओर निर्देश करके श्री गर्ग ने मूल मसौदे के उल्लंघन के विरुद्ध चेतावनी दी और कहा—"अब भविष्य में एक विधि मन्त्री भारत के मुख्य न्यायाधीश जैसी उत्तरदायित्वपूर्ण संस्था को नष्ट करने के लिए न्यायाधीशों

---

1. लिंक, जनवरी 10, 1982, पृष्ठ 14।

की मन्त्रणा की उपलब्धि सुरक्षित करेगा। श्री गर्ग ने अनुभव किया कि यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उच्चतम न्यायालय की बनावट को ही आमूल परिवर्तित कर दिया जाये और सरकार को राष्ट्रपति-पद्धति मे परिवर्तित करने हेतु उच्चतम न्यायालय का पृष्ठाकन प्राप्त करने मे समस्त रुकावटों को दूर करने के लिए सुविधाजनक नमनीय न्यायाधीशों की नियुक्तिया करके एक "मूल्य परिवेष्ठित" न्यायालय अभियन्त्रित किया जाये। श्री गर्ग की शकाओं का निवारण करते हुए विधि मन्त्री के अभिभाषक श्री पी. आर. मृदुल ने यह राय व्यक्त की कि ऐसे न्यायाधीशों के निर्णय न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच निकट सम्बन्ध स्थापित करनेवाले युग का सूत्रपात है। उन्हे प्रसन्नता थी कि दबाव डालनेवाला दल न्यायालयो पर अपना दबदबा नही रख सका। श्री मृदुल के अनुसार उच्चतम न्यायालय ने अब जीवन् की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक वास्तविकताओ के प्रति जागरूकता प्राप्त करली है।

26. डॉ वाई. एस चिताला, जो एक सवैधानिक विशेषज्ञ एवं न्यायशास्त्री हैं, श्री गर्ग से भिन्न मत रखते हैं तथा कहते हैं कि वे न तो न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के प्रभाव से ही भयभीत है और न न्यायपालिका की भवितव्यता के बारे मे ही चिन्तित। वह सदैव स्वतन्त्र एव सर्वोपरि रही है और रहेगी। उच्चतम न्यायालय के अन्य प्रख्यात विधिवक्ता श्री आर. के. जैन इतने आशावादी नही है जब उन्होंने यह सप्रेक्षित किया कि यद्यपि वे अनुभव करते हैं कि न्यायलय स्वतन्त्र है परन्तु वादो मे जहां प्रमुख व्यक्तित्व और मुख्य विषय फसे रहते है, न्यायालय मध्यमार्गीय स्थिति का अनुसरण करते हैं जैसा कि विधानसभा भग करनेवाले वाद मे घटित हुआ है।[1]

27, यह एक कितना रोचक और विचारणीय विषय है कि जहा तीन प्रतिष्ठित न्यायाधीशों—जस्टिस कृष्णा अय्यर; एच. आर. खन्ना और जस्टिस ए. सी. गुप्ता ने न्यायविदो के समक्ष यह उद्बोधक घोष किया कि उनके मतानुसार न्यायपालिका अपनी स्वतन्त्रता और प्रतिष्ठा को दांव पर लगाकर 'आत्महत्या' कर रही है, उसे विनाश से बचाया जाये, जबकि तीन विधि मन्त्री श्री शान्तिभूषण, गोखले और शिवशंकर ने अपने विश्वास की पुष्टि इस प्रकार की कि न्यायपालिका की स्वतन्त्रता तथा सविधान के प्रति वचन-बद्धता को न्यायाधीशों का कश्मीर से कोचीन तक स्थानान्तरण करके ही बहाल रखा जा सकता है। यद्यपि उपरोक्त वर्णित विषय पर वकील व्यवसाय मे से प्रमुख न्यायशास्त्रियों का भिन्न मतावलम्बन है फिर भी "लिंक" के साक्षात्कार के परिणाम को दृष्टान्त के रूप में लेने पर, श्री मृदुल और श्री शान्तिभूषण न्यायाधीशो के स्थानान्तरण तथा न्यायधीशो के निर्णयो के प्रधिमत द्वारा न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को यथावत् रखने के विषय पर विचित्र सत्यासगी

1. राजस्थान राज्य बनाम भारत सघ, 1977 (3) एस. सी. सी., पृष्ठ 592।

बन गये हैं। यदि पूर्ण रूप से विचार किया जाये तो यह असंगति है कि पत्रकारों और स्तम्भ-लेखकों ने न्यायाधीशों के वादों के निर्णय को आत्मघाती कहकर इसे भारतीय न्यायपालिका के इतिहास का सबसे कलुषित एवं तिमिराच्छादित अध्याय कहा है।

भारत के प्रतिष्ठित पत्र "इण्डिया टुडे" ने न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में, एस. पी. गुप्ता के उपरोक्त निर्णय के पश्चात् जनमत एकत्र किया तो जनमानस पर इस निर्णय का निम्नांकित प्रभाव प्रतीत हुआ—

JUDICIARY INDEPENDENCE

	UNDECIDED	UNTHREATENED	THREATENED
BOMBAY	15	34	50
AHMEDABAD	37	17	46
BHOPAL	35	31	34
CALCUTTA	28	33	39
PATNA	28	24	47
BHUBANESWAR	35	17	47
DELHI	32	30	39
LUCKNOW	38	26	36
CHANDIGARH	34	25	41
SRINAGAR	14	30	56
JAIPUR	30	27	43
MADRAS	44	19	37
HYDERABAD	31	16	52
TRIVANDRUM	59	20	20
BANGALORE	42	14	44

28. चिन्ता के इस सामूहिक उद्बोधन तथा सचेतक घण्टी बजानेवाले प्रमुख न्यायशास्त्रियों में सर्वश्री नानी ए. पालकीवाला[1], सीरवाई[2], सोली जे. सोहराबजी[3] नरीमन[4] ने सर्वश्री अरुण शौरी[5], अरुण पुरी[6], सुमित मित्र[7], ए. जी. नूरानी[8], ए. राघवन[9], अनिल दीवान[10], कृष्ण महाजन[11], बी. एम. सिन्हा[12], आइ. के. गुजराल[13], हिमाद्री ढांढा[14], केदारनाथ पाण्डे[15], एम. चलपति राव[16], राजीव धवन[17], चैतन्य कालबाग[18] और कुलदीप नय्यर तथा अन्य पत्रकारों का साथ दिया है। इस प्रकार की विस्फोटक प्रकृतिवाली स्थिति में आप एक पीठासीन न्यायाधीश से इस मतभेद में प्रवेश करके अपनी राय प्रकट करने की आशा नहीं कर सकते। अतःएव मैं यह प्रसंग आपके प्रबुद्ध समाज पर इस अप्रत्याशित टिप्पणी के साथ आप स्वयं द्वारा इसका निष्कर्ष निकालने के लिए छोड़ता हूं।

29. यह तथ्य स्वयं यह प्रदर्शित करता है कि समाज के भिन्न मतावलम्बी क्षेत्रों द्वारा प्रकट किये गये विपरीतगामी और विरोधाभासी मतान्तर हमें कम से कम भाषण देने और समाचार-पत्रों द्वारा विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता देते हैं। हमारे संविधान के अधीन जब तक इसे एक गौरवपूर्ण उच्च स्थान प्राप्त है, तब तक न्यायपालिका के निर्णय भी एक विधिक और तर्क-सम्मत अनुसिद्धान्त के रूप में समान रूप से स्वतन्त्र रहेंगे।

---

1. एमरेक्ट्स ऑफ जजेज केस—I, II, III.—नानी ए. पालकीवाला—दी इण्डियन एक्सप्रेस—फरवरी 3-5, 1982।
2. दी जजेज केस एण्ड दी सुप्रीम कोर्ट—इण्डियन एक्सप्रेस, जनवरी 22, 1982।
3. दी जुडीशियरी—दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया, 11-11-77।
4. इण्डियन एक्सप्रेस—जनवरी, 1982।
5. एज कन्सिस्टेन्सी इज बट ए होलीगोब्लिन 24-1-82, जजेज ब्राइन्ड—दी इण्डियन एक्सप्रेस, जनवरी 25, 1982। फिलप फ्लेप फिलप, जनवरी 25, 1982।
6. जुडिशियरी थ्रीटन्ड बाई दी एग्जीक्यूटिव—इण्डिया टूडे, जनवरी 15, 1982।
7. सिनिस्टर इम्पलीकेशन्स—इण्डिया टूडे, फरवरी 28, 1982।
8. विल दी कोन्स्टीट्यूशन सरवाइव—इण्डियन एक्सप्रेस, मार्च 4, 1982।
9. कांग्रेस (आई) मूव टू आउस्ट चीफ जस्टिस ऑफ इण्डिया—ब्लिट्ज-जून 6, 1981।
10. दी गवर्नमेन्ट वर्सेज दी सुप्रीम कोर्ट—सण्डे स्टेण्डर्ड—जून 28, 1981।
11. कोर्ट्स इन क्राइसिस—हिन्द टाइम्स—रविवार, अगस्त 23, 1981।
12. गवर्नमेन्ट वर्सेज जुडीशियरी—दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया—जुलाई 12, 1981। जुडीशियरी एट क्रास रोड्स, दी इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया—जनवरी 6, 1981।
13. फ्री सबोर्डिनेट जजेज फ्रॉम एक्जीक्यूटिव डिपेन्डेन्सी—ब्लिट्ज, अगस्त 15, 1981।
14. अजिंग दी जजेज तथा भगदलीज मेटर एक्सप्लोडेड लाइक ए बोम्ब—करन्ट—अप्रेल 13, 1980।
15. न्यिोगनाइज दी जुडिशियरी—लिंक—जनवरी 10, 1982।
16. जस्टिस ऑन ट्रायल—दी सुप्रीम कोर्ट टूडे—इलस्ट्रेटेड वीकली, मई, 4 1980।
17. सॉरम जजेज फोर सुप्रीम कोर्ट—ऑन लुकर—अगस्त 15, 1980।
18. दी वब.र्निंग ऑफ जस्टिस—ऑन लुकर—अगस्त 15, 1980।

30. बन्दी प्रत्यक्षीकरणवाद[1] विधान सभा भंग करनेवाले वाद तथा न्यायाधीशों के स्थानान्तरणवाले वाद की समस्त उत्तरोत्तर समालोचना अगर सत्य हो तो भी वह हमे आंतकित नही कर सकती, क्योंकि पारदर्शी शुभ्रतावाला चन्द्रमा भी कतिपय कलुषित धब्बो से रहित नहीं है। अतःएव मुझे इस परिणाम पर पहुँचने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं है कि भारतीय न्यायपालिका की स्वतन्त्रता भारतीय संविधान के अधीन प्रत्याभूत है, और पिछले तीन दशकों में इसने खूब अच्छा काम किया है।

31. पश्चिमी बंगाल चुनाव वाद के निर्णय द्वारा, जिसमें चुनाव स्थगित करने के लिए शासन करनेवाली पार्टी के तर्क को ठुकरा कर पश्चिमी बंगाल उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का स्थगन आदेश अभिखण्डित कर दिया, जिसने पहले न्यायपालिका में लोगों के तथाकथित विश्वास को डगमगा दिया था, विपक्षगामी संशय मिट गये है तथा डगमगाता विश्वास और प्रकम्पित निष्ठा पुनर्स्थापित हुई है। न्यायाधीशोंवाले वाद में उच्चतम न्यायालय के स्वयं के विनिश्चय मे जनता नीतिज्ञता का यह स्पर्श चूक गई, परन्तु वर्तमान विनिश्चय द्वारा उसे जनता को अपनी प्रवुद्धता पर विश्वास स्थापित कराने में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

32. भारतीय सर्वोच्च न्यायालय तथा न्यायपालिका के लिए अब इसके कटु आलोचकों से भी प्रशसा प्राप्त हो रही है जिसमें तथाकथित जूट(पूंजीवादी)समाचार-पत्र तथा समाजवादी समाचार-पत्र समान रूप से सम्मिलित हैं। पूर्णतया विचार करने पर मेरा यह उच्च दावा पूर्णतया सत्य सिद्ध हुआ है कि भारतीय न्यायपालिका विश्व न्यायपालिका में सबसे अधिक स्वतन्त्र और निष्पक्ष है, जिस पर हमे गर्व होना चाहिए क्योंकि पश्चिमी बंगाल चुनाव वाद मे अधिनिर्णय के पश्चात्, कम से कम इसे आंशिक रूप से, सर्वत्र मान्यता दे दी गई है जिसका एक विशिष्ट दृष्टान्त "इण्डियन एक्सप्रेस" दिनांक 10 अप्रेल, 1982 का यह सम्पादकीय है :—

> "इस प्रकार के मसले पर, उनकी सांयोगिक भूलों को छोड़कर, चुनाव आयोग तथा न्यायालयों द्वारा राजनैतिक दबावों का प्रतिरोध करने मे संशक्तता पर शंकाओं को झूठा सिद्ध करते हुए राज्य के प्रयत्नों को असफल कर देना इन संस्थाओं को आधारभूत स्थिरता प्रमाणित करता है। इसी प्रकार हमारे कुछ पड़ोसी देशों मे जो कुछ घटित हो रहा है, उसके विस्तृत संदर्भ में यह एक ऐसी वस्तु है, जिस पर देश को गर्व हो सकता है।"

मुख्य न्यायाधीश चन्द्रचूड़ ने अपने वरिष्ठ साथियों—देसाई, सेन और वेंकटरमैया, इस्लाम सहित पश्चिम बंगाल चुनाव वाद मे समस्त परिस्थितियों से दृढ़तापूर्वक निपटने में असाधारण स्वतन्त्रता प्रदर्शित की। सर्वोच्च न्यायालय पर पहले जो कतिपय भृकुटियां चढ़ाई जा रही थीं, वे सब संवैधानिक पेचीदगियों को

1. ए. डी. एम. जबलपुर बनाम शिवकान्त, ए. आई. आर. 1976, एस. सी. 1207।

समझने की कमी सिद्ध हुई जो अब इष्टिका प्रहारों को प्रीतिभोजों में परिवर्तित करके हर प्रकार से बन्द हो चुकी है।[1]

33 इस प्रसंग का समापन करते समय, एक हितकारी आलोचना के रूप मे, मुझे यह कहना चाहिए कि न्यायाधीशों के वाद में सर्वैधानिक पीठ के तथाकथित "आत्मघात" वाले निर्णय की दृष्टि से डॉ. अम्बेडकर स्वयं भारत के मुख्य न्यायाधीश की सर्वोपरिता स्थापित करने के लिए संविधान में संशोधन करने की राय देते।

34. डॉ. अम्बेडकर तथा संविधान के अन्य निर्माता अगर जीवित रहते तो तीन दशकों के अनुभव के आधार पर, रेल बजट की भाँति, भारत के मुख्य न्यायाधीश के नियन्त्रण के अधीन एक पृथक "न्यायपालिकीय बजट" के प्रावधान द्वारा न्यायपालिका को "आर्थिक स्वायत्तता" प्रदान करने का एक और संशोधन सुझाते ताकि कार्यपालिका का अप्रत्यक्ष प्रभाव जो यदा–कदा न्यायपालिका का अनादर करने का प्रयत्न करता है, जैसा कि अभी आन्ध्र प्रदेश राज्य के मुख्यमन्त्री श्री अंजैय्या द्वारा अधीनस्थ न्यायाधीशों को राज्य के पक्ष में निर्णय देकर आवासीय भवन प्राप्त करने का कह कर किया गया, प्रारम्भ से ही नष्ट कर दिया जाये।

35. नव निर्वाचित विधि मन्त्री श्री अशोक सेन ने, जनवरी, 1985 में कलकत्ता में न्यायपालिका की धूमिल छवि का जीर्णोद्धार कर उसकी गौरव गरिमा को पुनः स्थापित करने के संकल्प का उद्घोष किया है। यह भविष्य के गर्भ मे छुपा है कि उनका मन्तव्य क्या है व वे किस प्रकार एस. पी. गुप्ता के निर्णय के पश्चात् भी मुख्य न्यायाधिपति की वरीयता, वरिष्ठता व वर्चस्वता को पुनः स्थापित करेंगे। विधि मन्त्री का यह संकल्प निश्चित ही मंगलमय, शुभ व सराहनीय है। क्या न्यायाधीश व न्यायपालिका अपने निर्णयों में इस संकल्प को मूर्त स्वरूप देंगी ?

36. मुझे अडिग विश्वास और भरोसा है कि समस्त प्रताड़नाओं और ठोकरों तथा ऊपरी खतरनाक बमबारी और आन्तरिक पातकी अन्तर्ध्वंस के बावजूद भी न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के विनाश तथा इसके आत्मघात की सम्भावना असत्य सिद्ध होगी। जब तक हमारे शरीर में रक्त की एक भी अन्तिम बूंद शेष है, हम भगवान बुद्ध, महावीर, राम, कृष्ण और महात्मा गांधी की हमारी धनी परम्परा तथा विक्रमादित्य की विरासत और जहांगीर के इन्साफ से प्रेरित होकर हमारी न्यायपालिकीय स्वतन्त्रता को संजोकर यथावत् रखेंगे जो वस्तुतः हमारी मातृभूमि की स्वतन्त्रता और व्यक्ति के शासन के विरुद्ध कानून के शासन को यथावत् रखती है। ऐसा करते समय हमे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शंखनाद का स्मरण रखना चाहिए :"अगर राष्ट्र मरता है तो कौन जिन्दा रह सकता है और अगर राष्ट्र जीवित है तो कौन मर सकता है ?" अतः हम स्वतन्त्र भारत और इसकी स्वतन्त्र न्यायपालिका के लिए जीयें और मरें, उदित और अस्त हों।

---

1. टैक्स्ट ऑफ दी सुप्रीम कोर्ट आर्डर—टाइम्स ऑफ इण्डिया—मार्च 31, 1982 पृष्ठ 9।

विवाह, दहेज-मृत्यु विवाह-विच्छेद

नारी-स्वातन्त्र्य और विधायन

नारी-स्वातन्त्र्य की गूंज सभाओं से लेकर सड़कों तक, घरों से लेकर विधायिकाओं तक, अखबारों की सुर्खियों से लेकर न्यायालय के गलियारों तक दिन-प्रतिदिन गहराती जा रही है और इसकी अनुगूंज की तो सतहों पर सतहें जमती जा रही हैं, इसके बावजूद भी न तो नारी की निरीह दृष्टि, उसकी यातना के घावों और पीड़ा की सलवटों में कोई खास कमी आई है और न ही पुरुष के अधिकार-जन्य दम्भ, क्रूर और कठोर व्यवहार तथा ढोंगी आचरण में कोई विशेष परिवर्तन आया है। यह कितना ही विचित्र क्यों न लगे पर चिलचिलाता हुआ सच है कि नारी-मुक्ति के लिए जहाँ पुरुष-वर्ग दहाड़-दहाड़ कर नारे लगा रहा है वहां एक नारी का शोषण करने में दूसरी नारी भी कम नहीं है। इस विरोधाभासी माहौल में जहां सामाजिक सुधार का शोर अधिक और प्रक्रिया काफी धीमी तथा जटिल हो, वहां एक हताश समाज यदि नारी-स्वातन्त्र्य के लिए विधायन की ओर ताकने लगे तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

जब सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता और उसकी चाल में काफी अन्तराल हो तब विधि की भूमिका एक ओर जहाँ महत्त्वपूर्ण तथा वांछनीय हो जाती है तो दूसरी ओर विधि स्वयं अपनी प्रभावशून्यता से ग्रस्त भी हो जाती है। भारतीय समाज में नारी-स्वातन्त्र्य और विधि-निर्माण को लेकर भी कुछ ऐसी ही स्थितियां हैं। एक ओर जहां न केवल पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर चलती हुई तथा पुरुष के साथ अपना हिस्सा मांगती और बांटती हुई नारियां हैं, यहां तक कि 'भारत की केन्द्रीय मन्त्री-परिषद् में एक मात्र पुरुष' के रूप में नारी के व्यक्तित्व को असीम स्वतन्त्र करती हुई नारी रही है वहां दूसरी ओर सहमी, सिसकती और सिली हुई जबान को लिए हुये ठण्डा जमा हुआ विशाल नारी-समुद्र भी है जिसे विधि के ताप से तपाना और पिघलाना है। यद्यपि विधायन की अपनी घोर सीमाएं हैं और व्यापक सामाजिक संकल्प के अभाव में विधि एक निर्जीव बीजूका से अधिक कुछ नहीं है और वह भी थोड़े समय तक के लिए भ्रम उत्पन्न करने भर तक के लिए, फिर भी स्वतन्त्रता की प्राप्ति हेतु तड़फड़ाती और लंगड़ाती नारियों के लिए विधि एक घूमने जाते हुए आदमी की बेंत से कम तो नहीं ही है। और जहां ऐसी बेंत भी जरूरी है तो विधायन भी जरूरी है। इन्हीं सीमाओं के साथ, और इनके बावजूद नारी-स्वातन्त्र्य और विधायन के प्रसंग को आगे बढ़ाया जा सकता है।

गिरजाघर शक्तिशाली बन गये थे। विवाह-विच्छेद निषिद्ध कर दिया गया था। विशेष अनुज्ञा से ही विवाह-विच्छेद हो सकते थे। धार्मिक सुधारों के पश्चात् विवाह को एक सिविल संविदा माना जाने लगा था और इसका विच्छेद जार-कर्म, क्रूरता आदि जैसे बोधगम्य आधारों पर हो सकता था।[1]

1912 तक तलाक का आधार—जार-कर्म

21. उच्च न्यायालयों की स्थापना और मैट्रीमोनियल कॉजेज एक्ट, 1884 के पारित होने तक, इंग्लैण्ड की ससद की विशेष अधिनियमिति के अतिरिक्त, विवाह-विच्छेद असम्भव था। 1912 तक जार कर्म ही केवल आधार था, किन्तु 1937 से उनमें नये आधार जोड दिये गये थे।

रूस : कठोर तलाक, फिलीपाइन्स : कोई तलाक नहीं

22. रूस मे विवाह-विच्छेद कानून बहुत कठोर था। 1944 मे एक कानून बनाया गया था जिसके अनुसार विवाह-विच्छेद की कार्यवाहियों की सुनवाई खुले आम होनी थी और इसका आशय उनको कम करना था। फिलीपाइन्स में विवाह एक अनुल्लंघनीय सामाजिक संस्था है और वर्तमान युग में भी यह अनुज्ञेय नहीं है।

जापान : तलाक-अमूमन

23. सर्वाधिक विवाह-विच्छेद जापान में होते है जहां की विधि में पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद अनुमत है और अधिकाश मामलों मे विवाह-विच्छेद पारस्परिक सहमति से होते हैं।

फ्रांस में पुनर्विचार, चीन में राजनैतिक विचारधारा और तलाक

24. पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद का प्रयोग फ्रास मे 25 वर्ष के पश्चात् निष्फल हो गया और 1884 में पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद को प्रतिषिद्ध करनेवाला एक नया कानून बनाया गया। यह एक दिलचस्प बात है कि चीन मे यदि कोई पति पार्टी के नेतृत्व के प्रति वफादार नहीं है तो राजनीति मे जागरूक पत्नी को विवाह-विच्छेद के लिये शुरूआत करनी चाहिये जिसे न करने पर वह पार्टी का अनुशासन भंग करने की दोषी होगी।

अमेरिका : तलाक—एक कलंकित घटना

25. अमेरिका मे विवाह-विच्छेद एक कलंकात्मक स्वरूप मे पहुँच गया है। अमेरिका की बार ऐसोसिएशन ने निम्नलिखित शब्दों में कहा है "हमारी विधियां अव्यवस्थित हैं, वे सड़ चुकी हैं और अपने घोषित उद्देश्य को प्राप्त करने में पूर्णतः असफल रही हैं।

26. वकील पारस्परिक सहमति से विवाह-विच्छेद के लिये अपने मुवक्किलों को बलात् सुझाव देने मे अन्तर्मन मे शर्मिन्दा हैं। इससे यह प्रमाणित रूप से साबित होता है कि हिन्दू-विवाह के संस्कारात्मक दृष्टिकोण की ओर बदलाव हो रहा है।

नारी-शोषण

27. अंशतः यह उन लोगों की उस युगों पुरानी प्रवृत्ति के कारण है,

---

1. भारत मे विवाह एवं विवाह-विच्छेद विधि, पृष्ठ 33।

जिसमें वे नारी को सेविका और हीन मानते हैं और नैतिकता के दुरंगे मापदण्डों के कारण उस कमजोर वर्ग का शोषण करते हैं। इस अन्तरिक्ष युग में पुरुष के साथ आर्थिक सामाजिक क्षेत्रों में नारी की समानता ने नारी-स्वातन्त्र्य की विचारधारा के नये आयाम धारण कर लिये हैं।

पुरुष के परमाधिकार को चुनौती

28. कालवर्टन ने यह विचार व्यक्त किया है कि समानता की वृद्धि या तो पुरुष की स्वतन्त्रता में कमी करके या महिला की स्वतन्त्रता में वृद्धि करके की जा सकती है और प्रतिवादिता का दिग्दर्शन अब पुरुष का विशिष्ट परमाधिकार नहीं रह गया है। "बर्ट्रेंड रसल ने कहा है "आधुनिक नारीवादी अब पुरुषों के अतिचारों में कमी लाने को उत्सुक न होकर वह यह माग करते हैं कि जो कुछ पुरुषों को प्राप्य है उन्हें भी प्राप्त होना चाहिए।" नारी आज आर्थिक स्वतन्त्रता चाहती है और चाहती है उस दासत्व के जूड़े को उतार फेंकना जो उसके कंधों पर गृहस्थी के भार के रूप में लाद दिया गया है और जो उसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिरता, जिससे कि उसने लाभान्वित होना सीख लिया है, के अनुष्ठान से असंगत है। आज के कल्याणकारी राज्य में सामाजिक परिवर्तन की अनुकूल प्रतिक्रियास्वरूप विधि को सामाजिक व्यवस्था के सर्वोपरि दस्तावेज के रूप में कार्य करना चाहिए। समस्त देशों के सभ्य विधिशास्त्रों में विवाह के गठन और विघटन को शासित करनेवाली विधियों के प्रति विशेष उत्कण्ठा प्रकट की गई है। "ऐसे सामाजिक ढांचे में विवाह के संस्कारात्मक पहलू का विलुप्त होना अवश्यभावी है और हम पाते है कि लगभग समस्त विधिक पद्धतियों में विवाह को सामाजिक संविदा माना गया है।"

स्थिर विवाहों की आवश्यकता

29. इस ऐतिहासिक अखिल भारतीय परिवार-विधि सम्मेलन का उद्देश्य चिरस्थायी विवाहों की ओर एक अध्ययन है। विवाह का अर्थ ऐसे घर से है जो कि अच्छे समाज के लिये एक सुदृढ तथा प्रत्यक्ष आधार हो। समाज की स्थिरता काफी हद तक वैयक्तिक घर की स्थिरता पर निर्भर करती है।[2]

बेंथम : विवाह-संस्कृति का आधार

30. बेन्थम का यह अभिमत कि विवाह की इस प्रथा पर किसी भी दृष्टि से विचार क्यों न किया जाये, इसमें इस संविदा की उपयोगिता से बढ़कर और कोई बात नहीं होगी, सामाजिक सम्बन्ध तथा सभ्यता का आधार, और इसके लाभों को समझने के लिए केवल आवश्यक बातें यही है कि एक क्षण भर के लिए हम यह सोचें

1. पृष्ठ 116, पेरा 4, जयपुर लॉ जरनल वाल्यूम 5 (अखिल भारतीय हिन्दू विधि सेमिनार 1965, जयपुर।
2. राजकुमार अग्रवाल का मैट्रीमोनियल रेमेडीज अटाइज के पृष्ठ 3, प्रथम संस्करण, एम. एम. त्रिपाठी प्राइवेट नई प्रकाशन।

कि इस संस्था के बिना मनुष्य की स्थिति क्या होगी, यह सार्वभौमिक सत्य है, जो कि आज के प्रसंग में अधिक सुसंगत है।

परिवार और विवाह : रूस में पुनर्विचार

31. "विवाह और परिवार" तथा "राज्य" के अभिमतों के पारस्परिक शक्तिपरीक्षण का नवीनतम साक्ष्य सोवियत रूस मे मिलता है। 1917 और 5वें दशक आरम्भ के में रूस मे एक परिवार संहिता बनाने की चेष्टा की गई, जिसमें विवाह और विवाहित परिवार की सामाजिक स्थिति और उसके महत्व को कम करने का प्रयास किया गया। इस दृष्टिकोण में भी अस्वाभाविकता और त्रुटि को सिद्ध करने के लिए दो दशक पर्याप्त थे। यहा तक कि रूसी राज्य को भी झुकना पड़ा और नैसर्गिक उत्कृष्ट अभिमत को स्वीकार करना पड़ा। मूल नीति में 1944 तक स्पष्ट परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे थे। सोवियत विधि "स्थायी विवाह और परिवार" के प्राचीन ह्रासोन्मुख और बुर्जुआ आदर्श को मानने लगी। परिवार को बनाए रखने को वचन-बद्ध आधुनिक सामाजिक कल्याणकारी राज्यों मे "विवाह और परिवार" के प्रति अधिकाधिक अभिरुचि प्रदर्शित की है।

सहज सुलभ तलाक बनाम विवाह-अविघटन

32. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि चाहे यह संस्कार हो या संविदा विधि और रूढियाँ, दोनों ही विवाह को जीवन का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण रिवाज मानते हैं और न्यूनाधिक रूप से ये अटूट और अविघटनीय माने जाते हैं फिर भी विवाह-विच्छेद का रिवाज भी उतना ही पुराना है जितना स्वयं विवाह। रूढिगत विवाह-विच्छेद अधिकतर हिन्दू समुदायों में प्रचलित है। यद्यपि तथाकथित 'सवर्ण', जो अभिव्यक्ति अब लुप्तप्राय: हो गई है, हिन्दू विवाह अधिनियम के प्रवृत्त होने से पहले विवाह को अविघटनीय और अटूट मानते थे। मुसलमानों ने विवाह को इतना महत्त्व-पूर्ण स्थान नही दिया है कि उसका विघटन न किया जा सके, बल्कि पति द्वारा एकतरफा "तलाक" की व्यवस्था के रूप मे विवाह-विच्छेद सुकर बना हुआ है। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि अविघटन के विशाल क्षेत्र और सहज, सुलभ विवाह-विच्छेद के बीच क्या सही है।

गजेन्द्रगड़कर द्वारा रानाडे उद्धृत

33. एम. नटराजन की उपयोगी पुस्तक "सेन्चुरी ऑफ सोशल रिफॉर्मस्" के आमुख मे डॉ. पी. बी. गजेन्द्रगडकर ने स्वतन्त्रता और समाज-सुधारों के समर्थक महादेव गोविन्द रानाडे को निम्नांकित प्रकार उद्धृत किया है—

34. "हम अपने भूतकाल से सर्वथा नाता नही तोड़ सकते क्योंकि यह समृद्ध उत्तराधिकार स्वरूप हमें मिला है और इसमे शर्मिन्दा होने जैसी कोई बात नही है। परन्तु भूतकाल का आदर करते समय हमे अपने उन व्यावहारिक पहलुओं के आधार पर, जिन्होंने हमे पददलित किया है, सदैव परिवर्तन करते रहना चाहिये।"

बड़ोदा विधि में पुनर्विवाह स्वीकृत

35. हिन्दू विवाह विधि में प्रथम प्रयोग के रूप में सुधार तत्कालीन अग्रदर्शी राज्य बड़ोदा मे आया। विधवा का विवाह वहां बहुत पहले 1901 में लागू किया गया, विवाह को 1905 के "हिन्दू लग्न निबन्ध" द्वारा सुधारा गया था और कानूनी विवाह-विच्छेद प्रथम बार 1931 में लागू किया गया था। इन सब सुधारों को अद्भुत "हिन्दू निबन्ध" 1937 का बड़ोदा अधिनियम 37 में सुव्यवस्थित और पुनः अधिनियमित किया गया था। अन्य विकसित राज्य, जो लोकप्रिय विधानों से समान रूप से अप्रभावित थे, इस सीमा तक जाने को तैयार नहीं थे। तत्कालीन मैसूर राज्य ने हिन्दू लॉ वीमेन्स राइट एक्ट, 1933 (1933 का अधिनियम 10) नामक एक अधिनियम पारित किया, किन्तु इसने विवाह विधि को छूने का साहस नहीं किया। तथापि इसने पति के द्वारा पत्नी से क्रूर व्यवहार करने या दूसरा विवाह कर लेने या अन्य तीन गम्भीर घटनाओं मे से किसी के घटने पर पत्नी के पृथक् निवास और भरण-पोषण के अधिकार के आरम्भिक स्वरूप का उपबन्ध किया। बड़ोदा अधिनियम उस राज्य से बाहर अत्यल्प व्यक्तियों को ही ज्ञात था, किन्तु इसने भारत के प्रवेशद्वार बम्बई के लोगों का ध्यान आकर्षित किया।

आधुनिक भारत में विवाह एवं तलाक सम्बन्धी कानून

36. आधुनिक भारत में विवाह और विवाह-विच्छेद को विनियमित करने के लिए समय-समय पर विभिन्न विधायन पुनः स्थापित किये गये हैं। आनन्द मैरिज एक्ट, 1909 जिससे भी पहले इण्डिया क्रिश्चियन मैरिज एक्ट, 1872 और मैरिज वेलिडेशन एक्ट, 1892, इण्डियन डाइवोर्स एक्ट, 1869 में अधिनियमित किया गया था और कन्वर्ट्स मैरिज डिजोल्यूशन एक्ट, 1886, दी हिन्दू विडोज रिमेरिज एक्ट, 1856 बहुत पहले 1856 में और फिर चाइल्ड मैरिज रेस्ट्रेन्ट एक्ट, 1929 बनाये गये। फिर दी आर्य मेरिज वेलिडेशन एक्ट, 1937 विशेष विवाह अधिनिय, 1954, हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, हिन्दू विवाह (कार्यवाहियों का विधि मान्यकरण) अधिनियम 1960 और विदेशी विवाह अधिनियम, 1969 आदि बनाये गये।

1976 का संशोधन अधिनियम

37. दो हजार वर्ष से ऊपर के लिखित इतिहास और उससे भी लम्बी परम्परा का अन्त उस समय हो गया जबकि छलात्मक अल्पज्ञात विवाह विधियां (संशोधन) अधिनियम, 1976 प्रवृत्त हुआ।

38. अधिनियम पर बहस और उसके पारित होने सम्बन्धी रिपोर्टों के सुविज्ञ पाठकों को पता होगा कि समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये हिन्दू विधि का 27 मई, 1976 को निधन हो गया।[1]

1. लॉ ऑफ मैरिज एण्ड डाइवोर्स इन इण्डिया—बी. पी. बेरी, प्रथम संस्करण।

2. क्या आपने निम्नलिखित शीर्षक नहीं पढ़े हैं ?

"स्कूटर, टी. वी, और फ्रिज के लोभ मे पति ने पत्नी को मार डाला।"

"लालची ससुरालवालों ने पर्याप्त दहेज न लाने के कारण युवा बहू को जला डाला।"

"जल जाने से स्त्री की मृत्यु।"

"उर्मिला ने आत्मदाह किया"

"हंसा के दहेज का शिकार होने की आशंका।"

"बिना शादी किये दूल्हा के लौट जाने के कारण दुल्हन कूद कर मरी।"

दिल्ली में दहेज की यातना मे बहुओं के जलकर मरने की आशंका के 394 मामले (1) 'दहेज के लालची कुत्ते अशोक विज को फांसी लगाओ' (2) 'अचला विज ने पति का पुतला जलाया।' (3) 'वाह रे अशोक विज तूने खूब किया, दहेज को रख बीबियों को धक्का दिया।'

विवाह : दहेज की लॉटरी

3. आठवें दशक में भारत के समाचारपत्रों में प्रकाशित हजारों शीर्षकों मे से ये कुछ हैं। यदि सर्वेक्षण किया जाये तो दहेज के कारण होनेवाली मौतों की संख्या प्रत्येक राज्य मे प्रतिदिन एक से कम नही होगी और सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रतिदिन एक दर्जन से कम न होगी। नव विवाहिताओं के विवाह के प्रारम्भ के कुछ वर्षों मे तथा प्रथम प्रसव के समय की दहेज-यातनाओं सम्बन्धी मामले अगणित हैं और सार रूप मे इसी बात ने कि भारत में विवाह तथा विवाह-विच्छेद व्यवस्था मे दहेज के भयावह स्वरूप को, जिसमें विवाह एक व्यापार बन गया है तथा वर खुले आम बेचे और खरीदे जाते हैं, सामने लाने के लिये मुझे विवश किया है।

पुत्री का उत्तराधिकार : सामाजिक अस्वीकृति

4. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के प्रवृत्त होने के पश्चात् यह आशा की गई थी कि जब पुत्री को उत्तराधिकार में अंश मिलने लग जायेगा तो दहेज का क्रूर दानव समाप्त हो जायेगा, किन्तु हिन्दू-समाज ने पुत्री के उत्तराधिकार को अभी तक स्वीकार नही किया है। इसने दहेजरूपी सामाजिक बुराई को जन्म दिया है और काले धन और मुद्रा के कारण इसकी रकम में भी वृद्धि हुई है। दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1976 का संशोधित अधिनियम) वस्तुतः एक परिहास ही है क्योंकि पुत्री के उत्तराधिकार और दहेज के अस्वीकृति को समाज ने स्वीकार नही किया है।

वधुओं का तिरस्कार

5. महिलाओं का तिरस्कार, तानेबाजी और तंग करने से लेकर जीवित जला डालने तक, सभी प्रकार की अशिष्टताएं समाज में प्रचलित बुरे लक्षण हैं जो इस अन्तरिक्ष युग में भी वृद्धि की ओर उन्मुख हैं।

6. हमारे समाज में युवा वधुओं की ऐसी दयनीय, दुःखद एवं दर्द भरी दशा होने के कारण, मैं आशा करता हूं कि ऐसे बर्बर, अमानवीय सामाजिक अपराध के लिए निवारक दाण्डिक उपबन्ध करने की अपेक्षा के अतिरिक्त विवाह एवं विवाह-विच्छेद सम्बन्धी विधि का विधायी संशोधन चिरपेक्षित है।

विवाह : कामलिप्सा और दहेज का कॉकटेल

7. विवाह, जो मनु के समय में एक संस्कार के रूप में माना जाता था, आज नागरीकरण आधुनिकीकरण, पाश्चात्यकरण एवं मुद्रा-स्फीति के अन्तरिक्ष युग में काम-लिप्सा एवं दहेज का "कॉकटेल" बन गया है।

8. अतः इस लेख में, मैं इस देश के विधि पण्डितों के वर्ग के विचारार्थ विवाह एवं विवाह-विच्छेद विधि के इस महत्त्वपूर्ण पहलू पर विचार रखना एवं निराकरण प्रस्तुत करना चाहता हूं। किन्तु दहेज-यातना की इस व्याधि एवं सामाजिक बुराई पर आगे विचार रखने से पूर्व मैं पहले भारत में वैवाहिक विधियों की इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यवस्था के ऐतिहासिक विकास पर विचार रखने की अनुमति चाहूंगा।

विवाह और तलाक

9. पारिवारिक-विधि समाज के सम्पूर्ण विकास की आधारशिला एवं मेरुदण्ड है। मनु के शब्दों में आर्थिक और सामाजिक जीवन को पारिवारिक जीवन में अभिव्यक्ति तथा विस्तार मिलता है। महर्षि मनु ने संस्कृत के निम्नलिखित श्लोक में इसे बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त किया है।

> एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयो. शुभाः।
> प्रेत्येह च सुखोदर्कान्प्रजा धर्मान्निबोधत ॥ अध्याय 9–11

10. ऋग्वेद में गृहस्थाश्रम (पारिवारिक जीवन) को बड़ा महत्त्व दिया गया है। महाभारत में इस पर असंदिग्ध रूप से जोर डाला है और कहा है कि जो अपना पारिवारिक जीवन जीते हैं उन्हें मानवी अस्तित्व की उच्चतम पूर्णता प्राप्त होती है। संस्कृत श्लोक इस प्रकार है—

> (शान्ति पर्व) महाभारत में श्रीपदकृष्णा वेलवाकर,
> पूना प्रणायतेः सलोकतां बृहस्पतेः शतक्रतोः। 1954 पृ. 1742
> व्रजन्ति ते परां गतिं गृहस्थ धर्म सेतुभिः ॥

हिन्दू विवाह : एक धार्मिक संस्कार

11. हिन्दू विधि विवाह को एक संस्कार के रूप में मानती है, जो मानव के पुनर्जनन के लिए आवश्यक है तथा नारी का एक मात्र संस्कार है। यह एक धार्मिक आवश्यकता है, क्योंकि हिन्दू धर्म का एक सुस्थापित सिद्धान्त है कि तीव्रशूलसमपीड़ादायक स्थान से, जिसे "पतन" कहा गया है, बचने के लिए हर एक के एक पुत्र होना आवश्यक है।

12. हिन्दुओं की परम्परानुसार आठ प्रकार के विवाहों को मान्यता प्राप्त है अर्थात् ब्रह्म, देव, आर्य, प्रजापति, असुर, गान्धर्व, राक्षस, पैशाच। महर्षि मनु ने उनका वर्णन निम्न प्रकार किया है—

चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान्।
अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत।
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्रजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥

प्राचीन हिन्दू विधि : विरल तलाक

13. मनु और याज्ञवल्क्य की स्मृतियों के अनुसार प्राचीन हिन्दू समाज मे विवाह अविच्छेद्य था। शास्त्र विवाह को एक संस्कार मानते थे तथा विवाह-विच्छेद अज्ञात था। इस पर भी कतिपय विवाहों मे ये अनुज्ञात थे और रूढ़िजन्य विवाह-विच्छेद विधि द्वारा मान्य थे।

(मीरा बनाम हंसजी पेमा (1912) आई. एल. आर. 37, बम्बई 295)

कौटिल्य-अर्थशास्त्र : सहमतिपूर्ण तलाक

14. कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे उल्लेख किया है—

अपने पति से घृणा करनेवाली स्त्री, उसकी इच्छा के विपरीत अपने विवाह को भंग नही कर सकती। न ही कोई पुरुष अपनी पत्नी से उसकी इच्छा के विपरीत उसके साथ अपने विवाह को भंग कर सकता है। किन्तु पारस्परिक विद्वेष के आधार पर विवाह-विच्छेद कराया जा सकेगा।

नारद : सीमित तलाक

15. नारद ने पति की नपुंसकता, पति की विक्षिप्तता और पति द्वारा सांसारिक संव्यवहारों से पूर्णतः निवृत्ति के मामलों में पत्नी के पक्ष मे विवाह-विच्छेद स्वीकृत किया था। इस प्रकार यह उपदर्शित होगा कि पुरातन काल मे भी विवाह-विच्छेद विवादास्पद विषय था। अतः विवाह-विच्छेद असफल विवाह का एक अवश्यम्भावी किन्तु दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम है और परिणामस्वरूप इसे विवाह विफलता का नाम दिया जा सकता है।

मुस्लिम विधि : विवाह एक संविदा

16. हिन्दू विधि में विवाह के एक पवित्र संस्कार होने की तुलना में मुस्लिम विधि मे इसे एक संविदा के रूप में परिभाषित किया गया है जिसका उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति और सन्तान का वैधकरण है। मुस्लिम विधि में दो प्रकार के विवाहों की व्यवस्था है–स्थाई, जो विवाह का नियमित रूप है और मुता जो अस्थायी विवाह है।

ईसाई : एक दैविक संविदा

17. ईसाइयों में विवाह एक पवित्र संस्कार नही है वरन् एक संविदा है। विवाह संविदा को, जिसमे स्त्री और पुरुष मृत्यु-पर्यन्त या विवाह-विच्छेद होने तक

जीवन के सुदृढ़ सामाजिक बन्धन में बंधते हैं, गृहस्थ-सम्बन्धों को अत्यन्त पुरातन, महत्त्वपूर्ण और रोचक माना जाता है। यह दैविक संविदा के रूप में ज्ञात है।

बेन्थम : विवाह-पुरुष का आनन्द, नारी की पीड़ा

18. बेंथम ने अपनी पुस्तक "थ्योरी आॅफ लेजिस्लेशन"[1] में कहा है कि ऐसी संविदा में पुरुष का एक मात्र ध्येय क्षणिक कामोन्माद की तृप्ति हो सकता है और उस कामोन्माद की तुष्टि होते ही इस सहवास से प्रत्युत्पन्न असुविधाओं को उठाये बिना ही वह सहवास का लाभ उठा लेता है। नारी के लिए यह उस रूप में नहीं है। इस लगाव से उसे दीर्घकालीन और बहुत से कष्टदायक परिणाम भुगतने पड़ते हैं। गर्भ-सम्बन्धी कष्ट उठाने के और प्रसव-पीड़ा झेलने के पश्चात् उसे मातृत्व के भार से लाद दिया जाता है। इस प्रकार इस सहवास से, जहाँ पुरुष को आनन्द ही आनन्द प्राप्त होता है, वहीं स्त्री के लिए उससे कष्टों की शुरुआत हो जायेगी और यह उसे अवश्यभावी विनाश की ओर ले जायेगी, यदि उसने अपने कोख में पलते हुए शिशु के पालन-पोषण और अपने लिए पति का आश्रय पहले से ही सुनिश्चित नहीं कर लिया हो।

स्त्री कहती है "मैं आपको समर्पित करता हूं किन्तु मेरे दुर्बल क्षणों में आप मेरे संरक्षक रहेंगे और अपनी प्रणयोत्पन्न सन्तान के लिए व्यवस्था करेंगे। यहां से भागीदारी प्रारम्भ होती है जो वर्षोपर्यन्त अपने आप चलती रहेगी, पर यह उसी स्थिति में, जब केवल एक ही सन्तान हुई हो, किन्तु यह प्रारम्भिक बन्धन उत्तरवर्ती विवाहों और सन्तान के मामले में लुप्त हो जाते हैं, और इस अन्तराल में पारस्परिक आनन्द और कर्तव्यों का एक नया सिलसिला शुरू होता है।"

रोमन विधि का रिवय

19. लेटे के अनुसार आंग्ल वैवाहिक विधियां और प्रथायें रोमन विधि से और ईसाई गिरजाघरों के धर्मादेशों से ली गई हैं। मध्ययुगीन गिरजाघर विवाह को ईसाइयों के एक पवित्र संस्कार और दैविक संविदा के रूप में मानते थे। किन्तु बाद में इंग्लैण्ड के गिरजाघरों के धर्म के 25वें अनुच्छेदों में यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि ईसाई धर्म-संस्कारों के प्रयोजनार्थ विवाह-बन्धन सर्जनात्मक नहीं होता है।[2]

चर्च : रोमन तलाक प्रतिबन्धित

20. पुरातन रोमन विधि में विवाह पक्षकारों में से एक की मृत्यु हो जाने पर अथवा विवाह-विच्छेद होने पर समाप्त हो जाता था और विवाह-विच्छेद दोनों पक्षकारों अथवा उनमें से किसी एक की भी इच्छा होने पर अनुज्ञेय था। किन्तु

1. भारत में विवाह और विवाह-विच्छेद विधि—पी. पी. बेरी, पृष्ठ 32, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ, प्रथम संस्करण।
2. भारत में विवाह एवं विवाह विच्छेद विधि, पृष्ठ 33।

तीव्रगामी सामाजिक परिवर्तन

38. पारस्परिक हिन्दू मूल्यों के शिथिलीकरण जैसी कोई बात नही है तथापि तेजी से हो रहे सामाजिक परिवर्तनो के साथ-साथ हिन्दू विवाहित नारियां अपनी प्रतिष्ठा और अपनी निष्ठा को बनाये रखने के लिए अद्भुत लड़ाई लड़ रही है। वे सिर्फ यह चाहती हैं कि उनके वैयक्तिक सम्मान तथा प्रतिष्ठा को स्वीकार किया जाये। वे यह नही मानती कि सीता उनकी आदर्श है तथापि उनका लक्ष्य ऐसा तात्कालिक सम्बन्ध नही है जैसा कि पाश्चात्य नारियो का है।

अविवाह के बजाय असंतोषजनक विवाह बेहतर

39. तथ्य यह है कि हिन्दू नारी के लिए विवाह न होने से तो असंतोषजनक विवाह बेहतर है, यहां तक कि नई दिल्ली जैसे शहरो में भी तलाकशुदा या पृथक्कृत हिन्दू पत्नी के लिये कोई स्थान नही है, जिसके लिए पुनर्विवाह प्रायः असम्भव है, तथा जिसके लिए सम्मानजनक पुरुष मैत्री पाना बहुत ही कठिन है।[1]

स्वागत योग्य अनेक संशोधन

40. भारत की नारियों के स्वातन्त्र्य के लिए 1981 के विधेयक सं. 23 द्वारा लाया गया संशोधन, जहां तक धारा 13 (घ) तथा धारा 13 (ग) का संबंध है, एक स्वागत योग्य कदम है। प्रस्तावित अधिनियम की धारा 13 (घ) में उपबंध है कि पति द्वारा की गई याचिका में पत्नी डिक्री दिये जाने का इस आधार पर विरोध कर सकेगी कि विवाह विघटन से उसके समक्ष भारी वित्तीय कठिनाई आ जायेगी तथा विवाह को विघटित करना सभी परिस्थितियो से गलत होगा। इसमें यह उपबंध और है कि धारा 13 (ग) के अधीन की डिक्री का तब तक विरोध नहीं किया जायेगा जब तक कि विवाह के परिणामस्वरूप उत्पन्न बच्चों के भरण-पोषण के लिए समुचित व्यवस्था नही कर दी गई हो। इससे पहले धारा 13 (ग) है, जिसमे विवाहों के अपरिहार्य भंग की धारणा तथा इसके आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री की मन्जूरी के विचार का समावेश किया गया है।

न्यायाधीश बेरी द्वारा उठाये गये सवाल

41. जैसा कि भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री [illegible] द्वारा बताया गया है कि धारा 13 (ग) के लाये जाने से निम्नलिखित [illegible] हैं:—

(1) हमारे सामाजिक ढांचे को ध्यान में रखते हुए क्या विवाह [illegible] भंग की धारणा का द्योतक [illegible] है?

(2) क्या इस धारणा का प्रांतिक [illegible] इस सिद्धान्त के [illegible] करता है?

---

42. विधेयक संसद के समक्ष है तथा सांसदों को अभी यह विनिश्चय करना है कि इसे अधिनियम बना दिया जाये अथवा नहीं। यदि बनाया जाये तो किस रूप में तथा किन संशोधनों के साथ। मैं इस बात पर बल देना चाहूंगा कि अभी, जबकि विधेयक पारित किया जाना है; सांसदों को दहेज के कारण दी जानेवाली यातनाओं दहेज के कारण होनेवाली मौतों के दैत्य का सामना करने के लिए यथोचित उपबन्ध सम्मिलित करने हेतु विवाह-विच्छेद तथा भारतीय दण्ड संहिता दोनों ही विधियों के संशोधन पर गम्भीरता से विचार किया जाना चाहिए क्योंकि यह दैत्य भारतीय समाज मे, तथा विशेष रूप से हिन्दू समाज के निम्न-मध्यम वर्ग तथा उच्च मध्यम वर्ग दोनो मे ही त्वरित गति से आगे बढ़ रहा है।

तलाक को उदार न बनाएं

43. भारत के विभिन्न महिला संगठनों ने विवाह विधियों संशोधन विधेयक, 1981 का विरोध किया है, क्योंकि विवाह-विच्छेद में ढील देने से अधिकांश नारियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तथा इससे नारियों के कष्टों का गहन गर्त और गहरा हो जायेगा।[1]

पारिवारिक न्यायालय

44. "नारी तथा विधि" विषय पर आयोजित अखिल-भारतीय संगोष्ठी मे "पारिवारिक न्यायालयों की स्थापना करने तथा विवाह के पश्चात् अर्जित सम्पत्ति को तलाकशुदा पति/पत्नी मे बराबर विभाजित करने का सुझाव दिया है।

नारी कोई गुलाम नहीं है

45. बैन्थम के अनुसार विवाह-विच्छेद को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिये तथा विवाह-विघटन को निन्दित कार्य के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए। ऐसा क्यों ? यह स्वयं बैथम के शब्दों से ही अच्छी तरह समझा जा सकता है।[2] वह कहता है—"यदि ऐसी कोई विधि होती जो हमेशा उसे अपने साथ रखने की शर्त के अलावा किसी भागीदार, संरक्षक, प्रबन्धक, साथी बनाने की मनाही करती तो यह कैसी निरंकुशता कहलायेगी, इसे क्या कहा जायेगा ? फिर भी एक पति साथी, सरक्षक, प्रबन्ध भागीदार होता है और इससे भी अधिक होता है। अब भी ससार के अधिकाश सभ्य देशों मे पति जीवन भर के लिए बनाया जाता है। जिस व्यक्ति से आप घृणा करते हो, उसी के शाश्वत अधिकार के अधीन रहना अपने-आप में गुलामी है, किन्तु उससे आलिंगन-बद्ध होने के लिए बाध्य होना गुलामी से भी कहीं ज्यादा दुर्भाग्यपूर्ण है।"

नारी : चल-सम्पत्ति

46. नारी-स्वातन्त्र्य के लिए 19वीं शताब्दी में बैन्थम ने जो कुछ कहा है

---

1. रिव्यू ऑफ मैरिजेज लॉज, दिल्ली हिन्दुस्तान टाइम्स, दिनांक 29 अगस्त 1981।
2. लॉ ऑफ मैरिज एण्ड डाइवोर्स इन इण्डिया, पृष्ठ 37।

वह भारत में 20वीं शताब्दी में भी उतना ही सही और संगत है, जहां नारी को अब भी "चल-सम्पत्ति" तथा "यौन और दहेज" का सम्मिश्रण समझा जाता है।

47. नारी जाति की इस दुखद और दयनीय अवस्था का उल्लेख करते समय मुझे मेरे लेख "विधि, नैतिकता और राजनीति" मे विस्तार से विचार करने का अवसर मिला था जिसमें मैं निम्नांकित उल्लेख करने को विवश हुआ था[1]

नारी–उत्पीड़न–एक कलंक

48. "दहेज के कारण होनेवाली मौतों तथा नव-विवहिताओं को यातना देने जैसी तेजी से बढ़ती हुई *सामाजिक बुराइयां न्यायालयों के न्यायिक ध्यानाकर्षण* से बची नहीं रह सकीं, जिसके लिए प्रतिरोधक विधि बनाकर समाज पर इस लांछन तथा वर्तमान पीढ़ी पर इस कलक को मिटाने के लिए राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा उर्मिला के मामले मे, इसकी कड़ी निन्दा तथा विधि विवेचकों तथा समाज-सुधारकों से "स्पष्ट आह्वान" किया गया था।

49. राजस्थान उच्च न्यायालय ने (न्या. जी. एम. लोढा के अनुसार) *अशोककुमार शर्मा तथा अन्य बनाम राजस्थान राज्य (1980 क्रिमिनल लॉ रिपोर्टर)* राज. (पृ. 154) मे निम्नलिखित रूप में अभिमत प्रस्तुत किया :

> "दहेज के भूखे-लोभी गिद्धों ने टेलीविजन, फ्रिज, स्कूटर तथा 25,000 रुपये (तहसीलदार के पद पर चयन की कीमत) प्राप्त करने मे असफल होने पर, एक निर्दोष सुंदर, शिक्षित, किंतु असहाय नव-विवाहित लड़की को सताना तथा ताने मारना तथा उसका अपमान करना और उसे असहनीय यातना देना प्रारम्भ कर दिया, जिससे निरादरपूर्वक पशुवत् जीवन तथा कष्ट-साध्य मानसिक पीडा और निष्क्रियता व्याप्त हुई, जिससे वह स्वयं को जीवित जलाकर आत्म-हत्या करने के लिए मजबूर हुई। ऐसी दुखद मर्मस्पर्शी रोंगटे खड़े कर देने-वाली, दिल कंपा देनेवाली, हृदयविदारक, अन्त.करण को हिला देनेवाली तथा समाज को हिला देनेवाली अत्यन्त संक्षिप्त अभियोजन कहानी है। मृतक उर्मिला और पति अशोक कुमार तथा दहेज के भूखे उसके कुटुम्ब के सदस्यों द्वारा मृतक को आत्महत्या करने को विवश करने का अपराध किया। इतना होने पर भी अभिकथित "दहेज के दैत्यों" द्वारा जेल जाने से बचने के लिए जमानत के लिए असाधारण अविवादिक न्यायिक रियायत की प्रार्थना की गई है।"

"सास तथा श्वसुर के अतिरिक्त मृतक के पति याची अशोक कुमार तथा अशोक कुमार की बहिन कुमारी नीरजा के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 306 के अधीन इस आरोप पर मामला दर्ज किया गया कि अभियुक्त को पर्याप्त दहेज नहीं दिये जाने के कारण वह मृतक उर्मिला को यातना दिया करता था। इस

1. लॉ, मोरेलिटी एण्ड पॉलिटिक्स, 1981, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 391।

प्रकार, अभियोजन आरोप के अनुसार मृतक उर्मिला को दी जानेवाली मानसिक यातनाएँ जब असह्य हो गईं और इसके परिणामस्वरूप उसने आत्महत्या कर ली। इससे पूर्व भी उसने आत्महत्या का असफल प्रयास किया था। आत्महत्या के टिप्पण से पता चलता है कि उर्मिला ने चूहे मारने की कुछ जहरीली दवा खाकर भी आत्महत्या का प्रयास किया था, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली।"

"आत्महत्या के बार-बार के प्रयास सामाजिक चेतना तथा विधि-निर्माताओं के प्रति विद्रोह को व्यक्त करते हैं तथा इसके कारणों को एक जघन्य प्रकृति के गम्भीर सामाजिक अपराध को रूप देते हैं। यह कोई छुटपट मामला नहीं है, ऐसी कई उर्मिलाएँ दहेज-मौतों, मानव-वध या आत्महत्या की शिकार हो रही हैं, जैसा कि अभियोजन ने ठीक ही इंगित किया है। यह अपराध जो समाज के प्रति है नारीत्व के प्रति है तथा इन सबसे ज्यादा गरीबी के प्रति है। इस पर समाज-सुधारकों के अलावा विधि-निर्माताओं विधि व्याख्याताओं तथा विधि-प्रवर्तन-तन्त्र द्वारा तुरन्त गम्भीरता से विचार किये जाने की अपेक्षा है। यह समाज पर कलंक है तथा वर्तमान पीढ़ी पर धब्बा है। नव-विवाहित लड़कियों का बहुमूल्य जीवन लेनेवाली इस सामाजिक बुराई के लिए जिस पर शायद ही ध्यान दिया जाता है, एक बेहतर निवारक कठोर विधायन अपेक्षित है।"

50. उर्मिला की मृत्यु समूची नारी जाति, भारत की दलित, उत्पीड़ित नारी की दयनीय और दुखद दशा दर्शाती है। उसकी ईश्वर से यही प्रार्थना है :

> "हे ईश्वर आपसे प्रार्थना है कि अब आगे से ऐसी सीधी लड़की पैदा न करना जो इतनी दब्बू स्वभाव की हो कि अपने अधिकारों के लिए भी न लड़ सके।"

51. परोक्ष रूप से नहीं, यह तो प्रत्यक्ष रूप से विश्व नारी समाज को पुरुष के शोषण के विरुद्ध विद्रोह करने का आह्वान है। जलते हुए शरीर और खौलते हुए रक्त में यह एक नारा है, "घुटने न टेको, आत्मसमर्पण न करो, भागो मत, अपितु समाज को आमूलचूल बदल दो।" राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में "भागो नहीं दुनिया को बदलो"। यह "उठने और जगने" तथा "सम्मानित अस्तित्व और न्यायोचित अधिकारों के लिए संघर्ष करने" की अपील है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में "उठो और जागो"। ऊपर जो उद्‌गार है वे दहेज के कारण मृत्यु को सामाजिक बुराई, गरीबी और नारी समाज के विरुद्ध दोहरे अपराध को भस्मीभूत कर डालने के लिए, आग की लपटों में जलती एक वधू से निकली बिजली की कौंध की तरह है।

उर्मिला का आह्वान—एक जन-आह्वान

52. मैं कामना करता हूं कि नारियों, और नारियों ही क्यों अपितु विश्व के समस्त मानव संगठन, उर्मिला के उपर्युक्त आह्वान को मोटे स्वर्णिम अक्षरों में लिख कर उन नारियों की शमशान भूमि से लेकर सड़कों, चौराहों, विवाह-स्थलों, रसोइयों और झोपड़ियों तक पहुंचा दें। पुरोहित, पुजारी, मुल्ला और पादरीवर्ग

को चाहिए कि वे उसे सभी मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों और गुरुद्वारों की तथा समस्त महिला विद्यालयों की ही नहीं, अपितु सभी विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की प्रातःकालीन प्रार्थनाओं में इसे सम्मिलित करें।

उर्मिला का महान् त्याग

53. उर्मिला का महान् त्याग केवल इसी प्रकार मुक्ति और उद्धार कर सकता है और भारतीय नारी को बन्धुआ मजदूरी, गुलामी, यौन और दहेज के शोषण से मुक्ति दिला सकता है। क्रूरतम मजाक तो यह है कि शोषक समाज नारी को द्रौपदी, उर्मिला और मथुरा बनाने के पाप को छुपाने के लिए घृणित, अनैतिक तरीके से काम करते हुए भी सती, सीता, सावित्री, दुर्गा, सरस्वती और लक्ष्मी की आराधना के आडम्बर से सदाचारी होने का ढोंग रचते हैं। सिर्फ भारत में ही क्यों इंग्लैण्ड तक मे भी 'कीलर काण्ड' जासूसी के लिए स्त्री वर्ग के शोषण का ज्वलन्त उदाहरण है।

54. शेक्सपियर और तुलसीदास जो अपने युग के महान् साहित्यकार रहे हैं, उनके साहित्य में नारी-सम्बन्धी कतिपय तीखी टिप्पणियों के लिए आलोचकों द्वारा उनकी तीखी आलोचना हुई है, यद्यपि दोनों ने ही नारी-समाज के लिए प्राय आदर और सराहना का भाव ही दर्शाया है। निन्यानवे प्रतिशत लोगों को यह पता नही है कि हेमलेटे ने "फ्रियेलिटी दाई नेम इज वूमेन" (हेमलेट) किस सन्दर्भ में कहा है, और न ही उन्हें यह पता है कि वह तो "समुद्र" था जिसने आत्मा-लोचन में "ढोल, गंवार, शूद्र, पशु और नारी" मे समानता जतलाई थी। (रामचरित मानस)

> प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही।
> मरजादा पुनि तुम्हारिय कीन्ही ॥
> ढोल गंवार सूद्र पसु नारी।
> सकल ताड़ना के अधिकारी ॥ 33 ॥

साहित्य मे नारी के इस चित्रण पर साधारण आदमी की धारणा तो गलत हो सकती है अतः निर्णय तो विद्वानों को करना है।

55. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के मानस मे महिलाओं के लिये दया, करुणा और सहानुभूति का भाव था, जब उन्होंने कहा कि—

> अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
> आंचल में है दूध और आंखों में पानी। (यशोधरा)

एक अन्य महान कवि जयशंकर प्रसाद ने नारीत्व के विभिन्न पहलुओं का वर्णन करने के पश्चात् नारी-वर्ग की सीमाओं और बाधाओं को बेझिझक स्वीकार किया, जब उन्होंने यह कहा कि—

1. यह आज समझ तो पायी हूं। मैं दुर्बलता में नारी हूं।
   अवयव की सुन्दर कोमलता लेकर मैं सबसे हारी हूं।
2. पर मन भी क्यों इतना ढीला अपने ही होता जाता है।
   घनश्याम खण्ड-सी आंखों में क्यों सहसा जल भर आता है।
3. मैं जब भी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूं।
   भुज-लता फंसा कर नरतरु से भूले-सी झोंके खाती हूं।

यह कह कर उन्होंने अपना मन्तव्य प्रकट किया है—

4. नारी तुम केवल श्रद्धा हो।
5. आंसू के भीगे आंचल पर मन का सब कुछ रखना होगा।

कामायनी–लज्जा सर्ग

56. सुभद्राकुमारी चौहान ने अपनी कविता में नारी का महिमागान करके उसके व्यक्तित्व को नये आयाम दिये हैं—

खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी—
—सिंहासन हिल उठे···

निर्बाध शोषण

परन्तु आधुनिक युग की 'झांसी की रानी' और 'जॉन ऑफ आर्क' और प्राचीन युग की अनगिनत महान् नारियों और देवियों, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, महासती, सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि के अस्तित्व के बावजूद महिलाओं का शोषण अनवरत रूप में जारी है। समस्त नैतिकतावादी, विधि-वेत्ता-राजनीतिज्ञ और इस प्रकार विधि, नैतिकता और राजनीति सभी नारी को स्वतन्त्रता प्रदान करने में विश्व भर में अभी तक विफल रहे हैं।

नैतिकता का पक्षपात

57. क्या हम इन सबसे यह कह कर छुटकारा पा सकते हैं कि नैतिकता प्रत्येक युग और जाति में भिन्न-भिन्न होती है? हम ऐसा नहीं कर सकते। नैतिकता की अवधारणा असंदिग्ध रूप से पक्षपातपूर्ण है, जो पुरुष के पक्ष में है और नारी के लिए अन्यायपूर्ण है।

अथर्ववेद की वधु-स्तुति

58. सभी को अथर्ववेद से प्रेरणा लेनी चाहिए, जिसके अनुसार वधु को आशीर्वाद दिया जाता था कि वह अपने पति के घर में अपने सास-श्वसुर, पति के भाइयों और बहिनों पर उसी प्रकार महारानी की भांति शासन करे जैसा कि समुद्र नदियों के साम्राज्य का निर्माण करता है और उन पर शासन करता है। इस प्रकार जहां पश्चिमी संस्कृति स्वच्छंद संयम के नाम पर क्लबों और कॉल गर्ल रैकेटों के माध्यम से नारी का शोषण करती है, वहां इसके विपरीत प्राचीन भारतीय संस्कृति ने नारी को सम्मानित किया है। अथर्ववेद के व्यादेश हैं।

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्य सुषुवे वृषा।
एवात्वं साम्राज्ञयेधि प्रत्तुरस्तं परेत्य॥
सम्राज्ञयेधि श्वयुरेषु सम्राज्ञयुत देवृषु।
ननान्दुः सम्राज्ञयेधि सम्राज्ञयुत श्वश्रूवा॥

59. शास्त्र माता-पिता और गुरु का भी बराबर सम्मान करते हैं तथा उन्हें 'देव' कहते हैं :

"मातृ देवो भव, पितृ देव भव, आचार्य देवो भव"
महर्षि मनु का व्यादेश है—
"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"।

मनुस्मृतिः नारी के लिए अनुदार

60. महिलाओं के लिए मनु के यशगान और उक्त आदर के उपरान्त भी मनुस्मृति में महिलाओं के लिए तीखी और विपरीत टिप्पणियां की गई हैं और उससे संकेत लेकर भक्तिकाल के कतिपय कवियों ने महिलाओं को ईश्वर-भक्ति में अवरोध माना है। यह कितना सोचनीय और विडम्बनापूर्ण है कि "मातृ देवो भव" का 'देव' ईश्वर की भक्ति में अवरोध बन जाता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि मनुस्मृति में नारियों की आलोचनावाला अंश भृगु ऋषि द्वारा किया गया विरूपण और उलट-फेर है जिसमें मनु की मौलिक विषय-वस्तु को गलत रूप से प्रस्तुत किया है। मैं इस पर टिप्पणी करने का अधिकारी नहीं हूं।

खाड़ी के देशों को लड़कियों की शर्मनाक भारी विक्रय

16. इस अन्तरिक्ष युग की पीढ़ी का व्यवहार नारी समाज के प्रति कुल मिलाकर उचित नहीं है। नहीं तो दक्षिणी भारतीय लड़कियों (केरल निवासियों) की खाड़ी (अरब) के देशों में भोग और गुलामी के लिए बड़े पैमाने पर विक्री क्यों हो ? गरीबों, आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों यहा तक कि शताब्दियों तक पीड़ित अनुसूचित जाति की हरिजन लड़कियो पर सामूहिक बलात्कार और लैंगिक अत्याचार क्यों हो ? कलकत्ता के 'रवीन्द्र सरोवर' मे सामूहिक बलात्कार क्यों हो ? मथुरा और उर्मिला के अनगिनित प्रसंग क्यों हो ? क्या यही शास्त्रों का "मातृ देवो भव" है या मनु का "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" या अथर्ववेद का 'सम्राज्ञेयेधि' हैं ?

महिलाओं के लिए पुरुष के दिखावटी आंसू

62. सतयुग में कुछ भी हुआ हो, कम से कम आज कलियुग में सभी दिखावटी आंसू प्रतीत होते हैं। यदि आमतौर पर विचार किया जाये तो यह क्या 'उसी पुरानी सुगन्धयुक्त पुराना पुष्प' वाला (मद्य-निषेध के सन्दर्भ में रूजवेल्ट की टिप्पणी, अनुच्छेद 11-6) सतयुग बनाम कलियुग में नैतिकता तथा नारियों के महत्त्व के

सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, जिसका उत्तर महान् विद्वानों द्वारा दिया जाना है, न कि मेरे सदृश एक अदने न्यायाधीश द्वारा ?[1]

63. उर्मिला के आह्वान ने नैतिकता और विधि के नये आयामों के लिए विधि-निर्माता-राजनीतिज्ञों को कठोर प्रतिरोधक विधियां बनाने के लिए मजबूर कर वन्धुओं की दहेज-मृत्यु के सामाजिक अपराध का निवारण करने के लिए क्रान्ति के युग का सूत्रपात किया है। पुलिस कर्मियों द्वारा मथुरा का सतीत्व नष्ट करना और बलात्कारियों को जेल की कोठरियों में बन्द करवाने मे विधि की असमर्थता के परिणाम-स्वरूप इस श्रेणी के बलात्कार के मामलों मे सबूत का दायित्व-परिवर्तन करके विधि को संशोधित करने के लिए विधेयक लाना पड़ा। विधि में इस दोष को प्रकाश में लाने के लिए तथा नैतिक मूल्यों को बल देने के लिए उपेन्द्र बख्शी एवं अन्य को धन्यवाद।

मथुरा और उर्मिला–हजारों में एक

64. यह मत भूलिये कि मथुरा और उर्मिला के मामले ऐसे हजारों-हजारो में से दो ही हैं जिनको ढूंढ़कर प्रकाश में लाया गया है।

दहेज-मांग को संज्ञेय अपराध बनाएं

65. इस देश में विवाह और तलाक से सम्बन्धित समस्त कानूनों मे "दहेज की मांग" या दहेज के लिए यातना को तलाक का प्रथम आधार बनाया जाना चाहिये। वस्तुतः दहेज-यातनाओं को प्रतिरोधक बनाने, इसे गैर-जमानती, संज्ञेय, अशमनीय वैवाहिक अपराध बनाने का संकल्प लेना चाहिए। विवाहों का स्थायी या अस्थायी होना मेरे लिए गौण प्रश्न है क्योंकि सर्वप्रथम वधू के जीवन को इस व्यापक और अत्यधिक सामाजिक कुरीति से बचाना अत्यावश्यक है।

तलाक और प्रतीक्षा-अवधि

66. डंकन ने भी दहेज-यातनाओं की समस्या पर ध्यान दिया है और कहा है—"मेरे विचार से विवाह के एक वर्ष के बाद ही तलाक की अनुमति देना अव्यावहारिक है। जबकि भारत की परिस्थितियों मे दोव से लेकर दार्जिलिंग तक प्रथम वर्ष की अवधि मे दुर्भावना अधिकांशतः ससुरालवालों की यातना और दहेज ऐंठने के कारण होती है न कि अन्य कारणों से।" यद्यपि डंकन ने मत व्यक्त किया है कि 1976 के संशोधन मे प्रतीक्षा अवधि को एक वर्ष तक घटाना स्वागत योग्य नहीं है, लेकिन उसे दहेज-यातनाओं के पिशाच का बोध नहीं था, जिनमें से नव विवाहिता वधू को विवाह के तुरन्त बाद गुजरना पड़ता है और जो उसके जीवन को नर्क बना देता है, जिसकी परिणति उसके आत्महत्या के प्रयास के रूप में ससुरालवालों द्वारा मानव-वध में होती है। मैं इस मत का हूं कि एक वर्ष प्रतीक्षा करने की अवधि में

---

1. लॉ, मोरेलिटी एण्ड पोलिटिक्स—जस्टिस जी. एस. सोढ़ा।

भी छूट दी जानी चाहिए, क्योंकि अधिकतर मामलों में दहेज के लिए यातना या मृत्यु चाहे आत्महत्या द्वारा हो या मानव-वध, के द्वारा विवाह के एक वर्ष में ही होती है।

दहेज-मृत्यु की दुखद घटना

67. मैं अपने शहर का एक रोचक किन्तु बहुत ही दयनीय एवं दु:खद प्रसग बताता हूं जो पिछले वर्ष ही घटित हुआ था। एक विवाह सम्पन्न होने वाला था और बारात जयपुर शहर के समीपवर्ती गाव से आई थी। वर के माता-पिता विवाह की सप्तपदी और "होम" कर्म से पूर्व दहेज की खासी रकम को चुकाने के लिए अड गए। वधू के मर्माहत माता-पिता ने सभी प्रयास किये, किन्तु आवश्यक धन की व्यवस्था करने मे असफल रहे और अपनी असमर्थता प्रकट की। जिसका परिणाम यह हुआ कि वर और बारात लौट गये।

जब तक यह दु:खद समाचार बताया गया, वधू विवाह मे भव्य परिधान में अपने को सजा चुकी थी और विवाह-मण्डप में होम-अग्नि के पास सप्तपदी के लिए उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी। जब यह खबर दी गयी तो वह स्तब्ध हो गयी और उसकी मनोव्यथा इतनी उग्र हो गई कि वह मकान की चौथी मंजिल पर चली गयी और अकेली बैठी रही। उसने अपने भाग्य से समझौता कर लिया। अपने मित्रों और समाज के लोगों को मुंह दिखाने मे शर्म अनुभव करने के कारण, वह चुपचाप ऊपर की छत पर चली गयी और कूद कर मर गयी। इस प्रकार से रोंगटे खड़े करनेवाली, व्यथित करनेवाली दयनीय एव झकझोर देनेवाली दहेज मृत्यु की घटना घटित हुई।

68. आप सप्ताह मे कम से कम एक बार अपने प्रातःकालीन समाचार-पत्र में ऐसे शीर्षक देख सकते हैं और यदि सर्वेक्षण किया जाये तो मुझे भरोसा है कि युवा वधुओं का या तो मानव-वध या प्रतिदिन का अनुपात एक दर्जन से कम नहीं होगा जिनका या तो वध किया जाता है या वे आत्महत्या की शिकार होती है। यह सब सन्यासी और तपस्वियों के इस देश मे हो रहा है जहां हम ढोंग के रूप में तो नारियों को सीता, सावित्री, लक्ष्मी और दुर्गा के रूप में पूजते है, और वासना और दहेज के लिए उनका दुरुपयोग करते हैं।

दहेज-हेतु यातना और विवाह विधि

69. पति या ससुरालवालों द्वारा दहेज के लिए शारीरिक और मानसिक यन्त्रणा के कारण पत्नी को तलाक की मांग करने की अनुमति देनेवाली हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 और अन्य विधियों मे सशोधन आज की प्रमुख आवश्यकता है। यह आज की पुकार है जो उन सहस्रों बन्धुओ के रुदन और आंसुओं से आ रही है जो अपने घरों में, दु:ख और यन्त्रणा सहन कर रही है तथा जिन्हें बन्दी या बन्धुआ मजदूर के रूप में रखा जाता है और जिन्हें वासना के लिए बाध्य किया जाता है।

वधु-विक्रय और मनुस्मृति

70. समाज के उस अत्यधिक रुढ़ीवादी और कट्टरपन्थी वर्ग को भी, जो अपनी दिनचर्या का आरम्भ तो मनु के श्लोक, वैदिक मन्त्रों के उच्चारण से करते हैं और समापन गायत्री मन्त्र से करते है तथा महर्षि मार्क्स और भौतिकवाद का तिरस्कार करते हैं, यह बतला दिया जाना चाहिये कि वेदों और महर्षि मनु ने भी वधू के विनिमय और विक्री को प्रतिबन्धित किया है और दहेज की विभीषिका की सौदेबाजी और समझौतों की भर्त्सना की है।

71. मनुस्मृति ने वर या वधू के लिए किसी भी प्रकार का मूल्य वसूल करने का दो प्रकार से निषेध किया है—

आर्यं जोमिथुन शुल्क केचितराधुर्मपिवतत
अत्यों आयेव महान्वाशिश्चिक्रयस्तापदेव सा. (33) मनुस्मृति-पृष्ठ-7

72. मनु ने वधू के मूल्य-स्वरुप गाय और बैल का लिया जाना भी निषिद्ध किया है, क्योंकि इसका अर्थ कन्या की विक्री या निलामी होगा।

यासां दाश्ते शुल्कं शतयों न स विक्रयः
अर्हताश तत्कुमादीणायातनृशस्य च केवलम (34)

73. वधू को वही धन लेना चाहिए जो वर पक्ष प्रसन्नतापूर्वक देता है। ऐसी ही निषेधाज्ञा वर के लिए है। यदि वर के लिए धन लेने का कोई समझौता किया जाता है, तो वह वर की विक्री या नीलामी के अतिरिक्त कुछ नहीं है, जो कभी नहीं किया जाना चाहिये।

नारी-उद्धार : मनु से मार्क्स तक

74. मानव पीढ़ियां महर्षि मनु से महर्षि मार्क्स, वोल्गा से गंगा तथा विवेकानन्द से महात्मा गांधी तक यात्रा कर चुकी हैं और इस असमानता-दमन से समानता और महिलाओं के उद्धार तक की अभी और लम्बी यात्रा करनी होगी।

75. यदि हमारे पवित्र संविधान की प्रस्तावना में समानता की उद्घोषणा द्वारा प्रेरित और नेहरू द्वारा की गई उद्घोषणा का सम्मान किया जाना है और यदि संविधान के अनुच्छेद 14 व 15 कुछ महत्त्व रखते हैं तो सरल और पुरुष के लिए बाध्यकारी बनाते हुए विवाह विधि को संशोधित किया जाना चाहिये। यह प्रतिरोध स्थायी विवाहों को प्रोत्साहित करेगा और जंगम के रूप में नारियों के दुरुपयोग को समाप्त करेगा। नारी-मुक्ति और उद्धार में ही मानवता का उद्धार निहित है।

76. नारी का अर्थ व यौन शोषण के विरुद्ध मथुरा बलात्कार क्रांति ने संशोधन[1] के द्वारा बलात्कार व दहेज मृत्यु में, साक्षी कानून में परिवर्तन कर अपराधी पर दायित्व रखा है व पुलिस का दायित्व बढ़ा है। क्रियान्विति शंकाप्रद ही है।

---

1. क्रिमिनल ला एमेण्डमेन्ट विधेयक नं. 43 व 46/1983

न्यायाधीश की प्रतिबद्धता

न्यायाधीश की प्रतिबद्धता—किसके प्रति ?

"मेरा प्रथम्, द्वितीय और अन्तिम प्यार वकालत है। मैं पहले वकील हू और अपने जीवन की सम्पूर्ण उपलब्धियों के लिए मैं इस कुलीन व्यवस्था का आभारी हूं। मेरे लिए व्यवसाय का महत्त्व पहले है और इसके कारण राजनीतिज्ञ का बाद में।"

2. भूतपूर्व महाधिवक्ता, न्यायाधीश, सांसद और राज्यपाल तथा भारत सघ के भूतपूर्व विधि एवं न्याय मन्त्री श्री जे. एन. कौशल ने 12 सितम्बर, 1982 को जयपुर बार के समक्ष भावावेश के कारण अवरुद्ध वाणी में दिये गये अपने अभिभाषण को उपरोक्त "महत्त्वपूर्ण वाक्यांशों" से प्रभावी बनाया। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो "सुहागरात" मनाकर लौटनेवाली कोई नवविवाहिता अपनी माता से गले मिल रही हो।

आंसू पोंछो—चण्डीगढ़ की गोष्ठी में श्री कौशल की दलील

3. इसी गोष्ठी मे श्री कौशल स्नेह के इतने वशीभूत एव भावुक दिखाई दे रहे थे कि 25 फरवरी, 1982 को चण्डीगढ़ गोष्ठी के अपने स्वगत भाषण मे पंडित नेहरू को उद्धृत करते समय वे "सामाजिक न्याय, गरीबों को कानूनी सहायता, सामाजिक-आर्थिक कानूनी क्रान्ति में बार एवं खण्डपीठ की भूमिका और निर्देशक सिद्धान्तों के "विधिशास्त्र" के बारे में बात करना ही भूल गये, जिनके लिए उन्होंने अपनी समर्पण और मिशनरी भावना निम्नलिखित शब्दों मे प्रदर्शित की—

"एक शक्तिशाली आन्दोलन, जो कि एक निश्चित उद्देश्य हेतु चलाया जाता है, उसकी आवश्यकता इसलिए प्रतिपादित होती है क्योकि कुछ परिवर्तन होने को है, और यही उस आन्दोलन का सार भी है। उस शक्तिशाली आन्दोलन के दौरान कुछ विद्यमान सम्बन्ध परिवर्तित होते हैं, बदलते हैं अथवा प्रभावित होते रहते हैं। वस्तुतः वे उन निश्चित सम्बन्धों को प्रभावित करते हैं एव यदि हम मूलभूत अधिकारों के सन्दर्भ में देखें तो उनका *तात्पर्य परोक्ष रूप से कुछ निश्चित सम्बन्धों को* रक्षित करना होता है। इन दो विचार-बिन्दुओं के मध्य कुछ विरोधाभास है, यद्यपि वह मूलतः अन्तर्निहित नही है और ऐसा मेरा तात्पर्य भी नही है। मैं इस सम्बन्ध मे निश्चित हूं कि कुछ व्यवधान हैं और देश के न्यायालय इन मुद्दों को तथ्यान्तर्गत रखते हैं तथा उनका विशेष ध्यान मूलभूत अधिकारों पर होता है, न कि नीति-

निर्देशक सिद्धान्तों पर। इसके परिणामस्वरूप संविधान में अन्तर्निहित सम्पूर्ण लक्ष्य, जो कि एक उद्देश्य की प्राप्ति की ओर पग-पग अग्रसर हैं, किंचित रूप में वाधित होता है क्योंकि शक्तिशाली तत्त्वों की तुलना में स्थिर तत्त्वों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। यदि व्यक्ति की स्वतन्त्रता को, संरक्षित करने में हम व्यक्ति-समूह की असमानता को भी संरक्षित करते हैं तो हम नीति-निर्देशक तत्त्वों के विरोध में आ खड़े होते है जबकि हमारे संविधान के अनुसार नीति-निर्देशक तत्त्वों की ओर हमें शनैः-शनैः बढ़ते रहना है या दूसरे शब्दों में कहें तो हमें उस स्थिति की ओर अधिक तीव्रता के साथ बढ़ते रहना है जहां कम से कम असमानता हो और अधिक से अधिक समानता हो। यदि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के बारे में किसी भी आह्वान से तात्पर्य, वर्तमान मे विद्यमान असमानता से है तो हम परेशानी मे फंस जाते हैं, तब स्थिर एवं अप्रगतिशील बन जाते हैं तथा परिवर्तन की ओर नही बढ़ पाते। साथ ही हम एक समतावादी समाज के आदर्श की परिकल्पना नही कर पाते जो कि मेरे अनुसार हम लोगों मे से अधिकांश का उद्देश्य है।" यदि नीति-निर्देशक तत्त्वों की प्रधान आधारभूत स्थिति को हम नही समझ पाते हैं तो हम भारत के करोड़ों व्यक्तियों के प्रति प्रतिबद्धता को फलीभूत नही कर पायेंगे। नेहरू को पुनः उद्धृत करते हुए—

"भारतवर्ष की सेवा से अभिप्राय है करोड़ों पीड़ितों की सेवा-सुश्रुषा करना। इसका तात्पर्य है गरीबी एवं अज्ञानता को समाप्त करना, रोगों का उन्मूलन करना एवं अवसरों की असमानता को दूर करना। हमारे युग के महानतम् व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षा प्रत्येक व्यक्ति की आंख से आसू पूछने की रही है।

"और अधिकाश आंखों में अभी आसू विद्यमान हैं। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए मैं इस संगोष्ठी के उद्देश्य एव "मिशन" शब्द की पुनरावृत्ति करता हूं, चूंकि इस संगोष्ठी का आयोजन एक मिशन के लिए ही हुआ है। हमें हमारी चिरनिद्रा से जाग्रत होना चाहिए अन्यथा बहुत विलम्ब हो जायेगा।"

बार : एक सुरक्षात्मक कवच

4. श्री जगन्नाथ कौशल ने राजस्थान बार की खण्डपीठ का सुरक्षात्मक कवच बनने की उसकी महान् परम्परा का स्मरण कराया और इस पर दुःख प्रकट किया कि आजकल प्रत्येक न्यायाधीश में दोष निकालने की ओर एक ऐसे न्यायाधीशों को छोड़कर, जो कि बार के प्रतिनियुक्तिकर्ता सदस्यो के निकट तथा उनको घनिष्ठ हैं, थोक भाव में स्थानान्तरण की माग करने की प्रवृत्ति जोरो पर है। इस खींचा-तानी में, उन्होंने वही बात दोहरायी जो मुख्य न्यायाधिपति चन्द्रचूड़ ने अपनी पिछली यात्रा के दौरान जयपुर बार तथा न्यायिक अधिकारियों को कही थी।

विधि एवं न्याय के प्रति प्रतिबद्धता—कौशल

5. तर्कयुक्त निष्कर्ष के रूप में श्री कौशल की प्रतिबद्धता विधि, न्याय और इसकी दो शाखाओं, बार और खण्डपीठ के प्रति है और वे न्यायाधीशों से विधि

एवं न्याय के प्रति प्रतिबद्धता की आशा रखते हैं जैसा कि उन्होंने चण्डीगढ़ संगोष्ठी "नीति-निर्देशन सिद्धान्त, विधिशास्त्र के तीन दशक" में अपने आह्वानपूर्ण भाषण (ऊपर उद्धृत) मे संकेत दिया था।

संविधान के प्रति प्रतिबद्धता—शिवशंकर

6. उनके पूर्वाधिकारी श्री शिवशंकर ने जो कि प्रारम्भिक रूप से एक वकील एवं न्यायाधीश थे, इससे पूर्व जयपुर बार के समक्ष दिये गये अपने अभिभाषण में कौशल के विपरीत व्यवसाय पर राजनीति को महत्त्व दिया था। यद्यपि वे भी व्यवसायी राजनीतिज्ञों जैसे नहीं थे। श्री शिवशंकर ने संसद के अन्दर और बाहर दोनों ही स्थानों पर प्रतिबद्धता की वकालत की थी, किन्तु अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने इस सुपरिचित अवधारणा को विशेषता प्रदान की कि "न्यायाधीश की प्रतिबद्धता संविधान के प्रति होनी चाहिए।"

प्रतिबद्ध न्यायपालिका के लिए हंगामा

7. गत एक दशक के दौरान विधान-मण्डलों और समाचार एवं विचार-पत्रों में विधि-सुधारों पर विचार-विमर्श हुआ है और कुछ शीर्षस्थ राजनीतिज्ञ, भारतीय न्यायपालिका तथा विधि-सुधार अभियान पर मंडरानेवाले इस बहुप्रयोजनीय, सर्व-शक्तिमान एव सर्वव्याप्त "महत्त्वपूर्ण वाक्यांश" की पेचीदगियों का सही ढग से विस्तार किये बिना "न्यायाधीशों की प्रतिबद्धता" की वकालत कर रहे हैं।

मंगलम् का शोध-निबन्ध

8. श्री मोहनकुमार मंगलम्, भूतपूर्व महाधिवक्ता, उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता और केन्द्रीय मन्त्री रहे हैं, किन्तु वे मूलतः एक प्रतिबद्ध, श्रद्धावान एवं समर्पित राजनीतिज्ञ थे, जिन्होंने अपने "प्रतिबद्ध न्यायपालिका" के सिद्धान्त पर विवाद का द्वार खोला था।

9. यहां सर्वप्रथम उस बात का उल्लेख किया जा रहा है जिस के बारे मे विभिन्न बार विचार करती रहती है, क्योंकि वे ही "न्यायाधीशों की सर्वोत्तम निर्णायक" हुआ करती है।

आर. के. गर्ग—सुविधाजनक न्यायाधीश लोकतन्त्र के लिए खतरनाक

10. उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता और भूतपूर्व विधान सभा सदस्य (भा. क. पा.) श्री आर. के. गर्ग ने 10 जनवरी, 1982 को "लिंक"[1] की एक भेंटवार्ता मे न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के प्रकरण में निर्णय पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए सुविधाजनक न्यायपालिका के विषय पर टीका-टीप्पणी की थी। यद्यपि उन्होंने इस बात को कि इसका तात्पर्य "प्रतिबद्ध न्यायपालिका" से है,

1. लिंक, जनवरी 10, 1982, पृष्ठ 15।

आगे नहीं बढ़ाया और यह महसूस किया कि 1977 में सत्ता-समाप्ति से पूर्व बन्दी-प्रत्यक्षीकरण के एक कुख्यात प्रकरण में यह कानूनी चेतावनी अन्तर्निहित है कि सुविधाजन न्यायपालिका अस्थायी रूप से सुविधाजनक तो दिखाई दे सकती है, किन्तु अन्तिम रूप से यह स्वयं लोकतान्त्रिक शक्ति को हानि पहुँचा सकती है।

मूल्यबद्ध न्यायालय—आत्मघातक

11. न्यायाधिपति कुमार के मामले में दिल्ली के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा सीधे विधि-मन्त्री को लिख दिए जाने का हवाला देते हुए और भारत के मुख्य न्यायाधिपति को उसकी विषय-वस्तु को प्रकट न करते हुए श्री गर्ग ने प्रोटोकोल के अतिक्रमण के विरुद्ध चेतावनी दी और कहा—"भारत के मुख्य न्यायाधिपति की उत्तरदायी संस्था को नष्ट करने के लिए अब विधि मन्त्री भविष्य में न्यायाधीशों की सलाह प्राप्त करेंगे।" श्री गर्ग ने अनुभव किया कि "यदि उच्चतम न्यायालय की संरचना में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया जावे और सभी अवरोधों को हटाने के लिए वर्तमान सरकार के स्थान पर अध्यक्षात्मक प्रणाली की सरकार के परिवर्तन पर उच्चतम न्यायालय का समर्थन प्राप्त करने के लिए सुविधाजनक एवं लचीले न्यायाधीशों की नियुक्ति करके "मूल्यबद्ध न्यायालय" की व्यवस्था कर दी जावे तो इसमें किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए।"

प्रतिबद्धता आवश्यक—मरुधर मृदुल

12. 11–12 सितम्बर, 1982 को जयपुर में आयोजित अखिल भारतीय हिन्दी विधि प्रतिष्ठान की संगोष्ठी में वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मरुधर मृदुल ने नैतिक सलाह दी थी कि न्यायाधीशों की भर्ती विधायकों की एक समिति के परामर्श से होनी चाहिए और उसका आधारभूत मापदण्ड "अभ्यर्थी की प्रतिबद्धता और उसके जीवन का सामाजिक दर्शन" होना चाहिए।

न्यायाधीशों के निर्णय का स्वागत—पी. मृदुल

13. न्यायाधीश और वरिष्ठ अधिवक्ता रहे स्व. पुष्पराज मृदुल, जिन्होंने उच्चतम न्यायालय में श्री शिवशंकर के मसले पर काफी गर्जना की थी और 1981 के ग्रीष्मकाल के अवकाश के दौरान दिल्ली के न्यायाधीशों के कार्यकाल में अस्थायी वृद्धि प्रदान करने के लिए श्री तुलजापुरकर की सलाह मानने से इन्कार कर दिया था, ने न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के मामले के द्वार न्यायपालिका एवं कार्यपालिका के बीच घनिष्ठ मित्रता के युग का प्रारम्भ होना बताया था। श्री मृदुल न्यायपालिका की भूमिका के बारे में खिन्न एवं निराश नहीं थे और श्री मरुधर मृदुल के मूल्यांकन के विपरीत वे यह भी अनुभव करते थे कि न्यायालय जीवन की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक वास्तविकताओं के प्रति सजग हो गये हैं और इससे राष्ट्रीय जीवन की अपेक्षाओं के बारे में उनकी प्रतिक्रिया स्पष्ट होती रहती है।

चिताले—सदैव आशावादी

14. अन्य वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. वाई. एस. चिताले का दृष्टिकोण आशा-

वादी रहा है, उन्होंने अपना यह अभिमत व्यक्त किया—"न्यायपालिका सदैव सर्वोच्च तथा स्वतन्त्र रही है। यह ऐसी ही बनी रहेगी।"

न्याय के अर्थ को सीमित करना बन्द किया जाये—बेरी

15. हिन्दी विधि प्रतिष्ठान की संगोष्ठी मे "हमारे देश में न्यायिक प्रक्रिया में सुधार" विषय पर चर्चा करते हुए भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति श्री बेरी ने कहा था कि न्याय की उच्च अवधारणा में, सामाजिक न्याय सहित सभी बातें सम्मिलित हैं। केवल न्याय के इसी पहलू को महत्त्व प्रदान करने से "वाद" की तंग गली मे व्यापार करने की उलझन पैदा हो सकती है जो हमारे संवैधानिक दायित्वों से सदैव सुसंगत नही हो सकती। हमारे संविधान की प्रस्तावना में भी आर्थिक न्याय एवं राजनीतिक न्याय के संदर्भ में ही 'न्याय' शब्द का प्रयोग किया है। शुद्ध न्याय की भावना से ओत-प्रोत किसी व्यक्ति को, उसे अर्थ का स्मरण कराने के लिए इन विशेषणों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे उसमे विद्यमान रहेंगे ही।

सामाजिक न्याय स्थिर हो गया है

16. इस प्रकार न्यायाधिपति बेरी ने "प्रतिबद्ध न्यायपालिका" की विचार-धारा को लागू करने का विरोध किया और "सामाजिक न्याय" की पारिभाषिक शब्दावली के द्वारा न्याय की विशेषता बताने का भी अनुमोदन नही किया, क्योंकि उनके अनुसार यह भारत में न्याय की विचार-धारा में ही निहित है। तथापि, मेरी विनम्र राय में, विधि के अनुसार न्याय अथवा अन्धे न्याय के विरुद्ध सामाजिक, आर्थिक और श्रमिक एवं कमजोर वर्गों की व्याख्या करने के लिए, कल्याणकारी विधानों तथा गजेन्द्र गड़कर और कृष्णा अय्यर के "सामाजिक" न्याय को इतना महत्व एवं व्यापक दृष्टिकोण प्राप्त हुआ है कि इसने हमारे न्यायिक शब्दकोष में स्थान ग्रहण कर लिया है। हमारे संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय का उल्लेख है, प्रारम्भिक रूप से न्यायपालिका का सम्बन्ध सामाजिक न्याय से है क्योकि राजनीति या सामाजिक न्याय के महत्त्व की देखभाल तो राज्य की विधायिका एवं कार्यपालिका शाखाओं के द्वारा अधिक उचित प्रकार से की जा सकती है।

गजेन्द्र गड़कर बनाम हिदायतुल्ला

17. "विधि, नैतिकता और राजनीति" पर मेरे निबन्ध में मुझे इस विवाद पर निम्नलिखित शब्दों में उस सीमा तक प्रकाश डालने का अवसर प्राप्त हुआ था, जिस सीमा तक कोई पदासीन न्यायाधीश डाल सकता है।

"यद्यपि ऊपरी तौर से तो नैतिकता, विधि एवं राजनीति विभिन्न विचार-धाराएं लगती हैं एव समाज के विभिन्न कार्यक्रमों से सम्बन्धित हैं परन्तु वस्तुतः वे एक दूसरे को स्पर्श करती हुई अन्योन्याश्रित हैं एवं परस्पर सम्बन्धित हैं। मुख्य न्यायाधीश गजेन्द्र गडकर ने सामाजिक न्याय के सिद्धान्त को सर्वप्रथम शक्तिशाली

रूप से प्रतिपादित करते हुए कहा कि सामाजिक, आर्थिक कानूनों को परिभाषित करते समय न्यायाधीशों को यह नजरअन्दाज नहीं करना चाहिए जिसे कि न्यायाधीश होम्स ने प्रभावपूर्ण शब्दो में "युग की अनुभूत आवश्यकताएं" कहा है।

"यह आह्वान न्यायाधीशो के लिए दुदुम्भी पीटने के समान, दीवार पर लिखी इबादत के समान था। यद्यपि यह न्यायाधीश हिदायतुल्ला की विचार-धारा के पूर्णतः विरुद्ध था, जिन्होंने कि मोहनकुमार मंगलम् की जनता एवं संसद की सम्प्रभुता की अवधारणा ("प्रिवी पर्स" सम्बन्धी प्रकरण में) का यह कहते हुए उपहास किया कि यह निर्धारित करने के लिए कि संसद सम्प्रभु है अथवा संविधान, वे चादनी चौक के किसी रिक्शेवाले या रेड़ीवाले की विचारधारा से प्रभावित नहीं हो सकते।"

"यह एक झड़प थी जिसमें मोहनकुमार मंगलम् ने एक आहत सिंह के समान मुख्य न्यायाधीश से प्रश्न किया कि "क्या मैं इतनी निरर्थक बात कर रहा हूं ?" इससे पहले मुख्य न्यायाधीश एवं महाधिवक्ता नीरेन डे के बीच भी काफी अधिक गर्मागर्म बहस हो चुकी थी। न्यायाधीश रे ने बीचबचाव करते हुए कहा कि "मैं तो अभी भी जनता अथवा संसद की सम्प्रभुता के मसले पर और सुनना चाहूंगा" अन्ततोगत्वा पालकीवाला की विजय हुई, जबकि सर्वोच्च न्यायालय ने यह उपहास करते हुए कि राष्ट्रपति ने इस आदेश पर मुगल बादशाहों के समान आधी रात मे हस्ताक्षर किये है, प्रिवी पर्स उन्मूलन विधेयक को बहुमत से निरस्त कर दिया। न्यायाधीश रे का यह विमत ऐतिहासिक एवं चिरस्मरणीय है। न्यायाधीश रे की, कनिष्ठ होते हुए भी, मुख्य न्यायाधिपति के रूप में पदोन्नति ने विशाल पैमाने पर राजनैतिक एवं वैधानिक वाद-विवाद को जन्म दिया। केवल आगामी पीढी ही निर्णायक होगी कि विधि पर राजनीति हावी थी अथवा नैतिकता।"

"यह माना जाता है कि गजेन्द्र गड़कर एक शक्तिशाली विचारशील थे, सामाजिक न्याय के क्षेत्र में शीर्षस्थ थे। उनका स्थान हिदायतुल्ला से विपरीतगामी मुख्यधारा मे आता है। हिदायतुल्ला वे हैं, जिन्होंने विधिक न्याय पर विशेष ध्यान दिया एवं नम्बूदरीपाद को मार्क्स की विचारधारा को अधिक जान लेने के लिए दण्डित किया।"

नीरेन डे, मंगलम् तथा हिदायतुल्ला के बीच झड़प

18. 24 सितम्बर, 1980 को भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति और भूतपूर्व उप-राष्ट्रपति श्री हिदायतुल्ला ने जोधपुर बार के सदस्यों के समक्ष अभिभाषण करते हुए, मेरे उपर्युक्त सन्दर्भ में निम्नलिखित शुद्धियां की थी—

"अन्य मुद्दा, जिसे कि मैंने अनुभव किया है वह यह है कि आजकल अधिवक्तागण राजनीति में हिस्सा लेने के लिए काफी उत्सुक हैं एवं न्यायालयों में अपनी राजनैतिक विचारधाराओं को वाद-विवाद के बीच ले आते हैं। न्यायाधीशों को

अपनी राजनीति को पृथक रखते हुए विवादों का निपटारा करना चाहिए। अधिवक्तागण को न्यायालयों में वाद-विवाद करते समय अपनी राजनैतिक भावनाओं को दूर रखना चाहिए।"

"अभी हाल ही में, हमारे भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश ने एक ऐसे मसले का जिक्र किया, जो कि मेरे न्यायालय मे घटित हुआ था। यह घटना शोकग्रस्त अधिवक्ता श्री कुमार मंगलम् के साथ प्रिवी पर्स प्रकरण के दौरान घटित हुई है। श्री लोढ़ा के द्वारा यह घटना पूर्ण रूप से वर्णित नही की गई है।

"हम अच्छी तरह जानते हैं कि श्री कुमार मंगलम् कभी भी किसी प्रकरण को अपने राजनैतिक दृष्टिकोण से अलग नहीं देखते और साम्यवाद के एक योद्धा के रूप में व्यवहार करते हैं। जबकि हम प्रिवी पर्स प्रकरण के संदर्भ में चर्चा कर रहे थे एवं न्यायाधीश शाह काफी मनोयोग से प्रतिप्रश्न कर रहे थे तब श्री कुमार मगलम्, जो प्रतिउत्तर दे रहे थे, वे ऐसे थे जो किसी अधिवक्ता द्वारा नही दिये जाने चाहिए। वस्तुत: वे यह कहना चाहते थे कि यही कारण है कि जिसके फलस्वरूप वे न्यायालयों को बन्द कर देना चाहेंगे। इस पर मैने कहा कि श्री कुमार मंगलम् क्या आप यह नही समझते कि आप सीमाओं का अतिक्रमण कर रहे है। तब अगला वाक्य यह आया जिसे कि श्री लोढा ने अपने व्याख्यान में उद्धृत किया है। वे कहते हैं कि "क्या आपका तात्पर्य है कि मैं निरर्थक बात कर रहा हूं ?" जो प्रत्युत्तर मैंने दिया वह इस व्याख्यान में समायोजित नही किया गया है। मैं जोधपुर बार के सदस्यो को अवगत करा देना चाहता हूं कि मैंने श्री कुमार मगलम् से कहा कि मैं एक लम्बे समय से अनुभव कर रहा हूं कि यदि आपने पुनः ऐसा ही कहा तो "मैं आपके सामने यह स्पष्ट कर दूंगा कि आप निरर्थक बातें कर रहे हैं। इस प्रकार से, विनम्रता के साथ उन्हें ध्यानाकर्षित करा दिया गया कि न्यायालयो मे राजनीति को लाने की कत्तई आवश्यकता नहीं है एवं अधिवक्तागण को सम्बन्धित पक्षकारों के प्रकरणो की गुणवत्ता के आधार पर ही वाद-विवाद करना चाहिये।"

कुलदीप नायर की चेतावनी

(19) अब प्रेस पर ध्यान दिया जाये, जो कि जनमत का क स्नायु-केन्द्र एवं दर्पण है। सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री कुलदीप नायर ने बिहार के मुख्य मन्त्री की अपील के लम्बित रहने के दौरान उच्चतम न्यायालय के दो माननीय न्यायाधीशों की पटना-यात्रा के सम्बन्ध मे उनके आचरण पर गम्भीर आक्षेप करते हुये "न्यायाधीशों को अपने पदो के साथ समझौता नही करना चाहिये" शीर्षक के अन्तर्गत चेतावनी दी। मुख्यमन्त्री द्वारा किये गये स्पष्ट आतिथ्य-सत्कार को गिनाने के पश्चात् श्री नायर ने निम्नलिखित राय व्यक्त की थी—

"मुझे पता है कि न्यायाधीश श्री क दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति हैं एवं राज्य आतिथ्य सत्कार एवं श्री मिश्रा की चाटुकारी प्रवृत्ति उन पर अपनी कोई छाप नही छोड़ेगी

में, अरुण शौरी ने "संगति किन्तु एक होग्रा" में और "न्यायाधीशों को रिश्वत दी गई"[1] मे, अरुण पुरी ने "न्यायपालिका को कार्यपालिका द्वारा धमकी"[2] में, सुमित्र मिश्रा ने "भद्दी उलझनें"[3] में, ए. जी. नूरानी ने "क्या संविधान जीवित रहेगा"[4] मे, राजीव धवन ने "सर्वोच्च न्यायालय का न्याय"[5] मे, चेलापति राव ने "न्यायपालिका का पुनर्गठन करो"[6] में, न्यायाधीशों के निर्णयों की उलझनो के बारे मे दुःख प्रकट किया है और कुल मिलाकर इससे अपने सरोकार बताये हैं।

(22) इससे पूर्व "ऑन लुकर" में एक लेख प्रकाशित हुआ था—"उच्चतम न्यायालय के लिए वफादार न्यायाधीश"[7] और "इलस्ट्रेटेड वीकली" ने इसे शीर्षक दिया "आज न्याय और उच्चतम न्यायालय कसौटी पर"। 13 अप्रेल, 1980 को करन्ट्र ने "न्यायाधीशों का आकलन और भगवती का पत्र"[8] शीर्षक से बम-विस्फोट किया और "ब्लिट्ज" ने अधीनस्थ न्यायाधीशों की कार्यपालिका पर निर्भरता से उन्हें स्वतन्त्र करने की वकालत की।"[9] 6 जनवरी, 1981 को "इलेस्ट्रेटेड वीकली" मे "न्यायपालिका चौराहे पर"[1] और 12 जुलाई, 1981 को "सरकार बनाम न्यायपालिका"[11] लेख प्रकाशित हुए थे।

(23) 6 जून, 1981 को "ब्लिट्ज" में मुख्य समाचार "कांग्रेस (आई) की मुख्य न्यायाधिपति को हटाने की चाल"[12] प्रकाशित हुआ था और "सण्डे स्टेण्डर्ड ने पुन: "सरकार बनाम उच्चतम न्यायालय[13] शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया था।

भगवती का कवच : सार्वजनिक हित का मुकदमा

(24) "उच्चतम न्यायालय नागरिको के अधिकारो को कैसे क्रियान्वित कराता है" शीर्षक के अन्तर्गत दीना वकील द्वारा उच्चतम न्यायालय के एक न्याया-

---

1. अरुण शौरी, इण्डियन एक्सप्रेस, दि. 24, 25, 26 जनवरी, 1982।
2. अरुण पुरी, इण्डिया टुडे, दि. 15-1-82।
3. सुमित मित्र, इण्डियन टुडे, दि. 28-2-1982।
4. ए. जी. नूरानी, इण्डियन एक्सप्रेस, दि. 4-3-1982।
5. राजीव धवन, इलस्ट्रेटेड वीकली, दि. 4-5-1980।
6. एम. चेलापति राव, लिंक, दि. 10-1-1982।
7. ऑन लुकर, दि. 15-8-82।
8. "करन्ट्र", दि. 13-4-80।
9. ब्लिट्ज, दि. 15-8-81।
10. इलस्ट्रेटेड वीकली, दि. 6-12-81, बी. एम. सिन्हा।
11. इलस्ट्रेटेड वीकली, दि. 12-7-81, बी. एम. सिन्हा।
12. ए. राघवन, ब्लिट्ज, दि. 6-6-81।
13. अनिल धवन, सण्डे स्टेण्डर्ड, दि. 28-6-81।

एवं उन्होंने अपने मनोभावों से यह जाहिर करवा दिया कि जो कुछ घटित हो रहा है, उससे प्रसन्न नहीं हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि उनके पटना-प्रवास का लोगों के मानस-पटल पर क्या असर पड़ेगा। जब श्री मिश्रा एवं सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधिपतियों को एक ही मंच पर साथ-साथ देखेंगे एवं मुख्यमन्त्री द्वारा आयोजित जलपान के बारे में जानेंगे तब वे क्या अनुमान लगायेंगे ; जबकि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधिपतियों के समक्ष मुख्यमन्त्री का प्रकरण विचाराधीन है ?"

"मान लीजिए कि न्यायाधीश अन्ततोगत्वा प्रकरण की सुनवाई करते हैं, तब यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वह स्थिति कितनी दुविधाजनक होगी। यदि वे निर्णीत करते हैं कि प्रकरण को निरस्त करने का आदेश दें, तो कुछ लोग असंगत रूप से उनके पटना-प्रवास पर उँगली उठायेंगे। जब एक अन्य न्यायाधीश ने कुछ समय पूर्व भारतीय विधि संस्थान, नई दिल्ली में कहा कि यह सोचनीय है कि उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के उद्देश्यगत निर्णयों की आलोचना करने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति निन्दनीय है तो वे एक मान्य सत्य को ही उजागर कर रहे थे। यह सच है कि न्यायपालिका की छवि इस प्रकार के कार्यों से धूमिल होती है। परन्तु क्या न्यायाधीशों को सन्देह के लिए कोई स्थान छोड़ना चाहिए ? वस्तुतः उन्हें ऐसा कोई कार्य करना ही क्यों चाहिए जो कि अवांछित व्याख्या के द्वार खोले ?"

"सन् 1977 में सर्वोच्च न्यायालय की समिति द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव के मैं विरुद्ध हूं कि न्यायाधीशों के स्तर एवं मूल्यों के ह्रास को रोकने के लिए ए नैतिक संहिता होनी चाहिए। परन्तु स्वयं न्यायाधीश को अपना आत्मावलो करना चाहिए। उनके बारे में यह धारणा है कि उनमें से कुछ प्रलोभन से स्वतन्त्र नहीं है व वे स्वयं को सत्तापक्ष के अनुरूप ढालते हैं।"

(20) मैंने कुलदीप नायर को विस्तृत रूप से यहां इसलिए उद्धृत किया कि उनकी यह गोलाबारी काफी बाद की है किन्तु चिन्ता का यह समूह-स्वर औ सुप्रसिद्ध विधि-वेत्ताओं और स्तम्भ-लेखकों द्वारा खतरे की घंटी को बजाने का सवा कम से कम पिछले एक दशक से रहा है। इसके विभिन्न पहलू हैं जिनके अन्तर्गत सम्पूर्ण न्यायाधीशों का आचरण और सरकार की आशाएं बनाम न्यायाधीशों से जनता की आशाएं भी आ जाती हैं। किन्तु एक हिन्दू विधवा के समान मैं किसी भी प्रकार की टीका-टिप्पणी नहीं करूंगा और केवल सन्दर्भ के लिए ही उनका उल्लेख करूंगा।

विधि-वेत्ताओं और स्तम्भ-लेखकों द्वारा खतरे की घंटियां

(21) सुप्रसिद्ध विधि-वेत्ता नानी ए. पालकीवाला ने "न्यायाधीशों के पहलू"[1] मामले में, सीरवई ने "न्यायाधीशों का मामला और उच्चतम न्यायालय"[2]

1. नानी ए. पालकीवाला, इण्डियन एक्सप्रेस, दि. 3-2-82।
2. सीरवई, इण्डियन एक्सप्रेस, दि. 22-1-82।

में, अरुण शौरी ने "संगति किन्तु एक हौआ" में और "न्यायाधीशों को रिश्वत दी गई"[1] मे, अरुण पुरी ने "न्यायपालिका को कार्यपालिका द्वारा धमकी"[2] में, सुमित्र मित्रा ने "भद्दी उलझनें"[3] में, ए. जी. नूरानी ने "क्या संविधान जीवित रहेगा"[4] में, राजीव धवन ने "सर्वोच्च न्यायालय का न्याय"[5] में, चेलापति राव ने "न्यायपालिका का पुनर्गठन करो"[6] में, न्यायाधीशों के निर्णयों की उलझनों के बारे मे दुःख प्रकट किया है और कुल मिलाकर इससे अपने सरोकार बताये हैं।

(22) इससे पूर्व "ऑन लुकर" में एक लेख प्रकाशित हुआ था—'उच्चतम न्यायालय के लिए वफादार न्यायाधीश"[7] और "इलस्ट्रेटेड वीकली" ने इसे शीर्षक दिया "आज न्याय और उच्चतम न्यायालय कसौटी पर"। 13 अप्रेल, 1980 को कण्टूर ने "न्यायाधीशों का आकलन और भगवती का पत्र"[8] शीर्षक से बम-विस्फोट किया और "ब्लिट्ज" ने अधीनस्थ न्यायाधीशों की कार्यपालिका पर निर्भरता से उन्हें स्वतन्त्र करने की वकालत की।"[9] 6 जनवरी, 1981 को "इलेस्ट्रेटेड वीकली" मे "न्यायपालिका चौराहे पर"[10] और 12 जुलाई, 1981 को "सरकार बनाम न्यायपालिका"[11] लेख प्रकाशित हुए थे।

(23) 6 जून, 1981 को "ब्लिट्ज" में मुख्य समाचार "कांग्रेस (आई) की मुख्य न्यायाधिपति को हटाने की चाल"[12] प्रकाशित हुआ था और "सण्डे स्टेण्डर्ड ने पुनः "सरकार बनाम उच्चतम न्यायालय[13] शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया था।

भगवती का कवच : सार्वजनिक हित का मुकदमा

(24) "उच्चतम न्यायालय नागरिकों के अधिकारो को कैसे क्रियान्वित कराता है" शीर्षक के अन्तर्गत दीना वकील द्वारा उच्चतम न्यायालय के एक न्याया-

---

1. अरुण शौरी, इण्डियन एक्सप्रेस, दि. 24, 25, 26 जनवरी, 1982।
2. अरुण पुरी, इण्डिया टुडे, दि. 15-1-82।
3. सुमित मित्र, इण्डियन टुडे, दि. 28-2-1982।
4. ए जी. नूरानी, इण्डियन एक्सप्रेस, दि. 4-3-1982।
5. राजीव धवन, इलस्ट्रेटेड वीकली, दि. 4-5-1980।
6. एम. चेलापति राव, लिंक, दि. 10-1-1982।
7. ऑन लुकर, दि. 15-8-82।
8. "कण्टूर", दि. 13-4-80।
9. ब्लिट्ज, दि. 15-8-81।
10. इलस्ट्रेटेड वीकली, दि. 6-12-81, बी. एम. सिन्हा।
11. इलस्ट्रेटेड वीकली, दि. 12-7-81, बी. एम. सिन्हा।
12. ए राघवन, ब्लिट्ज, दि. 6-6-81।
13. अनिल धवन, सण्डे स्टेण्डर्ड, दि. 28-6-81।

धीश से किये गये साक्षात्कार में सामाजिक न्याय के मसले पर सार्वजनिक हित के मुकदमों के बारे में आवाज उठाई गई थी।

न्याय भारत के साधन-विहीन व्यक्तियों से सम्बन्धित नहीं–लिंक

(25) "समय की अनुभूत आवश्यकताओं" से सम्बन्धित सामाजिक न्याय के विपरीत अच्छे और असम्बद्ध न्याय के बारे में उत्पन्न विवाद पर बार के सदस्य, प्रेस, पत्रकार और विचारकों; जिनमे विधिवेत्ता भी सम्मिलित हैं, का विरोधी दृष्टिकोण रहा है। एक ओर तो "प्रतिबद्ध न्यायपालिका" की अवधारणा है और दूसरी ओर खोटे और गैर-मिलावटी न्याय सहित स्वतन्त्र न्यायपालिका की अवधारणा है, जिसकी दुर्भाग्यवश कुछ लोगों ने ऐसी व्याख्या की है मानो भारत के लाखों साधन-विहीन व्यक्तियों से उनका कोई संबंध ही न हो। 10 जनवरी, 1982 को "लिंक" में "न्यायिक स्वतन्त्रता का तर्क" शीर्षक में निम्नलिखित टीका-टिप्पणी की गई थी–

"न्यायपालिका के निर्णयों पर शोध करने वाला कोई भी यह पायेगा कि भूमि-सुधारों,कल्याणकारी कार्यक्रमों, आदिवासी संरक्षण योजनाओं, सम्पत्ति क्षतिपूर्ति एवं परिसीमन,महिला एवं हरिजनों के अधिकारों का संरक्षण,आर्थिक अपराधियों के विरुद्ध दण्डात्मक कार्यवाहियों, कालाबाजारियों एवं मुनाफाखोरों, औद्योगिक श्रमिकों के अधिकारों एवं नागरिक स्वतन्त्रता की समस्याओं की न्यायालयों द्वारा अनदेखी कर दी गई है। उन्हें या तो न्यायालयों की परिसीमा से बाहर बता दिया गया है अथवा उनको प्रभावहीन कर दिया गया है। उच्चतम न्यायालय के हाल ही के दो निर्णय, जो कि निषेधात्मक अवरोध तथा जीवन बीमा निगम से सम्बन्धित हैं, सम्भवत: इस श्रेणी मे आते है।"

"सम्पन्नों की विपन्नों पर धाक"—न्यायालय की इस रूप मे आलोचना वस्तुत: उसकी अवमानना नहीं है, बल्कि यह आलोचना समाज की उस यथास्थिति की भर्त्सना है जो संविधान में निहित नीति-निर्देशक तत्वों के विरुद्ध पड़ती है जबकि नीति-निर्देशक तत्व सामाजिक न्याय के सिद्धान्त पर आधारित है। संविधान लेखन की स्याही सूख भी नहीं पाई थी कि प. नेहरू संविधान में संशोधन करने के लिए विवश हो गये। यह तथ्य यह प्रदर्शित करता है कि जब साधन-सम्पन्न एवं साधनहीन के मध्य संघर्ष होता है और यदि न्यायिक व्याख्या साधन-सम्पन्न के पक्ष मे जाती है तो संविधान मे संशोधन-परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाते हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि यदि संविधान को व्यक्तित्व-शून्य एक सामाजिक रक्त-विहीन एवं शाब्दिक कार्य के रूप में देखा जायें तो स्वतन्त्र न्यायपालिका का विचार प्रभावहीन बन जाता है। दूसरी ओर यदि संविधान को सामाजिक परिवर्तन के अस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया जाये और न्यायपीठिका एवं बार सामाजिक परिवर्तन के साधन बन जायें तो यह विवाद ही असंगत हो जाता है।

न्याय के लिए राष्ट्रीय योजना की वकालत

(26) इसके बाद "लिक'- में न्याय के लिए राष्ट्रीय योजना को विकसित करने हेतु न्यायिक सुधारों की वकालत की गई थी और निम्नलिखित राय व्यक्त की गई थी—

"हमारी न्याय-व्यवस्था की मूलभूत दुर्बलता भारत के लाखों-करोड़ों व्यक्तियों के प्रति उपेक्षा भाव है। इस तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल वे लोग जो साधन-सम्पन्न हैं, न्याय प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि केवल वे ही महंगी सेवाओं का लाभ उठा सकते हैं।"

"यहां इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि न्यायालयों के द्वारा अधिनियम में निहित त्रुटियों को स्पष्ट कर देने के पश्चात् भी सत्तापक्ष जनता की सेवा-हेतु त्रुटि-सुधार की दिशा में कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता है।"

"वस्तुतः यह परिलक्षित होता है कि हमारे राजनैतिक ढाँचे के विकास में एक ऐसी स्थिति आ गई है जहां कि न्याय-प्राप्ति के लिए एक राष्ट्रीय योजना विकसित की जानी चाहिये। इस योजना के मुख्य आधार साधनहीन गरीबों के लिये न्याय उपलब्ध कराना होना चाहिये। इसका तात्पर्य यह है, जैसा कि न्यायाधीश गजेन्द्र गड़कर एवं कृष्ण अय्यर ने स्पष्ट किया है कि इस भारतीय व्यवस्था में जहां असीमित झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने वाले एवं दूर-दूर बिखरे हुए ग्रामीण भारतीय हैं, उनके लिये न्याय की चिन्ता की जाये।"

न्यायिक स्वतंत्रता : सामाजिक एवं आर्थिक

(27) इसका यह अर्थ नहीं है कि कार्यपालिका को अतिरिक्त अधिकार दे दिये जायें और सम्पूर्ण न्यायिक-प्रणाली को इसके अधीनस्थ बना दिया जाये। वस्तुतः न्यायिक स्वतन्त्रता के तीन आयाम हैं—सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक। परन्तु दुःख की बात तो यह है कि न्याय के दो महत्वपूर्ण पहलुओं—सामाजिक और आर्थिक को पृष्ठभूमि में धकेल दिया गया है और न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की अवधारणा का अर्थ इसकी केवल कार्यपालिका से स्वतन्त्रता अथवा राजनैतिक दबाव का प्रतिरोध करना या सत्ताधारी दल का विरोध करना ही समझा जाने लगा है। दूसरी ओर, जब कोई न्यायाधीश अपने दृष्टिकोण को प्रदर्शित करता है तो राजनेता उसके विरुद्ध आवाज उठाते हैं और उसकी कटु आलोचना करते हैं। कुछ ही समय पूर्व कांग्रेस (आई) संसदीय दल के कुछ वकील सदस्यों ने भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा दिये गये कतिपय भाषणों पर दुःख तथा अप्रसन्नता व्यक्त की थी। उन्होंने उन पर ऐसे बयान देने का आरोप लगाया जिनका स्वरूप राजनैतिक था। मुख्य न्यायाधिपति ने खण्डपीठ और बार को बार-बार न्यायालयों की आलोचनाओं का विरोध करने को कहा और न्यायपालिका के साथ "सौतेला" व्यवहार किये जाने की साफ साफ निन्दा की।

सामाजिक-आर्थिक कायाकल्प आवश्यक

(28) हमारा देश अर्थात् कार्यपालिका और न्यायपालिका को जिस चुनौती का सामना करना पड़ रहा है वह यह कि क्या हम ऐसी राजनैतिक तथा न्यायिक प्रणाली का निर्माण कर रहे हैं जिससे सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन विपन्न व्यक्ति, उसके जीवन और उसकी स्वतन्त्रता के लिए समाज का निर्माण हो सकता हो। जैसा कि गांधीजी ने कहा था—"भारत के लाखों प्रभावहीन व्यक्तियों से न तो कार्यपालिका स्वतन्त्र रह सकती है और न ही न्यायपालिका"।

(29) "हम न्यायाधीशों" के लिए यह उचित नहीं है कि हम सार्वजनिक हित के इस विचार-विमर्श में किसी ऐसे दृष्टिकोण तथा मंथन-प्रक्रिया का, जो इस सम्बन्ध मे चल रही है, अनुमोदन तथा अस्वीकार करें किन्तु मैं उन्हें प्रकाश में लाने के सीमित प्रयोजन के लिए ही उनका हवाला दे रहा हूं ताकि "प्रतिबद्ध न्यायपालिका" या "हमारी प्रतिबद्धता : किसके प्रति", इस धारणा पर उन लोगों को, जो कुछ भी इस बारे मे कहना चाहते हैं, उसको ध्यान में रखकर उचित विचार-विमर्श किया जा सके।

न्याय के तीन स्वरूप

(30) इस समय हमारे सामने तीन प्रसंग हैं : 1. परम्परागत "अन्धा-न्याय", जिसको एंग्लो सैक्शन विधिशास्त्र मे आज के अधिकांश व्यक्तियों द्वारा आश्रय दिया जा रहा है और उसका अनुसरण किया जा रहा है।

2. सामाजिक न्याय, भगवती, कृष्णा अय्यर की यह धारणा है कि इसका उद्गम समाजवाद में हुआ है और अभी भी इसे न्यायाधीश होम्ज की प्रसिद्ध रचना "न्यायाधीश अपने समय की आवश्यकताओं को महसूस करने के लिए है" में समर्थन प्राप्त हो रहा है।

3. "प्रतिबद्ध न्याय", मंगलम् का शोध-निबन्ध जिसका अब ललित भसीन, मोहम्मद घोष, मृदुल तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा भी समर्थन किया गया है।

क्या साधन-सम्पन्न और साधन-विहीन समान हैं ?

(31) आदर्शवादी व्यक्तियों के रूप मे कुछेक न्यायाधीशों एवं विधि-वेत्ताओं की वास्तविक धारणा यह रही है कि न्याय सभी प्रकार की व्यक्तिपरकता के प्रति; सभी जाति, पंथ, राजनैतिक सिद्धान्तों, दल की प्रतिष्ठा के प्रति अन्धा होता है; चाहे वे साधन-सम्पन्न हों या साधन-विहीन हों। उनके अनुसार न्याय को "सामाजिक" या "अन्धा न्याय" का रूप प्रदान करना एक धूर्तता है। क्या इसका अर्थ यह होगा कि जब किसी न्यायाधीश से असमान लोगों के बीच, विशेषाधिकार प्राप्त एवं दलित, शोषक एवं शोषित, देशभक्त एवं देशद्रोही के बीच निर्णय करने की अपेक्षा की जाये, तो पैमाने सबके लिए समान होने चाहिए ? ऊपर उद्धृत भाषण मे हिदायतुल्ला ने "अन्धे न्याय" के सिद्धान्त को संरक्षण प्रदान किया है।

सामाजिक न्याय के लिए दलील

(32) रणनीति की उपयुक्तता अथवा धूर्तता की उपज के रूप में गढ़े गये मुहावरे के रूप में सामाजिक न्याय की यह अभिव्यक्ति मुझे अत्यधिक कष्ट पहुंचाती है, क्योंकि मुझे उचित कहें या अनुचित, कृष्णा अय्यर के सामाजिक न्याय से स्वाभाविक रूप से प्रेरणा मिली है। एक गोष्ठी के मेरे भाषण में मैंने प्रतिबद्ध न्यायपालिका, सामाजिक न्याय के विषयों तथा भारत की न्यायपालिका और भूमि-सुधारों[1] की धीमी प्रगति के बारे में भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की राय के संदर्भ में अपना मन्तव्य व्यक्त किया है। उक्त टिप्पणी पर कोई भी टीका-टिप्पणी किये बिना मैंने यह कहा है कि सज्जनसिंह[2] से लेकर भीमसिंह[3] तक के तीन दशकों में उच्चतम न्यायालय के निर्णय आत्म-निरीक्षण की अपेक्षा करते हैं, क्योंकि सज्जनसिंह तथा शंकरीप्रसाद[4] के पश्चात् भी उच्चतम न्यायालय ने सामाजिक आर्थिक कल्याणकारी विधायनों की धज्जिया उड़ाई हैं या चम्पाकम्[5], कामेश्वरसिंह[6], आर. सी. कोपर[7], माधवराज सिन्धिया[8], वज्रवाल[9], मेटल कॉरपोरेशन[10], वेला बनर्जी[11], शोलापुर मिल्स[12], प्राग ऑइल मिल्स[13], के मामलों में बाजार मूल्य के आधार पर मुआवजे पर जोर देकर उन्हें निरर्थक सिद्ध कर दिया है।

भारती की प्रेतात्मा

(33) भीमसिंह के निर्णय में कृष्णा अय्यर ने भारत के संविधान के मूलभूत ढांचे के सिद्धान्त को कुरेदा था, जिसे इन्दिरा गांधी बनाम राजनारायण, मिनर्वा मिल्स, वामनराव तथा एम. पी. गुप्ता के निर्णयों में उचित ठहराया गया है, और उन्होंने अपनी विशेष टिप्पणी में यह विचार व्यक्त किया है—

---

1. भारतीय न्याय प्रणाली अनुच्छेद 149 से 154, पृ 62-64 गुमान मल लोढा, भारतीय न्याय प्रणाली—क्रान्ति की आवश्यकता दि. 11-9-82।
2. ए. आई. आर 1965, एस. सी., पृ 845।
3. ए. आई. आर. 1981, एस. सी., पृ. 234।
4. शंकरी प्रसाद बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया, ए. आई. आर. 1951, एस. सी., पृ. 458।
5. स्टेट ऑफ मद्रास बनाम चम्पाकम्, ए. आई. आर. 1951, एस सी., पृ. 226।
6. कामेश्वरसिंह बनाम बिहार राज्य, ए. आई. आर. 1950, पेट, पृ. 392।
7. आर. सी. कोपर बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया, ए.आई.आर. 1970, एस. सी., पृ. 564।
8. माधवराव सिंधिया बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया, ए.आई.आर. 1971, एस.सी., पृ. 530।
9. बजवाल बनाम स्पेशल डिप्टी डायरेक्टर, ए. आई. आर. 1965, एस. सी., पृ. 1017।
10. यूनियन ऑफ इण्डिया बनाम मेटल कारपोरेशन, ए. आई. आर 1967, एस. सी., पृ. 637।
11. स्टेट ऑफ बंगाल (वेस्ट) बनाम बेला बनर्जी ए. आई आर. 1954, एस.सी., पृ. 170।
12. द्वारकादास बनाम शोलापुर मिल्स, ए. आई. आर., 1954, एस. सी., पृ. 119।
13. प्राग आइस एण्ड आयल मिल्स बनाम यूनियन आफ इण्डिया, ए आई. आर., 1978, एस. सी., पृ. 1296।

"भारती की प्रेतात्मा को न्यायालय के प्रांगण में अनवरत रूप से, उन्मुक्त रूप से विचरण करने की अनुमति प्रदान करना, प्रभावी याचिकाओं के रूप में हर प्रकार की असमानता के विरुद्ध उपयोग करना, संसदीय प्रणाली का न्यायिक पक्षाघात है।"

समन्वय और सन्तुलन—चन्द्रचूड़

(34) किन्तु चन्द्रचूड़ के नेतृत्व में बहुमत ने एक आशावादी टिप्पणी और यह विचार व्यक्त किया था "मौलिक अधिकारों और नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के बीच समन्वय तथा सन्तुलन संविधान के मूल ढांचे का आवश्यक लक्षण है।" न्यायाधिपति मैथ्यू ने (उपयुक्त) इन्दिरा गांधी के मामले में इसे "संविधान के ऊपर चमकता सितारा" की संज्ञा दी थी और न्यायाधिपति भगवती ने (मिनर्वा मिल्स के वाद में) यह कहा था कि मूल ढांचा होने के लिये इसकी लौकिक धारणा का वास्तविक स्थान सम्पूर्ण संविधान के भीतर ही होना चाहिये :

कष्टकारी गरीबी किसी "समन्वय या सन्तुलन" को नहीं जानती

(35) न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर ने यह विचार व्यक्त किया था कि यदि किसी विधिपूर्ण सत्र में उच्चतम न्यायालय के सभी न्यायाधीश बैठकर *सामाजिक आर्थिक न्याय* प्रदान करने के लिये संविधान मे संशोधन पेश करने हेतु छः माह तक विचार विमर्श करें और यदि उस शोध-निबन्ध से संवैधानिक आदेश के बीच *समन्वय और सन्तुलन प्रकट होता है तो इससे उनकी प्रतिभा का अपमान ही होगा। कष्टकारी गरीबी किसी "समन्वय या सन्तुलन" को नहीं जानती।*

प्रतिबद्धता—मौलिक अधिकार बनाम नीति निर्देशक सिद्धांत

(36) "न्यायाधीशों की प्रतिबद्धता किसके प्रति ?" नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के प्रति या मौलिक अधिकारों के प्रति ? यह एक दूसरा दिलचस्प वाद-विवाद है जो वर्ष 1981 मे न्यायाधिपति भगवती द्वारा चण्डीगढ़ में उद्‌घाटित गोष्ठी में उभर कर सामने आया था। निःसंदेह इस गोष्ठी का बहुमत मौलिक अधिकारों की तुलनामें नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के प्रति न्यायिक अनुकूलता के पक्ष में राय व्यक्त करने वाला था। प्रारम्भिक भाषण में श्री वी. एस. देशपाण्डे ने निम्नलिखित शब्दों द्वारा गोष्ठी मे भाग लेने वालों का ध्यान आकर्षित किया—

"हम सुख और दुख के मध्य रहते है।" यह लियन युतांग का कहना है। "क्योंकि यही जीवन है। हम एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं कर सकते। संविधान के भाग चार तथा प्रस्तावना में उल्लिखित राज्य के नीति-निर्देशक तत्व एवं मूलभूत अधिकार एक-दूसरे से जुड़े हुए है।"

इसके बाद उन्होंने निम्नलिखित प्रसंग मे सामाजिक न्याय के पक्ष में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया—

"संविधान की पिछले तीन दशको की कार्य प्रणाली का अनुभव एव मुख्यतः भाग–IV मे उल्लेखित नीति-निर्देशक तत्वों का अनुभव यह प्रदर्शित

करता है कि व्यक्तिवादी स्वतन्त्रता का सामाजिक न्याय का प्रतिद्वन्द्वी होना केवल भय-जन्य तर्क है। यदि भय का निवारण किया जा सके तो सामाजिक न्याय निश्चित रूप से विजयश्री प्राप्त करेगा।"

नीति-निर्देशक सिद्धांतों की श्रेष्ठता—कौशल

(37) तत्कालीन संसद सदस्य एवं वरिष्ठ अधिवक्ता तथा भूतपूर्व विधि एवं न्याय मन्त्री श्री जे. एन. कौशल ने अपने स्वागत भाषण में संविधान की प्रस्तावना और नीति-निर्देशक सिद्धान्तों की श्रेष्ठता पर बल दिया और अपने समर्थन में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के विचार उद्धृत किये—

"प्रस्तावना और नीति-निर्देशक सिद्धान्त विशेष रूप से संविधान में शामिल किए गये थे।"

इन आकांक्षाओं को सत्य मूर्त रूप दे देने के लिए "आर्थिक समानता से यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति को सांसारिक उपभोग की वस्तुओं का समान मात्रा में स्वामित्व प्राप्त हो। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास रहने के लिए समुचित निवास स्थान, खाने के लिए पर्याप्त एवं सन्तुलित भोजन एवं तन ढकने के लिए वस्त्र होने चाहिये। इसके मायने यह भी है कि वर्तमान में विद्यमान क्रूर असमानता को भी दूर किया जावे।"

इसमें किसी भी प्रकार का कोई सन्देह नहीं हो सकता कि संविधान निर्माताओं का आशय यह था कि मौलिक अधिकारों का प्रभाव ऐसे निर्बाध क्रम से चलनेवाले आर्थिक ढांचे के भीतर होना चाहिए जिसकी कल्पना निर्देशक सिद्धान्तों द्वारा की गई है क्योंकि तभी मौलिक अधिकार सभी के द्वारा भोग्य होंगे और मौलिक अधिकारों तथा निर्देशक सिद्धान्तों के बीच उचित सन्तुलन तथा समन्वय सुनिश्चित होगा।"

नीति-निर्देशक सिद्धांत अर्धांगिनी नहीं हैं—पारस दीवान

प्रो. पारस दीवान, अध्यक्ष विधि विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ ने मिनर्वा मिल्स के बहुमतवाले निर्णय में, जहाँ मौलिक अधिकारों को "अन्तःप्रेरित" "महत्त्वान्तरणीय" तथा "मौलिक" माना है, भय की दलीलों का वर्णन किया था, और इसके बाद अपनी भाषा में निम्नलिखित टीका-टिप्पणी की थी—

"विद्वान न्यायाधीश के मत में जब कभी भी मूल अधिकारों व नीति-निर्देशक सिद्धान्तों में मेल या समन्वय नहीं रह सकता, मूल अधिकार प्रभावी रहेंगे। यह बात इस कहावत की तरह है कि पत्नी अपने पति की अर्धांगिनी है, किन्तु पति परमेश्वर है और जिसके पांवों को नीति-निर्देशक सिद्धान्तोंवाली पत्नी को सदैव स्पर्श करना चाहिये। आखिरकार वह अर्द्धांगिनी है किन्तु मूल अधिकार अर्थात् पति अर्द्धांगना नहीं है।"

मिनर्वा मिल्स का निर्णय सामाजिक-आर्थिक क्रांति के मार्ग को अवरुद्ध करता है

इसके पश्चात् श्री दीवान ने विधि-वेत्ताओं को विश्लेषणात्मक शैली के विरुद्ध अपना मत प्रकट किया और कहा कि भारतीय विधिवेत्ता और न्यायाधीशगण इस विश्लेषणात्मक शैली के अप्रचलित सिद्धान्तों के बारे में यह लिखते रहते हैं कि ऐसे कोई कर्त्तव्य नही हो सकते जिनसे जुड़े हुए अधिकार न हों और उनकी इस प्रकार उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। इसके बाद उन्होंने मिनर्वा मिल्स के बारे में कई प्रश्न पूछे, जिनमें से एक निम्नलिखित है —

"क्या मूल अधिकारों को पवित्रता, अनातिक्रमणीयता व अपरिवर्तनीयता से आवृत्त कर देना जन-समूह को उनके अधिकारों व सामाजिक न्याय से वंचित करना नहीं है व इस प्रकार भारतीय संविधान के मुख्य उद्देश्य सामाजिक-आर्थिक क्रान्ति लाने से सरकार को छद्म रूप में प्रभावशाली ढंग से रोकना नहीं है ?

यदि हमारी अधूरी सामाजिक व आर्थिक क्रान्ति को कानूनी दांवपेच के दलदल में नहीं फंसाना है तो उन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर ढूंढना अनिवार्य है।"

भाग III–IV भारत के संविधान का हृदय—देशपाण्डे

(38) अपने मुख्य भाषण में श्री देशपाण्डे ने सामाजिक क्रान्ति के प्रति प्रतिबद्धता के बारे में यह बात तब कही थी जबकि उन्होंने निम्नलिखित शब्दों में ग्रेनविल ऑस्टीन का हवाला दिया था—

"सामाजिक क्रान्ति के प्रति प्रतिबद्धता का मर्म भाग 3 व 4 में निहित है। यह संविधान का अन्त:करण है। इस प्रकार केवल भाग 4 ही नहीं भाग 3 भी संविधान का मर्म भाग है।"

विधि सेना लोकमत का अनुसरण करे

तत्पश्चात् उन्होंने यह अभिमत व्यक्त किया कि न्यायिक अभिमत को लोकमत की विचारधारा के अनुरूप रूपायित किया जाना चाहिए। उन्होंने इस बारे में निम्नलिखित विचार व्यक्त किये :—

"यह जनता का मतैक्य ही है जो आखिरकार न्यायिक अभिमतों के रूप में प्रतिबिम्बित हुआ है। इसलिए जनता की सर्वसम्मत राय के अनुसार संविधान में अनिवार्य रूप से परिवर्तन आयेगा। अभी भी यह देखना है कि सर्वसम्मति लोकतन्त्र व समाजवाद के पक्ष में है अथवा समाजवाद किन्हीं जनतान्त्रिक अधिकारों को ग्रस लेता है। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि मिनर्वा मिल्स के मामले में दिये गये मत केवल सीढ़ियां ही हैं, पड़ाव नहीं। वे संवैधानिक विचारधारा के विकास की एक अवस्था है। यह विकास आगे बढ़ेगा। उसका स्वरूप जनमत की आम सहमति पर निर्भर करेगा।"

कैलासम्—निर्देशक-सिद्धांतों के प्रति राज्य की प्रतिबद्धता का आदर

(39) उच्चतम न्यायालय के सेवा-निवृत्त न्यायाधिपति पी. एस. कैलासम् ने अपने लेख "Whither Directive Principles" में यह राय व्यक्त की थी कि सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता नही की जा सकती और अन्तिम रूप से निम्नलिखित चेतावनी दी :—

"इस प्रकार यदि अर्थ लगाया जाये तो सामाजिक, आर्थिक व राजनैनिक न्याय दिलाना सरकार का कोई अधिकार नही है बल्कि दायित्व है। अध्याय तीन में गारन्टी सुदा अधिकार अर्थात् मलभूत अधिकार भी यह ध्यान में रखकर सुरक्षित किये गये हैं कि निर्देशक सिद्धांतों, जिन्हें जनहित मे तथा उचित प्रबन्ध के रूप मे मान्यता दी गई है, को क्रियान्वित करने में भी राज्य का हित है।"

जनता के कार्य सरकारी प्रविरति की राजनीति पर दुःख

(40) उच्च न्यायालय हैदराबाद के न्यायाधीश श्री ए. सीताराम रेड्डी, ने *निर्देशक सिद्धान्तों के प्रति नया दृष्टिकोण रखा और सैद्धान्तिक सरचना में सामाजिक न्याय के प्रति* 'न्यायाधीशों की प्रतिबद्धता" की वकालत की। श्री रेड्डी ने सविधान एक निर्माता को उद्धृत करते हुए निम्नलिखित राय व्यक्त की :—

"यह सभी स्वीकार करते हैं कि उस समय की लोकतान्त्रिक सरकार न केवल मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता व नागरिक की सम्पत्ति की रक्षा करती है अपितु समूचे समाज के कल्याण को प्रोत्साहित करती है। हम हस्तक्षेप-रहित राजनीति तथा उन्नीसवी सदी की परम्परागत उदारवादिता से दूर निकल चुके है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता को आधुनिक कल्याणकारी राज्य के कार्यों से अलग नही किया जा सकता, *बल्कि उनके साथ ही जोड़ना होगा। हम इस तथ्य की उपेक्षा नही कर* सकते कि राज्य में समाज के विभिन्न स्तरों पर स्वामित्व व संविदात्मक अधिकार की परिकल्पना के बारे में, पूंजी तथा श्रमिक एवं सुविधा प्राप्त तथा सुविधारहित वर्गों के बीच के सम्बन्धों के सन्दर्भ में समानता शब्द में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है।"

हमारा सम्पूर्ण राष्ट्रीय विकास सामाजिक न्याय पर टिका है और वह अपनी बारी से न्यायिक न्याय तथा विधायित न्याय पर आश्रित होगा—जलालुद्दीन—प्रभुसत्ता जनता में

(41) जम्मू एवं काश्मीर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति (सेवा-निवृत्त) मियां जलालुद्दीन ने भी सामाजिक न्याय के लिए निर्देशक सिद्धान्तो के प्रति प्रतिबद्धता के लिए विकल्प दिया और निम्नलिखित विचार व्यक्त किए :—

"क्या संविधान में गारंटी सुदा मूलभूत अधिकार वैयक्तिक स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिए ही नही है, जबकि निर्देशक सिद्धान्तों का क्षेत्र व उद्देश्य अधिक

विस्तृत है, क्योंकि इनका लक्ष्य आर्थिक विकास है व सामाजिक न्याय को प्रोत्साहन देना है ?

फिर भी संविधान ऐसा कोई दैविक दस्तावेज नहीं है जिसमें कुछ भी बढ़ाया या घटाया न जा सके। संविधान एक राजनैतिक व सामाजिक दस्तावेज है। इसे देश की जनता की समझ के अनुरूप व राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुकूल होना होगा। जनता अपने लक्ष्यों की अन्तिम निर्णायक है। वास्तविक प्रभुसत्ता उसमें निहित है। अतः यह विवाद उन्हें सौंपा जा सकता है।"

चन्द्रचूड़ और भगवती

नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के प्रति प्रतिबद्ध—आनन्द प्रकाश

(42) भारतीय विधि-संस्थान तथा उच्चतम न्यायालय विधिज्ञ संघ, नई-दिल्ली के उपाध्यक्ष प्रो. आनन्दप्रकाश ने यह राय व्यक्त की कि इस वाद-विवाद की अधिक आवश्यकता नहीं है और यह हमारी राजनीति और हमारे संविधान की प्रभुसत्ता के लिए खतरनाक है, क्योंकि उनके अनुसार, चन्द्रचूड़ तथा भगवती दोनों ही न्यायाधिपतियों ने नीतिनिर्देशक सिद्धान्तो के प्रति प्रतिबद्धता प्रदर्शित की है।

न्यायाधिपति चन्द्रचूड़—जुड़वा सूत्र स्वयं उनके ही शब्दों में—

"मुझे जो इस लेख में कहना है उसे "मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ (ए. आई. आर. 1980 एस. सी.-1789) के निर्णय में प्रधान न्यायाधीश श्री चन्द्रचूड़ द्वारा जो अभिव्यक्त किया गया है उससे अधिक अच्छे तरीके से प्रस्तुत नही किया जा सकता। भाग 3 व 4 मिलकर सामाजिक क्रान्ति के प्रति वचनबद्धता के सार भाग का निर्माण करते हैं तथा वे दोनों ही संविधान का अन्तःकरण हैं। इस नीतिवचन के अभिप्राय को भारतीय संविधान की योजना की गहन समझ मे देखा जा सकता है। ग्रानविले आस्टिन की यह टिप्पणी वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करती है कि भाग 3 व 4 रथ के दो पहियों की भांति हैं। एक का महत्त्व दूसरे से कम नहीं है। आप एक को नष्ट कर दीजिये दूसरा अपनी क्षमता खो देगा। सामाजिक क्रान्ति, जिसे संविधान के दिव्यदृष्टा निर्माताओं ने एक आदर्श स्वरूप के रूप मे अपने सामने रखा, को प्राप्त करने के लिये वे जुड़वां सूत्र की तरह हैं। दूसरे शब्दों में भारतीय संविधान भाग 3 व 4 के मध्य संतुलन की आधारशिला पर रखा हुआ है। एक को दूसरे पर पूर्ण प्राथमिकता देना संविधान के समन्वय में विघ्न डालना है। मूल अधिकार व निर्देशक सिद्धान्त का यह मेल व संतुलन संविधान के मूल ढांचे का आवश्यक अंग है। फिर भी उससे न्यायाधिपति भगवती की टिप्पणी, जो इसी मामले मे राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों पर बल देते हुए की गई थी, के प्रभाव को नकारता नहीं है।" न्यायाधिपति भगवती के निम्नलिखित शब्द दोहराने योग्य हैं—

"न्यायाधीश भगवती–सामाजिक-आर्थिक न्याय–

"यथास्थिति के संवेदनशील रक्षक" लेख में इस बात की चिन्ता व्यक्त की है कि उच्चतम न्यायालय ने पाँचवें दशक के मध्य में राजनैतिक प्रक्रिया द्वारा फहराये गये समाजवाद के झण्डे का कभी अनुसरण नहीं किया। उनके अनुसार यद्यपि हमारी नियति के दस्तावेज को संविधान की प्रस्तावना "समाजवाद" से प्रकाश की किरणें प्राप्त होती हैं: तथापि प्राग, बामनराव, नन्दलाल और मिनर्वा मिल्स के निर्णय यह बतलाते हैं कि हमारी न्यायिक सेना अब तक भी समाजवाद से दूर भागती रही है। उनकी यह धारणा है कि सत्ता और आर्थिक ढाचे को प्रभावित करनेवाली विचारधारा के प्रश्नों पर न्यायालय ने राजनैतिक झण्डे का अनुसरण नहीं किया है।

न्यायाधीशों की प्रतिबद्धता बनाम रणनीति—एम. घोस

(47) मैं मोहम्मद घोस के निम्नलिखित निष्कर्ष को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता, चाहे वह स्वीकार्य हो या नहीं, जिसमें उन्होंने स्पष्ट बात कही है कि यह निर्णय करना मेरा काम नहीं है क्योंकि मैं अपने स्वयं के मामले में निर्णायक नहीं हो सकता।

"न्यायाधीशो के लिए राजनैतिक पताका सौभग्यवश दो भिन्न रंगों की होती है, एक कौशल के लिए व दूसरी प्रतिबद्धता के लिये। कौशल निर्बल के प्रति तथा प्रतिबद्धता बलवान के प्रति। पाँचवें दशक में न्यायिक प्रक्रिया ने संशोधन सम्बन्धी मामलों में राजनैतिक कौशल को व साम्पत्तिक अधिकारों के मामले में प्रतिबद्धता को प्रतिध्वनित किया। छठे दशक के उत्तरार्द्ध के बाद में इसने राजनैतिक प्रक्रिया की प्रतिबद्धता का अनुसरण किया, अतः गोलकनाथ व मेटल्स कॉरपोरेशन के निर्णय हुए। सातवें दशक में इसने "गरीबी हटाओ" के कारण "भारती" वाले मामले मे नये कौशल का विकास किया। लेकिन हाल के मामले फिर भी प्रदर्शित करते हैं कि न्यायालय ने अभी तक समाजवाद को अंगीकार नहीं किया है। ये सम्भवतया उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जबकि राजनैतिक प्रक्रिया सचमुच में स्वयं को समाजवाद की दिशा मे प्रतिबद्ध कर लेगी।"

मूलभूत ढांचे को समाप्त करो—भसीन

(48) ललित भसीन कहते हैं कि देश के राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विकास की गति के लिए अन्य संस्थाओं की भांति न्यायपालिका को भी भागीदार बनाया जाना चाहिए। श्री भसीन के अनुसार, न्यायालय को संविधान की प्रक्रिया के अनुसार विधि मान्य रूप से किये गये संवैधानिक संशोधनों को इस आधार पर विखण्डित करने का अधिकार नहीं होना चाहिए कि वे "संविधान के मूलभूत ढांचे का अतिक्रमण करते हैं—इसके अन-अन्वेपित विचारों सहित अस्पष्ट, अपरिभाषित एवं गोलमोल सिद्धान्त के द्वारा कई तरह [illegible] अटकाये गये हैं। वे समझते हैं कि ऐसी शक्तियों का अनुचित रूप [illegible] राष्ट्रीय हितों के लिए हानिकारक है।

अय्यर रूजवेल्ट को दोहराते हैं

(49) श्री भसीन ने थियोडॉर रूजवेल्ट का उदाहरण दिया जिसने यह बात कही थी कि समाज की बुद्धिमत्तापूर्ण राय के बारे में न्यायालय के बनिस्पत जनता अपेक्षाकृत अच्छी निर्णायक होती है और न्यायालयों को जनता के राजनैतिक दर्शन को उलट देने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिये। श्री भसीन, श्री एन. ए. पालकीवाला के विचारों का उत्तर दे रहे थे। श्री पालकीवाला की यह राय थी कि यदि विधायन सम्बन्धी कार्यवाही को न्यायिक समीक्षा के अधीन नहीं रखा गया तो सरकार निरंकुश तथा निर्दयी कानून पारित कर लेगी। शायद इसी संदर्भ में कृष्णा अय्यर ने विरोधाभास से रूजवेल्ट को सर्वप्रथम समाजवादी और दूसरे नम्बर पर पूंजीवादी बतलाया था, जबकि उन्होंने यह बात कही थी कि सामाजिक न्याय संकट में है और आश्चर्य यह है कि इसे न्यायालयों के भीतर से ही खतरा है।

प्रश्नावली पर आपत्ति की गई

(50) दसवें विधि आयोग की प्रश्नावली ने भी प्रतिबद्ध न्यायपालिका के विवाद को भड़का दिया है। उच्चतम न्यायालय के स्थान पर संवैधानिक न्यायालय रखे जाने और खंडपीठों के बदले में सम्पूर्ण न्यायपालिका की बैठक के प्रश्न पर कई लोगों की आंखें लगी हुई हैं। पृष्ठभूमिवाली टिप्पणियों में वर्णित पश्चिमी जर्मनी का पूर्वोदाहरण दृष्टान्त के रूप में दिया गया है। प्रश्न सं. 7 न्यायधीशों की राजनैतिक पृष्ठभूमि की अपेक्षा के बारे में है। पृष्ठभूमिवाली टिप्पणी में अमेरिका के मर्लवारेन का उदाहरण और इटली की प्रथा का उल्लेख है, जहां एक-तिहाई न्यायाधीश विधायिका द्वारा, एक-तिहाई राष्ट्राध्यक्ष द्वारा और एक-तिहाई न्यायपालिका द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। आठवें प्रश्न में, जो कि निम्न आर्थिक स्थिति के लोगों की पहुंच न होने या न्यायाधीशत्व की विनम्र उत्पत्ति के बारे में है, पृष्ठभूमिवाली टिप्पणी में यह बतलाया गया है कि इंगलैंड की अधिकांश न्यायपालिकाएं आधुनिक सामाजिक प्रवृत्तियों और जन आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने में विफल रही हैं। किसी जाति या समूह विशेष के वकीलों की ही न्यायाधीश पद के लिए सिफारिश करने के लिए भारतीय मुख्य न्यायाधिपतियों की आलोचना की गई है।

न्यायाधीशों की सम्पूर्ण बैठक

(51) अति अल्पमतों और बहुमतों से बचने के लिए (जैसा कि गोलखनाथ के बाद में हुआ था) मैं उच्चतम न्यायालय में महत्वपूर्ण संवैधानिक विषयों पर, सभी न्यायाधीशों की बैठक के विचार को अपेक्षाकृत अधिक पसन्द करता हूं। यदि यह प्रक्रिया अपनाई जाती तो गोलखनाथ के मामले में शंकरीप्रसाद एवं सज्जनसिंह, भारती, मिनर्वा मिल्स, वामनराव तथा भीमसिंह के निर्णयों का श्रम निष्फल सिद्ध नहीं होता। उच्चतम न्यायालय को संवैधानिक न्यायालय के रूप में रखने का

प्रस्ताव केवल तभी एक स्वागत योग्य कदम है जबकि उसकी क्रियान्विति वास्तविक रूप से और सद्भावनापूर्वक की जाये।

न्यायाधीशों की राजनैतिक पृष्ठभूमि

(52) भारतीय परिस्थितियों में न्यायाधीशों की राजनैतिक पृष्ठभूमि पर जोर देनेवाली बात की सराहना नहीं की जा सकती, जबकि चीन में एक अच्छा मार्क्सवादी होना न्यायाधीश की आधारभूत योग्यता है। भारत में न तो इसे योग्यता माना जाना चाहिए और न ही अयोग्यता। एक न्यायाधीश को न्याय करते समय अपने पिछले राजनैतिक दर्शन और अपराधों को भुला देना चाहिए। राजनैतिक पृष्ठभूमि पर किसी का भी जोर देना "सुविधाजनक न्यायाधीश", 'मूल्यबद्ध न्यायालय' या 'प्रतिबद्ध न्यायपालिका' की धारणा को आमन्त्रित करना होगा।

(53) यह सही है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति में कमजोर वर्गों के व्यक्ति का होना कोई अयोग्यता नहीं होनी चाहिए और विक्टोरिया शासन में पब्लिक स्कूल में शिक्षित व्यक्तियों को श्रेष्ठ मानने की मैकाले की प्रवृत्ति को समाप्त किया जाना चाहिए। आक्सफोर्ड इंगलिश का लहजा या उच्चारण की बनावटी चकाचौंध की अपेक्षा हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं के ज्ञान को महत्त्व दिया जाना चाहिए।

न्यायाधीश न तो खुदा है और न हाकिम

(54) वास्तविक भावना तो यह होनी चाहिए कि 15 अगस्त, 1947 से हम न्यायाधीशगण न तो खुदा रहे हैं और न ही हाकिम और अब हम न्याय-मंदिरों के पुजारी, उस जनता के सेवक हैं जिसने हमें संविधान दिया है और जिसकी हमारे शपथ-ग्रहण द्वारा रक्षा करने की अपेक्षा की जाती है।

(55) श्री सुरेन्द्रकुमार सचदेवा ने न्यायाधीशों के निर्णय-संबंधी अध्यायों की समीक्षा करने के पश्चात् निम्नलिखित राय व्यक्त की है :—

"ऐसी लोकतान्त्रिक प्रणाली जिसमें संविधान लिखित हो और मूल अधिकार तथा संघीय व्यवस्था हो वहां न्यायपालिका की स्वतन्त्रता का महत्त्व सर्वोपरि हो जाता है। जब लोकतन्त्र को सुरक्षित रखने तथा नागरिकों को उनके मूलभूत अधिकार दिलाने सम्बन्धी अथवा केन्द्र व राज्य के मध्य उत्पन्न होने, नये कानून बनाने एवं संविधान में संशोधन करने अथवा प्रशासनिक कार्य से नागरिकों के अधिकारों पर अतिक्रमण होने से सम्बन्धित मसले उठते हैं तब संविधान की व्याख्या करने का न्यायालय का पवित्र दायित्व है। भारतीय संविधान में न्यायपालिका को दी गई इस अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखने पर 30 दिसम्बर, 1981 को सर्वोच्च न्यायालय के सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ द्वारा न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के मामले में सुनाया गया निर्णय तथा बाद में विधि-आयोग द्वारा जारी विस्तृत प्रश्नावली अशुभ हो जाती है। इनका प्रभाव भारतीय राजनैतिक पद्धति पर दूरगामी हो सकता है।

एकजुट होकर कार्य करने की अपेक्षा करती है, हम तुच्छ मामलों के लिए न्यायालयों में अन्तहीन लड़ाई लड़ने का सुख नहीं भोग सकते। हमारे संविधान के निर्माताओं ने राज्य के हर अंग विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका को एक भूमिका सौंपी है। इन तीनों को परस्पर सहयोग, समन्वय, समझ व बुद्धिमत्ता से कार्य करना चाहिए। इनका भारतीय जनता के प्रति बड़ा दायित्व व ऋण है। वे जनता व देश की सेवा बुद्धिमत्ता व दूरदर्शिता से करें। सभी एकदल, एक व्यक्ति की भांति कार्य करें तथा भारत को शक्ति व विजय की ओर ले जायें।"

अमरीका राजनीतिकरण

(56) आर्कीबाल्ड कोक्स ने "संविधानवाद और राजनीतिकरण" में अमरीकी सरकार में उच्चतम न्यायालय की भूमिका की चर्चा की और निम्नलिखित राय व्यक्त की :—

"लेकिन न्यायाधीश की भूमिका के सम्बन्ध में नैतिक दृष्टिकोण के स्थान पर चालबाजी का कोई दृष्टिकोण रखने का असली अवगुण और भी गहरा है। न्यायपालिका की शक्ति का मर्म समदर्शिता व स्वतन्त्रता तथा न्यायाधीश का किसी भी प्रकार की प्रतिबद्धता व स्वार्थ से परे रहता है। मैं केवल स्थूल दायित्वों व महत्त्वाकांक्षा से मुक्त होने की बात नहीं कर रहा हूं, अपितु इस प्रकार के मानस की बात कर रहा हूं जो जहाँ तक व्यावहारिक तौर पर सम्भव है, एक वर्ग विशेष व दलीय निष्ठा से तथा अन्तर्निहित प्रतिबद्धता के बन्धनों से मुक्त हो। न्यायालय को इससे अधिक हानि और किसी से नहीं हो सकती कि न्याय के लिए कार्यपालिका, विधायिका अथवा निजी संस्थानों के सदस्यों से राजनैतिक अथवा व्यावसायिक सम्बन्ध बनाये रखे जायें। मुवक्किलों का हित-साधन उदारतावादी समाचारपत्रों वाले व्यक्तियों, निर्धनों, प्रतिवादी राजनैतिक दलों, अमेरिका सिविल लिबर्टी यूनियन व आर्थिक अवसरों की तलाश करने वाले वकीलों के मामलों से जुड़े रहने में वैसा नहीं है जैसा कि संवैधानिक कानून में भली प्रकार से व्यक्त समाज के दीर्घ-क्षेत्रीय आधारभूत मूल्यों की पूर्ति से जुड़े रहने में है। मुवक्किलों की हित-साधना में वाद की गुणवत्ता के अलावा एक प्रतिबद्धता स्वत: ही निहित है। मुवक्किलों के हित तथा दीर्घक्षेत्रीय सामाजिक मूल्य सदैव परस्पर नहीं टकराते। न कोई यह कहकर होम्स, ब्रेंडिस, ब्लेक, वारेन या हार्लेन के मत के अनुकूल हो जाता है कि उसने दलीय हितों की पूर्ति की है जिससे न्यायालय की स्थिति सुदृढ हुई है।

इसी तरह से यद्यपि एक नियुक्त होने वाले का सामान्य दृष्टिकोण पूर्वभासित हो सकता है तथा मान्यता से बन्धा कोई भी राष्ट्रपति इसे ध्यान में रख सकता है और न्यायालय भी इस पर इस अर्थ में विचार कर सकता है कि नियुक्त होने वाले व्यक्ति एक विशिष्ट प्रकार की मान्यताओं से प्रतिबद्ध है और सभी विभिन्न विवादों पर पूर्व अनुमानित तरीके से अपना मत व्यक्त करेंगे। इससे विधि सम्मतता (वैधता) के

(63) जबकि लाल किले पर एक ही झण्डा फहराया जाता रहा है तो क्या किसी न्यायाधीश को कोचीन से कलकत्ता या दिल्ली से मद्रास स्थानान्तरित हो जाने पर अपने निर्णयों को बदल देना चाहिए ?

(64) सत्तारूढ़ राजनैतिक व्यक्तियों के बदल जाने के साथ ही क्या किसी न्यायाधीश को अपने एण्टीना को उसी के अनुसार व्यवस्थित कर लेना चाहिए। उसे संविधान का समर्थन करना चाहिए या मन्त्रिमण्डल के विनिश्चयों का ?

(65) क्या किसी न्यायाधीश को फौजदारी अपराधों के अभियुक्त को दोषी या दोषमुक्त करते समय अभियुक्त और परिवादी के राजनैतिक झण्डे को ध्यान में रखना चाहिए ? स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि क्या रंगा और बिल्ला दोषमुक्ति का दावा करते हैं, यदि वे कलकत्ता में लाल झण्डा या मद्रास में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम का झण्डा या दिल्ली में जहां उन्हें फांसी दी गई है, तिरंगा झण्डा धारण कर लेते हैं ?

राजनीतिक संबद्धता-असंगत

(66) 1 मई, 1978 को ही न्यायाधीश के रूप में मेरे उत्कर्ष की प्रारम्भिक कालावधि के भीतर जनता शासन के दौरान 7 जून, 1978 को दिए गये मेरे स्वयं के एक निर्णय को मैं दोहराना चाहूंगा। यह अवसर एक हत्या के मामले में, अन्वेषण के प्रक्रम पर जमानत हेतु आवेदन निर्णय का था। अभियुक्तों को कांग्रेस (आई) का होना अभिकथित किया गया था और अभियोजन पक्ष का मामला यह था कि इन्होंने राजस्थान के जिला नागौर में रोल गांव के पंचायत निर्वाचनों में जनता पार्टी के कार्यकर्त्ता के छुरा भौंकने के लिए दुष्प्रेरित किया और इसमें सक्रिय रूप से भाग लिया।

सुमेरसिंह का मामला-आंख खोलनेवाला

(67) आरोप यह था कि जब मुख्य अभियुक्त रामेश्वर ने मृतक के छुरा घोंपा तब तीन अभियुक्तों-सुमेरसिंह, त्रिलोकदास और मुनीर खां ने मृतक को उस समय पकड़ रखा था। इसकी पुष्टि मृतक रतनदास की मृत्यु के समय दिये गये बयान से हुई, किन्तु इसका खण्डन किसी अन्य के बयान से नहीं वरन् मृतक की स्वयं पत्नी श्रीमती आइचुकी के बयान द्वारा हुआ, जिसने हत्या में उनके सम्मिलित होने की सम्भावना से ही इन्कार कर दिया, क्योंकि वे तो कांग्रेस के निर्वाचित संरपंच के जुलूस में भाग ले रहे थे और अभियुक्त के छुरा घोंप दिये जाने के पश्चात् आये थे।

प्रतिबद्धता विधि के प्रति या राजनीति के प्रति

(68) क्या मुझे संविधान और विधि की मर्यादा बनाये रखने के लिए बिना भय और पक्षपात के 1 मई, 1978 को ली गई शपथ के पश्चात् मामलों के गुणावगुणों पर विचार करना चाहिए था या राजनीतिक दलों के झण्डे पर ?

(69) जमानत (उपयुक्त) मंजूर करते हुए, मैंने निम्नलिखित टिप्पणी की—

"मृत्युकालिक कथन में मृतक का कहना है कि वह जनतापार्टी का है तथा अभियुक्त कांग्रेस पार्टी के हैं, जिसका कि सरपंच चुना गया है तथा जिसका जुलूस ले जाया जा रहा था और इस चुनावी झगड़े के कारण मृतक की हत्या हुई क्योंकि इसने सरपंच का समर्थन नहीं किया था। मैं राजनैतिक विवाद से प्रभावित या विचलित नहीं होऊंगा क्योंकि हत्या के प्रयोजन को बताने के अलावा और यह सब इस न्यायालय के लिये संगत नही है।

न्यायालय को राजनैतिक इतिहास, क्षेत्रीय पृष्ठभूमि अथवा किसी मामले विशेष के साम्प्रदायिक स्वरूप व उसमे लिप्त व्यक्तियों से परे उठकर निर्लिप्त तथा वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण ही अपनाना है। मैं चुनाव विवाद को वहीं पर छोड़ता हूं तथा इस मामले में मैं अन्य कहीं पर इसे उद्धत नहीं करूंगा।"

चिकमंगलूर कार्यवाही के स्थगन का मामला

(70) राष्ट्रीय महत्त्व के एक और मामले पर तब विचार किया गया, जब एक नागरिक इस दलील के साथ उपस्थित हुआ कि श्रीमती गांधी को चिकमंगलूर का चुनाव लड़ने से रोका जाये। हमने इस प्रार्थना को संविधान के अनुच्छेद 329 के आधार पर नामंजूर कर दिया। मेरी खण्डपीठ में इस प्रकार टिप्पणी की गई—

"आवेदक स्वयं को भूतपूर्व लोक-सेवक कहता है तथा उसने अपने सेवा-कार्य के उतार-चढ़ाव के इतिहास को बताया है, जिसका अन्त पुलिस उपनिरीक्षक के रूप में उसकी सेवा से पदच्युति के रूप में हुआ तथा श्री शर्मा के अनुसार इस न्यायालय मे विचाराधीन विशेष अपील (संख्या 9/77) में वह आदेश चुनौती का विषय है। इसकी मुख्य शिकायत यह है कि उसकी पदच्युति के कारण विधि महाविद्यालय मे एल.एल.एम. कक्षा से उसे प्रवेश देने से इन्कार कर दिया गया तथा अधिवक्ता के लिये पंजीयन का आवेदन भी बार कौंसिल द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया। प्रत्यर्थी संख्या-1 श्रीमती इन्दिरा गांधी, जो आवेदक के अनुसार आपातकालीन स्थिति के समय किये गये गम्भीर अत्याचारों की अपराधी हैं और जिसका परिणाम यह भी हो सकता कि उन पर मुकदमा चले और उन पर लगाये गये दोष सिद्ध भी हो जायें, तो उनको जन प्रतिनिधि अधिनियम के प्रावधानों के अधीन चुनाव लड़ने की अनुमति नहीं दी जाती है।

इस प्रकार जनप्रतिनिधि कानून, एडवोकेट एक्ट, राजस्थान सिविल सेवा नियन्त्रण, अपील नियम, भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम व पुलिस अधिनियम के अनेक प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करते है।

इस सम्बन्ध मे मैंने अपना यह मत प्रस्तुत किया—

"यह अंकित करना असंगत नही होगा कि अनुच्छेद 329 मे, चुनाव-प्रक्रिया के दौरान हस्तक्षेप करना पूर्णत: निषिद्ध है क्योंकि चुनाव का परिणाम घोषित होने के बाद ही विधि से प्रावधित रीति से तथा प्राधिकारियों के समक्ष ही चुनाव याचिका द्वारा चुनौती दी जा सकती है। इसलिए भी हम श्रीमती गांधी को संसद की सदस्यता के लिये चिकमंगलूर से चुनाव लड़ने से रोकने हेतु निषेधाज्ञा पारित करने मे सक्षम नहीं हैं जैसा कि वर्तमान मामले में प्रार्थी ने निवेदन किया है।

दयाल द्वारा इन्दिरा गांधी को जेल से छोड़ा जाना

(71) यदि न्यायपालिका से राजनैतिक झण्डे का अनुसरण करने की अपेक्षा की जाती है तो अपर मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट दयाल के लिये दण्ड-प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन रिमांड नामंजूर करके श्रीमती इन्दिरा गांधी को छोड़ देना क्या सम्भव हो सकता था, जिसने कि संसार को हिला दिया। तत्कालीन सत्तारूढ़ दल के हुक्मरानों को आघात पहुँचाया और अन्त मे ऐतिहासिक घटना के रूप में जनता पार्टी को खण्डित कर दिया।

सिन्हा का निर्वाचन-सम्बन्धी निर्णय

(72) यदि प्रतिबद्ध न्यायपालिका की धारणा का अर्थ राजनैतिक सत्ता के इशारों पर नाचना ही होता तो आज संसार के समक्ष प्रधानमन्त्री को अपदस्थ करने वाला न्याय मूर्ति जगमोहनलाल सिन्हा का निर्णय नही होता।

लेण्टिन का अंतुले को निकालना

(73) यदि प्रतिबंद्धता का अर्थ सत्तारूढ़ व्यक्ति के प्रति होता तो हाल ही में अन्तुले, जिन्होंने यह भविष्यवाणी की थी कि देश में अध्यक्षात्मक सरकार बहुत ही सन्निकट है, को बाहर निकालने का लेण्टिन का निर्णय कभी प्रकाश मे नहीं आता, जिसकी पुष्टि बम्बई उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा की गई थी।

विचलित करने, आघात पहुंचाने और नीचे गिराने की महत्त्वपूर्ण घटनाएं

(74) न्यायिक निर्णयों के उपर्युक्त तीन युगान्तरकारी त्रिकोण, भारतीय न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की महत्त्वपूर्ण घटनाओं ने सरकार को चकित कर दिया है, विधि सम्मत शासन पर व्यक्ति की सर्वोच्चता को नीचे गिराया है और विभिन्न अवसरों पर विभिन्न दलों, विचारधाराओं वाले शीर्षस्थ सत्ताधारियों को आघात पहुंचाया है।

निक्सन का निष्कासन

(75) सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यद्यपि न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ राजनैतिक दृष्टिकोण से की जाती हैं, तथापि वाटरगेट कांड में उच्चतम न्यायालय के टेपों पर आधारित निर्णय ने राष्ट्रपति निक्सन के लिए अन्तिम आहुति का काम किया।

क्या हमें "सुविधाजनक न्यायाधीश" रखने चाहिए ?

(76) राजनैतिक झण्डे के प्रति "प्रतिबद्धता" की उपशाखाएं या 'प्रतिबद्ध

न्यायपालिका" या "मूल्यबद्ध न्यायालय" या "सुविधाजनक न्यायाधीश" यह प्रश्न प्रस्तुत करते है कि क्या भारत में विधिक सुधार या न्यायिक सुधार के रूप मे अपनाए जाने के लिए यह उचित सिद्धान्त है।

प्रतिबद्ध न्यायपालिका को अनुमोदन प्राप्त नहीं

(77) अहमदाबाद मे न्यायाधीशों, वकीलों और विधिवेत्ताओं की एक गोष्ठी 17, 18 तथा 19 अक्टूबर, 1980 को हुई, जिसमे "न्यायिक प्रतिबद्धता" के प्रश्न पर निम्नलिखित राय व्यक्त की गई—

संगोष्ठी ने इस तथ्य की भर्त्सना की कि विगत में, "प्रतिबद्ध न्यायपालिका" के विचार या आशय, मात्र संविधान की प्रतिबद्धता के लिये नही अपितु आज के सत्तारूढ़ दल की नीतियों व कार्यक्रमों के लिये प्रतिबद्धता के अर्थ में लिया गया। इस प्रकार प्रयोग करने पर यह विचार न केवल न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के लिये अपितु संविधान की बुनियाद के लिये भी अनिष्टकारी व विध्वंसक बन जाता है। न्यायाधीशो से न केवल नागरिक स्वतन्त्रता गहरी दिलचस्पी रखने की अपेक्षा की जाती है अपितु साथ ही भारत के लाखों दलित व निर्धन नागरिको की दशाओं मे सुधार करने के प्रति निरन्तर उत्साह रखने की भी अपेक्षा की जाती है। इन्हे हमारी जनता व उसके कमजोर वर्ग के लिये अन्याय व शोषण का स्रोत बनने से रोकने हेतु विधिक व न्यायिक व्यवस्था में सुधार सुनिश्चित करने होगे। न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिये ऐसी प्रतिबद्धता न केवल वाछनीय है बल्कि आवश्यक भी है।

मेनन-भारतीय न्यायपालिका प्रशंसनीय

(78) डा. एन. आर. माधव मेनन ने उपर्युक्त गोष्ठी में निम्नलिखित राय व्यक्त की थी—

"भारत के सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालयो ने इस दशक मे ही नही अपितु समूचे विश्व मे न्यायिक व व्यावसायिक क्षेत्रो मे बड़ा रुझान व प्रशंसा प्राप्त की है। अन्य कोई देश जिसने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्वाधीनता प्राप्त की है, अपनी न्यायपालिका के लिए, अपनी एकता व स्वाधीनता को सुरक्षित रखते हुए स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र व विधि का शासन बनाये रखने के लिये इतने प्रशंसनीय कीर्तिमान का दावा नही कर सकता। यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि जनता को अभी भी न्यायपालिका में गहरा विश्वास है जबकि संसद सहित राज्य के अन्य अधिकाश संस्थानों के प्रति जन-विश्वसनीयता व आम समर्थन को गम्भीर क्षति हुई है। निसन्देह संविधान में व्यवस्थित सामाजिक आर्थिक न्याय को प्रोत्साहित करने अथवा समाजवादी समाज का निर्माण करने मे न्यायालयो की भूमिका के सम्बन्ध मे मतभेद हो सकते है।"

(79) जब कोई इसके विरुद्ध अपनी राय देता है तो उस पर यथास्थितिवादी, जड़, सिद्धान्तहीन और निष्क्रिय होने का आरोप लगाया जाता है या इस प्रकार

"यह अंकित करना असंगत नहीं होगा कि अनुच्छेद 329 में, चुनाव-प्रक्रिया के दौरान हस्तक्षेप करना पूर्णत: निषिद्ध है क्योंकि चुनाव का परिणाम घोषित होने के बाद ही विधि से प्रावधित रीति से तथा प्राधिकारियों के समक्ष ही चुनाव याचिका द्वारा चुनौती दी जा सकती है। इसलिए भी हम श्रीमती गांधी को संसद की सदस्यता के लिये चिकमंगलूर से चुनाव लड़ने से रोकने हेतु निषेधाज्ञा पारित करने मे सक्षम नही हैं जैसा कि वर्तमान मामले में प्रार्थी ने निवेदन किया है।

दयाल द्वारा इन्दिरा गांधी को जेल से छोड़ा जाना

(71) यदि न्यायपालिका से राजनैतिक झण्डे का अनुसरण करने की अपेक्षा की जाती है तो अपर मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट दयाल के लिये दण्ड-प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन रिमांड नामंजूर करके श्रीमती इन्दिरा गांधी को छोड़ देना क्या सम्भव हो सकता था, जिसने कि संसार को हिला दिया। तत्कालीन सत्तारूढ़ दल के हुक्मरानों को आघात पहुँचाया और अन्त मे ऐतिहासिक घटना के रूप मे जनता पार्टी को खण्डित कर दिया।

सिन्हा का निर्वाचन-सम्बन्धी निर्णय

(72) यदि प्रतिबद्ध न्यायपालिका की धारणा का अर्थ राजनैतिक सत्ता के इशारों पर नाचना ही होता तो आज संसार के समक्ष प्रधानमन्त्री को अपदस्थ करने वाला न्याय मूर्ति जगमोहनलाल सिन्हा का निर्णय नही होता।

लेण्टिन का अंतुले को निकालना

(73) यदि प्रतिबद्धता का अर्थ सत्तारूढ व्यक्ति के प्रति होता तो हाल ही में अन्तुले, जिन्होंने यह भविष्यवाणी की थी कि देश में अध्यक्षात्मक सरकार बहुत ही सन्निकट है, को बाहर निकालने का लेण्टिन का निर्णय कभी प्रकाश में नही आता, जिसकी पुष्टि बम्बई उच्च न्यायालय की खडपीठ द्वारा की गई थी।

विचलित करने, आघात पहुंचाने और नीचे गिराने की महत्त्वपूर्ण घटनाएं

(74) न्यायिक निर्णयो के उपयुक्त तीन युगान्तरकारी त्रिकोण, भारतीय न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की महत्त्वपूर्ण घटनाओ ने सरकार को चकित कर दिया है, विधि सम्मत शासन पर व्यक्ति की सर्वोच्चता को नीचे गिराया है और विभिन्न अवसरों पर विभिन्न दलों, विचारधाराओं वाले शीर्षस्थ सत्ताधारियों को आघात पहुंचाया है।

निक्सन का निष्कासन

(75) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यद्यपि न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ राजनैतिक दृष्टिकोण से की जाती हैं, तथापि वाटरगेट कांड में उच्चतम न्यायालय के टेपों पर आधारित निर्णय ने राष्ट्रपति निक्सन के लिए अन्तिम आहुति का काम किया।

क्या हमें "सुविधाजनक न्यायाधीश" रखने चाहिएं ?

(76) राजनैतिक झण्डे के प्रति "प्रतिबद्धता" की उपशाखाएं या 'प्रतिबद्ध

न्यायपालिका" या "मूल्यबद्ध न्यायालय" या "सुविधाजनक न्यायाधीश" यह प्रश्न प्रस्तुत करते है कि क्या भारत में विधिक सुधार या न्यायिक सुधार के रूप मे अपनाए जाने के लिए यह उचित सिद्धान्त है।

"प्रतिबद्ध न्यायपालिका को अनुमोदन प्राप्त नहीं

(77) अहमदाबाद में न्यायाधीशों, वकीलो और विधिवेत्ताओ की एक गोष्ठी 17, 18 तथा 19 अक्टूबर, 1980 को हुई, जिसमें "न्यायिक प्रतिबद्धता" के प्रश्न पर निम्नलिखित राय व्यक्त की गई—

संगोष्ठी ने इस तथ्य की भर्त्सना की कि विगत में, "प्रतिबद्ध न्यायपालिका" के विचार या आशय, मात्र सविधान की प्रतिबद्धता के लिये नही अपितु आज के सत्तारूढ दल की नीतियों व कार्यक्रमो के लिये प्रतिबद्धता के अर्थ में लिया गया। इस प्रकार प्रयोग करने पर यह विचार न केवल न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के लिये अपितु संविधान की बुनियाद के लिये भी अनिष्टकारी व विध्वंसक बन जाता है। न्यायाधीशो से न केवल नागरिक स्वतन्त्रता गहरी दिलचस्पी रखने की अपेक्षा की जाती है अपितु साथ ही भारत के लाखों दलित व निर्धन नागरिको की दशाओ मे सुधार करने के प्रति निरन्तर उत्साह रखने की भी अपेक्षा की जाती है। इन्हें हमारी जनता व उसके कमजोर वर्ग के लिये अन्याय व शोषण का स्रोत बनने से रोकने हेतु विधिक व न्यायिक व्यवस्था मे सुधार सुनिश्चित करने होंगे। न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिये ऐसी प्रतिबद्धता न केवल वाञ्छनीय है बल्कि आवश्यक भी है।

मेनन—भारतीय न्यायपालिका प्रशंसनीय

(78) डा. एन. आर. माधव मेनन ने उपर्युक्त गोष्ठी मे निम्नलिखित राय व्यक्त की थी—

"भारत के सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालयों ने इस दशक में ही नही अपितु समूचे विश्व मे न्यायिक व व्यावसायिक क्षेत्रों मे बडा रुझान व प्रशसा प्राप्त की है। अन्य कोई देश जिसने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्वाधीनता प्राप्त की है, अपनी न्यायपालिका के लिए, अपनी एकता व स्वाधीनता को सुरक्षित रखते हुए स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र व विधि का शासन बनाये रखने के लिये इतने प्रशसनीय कीर्तिमान का दावा नही कर सकता। यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि जनता को अभी भी न्यायपालिका में गहरा विश्वास है जबकि ससद सहित राज्य के अन्य अधिकांश संस्थानों के प्रति जन-विश्वसनीयता व आम समर्थन को गम्भीर क्षति हुई है। निस्सन्देह सविधान में व्यवस्थित सामाजिक आर्थिक न्याय को प्रोत्साहित करने अथवा समाजवादी समाज का निर्माण करने मे न्यायालयों की भूमिका के सम्बन्ध में मतभेद हो सकते है।"

(79) जब कोई इसके विरुद्ध अपनी राय देता है तो उस पर यथास्थितिवादी, जड़, सिद्धान्तहीन और निष्क्रिय होने का आरोप लगाया जाता है या इस प्रकार

उसकी निन्दा की जाती है। इसके विपरीत, जब कोई व्यक्ति इस बात को स्वीकार कर लेता है तो उसे परिवर्तनशील और क्रियाशील मानकर उसकी प्रशसा की जाती है। किन्तु यदि किसी को विधिक सुधारों के सार-मंथन की प्रक्रिया और उसकी किसी विवादास्पद धारणा में सम्मिलित होना है तो हमें "स्पष्ट बात" कहनी ही होगी।

(80) सामाजिक-आर्थिक सिद्धान्त का वह मार्ग, जिसे हमारे संविधान में प्रतिष्ठित किया गया है, चाहे वह प्रस्तावना में हो या नीति-निर्देशक सिद्धान्तो में या मौलिक अधिकारों में हो, उसके प्रति प्रतिबद्धता मे कोई भी व्यक्ति लज्जा अनुभव नही कर सकता। यहा "सामाजिक न्याय" की धारणा उभरकर सामने आती है।

सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता

(81) विधिक सुधारों को यह बात ध्यान में रखनी है कि "सामाजिक न्याय" जिसका अर्थ है समाज के निम्नतम वर्ग यथा मोची, लुहार, फुटपाथ वाले, गन्दी बस्ती के निवासी, नारी-निकेतन की पीड़िता को न्याय मिले। यह आज की आवश्यकता है और इसे स्थगित नहीं किया जा सकता। मुकदमेबाजी लोकहित में हो और गरीबों को विधिक सहायता मिले, सामाजिक न्याय के ये दो स्तम्भ हैं।

(82) शोषक और शोषित, विशेषाधिकार प्राप्त और दलित, साधन सम्पन्न, धनी सामन्त और सताए हुए भूमिहीन कृषक को, जो "आँसू बनाम खुशियो" को समझने में असमर्थ हैं, आँख मूंदकर बराबर के स्तर पर नही रखा जा सकता।

कुछ व्यक्तियों का रूदन—लाखों की खुशियां : सामाजिक न्याय

(83) लेवी चीनी प्रदाय (नियन्त्रण) आदेश, 1979 को दी गई चुनोती को नामंजूर करते हुए मैंने उपर्युक्त को निम्नलिखित शब्दो में व्यक्त किया है—

"मूल्य-नियन्त्रण खुशी के साथ या आसूओं के साथ"

"यदि मैं एक पंक्ति में कहूं, तो निष्कर्ष यह निकलता है कि आवश्यक वस्तुओं के मूल्य-नियन्त्रण की भाँति सामाजिक, आर्थिक कानून बनाने में लाखों लोगों के चेहरों पर खुशी लाने हेतु थोड़े से सैकड़ों चेहरो पर कुछ आसू लुढ़क सकते हैं। दूसरे शब्दों में बिना आसुओं के यह खुशी नही मिल सकती, किन्तु इस कारण सामाजिक-आर्थिक कानून जो बड़े समुदाय को लाभान्वित करने हेतु बनाया गया है, को यह मानकर निरस्त नही किया जा सकता कि यह मूल अधिकारो पर अतिक्रमण करता है।"

अंधे न्याय की एंग्लो सेक्शन धारणा को समाप्त किया जाये

(84) आज की ज्वलन्त आवश्यकता, "समय की अनुभूत आवश्यकताएं" और न्यायपालिका तथा विधिक प्रणाली के शुभचिन्तकों के प्रेरक विचारो का तकाजा है कि लार्ड क्लाईव और मैकाले की प्राचीन, विक्टोरिया काल की अप्रलित

और मृतप्रायः, न्याय की देवी की आंखों पर पर्दा डालने की एंग्लो सेक्शन धारणा पर पुनः विचार किया जाना चाहिए।

(85) यह देखने के लिए आंखें खुली रखनी चाहिए कि अधिकांश लोग जो गरीबी की रेखा के नीचे जीवन-यापन करते हैं और आधे भूखे-नगे रहते है और जिनके पास रहने के लिए छप्पर भी उपलब्ध नही है, हमारी विधिक प्रणाली द्वारा बहिष्कृत कर दिये गये हैं। न्याय की देवी को स्वयं ही यह देखना चाहिए कि समाज का केवल धनी, साधन-सम्पन्न, शक्तिशाली वर्ग ही उसकी उपासना कैसे कर सकता है और उसका आशीर्वाद प्राप्त कर सकता है तथा विधिक क्षेत्र के अन्तर्गत गरीबों, दलितों, हरिजनों और गिरिजनों, कृषकों तथा किसानों का निर्दयतापूर्वक शोषण कैसे कर सकता है।

न्यायाधीशों का उच्च जीवन व्यतीत करना

(86) मैंने जो कुछ सामाजिक, शीघ्र और सस्ते न्याय के बारे में अनुभव किया है, मैं केवल उसे ही न्यायिक रूप से व्यथित हृदय के साथ नीचे उद्धृत कर सकता हूं— .

"क्या हम धार्मिक व पवित्र न्याय मन्दिरों को कानूनी व्यायाम क्लबों, कानूनी वाद-विवाद समितियों अथवा कानून के विलासप्रिय अनुसन्धान केन्द्रों में परिवर्तित करें ? क्या हम उन थोड़े-से भाग्यशाली व्यक्तियों के लिए किए जाने वाले कुशल तर्कों व लच्छेदार वाकपटुता को निस्सहाय सुनते रहें, जो ऐसे हजारों वादकारों की कीमत पर, जो विगत पांच या छः वर्षों से कारागृह की कोठरियों में अपनी दोष सिद्धि या निर्दोष होने के निर्णय की प्रतीक्षा मे है या उन हजारों असैनिक कर्मचारीगण, औद्योगिक श्रमिकों, छोटे दूकानदारों या कृषकों की कीमत पर, जिनके मूल अधिकारों पर नैतिकता से शून्य नियोजकों या सरकारी पदाधिकारियों ने आक्रमण किया है और जो वास्तविक या सामाजिक न्याय नही तो कम से कम कानून के अनुसार न्याय चाहते हैं किन्तु भारी वाद सूची व पहले से बकाया मुकदमे के कारण जिनकी बारी नही आ सकती ? लगभग दस हजार विचाराधीन मुकदमों मे उलझे ऐसे लाखों हताश, असहाय, बेचैन, उदास व खिन्न चेहरे मेरे सामने एकटक देख रहे हैं तथा मुझे सारभूत नुकसान व न्याय की बहुत बड़ी विफलता का न्याय की क्रियान्विति करने की महत्ता का स्मरण कराते हैं, कि प्रतीक्षा कर रहे उनके भाग्यों का निपटारा करने तथा एकदशक से भी अधिक समय से विचाराधीन मुकदमों के अनिश्चय की मूर्छा से उन्हें मुक्त कराने के लिए समय निकाला जाये।

इसके अतिरिक्त क्या हम इस कठोर सत्य के प्रति आंखें मूंदकर विवेकशून्य हो सकते हैं कि लाखों निर्धन, पद-दलित व कम सुविधा-प्राप्त नागरिक वे हैं जो न्यायालयों, न्याय व कानून के दायरे से बहिष्कृत हैं क्योंकि वे सुविधा-सम्पन्न लोग साधन सम्पन्न, शिक्षित, ज्ञान-सम्पन्न, वादकारों की होड़ में पहुचने व ठहरने में समर्थ

नही हो सकते और न वे लम्बी कतार में रह कर प्रतीक्षा कर सकते हैं। ऐसी स्थिति मे यद्यपि वे न्यायालयों से यथेष्ट सहायता के पात्र हैं किन्तु हम संविधान के प्रहरी एवं रखवाले के रूप में कार्य करने व उन्हे न्याय देने में असहाय हैं। न्यायालय कक्ष मे बैठते समय मेरी आंखें शाहबाद के उन सहरिया व अन्य कोटा जिले के शाहबाद उपखण्ड के किसानो की आंखो से आंसुओं का अविरल झरना बहते देखती हैं जो भूखे-नंगे, कगाल, निस्सहाय बने, धनी साधन-सम्पन्न आक्रामको द्वारा अपने खेतो पर अतिक्रमण करते हुए अनाधिकार प्रवेश करते हुए, उन्हें जोतते हुए, फसलें ले जाते हुए देख रहे हैं, लेकिन वे उनके विरोध में रो व चिल्ला भी नही सकते तथा निर्धन को कानूनी सहायता की शेखी बघारे जाने व इसे सविधान मे सम्मिलित कर लिए जाने के उपरान्त भी न्यायालय मे जाने अथवा वापिस कब्जा मिलने की सहायता की कल्पना भी नही कर सकते। हो सकता है, कि यदि मै कानून व न्याय प्रदान करनेवाले न्यायालयों की उक्त दु:खद कार्यों की कठोर वास्तविकताओं को बताते हुए वर्णन करने में कुछ समय के लिए न्यायाधीश की नहीं बल्कि कवि, दार्शनिक व सुधारक की भूमिका ग्रहणकर लूं किन्तु यही तो वह परिसीमा है जो इस व्याप्त धारणा की जिम्मेदार है कि "न्यायाधीश भी महल में रहते हैं।" यह धारणा यदि असत्य ही है या आंशिक तौर पर गलत भी है, तो भी न्यायालय की अवमानना मान कर हमे दण्डित करने की सुलभ कृपाण का उपयोग करके नही, बल्कि निम्नतम वर्ग अर्थात् किसान, मजदूर, मोची आदि को शीघ्र, सुलभ, सामाजिक, तत्काल तथा वास्तविक न्याय प्रदान करके इस धारणा को बदल देना चाहिए।

न्याय की देवी आंखें खोलें

(87) जब तक न्याय की देवी की ये आंखें नहीं खुलतीं तब तक मथुरा और उर्मिला, श्रीमती खुराना और उन हजारों सीता-सावित्रियों पर कौन आंसू बहायेगा? रामकृष्ण, बुद्ध, महावीर और गांधी के भारत में प्रतिदिन दहेज या धन के लिए कितनी नारियों को जीवित जला दिया जाता है अथवा कामुकता-वश उनके साथ बलात्कार किया जाता है।

(88) मौलिक तथा प्रक्रियात्मक विधि और न्यायिक प्रणालियां जीवन्त होनी चाहिए, और ये सर्वप्रथम "साधन-विहीनो की और बाद मे साधन-सम्पन्नो की रखवाली करनेवाली होनी चाहिए।" यदि ऐसा नही है, यदि इस ओर से हम अपनी आंखे बन्द कर लेते हैं, यदि हम सामाजिक न्याय की अवहेलना करते हैं और उसे रणनीतिज्ञों की चाल या फैशन की कहावत समझते हैं तो हमें काल्पनिक या आदर्शवादी होने का सन्तोष प्राप्त हो सकता है। किन्ही को अपने भाइयों की अवनति की दु:खदायी खुशी भी प्राप्त हो सकती है, या यदि वे निष्ठापूर्वक ऐसा अनुभव करें तो स्पष्टवादिता का आनन्द भी प्राप्त कर सकते हैं किन्तु यह तो पड़ोसी के अपशुकन के लिए अपनी स्वयं की नाक काटने के समान ही होगा।

(89) उस स्थिति मे यदि विधि उन 70 करोड़ व्यक्तियों की, जिनके फायदे

में ही इसका लक्ष्य छिपा हुआ है, आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर सकता तो लोग विधिक सुधारों की बात सोचना बन्द कर देंगे और इससे उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। तब हम "सामाजिक न्याय" को न अपनाकर और "अन्धे कानून" का अनुसरण करके "प्रतिबद्ध न्यायपालिका" और "मूल्यबद्ध न्यायालयों" को निमन्त्रण देंगे। ऐसी स्थिति में हमारी भावी पीढ़ियां न्यायपालिका और विधि सम्मत शासन की "हत्या" के लिए राजनीतिज्ञों को दोषी नहीं मानेंगी बल्कि "आत्महत्या" करने के लिए हमे कठघरे में खड़ा कर देंगी।

शपथ के लिए प्रतिबद्धता

(90) न्यायाधीशों की प्रतिबद्धता, तृतीय अनुसूची के प्रारूप III के साथ पठित अनुच्छेद 219, जो निम्नलिखित रूप में पढ़ा जाता है, के अधीन ली गई शपथ के अनुसार संविधान की गरिमा को बनाए रखने के लिए होनी चाहिए—

"उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने के लिए नियुक्त प्रत्येक व्यक्ति अपना पद-ग्रहण करने के पूर्व उस राज्य के राज्यपाल अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति के समक्ष तृतीय अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिये गये पारंपत्र के अनुसार शपथ या प्रतिज्ञान करेगा।"

"8. मैं ·· ····अमुक ·····जो ·· ············उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति (या न्यायाधीश) नियुक्त हुआ हूं ईश्वर की शपथ लेता हूं/मैं सत्य-निष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा व निष्ठा रखूंगा तथा मैं भारत की प्रभुता व अखण्डता को अक्षुण्ण रखूंगा तथा सम्यक प्रकार से और श्रद्धापूर्वक तथा अपनी पूरी योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों का बिना किसी भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के पालन करूंगा तथा मैं संविधान और कानून की मर्यादा बनाये रखूंगा।"

जनता के प्रति प्रतिबद्धता

(91) और जब हम न्यायाधीशगण संविधान की गरिमा बनाये रखने की शपथ लेते है तो हमें संविधान की सर्वप्रथम प्रतिबद्धता "हम भारत के लोग" यह बात याद रखते हुए अपनी शपथ और जनता के प्रति प्रतिबद्धता और इसके समस्त नागरिकों के लिए "सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय" सुनिश्चित करने के संकल्प के प्रति सदैव जागरूक रहना चाहिए।

सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता

(92) इसलिए सामाजिक न्याय के लिए प्रतिबद्धता कोई ऐसा नारा या सिद्धान्त नही है जो किसी राजनैतिक झण्डे के साथ जुड़ा हुआ हो, अतः विधिक सेना को सामाजिक न्याय के संवैधानिक झण्डे का अनुसरण करने मे कोई संकोच महसूस करने की आवश्यकता नही है।

चन्द्रचूड़-सेन-परीक्षण और विचारण

(93) जब यह बात चन्द्रचूड़-भगवती के न्यायालय और सेन के कौशल पर

निर्भर है कि वे राज्य के अन्य अंगों के अतिरिक्त लाखों निर्धन व्यक्तियों के लिए
सामाजिक न्याय के लक्ष्य को न्यायाधीशों के माध्यम से प्राप्त करें। भारतीय विधिक
प्रणाली में समस्त विधिक न्यायिक सुधारों का लक्ष्य "सामाजिक न्याय" के इस
पावन, पुनीत उद्देश्य को पूरा करना होना चाहिए। इसके प्रति न्यायाधीशों की
प्रतिबद्धता और भय या भेदभाव, अनुराग या दुर्भावना के बिना न्याय करने की
न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता को झकझोर देने के लिए ऐसा कुछ भी नहीं करना
चाहिए। यह एक ऐसा उद्देश्य है जिसके प्रति भगवती तथा सेन दोनों ही प्रतिबद्ध हैं।

पश्चात्कथन–चन्द्रचूड़ की प्रतिबद्धता

(94) पश्चात्कथन के रूप में मैं राज्य के सम्मुख तीनों अंगों के शीर्षस्थ
व्यक्तियों सहित सभी को यह स्मरण करा दूं कि हम सभी की प्रतिबद्धता उस बात
के प्रति होनी चाहिये जो भारत के न्यायाधिपति, माननीय चन्द्रचूड़ ने निम्नलिखित
स्मरणीय, शास्त्रीय वचनों में व्यक्त की है—यही विचार भगवती के हैं।

"वस्तुतः राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्त देश के शासन के मुख्य आधार हैं
तथा महान्यायवादी ने ठीक ही कहा है कि सार्वजनिक जीवन में ऐसा कोई अन्य क्षेत्र
नहीं है जहां विलम्ब के कारण व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं को साकार करने का प्रयास
करता है। बेहतर यह है कि कल के लिए किये गये वायदे आज ही पूरे होने चाहिए
क्योंकि परसों तक उनको आराम से भुला दिये जाने का खतरा रहेगा। वस्तुतः कई
कल (आने वाला कल) बिना किसी प्रकार का पत्ता भी हिलाए हुए आकर जा चुके
हैं और आज यह खतरा छिपा हुआ है कि जनता स्वयं अपने भविष्य का निर्माण
करने के लिये "कुत्सित साधनों" का उपयोग करने को विवश हो जायेगी। दरअसल
संगमरमर के सभा-भवनों में दिये गये भाषणों में बहुत कुछ कहा जाता है, किन्तु उसे
पूरा नहीं किया जाता।"

(95) उपर्युक्त प्रतिबद्धता, जिसको शीर्षस्थ न्यायालय के शीर्षस्थ न्यायाधीशों ने
इतनी सुन्दरता से व्यक्त किया है, पूर्णतः व्यापक और उन सभी विवादों से परे है
जिनसे हम न्यायधीशों को भी न्याय प्रदान करने हेतु, व सभी में विश्वास जागृत करने
के लिये, बचना चाहिए। गांधी, नेहरू, अम्बेडकर ने सामाजिक न्यायिक क्रान्ति के परि-
वेश में बंधुआ न्यायाधीश, अलशेशियन न्यायाधीश या सुविधाजनक न्यायाधीश की
अवधारणा कदापि नहीं की थी। अतः सर्वहारा के लिए संवेदनशील मूल्यों के न्याया-
धीश ही सामाजिक न्याय के अग्रदूत हो सकते हैं।

संसद में न्यायाधीशों की प्रतिबद्धता की कल्पना

(96) मतबद्धता, प्रतिबद्धता, सामाजिक दर्शन, न्यायाधीशों का दल विशेष
या विशिष्ठ राजनैतिक विचारधारा से न हो, यह राष्ट्रीय सहमति लोकसभा में 13,
14 व 15 मई, 1985 को उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश
(सेवा शर्तें) संशोधन विधेयक की बहस में प्रकट हुई। साथ ही सर्वहारा, दलित,
दरिद्र, उत्पीड़ित, शोषित, कमजोर, गरीब, उपेक्षित, त्रसित वर्ग के प्रति व संविधान

के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के प्रति जागरूकता व सहानुभूति अवश्य होनी चाहिये, यह भी भावना सांसदों ने उजागर की, जो मेरी अपनी मान्यता भी है।

(97) सदन के पटल पर बहस का सर्वसम्मत वैचारिक दर्शन भारतीय जनता की भावना का प्रतिबिम्ब है व उसे न्यायाधीश भी अपना मार्ग-दर्शन समझे तो ही "सामाजिक न्याय" के चरण आगे बढ सकते हैं।

'भगवती न्यायालय" के 12-7-85 को शुभारंभ के पूर्व भूमिका में सदन में ध्वनित सांसदों के प्रतिबद्धता सम्बन्धी मत को उद्धृत करना, विचार-मंथन व मार्ग-दर्शन के लिये आवश्यक है, अतः उन्हें "ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया" के अनुरूप प्रस्तुत किया जा रहा है --

श्री एच. आर. भारद्वाज (राज्य मंत्री, विधि व न्याय):—हमें अपनी न्यायिक प्रणाली पर गर्व है और न्यायाधीश इस व्यवस्था पर प्रसन्न हैं कि उन्हें लोकतन्त्रीय विचारों के आधार पर कार्य करना होता है। हम यह सुनिश्चित करना चाहते हैं कि हमारे न्यायालय जन-साधारण के हित में कार्य करें। हमें अधिवक्ताओं के संगठनों को भी कहना है कि वे केवल धनी वर्ग की सेवा न करके समाज के कमजोर वर्ग के हितों को भी ध्यान में रखें। हमे प्रक्रिया मे भी परिवर्तन करना होगा। ये काम न्यायाधीश को सौंपा जायेगा। हमारी प्रक्रिया समाज के कमजोर वर्गों के हित में होनी चाहिए।

श्री विजय कुमार यादवः—हम जिस तरह का इंसाफ चाहते हैं या जिस तरह के इन्साफ का हमारे सविधान ने प्रावधान किया है और आम जनता जो महसूस करती है कि उनको न्याय मिलना चाहिए, इसका पूरे हिन्दुस्तान मे अभाव है।

प्रो. मधु दण्डवतेः—मतबद्ध न्यायपालिका का नया सिद्धात वास्तव में बंधुआ न्यायपालिका का नया नामकरण है। हम इस सिद्धान्त का पूरी तरह विरोध करते हैं। इस प्रकार की न्याय-प्रणाली अत्यन्त खतरनाक प्रणाली होगी। यदि हम वास्तव में सही सुधार लाना चाहते हैं तो हमे उपर्युक्त मत त्यागना होगा। ....न्यायाधीशों का सम्बन्ध किसी विशेष ग्रुप से नही होना चाहिये। किन्तु उन्हें भारत के संविधान के प्रति अवश्य निष्ठावान होना चाहिये।

श्री श्याम लाल यादवः—एक न्यायाधीश को सविधान के निर्देशक सिद्धान्तों के प्रति अवश्य निष्ठावान होना चाहिये और उसे समाज, गरीब लोगो तथा पददलित लोगो के प्रति निष्ठावान होना चाहिए जिनको जगह-जगह ठोकरें खानी पड़ती है।

मुख्य उद्देश्य तो स्वतन्त्र न्यायपालिका है। यह एक संवैधानिक उत्तरदायित्व है। इसे पूरा किया जाना चाहिए। कारगर तथा कुशल न्यायपालिका के लिये यह आवश्यक है कि हम अपनी न्यायिक व्यवस्था मे सुधार करें ताकि मामलों के शीघ्र और उचित निपटारे हो सकें।

श्री पी आर. कुमारमंगलमः—हम एक स्वतन्त्र न्यायपालिका चाहते हैं जो देश की अन्तरात्मा के प्रति निष्ठावान हो। हम ऐसे न्यायाधीश नही चाहते जो उच्च

न्यायालयों में पदासीन हों और संविधान के प्रति आस्था की शपथ लेने के बाद संविधान के दर्शन के विरुद्ध हों। हमारे निर्देशक सिद्धांतों का कोई अर्थ नही रहता यदि न्यायाधीश संविधान के सिद्धांतों के प्रति आस्था न रखते हों। खेद की बात है कि कुछ समय से यह देखा जा रहा है कि मूल अधिकारों के प्रति ही आस्था रखी जा रही है। संविधान एक सजीव दस्तावेज है। हमें इसे समग्र रूप मे सामने रखना है। सरकार चापलूस व्यक्तियों को न्यायाधीश नियुक्त नहीं कर रही है। हम स्वतंत्र विचारों के व्यक्ति नियुक्त करने पक्ष में हैं।

श्री शरद दिघे :—न्यायपालिका के लिये वचनबद्धता जरूरी है परन्तु यह वचनबद्धता देश के संविधान के प्रति होनी चाहिए। न्यायपालिका को देश में हो रही सामाजिक-आर्थिक क्रान्ति के प्रति वचनबद्ध होना चाहिए। जहा तक जजों की नियुक्ति और स्थानांतरण का सम्बन्ध है, देश की एकता और अखण्डता के लिये यह सुझाया गया था कि मुख्य न्यायाधीश दूसरे राज्य का होना चाहिए और उच्च न्यायालय के कम से कम एक तिहाई जज अन्य राज्यों के होने चाहिए। इसके लिये निश्चित मार्गदर्शी सिद्धान्त होने चाहिए, ताकि लोगों के मन मे यह गलत धारणा न पनपे कि सरकार ऐसे जजों का स्थानान्तरण करती है जो उसके लिये असुविधा पैदा करते हैं या कोई निर्णय विशेष लेने के लिये न्यायाधीश का स्थानान्तरण किया जाता है।

श्री अमल दत्त :—यह दुर्भाग्य की बात है कि लोगों का न्यायपालिका से विश्वास उठता जा रहा है। हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि न्यायपालिका वास्तव में स्वतंत्र हो और उसमें लोगों का विश्वास बना रहे। हमे न केवल न्यायपालिका पर, बल्कि इस बात पर भी चर्चा करनी चाहिए कि लोगों को शीघ्र सस्ता न्याय मिले। ऐसी न्याय-व्यवस्था नही होनी चाहिए कि लोगों को न्याय प्राप्त करने के लिये बहुत लम्बे समय का इन्तजार करना पड़े। उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के जजों के चयन के बारे में स्पष्ट मार्गदर्शी सिद्धान्त होने चाहिए और उनका कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों के स्थानान्तरण का प्रस्ताव अच्छा है। इससे उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों द्वारा किसी पार्टी विशेष का पक्ष लिए जाने की बात समाप्त हो जायेगी। विधि आयोग ने भी यह सिफारिश की थी कि उच्च न्यायालयों के एक-तिहाई जज किसी बाहर के राज्य के होने चाहिए। लेकिन न्यायाधीशों के स्थानान्तरण उन पर अनुचित दबाव डालने के लिये नहीं किये जाने चाहिए। न्यायाधीशो का स्थानान्तरण सरकार की मर्जी पर बिल्कुल नही छोड़ा जाना चाहिए। इसी प्रकार न्यायाधीशों की पदोन्नति वरिष्ठता के आधार पर की जानी चाहिए। सेवा-निवृत्ति के पश्चात् सरकार को सेवा-निवृत्त न्यायाधीशों को किसी आयोग आदि में नियुक्त नहीं करना चाहिए। सेवा-निवृत्त जज को पेंशन भी उतनी राशि की मिलनी चाहिए, जितना कि उसे वेतन मिलता था। न्यायाधीशों को समाज दर्शन को ठीक से समझ लेना चाहिए, ताकि वे देश में सामाजिक सुधार करने में आड़े न आएं। ''' हमारे देश के बड़े-बड़े वकील लोगों को लूटते हैं। इन वकीलों का जो असल कलर है, वह लोगों को पता होना चाहिए।

श्री ब्रजमोहन महंती :—उन्हें यह नहीं सोचना चाहिए कि वे संसद से और जनमत से ऊपर है। उन्हें यह नहीं सोचना चाहिए कि वे विधानपालिका के चौथे चैम्बर हैं।

श्री विजय कुमार यादव :—जूडिशियल रिफॉर्म्स के बारे मे अभी जूडिशियरी के कमिटेड होने की बात कही, इस को तरह तरह से हमारे शासक दल के लोगों ने इंटरप्रेट किया। आखिर यह बात क्यों कही जाती है अगर एक कामन गाइडलाइन्स के अन्तर्गत सभी हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट, जो एक है हमारे यहां, उसमें ट्रांस्फर और पोस्टिंग या प्रमोशन आदि के जो नॉर्म्स है, उसी के मुताबिक अगर काम किया जाये और 'पिक एण्ड चूज' की बात न की जाये तो जाहिर है कि ऐसी बातें नही होंगी। गवर्नमेंट ने जो हमारे देश मे सोशल और इकनामिक रिफार्म्स करने की बात कही है, तो जाहिर बात है कि उसके प्रति कमिटमेंट तो सबसे पहली बात है। जो कमिटमेंट होना चाहिए कास्टीट्यूशन के प्रति अब उसमें क्या होता है कि इंटरप्रिटे-शन का बहुत वाइड स्कोप है।

श्री हरुभाई मेहता :—ये ठीक है कि न्यायाधीशों और न्यायापालिका को स्वतन्त्र होना चाहिए परन्तु उसका अर्थ यह नहीं है कि न्यायाधीश जनता की आकाक्षाओं, कार्यपालिका के सामाजिक कर्तव्यों और सविधान के मूल सिद्धांतों की उपेक्षा करें। मैं समझता हूं कि न्यायपालिका गैर-लोकतान्त्रिक सस्था है क्योंकि इसका निर्वाचन नही होता और न ही वह लोगों और संसद के प्रति उत्तरदायी है। अतः न्यायापालिका के अधिकारों के विस्तार की कोई बात नही सुनी जानी चाहिए।

प्रो. सैफुद्दीन सोज :—हमारे न्यायालयों मे काफी खराबियां आ गई हैं। और इसका कारण न्यायाधीश न होकर सरकार की गलत नीतियां है। इस सम्बन्ध मे एक निश्चित् कसौटी होनी चाहिए और वरिष्ठता उसी का एक अंग होना चाहिए। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्तियों के मामले में सरकार को दलगत भावनाओं से ऊपर उठकर निर्णय लेने होंगे।

(98) भगवती का दर्शन :— मुख्य न्यायाधिपति माननीय श्री प्रफुल्लचन्द्र नटवर लाल जी भगवती ने दिनांक 12.7.85 को शपथ लेने के तुरन्त पश्चात् प्रकाशित साक्षात्कार मे न्यायाधीशों की मतबद्धता व प्रतिबद्धता के सम्बन्ध में निम्नानुसार मार्गदर्शन दिया है:—

"न्यायाधीश में दृढ़ता होनी चाहिए, स्वतन्त्रता होनी चाहिए, कानून का उसे पूरा ज्ञान होना चाहिए और संवैधानिक मूल्यो में उसे आस्था होनी चाहिए। राष्ट्रीय दृष्टिकोण के साथ-साथ उसमें सामाजिक प्रतिबद्धता भी होनी चाहिये तथा कानून का शिल्पी तथा स्वतन्त्र-चेता होना चाहिये। न्यायाधीश को न तो सत्तारूढ़ पार्टी के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए और न विपक्ष के प्रति और न ही सामाजिक आर्थिक निहित स्वार्थों के प्रति, उसे तो संविधान और भारतीय जनता के हितों के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए।

"न्यायिक स्वातंत्र्य का अर्थ यही है कि न्यायाधीश सत्ता के किसी केन्द्र से प्रभावित न हो। क्या वह न्यायाधीश जो सत्ता के केन्द्रों से प्रभावित होता है स्वतंत्र कहा जा सकता है ? बड़े व्यावसायिक वर्ग के साथ व उद्योगपतियों के साथ पक्षपात करने वाला न्यायाधीश स्वतंत्र कहलाने का हकदार है ? यदि भारत का मुख्य न्यायाधीश सिद्धान्तों पर अटल रहे तो मुझे इसमें संदेह नहीं कि सरकार मुख्य न्यायाधीश की सलाह को मानेगी। मैं उम्मीद करूंगा कि ऐसी कोई नियुक्ति नहीं होगी जिसे मुख्य न्यायाधीश अस्वीकृत कर दे।"[1]

99. दिनांक 12.7.85 को मेरे न्यायालय में एक वरिष्ठ एडवोकेट ने गंभीर आपत्ति की कि मैंने पक्षकार के अश्रुपूर्ण नेत्रों को क्यों देखा। एक पक्षकार ने मुझे रोते बिलखते शिकायत की कि लगभग दो वर्ष से उसकी फाइल गायब है व लेबर कमिश्नर तनख्वाह की जमा रकम यह कह कर नहीं दे रहा है कि यद्यपि हाईकोर्ट में उसके विरुद्ध अपील 6 वर्ष पहले खारिज हो गई, परन्तु उसे पुनः सुनने का प्रार्थना-पत्र विद्युत मण्डल के विचाराधीन है, यद्यपि उसमें कोई स्थगन आदेश नहीं है।

(100) यह एक आश्चर्यजनक संयोग था कि ठीक उसी समय जब "सामाजिक न्याय" के मसीहा भगवती भारत के मुख्य न्यायाधिपति की शपथ दिल्ली में ले रहे थे, मेरे न्यायालय में यह आपत्ति उठाई जा रही थी कि किसी दुःखी पक्षकार को रोने व आंसू बहाने का अधिकार नहीं है व न्यायालय को आंखें बन्द कर लेनी चाहिये। जहां भगवती से भागीरथ बन हर गांव, ढांणी व चौपाल पर न्याय गंगा ले जाने की अपेक्षा आज करोड़ों भारतीय कह रहे हैं वहां "आंसुओं की धारा को कानूनी तलवार से रोकने" की बहस की जा रही है। एडवोकेट बन्धु ने इस अश्रुधारा को देख, मुकदमे को सुनने की आज्ञा को "एक्स्ट्रेनियस" कारणों पर बताया, मेरे मानस पर प्रसाद की अमर रचना "आंसू" चलचित्र की तरह सामने आई:—

"जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति-सी छाई
दुर्दिन में आंसू बन कर वह आज बरसने आई"

(101) न्याय की देवी क्या अन्तरात्मा से भी अन्धी है ? मैंने संकल्प किया कि यह अन्धापन दूर करना होगा व संविधान द्वारा घोषित "सामाजिक न्याय" की शल्य चिकित्सा (operation) से अन्धी न्याय देवी के नेत्र में ज्योति जगानी होगी, यही इस न्यायिक क्रांति का नया आयाम होगा व प्रतिबद्धता संवैधानिक सामाजिक न्याय से होगी। रूढ़ीवादी कानून के अन्धेपन व सर्वहारा, शोषित, दलित, कामगार, किसान, उत्पीड़ित की साधन विहीन विवशता व शोषण की प्रतिक्रांति के विरुद्ध संघर्ष तो न्यायाधीशों को सजगता से करना होगा।

21वीं सदी की ओर बदलते आयामों में, यह आयाम भी न्याय की तुला को सम रखने को बल देगा व प्रतिबद्धता, मतबद्धता-सामाजिक न्यायिक क्रांति से संपूर्ण करेगा। यही प्रतिबद्धता, न्यायाधीशों को स्वतन्त्रता के परिवेश में सर्वहारा को भी न्यायिक मन्दिर में प्रवेश करा कर, "सामाजिक न्याय" प्रदान कर, हर आंख से आंसू पोंछने की कल्पना साकार करेगी।

1. [राजस्थान पत्रिका, दिनांक 14 जुलाई, 85]

लोकहित वाद

गंगोत्री सामाजिक न्याय गंगा की

लोकहितों का लोकनायक

1. लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएं, लोकसंस्कृति, लोकनायक, लोकसभा यह सब "लोक" अथवा जन साधारण, ग्राम जनता, के प्रतिनिधित्व के प्रतीक हैं। साधारण या ग्राम जनता जनार्दन या समाज का महत्त्व, विशेषाधिकार समाज की तुलना मे है। "लोकहित' भी विशेष वर्ग के स्वार्थ के प्रतिकूल ग्राम साधारण वर्ग का हित है। निहित स्वार्थ के प्रतिकूल समस्त समाज या साधारण समूह वर्ग का हित स्वार्थ के विरुद्ध "परमार्थ" ही है।

उत्पीड़ित दलित की ढाल

2. विशिष्ठ व्यक्ति, वर्ग, जाति, समाज एक असाधारण स्वार्थीय वर्ग हैं जिनके हित हमेशा सर्वहारा, निर्धन तबके को दलित, त्रसित, उत्पीड़ित कर अपने स्वार्थ साधना है। अतः लोकहित वाद का मौलिक व मूल अभिप्राय, विशिष्ठ स्वार्थ के हितो द्वारा गरीब के शोषण, दमन के हेतु न्याय के नाम पर अन्याय के विरुद्ध बिगुल बजाकर, अब दलित, उत्पीड़ित, शोषित, कमजोर ग्राम जनता जो वास्तविक "लोक" कहलाने की अधिकारी है उसके हित, को साधना है—यहा लोकहित न्याय हेतु "लोकहित 'वाद" की भारतीय परिभाषा है जो न्याय की तुला की, अंधी न्याय देवी की आंखें खोलकर, सामाजिक आवश्यकताओ की ओर सजग व सक्रिय करना चाहता है।

भारतीयकरण

3. लोकहित वाद अमेरिका व इंगलैंड की परिभाषा से प्रतिकूल भारतीयकरण द्वारा भारत की परिस्थितियों में, शोषित, दलित, त्रसित, उत्पीड़ित, गरीब, कमजोर विपिन्न, साधन विहीन, समाज की "न्याय मंदिर" में अंधे न्याय देवताओं को जागृत करने की आवाज, मेरू नाद व अलख जगाने की प्रणाली व प्रकरण है।

सर्वहारा का न्यायिक आन्दोलन

4. यह "उत्पीड़ित समाज का," शोषण व अन्याय के शस्त्रागार के विरुद्ध सामूहिक अहिंसक न्यायिक आन्दोलन है, क्योंकि उनके अभाव में भारतीय परिवेश मे "दमन, उत्पीड़न, अत्याचार, अतिक्रमण व मानवीय मूल्यों पर शासकीय व निहित

"न्यायिक स्वातंत्र्य का अर्थ यही है कि न्यायाधीश सत्ता के किसी केन्द्र से प्रभावित न हो। क्या वह न्यायाधीश जो सत्ता के केन्द्रों से प्रभावित होता है स्वतंत्र कहा जा सकता है ? बड़े व्यावसायिक वर्ग के साथ व उद्योगपतियों के साथ पक्षपात करने वाला न्यायाधीश स्वतंत्र कहलाने का हकदार है ? यदि भारत का मुख्य न्यायाधीश सिद्धान्तों पर अटल रहे तो मुझे इसमें संदेह नही कि सरकार मुख्य न्यायाधीश की सलाह को मानेगी। मैं उम्मीद करूंगा कि ऐसी कोई नियुक्ति नहीं होगी जिसे मुख्य न्यायाधीश अस्वीकृत कर दे।"[1]

99. दिनांक 12.7.85 को मेरे न्यायालय में एक वरिष्ठ एडवोकेट ने गंभीर आपत्ति की कि मैंने पक्षकार के अश्रुपूर्ण नेत्रों को क्यों देखा। एक पक्षकार ने मुझे रोते बिलखते शिकायत की कि लगभग दो वर्ष से उसकी फाइल गायब है व लेबर कमिश्नर तनख्वाह की जमा रकम यह कह कर नहीं दे रहा है कि यद्यपि हाईकोर्ट में उसके विरुद्ध अपील 6 वर्ष पहले खारिज हो गई, परन्तु उसे पुनः सुनने का प्रार्थना-पत्र विद्युत मण्डल के विचाराधीन है, यद्यपि उसमें कोई स्थगन आदेश नही है।

(100) यह एक आश्चर्यजनक संयोग था कि ठीक उसी समय जब "सामाजिक न्याय" के मसीहा भगवती भारत के मुख्य न्यायाधिपति की शपथ दिल्ली मे ले रहे थे, मेरे न्यायालय में यह आपत्ति उठाई जा रही थी कि किसी दुःखी पक्षकार को रोने व आसू बहाने का अधिकार नही है व न्यायालय को आंखे बन्द कर लेनी चाहिये। जहां भगवती से भागीरथ बन हर गांव, ढाणी व चौपाल पर न्याय गंगा ले जाने की अपेक्षा आज करोड़ों भारतीय कह रहे हैं वहां "आसुओं की धारा को कानूनी तलवार से रोकने" की बहस की जा रही है। एडवोकेट बन्धु ने इस अश्रुधारा को देख, मुकदमे को सुनने की आज्ञा को "एक्स्ट्रेनियस" कारणों पर बताया, मेरे मानस पर प्रसाद की अमर रचना "आसू" चलचित्र की तरह सामने आई:—

"जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक मे स्मृति-सी छाई
दुर्दिन में आसू बन कर वह आज बरसने आई"

(101) न्याय की देवी क्या अन्तरात्मा से भी अन्धी है ? मैंने संकल्प किया कि यह अन्धापन दूर करना होगा व संविधान द्वारा घोषित "सामाजिक न्याय" की शल्य चिकित्सा (operation) से अन्धी न्याय देवी के नेत्र में ज्योति जगानी होगी, यही इस न्यायिक क्रांति का नया आयाम होगा व प्रतिबद्धता संवैधानिक सामाजिक न्याय से होगी। रूढ़ीवादी कानून के अन्धेपन व सर्वहारा, शोषित, दलित, कामगार, किसान, उत्पीड़ित की साधन विहीन विवशता व शोषण की प्रतिक्रांति के विरुद्ध संघर्ष तो न्यायाधीशों को सजगता से करना होगा।

21वीं सदी की ओर बदलते आयामों मे, यह आयाम भी न्याय की तुला को सम रखने को बल देगा व प्रतिबद्धता, मतबद्धता-सामाजिक न्यायिक क्रांति से संपूर्ण करेगा। यही प्रतिबद्धता, न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता के परिवेश मे सर्वहारा को भी न्यायिक मन्दिर में प्रवेश करा कर, "सामाजिक न्याय" प्रदान कर, हर आंख से आसू पोंछने की कल्पना साकार करेगी।

1. [राजस्थान पत्रिका, दिनांक 14 जुलाई, 85]

लोकहित वाद

गंगोत्री सामाजिक न्याय गंगा की

लोकहितों का लोकनायक

1. लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएं, लोकसंस्कृति, लोकनायक, लोकसभा यह सब "लोक" अथवा जन साधारण, आम जनता, के प्रतिनिधित्व के प्रतीक हैं। साधारण या आम जनता जनार्दन या समाज का महत्व, विशेषाधिकार समाज की तुलना मे है। "लोकहित' भी विशेष वर्ग के स्वार्थ के प्रतिकूल आम साधारण वर्ग का हित है। निहित स्वार्थ के प्रतिकूल समस्त समाज या साधारण समूह वर्ग का हित स्वार्थ के विरुद्ध "परमार्थ" ही है।

उत्पीड़ित दलित की ढाल

2. विशिष्ठ व्यक्ति, वर्ग, जाति, समाज एक असाधारण स्वार्थीय वर्ग हैं जिनके हित हमेशा सर्वहारा, निर्धन तबके को दलित, त्रसित, उत्पीड़ित कर अपने स्वार्थ साधना है। अतः लोकहित वाद का मौलिक व मूल अभिप्राय, विशिष्ठ स्वार्थ के हितों द्वारा गरीब के शोषण, दमन के हेतु न्याय के नाम पर अन्याय के विरुद्ध बिगुल बजाकर, अब दलित, उत्पीड़ित, शोषित, कमजोर आम जनता जो वास्तविक "लोक" कहलाने की अधिकारी है उसके हित, को साधना है—यहां लोकहित न्याय हेतु "लोकहित वाद" की भारतीय परिभाषा है जो न्याय की तुला की, अंधी न्याय देवी की आंखें खोलकर, सामाजिक आवश्यकताओं की ओर सजग व सक्रिय करना चाहता है।

भारतीयकरण

3. लोकहित वाद अमेरिका व इंगलैंड की परिभाषा से प्रतिकूल भारतीयकरण द्वारा भारत की परिस्थितियों में, शोषित, दलित, त्रसित, उत्पीड़ित, गरीब, कमजोर विपिन्न, साधन विहीन, समाज की "न्याय मंदिर" मे अंधे न्याय देवताओं को जागृत करने की आवाज, मेरू नाद व अलख जगाने की प्रणाली व प्रकरण है।

सर्वहारा का न्यायिक आन्दोलन

4. यह "उत्पीड़ित समाज का," शोषण व अन्याय के शस्त्रागार के विरुद्ध सामूहिक अहिंसक न्यायिक आन्दोलन है, क्योंकि उनके अभाव में भारतीय परिवेश में "दमन, उत्पीड़न, अत्याचार, अतिक्रमण व मानवीय मूल्यों पर शासकीय व निहित

स्वार्थों के हमलों का प्रतिकार बचाव नहीं। आन्दोलन की आवश्यकता व अनिवार्यता इस कारण है कि न्यायिक क्षेत्र में आज तक सत्ता, साधन व स्वार्थ का संगम, सर्वहारा, शोषित, साधारण नागरिक को न्याय से वंचित रखता रहा है—स्तम्भ लेखक "मंगल बिहारी" के मूल्याकन के अनुसार।[1]

5. स्वतंत्रता की एक कसौटी होती है व्यक्ति व समाज के संबंध का स्वरूप—अब भी सरकार को सम्बोधन करने का नाम प्रार्थना पत्र है। आज भी राज्यपाल महामहिम है; मंत्रिगण या विधायक माननीय हैं तथा अफसर सर या हजूर। न्यायाधीश "मेरे स्वामी" हैं—आम आदमी प्रार्थी या आज्ञाकारी है। मनुष्य की कदर या सुनवाई, समूह दलों या यूनियनों के माध्यम से होती है। अकेला व्यक्ति असहाय, नगण्य तथा उपेक्षणीय है। समूह की कदर शोर या आन्दोलन से होती है............"1

"मेरे स्वामी" द्वारा विरोध

6. निहित स्वार्थ वर्ग के प्रचंड विरोध को परलोक वासी बना, अब यह "लोकहित वाद" 'लौकिक' सफलता से आलोकित होने के युग में, अय्यर, भगवती दर्शन के रूप मे भारतीय न्याय पालिका की अमावस्या में पूर्णिमा की तरह देदीप्यमान होने के युग में प्रवेश कर रहा है।

7. महत्त्वपूर्ण प्रश्न है—क्या यह सामाजिक न्याय गंगा की गंगोत्री बनने में सक्षम है ? यह प्रलेख इसी प्रश्न के उत्तर का चिन्तन, मनन, मंथन व दर्शन है।

जनहित के मुकदमों का इतिहास पिछले सात या आठ वर्षों का इतिहास है। इससे भारतीय जन समाज के वंचित और पीड़ित वर्गों को न्याय उपलब्ध कराने के लिए भारत की न्यायपालिका द्वारा किये गये सतत् प्रयासों का पता चलता है। उपनिवेशवादी परिस्थिति के अनुरूप जो विधिक संरचना खड़ी की गई थी और निर्बाध बाजार अर्थव्यवस्था के चारों ओर जो विधि शास्त्र संरचित किया गया था, उसके कारण, स्वतंत्रता के प्रारम्भिक तीन दशकों तक, भारतीय अर्थ व्यवस्था, समाज के बहुसंख्यक निर्धनों और विशेष सुविधा से वंचित वर्ग की संवैधानिक महत्त्वकांक्षा को पूरा करने के लिए कुछ अधिक नही कर सकी। जैसा एक भारतीय विद्वान ने कहा है, "इस अवधि के दौरान न्यायालय की भूमिका यथास्थिति के पक्षधर जैसी रही प्रतीत होती है।" किन्तु पिछले 7 वर्षों के दौरान न्यायिक क्षेत्र में आई कर्मठता ने न्यायिक प्रक्रिया के नवीन आयाम अनावृत किये हैं और भारत के लाखो न्याय के लिए तरसते, लोगों को नवीन आशा प्रदान की है।

---

1. हम कितने आजाद हो गये हैं-राजस्थान पत्रिका 11-8-85 रविवार परिशिष्ट (1)

शोषण व अन्याय के विरुद्ध आवाज

8. जनहित के मुकदमे उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की विधिक और न्यायिक कार्यकलापो की उपज है। आज हम देखते हैं कि तीसरे विश्व के देशों की तरह ही, भारत में, ऐसे अनेक व्यक्ति समूह है जिन्हें शोषण, अन्याय और, यहां तक कि, हिंसा का शिकार बनाया जाता है और शोषण, संघर्ष और हिंसा के इस वातावरण में न्यायाधीशों को सकारात्मक भूमिका निभानी है और वे मात्र आत्म नियंत्रण और निष्क्रिय विवेचन के सिद्धान्त का सहारा लेकर बैठे नहीं रह सकते। सौभाग्यवश हमारे देश मे न्यायाधीशों को अत्यधिक सक्षम न्यायिक शक्ति, अर्थात् न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्राप्त है और सामाजिक न्याय के हित को अग्रसर करने के लिए इस शक्ति का विवेकपूर्ण और सतत् प्रयोग एक अवश्य-करणीय कर्म है। न्यायपालिका को शक्ति के दुरुपयोग को रोकने तथा उसका प्रतिकार करने तथा शोषण और अन्याय को दूर करने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है। इस प्रयोजन के लिए आवश्यक है कि प्रक्रियात्मक परिवर्तन किया जाए जिससे कि उस नयी भूमिका के द्वारा उत्पन्न चुनौती का सामना किया जा सके जिसे कि न्यायपालिका को पूरा करना है।

लोकहित के नये आयाम

9. कर्मठ न्यायाधीशों के द्वारा जो सृजनात्मक निर्वचन किये गये हैं उनके माध्यम से उपचारो को इस सीमा तक जनतंत्रात्मक बना दिया गया है कि दस या पन्द्रह वर्ष पूर्व तो उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। उच्चतम न्यायालय द्वारा विकसित लोकहित के मुकदमों की नीति के कारण न्याय जन साधारण को सरलता से उपलब्ध हो गया है और उस विशाल जन समूह की उस न्यायिक प्रक्रिया तक सुगमता से पहुंच हो गयी है जो अब तक विधिक प्रणाली की परिधि से बाहर था।

क्या भगवती, भागीरथ बन सकेंगे ?

10. लोकहित वाद (पब्लिक इन्टरेस्ट लिटिगेशन) न्यायिक क्रान्ति के क्षेत्र मे "भगवती" के पर्यायवाची बन चुके है। मार्च सन् 1978 में न्यायमूर्ति प्रफुल्ल चन्द्र नटवरलाल भगवती ने बंधुआ मुक्ति मोर्चा की याचिका पर बन्धुआओं को मुक्त कराने और उनकी दयनीय स्थिति की जांच आयोग की ऐतिहासिक आज्ञा देकर "सामाजिक न्याय" के क्षितिज को देदीप्यमान व ज्योतिर्मय किया। अग्निवेद की शोषण के विरुद्ध ज्वाला अब सर्वोच्च न्यायालय में धधकने लगी। 12 जुलाई 1985 को राष्ट्रपति भवन में मुख्य न्यायाधिपति की शपथ ग्रहण के साथ ही समाचार पत्रों की सुर्खियो मे उनके साक्षात्कार में छना "लोकहित वाद" अब

गहरी जड़ें जमा चुका है। संसार की कोई ताकत उसे उखाड़ नहीं सकती। महत्त्वपूर्ण यह है कि इसे देश भर के लोगों का समर्थन मिला है। गरीब लोगों की पहुंच तक न्याय को लाने का यह एक आदर्श तरीका है। "क्या यह भागीरथ" के रूप में "भगवती" की न्याय गंगा घर-घर तक पहुंचाने का दृढ़ संकल्प है?

सामाजिक क्रियाशीलता वादकरण—प्रो० बख्शी

11. यद्यपि उच्चतम न्यायालय द्वारा विकसित इस व्यूह रचना को लोकहित के मुकदमें कहा जाने लगा है किन्तु प्रो० उपेन्द्र बख्शी जो एक प्रसिद्ध विधि शास्त्री हैं, इसे सामाजिक क्रियाशीलता वादकरण कहते हैं क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका में लोकहित के मुकदमों ने एक अर्थ ग्रहण कर लिया है और यह एक विशेष प्रकार की स्थिति से संबंधित है जो कि विशेष प्रकार से अमेरिकी प्रकृति के हैं। भारत में जिस प्रकार के लोक हित मुकदमों का मॉडल विकसित हुआ है वह संयुक्त राज्य अमेरिका के लोक हित मुकदमो से भिन्न है। हमारा मॉडल गरीब तबकों और अन्य कमजोर वर्गों के लिए राजनैतिक-आर्थिक स्थिति में एक नया मोड़ तलाशने की ओर उन्मुख है।

12. यह अन्य बिखरे हुए और अल्पज्ञत गरीबों की आकांक्षाओं के अनुरूप कार्य करने और शोषण और परिपीड़न से लोगो की रक्षा करने तथा उन वर्गों को नई सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा के कार्यक्रमों के फायदे दिलाने मे कार्यपालिका की विफलताओं या निष्क्रियताओं की ओर ध्यान इंगित किये जाने के लिए किया जाता है। साथ ही कार्यपालिका से यह अपेक्षा करने की दृष्टि से भी ऐसा किया जाता है कि वह गरीबों और साधनहीन लोगो के प्रति अपने संवैधानिक एवं विधिक दायित्वों का निर्वहन करें। मोटे तौर पर देश के सबसे उच्च न्यायालय के प्रयासो से लोक हित के मुकदमों की प्रभावी रूप से संकल्पना की जा सकी है और अब यह संस्थात्मक रूप ग्रहण करने की दिशा मे आगे बढ रही हैं। समाज के गरीब तबकों को संवैधानिक और विधिक अधिकार मुहैया कराने तथा उन्हें सामाजिक न्याय मिले इस बात को सुनिश्चित करने के लिए इसे विधि के शस्त्रागार में एक प्रभावशाली हथियार के रूप में माना जाने लगा है।

गरीब तबकों को मानवाधिकार का प्रयास

13. लोकहित के मुकदमों का सारा जोर स्थापित व्यवस्था और निहित स्वार्थों के विरुद्ध है। यह बड़े गर्व और संतोष का विषय है कि भारत सरकार लोक-हित के मुकदमो की व्यूह रचना को समर्थन दे रही है। भारत के न्यायालय, लोक-हित के विरुद्ध नौकरशाही के प्रतिरोध को इस बात पर बल देते हुए काफी हद तक कम कर सके हैं कि लोक हित के मुकदमे विरोधी पक्षकारो के मध्य चलने वाले मुकदमो की प्रकृति के नहीं है अपितु यह एक प्रकार का चैलेन्ज है और

सरकार के समक्ष एक अवसर है कि वह इसके माध्यम से गरीब तबकों और समुदायों के आधार भूत मानवाधिकार सुलभ करा सके तथा उन्हें व्यापक न्याय दिला सके और यह उस उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में एक समुचित प्रयास है।

पीड़ पराई जाने रे

14. प्रो. उपेन्द्र बख्शी के वाक्यांश से उद्धरण देना चाहूंगा कि "परिपीडन को गंभीरता से लेना"। इस कारण से प्रो. उपेन्द्र बख्शी से सहमत होते हुए इस उद्यम को लोक हित के मुकदमों के बजाय "सामाजिक क्रियाशीलता वादकरण" कहना उचित होगा। संयुक्त राज्य अमेरिका के लोकहित के मुकदमों के मुकाबले सामाजिक क्रियाशीलता वादकरण का क्षेत्र अधिक व्यापक है। सारांश यह है कि सामाजिक क्रियाशीलता वादकरण का सारा ध्यान गरीबों के शोषण और उनके अधिकारों एवं हकों से निहित स्वार्थ वालों द्वारा उन्हें वंचित किये जाने तथा सरकार की ऐजेन्सियो और अन्य अभिरक्षण प्राधिकारियो द्वारा किये जा रहे दमन को प्रकाश मे लाने पर केन्द्रित है और यही इसका कार्यक्षेत्र है।

मार्क गैलेन्टर का मत

15. एक लम्बे अर्से तक न्यायालयों का उपयोग ऐसे लोगों द्वारा होता रहा है जो धनवान और सम्पन्न रहे हैं और मार्क गैलेन्टर के शब्दो में जो लोग मुकदमे बाजी के खेल के मजे हुए खिलाड़ी रहे हैं जो कि बार बार इस व्यवस्था से लाभ उठाते रहे हैं गरीब लोगों को खर्चीले आधार के कारण न्यायिक प्रणाली से बाहर कर दिया गया है और वे क्रियात्मक रूप से विधिक्षेत्र से बहिष्कृत हो गये हैं। गरीब आदमी के लिए न्यायालय के द्वार पर पहुंचना असंभव था क्योंकि जागरूकता, अपने अधिकारो के प्रति आग्रह और संवैधानिक और विधिक अधिकारों के प्रवर्त्तन के लिए जिस तंत्र की आवश्यकता है वह उसके पास नही था।

'लोकस स्टेन्डी' में बदल

16. उच्चतम न्यायालय ने यह विचार किया कि सुने जाने के अधिकार के पारम्परिक नियम को त्याग दिया जाय और यह उपबन्ध करके न्याय को सुलभ कराया जाय कि जहां कही भी किसी व्यक्ति या किसी वर्ग के व्यक्ति को विधिक अन्याय या विधिक क्षति पहुंचायी जाती है और ऐसा व्यक्ति या वर्ग के व्यक्ति, गरीबी या अक्षमता या सामाजिक या आर्थिक सुविधा से ग्रस्तता के कारण, अनुतोष के लिये न्यायालय मे जाने में असमर्थ हैं तो, सद्भावपूर्वक कार्य करने वाला कोई आम आदमी या सामाजिक कार्य करने वाला ग्रुप, ऐसे व्यक्ति या वर्ग के व्यक्ति को किये गये किसी विधिक अन्याय या विधिक क्षति के लिये न्यायिक प्रतितोष के लिये उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में एक आवेदन कर सकता है।

न्यायालय के द्वार गरीबों को खुले

17. अब पहली बार न्यायालय के द्वार गरीबों और दलितों, अज्ञानी और अनपढो के लिये खोल दिये गये हैं, जिसका परिणाम यह हुआ है कि उनके मामले न्यायालय के समक्ष सामाजिक कार्यवाही के वादकरण की मार्फत आने लगे हैं। निर्धन और अक्षम पहली बार यह अनुभव करने लगे कि ऐसी भी कोई संस्था है, जिसके समक्ष वे शोषण और अन्याय के विरुद्ध प्रतितोष के लिये आ सकते हैं। वे सरकारी अनाचार और प्रशासनिक विच्युति के विरुद्ध सुरक्षा मांग सकते हैं। भारतीय मानव समाज के वंचित और दुर्बल वर्ग के लिये उच्चतम न्यायालय एक आशा की किरण बन गया है। इससे लोगों मे एक नई आस्था मिली और उसने विचाराधीन कैदियो, मुसीबत की मारी स्त्रियों, जेल में बन्द किशोरो, भूमिहर किसानों, बंधुआ मजदूरो और अन्य बहुत से असुविधाग्रस्त लोगो को न्यायिक इतिहास मे अभूतपूर्व रूप से न्याय देना आरम्भ किया।

पत्र-रिट याचिका बना

18. उच्चतम न्यायालय ने एक प्रणाली विकसित की है जिसे पत्रवाही अधिकारिता के रूप में जाना जाने लगा है, जिसमें किसी असुविधाग्रस्त व्यक्ति की ओर से एक पत्र लिखकर न्यायालय को आवेदन किया जा सकता है।

स्वतः न्यायालय अन्वेषण साक्षी सामग्री

19. यह स्पष्ट है कि गरीब और असुविधाग्रस्त सम्भवतः अपने मामले के समर्थन मे न्यायालय के समक्ष सामग्री प्रस्तुत नही कर सकता और इसी प्रकार जनभावना से जुडे ऐसे नागरिक या सामाजिक कार्यवाही ग्रुप के लिये सहायता की आवश्यकता है। अतः उच्चतम न्यायालय ने सामाजिक विधि जांच आयोग नियुक्त करने की व्यूह रचना चलायी। उच्चतम न्यायालय ने तत्वान्वेषण के लिये निष्कर्षों तथा सुझावों के सिफारिशों को उपवर्णित करते हुये अविलम्ब एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिये सक्रिय सामाजिक कार्य-कर्त्ताओ, शिक्षकों, अनुसंन्याताओं, पत्रकारों, सरकारी अधिकारियों को, न्यायिक अधिकारियों को न्यायालीय कमिश्नरो के रूप मे नियुक्त करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसे अनेक मामले हुएं हैं जिनमें उच्चतम न्यायालय ने यह प्रक्रिया अपनाई है।

बंधुआ मुक्ति मोर्चा

20. फरीदाबाद पत्थर खदानों मे बन्धुआ मजदूरो के विद्यमान होने से सम्बन्धित एक अन्य मामले मे,[1] उच्चतम न्यायालय ने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान

1. बन्धुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 1473

में कार्यरत समाजशास्त्र के एक प्राध्यापक डा० पटवर्धन को, पत्थर खदान कर्मकारों की दशाओं के सम्बन्ध मे सामाजिक-विधिक अन्वेषण करने के लिए नियुक्त किया और उसके द्वारा दी गयी रिपोर्ट के आधार पर उच्चतम न्यायालय ने बन्धुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ एवं अन्य के सुविख्यात मामले में अनेक निर्देश दिये।

नारी निकेतन[1]

21. आगरा प्रोटिक्टिव होम के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने उन दशाओं के सम्बन्ध मे, कि जिनमें लड़कियां उस प्रोटेक्टिव होम में रह रही थी, प्रोटेक्टिव होम जाने और एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए आगरा के जिला न्यायाधीश को कमिश्नर के रूप में नियुक्त किया और उसके द्वारा दी गयी रिपोर्ट के परिणामस्वरूप न्यायालय ने समय-समय पर अनेक निर्देश दिये जिनका परिणाम यह हुआ कि प्रोटेक्टिव होम में जीवनयापन की दशाओं में सुधार आया।

कानपुर चमार अधिकार प्रकरण[2]

22. 1981 मे, कानपुर के चमारों के पिछड़े समुदाय के द्वारा एक शिकायत की गयी, जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में मृत-पशुओं के शवों की खाल उतारने का व्यवसाय परम्परा से करता चला आ रहा था, कि अपना व्यवसाय करने का उनका मौलिक अधिकार मृत-पशुओं की खाल उतारने और खाल, सीगो और हड्डियों का व्यापार करने के अधिकारों की नीलामी उच्चतम बोली लगाने वाले व्यक्ति को करने की प्रणाली के जरिये, अनुचित रूप से छीना जा रहा है। अपनी गरीबी, अनभिज्ञता और पिछड़ेपन के कारण चमार लोग अपने केस के समर्थन मे कोई भी सामग्री पेश करने में असमर्थ थे। इसलिए उच्चतम न्यायालय ने एक सामाजिक-विधिक कमीशन चमारो की शिकायत के सम्बन्ध में अन्वेषण करने और शिकायत के सही होने न होने से सम्बन्धित आंकड़े और सामग्री एकत्र करने के लिए नियुक्त किया जिसमें विधि का एक प्राध्यापक और एक पत्रकार था। कमीशन ने अपने सामाजिक-विधिक अन्वेषण की एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की और सम्बन्धित प्रशासकों एवं विकास-वैज्ञानिकों के साथ व्यापक परामर्श करके, शवों के उपयोग की एक वैकल्पिक स्कीम भी प्रस्तुत की, जो चमारों के अधिकारो की रक्षा करेगी।

---

1. उपेन्द्र बख्शी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार : 1983 (2) एस. सी. सी. 308
2. गुलशन हीरालाल बनाम जिला परिषद् कानपुर : 1981 (4) एस. सी सी. पृष्ठ 202;

नये उपाय : सामाजिक विधिक अन्वेषण

23 जब सामाजिक-विधिक अन्वेषण की रिपोर्ट न्यायालय को प्राप्त हो जाती है ताकि रिपोर्ट मे वर्णित तथ्यों या आंकड़ो के सम्बन्ध में विवाद करने का इच्छुक कोई भी पक्षकार शपथ-पत्र फाइल करके ऐसा कर सके और तब न्यायालय, कमीश्नर की रिपोर्ट तथा फाइल किये गये शपथ-पत्रो पर विचार करेगा और प्रार ऐड अर्जी में उठाये गये विवाद्यकों का अधिनिर्णय करने की कार्यवाही करेगा। उच्चतम न्यायालय ने ऐसे नये उपाय खोज निकालने का प्रयास किया जिनसे समुदाय के वंचित वर्गों को अपेक्षित मात्रा में न्याय मिलना सुनिश्चित हो जाये।

पालना आवश्यक

24 सामाजिक हित के मुकदमों में न्यायालय के आदेशों का प्रवर्तन कराने वाले राज्य तंत्र के असफल होने के परिणामस्वरूप लाभ प्राप्त न करने वाले ऐसे समूह जिनकी ओर से सामाजिक हित के मुकदमें दायर किये गये हैं, न केवल प्रभावी न्याय से वंचित करेंगे बल्कि उन पर मनोबल गिराने वाला प्रभाव भी पड़ेगा और लोग सामाजिक हितो के मुकदमों की मार्फत न्यायालयों द्वारा न्याय प्रदान किये जाने मे विश्वास खो देंगे। सामाजिक हित के मुकदमों की इस रणनीति की सफलता या असफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह किस सीमा तक समुदाय के सहज पीड़ित वर्गों को वास्तविक राहत उपलब्ध कराने में समर्थ है और यदि न्यायालय द्वारा सामाजिक हित के मुकदमों मे पारित आदेश मात्र कागजी दस्तावेज ही रह जाते हैं तो उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रस्तुत यह रणनीति अपने समस्त अर्थों और प्रयोजनों मे वंचित हो जाएगी।

मॉनिटियरिंग एजेन्सी

25. बन्धुआ मुक्ति मोर्चे का मामला लूंगा। उस मामले में उच्चतम न्यायालय ने पत्थर खदानों में बन्धुआ मजदूरों का पता लगाने, उन्हें मुक्ति दिलाने और उनका पुनर्वास करने के, न्यूनतम मजदूरी की संदाय सुनिश्चित करने के, श्रम विधियों के अनुपालन के, स्वास्थ्यप्रद पेयजल उपलब्ध कराने के और धूलि शोषण यंत्र स्थापित करने के, विभिन्न निदेश देते हुए आदेश दिया। उच्चतम न्यायालय ने एक मॉनिटरिंग एजेन्सी स्थापित की जो उन निदेशों की क्रियान्विति को बराबर मॉनिटियर करेगी। बिहार मे विचारण-पूर्व के निरोध सम्बन्धी मामलों में उच्चतम न्यायालय ने निदेश दिया कि राज्य सरकार प्रति वर्ष 31 अक्टूबर को रहे

विचाराधीन कैदियों[1] की वार्षिक जनगणना के आंकड़े तैयार करे और उच्च न्यायालय को भेजे तथा उच्च न्यायालय ऐसे मामलों के शीघ्र निपटारे के लिए निर्देश दे जिनमें विचाराधीन कैदी अनुचित रूप से लम्बी कालावधियों तक निरुद्ध रहे हों।

उच्चतम न्यायालय ने बिहार के अन्धकरण मामलों में[2] निर्देश दिया कि जिन विचाराधीन व्यक्तियों को अन्धा कर दिया गया था उन्हें अन्धों के किसी संस्थान में व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाये और जीवन में उन्हें व्यवस्थापित करने के लिए प्रतिकर दिया जाये।

क्रियान्विति व पालना न्यायालय करावे

एशियाड मजदूर[3] के मामले मे उच्चतम न्यायालय ने सामाजिक सक्रिय-कार्यकर्ताओं की मॉनिटरिंग एजेन्सी स्थापित की। एक पत्रकार शीला बर्से[4] द्वारा दायर किये गये एक अन्य मामले मे उच्चतम न्यायालय ने यह निदेश दिया कि महिलाओं के लिए एक अलग हवालात होनी चाहिये जिसकी प्रभारी एक महिला कान्स्टेबिल होनी चाहिये। साथ ही प्रत्येक पुलिस हवालात में एक नोटिस भी लगा होना चाहिये जिसमें गिरफ्तार किये गये व्यक्ति के अधिकारो के सम्बन्ध मे सूचना हो। उच्चतम न्यायालय ने यह भी आदेश दिया कि पुलिस हवालातो की न्यायिक अधिकारी द्वारा समय-समय पर जाच की जानी चाहिये। उच्चतम न्यायालय ने एक दूसरे मामले मे यह निर्देश भी दिया कि विनिर्दिष्ट सामाजिक कार्यकारी ग्रुपों के परामर्श से और उनकी उपस्थिति मे पुनर्वास सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिये। ऐसे अनेक मामले हैं जिनमें उच्चतम न्यायालय ने सकारात्मक कार्यवाही की जाकर उपचार किये जाने के निर्देश दिये हैं।

अग्निवेष की निराशा

26. परन्तु स्वामी अग्निवेष ने बंधुआओं के बीसियों लोकहित वाद लड़कर सफलता के बाद असफलता में निचोड़ निकालते हुए कहा "होता यही है कि कुछ नही होता। सरकार को अपनी करतूत छिपाने के लिए आइडिया मिल जाता है।"

---

1. हुसैन आरा खातून वगैरह बनाम गृह सचिव बिहार राज्य 1980 (1) एस. सी. सी 81, 91, 93, 105, 108.
2. खत्री बनाम बिहार राज्य: 1981 ए.आई आर, एस. सी. 928.
3. पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ: 1982 ए. आई. आर. एस. सी. 1473.
4. शीला बर्से बनाम महाराष्ट्र सरकार: 1983 (2) एस.सी सी. 96 (पुलिस थानो मे महिला अपराधियों के साथ अमानवीय व्यवहार)

निरर्थक परेड : तोमर

27. आलोक तोमर ने "अदालतों में लोकहित नही सधता" की निराशात्मक अभिव्यक्ति की। उनका कहना है "लेकिन न्याय के इस अचूक समझे जाने वाले प्रयोग की नियति धारदार बल्लम के रेत मे धंस जाने जैसी निकली। सात साल बाद अब मानवाधिकारो के लिए लड़ने वालो के मन में लोकहित वाद के लिए उत्साह नही रह गया है। वे अपने अनुभवो के आधार पर जानते हैं कि यह सब एक निरर्थक परेड़ है। जनपथ से जाने वाली पगडंडी जिस प्रसाद में ले जाकर उन्हें छोडती है, वहां से सारे दरवाजे अंधेरी कोठरियों में खुलते हैं। कोठरियां दरवाजे और कोठरियां। क्योकि कोर्ट से न्याय हो भी जाए तो उस पर अमल तो उसी सरकार और समाज को करना है जिसके खिलाफ फैसला हुआ है।"[1]

निर्णय कागजी-लोकहित नहीं सधता

28. तोमर के विवेचन के अनुसार 26 जनवरी 1981 तक विभिन्न सामाजिक राजनैतिक और स्वयंसेवी सस्थाओं ने लोकहित में 2835 मामले दायर किए थे। इनमें से 2051 अकेले सर्वोच्च न्यायालय में थे और बाकी आंध्र, केरल, मध्य प्रदेश और कर्नाटक उच्च न्यायालयो में थे। सर्वोच्च न्यायालय में तब से (डेढ साल) 101 मामले और दर्ज किए गए हैं और इनमें से 70% पहले के उच्च न्यायालयो के फैसलों की अपीलें है। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय में 1983 तक दर्ज मामलो मे 75% ऐसे थे जो न्याय की प्रक्रिया मे ही ढेर हो गए। कई दूसरी तीसरी पेशी में रद्द कर दिए गए और कुछ एक साल में अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए। 25 मामलों में फैसले हुए लेकिन सरकार की मक्कारी की शिकायतें अदालत को करनी पड़ी। इनमें एक फैसला एशियाड़ में काम करने आए मजदूरों के बारे में था। लोकनिर्माण विभाग डी. डी. ए. और दिल्ली प्रशासन के उद्यान विभाग में 1800 मजदूरों को नियमित और मस्टर-रोल पर रखने की हिदायत उच्चतम न्यायालय ने फरवरी 1982 मे दी थी लेकिन कुल 350 लोगों को लिया गया और इनमे भी ज्यादातर को बाद मे दो-दो चार-चार करके चलता किया गया।

आलोक तोमर की चेतावनी का उत्तर

29. तोमर को सरकारी क्रियान्विति की शून्यता, शिथिलता व असफलता पर वेदना है, परन्तु यह तो जन जागरण, जागरूकता व जनशक्ति के दबाव पर निर्भर करता है। न्यायपालिका तो कार्यपालिका का कार्य नही कर सकती, ठीक वैसे ही जैसे पत्रकार या लेखक, न्यायाधीश बनकर निर्णय नहीं दे सकता, न मंत्री बनकर राज्य प्रशासन को आदेश, न अफसर बनकर कार्यान्विति।

30. असफलता के परिवेश में सफलताओ को भी मैं उद्धृत करना चाहूंगा ताकि न्याय की तुला पर दोनो को न्यायाधीश के नाते तोला जा सके।

---

1. जनसत्ता दिनांक 17 जुलाई 1985, सम्पादकीय पृष्ठ 4.

निषेधाज्ञा, गोडावन शिकार–सफलता के कीर्तिस्तम्भ—अरब शहज़ादे की वापिसी

31. लोकहित ही नहीं निर्जीव पक्षीहितवाद का अद्वितीय उदाहरण अरब के शहज़ादों द्वारा दुर्लभ पक्षी (गोडावन) शिकार पर राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा निषेधाज्ञा से मिलता है। यह रिट याचिका जोधपुर के लोकहित वाद के रूप में की गई, जब जैसलमेर के रेगिस्तान में अरब के शहज़ादे शौकिया शिकार करने "बाज" पक्षियों को लेकर पैट्रो डालर की असंख्य मुद्रा बिखरते हुए "गोडावन" पक्षियों को चुन-चुन कर मार रहे थे। न्यायाधीश श्री सुरेश अग्रवाल ने अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीतिक संबन्धों की चिन्ता न करते हुए भारत सरकार के आमन्त्रित मेहमान शहज़ादों को निषेधाज्ञा से "बैरंग पोस्टकार्ड" की तरह खाली हाथ लौटा दिया व उनके "तख्तो ताज, गाज व बाज" सब कटे पतंगों की तरह खाड़ी देश मुंह लटकाए लौटे।[1]

गंगाजली कांड

32. भागलपुर जेल आंख फोड़ो कांड में अन्ततोगत्वा—जेल व पुलिस अधिकारियों को स्वयं जेल जाना पड़ा, क्या यह लोकहित वादो की सफलता का कीर्तिस्तम्भ नही है? सुप्रीम कोर्ट में यह वाद क्या आया—भारत में, निस्सहाय अवस्था में कैदियों पर ज़ुल्म ढाने वाले हज़ारों सरकारी आतताईयो को सांप सूंघ गया व अत्याचार का दौर शिथिल होकर बहरहाल रुक गया।

जेलों में लम्बी सड़ान

33. बिहार की जेलो में अकारण लंबे समय तक बिना निर्णय हुए सड़ने वाले हज़ारों कैदियों को, भारत में पहली बार रिहा किया गया—हुसैन आरा खातून के लोकहित वादों की पुकार से। इनकी संख्या 10 हज़ार से अधिक पाई गई। जेल का हर कैदी अन्याय व अत्याचार को पशु की तरह सहन कर रहा था—यह लोकहित वाद प्रकरण ही था कि वर्षो तक समाचार पत्रो मे विचाराधीन कैदियों को बिना फैसले सड़ाने के खिलाफ सुर्खियां छपती रही व भारत ही नहीं विश्व के मानव हित रक्षा आयोग व संस्थाओ का ध्यान खींचा।

34. क्या श्री तोमर इसे न्यायपालिका का इस दशक ही नही शताब्दी की "निर्धन, निर्बल व निस्सहाय को लोकहित न्याय" की असाधारण अद्वितीय उपलब्धि मानने से नकारेंगे?

आँख चाहिए देखने के लिए

35. कालकोठरियों में नारकीय यातनाओं में सड़ रहे, [illegible], [illegible] शाह, को किसने रिहा कराया?" बम्बई के पुलिस थानों म "[illegible] से वंचित महिला विचाराधीन कैदियो" की पशुओं जैसे [illegible] के विरुद्ध किसने

1. तेजदान बनाम भारत सरकार, एस. बी. सिविल रिट नं 1/1979 जोधपुर

आवाज सुन कर उन्हें मानवीय सुविधाएं प्राप्त कराईं ? उत्तर—केवल "लोकहित वाद" है ।

भागलपुर बंदियों के अंधे कांड ने नवजागरण किया

36. भागलपुर जेल के बन्दियों की आंखें फोड़ने का क्रूर कांड[1] अंग्रेज फिरंगियो के ब्लेक होल की ऐतिहासिक दुर्घटना की तरह उभर कर सामने लाकर पुलिस के दर्जनों जघन्य अपराधियों को जेल व चालान करवाना, धौलपुर की कमला[2] को तन बेचने व शरीर के व्यापार में दर-दर बेचकर वेश्यावृत्ति करके, भारतीय नारियों को सीता सावित्री से गिराकर चौराहे पर नीलाम करने के व्यभिचारी व्यापार का भण्डाफोड़, दिल्ली व आगरा के नारी निकेतन मे भी भारतीय बालाओं का "यौन शोषण" विहार की जेलों में 10–10 वर्ष बिना मुकदमें शुरू हुए हजारो कैदियों की रिहाई, बम्बई के कालवा देवी से लेकर नरीमैन पाइन्ट व चौपाटी के फुटपाथों पर लाखों छप्पर-विहीन गरीब, नर कंकालों व दलित, त्रसित स्लमों में नारकीय जीवन व्यतीत करने वाले लाखों फुटपाथियों को निराश्रित न करने के ऐतिहासिक स्थगन आदेश वर्तमान "नवजागरण के ही कीर्ति स्तम्भ हैं।"

जनहित वाद प्रकरण की बाढ़

37. भारतीय न्याय क्षितिज पर लोक-कल्याणकारी रिट याचिकाओं ने गत-दशक में न्यायपालिका के गिरते हुए मूल्यों व अनुपयोगिता को रोक कर उसका जीर्णोद्धार व पुनरूत्थान कर जन आकाक्षाओं के अनुरूप दिशा दी है। एंग्लो सैक्शन फिरंगियों का न्याय व्यक्तिगत स्वार्थों के टकराव से दो व्यक्ति, परिवार या दलों तक सीमित था। अब समाज, समूह, नगर, ग्राम, मोहल्ले के हित में कोई भी लोकहितकारी या व्यक्ति संस्थान न्याय-मंदिर मे प्रवेश कर सकता है।

महिलाओं को पुलिस कोठरियो में यातनाएं

38. महिलाओं को बंबई के पुलिस थानों की कालकोठरियों में अमानवीय एवं क्रूरतम दुर्व्यवहार के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट ने शीला वर्से[3] के पत्र पर समाज कल्याण विभाग निदेशक से परीक्षण करा, सुधार कर मानवीय व्यवहार के निर्देश दिए हैं। विश्व प्रसिद्ध एशियाड के निर्माण कार्य में रत कामगारो को न्यूनतम मजदूरी श्रम कानून के अनुसार देने के निर्देश देकर शोषण के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय

---

1. खत्री बनाम बिहार सरकार ए. आई. आर. 1981 एस. सी.पृ. 928
2. कर कपूर, अरुण और बनाम मध्य प्रदेश, राज., उत्तरप्रदेश, दिल्ली सरकार रिट नं. 2229, 1981 जुलाई, 30, 1981 को सु. को. में प्रस्तुत 1982 (एस. सी. पी. जरनल सैक्शन।)
3. शीला वर्से बनाम महाराष्ट्र सरकार [1983(2) S.C.C. 96]

ने ऐतिहासिक निर्णय[1] दिए हैं। भगवती ने इस निर्णय में लोक-हित प्रकरणों के क्षतिज का अभूतपूर्व विस्तार किया व नए नए आयाम प्रस्थापित कर कहा कि "निर्बल कमजोर समाज के दलित, शोषित, उत्पीड़ित, पिछड़े असहाय, विभिन्न वर्ग के हितों के लिए कोई भी व्यक्ति जहांगीर की घंटी बजा सकता है।"

आगरा नारी निकेतन

39. प्रो. उपेन्द्र बख्शी[2] की रिट याचिका मे सुप्रीम कोर्ट ने उत्तर प्रदेश के आगरा नारी निकेतन मे तिरस्कृत महिलाओं को अमानवीय एवं पशुतुल्य नारकीय जीवन से मुक्त करा कर मानवीय सम्मान को प्रस्थापित किया।

मजदूर हितकारी कानूनों को पालना

40. सलाल हाइड्रो प्रोजेक्ट के कामगारों[3] को मजदूर हितकारी कानूनो के अनुकूल लाभ दिलाने का श्रेय पिपुल्स यूनियन की रिट याचिका को है, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने जन हितकारी वाद मानकर जम्मू काश्मीर सरकार को निर्देश दिए। सर्वोच्च न्यायालय ने इंडियन एक्सप्रेस 26 अगस्त, 1982 में प्रकाशित एक पत्र के माध्यम से ही इन मजदूरों के शोषण व दुर्गति का करुण क्रन्दन सुना।

सीकरी कुंजुन कमेटी-रेल दुर्घटना रोक

41. रेल्वे सेवाओ मे दुर्घटनाओं को रोकने एवं उपाय करने के बाबत एक साधारण नागरिक ने सर्वोच्च न्यायालय में एक रिट याचिका[4] प्रस्तुत की जिसके परिणामस्वरूप वाचू, सीकरी व कुंजुन कमेटी ने 1970 के पश्चात् की दुर्घटनाओं की जांच रिपोर्टों की ओर रेल विभाग का ध्यान आकर्षित कर सर्वोच्च न्यायालय ने रेल कानून व नियम के अनुकूल यात्रियो की सुरक्षा व सुविधाओं को देने के लिए आदेश दिये।

अकाल राहत कार्य—न्यूनतम मजदूरी

42. राजस्थान के तिलोनिया ग्राम के सामाजिक कार्यकर्ता श्री सनजीत राय की रिट याचिका[5] पर अकाल राहत कार्यों मे मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी देने की आज्ञा सर्वोच्च न्यायालय ने दी। यह दुर्भाग्य है कि पाली में आयोजित "नि.शुल्क कानूनी सहायता सम्मेलन" में जस्टिस भगवती को श्रमिकों ने आर्तनाद

---

1 पीपुल्स यूनियन, भारत सरकार, ए. आई. आर. 1982 एस. सी. पृ. 1473
2. डा उपेन्द्र बख्शी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार 1983 एस. सी. पृ. 308
3. कामगार सलाल हाइड्रो प्रोजेक्ट बनाम जम्मू काश्मीर सरकार (2) एस.सी. सी. 181=1984 (3) एस.सी.सी. पृष्ठ 538
4 डा० पी नाला थोम्पाथेरा बनाम भारत सरकार 1983 (4) ए.सी. पृ. 598
5. संजीत राय बनाम राज. सरकार ए.आई.आर. 1983 एस.सी पृष्ठ 305

के साथ बताया कि राज्य सरकार ने निर्देशों को पालना नहीं की है। पत्रों या समाचार पत्रों की कतरनों पर जहांगीर की घंटी की तरह आकर्षित होने वाली जन-हितकारी प्रकरणों की अय्यर-भगवती शैली को डा. एस. के अग्रवाल ने खतरनाक व हानिकारक बताया है क्योंकि इससे जनहित की मुकदमेबाजी बढेगी।[1] गुजरात के राज्यपाल वी. के. नेहरू ने नारी निकेतन व जेल में विचाराधीन कैदियों की दुर्दशा के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई दखल की ओर भर्त्सना करते हुए कहा है कि यह कार्य तो साधारण दण्ड न्यायिकों का है, इससे सर्वोच्च न्यायालय की प्रतिष्ठा गिरेगी।[2]

नेहरू-अग्रवाल आलोचना आधारहीन

43. मेरी मान्यता है कि सदियों की गुलामी से पीड़ित भारतीय समाज नागरिक अधिकारों के प्रति आज भी पूरा जागरूक नहीं हुआ है व हमारी न्यायपालिका में दण्डनायक दण्ड प्रक्रिया की धारा 133 को रतलाम नगरपालिका के प्रकरण के अपवाद को छोड़कर शायद ही समझ पाए हैं। जनहित के संदर्भ में दयनीय दंडनायक, से यह अपेक्षा करना कि वह खंजन मंडल,[3] बाके लुहार,[4] रामचन्द्र,[5] हुसेन आरा,[6] डा० उपेन्द्रनाथ बख्शी[7] कमला प्रकरण[8] पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स,[9] गुलशन,[10] सुनील बत्रा,[11] फ्रांसीसी मूले,[12] फर्टिलाईजर कारपोरेशन,[13] पी. के. कातीयानी,[14]

1. के. एम. कुशी व्याख्यान, दिल्ली, इ'डियन एक्सप्रेस 15-3-85।
2. इ'डियन एक्सप्रेस 17-3-85।
3. खंजन मंडल इ'डियन एक्सप्रेस दिनांक 18-9-83 रविवारीय पत्रिका पृष्ठ 2;
4. बांके लुहार इन्डियन एक्सप्रेस 3-9-82 पृष्ठ 4
5. रामचन्द्र पिल्लइ बनाम केरल राज्य (1964) 11 के. एल. आर. पृष्ठ 225
6. हुसैन आरा खातून व अन्य बनाम गृह सचिव बिहार राज्य 1980 (1) एस.सी.सी. पृष्ठ 81, 91, 93, 105, 108, -,
7. डा. उपेन्द्र बख्शी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1983 (2) एस.सी.सी. पृष्ठ 308
8. अरुण शौरी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, राजस्थान एवं देहली, रिट नं० 2229/81/1981 (4) एस.सी.सी. जरनल सैक्शन पृष्ठ 1;
9. पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राईट्स व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य ए.आई.आर. 1982 एस.सी.सी. पृष्ठ 1473
10. गुलशन बनाम जिला परिषद् कानपुर-1981 (4) एस सी.सी. 202;
11. सुनील बत्रा बनाम देहली प्रशासन ए. आई. आर. 1980 एस सी पृ. 1579;
12. फ्रांसिस करोली मुल्लन बनाम प्रशासन, संघीय क्षेत्र देहली ए. आई. आर. 1981 एस. सी. पृष्ठ 746;
13. फर्टिलाईजर निगम कामगार यूनियन वाद 1981 (2) एस.सी.आर. पृ० 52;
14. श्रीमती पी. के. कातीयानी कोटायम वाद; जरनल ऑफ बार कौंसिल ऑफ इ'डिया खण्ड नं० 1; 1982 पृष्ठ 1581;

संजीतराय,[1] भागलपुर बन्दी[2] भ्रांख फोड़ काड, झुग्गी झोपड़ियों, फुटपाथियों के ऐतिहासिक स्थगन निर्णय कर सकेंगे, अव्यवहारिक ही नही बल्कि असंभव के साथ-साथ असंवैधानिक भी होगा, क्योंकि जनहित में सामाजिक न्याय देने की सर्वोच्च न्यायालय की सीमा आकाश के विस्तृत क्षितिज व सागर की गहराई की तरह है, परन्तु दयनीय दंडनायक के पास अनु० 226,32,141 के संवैधानिक अधिकारों का अभाव तो है ही, साथ ही वह जिस सीढ़ी का निम्नतर खंडहर है उसको अनेक दु.खद कठिनाईयां हैं।

राज्यपाल नेहरू आंकड़े देखें

44. संभवतया राज्यपाल महोदय को यह नहीं बताया गया कि बिहार की जेलों में हजारो कैदी, जुर्म होने वाली पूर्ण सजा को बिना मुजरिम साबित हुए भुगता चुके हैं जबकि वहां हजारो दण्डनायक विद्यमान हैं। यदि भगवती शैली में हुसैन आरा के पांच निर्णय नही होते तो ये विचाराधीन कैदी जन्मजात वही मर जाते। यदि भागलपुर जेल बंदियों के आंख फोड़ो का क्रूर कांड, कमला को वैश्यावृत्ति के लिए दर-दर बेचने जैसे हजारो कांड, दिल्ली, आगरा, नारी निकेतन के यौन शोषण, बांका लुहार की 37 वर्ष बाद रिहाई, खंजन मंडल को कानूनी निःशुल्क सहायता, रूदल शाह, रामचन्द्र गिरीया के असाधारण लंबे कारावास की रिहाई प्रकरण सर्वोच्च न्यायालय में नहीं आते, तो दंडनायकों के असहाय, निष्क्रियता, कर्त्तव्यहीनता व संविधान के सितारे धारा 141 व 32 के अधिकारो के अभाव मे ये न्याय मंदिर अन्याय के अड्डे व कसाईखाने की तरह बदनाम हो जाते।

45. डा० अग्रवाल व राज्यपाल नेहरू शायद इससे भी अनभिज्ञ हैं कि तिलोनिया के संजीत राय की रिट में अकाल राहत कार्यो मे निम्नतम मजदूरी 8 रुपए प्रतिदिन के देने की सर्वोच्च न्यायालय की आज्ञा को तथा एशियाड़ मे पारित ऐसी अनेक आज्ञाओ को कार्यपालिका आज भी टालती रही है व मजदूरो का पूरा भुगतान नहीं हुआ है। फिर साधारण दंडनायक की पालना कराने की क्षमता सुप्रीम कोर्ट से बढ़कर कैसे हो सकती है?

46. जनहित प्रकरण से उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय की साख व प्रतिष्ठा इतनी अधिक बढ़ी है कि उसकी कल्पना भी करना सम्भव नही है। यह सत्य है कि कभी कभी अपवाद मे इसका दुरुपयोग हो सकता है—परन्तु इससे इस

---

1. संजीत राय बनाम राजस्थान राज्य ए. आई. आर. 1983 एस सी पृष्ठ 305
2. खत्री बनाम बिहार सरकार–ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 928

शैली के महत्व व उपयोगिता को नकारा नही जा सकता, केवल उसके नियंत्रण की आवश्यकता है।

नेहरू-तुलजापुरकर-अग्रवाल बनाम देसाई ठक्कर रेड्डी विचारधारा

47. प्रो० अग्रवाल व राज्यपाल नेहरू की जनहित प्रकरणों में अय्यर व भगवती-देसाई-ठक्कर-रेड्डी युग की आलोचना को आदर सहित, प्रतिक्रान्ति की ही सज्ञा दी जा सकती है। यही तुलजापुरकर विचारधारा[1] भी है। परन्तु न्यायिक क्षेत्र हो या अन्य सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्र सुधारको व क्रान्तिकारियों को हर युग मे प्रतिक्रान्ति का सामना करना ही होता है।

48. बैंक राष्ट्रीयकरण,[2] प्रिवीपर्स समाप्ति,[3] जमींदारी समाप्ति,[4] व मोटर वाहन एकाधिकार समाप्ति[5] शाह-सिकरी न्यायालय ने इसी "प्रतिक्रान्ति" का प्रयास संवैधानिक मौलिक अधिकारों के नाम पर किया था, परन्तु जन-आकांक्षाओ व जनादेश ने संवैधानिक संशोधनों की झड़ी लगा कर न्यायिक प्रतिक्रान्ति को धराशाही कर दिया। दुर्भाग्य यह है कि जब न्यायालय में भगवती विचारधारा क्रान्तिपूर्ण जन कल्याणकारी प्रकरणों को प्रोत्साहन दे रही है तो उसको प्रोत्साहन देने की जगह, राज्यपाल भी आलोचना में लगे हैं।

जहांगीर की घंटी बजी

49. सामाजिक न्याय का यह स्वर्णिम अध्याय एक बार फिर विक्रमादित्य के न्यायिक सिंहासन व जहांगीर के इन्साफ के घंटे की याद को ताजा करता है। लगता है जैसे दिल्ली के सर्वोच्च न्यायालय ने जनहित की, फरियादी को पक्षकार पद्धति को तिलांजली दे व कानून व न्याय पद्धति की लालफीताशाही को ताक में रख, गरीब से गरीब दलित, उत्पीड़ित व छोटे भारतीय को तुरन्त अविलम्ब, सस्ता-सुलभ न्याय देने का बिगुल बजा दिया है। यह हमारी न्याय व्यवस्था द्वारा तेनसिंग की तरह हिमालय शिखर के एवरेस्ट की विजय है जो उल्लेखनीय व श्लाघनीय है तथा हमें इस पर गौरव है। न्यायाधीशों के निर्णयों[6] में भी "लोकस स्टेन्डी" का विकास काले बादलों में विद्युत प्रकाश के समान है।

---

1. इनसाइट पृ० 7 दिनांक 17-12-83
2. आर. सी. कपूर बनाम भारत संघ ए. आई. आर. 1970, एस. सी. पृ० 564 प्रिवीपर्स समाप्ति।
3. माधवराज सिंधिया बनाम भारत संघ ए. आई. आर. 1971 एस. सी. पृ. 530 जमींदारी समाप्ति।
4. पश्चिमी बंगाल बनाम श्रीमती बेला बनर्जी व अन्य ए.आई आर. 1954 एस.सी. पृष्ठ 170।
5. मोतीलाल बनाम उ. प्र राज्य ए. आई. आर. 1951 एस. सी पृष्ठ 257।
6. 1982 एस. सी. पृ. 149 एस. पी. गुप्ता बनाम भारत सरकार।

प्रशासन व अन्याय के विरुद्ध न्यायपालिका की तलवार के नए आयाम

50. प्रशासनिक आक्रमणों व अन्याय के विरुद्ध न्यायालय के द्वार अब पूरे खुल चुके हैं क्योंकि "राज्य" की परिभाषा में आयोग व सरकारी कम्पनियाँ आदि भी आ चुकी हैं। रमन्ना रेड्डी बनाम इण्टरनेशनल एयरपोर्ट[1], मोतीलाल पदमपत[2] व कस्तूरी लाल के निर्णयों[3] ने नागरिकों की सुरक्षा के नए आयाम स्थापित किए हैं। सरकारी तंत्र द्वारा मनमानी पक्षपात व अन्याय करने पर जहांगीर के घंटे बजाने की अनुमति अब गरीब व दलित को भी दे दी गई है। अब कभी कभी फुटपाथिये व भिखमंगे भी जंजीर खींचने लगे हैं, यद्यपि वह जंजीर खर्चे के अनुसार सोने की है व न्याय महंगा है व विलम्बकारी है।

37 वर्ष तक विचाराधीन : देसाई लुहार, जेल में पागल।

51. राची जेल के लम्बरदार गोरिया को आर्म्स एक्ट में अधिकतम सजा के 2 वर्ष के प्रावधान पर भी जून 1970 में विचाराधीन कैदी रखा गया व 1979 में सर्वोच्च न्यायालय में इस असाधारण अन्याय के भंडाफोड़ पर रिहा किया गया। परन्तु 2 सितम्बर 1982 को न्यायाधीश भगवती की अदालत मे विश्व में न्याय व्यवस्था पर कालिख लगाने वाला देसाई लुहार का हृदय कम्पायमान करने वाला प्रकरण प्रस्तुत हुआ। सन् 1945 में देसाई उर्फ बांका को गिरफ्तार किया गया जो दरभंगा (बिहार) की जेल में तीन दशक तक रहने से पागल हो गया व पहले पुलिस की मारपीट से बहरा गूंगा हो गया। जमशेदपुर विधि सहायता समिति ने इस रोमाचकारी हृदय-विदारक करुण कहानी को दिल्ली दरबार के न्याय देवताओं की पूजा के पुष्पों के रूप में लोकहित वाद प्रस्तुत किया है, जिसमे भारत के न्यायिक हिरासतों के सारे काले इतिहासों को लज्जित किया व धिक्कारा है। अभी तक असली जुर्म में देसाई के अपराधी होने का निर्णय भी नहीं हुआ, परन्तु "बांका" अपने यौवन को ही नहीं, जीवन को भी खो चुका है, वह पागलखाने में चिल्ला रहा है।

अन्वीक्षा विहीन–तीन दशक का कारावास

52. बिहार प्रांत की जेलों में अन्वीक्षा हेतु विचाराधीन कैदियो को मानसिक, शारीरिक, आर्थिक व सामाजिक तृष्णा से किंकर्तव्यविमूढ, आत्मचिंतित आहत मन के लिए माननीय मुख्य न्यायाधिपति वाई. वी. चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति भगवती, एवं उनके सहयोगी, लीक से हटकर मात्र संकलित नियमो/उपनियमो एवं विधान की सीमा को लांघकर उन अभागो की दारुण, हृदयविदारक कारावास

---

1. ए. आई. आर. 1979 एस. सी. पृष्ठ 1628
2. ए. आई. आर. 1979 एस. सी. पृष्ठ 621
3. एस. सी. सी. 1980 (4) पृष्ठ 1।

के जीवन की गाथाम्रो व ग्रधिकारियों के अन्यायों से ग्रभिभूत होकर, हर्जाने के बिन्दु पर भी द्रवित ग्रात्मा से सोचने लगे हैं। मानव ग्रधिकारों, शांति एवं सद्-भावनाग्रों के लिए संघर्षरत ग्रन्तर्राष्ट्रीय संगठन एमनेस्टी इंटरनेशनल, यूनेस्को ग्रादि, यदि बिहार की जेलों में विचाराधीन कैदियों की गाथाएं सुनें तो ग्रवश्य चौंक कर विस्मृत हो जाएंगे कि किस प्रकार यहां मानवता ग्रपना दम तोड़ रही है। यहां "हुसैन ग्रारा" लोक हित प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष, प्रस्तुत तथ्यों को उद्धृत करना सामयिक रहेगा जो बांका लुहार व ऐसे ग्रन्य उदाहरणों के ग्रतिरिक्त है।

ग्रपराध-विमुक्ति के बाद भी 14 वर्ष का कारावास

53. सर्वोच्च न्यायालय ने ग्रपने ग्रादेश द्वारा प्रथम दृष्टया दोषारोपण के ग्रभाव मे ग्रपराध विमुक्ति के बाद भी 14 वर्ष कारावास की ग्रवधि भुगत चुके व्यक्ति को बिहार सरकार द्वारा हर्जाना दिए जाने के निर्देश पारित किए। यह ग्रादेश न्यायक्षेत्रो में उदाहरण बनकर दोहराया जावेगा। जून 1968 में रूदल शाह को माननीय जिला एवं सत्र न्यायालय द्वारा दोष मुक्त कर मुक्ति के ग्रादेश पारित किए गए थे, किन्तु लालफीताशाही, ग्रफसरशाही के जाल ने उसे 14 वर्ष तक कारागृह मे बन्दी रखा।

54. माननीय मुख्य न्यायाधिपति चन्द्रचूड़ द्वारा पीठासीन खण्डपीठ ने राज्य सरकार की कड़े शब्दो में निन्दा कर प्रताड़ित किया कि सरकार को ग्रपने ग्रधिकारियों की जिम्मेदारियों एव शर्मनाक कुकृत्यो के प्रति दायित्व बोध हो ग्रौर वह इसे स्वीकार करे।

55. रूदल शाह को 30,000/- रुपये पूर्ववती भुगतान 5,000/- रुपए के ग्रतिरिक्त हर्जाना दिलवाने के निर्देश के साथ माननीय न्यायाधिपति ने विचार व्यक्त किया कि यह राशि उसके व उसके परिवार की क्षतिपूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं है या सामन्जस्य नही रखती है। उसके परिवार ने रूदल शाह का जो सान्निध्य खोया है उसे लौटाया जाना सम्भव नही है।

56. सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश जारी कर बिहार उच्च न्यायालय का यह मौलिक दायित्व बतलाया कि वह रूदल शाह जैसे ग्रन्य ग्रभागे प्रतीड़ित विचाराधीन बन्दियों की सूचना प्राप्त कर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदर्शित मार्ग निर्देशानुसार ग्रविलम्ब ग्रग्रसर हो।

57. सर्वोच्च न्यायालय ने ग्रपने ग्रादेश में राज्य सरकार को प्रताडना व चेतावनी देकर ग्रागाह किया कि वह इस प्रकार 14 वर्ष तक ग्रकारण बन्दी बनाए जाने का ग्राधार प्रकट करे। जेल ग्रधीक्षक, मुजफ्फरपुर द्वारा पेश किए गए ग्राधारहीन स्पष्टीकरण को किसी भी माने में संतुष्टिजनक नहीं पाया।

58. शाह को उनके पागलपन के कारण मुक्त नहीं किया गया, यह मात्र मुंह छिपाने वाली बात है। यदि सरकारी तंत्र के कारण विचाराधीन बन्दियों की यही स्थिति है तो शीघ्रातिशीघ्र इस ओर सोचना 'सोशल ह्यूमन्' की उक्ति को चरितार्थ करेगा।

अन्वीक्षा काल के 30 वर्ष का कारावास

59. दिसम्बर 1981 में एक अन्य लोकहित प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने मुक्ति आदेश पारित कर 5 मार्च, 1982 से किशनगंज जल मे विचाराधीन बन्दी बालूजी गांव निवासी रामचन्द्र को दण्ड से मुक्त कर दिया। किन्तु बन्दी को मात्र इस आधार पर कारागृह में रखा गया कि वह बन्दीकाल मे विक्षिप्त अपराधी बन चुका था। राज्य सरकार ने उसे जीवन पर्यन्त 300/- रु. प्रतिमाह की राशि इस संदर्भ में पूर्ववर्ती समुचित क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा पारित आदेश की तिथि से भावी जीवन में प्रदान किया जाना सहर्ष स्वीकार किया, सर्वोच्च न्यायालय ने समस्त बकाया राशि का भुगतान चार सप्ताह मे किए जाने की कड़ी हिदायत के साथ सरकारी पेशकश स्वीकृत की।

उपरोक्त उपलब्धियों से युवा सामाजिक कार्यकर्ता[1] व विधि चिन्तक विनोद सुरोलिया, एडवोकेट संतुष्ट नही। उनकी वेदना व संवेदनशीलता जेल की कोठरियों में अन्वेषण हेतु सक्रिय है। उनका निचोड़ है कि—

"परन्तु आज भी हमारी जेलो में एक रूदल नही है, बल्कि लाखो रूदल, मौहम्मद मियां, बोका ठाकुर, काशीराम तथा सेडू भट्टाचार्य के रूप मे लाखो उस न्याय व्यवस्था के प्रतीक हैं। जिन्दगी के सफर में पैरो मे निष्ठुर बेड़ियां पहने हुए वे न्याय के मंदिर से अपना मुकदमा निर्णीत कराने के लिए टकटकी बांधे खड़े हैं जिनके नाम तक भी टोकन नम्बरों में बदल चुके हैं।"

चेतना शक्ति कुंठित

60. "यद्यपि न्यायाधीश ने पीड़ित को क्षति-पूर्ति प्रदान करके अपने सामाजिक न्याय का परिचय दिया, परन्तु उसके जीवन के साथ जो क्रूर मजाक किया गया है उसके लिए कौन जवाबदेह है ? क्या क्षति-पूर्ति के रूप मे दी गई धनराशि रूदलशाह के जीवन के लहलाहते सुनहरे तीस वर्ष पुनः लौटा सकती है जो उसने लौह सलाखो से मढ़ी सुरंग सी तंग अंधेरी कोठरी में दर्दनाक पीड़ा व यंत्रणा के बीच गुजारे हैं ? क्या ईश्वर की सर्वोत्तम कृति तथा मनु की संतान की यन्त्रणा तथा पीड़ा को धन की तुला पर तोला जा सकता है ? कितनी बड़ी त्रासदी है कि न्याय

1. विनोद सुरोलिया : भारतीय जेलें, अपराधो की जननी; राजस्थान पत्रिका सम्पादकीय पृष्ठ दिनांक 17-7-85।

लुढ़कता है तो सम्पूर्ण राष्ट्र लुढ़क जाता है परन्तु इन्सान लुढ़क रहा है तो किसी को फिक्र नहीं है! क्या मानव मूल्यों से प्रेम करने वाली हमारी चेतना शक्ति कुंठित हो गई है ?

कैदियों में वृद्धि

61. "जेलों में विचाराधीन कैदियों की संख्या लगातार बढ़ रही है। आंकड़ों की भाषा क्रूर अवश्य है परन्तु सत्य है कि 1960 के बाद विचाराधीन कैदियों की संख्या में पचास प्रतिशत वृद्धि हुई है, जबकि सिद्ध दोष अपराधियों की संख्या में सात प्रतिशत की वृद्धि हुई है। गृह राज्य मन्त्री ने राज्य सभा मे बताया कि सन् 1979 में विचाराधीन कैदियों की संख्या 76,818 थी जो 1982 में बढ़कर 93,311 हो गई। जेलों की सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार, सन् 1984 के अन्त तक बिहार में 23,300, दिल्ली में 8,585, उड़ीसा में 4,231, उत्तर प्रदेश में 21,450, तमिलनाडु में 5,657, जम्मू-कश्मीर में 865, पश्चिमी बंगाल में 9,275, मध्यप्रदेश मे 10,800, महाराष्ट्र में 5,335, राजस्थान मे 2,994, पंजाब में 7,175, हरियाणा मे 1,123, आंध्रप्रदेश में 2,015 तथा नागालैण्ड में 205 विचाराधीन कैदी न्यायिक प्रक्रिया के नाम पर खामोशी के साथ अपने मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण होता हुआ देख रहे थे। ये बढ़ते हुए आंकड़े विश्व को अहिंसा तथा विश्व बन्धुत्व का संदेश देने वाली हमारी सांस्कृतिक गरिमा के खोखलेपन को उजागर करते हैं। हुसैनआरा खातून बनाम बिहार राज्य के प्रकरण में न्यायाधिपति पी. एन. भगवती ने विचाराधीन कैदियो के प्रति अपनी घनीभूत पीड़ा को उड़ेलते हुए कहा कि ये विचाराधीन कैदी कारागृहों मे इसलिए बन्द नहीं हैं कि उन्हें सजा दी गई है, न यहा इस भय से बन्द हैं कि जमानत पर रिहा होते ही फरार हो जाएंगे, फिर अपराध की पुनरावृत्ति करेंगे तथा पुलिस उन्हे नही पकड़ पाएगी, बल्कि कारागृहों में सड़ने का कारण उनकी दरिद्रता है।"

डूबने को चुल्लू पानी नहीं–100 कैदियों पर एक नल

62. "आज जब सामाजिक मान्यताएं तथा मापदण्ड बदल रहें हैं परन्तु हमारी जेल व्यवस्था नब्बे वर्ष पुराने प्रिजन एक्ट 1884 व प्रिजनर्स एक्ट 1900 पर टिकी हुई हैं। ज्यादातर जेलें 100 वर्ष पुरानी हैं तथा जीर्ण-शीर्ण अवस्था मे पड़ी हुई हैं जहां गन्दगी का बोलबाला है व शौचालय, पीने का पानी, बिजली तथा स्नानागार आदि की अच्छी व्यवस्था नहीं है। देश की आधुनिकतम प्रेसीडेन्सी जेल मे डेढ सौ बंदियों पर एक नल तथा अलीपुर विशेष जेल मे 700 बंदियों पर एक नल है। भागलपुर जेल में सन् 1979 से लेकर 1980 तक कानून के रक्षक पुलिस कर्मियो द्वारा लम्बे नोक वाले तकुए की सहायता से इक्कीस बंदियों के नेत्रों मे

गंगाजल के नाम से ज्वलनशील तेजाब डालने की अमानवीय व वीभत्स घटना भी सामने आई है, जो मध्ययुगीन नृशंसता का परिचय देती है।"

जेलों में किशोरों का अप्राकृतिक मैथुन — सिफलिस

63. "जेलों में महिला कैदियों का यौन शोषण तथा किशोर कैदियों के साथ अप्राकृतिक मैथुन किया जाता है। किशोर अपराधियों के साथ तिहाड़ जेल मे किए जा रहे अप्राकृतिक मैथुन की शिकायत जब उच्चतम न्यायालय में की गई तो मुख्य न्यायाधिपति वाई. वी. चन्द्रचूड़ तथा न्यायाधिपति ईरादी के आदेश पर किशोर अपराधियों की डाक्टर राममनोहर लोहिया अस्पताल में डाक्टरी जांच कराई तो पन्द्रह किशोर बन्दी सिफलिस जैसे भयानक रोग से पीड़ित पाये गए। जेल मैनुअल के अनुसार कैदियों को दी जाने वाली भोजन सामग्री में से भी जेल प्रशासन की ओर से तीस से चालीस प्रतिशत की कटौती की जाती है। अमानुषिक यंत्रणा के बल पर कैदियों से अधिकारियों के घर पर बलात श्रम कराया जाता है। महाराष्ट्र की धूले जेल में बन्द कैदी भगवान मधुकर दत्तात्रेय ने जो पांच सौ रुपए की अर्थदण्ड की राशि नहीं चुकाने पर चार साल की सजा भुगत रहा था, जेल मे अपने पर किए गए अमानुषिक अत्याचार से बम्बई उच्च न्यायालय को पत्र लिखकर अवगत कराया जिस पर बम्बई उच्च न्यायालय ने उसके पत्र को याचिका मानकर बार कौंसिल को जांच करने का आदेश दिया। बार कौंसिल ने वरिष्ठ अधिवक्ता श्रीमती इन्दिरा जयसिंह के नेतृत्व में जांच कराई तो रोंगटे खड़े करने वाले तथ्य सामने आए कि सिर्फ सब्जी में कीड़े निकलने की शिकायत जेल अधीक्षक को करने पर ही उसे कोठरी में बन्द कर दिया तथा मनुष्य का मल खाने तक को भी विवश किया गया।"

लोकहित वाद निरर्थक—आलोक तोमर का मत

64. तोमर के अनुसार एक्शन ग्रुप फॉर लीगल राइट्स एण्ड सिविल राइट्स त्रिवेन्द्रम ने हाईकोर्ट में किराएदारों के हितों की रक्षा के लिए कई याचिकाएं पेश की जो निरर्थक रही व 1979 से 1982 तक के प्रयासो का फल "शून्य" निकला। बिहार मिल संघ ने मजदूरों की अनुबन्ध शर्तों को बेहतर कराने हेतु हाईकोर्ट मे 14 जनवरी 1980 को प्रार्थना पत्र दिया पर 6 जुलाई 1985 तक सुनवाई ही प्रारम्भ नही हुई। बंगाल के फार्म लेबर के विरुद्ध जलपाई गुडी कृषक सेवा मंदिर ने 1983 में मामला दायर किया 100 मजदूरों ने गवाही देने की पेशकश की, पर मार्च 1985 में मामला "गवाही नहीं होने के कारण" निरस्त कर दिया गया। कानूनी सैल ने सहायता देने से यह कहकर इन्कार किया की पात्रता व्यक्ति की है, संस्थाओं की नही। मध्यप्रदेश के व्याख्याताओं ने जुलाई 1982 में जबलपुर खण्ड पीठ के चक्कर लगाए, पर निराशा हाथ लगी।

65. बिहार, मध्यप्रदेश व उड़ीसा के वंधक मजदूरों के लिए उच्चतम न्यायालय के पुनर्वास का कैसे सरकार ने स्यायीकरण किया इसका नग्न चित्र हमारी न्याय पद्धति में कहावत है कि "जीतने वाला हारता है व हारने वाला मृत प्रायः हो जाता है" परन्तु लार्ड क्लाईव के समय से अब तक हम उससे ही आलिंगन कर रहे हैं।

अंधेरे में उजाला

66. उपरोक्त वेदना व निराशा में भी लोकहित प्रकरण ही अंधेरे मे उजाला कर सकता है। उदाहरण के लिये नागपुर के नागरिक समिति की लोकहित याचिका पर 12-10-84 को जस्टिस मसूदकर ने महाराष्ट्र विद्युत बोर्ड को 24 घटे में आरेन्ज मार्केट की सड़कों पर विद्युत लगाने का आदेश दिया व उसकी पालना के लिए नौकरशाही व पुलिस को वाध्य किया। इसी प्रकार नागरिक सुविधाओं के अभाव को दूर करने हेतु मसूदकर ने नागरिक जांच समिति से जाच करा, नगर परिषद् के विरुद्ध उसके विरोध को नकार कर, रिपोर्ट प्रकाशित कराई। मसूदकर अन्य लोकहित प्रकरण में विचार कर रहे हैं कि नागपुर टेलीवीजन केन्द्र, नागपुर के कार्यक्रमों को पूर्ण न्यायपूर्ण अनुपात में दर्शाता है या नहीं।

बम्बई का एफ. ए. सी. लोकहित प्रकरण में

67. बम्बई न्यायालय आजकल गृह निर्माण कर्ताओं द्वारा खुली जमीन एफ ए. सी. नियम की अवहेलना पर दर्जनों लोकहित रिट याचिकाओ पर विचार कर जनहित मे निषेधाज्ञा जारीकर, नए आयाम स्थापित कर रहा है।

"मनुष्य-मार" खड्डे बन्द

68. जयपुर में विश्वविद्यालय समिति की ओर से प्रो. एस. आर. भंसाली ने नगर में सैकड़ों "मनुष्य-मार" सड़कों पर गड्ढों मे दुर्घटनाओं को रोकने की लोकहित रिट याचिका पेश की तो उत्तर देने के पहले ही क्रियान्विति प्रारम्भ हो गई व खड्डे बन्द करना नगर परिषद् ने रातोरात प्रारम्भ कर दिया।

मेहता की सक्रियता

69. यदि अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति को सामाजिक न्याय के लिए दिए गए खेत खलियान व सस्ते मकानों पर अन्ततोगत्वा सबल सरमाएदार, कुलक कब्जा कर गरीबो का शोषण कर खरीद लेता है, तो इसको न्यायिक क्रान्ति कैसे रोक सकेगी—क्योंकि निर्णय की पालना तो अन्ततोगत्वा खेत खलियान पर ही होगी—न्याय मन्दिर मे नहीं—लोकहित में न्यायालय ने तो निर्णय दे दिया कि सवर्णों द्वारा अनुसूचित व जनजाति के राजीनामा कोर्ट की डिक्री मे वैध किए गये विक्रय भी अवैध समझे जावेंगे, जैसा कि बालू बनाम बिरदा में मैंने निर्णय दिया।

परन्तु वह हजारों वेचान को प्रवंध कराने के लिए भी लोकहित मुकदमे कानूनी सहायता समितियों को करने पड़े जैसा कि पाली व वाली (राजस्थान) मे, विधि सहायता समिति के अध्यक्ष न्यायमूर्ति दिनकर लाल मेहता, की सक्रियता जागरूकता, व निर्धन के लिये संवेदनशीलता से संभव हुआ है।

प्रशासनिक रोड़े स्वाभाविक

70. यह तो चिरन्तन चिरस्थायी सत्य है कि शासक वर्ग चाहे किसी भी दल का किसी भी राष्ट्र में हो "न्यायपालिका" को कानून की जेल में कैदी रखने के अतिरिक्त, उसका सरकारी स्वेच्छाचारिता में दखल का स्वागत नही करता। नेता भी नौकरशाही, अफसरशाही व लालफीताशाही की जेल में "बन्दी रहते हैं" यथास्थिति से परिवर्तन की ओर न्याय गंगा को भी प्रलयंकारी बाढ़ समझते हैं। इंग्लैंड में "कोक" की बरखास्तगी व अमेरिका के "स्टिच इन टाइम सेव्स नाइन" की कहावत जोन रूजवेल्ट को पैंकिग कोर्ट की धमकी के वाद न्यायापालिका पर कालिख सावित हुई। ये न्यायाधीशों की दुविधा के उदाहरण हैं। यदि लोकहित वादो के निर्णयों की पालना मे सरकारी असहयोग है, तो कोई विस्मय नहीं—परन्तु इससे लोकहित वादों की निरर्थकता नहीं बल्कि सार्थकता ही साबित होती है।

काल कोठरियों के दरवाजे तोड़ने होंगे

71. अन्ततोगत्वा ये निर्णय जन जागृति, जनशक्ति को प्रेरणा प्रदान करते हैं—तिलोनिया ग्राम (अजमेर) के लोकहित वाद मे जब भगवती ने अकाल राहत कार्य के श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी की आज्ञा दी, तो संभवतया सरकार ने पूरी पालना नही की परन्तु वातावरण मे जो जागृति पैदा हुई उससे अकाल राहत मजदूरी की दरों को बढाने का निर्णय लेना ही पड़ा। यदि पालना नही की गई तो यह लोकहित वाद लाने वाले व्यक्तियो की निर्बलता है कि वह "अवमानना" का वाद क्यो न लाये? पत्रकारों ने "न्यूनतम मजदूरी" का पत्रो में जेहाद क्यों न छेड़ा? विधायको व सामाजिक कार्यकर्ताओं ने इसे विधान सभा, लोकसभा में गुंजारित कर पालना क्यों न कराई? सरकारी अफसरशाही को बाध्य क्यों न किया गया? यही "ऐशियाड के निर्णय" के बारे मे कहा जा सकता है।

पत्रकार व विधायक लोकहित वाद में भागीदार बनें

72. जागरूक पत्रकार, विधायक, अभिभापक, सामाजिक कार्यकर्ता को उन काल कोठरियों के दरवाजे तोड़ने होंगे जहां ये "आदेश" वंद होकर पालना से वंचित रहते हैं।

सामाजिक स्वीकृति का प्रभाव

73. समाज को भी उन्हें सकारात्मक दृष्टि से अपनाना होगा। कमला की वेश्यावृत्ति व चर्म व्यापार को सुप्रीम कोर्ट के दुत्कार देने के बाद "कमला" को यदि समाज न अपनाये, तिरस्कृत करे, परिवार भी घृणा करे तो "कमला" को आत्महत्या से कौन रोक सकता है? "खंजन मंडल" को मुफ्त कानूनी सहायता की सुप्रीम कोर्ट की आज्ञा होने पर, यदि भूस्वामियों द्वारा जमीन हथियाने के लिए कत्ल कर दिया जाता है, तो यह हमारे शोषक समाज की नंगी शोषण व्यवस्था का दुस्साहस है।

न्याय गंगा मे प्रदूषण रोकें

74. लोकहित वाद न्यायिक क्रान्ति ला सकता है परन्तु "सामाजिक क्रान्ति" व "प्रशासनिक क्रान्ति" का दायित्व तो समाज के कर्णधारों, समाज सुधारकों व पक्षकारों, राजनेताओं व शिक्षाशास्त्रियों पर है। यदि भगवती, भागीरथ बन न्याय गंगा चौराहे व चौपाल व घर-घर पर ला भी सके तो उसमें निर्मल मन से स्नान कर न्यायिक समता प्राप्त करने की सक्षमता तो समाज में गंगा मे डुबकी लगाने वाले पात्रों की होने पर ही सफलता मिलेगी अन्यथा गंगा का प्रदूषण, न्याय गंगा मे भी कौन रोक सकेगा?

अंधी न्याय देवी—आंखें खोले

75. मेरी मान्यता है कि यह लोकहित वाद प्रकरण की विफलता यानि निरर्थकता नही है। हां इतना अवश्य है कि दरवाजे अंधेरी कोठरियो मे न खुलें व अंधी न्याय देवी अब आंखें खोलकर कोठरियों के दरवाजे को तोड़कर बंधन मुक्त व बन्धुआ मुक्त सामाजिक न्याय के बदलते आयाम प्रस्थापित करे, इस हेतु धारदार बल्लम को रेत में न धंसने दें, व शोषण पर सीधा प्रहार कर, अन्याय व अन्याय प्रणाली को न्यायिक क्रान्ति से रक्त रंजित कर दे ताकि खून से सनी रेत से पक्की चट्टान का निर्माण हो सके। इस हेतु लोकहित प्रकरणों मे अधिक उत्साह व गति लाने की आवश्यकता है।

फागम्बर की चेतावनी

76. नोमर के समकालीन इंडियन एक्सप्रेस के स्तम्भ लेखक व चिन्तक वसुधा फागम्बर ने भी "लोकहित" वाद निर्णयों के पश्चात् सामाजिक नकारात्मकता व अस्वीकृति से कुछ मौलिक प्रश्नवाचक चिन्ह उठाए है, जिन्हे भी भुठलाया नही जा सकता।

खंजन मंडल व कमला प्रकरण

77. यह लोकहित वाद की सफलता पर भी असफलता के काले बादल को

अन्तदस्ता है—ठीक उसी तरह जैसे नुवाज अन्दाली प्रकरण जहाँ वह मर कर बनाने पर भी प्रिवी-कौंसिल से जो वहा पर जो उठने के समाचार के साथ ही मर गया।

78. बिहार के विधिक पत्रकार फागम्बर ने 15 वर्ष के कठिन एवं भयंकर दुःखद विधिक युद्ध का परीक्षण किया, जिसे मंडल ने लड़ा क्योंकि उसे धनिक भूस्वामी ने उसकी भूमि एवं निवास से निकाल दिया था एवं उसने अन्त मे उच्चतम न्यायालय से यह निर्देश प्राप्त करने मे सफलता प्राप्त की कि उसे भूमि वापस देने की बजाय मुफ्त विधिक सहायता दी जावे। भूमिहीन एवं बेघर होने के बाद मंडल को अंधा किया गया, भयभीत किया गया, गिरफ्तार किया एवं अन्त मे मार दिया गया। यह कीमत उसे इसलिए चुकानी पड़ी कि उसने अपनी अंगुली भूराजि कुलक के विरुद्ध उठाई एवं मुफ्त विधिक सहायता हेतु वह याचिका के लिए न्यायालय मे गया जिसका उसने कभी प्रयोग नहीं किया। फागम्बर के अनुसार जो समस्या मंडल की दुर्दशा से स्पष्ट हुई वह यह है कि लोक चेतनायुक्त वकील अपने पक्षकारों को संरक्षण एवं शक्ति से संसार मे न्याय तो प्राप्त करते हैं लेकिन वे उनको उसी दलित संसार में वापस भेज देते हैं जिससे वे आते हैं।

लेखक का प्रश्न है कि अगर खंजन मंडल का यह भाग्य रहा तो उनकी दुर्दशा कैसी होगी जिनके मामले संयोगवश रिपोर्ट के आधार पर पकड़े जाते हैं एव "लोकहित मुकदमे" के रूप मे उच्चतम न्यायालय मे लाए जाते हैं।

कमला हत्या चौराहे पर चर्म व्यापार में नीलाम

79. "कमला" लापता हो चुकी है सम्भवतः मार दी गई क्योंकि लोकहित मुकदमों में उसके मामले का राष्ट्रीय शीर्षक में आने के बाद उसकी लगातार उपस्थिति सरकार को बहुत ही कष्टदायक थी। लोकहित मुकदमे मे उच्चतम न्यायालय के आदेश के बाद "नारी निकेतन लड़कियां" लालबत्ती क्षेत्रों "कोठावासियों" के पास वैश्यावृत्ति के लिए जाने को विवश की गई। पहाड़िया लड़के, जिन्हें आठ वर्ष से लम्बे समय तक विचाराधीन रहने के बाद जेल से छोड़ा गया, पुलिस के बदले के भय के कारण भी फागम्बर से कभी नहीं मिले। इस पृष्ठ भूमि में श्री फागम्बर ने निम्नलिखित सारांश निकाला :—

"लोकहित मुकदमे के प्रत्येक प्रयोग से यह अर्थ निकलता है कि खंजन मंडल ने गलती की कि उसने हमारी न्याय प्रणाली पर विश्वास किया। उसे इस अनिवार्यता के समक्ष नत मस्तक हो जाना चाहिए था। कम से कम उसके अंधेपन के बाद एव अपने बचे हुए दिनों को इन्सान की तरह न जीकर कीड़े की तरह जीता। खजन मंडल मर चुका है, लेकिन अगर हम इस अवसर को लोकहित मुकदमे की परिसीमाओं एवं बल के बारे मे प्रयोग करें तो उसके जीवन एवं मृत्यु से उस अंत

व्यक्ति की उपयुक्त प्रशंसा करने के बाद कुछ सीख पाएगें।" विधि चिन्तक फागम्वर की दु:खद अनुभूति, शायद 'प्रसाद" के "आंसू" से ही अभिव्यक्त की जा सकती है।

"जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तिक में स्मृत सी छाई।
दुर्दिन मे आंसू बन कर, वह आज बरसने आई॥"

80 इन्ही प्रकरणो से द्रवीभूत होकर संवेदनशीलता की बाढ में, मैंने अपनी नयी रचना "न्याय पालिका की अग्नि परीक्षा" (ज्यूडिशियरी पयूम्स, फलेम्स, एण्ड फायर) का मूक समर्पण असाधारण, [illegible] माता-पिता, गुरु को न कर, परम्परागत लीक से हटकर, यों किया—

'समर्पित है—
एक न्यायाधीश द्वारा
कमला, खंजन मंडल, उर्मिला व
लाखों अनजाने अन्याय की बलि-वेदी पर
चढ़े शहीदों को"—

मेरी प्रथम पुस्तक "लॉ मोरेलिटी एण्ड पॉलिटिक्स" का भी समर्पण इन्ही आंसुओं को पोछने के लिए अनहोनी शैली में यो किया है—

"समर्पित है—
—एक सम्पन्न (हेव) द्वारा विपिन्न (हेवनॉट) को"

81. इसे नहीं झुठलाया जा सकता कि न्यायालयों की तिजोरियों में बन्द आज भी लाखो उत्पीडित नर कंकाल, असहाय, न्याय पाने को छटपटा रहे हैं। मैं आशान्वित हू "आज नही तो कल" न्यायिक क्रान्ति जिसका एक अल्प स्तम्भ "लोकहित वाद" भी है उसे न्याय दिलाने का प्रयास करेगा। सफलता या असफलता का मूल्यांकन आने वाली पीढ़ी पर छोड़ना विवेकपूर्ण होगा।

असफलता, सफलता की जननी

82. उपरोक्त कटु सत्य हमारी न्यायिक पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन के लिए प्रेरित करते हैं। लोकहित प्रकरण के प्रयासों की किंचित असफलता से हम हतोत्साहित होकर आत्महत्या न करें क्योकि परिवर्तन व क्रान्ति की प्रारम्भिक असफलताऐं उनके दूरगामी सफलताओं की आधारशिला होती हैं। किसी दार्शनिक ने ठीक कहा है "असफलताऐं अन्ततोगत्वा उनको ही धराशाही कर मृत्युलोक मे पहुंचा कर, सफलताओं की जननी होती है।"

भगवती शिक्षा लें

83. फिर भी श्री तोमर व फागम्वर का विश्लेषण तथ्यात्मक व गुणात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण व लोकहित वादों के मसीहाओ की आंखें खोलने व चौंकाने के लिए श्लाघनीय है।

1. पक्षकार पद्धति को तिलांजली दे, बिना व्यक्तिगत क्षति या हित के भी कोई व्यक्ति या संस्था, अन्य के लिये दायरे कर सकती है।
2. नियमानुसार रिट, कोर्ट फीस, स्टाम्प व याचिका न भी हो तो पत्र पर भी सुनवाई हो सकती है।
3. उपलब्ध रेकार्ड की सीमा के बाहर जांच टोली भेज कर तथ्य व साक्ष्य एकत्रित की जा सकती है।
4. राहत देने में न्यायालय की कानूनी परिधि को लांघकर न्याय करने के लिये कोई भी आज्ञा दी जा सकती है। कानूनी तकनीक इसमें बाधक नही है।

89. श्री बख्शी का अग्रलेख "लोकहित वाद न्याय प्रणाली के नये क्षतिज" स्पष्ट करता है कि निराशा होने की कोई आवश्यकता नहीं है। अतः अब हमें पाँचों क्षतिज पर लोकहित वाद को गति देनी है, फिर *काली कोठरियां खुल जावेंगी* व न्याय गंगा, चौपाल, ढाणी, घर-घर व हर दुःखी के आंसू पोंछने, कल-कल छल-छल करती बह निकलेगी।[1]

भगवत की प्रशासन को अन्तिम चेतावनी

90. भगवती ने प्रशासन को चेतावनी दी है कि-"उच्चतम न्यायालय ने सामाजिक हित के मुकदमों मे अवमानना की अधिकारिता का अब तक प्रयोग नहीं किया है, किन्तु यदि सामाजिक हित के मुकदमे में पारित किसी विशिष्ट आदेश की क्रियान्विति नही होती और सामाजिक हित के मुकदमों को दायर करने वाले व्यक्ति या सामाजिक कार्य करने वाले समूह का यह दायित्व होना चाहिये कि वह ऐसे अननुपालन की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित करे-उच्चतम व उच्च न्यायालय को उपयुक्त मामलों मे इस अधिकारिता का प्रयोग करना पड़ेगा और उच्चतम न्यायालय को ऐसा करने में कोई हिचक नहीं होगी।"

पालना होगी

91. *आशान्वित होने का कारण यह भी है कि अब उच्चतम न्यायालय* ने सामाजिक हित के मुकदमों में उसके द्वारा किये गए आदेशों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के प्रयोजनार्थ मानीटर अभिकरणों की नियुक्ति भी प्रारम्भ कर दी है। यह भी न्यायिक शक्तियो का नवीन प्रयोग है। उच्चतम न्यायालय ने शीला वर्से के मामले में महिलाओं हेतु पुलिस हिरासत के संबंध में विभिन्न निदेश दिये और यह निदेश दिया कि एक महिला न्यायिक अधिकारी पुलिस हवालातों का समय-समय पर निरीक्षण करे और उच्च न्यायालय को रिपोर्ट करे कि उच्चतम न्यायालय के निदेशों का पालन हो रहा है या नहीं। फरीदाबाद पत्थर खदान कर्मकारों से संबंधित बंधुआ मुक्ति मोर्चा के मामले में भी उच्चतम न्यायालय

---

1. स्टेट्समैन, 18 अप्रेल, 1984 पृष्ठ 6

ने 21 निदेश दिये थे जिनका वर्णन ऊपर कर चुका हूं और इन निदेशों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के दृष्टिकोण से उच्चतम न्यायालय ने लगभग दो या तीन मास के पश्चात् श्री लक्ष्मीधर मिश्रा, संयुक्त सचिव, श्रम मंत्रालय को फरीदाबाद पत्थर खदानों का निरीक्षण करने हेतु तथा यह सुनिश्चित करने हेतु नियुक्त किया कि न्यायालय द्वारा दिये गये निदेशों का क्रियान्वयन किया गया है या नहीं और इस संबंध मे उच्चतम न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत करने को कहा। श्री लक्ष्मीधर मिश्रा ने उसको सौंपे गये दायित्व का मानीटर अभिकरण के रूप मे पालन किया और एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जो उच्चतम न्यायालय के विचाराधीन है। उच्चतम न्यायालय ने नीरजा चौधरी के मामले मे और मध्य प्रदेश राज्य से आने वाले एक अन्य मामले में भी निदेश दिया कि संबधित क्षेत्र के भीतर कार्य करने वाले सामाजिक कार्यकारी समूहों के प्रतिनिधियो को बंधित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम, 1976 के अधीन गठित सतर्कता समिति के सदस्यों के रूप में माना जाए और जब कभी सामाजिक कार्यकर्ता समूह के प्रतिनिधि द्वारा बंधित श्रम का कोई मामला जिला प्रशासन की जानकारी मे लाया जाए तो जिला प्रशासन के लिए यह आबद्धकर होगा कि वह सामाजिक कार्यकर्ता समूह के प्रतिनिधि जो सतर्कता समिति का सदस्य है, की उपस्थिति मे जांच प्रारभ करे और ऐसे संबधित सामाजिक कार्यकर्ता समूह के प्रतिनिधि के परामर्श से और उसकी उपस्थिति में नियुक्त बंधित श्रमिको का पुनर्वास किया जाना चाहिये। इसी नीति का एशियाड कंसट्रक्शन वर्क्स के मामले मे भी पालन किया गया था जिसमे उच्चतम न्यायालय ने विषय वस्तु से संबधित विधि का वर्णन करते हुए तीन सामाजिक कार्यकर्ताओं को निरीक्षक के रूप मे यह सुनिश्चित करने हेतु नियुक्त कर दिया कि राज्य प्रशासन द्वारा श्रम विधियो का पालन किया जा रहा है। यह नयी नीति प्रारंभिक अवस्था मे है किन्तु इसका भविष्य उज्जवल है क्योंकि इस नीति को अपनाकर न्यायालय यह सुनिश्चित करने का प्रयत्न करता है कि उसके द्वारा पारित आदेश का पालन किया जा रहा है या नहीं।

भगवती न्यायालय की अग्नि परीक्षा

92. भगवती न्यायालय मे "भागीरथ" व 'लोकहित वाद" से "लोक कल्याण" की अपेक्षा उतनी ही दुष्कर है जितनी राजनैतिक क्षितिज पर "गरीबी हटाओ", "पिछड़ों को पहले", "अन्त्योदय", "भूदान", "सर्वोदय प्रशासन गांवों की ओर", या धार्मिक क्षेत्र मे "अणुव्रत, अपरिग्रह अहिंसा", "अनेकान्त" या दार्शनिक क्षेत्र मे "वासुदेव कुटुम्बकम्", "विश्व मैत्री" व "सह अस्तित्व" है। परन्तु दुष्कर एवरेस्ट को भी अन्ततोगत्वा हिलेरी व तेनसिंह ने विजयी किया, सागर में पाताल मे प्रवेश

वॉक्स को भी प्राप्त कर व क्षतिज मे चांद तारों को विजयी श्री प्राप्त करने वाला भी मानव ही है। भगवती के उत्तराधिकारी भी युग की आवश्यकताओं के अनुरूप अधिक गतिशील होंगे व न्यायाधीशों मे सैंकड़ो भगवती–अय्यर बनेंगे।

अतः लोकहित वाद भी, भूकम्प व बाढ को पारकर सफल होंगे ही, यदि 20वी सदी में नही तो 21वी सदी मे। आइए हम नींव के पत्थर बन उसमे विस्मृत हो जावें व नीव को अपने सामाजिक न्याय के दर्शन के खून से सीचकर समाधि ग्रस्त हो जावें, यह गुनगुनाते हुए :—

"मैं गुजर जाऊंगा तो क्या, राहत तो रह जावेगी,
काम आ जावेगी सड़क, जितनी भी बन पावेगी।"

लोक अदालत

"लोकहित वाद प्रकरण" का मूल्यांकन, सामाजिक न्याय के "लोक नायक" के रूप में, गत अध्याय में किया गया है। परन्तु लोकहित वाद, उच्चतम न्यायालय में या उच्च न्यायालयों मे "जुगनू की चमक" ही है, क्योंकि 70 करोड़ की जनता का भारत में उपरोक्त न्यायालयों में .07% भी प्रवेश नही हो सकता।

भारत का हर पांचवां परिवार प्रत्यक्ष या परोक्ष में अधीनस्य न्यायालयों या अर्द्धन्यायिक प्राधिकरणों का पक्षकार है। न्यायालयो मे ही लगभग 2 करोड़ वाद विचाराधीन हैं। साथ ही हर वर्ष उच्चतम न्यायालय में 98 683 उच्च न्यायालयों मे 507783 व अधीनस्थ न्यायालयों में 95 लाख वाद दायर होते हैं व इतने ही राजस्व, वित्त, श्रम, सहकारी, कस्टम, एक्साईज, वाहन व अन्य न्यायाधिकरणों व अधिकारियों के यहां संस्थान होते हैं— व दो दशक या तीन दशक तक इनमे से 50% लंबित रहते हैं—वित्त भार, खर्च के कारण कई पक्षकार दम तोड़ देते हैं। कई प्रक्रियाओं से मृत हो जाते हैं– व लाखों "न्यायिक कोमा" बेहोशी मे तड़पते रहते हैं। इनसे भी अधिक वे निर्धन निरक्षर उत्पीड़ित हैं, जो इन न्याय-मंदिरों की सोने की जंजीर को स्पर्श भी नही कर सकते व मूक पशु की तरह अन्याय के शिकार हो जाते हैं, क्योंकि जो मानव, दुर्घटनाग्रस्त मानव को खून से लथपथ होने पर भी हाथ नही लगाता, वह असहाय को सहायता पहुचाना प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझता है अतः लोक अदालत ऐसे मूक पशु तुल्य शोषित दलित वर्ग को, प्रवेश देकर न्याय देने का प्रयास करता है।

"लोक अदालत" प्राचीन, "पंच परमेश्वर" व ग्राम न्याय पचायत अथवा जाति पंचायत का ही वर्तमान युग मे अर्वाचीन पुनर्जन्म है। इसकी प्रेरणा के स्रोत भी कृष्णा अय्यर व पी० एन० भगवती रहे हैं। इसमे जीवन-सचार किया है– गुजरात के प्रयोग ने जो "ठक्कर न्यायालय" मे गतिमान हुआ– तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश, आन्ध्रा प्रदेश, महाराष्ट्र व कर्नाटक मे अब यह "शिशु" युवावस्था में प्रवेश कर रहा है – अधिकतर प्रदेशो मे यह गर्भ मे "स्टिल बॉर्न" है। पूरे भारत के परिवेश में अभी यह "टीथिंग पीरियड" मे ही कहना उपयुक्त होगा, सफलता कहना अतिशयोक्ति नही बल्कि चाटुकारिता (साइकोफेन्सी) होगी– जो न्यायिक निर्भीकता व स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति की हत्या होगी।

"लोक अदालत" का "कानूनी रोग वाहन" (लीगल एम्बुलेन्स) भी गुजरात मे प्रचलित नाम है। कही "क्लिनिक" व "कैम्प" भी कहते हैं।

2 अक्टूबर, 1984 को पोरबन्दर लोक अदालत मे मुख्य न्यायाधीश पोटी के निमन्त्रण पर पहुंचे पक्षकार, सामाजिक कार्यकर्ता, अभिभाषक, न्यायाधीशों के लगभग 1000 के समूह को श्री पोटी संबोधित कर रहे थे। गांधी दिवस व गांधी की जन्मभूमि पर गांधी का स्वप्न "देश के नागरिक अपने विवादो को अपनी ही अदालतों मे स्वयं हल करें जब लोक अदालतें सफल न हों तभी सरकारी अदालतों मे जायें।" साकार करने का किंचित प्रयास हुआ तो मैंने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की वाणी गुजारित की—

"देवाला करती दीवानी, मरे फौजदारी की नानी"

थोड़े मे निर्वाह यहां है. अहा —ग्राम्य जीवन भी क्या है ?"

करतल ध्वनि से गुजराती पक्षकारो ने प्रसन्नता प्रदर्शित की।

फिर प्रारम्भ हुआ 32 लोक अदालतो का अभियान — गुजराती मे पट्टे लगे थे हर अदालत पर जिनका अर्थ था विषय उदाहरणतया 'गृहस्थ विवाद — पति पत्नी", "मकान मालिक — किराएदार", श्रम विवाद लेन देन, "दंडसंहिता —फौजदारी" राजस्व भूमि"। हर अदालत मे तीन या पांच न्यायाधीश बैठे थे जो न्यायाधीश कार्यरत नही होकर सामाजिक हो कार्यकर्ता थे व जिले के बाहर के एडवोकेट थे और सामने बैठे थे पक्षकार व उनके परिवार या मित्र।

इस अभिनव प्रयोग मे 550 वादों मे से 288 में पक्षकार उपस्थित हुए तथा 138 मे समझौते व निर्णय सफल हुए।

लोक अदालत पोरबन्दर की सफलता की रपट एच. पी. हाथी न्यायाधीश पोरबन्दर ने लिपिबद्ध की, जिसके मुख्यांश निम्नानुसार हैं:—

2-10-84 को पोरबन्दर व पास के क्षेत्र की जनता ने न्याय करने के नए क्षितिज का लोक-अदालत मे दर्शन किया—

खचाखच भरे पंडाल मे न्यायाधीश तलाटी की अध्यक्षता में मुख्य न्यायाधीश पेटी के भाषण को जनता ने सुना, जिसमे लोक अदालत की परिकल्पना व अभिनव प्रयोग की महत्ता पर प्रकाश डाला गया था—जिसमें सस्ता, सुलभ, शीघ्र, सच्चा, अच्छा न्याय घर बैठे मिल सके।

इस समारोह की विशेष उपलब्धि, न्यायाधीश गुमानमल लोढ़ा के आगमन व सारगर्भित भाषण से हुई, जिसमें हिन्दी व संस्कृत काव्य-पाठ ने जनता का मन मोह लिया व श्रोता मंत्रमुग्ध होकर भावविभोर हो गए—उन्होंने गुजरात के इस अभिनव सफल प्रयोग को भारत के अन्य प्रदेशों के लिए आदर्श बताया व कहा कि जैसे भारत की स्वतंत्रता के लिए गुजरात ने गांधी को दिया वैसे ही सामाजिक न्याय के क्षेत्र में लोक अदालत को। लोक अदालतें न्यायिक क्षेत्र मे, निर्धन को सस्ता, त्वरित न्याय में मार्गदर्शन करेंगी, जो श्लाघनीय है।

न्यायाधीश तलाटी ने वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे लोक अदालतों की उपयोगिता पर जोर दिया।

फिर लोक प्रदालतें प्रारम्भ हुई। 60 सामाजिक कार्यकर्त्ता जिनमें 10 महिलाऐं थी उन्होंने लोक न्यायाधीशों का कार्य किया–प्रनेक एडवोकेटों ने सहयोग दिया–रोटेरी क्लब, जे. सी. लॉईन्स क्लब, चेम्बर भी इस न्यायगंगा को वेग व गति देने में प्रागे प्रायें।

138 मुकदमें सफल समझौतों मे निर्णीत हुए।

एक नया कीर्तिमान श्रामको को एक बड़े उद्योग द्वारा न्यूनतम मजदूरी पर समझौता था–जिसको गुजरात हाईकोर्ट ने लोक प्रदालत को भेजा था। पिता-माता फिर मिल सके व 2 वर्ष की मंजू व 6 वर्ष का सुरेश उनकी गोद में पुलकित हो उठे। राजकोट के एक बिछुड़े, निराशा गृहस्थ को फिर से नया जीवन पति-पत्नी के मिलाप से मिला, जिसे नए युग जीवन का प्रशीर्वाद मुख्य न्यायाधिपति पोटी ने दिया। प्रहमदाबाद की एडवोकेट मिस. कुवरा बेन करीमवाला ने एक प्रन्य बिछुड़े पति पत्नी में प्रेम कराने व फिर से घर भेजकर दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने मे प्रमूल्य योग दिया व प्रन्त में इस युगल जोड़ी का राजीनामा, श्री हाथी न्यायाधीश मे निर्णय में परिणित किया।

उपरोक्त रपट गुजरात के प्रयोग की 1% झांकी है क्योंकि निम्न प्रांकड़ो से पता लगेगा कि 82 से 84 तक वहां लोक प्रदालत प्रभियान लगातार ग्राम ग्राम मे किया जा रहा है व उनके सम्मुख 18361 विचारार्थ मुकदमों मे से 10754 में राजीनामे के निर्णय–लोक प्रदालतों मे हो सके है। सभव है कि यह विचाराधीन मुकदमों का 1% से भी कम हो परन्तु सही दिशा में सही कदम सही समय पर लेने का साहस भी तो श्लाघनीय है।

लोक प्रदालत गुजरात

क्रमांक	स्थान	दिनांक	मुकदमे विचारार्थ	राजीनामा से निर्णीत	सलाह दी गई
1	2	3	4	5	6
1.	यूना	14-3-82			
	कुल योग=		507	212	197
2.	वीरमगाम।	30-5-82	68	47	11
3.	खेबग्रामा	11-6-82	69	43	18
4.	नवसरी	26-6-82	194	81	–
5.	वीरमगाम	10-7-82	128	48	52
6.	घोकल	24-7-82	216	140	40
7	देहगाम	14-8-82	153	81	-
8.	प्रहमदाबाद मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट	28-7-82	208	72	-

1	2	3	4	5	6
9.	इदार	5-9-82	109	75	25
10.	कलोल	11-9-82	395	180	–
11.	सूरत	17,18-9-82	493	388	–
12.	नगराज	25-9-82	138	64	47
13.	सिद्धपुरा	9-10-82	340	169	113
14.	पाटन	23-10-82	351	163	105
15.	अहमदाबाद सिटी सिविल कोर्ट	30-10-82	187	92	–
16.	बारडोली	7-11-82	611	277	205
17.	वाघवान	7-11-82	186	81	68
18.	पालीतना	7-11-82	133	94	22
19.	गांधीनगर		279	157	33
20.	लिमड़ी	27-11-82	144	103	–
21.	अंकलेश्वर	5-12-82	208	103	8
22.	गोधारा	11-12-82	203	142	–
23.	गोण्डल	11-12-82	87	52	–
24.	दीसा	11-12-82	164	84	.10
25.	खम्वालिया	11-12-82	378	191	47
26.	डबोई	11-12-82	298	204	20
27.	वलसार	12-12-82	255	151	6
28.	भुज	25-12-82	174	103	5
29.	जूनागढ़	25-12-82	246	162	–
30.	नाड़ियाद	8-1-83	106	66	–
31.	मुन्द्रो	8-1-83	41	25	–
32.	गण्डेवी	22-1-83	441	224	–
33.	माण्डवी	23-1-83	461	300	–
34.	जम्बूसर	6-2-83	237	118	–
35.	खेरलू	12-2-83	194	138	2
36.	नाथी	12-2-83	251	199	12
37.	कपाडवंज	26-2-83	246	98	–

1	2	3	4	5	6
38.	बड़ोदरा	26-2-83	781	467	11
39.	दान्ता	20-2-83	73	54	19
40.	धनाधरा	6-3-83	222	140	31
41.	माण्डवी कच्छ	26-3-83	187	133	8
42.	वायरा	9-4-83	261	152	3
43.	हलोल	1-5-83	228	139	13
44.	पारड़ी	14-5-83	186	116	–
45.	भैरूच	17-7-83	154	88	3
46.	पाडरा	17-7-83	328	267	–
47.	खेड़ा	21-8-83	974	438	48
48.	अहमदाबाद स्माल कैसेज	17-8-83	156	79	4
49.	मेहसाना	28-8-83	117	47	1
50.	ओलपढ़	25-9-83	362	212	–
51.	राजपिपाला	9-10-83	307	131	101
52.	सूरत	8,9-10-93	227	179	–
53.	मैसन	26-9-83	220	172	–
54.	कम्सड़ा	28.1.84	137	85	–
55.	जुनागढ़	28,29-1-84	75	31	–
56	नाड़ियाद	6-2-84	303	209	–
57.	डेडिया पाढ़ा	11-2-84	209	143	34
58.	डेहाढ	19-2-84	147	65	2
59.	जूनागढ़	19-2-84	7	4	–
60.	वेगासरा	25-2-84	273	254	1
61.	वीरावल	4-3-84	136	75	–
62.	राजकोट	24-3-84	68	50	–
63.	धारमपुर	14-4-84	313	179	10
64.	मनावदर	14-4-84	519	254	1
65.	मोरवी	5-8-84	146	61	27
66.	यूना II	8-9-84	364	218	73

जो शमन योग्य अर्थात् कम्पाउन्डेबिल थे। दण्ड प्रक्रिया संहिता के ऐसे वादों का चयन किया गया, जिनमें दोनों पक्ष फैसला कर शान्ति व्यवस्था मे योगदान दे सकते थे। दीवानी वादों में विशेष रूप से वैवाहिक वादों को प्राथमिकता दी गई। इसके साथ ही भूमि अधिग्रहण, नगरपालिका अपील, मोटर दुर्घटना क्षतिपूर्ति आदि विवाद भी शामिल किए किए। इस प्रकार कुल 2400 वाद लोक अदालत के सम्मुख रखे गए।

कुल मुकदमों से सम्बन्धित दस हजार पक्षकारों को नोटिस भेजे गए, जिसके लिए पुलिस विभाग तथा राजस्व विभाग का सहारा लिया गया। केवल दीवानी मामलों मे पक्षकारों को डाक द्वारा सूचना भिजवाई गई, जो कि लोक अदालत की तिथि से कम से कम पन्द्रह दिन पूर्व भेजी गई। कुछ वादो में यह सूचना चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के माध्यम से भेजी गई। लोक अदालत के लिए पंच मंडलों का चयन जनप्रतिनिधियों से किया गया। पंच मंडल में किसी भी न्यायिक अधिकारी को शामिल नही किया। कुल आयोजित 31 लोक अदालतों में से प्रत्येक के लिए 8 सदस्यीय पंच मंडल (मैम्बर ऑफ ज्यूरी) की नियुक्ति की गई, जिसके लिए बार संघों, रोटरी तथा लायन्स क्लबों, भारतीय विकास परिषद, रोटरी क्लब की इनर व्हीलों की महिला सदस्यों के अतिरिक्त अन्य समाज सेवक तथा समाज-सेविकाओं का सहयोग लिया गया। एक रिजर्व पंच मंडल भी बनाया गया था, जिसमें 100 सदस्य रखे गए थे। इस रिजर्व पंच मंडल के प्रतिनिधि आवश्यकता पडने पर किसी भी लोक अदालत में भेजे जा सकते थे। पंच मंडल के गठन में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया था कि मुकदमों की प्रकृति को देखते हुए लोक अदालतों में उपयुक्त पंचों का ही चयन किया जाए, ताकि मुकदमों को तय करने में कोई तकनीकी व्यवधान उपस्थित हो तो उससे सही परामर्श मिल सके।

लोक अदालतों के विषय में कुछ लोगों को अभी तक सन्देह बना हुआ है कि वे अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर सकतीं। ऐसा चिन्तन करने वालों की इस धारणा का खण्डन 23 सितम्बर, 1984 को मेरठ में लगी लोक अदालत के कमरा नम्बर 1 में ही हो जाता है, जहां 1964 से चल रहे तत्कालीन मेरठ जनपद स्थित हिंडन हवाई अड्डे से सम्बन्धित उस विवाद को सुलझाया गया, जिसमे तत्कालीन मेरठ (अब गाजियाबाद) जनपद के आठ गांवों—पसौंड़ा, नेवला, सिकन्दपुर, मोपुरा, निस्तोली, मुकर्रमपुर, असालतपुर और अफजलपुर के किसान उलझे हुए थे। हिंडन हवाई अड्डा बनाने के लिए इन गांवों के किसानों की जमीनें अधिगृहीत की गई थी, इसके लिए जो क्षतिपूर्ति तय की गई थी, वह उन ग्रामीणों को स्वीकार्य नही थी। 1967 में ग्रामीणों ने इस सिलसिले मे मेरठ में प्रथम अतिरिक्त जिला जज के यहां अपील की थी, इस तरह इस विवाद को लेकर 300 वाद अभी तक विचाराधीन थे

1	2	3	4	5	6
67.	जगाड़िया	16-9-84	336	230	47
68.	अमरेली	23-9-84	329	325	–
69	बोरसड	30-9-84	369	292	–
70.	पोरबन्दर	2-10-84	288	138	–
	कुल योग		18361	10754	1673

उत्तर प्रदेश–लोक अदालत

गुजरात से प्रेरणा लेकर मेरठ में, 23 सितम्बर, 1984 को लोक अदालतों का आयोजन किया गया। कुल आयोजित 31 लोक अदालतों में आठ सदस्यीय पंचमण्डल रखा गया। 2400 मुकदमों में लगभग 1600 पक्षकार उपस्थित हुए जिनमे 1135 मुकदमे लोक अदालतो द्वारा निर्णीत कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया गया।

इसके लिए श्री भव्य निधि, अधिवक्ता गुजरात में जाकर अनुभव प्राप्त करके आए। वेद अग्रवाल ने इस लोक-अदालत का विशद् विवरण प्रस्तुत किया जिसके मुख्यांश निम्नलिखित है:—

1. लोक अदालत एक ऐसा उपक्रम है, जो मामलों का कम समय में निपटारा कर ग्रामीण तथा शहरी जनता की दिक्कतों को दूर कर सकता है–मेरठ मे हुए लोक अदालत शिविर ने यह साबित कर भी दिया है.। सस्ता और शीघ्र न्याय प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर विश्वास बढाता हैं, किन्तु अभी तक इसका बिल्कुल उलटा ही हो रहा था, जिसके कारण प्रजातंत्र के प्रति आम आदमी का विश्वास घटने लगा था। मेरठ के लोक अदालत शिविर ने यह सिद्ध कर दिया है कि लोक अदालतें आम आदमी के विश्वास को फिर से न्याय व्यवस्था के साथ जोड सकती हैं।

लोक अदालत में वादकारियों को किस प्रकार बुलाया जाए यह एक बड़ी समस्या थी। इसके लिए एक सूचना पत्र जारी किया गया, जिससे विशेष तौर पर यह कहा गया कि यदि आप आपसी समझौते द्वारा अपने मुकदमे तय करना चाहते हैं तो आप व्यक्तिगत रूप से लोक अदालत शिविर में आए और अपना पक्ष प्रस्तुत करें ताकि संधि के साथ मुकदमा तय किया जा सके। इसी तरह लोक अदालत मे ऐसे मुकदमे रखे गए, जिनमें आपसी आधार पर फैसला हो सके। मुकदमे छांटने का कार्य सदस्य सचिव को सौंपा गया, जिन्होंने प्रत्येक अदालत के पीठासीन अधिकारी को ऐसे मुकदमे लोक अदालत के सामने पेश करने के लिए कहा, जो आपसी समझौते के आधार पर तय हो सकते थे। फौजदारी के मामलो में ऐसे वाद छांटे गए

जो शमन योग्य अर्थात् कम्पाउन्डेबिल थे। दण्ड प्रक्रिया संहिता के ऐसे वादो का चयन किया गया, जिनमें दोनों पक्ष फैसला कर शान्ति व्यवस्था में योगदान दे सकते थे। दीवानी वादों में विशेष रूप से वैवाहिक वादों को प्राथमिकता दी गई। इसके साथ ही भूमि अधिग्रहण, नगरपालिका अपील, मोटर दुर्घटना क्षतिपूर्ति आदि विवाद भी शामिल किए किए। इस प्रकार कुल 2400 वाद लोक अदालत के सम्मुख रखे गए।

कुल मुकदमों से सम्बन्धित दस हजार पक्षकारों को नोटिस भेजे गए, जिसके लिए पुलिस विभाग तथा राजस्व विभाग का सहारा लिया गया। केवल दीवानी मामलों मे पक्षकारों को डाक द्वारा सूचना भिजवाई गई, जो कि लोक अदालत की तिथि से कम से कम पन्द्रह दिन पूर्व भेजी गई। कुछ वादों में यह सूचना चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के माध्यम से भेजी गई। लोक अदालत के लिए पंच मडलों का चयन जनप्रतिनिधियों से किया गया। पंच मंडल में किसी भी न्यायिक अधिकारी को शामिल नहीं किया। कुल आयोजित 31 लोक अदालतों में से प्रत्येक के लिए 8 सदस्यीय पंच मंडल (मैम्बर ऑफ ज्यूरी) की नियुक्ति की गई, जिसके लिए बार संघों, रोटरी तथा लायन्स क्लबों, भारतीय विकास परिषद, रोटरी क्लब की इनर व्हीलो की महिला सदस्यो के अतिरिक्त अन्य समाज सेवक तथा समाज-सेविकाओं का सहयोग लिया गया। एक रिजर्व पंच मंडल भी बनाया गया था, जिसमे 100 सदस्य रखे गए थे। इस रिजर्व पंच मंडल के प्रतिनिधि आवश्यकता पडने पर किसी भी लोक अदालत में भेजे जा सकते थे। पंच मंडल के गठन में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया था कि मुकदमों की प्रकृति को देखते हुए लोक अदालतों मे उपयुक्त पंचों का ही चयन किया जाए, ताकि मुकदमों को तय करने में कोई तकनीकी व्यवधान उपस्थित हो तो उससे सही परामर्श मिल सके।

लोक अदालतों के विषय में कुछ लोगों को अभी तक सन्देह बना हुआ है कि वे अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर सकतीं। ऐसा चिन्तन करने वालों की इस धारणा का खण्डन 23 सितम्बर, 1984 को मेरठ में लगी लोक अदालत के कमरा नम्बर 1 में ही हो जाता है, जहां 1964 से चल रहे तत्कालीन मेरठ जनपद स्थित हिंडन हवाई अड्डे से सम्बन्धित उस विवाद को सुलझाया गया, जिसमे तत्कालीन मेरठ (अब गाजियाबाद) जनपद के आठ गांवों—पसौढ़ा, नेवला, सिकन्दपुर, मोपुरा, निस्तोली, मुकर्रमपुर, असालतपुर और अफजलपुर के किसान उलझे हुए थे। हिंडन हवाई अड्डा बनाने के लिए इन गांवों के किसानो की जमीनें अधिगृहीत की गई थी, इसके लिए जो क्षतिपूर्ति तय की गई थी, वह उन ग्रामीणों को स्वीकार्य नही थी। 1967 में ग्रामीणों ने इस सिलसिले में मेरठ मे प्रथम अतिरिक्त जिला जज के यहां अपील की थी, इस तरह इस विवाद को लेकर 300 वाद अभी तक विचाराधीन थे

जिन्हें लोक प्रदालत में भेजा गया, जहां 167 मुकदमों का निपटारा कर क्षतिपूर्ति की पूरी राशि पर 6 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज दिए जाने के प्रादेश सरकार को दिए गए। 16 वर्ष बाद तय हुए इस विवाद से सम्बन्धित किसानों को कोई 70 लाख रुपया अब सरकार द्वारा दिया जायगा।

लोक प्रदालत ने दोनों पक्षों को समझा बुझाकर वह फैसला कर दिया जो वैधानिक प्रदालत में शायद ही हो पाता। लोक प्रदालत ने फैसला दिया कि दयावती की दोनो पुत्रिया मदनलाल के साथ रहेंगी और गोद का पुत्र दयावती की देखरेख मे परवरिश पाएगा। विधिवेत्ताओं का कहना है कि वैधानिक प्रदालत मे यह तलाक नही हो सकता था और दोनो वर्षों तक मुकदमे लड़कर अपने यौवन के दिन बरबाद कर चुके होते।

उत्तर प्रदेश की प्रथम लोक प्रदालत शिविर का शुभारम्भ इलाहाबाद उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति महेश नारायण शुक्ल ने करते हुए कहा कि न्याय को सस्ता और सुलभ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उभय पक्षों में समझौता करा कर मुकदमो की सख्या मे कमी की जाये। उनके अनुसार लोक प्रदालतें इस सिलसिले मे महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। इस अवसर पर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति एम पी ठक्कर ने कहा कि लोक प्रदालत एक नया प्रयोग है। इसके माध्यम से ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की जा सकती हैं, जिनमें बैर की भावना दूर हो। बैर से किसी समस्या का समाधान नहीं होता, इसके लिए मित्रता की भावना आवश्यक होती है। प्राज की प्रदालतें कानून की प्रात्मा तक नहीं पहुंचती हैं। प्रदालतों में समय और धन की बरबादी होती है। अधिकांश मामलो में अर्द्ध सत्य जीतता है, जिसके परिणाम स्वरूप परिवार उजड़ जाते हैं। हमे भारत में न्याय को सिंहासन से उतार कर जमीन पर लाना है। लोक प्रदालतें इस दिशा में एक सफल प्रयास हैं। विभिन्न प्रयोगो के पश्चात यह स्वीकृत किया जाने लगा है कि लोक प्रदालतें गरीब व मध्यम वर्ग के प्रापसी झगड़े निपटाने के लिए पंचायत की तरह भूमिका अदा कर सकती हैं।

खास तौर से गुजरात, कर्नाटक व एकाध प्रयास राजस्थान मे कोटा जिले मे छुटपुट तरीके से किया गया है। अब वक्त आ गया है जब इन लोक प्रदालतों को एक अमली जामा पहनाकर अपनी भूमिका अदा करने के लिए पुरजोर तरीके से मैदान मे उतारा जाये। चारो ओर से यही आवाज आती है कि गरीब व पिछड़े वर्ग को निःशुल्क कानूनी सहायता प्रदान की जाये व उनके मुकदमे चाहे वे विशेष न्यायालयों द्वारा या पारिवारिक न्यायालयों द्वारा या और किसी व्यवस्था से शीघ्र निपटाए जायें।

लोक अदालतें चल न्यायालय की तरह अलग-अलग इलाकों में कार्य करें। उन लोक अदालतों का वातावरण ठीक वैसा ही हो जैसा कि पुराने जमाने में पचायतों का हुआ करता था। ये अदालतें किसी खास प्रक्रिया से बधी हुई न हो व उनके द्वारा दिया गया निर्णय जो दोनों पक्षो की रजामंदी से होगा, कानूनी अदालतों द्वारा मान्य होना चाहिए।

ये लोक अदालतें जो छुट्टी के रोज अलग-अलग गांवों में जाकर बैठक करें और पक्षकारों को अपने सामने बुलाकर उनको पूरा सुनकर वहीं उनसे विचार-विमर्श कर निर्णय लेवें और उस निर्णय को ग्राम-जनता के सामने सुनाया जावे।

मोटर वाहन दुर्घटना मुआवजा—लोक अदालत में

जून 1985 मे बम्बई में न्यायाधिपति धर्माधिकारी ने मोटर वाहन दुर्घटनाओं की क्षति व मुआवजा के वादो का अदालत का प्रयोग किया। भगवती स्वय प्रेरणा देने आये-निमंत्रण पर मैं भी अनुभव लेने पहुंचा—जनरल इंस्योरेन्स कम्पनी के शीर्ष अधिकारी श्री गोयल ने नीति घोषित की कि अब सारे देश मे रु० 50,000/- तक की क्षति पूर्ति समझौते से कर दी जावेगी। पालना आंशिक वहीं समझौते द्वारा कई निर्णय करा लोक अदालत को सफल घोषित किया गया।

स्वल्पाहार में श्री गोयल से मैंने जिज्ञासा व अनुभव मिश्रित प्रश्न किया कि क्या देश मे सब जगह इंस्योरेन्स कम्पनियां यह स्वागत योग्य "सामाजिक न्याय" के अनुकूल आज्ञायें प्रसारित कर न्यायालयों मे रुपये 50,000/- तक के समझौते करने के लिये अपने अभिभाषकों को सूचित करेगा। भगवती के सम्मुख उत्तर "अवश्य होगा" में था। परन्तु जुलाई मे मेरे न्यायालय मे इंस्योरेन्स कम्पनी के अभिभाषक श्रीवास्तव, भार्गव व लोढा जब बहस करने लगे, तो मैंने श्री गोयल की घोषणा का ध्यान दिलाया। उत्तर था कि "हम जहाँ थे वहीं हैं—कोई आदेश बम्बई से नहीं आया। आप "ज्यूडिशियल नोटिस" ले लें तो हमारी समस्या हल हो जावेगी।"

अतः जब तक सामाजिक न्याय के प्रतिबद्धित न्यायाधिकारी व अभि[illegible] इस ओर क्रियान्विति नही करेगें, "लोक अदालत" [illegible] अनुरूप बनकर रह जावेगी। दुर्घटना से पीड़ित, क्ष[illegible] जितना "लोक अदालत" प्रयोग के पहले था। प्रगति [illegible]

भविष्य अंधकारमय

अतः उपरोक्त विश्लेषण से निष्कर्ष यही [illegible] [illegible]तु भारत के परिवेश में अभी "सामाजिक क्रान्ति" के [illegible] रहा, यह जन्म से पहले मृत न हो जावे मैं इससे चिन्तित [illegible] हल में।

अपने काम मे "लोकहित वाद" की तरह इसकी जड़े जमा सके, तो भी यह नया आयाम सफलता की आधारशिला–आने वाले समय के लिये हो सकेगा।

गुजरात, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, तामिलनाडु अपवाद स्वरूप ही हैं व वहां पर भी अनुभव यह है कि "सामाजिक न्याय" के नये आयाम से प्रतिबद्धित मुख्य न्यायाधिपति के कार्यकाल मे गति बढ़कर प्रगति होती है व इसके विपरीत लकीर से न हटने की प्रतिबद्धता के काल में दुर्गति होती है—ज्वलन्त उदाहरण गुजरात स्वयं है।

यदि लोक अदालत हेतु "अधिनियम" केन्द्र से बनाकर, हमारी न्याय पद्धति मे अपनाया जावे तब तो "लकीर पीटने वाले" भी "लोक अदालत" में बैठने मे प्रसन्नचित्त रहेंगे। ऐसे न्यायिक क्रान्ति के विधेयक से "लोक अदालत" कार्यक्रम को वैधानिक गति मिलेगी व लॉर्ड क्लाईव व मैकाले के "मेरे स्वामी" (मी लॉर्ड) संस्कृति का "क्रिया कर्म" होकर न्यायाधीश 'मेरे सेवक" बन सकेंगे। फाइव स्टार संस्कृति, बरगद पेड़ तले, चौपाल पर, लोक अदालती न्याय में परिणित हो सकेगी। अधिक आशान्वित होना, यूटोपियन होगा फिर भी निराशवाद के स्थान पर आशावाद ही "सामाजिक न्याय" के लिये हमें प्रेरित करेगा।

न्याय

निपटाए

कानूनी सहायता केन्द्र-टूटी खाली बेंचें

8. जवाब मिलेगा कि कानूनी सहायता सैल है। लेकिन इस सैल का मतलब दरअसल खाली टूटी बेंचों, चरमराते पंखों और कुर्सी पर कोट टांग कर ठाले बैठे वकीलों के अलावा कुछ नहीं है। ज्यादातर कुशल और विशेषज्ञ वकीलों को फोकट के मामले लेने में कोई दिलचस्पी नहीं है। वे अगर समाज-सेवा के दुर्लभ, दिखावटी मूड में इसे ले भी लेते हैं तो जूनियर्स पर इसका भार डाल देते हैं। आप अगर विश्वास करें तो उच्चतम और 19 उच्च न्यायालयों (दो खंडपीठ सहित) में 1980 से 85 के बीच एक लाख दस हजार मामलों में मुफ्त कानूनी सलाह दी गई और 88 हजार मामलों में सहायता लेने वाला हार गया। यह केन्द्रीय ला इन्स्टीट्यूट के जरिए विधि आयोग तक पहुंचे आंकड़े हैं और इन्हें कभी विधिवत प्रकाशित किए जाने की संभावना नहीं है।

दया व भीख

9. कानूनी सहायता के ये अड्डे असल में परामर्श केन्द्र हैं जहां आपको ज्यादातर यही पता चलेगा कि फलां वकील आपकी तरह के मामले का एक्सपर्ट है, आप वहां चले जाइए। यह भी कहा जाएगा—कृपा की मुद्रा में—जबकि कानूनी सहायता राज्य का नागरिक पर अहसान नहीं है। अनुच्छेद 39-(ए) के तहत "राज्य का यह दायित्व है कि किसी भी आदमी से न्याय का अधिकार इस कारण न छिन जाए कि वह गरीब या पिछड़े वर्ग का है।" इसी तरह "नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय संहिता" की धारा 14-(3) है—"किसी भी आदमी को खुद को या सहायता देने के लिए योग्य किसी व्यक्ति की उपस्थिति में अपने खिलाफ मामले में कार्रवाई कराने का अधिकार है और यह पक्का करना सरकार का काम है कि सहायता लगातार मिल रही है या नहीं?"

अय्यर भगवती समिति

10. विधि आयोग ने मुफ्त कानूनी सहायता की संभावनाओं और क्षमताओं के अध्ययन के लिए कई समितियां बनाई थीं। इनमें न्यायमूर्ति अय्यर और भगवती की अध्यक्षता में बनाई गई समितियां खास हैं। इनकी सिफारिशों पर एक राष्ट्रीय विशेषज्ञ समिति बनाई गई जिसने निम्न वर्गों को मुफ्त कानूनी सहायता के योग्य पाया—(1) भौगोलिक रूप से पिछड़े, (2) ग्रामीण, (3) कृषि मजदूर, (4) औद्योगिक मजदूर, (5) महिलाएं, (6) बच्चे, (7) हरिजन, (8) अल्पसंख्यक और (9) कैदी।

11. यह वर्गीकरण राजनीतिक लगता है और हर एक नागरिक को बचाव के समान अवसर देने के सिद्धान्त से भी न्यायपालिका को विचलित करता

गरीबों को मुफ्त कानूनी सहायता देने की दिशा में भी बहुत काम नही हो पाया है।"[1]

सस्ते न्याय की खोज

6. आज का न्याय बड़ा महगा है या इसे महंगा बना दिया गया है। आम आदमी की न्यायालय की पेढी तक पहुंच एक टेढी खीर है। न्याय के नाम पर वह पग-पग पर छला जाता है। न्याय उसके लिए एक "मृग तृष्णा" है। यही कारण है कि न्याय के प्रति आम आदमी की आस्था गिरती जा रही है। गिरती हुई आस्था को पुनः कायम करने के लिए न्याय को चौपाल पर पहुंचाने की प्रबल आवश्यकता है। इसमे निर्धन को न्याय न केवल सस्ते में उपलब्ध होगा, अपितु समाज के सबल तबके के शोषण से भी उसकी रक्षा होगी। यदि हमारा संकल्प दृढ हो तो यह एक कल्पना मात्र नहीं होगी। सूर्य को पृथ्वी पर लाने वाला और अन्तरिक्ष मे विचरण करने वाला मानव क्या नही कर सकता? चौपाल पर न्याय को पहुंचाना तो उसके बांये हाथ का खेल है, यदि इच्छा शक्ति प्रबल हो।

1 सितम्बर, 1985 को उपरोक्त भावना को साकार करने हेतु दिल्ली मे सस्ता सुलभ न्याय घूमते फिरते न्यायालय व लोक अदालतों हेतु गतिशील कार्यक्रम स्वीकृत किया गया।

प्रधान मंत्री द्वारा स्वीकृति के परिवेश मे हमे आत्मनिरीक्षण करना होगा।

तोमर की निराशा

7. आलोक तोमर ने "निःशुल्क कानूनी सहायता" पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए लिखा है:—

"आप अगर गरीब है और जैसे तैसे कुछ पैसा जमा करके दिल्ली या उन कुछ न्यायालयों मे पहुंचे हैं तो हजारो रुपये आपके, केवल याचिका की कई प्रतियां टाइप कराने और वकीलों की जेब भरने मे जाएंगे। इसके बाद आपको जो अगली तारीख मिलेगी, इसके लिए वकील साहब को बयाना दीजिए और अदालत के एक क्लर्क को (आप जानते है कि कैसे) पटाइए कि उस दिन मामले पर आपकी गैर-हाजरी लगवाकर अगली कोई तारीख न डलवा दे। आप धर्मशाला में रहिए और किसी दोस्त के पते पर डाक मंगाइए।

---

1. न्यायालयो के न्यायाधिपतियो, मुख्य मंत्रियों और राज्य के विधि मन्त्रियो का सम्मेलन 31 अगस्त व 1 सितम्बर, 1985

कानूनी सहायता केन्द्र-टूटी खाली बेंचें

8. जवाब मिलेगा कि कानूनी सहायता सैल है। लेकिन इस सैल का मतलब दरग्रसल खाली टूटी बेंचों, चरमराते पंखों ग्रौर कुर्सी पर कोट टांग कर ठाले बैठे वकीलो के ग्रलावा कुछ नही है। ज्यादातर कुशल ग्रौर विशेषज्ञ वकीलों को फोकट के मामले लेने मे कोई दिलचस्पी नही है। वे ग्रगर समाज-सेवा के दुर्लभ, दिखावटी मूड मे इसे ले भी लेते हैं तो जूनियर्स पर इसका भार डाल देते हैं। ग्राप ग्रगर विश्वास करें तो उच्चतम ग्रौर 19 उच्च न्यायालयों (दो खंडपीठ सहित) में 1980 से 85 के बीच एक लाख दस हजार मामलो मे मुफ्त कानूनी सलाह दी गई ग्रौर 88 हजार मामलो मे सहायता लेने वाला हार गया। यह केन्द्रीय ला इन्स्टीट्यूट के जरिए विधि ग्रायोग तक पहुंचे ग्रांकड़े है ग्रौर इन्हें कभी विधिवत प्रकाशित किए जाने की सभावना नहीं है।

दया व भीख

9. कानूनी सहायता के ये ग्रड्डे ग्रसल में परामर्श केन्द्र हैं जहा ग्रापको ज्यादातर यही पता चलेगा कि फलां वकील ग्रापकी तरह के मामले का एक्सपर्ट है, ग्राप वहा चले जाइए। यह भी कहा जाएगा—कृपा की मुद्रा मे—जबकि कानूनी सहायता राज्य का नागरिक पर ग्रहसान नही है। ग्रनुच्छेद 39-(ए) के तहत "राज्य का यह दायित्व है कि किसी भी ग्रादमी से न्याय का ग्रधिकार इस कारण न छिन जाए कि वह गरीब या पिछड़े वर्ग का है।" इसी तरह "नागरिक ग्रौर राजनीतिक ग्रधिकारों की ग्रन्तर्राष्ट्रीय संहिता" की धारा 14-(3) है—"किसी भी ग्रादमी को खुद को या सहायता देने के लिए योग्य किसी व्यक्ति की उपस्थिति में ग्रपने खिलाफ मामले में कार्रवाई कराने का ग्रधिकार है ग्रौर यह पक्का करना सरकार का काम है कि सहायता लगातार मिल रही है या नही ?"

ग्रय्यर भगवती समिति

10. विधि ग्रायोग ने मुफ्त कानूनी सहायता की सभावनाग्रो ग्रौर क्षमताग्रो के ग्रध्ययन के लिए कई समितियां बनाई थी। इनमे न्यायमूर्ति ग्रय्यर ग्रौर भगवती की ग्रध्यक्षता मे बनाई गई समितियां खास है। इनकी सिफारिशो पर एक राष्ट्रीय विशेषज्ञ समिति बनाई गई जिसने निम्न वर्गों को मुफ्त कानूनी सहायता के योग्य पाया—(1) भौगोलिक रूप से पिछड़े, (2) ग्रामीण, (3) कृषि मजदूर, (4) ग्रौद्योगिक मजदूर, (5) महिलाएं, (6) बच्चे, (7) हरिजन, (8) ग्रल्पसख्यक ग्रौर (9) कैदी।

11. यह वर्गीकरण राजनीतिक लगता है ग्रौर हर एक नागरिक को बचाव के समान ग्रवसर देने के सिद्धान्त से भी न्यायपालिका को विचलित करता

है। खास तौर पर, लोकहित वाद में तो इसका कोई मतलब इसलिए भी नहीं है क्योंकि सारी मुफ्त कानूनी सहायता समितियां सरकारी व्यवस्था के तहत चलती हैं। उनमे वकीलों का मेहनताना जो भी मिलता है सरकार ही देती है। ऐसे मे, सरकार की पोल खोलने वाले मामलों में वे कितने उत्साह से मदद करेंगी, यह समझा जा सकता है ?

संस्थाऐं आयोग–निष्क्रिय

12. जनता सरकार के दौरान बनाई गई उच्चतम न्यायालय की कानूनी सहायता समिति (न्यायमूर्ति डी. ए. देसाई की अध्यक्षता मे) 1981 में बैठ गई। इसके अलावा सहयोग नही मिला—कारण था पैसा। इसके अलावा आल इंडिया गिल्ड आफ ला ग्रेजुएट्स, दी लीगल एड एण्ड एडवाइस ब्यूरो, बार एसोसिएशन की उप समिति और एक्स सर्विसमैन लीगल एड कमेटी के दफ्तर तो हैं पर उनका काम कोई नहीं है।

13. जुलाई, 1982 मे कानूनी सहायता योजनाओं की अन्वेषण समिति ने पब्लिक लिटिगेशन-लोकहितवाद के लिए आगे आने वाली संस्थाओं, संगठनों या लोगों के लिए मुफ्त कानूनी सहायता के अलावा, 60 हजार रुपये तक की मदद का प्रस्ताव पारित किया। समिति के अध्यक्ष श्री भगवती थे। इस सहायता का लाभ बम्बई में "चाल" के लोगों को सगठित करके 18 मामले अदालत में ले जाने वाली युवा संस्था को मिला था। लेकिन दस हजार रुपये देने के बाद सरकार का रुख अचानक बदल गया। कलकत्ता की एक संस्था जन कल्याण सघ तो बीस हजार रुपये लेने के बाद गायब ही हो गई।

सरकारी सहायता नगण्य

14. विधि मत्रालय द्वारा 1982 मे बनाई गई पब्लिक लिटिगेशन आबजर्वेशन कमेटी ने इस काम के लिए अलग से एक ढांचा खड़ा करने और उसे मुफ्त कानूनी सहायता के साथ जोड़ने की सलाह दी थी। लेकिन अलग से जो ढाचा बनाया गया वह सामाजिक हितों और संवेदनाओं के प्रति एकदम निर्विकार है। उससे किसी सहायता की उम्मीद नही की जा सकती। 60 हजार रुपए तक की सहायता दे सकने की सीमा के बावजूद आज तक किसी भी संस्था को 15 हजार रुपये से ज्यादा की मदद नही दी गई। 15 हजार रुपये पाने वाली संस्था बिहार की पब्लिक एजूकेशन ट्रस्ट है लेकिन उसे पैसा देते समय खालिस महाजनी अंदाज में कानूनी दाव पेचो और कागजातों के 4550/- रु० काट लिए गए थे।

दूरदर्शन–निर्धन की समस्याऐं

15. 26 अगस्त 1985 की रात्रि को दूरदर्शन पर भारतीय न्यायपालिका के प्रभाव अभियोगो की समीक्षा की गई। भगवती, चन्द्रचूड़, सोहराबजी,

डा० सिंघवी, पालकीवाला व अन्य विधि विशेषज्ञों ने "विलम्ब" के प्रति चिन्ता प्रकट की। आंकड़े मुख्य वादों के दिए गए कि सुप्रीम कोर्ट में 1.5 लाख, हाईकोर्टों में 10 लाख व अधीनस्थ न्यायालयों में 95 लाख वाद हैं—जिनमें अधिकतर 3 वर्ष से अधिक पुराने हैं—हजारों 20 वर्ष पुराने है।

16. परन्तु विदेश से आए प्रवासी भारतीय पक्षकार श्री शर्मा के विचार उजागर किए गए, जिसने भारतीय अभिभाषकों के लिए अत्यन्त घृणात्मक व अपमानजनक सर्वनाम "ठग" (चीट) तक का दुरुपयोग किया। मेरा सिर शर्म से झुक गया व आत्मवेदना से कुंठित हुआ।

17. श्री शर्मा मकान मालिक, अपने फ्लैट को खाली कराने में असफल रहे, अत: प्रतिक्रिया व भारतीय न्यायव्यवस्था के प्रति प्रतिशोध से उनके विचार उग्र व असंतुलित थे—उन्होंने अपना मकान अवैधानिक माध्यम से, जिसे वह दूरदर्शन पर व्यक्त करने का साहस न कर सके, खाली करा लिया—क्योंकि न्यायालय कई वर्ष तक खाली न करा सका।

निर्धन किरायेदार न्याय से वंचित

18. मेरे मानस में यह प्रतिक्रिया इस कार्यक्रम को देखकर हुई कि हम विलम्ब व मकान मालिक की चिन्ता से जितने चिंतित हैं, क्या निर्धन विपन्न दीनहीन, को न्याय न मिलने से भी उतने चिंतित हो सकेंगे? कितना अच्छा होता कि दूरदर्शन न्याय की तुला बराबर रखने हेतु उस "किराएदार" की व्यथा का पता लगाता, जिसे मकान से बिना न्यायालय की डिक्री के निकाला गया है। क्या हम छप्परहीन किराएदारों के प्रति यही संवेदनशीलता रखते है? क्या यही "सामाजिक न्याय" है कि उसे न्यायालय की डिक्री के अभाव मे, आपत्तिजनक तरीकों से सड़क पर फेंक दिया जावे व दूरदर्शन उसे परोक्ष रूप मे भी अनुचित न करे, व प्रदर्शित कर अन्याय को प्रोत्साहन दे?

न्याय नीलामी पर

19. श्री मृदुल के अनुसार विधि सहायता का कार्यक्रम इस यथार्थ की स्वीकृति है। वह इस विवशता को रेखांकित करता है कि आज न्याय नीलामी पर है। जिसकी बोली ऊंची है वह न्याय को खरीद लेता है। न्याय इस व्यवस्था की न्याय-दुकान पर सजायी हुई जिन्स है—जिसकी सामर्थ्य है वह उस ऊंचे दामों पर हथिया लेता है।

20. जिस समाज व्यवस्था मे हम रह रहे हैं उसमें निहित स्वार्थों की जबरदस्त टकराहट है। इस टकराहट में एक ओर वह है जो निर्बल है, असमर्थ है और दूसरी ओर वह है जो सबल है, समर्थ है। जो सबल व समर्थ है उसके पास आधुनिकतम शस्त्र हैं और संगठित सेना। इस कठिन संघर्ष में समाज विवश होकर

स्वीकार कर रहा है कि जो दुर्बल है, असहाय है वह तो ऐसा रहेगा ही। सामाजिक व्यवस्था मे आमूल-चूल परिवर्तन कर ऐसी स्थिति ला सकने की उसकी क्षमता नही है कि निहित स्वार्थों की इस टकराहट को समाप्त कर वह विसंगति-विहीन समाज स्थापित कर सके।

विकलांग पर दया-मृदुल

21. ऐसी परिस्थितियों मे वह जो असहाय है व निर्बल है उसको ढाढस देने के लिए कि वह उसको इस स्थिति से उबार नहीं सकेगा इसलिए विकलाग पर दया कर उसे जीवित रख सकने के लिए लिए कुछ प्रयास करेगा। लगता है, विधि सहायता का कार्यक्रम विकलाग पर दया दृष्टि करने का प्रयास है। पर यह कार्यक्रम का एक स्वरूप है।

सामाजिक आवश्यकता-इन्दिरा गांधी

22. प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने सर्व प्रथम इस विषय मे गंभीरता को समझा। उन्होने अपने उद्‌गार इण्डियन कौसिल ऑफ लीगल एड एण्ड एडवाइस, नई दिल्ली के उद्‌घाटन समारोह में इस प्रकार व्यक्त किये-"हमारे देश मे यह एक सामाजिक आवश्यकता है। इसे दान के रूप मे नही देखना है बल्कि इसे हमारे कानून व्यवस्था का अंग मानना चाहिए। गरीबी के विरुद्ध युद्ध का यह भी एक भाग है।"

मानवीय अधिकार

23. प्राकृतिक विधि शाला की शृंखला में ही सन् 1215 मे मैगना कार्टा द्वारा यह घोषणा की गई कि किसी भी व्यक्ति को हम अधिकारो एवं न्याय से वचित नही रखेंगे और किसी भी व्यक्ति को हम न्याय और अधिकार नहीं बेचेगे और न ही न्याय व अधिकार प्रदान करने मे देरी की जायेगी। इस प्रकार की घोषणाएं विभिन्न राष्ट्रों ने अधिकार पत्र आदि के रूप मे की जिसमें सभी के लए समान न्याय का दर्शन प्रत्यक्ष था। परन्तु इस दिशा मे ठोस कदम केवल संयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा मानवीय अधिकारो के संरक्षण को विशेष महत्त्व दिये जाने के बाद ही उठाए गये। 10 दिसम्बर, 1948 को सयुक्त राष्ट्र सघ की साधारण स ने मानवीय अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की जिसकी भूमिका मे यह कहा गया कि "मानव परिवार की स्वाभाविक प्रतिष्ठा एवं समान और नैसर्गिक अधिकारो की मान्यता विश्व में शांति, स्वाधीनता एवं न्याय की नीव है।" इस घोषणा की धारा 1 प्रतिपादित करती है कि "सभी मानव मुक्त एवं समान प्रतिष्ठा और अधिकारो के साथ जन्म लेते हैं एव धारा 8 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने देश मे न्यायालयो अथवा प्राधिकारणो से न्याय प्राप्त करने का

अधिकार प्राप्त हैं, यदि उसके भूलभूत अधिकारो का हनन होता है जो कि उसे अपने संविधान द्वारा अथवा कानून द्वारा प्रदान किए गये हैं।" चूंकि उपरोक्त घोषणा के कानूनी स्वरूप पर कुछ विधिवेत्ता सन्देह व्यक्त कर सकते हैं इसलिए इस सार्वभौमिक घोषणा को विधिक रूप प्रदान करने के लिये आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारो तथा नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों पर दो प्रतिश्रियाएं सन् 1966 मे प्रस्तुत की गई। 30 राष्ट्रो द्वारा अनुसमर्थन के बाद इन प्रसंविदाओं को सन् 1976 में कानूनी रूप प्रदान किया गया। भारत ने इन प्रसविदाओ का अनुसमर्थन 1979 मे किया। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय विधि के सुप्रसिद्ध सिद्धान्त "पैक्टासन्ड सर्वेन्डा" के अनुसार भारत इन प्रसविदाओ का उल्लघन नही करने को बाध्य है अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार इन प्रसविदाओं को सन्धि के रूप में कानूनन बल मिलता है।

14वीं रिपोर्ट-विधि आयोग

24. विधि आयोग ने "न्यायिक प्रशासन मे सुधार" पर अपनी चौदहवी रिपोर्ट मे इस विषय पर बहुत महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है कि जब तक एक गरीब व्यक्ति को न्यायालय शुल्क, अधिवक्ता शुल्क एवं मुकदमें में लगे अन्य खर्च उपलब्ध कराने की व्यवस्था न की जायेगी, सही दृष्टि मे न्याय प्राप्ति करने की समानता मात्र दिखावा रहेगी और उसे न्याय प्राप्त करने के समान अवसर उपलब्ध नही होगे। अत: वैधिक सहायता का विषय केवल इतना सीमित नही है कि न्यायिक अधिकारी एवं अभिभाषको की कुछ समितियां बना दी जाएं वरन् इस की गहराई व्यावहारिक कानून की प्रक्रिया से जुड़ी हुई है और विधि के इस क्षेत्र का यह एक आधार भूत प्रश्न है। इसका समाधान और क्रियान्वित करने के तरीकों पर हम अपने इस विवेचन को नही ले जाना चाहते हैं। परन्तु इस कानूनी बिन्दु को यहा अंकित करना भी आवश्यक समझते हैं कि वैधिक सहायता द्वारा हम गरीबो के प्रति कोई दया का कार्य नहीं कर रहे है क्योंकि यह प्रत्येक नागरिक का नैसर्गिक, सामाजिक एवं मानवीय अधिकार और समाज का सवैधानिक कर्तव्य है जो साथ ही साथ अन्तर्राष्ट्रीय विधि के क्षेत्र में सन्धि के कारण अनिवार्यता है।

25. साधारणतया लोग यह कहते हैं कि हमारे देश मे कानून का सरक्षण केवल धनी लोगों को ही प्राप्त है, गरीबों को नहीं। निश्चित ही, इस स्थिति को बदलना है। इस बात को ध्यान में रखते हुए हमे समान न्याय एवं नि:शुल्क विधि सहायता के आदर्श को क्रियान्वित करना है जिससे कोई गरीब नागरिक भी न्याय पाने से वचित न रह पाये। इस दिशा मे परिस्थिति के अनुसार पहले भी काफी कार्य किया जा चुका है। भारत सरकार द्वारा गठित विधिक

सहायता कार्यान्वियन समिति ने इस दिशा में काफी उपयोगी कार्य किया है और अभी कर रही है।

अर्थाभाव

26. भारत सरकार फिर भी प्रयत्नशील रही। सन् 1960 में निर्धन को वैधिक सहायता देने का प्रारूप राज्यों को भेजा गया परन्तु राज्यों ने अर्थाभाव की ढाल को नही छोड़ा और केन्द्र के चीन आक्रमण के फलस्वरूप अर्थाभाव के दलदल मे फसने से उक्त प्रारूप के सम्बन्ध में ठोस कदम नहीं उठाये जा सके।

27. अंग्रेजी साहित्यकार गोल्डस्मिथ ने कहा था—"कानून गरीबों को पीड़ित करता है तथा सक्षम व वैभवकारी लोग कानून पर शासन करते हैं" उसका यह कथन आज भी महत्त्व रखता है। ऐसी ही एक चीनी कहावत है कि "कानून की शरण मे जाना एक बिल्ली को पाने के लिये गाय को खोने के सदृश्य है" और यह कहावत कई मायनो मे सही चरितार्थ भी होती है, उन साधनहीन लोगों के लिये जो कानूनी वादों में फंस गये हैं। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जिससे यह प्रमाणित हो कि गरीब एवं साधनहीन लोग बेगुनाह होते हुए भी मात्र इसलिये कि वे किसी विधिवेत्ता का उचित सहयोग लेने में सक्षम नही हो सके मानसिक पीड़ा को प्राप्त हुए अथवा फासी पर चढ़ा दिए गए। ऐसे मामलों में व इसके मिलते जुलते अन्य मामलो मे गरीबों को चाहे वे विधि प्रायोग की अभ्यर्थना करें अथवा नही विधिक सहायता दिया जाना उचित एवं आवश्यक है।

राजीव की व्यथा

28. गरीबो को मुफ्त कानूनी सहायता दिये जाने के मुद्दे को प्रधानमंत्री ने स्वीकार किया कि इस दिशा में विशेष कुछ नही हो पाया है। उन्होंने आशा प्रकट की कि गरीबो को मुफ्त कानूनी सलाह दिये जाने के क्षेत्र में काफी कुछ हो सकता है।

न्यायाधीशों का मार्गदर्शन

29. *हरियाणा राज्य बनाम श्रीमती दर्शना देवी* (13)—राज्य परिवहन बस द्वारा कुचले जाने पर मृतक की विधवा और पुत्री का प्रतिकर का दावा था। राज्य सरकार द्वारा वादियो के न्यायालय फीस न दिए जाने पर आपत्ति की गई कि दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 33 के अकिंचन विषयक उपबंध अधिकरण के समक्ष कार्यवाही मे लागू नही होते तथा उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध राज्य ने अपील हेतु विशेष इजाजत प्राप्त करने के लिए उच्चतम न्यायालय मे याचिका प्रस्तुत की। न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर व श्री० चिनप्पा रेड्डी ने याचिका को खारिज करते हुए कहा कि—

"न्यायालय तक पहुंच के न्याय शास्त्र का विस्तार सामाजिक न्याय के अभिन्न अंग के रूप में करना चाहिए और न्यायालय फीस उदग्रहण की संवैधानिक व्यवस्था की जांच राष्ट्र के संविधान मे प्रधानता के साथ व्यक्त मानव अधिकारो के एक मसले के रूप में करनी चाहिए। यदि राज्य ही अनुच्छेद 14 व 39–क मे निहित इस आधारभूत सिद्धान्त का मजाक उड़ायेगा तो स्थिति क्या होगी? न्यायालय को न्याय के मन्दिर मे प्रवेश करने की कीमत लेने के विरुद्ध सन्देह का लाभ देना चाहिए जब तक कि न्यायालय द्वारा पूरी तरह पुनर्वलोकन न किया जाय। सरकार की प्रत्येक शाखा का यह लोक कर्तव्य है कि वह "विधि सम्मत शासन" का पालन करे व गरीब की सहायतार्थ विधान को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना कर सविधान के लिए समान न्याय के आज्ञापक उपबन्ध से, जो कि *संविधान के अनुच्छेद 14 में व्यक्त किया गया है* और अनुच्छेद *39–क में जिस* पर जोर दिया गया है, बेखबर हरियाणा सरकार ने सामाजिक न्याय के अनुसार कार्य करने और दावे की उदारतापूर्वक तय करने के बजाय संतप्त वादियों से न्यायालय फीस मांगने की युक्ति अपनाकर न्याय निर्णयन से भी बचकर झगडालू मुकदमेबाज की तरह विवाद खड़ा किया है।"[1]

नीति निदेशक सिद्धान्त 39–क

30. राज्य की नीति निर्देशक तत्व वाले भाग मे "अनुच्छेद 39-क" *समान न्याय व निःशुल्क विधिक सहायता का निर्देश देता है। "अनुच्छेद 39-क"* के अनुसार 'राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक व्यवस्था इस प्रकार काम करे कि न्याय समान अवसर के आधार पर सुलभ हो और वह, विशिष्टतया यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।"

31. निर्धन को न्याय प्रदान करने हेतु निःशुल्क विधि सहायता का प्रावधान भारतीय संविधान के नीति निर्देशक सिद्धान्तों की अनु.–39 "ए" मे 42वें संशोधन के द्वारा किया गया है। निःशुल्क विधि सहायता विश्व के न्यायिक व विधि जगत् मे नया प्रयोग नहीं है अपितु विश्व के सभ्य राष्ट्रो मे जहा पर विधि का राज्य है व नागरिको को न्याय व्यवस्था देने के सवैधानिक या विधि पूर्वक सिद्धान्त स्वीकार किये गये हैं वहा ऐसे प्रावधान चिरकाल से हैं। भारत के सवैधानिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इस ओर तीन दशक तक तो केवल दण्ड

1. (1979) 1 उच्चतम निर्णय पत्रिका, पृष्ठ 1020-21

प्रक्रिया में उन अपराधों में जिनमें आजीवन कारावास या मृत्यु दण्ड हो सकता है, विचाराधीन अपराधी की राजकीय व्यय से अभिभाषक द्वारा कानूनी सहायता देने का प्रावधान ही प्रमुख रहा है, जो भारत में नि:शुल्क कानून की विरासत के रूप मे विद्यमान है। यदाकदा समाज कल्याण विभाग द्वारा अनुसूचित जाति, जन जाति अथवा पिछड़ी जाति हेतु कही कही पर अभिभाषक नियुक्त करने की वित्तीय व्यवस्था की गई परन्तु वह अधिकतर अपने उद्देश्य मे सफल नहीं हो सके क्योंकि अभिभाषक को केवल शुल्क देकर ही समस्या का समाधान समझ लिया गया।

भगवती समिति के भगवती मुख्य न्यायाधिपति

32. केन्द्रीय स्तर पर नि:शुल्क कानूनी सहायता देने हेतु भगवती समिति का निर्माण इस क्षेत्र मे प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रयास रहा। अब गत लगभग एक दशक से इस क्षेत्र मे सक्रिय प्रयास किये जा रहे है जिसके केन्द्रीय प्रेरक व क्रियान्वित करने के साथ धर्म युद्ध करने वाले उच्चतम न्यायालय के न्यायाधिपति श्री भगवती सौभाग्य से अब उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति 12 जुलाई, 1985 से आसीन है।

सामाजिक न्याय उद्‌बोधन

33. यदि उनके दर्शन पर चिन्तन किया जाय तो उनका मत है कि यही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विधि व न्याय के क्षेत्र में कार्य योजना अथवा आन्दोलन है जिससे संविधान मे घोषित उद्‌बोधन 'सामाजिक न्याय" को प्राप्त करने के लिये कदम बढ़ाये जा सकते हैं। यह कार्यक्रम भारत के आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों के परिवेश मे होने चाहिये व विश्व के अन्य राष्ट्रों का केवल अंधा अनुसरण करने से उसे सफलता नही मिल सकती है। हम यह न भूलें कि हमारे यहां पर 38 वर्षों के राजनैतिक व सामाजिक व आर्थिक विविध योजनाओं के सफल होने के उपरान्त भी समाज के निर्धन, विपिन्न व गरीबों की संख्या सम्पन्न, साधनयुक्त व आर्थिक रूप से सशक्त समाज से बहुत अधिक है। लगभग आधी जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे आज भी दो जून रोटी व छप्पर विहीन आवास व पुष्ट भोजन के अभाव में विविध बीमारियो से ग्रसित अर्ध नग्न कंकालो की तरह जीवन व्यतीत कर रही है, अधिकाश जन सख्या आज भी सात लाख से अधिक ग्रामो मे रहती है। शोषण का सामाजिक अभिशाप उन्हें त्रस्त, उत्पीडित दलित व लगातार सताता रहता है।

निर्धनता-अभिशाप

34. समस्त राजकीय योजनाएं चाहे वह आवास के लिए छप्पर देने की हो अथवा काश्त के लिये कृषि भूमि आवंटन करने की हो अथवा आरक्षण के द्वारा

सरकारी स्तर पर नौकरियां देकर व शिक्षा में प्राथमिकता देकर उनका उत्थान करने की हो, अंततोगत्वा पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकती हैं। दरिद्रता व निर्धनता, गरीबी का अभिशाप शोषक वर्ग को उनके शोषण के लिये अनुचित अवसर देता है। विधि व न्याय की तुला, साधन सम्पन्न येन केन प्रकारेण अपनी ओर झुका लेने में सफल हो जाते हैं। कानूनी निरक्षरता व विधि साधन के अभाव में दरिद्र, निर्धन न्याय नही पा सकता व अन्याय का शिकार होता है। उसके लिये तो न्याय मन्दिर अधिकतर शोषक वर्ग द्वारा शोषण करने का अन्यायपूर्ण कसाईखाने का कार्य कर गुजरता है। निःशुल्क कानूनी सहायता के कार्यक्रम उपरोक्त अभाव, दुर्भाव, अन्याय, अत्याचार को समाप्त करने हेतु विधि पूर्ण क्रान्ति के रूप में न्यायिक क्षेत्र मे आज गतिमान होने के कंगार पर है।

कानूनी साक्षरता

35. परम्परागत कानूनी व्यवस्था में न्याय मिलने के लिये यह आवश्यक है कि पहले तो निर्धन लोग कानूनी साक्षरता, अपने अधिकारो के लिये जागरूकता व उन्हें प्राप्त करने के लिये साधन व मानसिक रूप से जागरूक हों। दुर्भाग्य से अधिकतर निर्धन वर्ग साधन विहीन है व निरक्षर है व कई साधन सम्पन्न वर्ग मे कानूनी साक्षरता का अभाव है। अतः उन सब अन्याय पीड़ित पक्षकारो को न्यायालय में लाकर न्याय प्राप्त करने हेतु निर्धन को कानूनी सहायता की योजना आवश्यक ही नही अनिवार्य है।

निःशुल्क सहायता समिति चौकी

36. इसी सन्दर्भ में प्रश्न यह है कि इसका स्वरूप क्या हो ? यदि तहसील व ताल्लुका व कस्बो तक गरीबों को कानूनी सहायता के कार्यालय खोलें तो भी दूरदराज ढाणी और छोटे गावो मे रहने वाले अशिक्षित, निर्धन, शोषित वर्ग इससे अछूता रह जायगा क्योंकि वह ताल्लुका या तहसील मे आकर उन कार्यालयो का स्वरूप समझने में असमर्थ रहेगा। आर्थिक दृष्टि से व अधिकारों की अज्ञानता की दृष्टि से यह असमर्थता उसके लिये अभिशाप बनेगी। सदियों से शोषित, दलित होने से उन्हें ताल्लुका कार्यालयो में जाने की हिम्मत व साहस ही नही होगा क्योंकि उनके सामने सशक्त, सरमायेदार या भू-स्वामी या शासक वर्ग है जो कि उन पर अन्याय व अत्याचार कर रहा है वह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी उन्हें कानूनी सहायता प्राप्त करने मे बाधा उत्पन्न करेगा। अधिकतर अभिभावक या तो उच्च श्रेणी के समाज से आते हैं अथवा हमारे यहा तो जैसा आर्थिक सामाजिक वातावरण है उसमे अभिभावक बनना ही अपने आप मे साधारण गरीब व्यक्ति से अलगथलग व्यक्तित्व का निर्माण होना है। अतः गरीब व्यक्ति अन्याय के प्रतिशोध मे न्याय प्राप्त करने के लिए उनके पास जाने की हिम्मत ही न ी कर सकता। अत वर्तमान

परम्परागत न्याय प्रणाली मे प्रभिभाषकों की सहायता हमारे राष्ट्र में अधिकांश निर्धन जनता को प्राप्त नहीं हो सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि एक नये न्यायिक विधिक सहायता का कार्यक्रम जिसमें हर चौपाल पर न्याय हो सके, गांव और ढाणी मे निर्धन को न्याय मिल सके, उसका प्रयोग किया जाय जिससे कि दरिद्रनारायण की भी सेवा की जा सके।

घूमते फिरते अभिभाषक

37. उपरोक्त दृष्टि से जहां श्री भगवती ने यह सुझाव दिया कि हमें इसका प्रावधान करना चाहिये जिन्हे वह "मोबाइल लायर्स" कहते हैं। वहां मेरा यह सुझाव है कि अन्ततोगत्वा इस देश मे यदि वास्तव में 'निर्धन को न्याय की कल्पना' को साकार करना है तो चलचित्रो की तरह गरीबों को कानूनी सहायता घूमते फिरते अभिभाषक अपनी सूक्ष्म पुस्तकालय के साथ गांव गांव जा सकें कार्यालय स्थापित करने होगे। इस हेतु जो कि ग्राम पंचायत में ग्रामसेवक या रेवेन्यु कानून के स्तर पर पटवारी का प्रावधान होता है वैसे ही विधि सेवक या न्यायिक सेवक नियुक्त करने होगे, जिन्हें साधारण कानून का ज्ञान हो व न्यायिक पद्धति में गरीब को न्याय दिलवा सकें ऐसी क्षमता हो। तत्पश्चात् उन विधिक सहायको से वे अपनी सहायता गाव गाव मे दे सकते हैं। यह कार्य उतना ही दुष्कर व कठिन है जितना कि हर गांव के खेत विहीन काश्तकार को कृषि भूमि देना व हर खेत को पानी देना व देश के हर हाथ को काम देना।

अधिकारों का साक्षरता अभियान

38. सर्व प्रथम हमारी इस योजना का यह प्रमुख उद्देश्य होना चाहिये कि गरीब व साधनविहीन हर व्यक्ति को उसके कानूनी अधिकारो के बारे मे साक्षरता कराई जाय। जब तक उनमे से हर व्यक्ति को पता न लगेगा कि विशेषाधिकार समाप्त कर दिये गये हैं, गाव के बीच के कुए से जातिपांति के बन्धन तोड़ दिये गये हैं व हर व्यक्ति पानी ले सकता है, हर व्यक्ति भारत के प्रथम श्रेणी के नागरिक की तरह रह सकता है, व्यवसाय कर सकता है, शिक्षा प्राप्त कर सकता है, देश मे विचरण कर सकता है, सामाजिक शादी विवाह व अन्य कार्यक्रम मे भाग ले सकता है और जो शोषक वर्ग उनका आर्थिक सामाजिक शोषण करना चाहता है उनके विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद कर सकता है, तब तक वह न तो न्याय मन्दिर में प्रवेश कर सकेगा न वह न्याय प्राप्त कर सकेगा। अतः कानूनी साक्षरता अभियान इस योजना की प्रमुख कड़ी है। इससे चार प्रमुख उद्देश्य प्राप्त हो सकेंगे :—

(1) यह गरीब निरक्षर शोषित वर्ग अज्ञान के कारण जो अन्याय सहन करता है उससे बच सकेगा।

(2) वह निर्धन वर्ग समय रहते विधिक सहायता ले सकेगा जिससे भविष्य के मुकदमेबाजी व कानूनी पेचीदगियां उसे ग्रसित नही करेंगी।

(3) वह वर्ग इस ज्ञान से शक्तिशाली बन जायगा व उसमे ऊर्जा जागृत होगी क्योकि ज्ञान व शिक्षा सबसे बड़ी ऊर्जा व शक्ति है।

(4) यह उनको वह हथियार प्रदान करना है जिससे कि वह अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष कर सकें व आत्मविश्वास से रह सकें व संघर्ष करने के लिए सक्षम हो सकें।

39. प्रश्न यह उठता है कि विधि कानूनी सहायता के तहत यह साक्षरता अभियान कानून के किस रूप में हो। इसका हल दैनिक कार्य मे आने वाले उन कानूनो का ज्ञान कराने से है जो उनके रोज की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक कार्य-प्रणाली में उन्हे सक्षम बना सके, यह वह कानून है जिससे कि उनका शोषण, दुर्भाग्य, अन्याय दूर हो सके।

40. हम यह न भूलें कि हमारा राष्ट्र सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धित है। नीति निर्देशक सिद्धान्तो मे सामाजिक कामयाबी का कानून बनाने लिए विधायिका को निर्देश दिये गये है।

शोषण समाप्त हो

41. इस निर्देश के अनुसार शोषण को समाप्त करने, निर्धन, निर्बल अशक्त, विकलांग व पीडित व्यक्ति को कानूनी सहायता से सशक्त बनाने का प्रयास भी है। राष्ट्र की ओर से समाज कल्याण विभाग व अन्य ऐसी संस्थाएं बनाई गई हैं जो इस हेतु उन्हे सामाजिक न्याय दिला सकें। इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्रों मे भी कई ऐसी संस्थाएं हैं। वह सब इस बात का प्रयास करें कि निर्धन को न्याय के लिए सहायता कौन किस रूप मे दे सकता है, इसका प्रचार व प्रसार किया जाय ताकि जिसको इसकी आवश्यकता है उसको पूरा ज्ञान हो सके। यदि यह न हुआ तो जैसा कि अब तक हमारे अधिकतर समाज कल्याणकारी कानून केवल कागजी शेर की तरह अलमारियो मे मृतप्रायः बन्द रह जायेंगे। हमने कानून तो बनाये हैं जिससे कि सामाजिक चेतना व निर्धन को सब क्षेत्रों मे न्याय प्राप्त हो सके व उनका शोषण न हो परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि हम इस बात पर पूरी तरह विचार करें कि उनकी क्रियान्विति कैसे सफल हो सकती है। इस बात का भी प्रयास करें कि समाज में एक तरफ प्रबुद्ध एवं साधन, प्रबन्न व दूसरी तरफ धनहीन व शोषित वर्ग को दुःखी, त्रसित, उत्पीड़ित व ग्रसित लोगों को हर सम्भव ढंग से समानता के स्तर पर लाया जाय।

कानून-सशक्त का एकाधिकार

42. निहित स्वार्थ ने इस समाज कल्याणकारी दीनहीन के सुखकारी कानून के एकाधिकार का शोषण किया है व इसका कारण हमारी प्रशासनिक

मानसिकता व मनोबल की कमी है व उद्देश्य प्राप्ति के लिए संघर्ष का अभाव है। राजनैतिक मनोबल व प्रतिबद्धता इस ओर अधिक सशक्त हो, यह भी आवश्यक है। कानून बनाने में जो पेचीदगिया रख दी जाती हैं, उसे भी समाप्त करे, उनके सरलीकरण करने की आवश्यकता है। अन्यथा हमारे समाज कल्याणकारी कानून केवल नाम बनकर रह जाते है व इससे आम गरीब जनता में और अधिक निराशा होती है क्योंकि उनकी आशाओं और आकाक्षाओं पर तुषारापात हो जाता है व उनसे किये हुए समस्त वादे पूरे नहीं होते। यदि कानूनी साक्षरता का अभियान गति लेकर पूर्ण रूप से चलाया जाय तो उपरोक्त अभाव को समाप्त कर सफलता की ओर कदम बढ़ाये जा सकते हैं।

कानूनी साक्षरता अभियान गतिशील हो

43. इस हेतु प्रादेशिक भाषाओं में व राष्ट्रीय भाषा मे कानूनी साक्षरता अभियान चलाने के लिए साहित्य का प्रकाशन करना चाहिये। इसके सामाजिक कार्यकारी कानून कौन कौन से है, उनमे क्या प्रावधान हैं, कहा उन्हें प्राप्त किया जा सकता है, कौन उन्हें सहायता देगा किस प्रकार की प्रक्रिया होगी, यह सब बातें पूर्ण हो। उदाहरण के तौर पर श्रमिक व उसके हित कानून, इसी प्रकार से महिला कल्याणकारी कानून या इसी रूप मे अन्य कानून जैसे मोटर दुर्घटना मुआवजा आदि प्रकाशित होने चाहियें। राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड ने समाज के कमजोर वर्ग को समर्पित करते हुए "आम आदमी और पुलिस", "दहेज निषेध एवं मातृत्व लाभ विधि" "काश्तकार के अधिकार एवं कर्त्तव्य", "भूस्वामी और किरायेदार के अधिकार और कर्त्तव्य", "भरण पोषण सम्बन्धी विधि" "इन्साफ", "हड़ताल और तालाबन्दी", "महिलाएं और विधि", "न्याय मिले निर्धन को", "अधिकार आम आदमी के," "अदालत आम आदमी की", 'मुफ्त कानूनी सहायता-एक जानकारी", "दुर्घटना और मुआवजा" आदि पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इसी प्रकार गुजरात राज्य कानूनी सहायता एवं सलाह बोर्ड ने भी निम्न प्रकाशन कानूनी साक्षरता अभियान हेतु किये हैं :—

"सर्वने समान न्याय", "मोटर वाहन अकस्माता अंगे वणतर केम मेलवशो", "गुजरातनी बिन सरकारी माध्यमिक शालानो कर्मचारिओ", "कामदार अधिकारो अने कामदार फायदाओ", "भारतीय प्रणालिका अने पू. महात्माजी ना आदेश ने अनुरूप", "ग्रेच्युटिनो कायदो अने कामदारोना ते अन्वये ना हक्को", "अस्प्रश्यानो अधिकारो नू कायदा द्वारा रक्षण", 'नागरिकोना धर पकड अंगे अधिकारो", "स्त्री अने कायदो", "ग्राम देवदार राहत धाराना फायदा के विरीते मेलवशो।"

प्रकाशन गांव ढाणी चौपाल पर पहुंचे

44. इसी प्रकार के प्रयास कर्नाटक, तमिलनाडू, दिल्ली, उत्तरप्रदेश आदि में किये जा रहे हैं। परन्तु इस प्रकाशन का लाभ अब तक गरीबी की रेखा के नीचे गांव, ढाणी मे बसित, उत्पीडित काश्तकार, मजदूर या बड़े शहर की झोपड-पट्टियों में या फुटपाथ के ऊपर रातें बसर करने वालो को कितना मिल सका है यह एक प्रश्नवाचक चिन्ह है। मेरी अपनी मान्यता है कि प्रारम्भ अच्छा है, उद्देश्य बहुत पवित्र व पावन है परन्तु यह प्रकाशन भी अब तक केवल वितरण की दृष्टि से नाम मात्र का रहा है व गांव ढाणी, चौपाल, फुटपाथ, झोपड़ पट्टी, झुग्गी झोपडी के आस पास भी नहीं पहुंचा है। इस हेतु इनके वर्तमान संचार के साधन (मीडिया) रेडियो, टेलीवीजन, समाचार पत्र पर लगातार प्रचार व प्रसार करना आवश्यक है। हर ग्राम पंचायत के द्वारा हर जिला प्रशासन उन्हें प्रकाशित कर निःशुल्क वितरण करे व गांव की चौपाल पर व झोंपड़ पट्टी या झुग्गी झोपड़ियों एवं हताईयों पर व उनके बीच उनकी मोहल्ला पंचायत में इस प्रकार विधिक सहायक ग्राम सेवक की तरह जाकर के विस्तार से विवेचना करें, तब ही उनको कानूनी साक्षरता का कुछ लाभ मिल सकेगा।

चलचित्रों का उपयोग हो

45. इस कार्यक्रम में (1) क्षेत्रीय भाषा मे विधिक सहायता की चर्चा व भाषण के कार्यक्रम रखे जाने चाहियें, (2) चलचित्रों द्वारा गाव गांव में इसकी फिल्मे दिखाई जानी चाहिये, (3) सामाजिक कार्यकर्ता जो ग्रामो मे व गरीब बस्तियो मे कार्य करते हैं उनको पहले इस सम्बन्ध मे सुसंस्कृत किया जाना चाहिये ताकि वह फिर अपने क्षेत्रों मे जाकर के कानूनी साक्षरता अभियान चला सके। इस हेतु प्रशिक्षण केन्द्र भी प्रस्तावित किये जाने चाहियें जिनके द्वारा सामाजिक कार्यकर्त्ता प्रशिक्षित हो सकें।

46. जहा गरीब के कानूनी अधिकारों पर कुठाराघात होता है वहा प्रशासनिक इकाइयों को अथवा गैर प्रशासनिक सस्थाओ को न्यायालय मे वाद प्रस्तुत करने चाहियें जो कि अब लोकस स्टेन्डी के बारे मे सुप्रीम कोर्ट के एस पी. गुप्ता के निर्णय के पश्चात् हर व्यक्ति के द्वारा करना संभव है।

प्रशासनिक जानकारी का अधिकार

47 विधिक कानूनी सहायता समिति को यह अधिकार दिया जाना चाहिये कि वह जिले के भूमि अधिकारी से सम्बन्धित राजकीय पत्रावलियो को देख सकें, अधिकारियों से पूछताछ कर सकें, और फिर किस प्रकार अन्याय हो रहा है उसको उजागर कर सकें व यह पता लगा सकें कि भूमिहीन किसान को दी गई

कितनी भूमि आज उनके उपयोग में आ रही है अथवा उस पर भूपति फिर से डंडे के बल पर कब्जा करके उसे बेदखल कर चुके हैं। इसी प्रकार कितने छप्पर विहीन व्यक्तियो को दिये गये भूखण्ड या आवासीय मकान उनके पास रहे अथवा गरीबी के अभिशाप मे संतप्त इन परिवारों को शोषित वर्ग ने चमकती मुद्रा फेंककर चन्द पैसो मे खरीद लिया है व उन्हें फिर से बेघरवार कर सड़क छाप फुटपाथिये बना दिया है।

48. इन कानूनी सहायता केन्द्रो का यह भी कर्त्तव्य होगा कि वे पता लगायें कि ग्रामों में निर्धनता के अभिशाप से जिन गरीबों ने कर्जा लिया है उनका कितना शोषण हो रहा है और कही कर्जा देने वाले ब्याज के नाम पर उन व्यक्तियों की आर्थिक दशा को पूर्णरूप से क्षत-विक्षत तो नही कर रही है। यदि ऐसा है तो फिर न्यायालय में जो कानून कर्जा मुक्ति के लिये बनाये गये हैं उनके तहत कार्यवाही की जा सकती है।

विश्वविद्यालय केन्द्र

49. विश्वविद्यालयो में पढ़ने वाले विधि के विद्यार्थियों के द्वारा भी कानूनी साक्षरता योजना के तहत सक्रिय कार्य किया जा सकता है यदि उन्हें पहले इस हेतु पूर्ण प्रशिक्षण दे दिया जाय। इस हेतु विद्यार्थियो के प्रशिक्षण केन्द्र व सेमीनार व चर्चा के स्थान नियुक्त किये जायें और फिर उन्हे ग्रामों मे व अशिक्षित वर्ग मे भेजा जाय। यह कार्य छुट्टियो मे अधिक सक्रियता से किया जा सकता है।

50. यहा नि:शुल्क कानूनी सहायता कार्यक्रम मे विश्वविद्यालयो की भूमिका के बारे मे विशेष प्रकाश डाला जा रहा है। विश्वविद्यालय ज्ञान के मन्दिर हैं तथा वे विधि की शिक्षा देकर अभिभाषक व देश मे सुनागरिको का निर्माण करते हैं। यह कार्यक्रम सामाजिक न्याय की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है तथा एक राष्ट्रीय कार्यक्रम है। इस कारण बार कौंसिल आफ इण्डिया ने जो हाल ही मे पंचवर्षीय एल-एल.बी. डिग्री कोर्स प्रावधित किया है उसमे अन्तिम वर्ष में छः माह तक प्रेक्टिकल ट्रेनिंग की व्यवस्था है जिसमे अन्य प्रकार की प्रेक्टिकल ट्रेनिंग के साथ कानूनी सहायता में काफी समय का उपयोग किया जा सकता है। कुछ सीमा तक त्रिवर्षीय एलएल.बी. डिग्री कोर्स के अन्तिम वर्ष के छात्र भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। कानूनी सहायता कार्यक्रम को कोर्ट के बाहर व कोर्ट के भीतर चार स्तर पर चलाया जा सकता है जिसमें विश्वविद्यालय अपने विधि व समाज-शास्त्र संकायो के जरिये उपयोगी भूमिका निभा सकते हैं। ये स्तर निम्न प्रकार है–

(1) जन साधारण मे सामान्य विधि चेतना जागृत करना।

(2) विश्व विद्यालय विधि संकाय में पारा-लीगल क्लीनिक्स स्थापित करना।

(3) विधि प्राध्यापकों द्वारा कोर्ट मे कानूनी सहायता के मामलों मे पैरवी करना।

(4) विश्व विद्यालयों के समाजशास्त्र विभाग द्वारा कानूनी सहायता के मामलों का विभिन्न क्षेत्रों विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वेक्षण करना व विधि विभागों व संकायों के द्वारा कानूनी सहायता कार्यक्रम को अधिक प्रभावी बनाने हेतु इसके तरीकों में शोध करना।

अब निःशुल्क कानूनी सहायता के प्रत्येक स्तर पर विश्वविद्यालयों द्वारा किये जाने वाले कार्यों का विस्तृत वर्णन किया जा रहा है।

सर्वेक्षण व शोध

51. माननीय जस्टिस पी० एन० भगवती के अनुसार निःशुल्क कानूनी सहायता कार्यक्रम जरूरतमन्द गरीब के द्वार तक पहुंचना चाहिये, तभी हमें इस कार्यक्रम में सफलता मिल सकती है। यह कार्य तभी सम्भव है जब कि इस प्रकार के जरूरतमन्द लोगों का सर्वेक्षण किया जाय। यह कार्य विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग के प्राध्यापकगणों की देखरेख मे स्नातकोत्तर स्तर के छात्र कर सकते हैं और इस क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। आवश्यकता है केवल सर्वेक्षण हेतु क्षेत्र बांटने की और इस कार्य को उनके पाठ्यक्रम का आवश्यक अंग बनाने की।

शोध कार्य

52. जहा तक कानूनी सहायता-कार्यक्रम योजनाओं व उनके तरीको मे सुधार का प्रश्न है, इस सम्बन्ध मे विधि संकाय के प्राध्यापको व छात्रों के शोध कार्य उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

53. इस प्रकार हम देखते हैं कि निःशुल्क कानूनी सहायता क्षेत्र मे विश्व-विद्यालय अपने विभिन्न सकायों व विभागों के सहयोग से इस सामाजिक न्याय के कार्यक्रम को प्रभावी व सफल बनाने में अपनी महती भूमिका निभा सकते है जिसके लिए उनको आगे आना चाहिए।

विधिक सहायता ग्राम चौकी

54. विधिक सहायता केन्द्र की पूर्ण रूप से देखभाल राजकीय स्तर पर जो प्रदेश के संचालन के लिए समिति की नियुक्ति की गई है वह कर रही है, परन्तु हर स्तर के ऊपर यानि कम से कम जिला व तालुका स्तर पर जिला समितियों का निर्माण किया जाकर तहसील स्तर पर उन्हें लाया जाय। यही कार्य फिर विधिक सहायता चौकी स्थापित करके ग्राम-ग्राम में किया जा सकता है।

55. न्यायिक अधिकारियों को इस हेतु सक्रिय किया जाय क्योंकि वे न्यायिक प्रक्रिया में सबल व सक्षम हैं, व उनके अनुभव व प्रशिक्षण से 'निर्धन को विधिक सहायता' का अभियान चलाने में बहुत सहायता मिल सकती है, जिससे गैर सरकारी संस्थाओं व सरकारी समितियों के बीच वे कड़ी का काम भी कर सकें। जिला न्यायाधीश जिला स्तर के ऊपर व मुन्सिफ मजिस्ट्रेट ताल्लुका या तहसील स्तर के ऊपर इस अभियान में सक्रिय हों, यह आवश्यक है।

अभिभाषकगण का सहयोग

56. अभिभाषकगण की सहायता व सक्रिय गतिविधियों के बिना कोई भी निःशुल्क कानूनी सहायता का कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता। यह वर्ग ही वास्तव में सबसे अधिक इस हेतु प्रशिक्षित व सक्षम है। अतः हर अभिभाषक संघ के अध्यक्ष इन समितियों में अपने पद के कारण चयनित किये जाने चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं होगा कि यह कार्य केवल अभिभाषकों पर सौंप दिया जाय, क्योंकि अंततोगत्वा राजकीय कोष से जो रकम मिलेगी उसके द्वारा यह कार्यक्रम होंगे और राज्य कोष के धन का वितरण व उपयोग समिति के द्वारा ही किया जाना चाहिये। यह भी न भूलें कि ताल्लुका और तहसील स्तर के ऊपर अभिभाषकों का मिलना भी संभव नहीं होता। अतः न्यायिक अधिकारी, अभिभाषक, सरकारी अधिकारी, सामाजिक कार्यकर्ता, विधिक सहायक—इन सबके सहयोग से ही कार्य सफल हो सकता है। जब तक इसमें जनता-जनार्दन व सामाजिक कार्यकर्ता सक्रिय रूप से भागी नहीं बनेंगे तब तक केवल यह कार्यक्रम अभिभाषकों के चोंचले या न्यायिक अधिकारियों के चोंचले के रूप में ही रह जायेगा। विधिक कानूनी सहायता का आंदोलन जन आन्दोलन के रूप में सफल तब ही होगा जब ग्राम-ग्राम के निवासी इसे अपना कार्यक्रम समझेंगे व इसमें सक्रिय हो करके भाग लेंगे। इस कार्यक्रम को बनाते समय भी सामाजिक कार्यकर्ताओं से सम्बन्ध स्थापित करें एवं सभी स्तर की समितियों में गरीब वर्ग का पूर्ण प्रतिनिधित्व होना चाहिये।

1957 विधि मन्त्री सम्मेलन प्रस्ताव—निरर्थक

57. सन् 1957 के सितम्बर माह (19 सितम्बर, 1957) को विधि मंत्रियों के सम्मेलन में यह निश्चित किया गया कि प्रत्येक अधिवक्ता से 6 प्रकरणों में सहायता ली जावे परन्तु राज्यों ने कोई ध्यान नहीं दिया अपितु अपने कर्तव्यों का पालन करने के उद्देश्य को तुच्छ एवं महत्वहीन विषय कहकर और अर्थाभाव कहकर टाल दिया, जिसको विधि आयोग (ला कमीशन) के द्वारा अस्वीकार तो कर दिया गया परन्तु कोई ठोस कदम भी नहीं उठाए गये, जिसके

सम्बन्ध की पंक्तियां भगवती ग्रायोग में इस प्रकार दी गयी हैं :—

"विधि ग्रायोग ने 1958 में प्रकाशित न्याय प्रशासन के सुधार के प्रतिवेदन में एक परिच्छेद विधिक सहायता संबंधित देते हुए इस हेतु किये गये प्रयासों का उस समय तक का निष्कर्ष निम्न प्रकार निकाला :—

दुर्भाग्य से ग्रब तक विधिक सहायता को बहुत कम महत्त्व दिया गया है। ग्रायोग की दृष्टि में निर्धन गरीब को विधिक सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया की साधारण समस्या नहीं परन्तु यह ग्रावश्यक महत्त्व का प्रश्न है।

ग्रायोग का यह स्पष्ट मत है कि विधिक सहायता का दृष्टिकोण स्वीकृत किये जाने योग्य है। परन्तु ग्रायोग ने ग्रपनी ग्रोर से कोई नया प्रस्ताव प्रस्तावित न कर भगवती ग्रायोग की सिफारिशों को साधारण संशोधन के पश्चात् स्वीकार करने के लिए सिफारिश की।"

प्रतिबद्धता ग्रावश्यक

58. सफलता तब ही मिलेगी जब इस कार्यक्रम के कर्णधार निर्धन को मुफ्त कानूनी सहायता देने के सिद्धान्त से प्रतिबद्धित हो व यह प्रतिबद्धता उनकी सामाजिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक व जीवन दर्शन के फलस्वरूप हो। यदि केवल ऊपरी विचारों से प्रतिबद्धता हुई तो ग्रंततोगत्वा वह इस कार्यक्रम की जड़ें खोद कर उसे समाप्त करने में सहायक होंगे। *यहां यह कहना उचित होगा कि इसे राजनीति से* दूर रखा जाय ताकि किसी विशिष्ट दल के प्रचार का यह साधन न बन सके।

59. यह भी ग्रावश्यक है कि न्यायिक ग्रधिकारियों को इस हेतु प्रशिक्षित किया जाय ग्रन्यथा वह भी ग्रज्ञान में ही कार्य करेंगे।

60. वैसे ग्रधिकारी चाहे न्यायिक हो चाहे प्रशासनिक उनमें सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता होनी चाहिये। उन्हें इस बात को हर समय समझना चाहिये कि समाज-कल्याणकारी कानून की क्रियान्विति राष्ट्र उत्थान, सामाजिक उत्थान व न्यायिक उत्थान व गरीब व कमजोर वर्ग के उत्थान व सबसे पिछड़े को पहिले लाने की योजना के लिये ग्राधार बल है। यदि उनकी सामाजिक दृष्टि इससे मेल *नहीं खाती तो फिर उनसे कोई ग्रपेक्षा नहीं की जा सकती।* ग्रत: ग्रावश्यकता इस बात की है कि ग्रावश्यक रूप से इस बात की पालना में प्रतिबद्धित व्यक्ति को ही लिया जाय जो इसे धर्मयुद्ध समझकर सामाजिक न्याय के लिये ग्रपना जीवन दे।

क्रियान्विति महत्त्वपूर्ण

61. विधि वर्कशाप, विधि क्लिनिक, विधि सेमीनार, विधिक सहायता के रिफ्रेशर कोर्स यह सब उसकी ग्रावश्यकता है। लेकिन उनमें सक्रिय चर्चा होकर के क्रियान्विति हेतु कार्यक्रम बनने चाहिये। केवल भाषण होकर उसे समाप्त नहीं किया

जाना चाहिये । हर प्रदेश में इस हेतु जो गरीब को कानूनी सहायता की सचिव स्तर की समिति बनी है यह उनका कार्यक्रम है कि वह अभिभावकों को, सामाजिक कार्यकर्ताओं को इस हेतु प्रशिक्षण दें । उदाहरण के तौर पर लोक अदालतों के प्रशिक्षण के लिये जब तक गुजरात में जाकर लोक अदालत के कार्य को किसी ग्राम में कम से कम दो तीन बार कोई न देखेगा तो लोक अदालत की कल्पना ही उसके लिये दूभर रहेगी । यदि उपरोक्त कार्यक्रम हर प्रदेश में उनकी प्रादेशिक भाषाओ मे उनके विद्यमान रीति रिवाज, लोक गाथाओं से निर्णय की लोक पद्धति के अनुकूल किया जाय तो सैद्धान्तिक दृष्टि से चल सकता है । इससे हमारी गरीबी की रेखा के नीचे सिसकते भारतीयो को सामाजिक न्याय देकर ऊपर उठाकर उन्हें समझाकर व्यवसायी, सरकारी कर्मचारी, व्यापारी अथवा कामगार के रूप मे स्थापित कर सकेंगे ।

सामाजिक न्यायिक बदलाव के क्षितिज

62. यदि हमारे राष्ट्र का हर नागरिक अथवा अधिकतर जनता अपने कानूनी अधिकारों के प्रति साक्षर होकर के जागरूक संघर्ष में जुट गई तो निश्चित रूप से सामाजिक न्याय देश के क्षितिज पर शीघ्र ही उभर कर आयेगा । इससे सामाजिक परिवर्तन आयेगा, कानून के शासन व न्याय की तुला की प्रतिष्ठा बढ़ेगी व 'भारत के हर व्यक्ति के आंसू पोछ कर' गांधी की कल्पना को शीघ्र ही पूर्ण करने हेतु प्रेरणा मिलेगी ।

रूढ़ीवादी भाग्यवादी खतरनाक

63. भारत में असीमित निर्धनता कई शताब्दियो का शोषण, हजारों वर्षों की मानसिक गुलामी, रूढ़ीवाद व भाग्यवादी नपुसकता के कारण यहा पर विदेशियों द्वारा अपने शासन व शोषण को अक्षुण्ण रखने हेतु, आम जनता को अपने अधिकार से हमेशा अंधकार व अज्ञान मे रखा गया । स्वतन्त्रता संघर्ष के पश्चात् नई चेतना जागृत होने के पश्चात् भी राष्ट्र का बहुसख्यक बहुमत आज भी भाग्यवादी, रूढ़ीवादी, पोगापंथी, अंधविश्वास से ग्रसित है । अतः संविधान मे व स्वराज्य ने उनके उत्थान हेतु क्या नये आयाम, नये क्षितिज प्रतिस्थापित किये हैं, इसका आज भी उन्हें ज्ञान नहीं है ।

नीति निर्देशक सिद्धान्त—संविधान

64. सविधान निर्माताओ ने उपरोक्त अज्ञान व भाग्यवादी दुःखद अभिशाप से सतृप्त जनता के सामने पूर्ण आर्थिक समानता व सामाजिक, राजनैतिक स्वतन्त्रता व अंधकारमुक्त उनका जीवन निर्मित हो सके, इस हेतु उद्घोषणाओ के अतिरिक्त नीति-निर्देशक सिद्धान्तो में अनुच्छेद 46, 38, 39 आदि का निर्माण किया है । अनुच्छेद 37 मे इन सिद्धान्तों को महत्त्व देने के लिये कहा गया कि:—

"इस भाग में अन्तर्विष्ट उपबन्ध किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनशील नही होंगे किन्तु फिर भी इनमें अधिकथित तत्व देश के शासन मे मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा।"

65. अनुच्छेद 38 मे सामाजिक न्याय को विशेष महत्व देकर असमानताओं को कम करने के निर्देश दिये गये, जो इस प्रकार है :--

"(1) राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमे सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा।

(2) राज्य, विशिष्टतया आय की समानताओं को कम करने का प्रयास करेगा, केवल व्यक्तियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों मे रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरो की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा।"

निःशुल्क विधिक सहायता—39 क

66. नीति तत्वो में संविधान के अनुच्छेद 39 मे सम्पदा के स्वामित्व व नियत्रण सामूहिक हित मे करने के निर्देश देने के पश्चात् समान कार्य व पुरुष स्त्री की समान जीविका व स्वास्थ्य और शक्ति के उपयोग की सुनिश्चितता प्रतिस्थापित करने की भावना के निर्देश के पश्चात् समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता के अनुच्छेद 39 (क) के प्रावधान निम्नलिखित हैं।—

"राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधि व्यवस्था इस प्रकार काम करे कि न्याय समान अवसर के आधार पर सुलभ हो और वह विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिये कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने से वचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।"

निर्बल न्याय से वंचित न हो

67. प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या इन प्रावधानों के अनुरूप निःशुल्क कानूनी सहायता का अभियान अपने उद्देश्य मे सफल हो सकेगा। सर्व प्रथम हमें यह जानना होगा कि इस योजना व अभियान का उद्देश्य प्राथमिक रूप से यह है कि आर्थिक साधनो के अभाव में कोई भी भारत का नागरिक न्यायालय मे न्याय पाने से वचित न रहे। साधन सम्पन्न, शक्तिशाली शोषक पक्षकार के पक्ष मे न्याय की तुला मे जो अप्रत्याशित, अलिखित, अभाषित व परोक्ष मे कड़ी बंधी रहती है, जिससे तुला बार-बार उस ओर झुकने के लिये प्रयास करती है इस झुकाव को समाप्त करने व तुला को बराबर करने के लिये यह योजना है ताकि निर्बल व

कमजोर वर्ग भी न्यायालय में समान रूप से अपना पक्ष प्रभावी ढंग से रख सके व न्याय प्राप्त कर सके। इस उद्देश्य हेतु इस योजना में निर्धन व्यक्ति को राजकीय सहायता से अभिभाषक व कुछ सीमित रूप में दावे का खर्चा देने का प्रावधान किया गया है।

राजस्थान विधिक सहायता नियम

68. देश के विभिन्न प्रदेशों में विधिक सहायता पाने वाले पक्ष की परिभाषाएं पृथक-पृथक हैं परन्तु सबमे समानता यह है कि वह निर्धन व्यक्ति होना चाहिये या कमजोर वर्ग का हो। उदाहरणतया राजस्थान की परिभाषा धारा 2"ख" मे निम्न प्रकार है:–

"पात्र व्यक्ति" से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जो भारत का नागरिक हो और जिसकी आय सभी स्रोतों से नकद या वस्तु के रूप मे या दोनों को मिलाकर प्रतिवर्ष 6000/– रुपये से अधिक नही हो:—परन्तु

"(1) जहां ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जन जाति का सदस्य हो;

(2) जहा पत्नी विवाह-विषयक वाद मे एक पक्षकार हो या भरण पोषण की कार्रवाई में वादी या आवेदक हो या जहा कोई स्त्री उसके व्यपहरण, अपहरण, या बलात्कार से अन्तर्वलित किसी अपराधिक मामले में परिवादी हो;

(3) जहां वधु दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 (1961 का केन्द्रीय अधिनियम 28) के अधीन उद्भूत किसी मामले में परिवादी हो या जहा विवाहित या तलाकशुदा स्त्री मेहर की रकम वसूल करने के वाद मे वादी हो;

(4) जहा 16 वर्ष से अनधिक की आयु का बालक किसी अपराधिक मामले मे अभियुक्त हो; या

(5) जहा ऐसा व्यक्ति जन जाति उपयोजना क्षेत्र का या राजस्थान के माडा क्षेत्रो की जनजातीय बस्तियां जो राज्य सरकार द्वारा इस रूप मे घोषित हों-का या कोटा जिले की शाहबाद और किशनगंज तहसीलो का गरीब जनजातीय या वास्तविक जनजातीय निवासी हो, वहा पात्र व्यक्ति होने के लिये उपर्युक्त वार्षिक आय की अधिकतम सीमा लागू नही होगी।"

69. इसी प्रकार पूर्व अनुभव के अनुकूल इन निर्बल निर्धनपक्षकारो को वकील की सेवा देने के लिये वकील की फीस के लिये प्रावधान धारा 15 मे किये गये है, जो निम्न प्रकार हैं :—

वकील की फीस

"(1) उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति और अन्य विधिक सहायता समितिया विधिक सहायता के पात्र व्यक्ति के लिये प्रथमत: किसी वकील की सेवाएं, उसे किसी फीस का भुगतान किये बिना, उपलब्ध करवाने का प्रयास करेंगी।

राज्य सरकार ने 12 अप्रैल, 1984 को प्रकाशित किये हैं उन्हें इस पुस्तक के अन्त में दिया जा रहा है। लगभग इसी प्रकार के नियम हर प्रदेश में हैं।

तमिलनाडु—मोटर वाहन दुर्घटना क्षति

71. तमिलनाडु में विधिक सहायता के लिये स्वायत्त प्राधिकरण बना हुआ है व इस हेतु विशेष सक्रियता पाई गई है। उदाहरण के तौर पर सैकड़ों आदेश इस प्राधिकरण ने विभिन्न विभागों को दिये हैं, जिसमें पुलिस, जेल, स्थानीय विभाग आदि सम्मिलित हैं।

72. मोटर वाहन दुर्घटना को ही ले लें—उदाहरणतया 28 अगस्त, 1980 को तमिलनाडु के आयोग ने निम्नलिखित विज्ञप्ति जारी की :—

> "मोटर वाहन दुर्घटना के शिकार अधिकतर निर्धन व्यक्ति होते हैं, जिनका शोषण किया जाता है। मुआवजा और हर्जाने के मामलों में दलालों का एक सुनियोजित षडयन्त्र चलता है जो इनको मुआवजे का फायदा नहीं लेने देता। हर्जाने के बाद में बहुत विलम्ब होता है व राशि व ब्याज अधिकतर नहीं मिलता। राज्य सरकार व सरकारी आयोग, इन्श्योरेन्स कम्पनी, अपील साधारणतया बिना सोचे समझे करती है, जिसके विरुद्ध उच्च न्यायालय व उच्चतम न्यायालय ने कई बार उन्हें प्रताड़ना दी है। वसूली की कार्यवाही बहुत विलम्बकारी होती है, क्योंकि धारा 110 "ई" के अनुसार केवल प्रमाणपत्र लेकर के रेवेन्यु वसूली की प्रणाली अपनानी पड़ती है। आयोग इन सबको समाप्त करके नियमों में बदल करवाना चाहता

है जिससे कि मोटर वाहन दुर्घटना अधिकरण स्वयं वसूली की कार्यवाही कर सके जैसे कि दीवानी अदालत करती है ।

"कम से कम पाच वर्ष उच्च न्यायालय तक मुआवजा निर्धारण में लग जाते है और वसूली का समय तो अति विलम्बपूर्ण होता है, जिससे कि कई गरीब व्यक्तियों को एक पाई भी प्राप्त नही होती । निःशुल्क सहायता आयोग इसके लिये लगातार सक्रिया रहा व अभिभापकों को इस कार्य में पूर्ण सहयोग देना चाहिये ।

"इस हेतु अभिभापकों को जो निःशुल्क विधि सहायता आयोग से नियुक्त किये जाते हैं उन्हें इसे केवल एक वाद की पैरवी न समझकर एक ऐसा पवित्र कार्य समझना चाहिये जिसमे वकालत की पैरवी के अलावा अनुसंधान व सूचना एकत्र करना व शहादत के दस्तावेज प्राप्त करना भी शामिल है, जिसका खर्चा आयोग देगा । ब्याज व खर्चे के लिये अधिकरण पर फैसले के समय दवाव डाला जाना चाहिये । वसूली की प्रक्रिया तेज की जानी चाहिये । इसी प्रकार अन्य विज्ञप्ति जारी कर मोटर वाहन दुर्घटनाओं मे प्रथम सूचना रिपोर्ट की नकल अधिकरण के पास भेजने व दुर्घटनाओ में पीड़ित व्यक्ति या उसके रिश्तेदार को देने की निःशुल्क व्यवस्था की गई है । तमिलनाडु मे हर वर्ष हजारो दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति या उनके परिवार इस आयोग के माध्यम से हर्जा, मुआवजा पाते हैं, जो निःशुल्क कानूनी सहायता का अद्वितीय उदाहरण है ।"

73. उपरोक्त उदाहरण एक प्रदेश का है व अन्य प्रदेशो मे कही इसकी अगुवाई व कहीं इसका अनुसरण किया जा रहा है ।

नये आयाम व विस्तार

74. निःशुल्क कानूनी सहायता के दो स्वरूप हैं । एक जो परम्परागत है जो अभिभापक की नियुक्ति करके पक्षकार को न्यायालय में पैरवी करने की सहायता दी जाती है । इसमे समितिया व वार एसोसिएशन, विश्वविद्यालय, सामाजिक संस्थाएं, सामाजिक कार्यकर्ता भाग लेते हैं । दूसरा स्वरूप यह भी है कि हमे कानून के सरलीकरण के लिये व निर्धन को उसका लाभ मिल सके इसके सुझाव दिये जावें । इस हेतु वाद के प्रारम्भ होने के पहले कानून के द्वारा आपसी समझौते का प्रयास करने का प्रावधान होना चाहिये । महिलाओ व वालको को विशेष तौर से अन्याय के विरोध में संरक्षण प्राप्त कराने के लिये व शोषण समाप्त करने के लिये जो कानून बने हुए हैं उनकी क्रियान्विति की जानी चाहिये । भूमिहीन काश्तकार जिनको वेदखल कर दिया गया है उन्हे खेत, खलिहान का कब्जा वापिस

दिलाया जाना चाहिये, रेवेन्यु रेकार्ड में उनके हित में इन्द्राज किया जाना चाहिये। आवंटन होने के बाद उन्हें कब्जा मिल सके इसका भी पूरा उत्तरदायित्व विधिक सहायता समितियो को लेना चाहिये। बंधुआ मजदूरों के मुक्ति प्राप्त करने का कार्य प्राथमिकता से होना चाहिये। साधारण कर्मचारी, काश्तकार या मजदूर को प्रभावशाली शासक वर्ग या मालिक के विरुद्ध अपने अधिकारो के संघर्ष मे सहायता दी जानी चाहिये। जब तक हमारे न्यायालयों को इन निर्धन पक्षकारों को उनके ऊपर किये गये अन्याय से पीड़ित जख्म व घावों पर मलहम पट्टी कर इलाज करने के चिकित्सा के कार्य करने का धर्मयुद्ध छेड़ने की प्रेरणा न मिलेगी तब तक न्याय की देवी अपने अन्धेपन से संभवतया उन घावों पर नमक छिड़क दे तो कोई विस्मय नही। अतः न्याय-देवी की आँखों की पट्टी खोलकर विधि सहायता समितियों को सामाजिक आर्थिक उद्धार के विधेयक व नियमो की पालना कराने व न्यायालय से विधि का लाभ निर्धन व उत्पीड़ित वर्ग को दिलाने के भागीरथ प्रयत्न करने चाहिये।

भूलाभाई देसाई-नेहरू

75. अभिभाषक वर्ग साधारणतया सम्पन्न व प्रभावशाली व्यक्तियो को आर्थिक लाभ के कारण अपनी सहायता देते रहे हैं। यद्यपि अपवाद के रूप में निःशुल्क सहायता भी यदाकदा दी गई है। आज के परिवेश मे अभिभाषक वर्ग को इसे व्यवसाय व व्यवहार न समझकर दीनदुःखी दरिद्रनारायण की सेवा का अवसर भी समझना चाहिये। यह अनेक विधि वेत्ताओं, राजनेताओ व विधि शास्त्रियो का मत है कि स्वाधीनता के संग्राम में भूलाभाई देसाई, चितरंजन दास, देशबन्धु गुप्ता, मोतीलाल नेहरू, के. एम. मुंशी, कैलाशनाथ काटजू, जवाहरलाल नेहरू व महात्मा गांधी ने अभिभाषक वर्ग से आकर जो सेवा का महायज्ञ किया था व उनकी त्याग तपस्या से अभिभाषक वर्ग का नाम उज्ज्वल व धवल हुआ था उसे हम अब प्रतिस्थापित नही कर सकते। निःशुल्क विधिक सहायता एक ऐसा आयाम है, आन्दोलन है, जिसके द्वारा अभिभाषक संघ दीनहीन की सेवा के साथ सामाजिक न्याय को प्रतिस्थापित कर सकता है। हम यह न भूलें कि नियम 93 (बी) बार कौन्सिल एक्ट मे यह हर अभिभाषक का कर्तव्य है कि वह अपने वकालत का व्यवसाय करते समय यह ध्यान रखे कि यदि कोई पक्षकार फीस न दे सकता हो व उसका वाद प्रमाणिक हो व उसे अभिभाषक की आवश्यकता हो तो ऐसे दीन दुःखी व्यक्ति, असित, उत्पीड़ित, अभावग्रसित पक्षकार को निःशुल्क कानूनी सहायता प्रदान करना अभिभाषक का समाज के प्रति उच्चतम कर्तव्य है।

विधक सहायता की समितियां सक्रिय हों

76. अनुच्छेद 39 (ए) के द्वारा संविधान मे राज्य सरकार द्वारा विधिक

सहायता के लिये आर्थिक व्यवस्था करने का प्रावधान है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारी समितियां यह जानकारी करें कि कितने भूमिहीन किसान भूमि आवंटन के पश्चात् भी आज बेदखल हैं, छप्पर मिलने के बाद भी कितने फुटपाथ पर आवासीय छप्परो पर अतिक्रमण होने के कारण पशुओं की तरह जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हमारी विधिक सहायता समितियों ने क्या उन्हें पुनर्स्थापित करने के लिये पूर्ण प्रयास किया है ?

पूर्व वाद समझौता

77. इस सम्बन्ध मे कई प्रदेशों मे लोक अदालत व लोकहित वाद के दो नये स्तम्भ गतिमान हैं, जिनका विवरण पिछले दो परिच्छेदों में किया गया है और जो निःशुल्क कानूनी सहायता के अंग हैं। कई प्रदेशों में जिनमें गुजरात भी शामिल है निःशुल्क कानूनी सहायता समितियों के द्वारा वाद चालू होने के पहले न्यायालय में भी समझौता करवाने के लिये प्रणाली अपनाई जा रही है। पंच निर्णय उन पंचो के द्वारा जो सामाजिक कार्यकर्ता हो करने हेतु भी जागृति हुई है।

गतिमान

78. सब मिलाकर "भगवती न्यायालय" अब इस ओर अधिक गतिमान होगा, इसकी अपेक्षा है व भविष्य में इससे प्रेरणा लेकर प्रयास किया जाए, यह आज के युग की आवश्यकता है।

'विधिक सहायता' : अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव

79. अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव इस बात का प्रमाण है कि अमेरिका जैसे राष्ट्र में जहा कई दशकों से एक आयोग के द्वारा अथाह आर्थिक साधन के साथ निःशुल्क कानूनी सहायता दी जाती है, वहां भी अब तक 17 प्रतिशत से अधिक निर्धन सहायता प्राप्त नही कर सके हैं। उनमें यह भी चर्चा रही कि अभिभाषक ऐसे निर्धन पक्षकार के व्यवहार से सतुष्ट नही हैं क्योंकि वह अधिक समय लेते हैं और ऐसे पक्षकार अभिभाषक से संतुष्ट नही है क्योंकि वह नि.शुल्क कार्य में इतनी दिलचस्पी नही लेते जितनी कि वे धनाढ्य पक्षकारों के वादो में लेते हैं। इंग्लैण्ड व अन्य राष्ट्रों के अनुभव भी इससे बहुत अधिक भिन्न नही हैं। अतः इन विसंगतियो व दुःखद स्थिति मे, जिसमें अभिभाषक साधारणतया अर्थ की प्राप्ति के लिये पूर्ण सक्रिय हैं उनसे विधिक सहायता की बहुत अधिक अपेक्षा "निःशुल्क" करना संभव नही है।

आस्ट्रेलिया विधि सुधार आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार

80. नए सामाजिक अधिकारों के साथ ही न्याय तक प्रभावी पहुंचने के अधिकार का भी उद्भव हुआ है। वस्तुतः इन नए अधिकारों में इसका सर्वाधिक महत्व है, क्योंकि स्पष्टतः पारस्परिक एवं नए सामाजिक अधिकारों का उपभोग इस बात पर आधारित है कि उसके प्रभावी संरक्षण के लिए तन्त्र की व्यवस्था होती

है। इस प्रकार न्याय तक प्रभावी पहुंच होने की व्यवस्था जिसका तात्पर्य विधिक अधिकार को प्रत्याभूत करना है, सबसे अधिक आधारभूत अपेक्षा, अर्थात् सर्वाधिक आधारभूत मानव अधिकार के रूप में देखी जा सकती है। संविधान मे नया अनुच्छेद 39-क जोड़कर राज्य को निदेशित किया गया कि वह सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु गरीब व्यक्ति को निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान करे। यह बहुत ही प्रसन्नता का विषय है कि हमारी न्यायपालिका ने इस विषय के महत्त्व को अपने निर्णयो में बहुत प्रभावी तरीके से उभारा है। उच्चतम न्यायालय के निवृत्तमान न्यायाधिपति श्री वी.आर.कृष्ण अय्यर, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधिपति वाई.वी.चन्द्रचूड़न्या, वर्तमान मुख्य न्यायाधिपति पी. एन. भगवती, न्यायाधिपति ओ. चिनप्पा रेड्डी, न्यायाधिपति उंटवालिया व स्व. न्यायाधिपति मुर्तजाफजल अली ने अपने निर्णयों द्वारा सामाजिक न्याय की पृष्ठभूमि में गरीब व पिछड़े वर्गों को वास्तविक न्याय प्रदान करने तथा उन्हें अनिवार्यता विधिक सहायता प्रदान करने की बात कही है। संविधान के अनुच्छेद 14, 21 व 39–क का काफी विस्तृत विवेचन किया गया है।

पुलिस चौकी की तरह विधिक चौकियाँ

81. सफलता तब ही मिल सकती है जबकि केन्द्रीय व प्रादेशिक सरकारें अपने स्तर पर पूर्ण अर्थ व्यवस्था करके पुलिस स्टेशन की चौकी की तरह विधिक निःशुल्क सहायता केन्द्र प्रस्थापित करें व वहां पर सरकारी खर्चे से ही अभिभाषक व सहायता का पूर्ण प्रबन्ध किया जाय। सभवतया यह पूरा कार्यक्रम जिसमे कि पुलिस चौकी या प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या पंचायत सेवक की तरह निःशुल्क न्यायिक सहायक चौकिया व सेवक नियुक्त किये जा सकें एक लम्बा सफर है, जिसे यदि पूर्ण गति, मानसिक प्रतिबद्धता व राजनैतिक अनिवार्यता व सामाजिक न्याय की पालना हेतु आवश्यकता को अनुभव करके गतिमान की जाय तो इक्कीसवीं सदी मे शायद सफलता के कगार पर पहुंच सकें।

सामाजिक न्याय में विधिक सहायता अनिवार्य

82. भारतीय संविधान की प्रस्तावना में "सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय" जैसे उच्च आदर्शों की प्रतिस्थापना की गई है। संविधान का अनुच्छेद 14 "विधि के समक्ष समता एवं विधियो के समान संरक्षण" की गारन्टी देता है। कतिपय अपवादों को छोड़कर धर्म, जाति, वन्श, लिंग एवं जन्मस्थान के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करने की व्यवस्था भारतीय संविधान में की गई है। यह सुखद व्यवस्था आम आदमी को राहत देने वाली भी है, लेकिन अब तक कितनों को राहत मिली है, यह विचारणीय बिन्दु है।

निर्धनों का उद्धार

83. इन दिनों "निर्धनों को मुफ्त कानूनी सहायता" का आन्दोलन बड़ा

सक्रिय है। "चौपाल पर न्याय" "पेढ़ी पर पहुंच" आदि की चर्चा बड़े जोरों पर है। यह सब इस बात का संकेत है कि समाज का एक बहुत बड़ा तबका, जिसे निर्धन वर्ग कहा जा सकता है, अब तक न्याय से वंचित रहा है। आखिर क्यों ? हमारी व्यवस्था में या तो कहीं न कहीं कोई कमी रह गयी है, या समाज का सबल वर्ग अपनी स्वार्थ सिद्धि के पीछे निर्बल का शोषण कर रहा है। इस सामाजिक एवं ज्वलंत प्रश्न पर हमारे विद्वान न्यायाधीशों, मंत्रीगणों व समाज सुधारकों आदि का ध्यान गया है।

आवश्यकता : जन साधारण को विधिक ज्ञान की

84. अधिकार एवं उपचारों से भरा पड़ा है—हमारा विधान एव संविधान। हर अधिकार के लिए उपचार उपलब्ध है। इतना सब कुछ होते हुए भी आम आदमी कुण्ठित एवं व्यथित है। वह न्याय से अपने आपको कोसों दूर मानता है। क्यों ? क्या अधिकारों एवं उपचारों के प्रति उनमें भेदभाव किया गया है ? नहीं। वस्तुतः वे इन अधिकारों व उपचारों से ही अनभिज्ञ हैं। इसी अनभिज्ञता एव अज्ञानता के कारण व्यथित व्यक्ति अन्याय, शोषण एवं अत्याचार का कड़वा घूंट पीकर रह जाता है एवं कभी-2 वह अनजाने मे अपराध कर बैठता है।

अपील: समाज सेवी संस्थाओं से

85. भारत मे रोटरी, रोटरेक्ट्स, लायन्स, लियो, रेडक्रास आदि की स्थापना पश्चिमी देशो को भी मात दे रही है। अस्पतालो का निर्माण एवं प्याऊ की स्थापना, बाढ़ एवं अकाल में राहत आदि सब कुछ किया है, इन संस्थाओं ने। लेकिन आश्चर्य है कि निर्धन को न्याय दिलाने मे यह अब तक क्यों मौन रही हैं ? न तो इनके पास धन का अभाव है और न ही साधनो की कमी है। प्रतीत यह होता है कि इनको प्रेरित नहीं किया है, अब तक किसी ने।

आह्वान : अभिभाषक वर्ग को

86. अभिभाषक वर्ग न्याय प्रशासन की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। शीघ्र, सस्ता एवं सुलभ न्याय प्रदान कराने मे वह एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। यह कहना एक कटु सत्य है कि न्याय में विलम्ब निर्धन के लिए एक भारी समस्या है और इसके लिये मुख्य रूप से जिम्मेदार है न्यायपालिका व आज का अभिभाषक वर्ग।

चेतावनी : न्यायिक अधिकारी को

87. न्याय मे विलम्ब एवं निर्धन को न्याय से वंचित रखने का एक मात्र दोष अभिभाषक वर्ग को देना एकपक्षीय बात होगी। न्यायिक अधिकारी भी कुछ हद तक इसके जिम्मेदार हैं। न्याय के प्रति गिरती हुई आम आदमी की आस्था के

लिए आज न्यायिक अधिकारी का नाम भी लिया जाता है। न्यायिक अधिकारी का कर्तव्य सिर्फ यही नहीं है कि वह तत्परता से काम करे, बल्कि यह भी है कि वह निष्ठा, निष्पक्षता एवं ईमानदारी से कार्य करे।

"यदि मात्रा मे गिरावट आती है तो कोई क्षति नही होती है, यदि गुणवत्ता में कमी आती है तो कुछ क्षति होती है, लेकिन यदि हमारी स्वतन्त्रता, निष्पक्षता एवं ईमानदारी में गिरावट आती है तो ऐसा लगता है कि मानो हमने सब खो दिया है।"

13वीं शताब्दी में शुभारम्भ

88. ब्रिटेन में तेरहवीं शताब्दी मे गरीब को अभिभावक योजना का प्रादुर्भाव हुआ, जो राजकीय सहायता से संबधित नहीं थी। *1949* मे वहा 'विधिक सहायता एवं परामर्श विधेयक' पारित किया गया जिससे कि निर्धन को न्याय देने के कार्य मे पूर्ण रूपेण प्रगति हो सके। वहां पर लार्ड चान्सलर के सान्निध्य मे इस योजना हेतु आर्थिक सहायता राजकीय कोष से, विरोधी पक्षकार से वसूल होने पर व जिस पक्षकार को सहायता देते उसको भी भागीदार बनाकर दी जाती थी। अब वहां पर विधिक सहायता अधिनियम 1974 के द्वारा इन सब का सम्मिश्रण कर वृहत् प्रावधान किया गया है।

"फोर्मा पोपरिस"

89. इंगलैण्ड के विधिक सहायता के विस्तृत अध्ययन मे हम पायेंगे कि हेनरी-VII ने 1494 में एक कानून बनाया जिसका शीर्षक था "निर्धन को मुकदमो मे सहायता व शीघ्र न्याय प्राप्ति हेतु अधिनियम"। इसे बाद मे "फोर्मा पोपरिस" यानि असहाय अकिंचन को सहायता का नाम दिया गया। इसमे उस पक्षकार को फीस वकील की व कोर्ट की नही देनी पड़ती थी। परन्तु यह केवल प्रारम्भ था। इसका विस्तृत स्वरूप 1949 मे विधिक सहायता एवं परामर्श अधिनियम के द्वारा किया गया जिसे 1974 मे अन्य अधिनियमो द्वारा परिपक्व किया गया। अब लगभग 1400 व्यक्ति इस विधिक सहायता कार्य मे नियुक्त हैं, इसके अतिरिक्त लगभग सोलीसीटर्स का पाचवा हिस्सा व बेरिस्टर्स का बहुमत इसमे सम्मिलित है। पोलक की पुस्तक इंगलैण्ड विधि पद्धति 1974 के अनुसार लगभग आधे दीवानी गम्भीर वादों में विधिक सहायता प्रदान की जाती है। अतः इंगलैण्ड इस सम्बन्ध में अग्रणी है।

अमेरिका में विधिक सहायता आयोग

90. परन्तु अमेरिका की स्थिति इसके ठीक विपरीत है। यह राष्ट्र विभिन्न काले और गोरो का सम्मिश्रण है, जहां *इंगलैण्ड, आयरलैण्ड, जर्मन, फ्रेंच,* इटेलियन, स्केण्डीनेवियन, पोलेण्ड, सोवियत रूस का कुछ भाग व अफ्रीका तक के

निवासी आकर बसे है। इस कारण वहां का कानून व विधिक सहायता भी कई स्थितियों से गुजरी है। वहां दाण्डिक प्रक्रिया में मुफ्त कानूनी सहायता का प्रावधान संवैधानिक कारणो से पृथक् किया गया, तत्पश्चात संवैधानिक परिवर्तन के कारण इसे बढ़ाया गया व दाण्डिक न्यायिक अधिनियम 1964 बनाया गया। इसी प्रकार 1964 में आर्थिक समान अवसर अधिनियम (ईक्वल इकोनोमिक अपोरच्युनिटी एक्ट) मे अकिंचन को सहायता का प्रावधान किया गया। अब तक केवल दानप्रिय संस्थाओ द्वारा सहायता दी जाती थी, 64 के अधिनियम से सरकारी सहायता भी दी जाने लगी जिससे पूर्ण रूपेण नियुक्त एडवोकेट सरकार के द्वारा रखे गये, जो गरीब को सहायता देते थे। ऐसे एडवोकेट गरीब को सहायता केवल मुकदमों मे ही नही, बल्कि उनकी गरीबी की समस्याओ को मिटाने मे, उदाहरणत: किराये के मकान प्राप्त कराने मे, नौकरी प्राप्त कराने में, भी देते रहे। 1974 मे तीन वर्ष के विधायिका संघर्ष के पश्चात् अमेरिका ने विधिक सहायता के लिए स्वायत्त आयोग सरकारी आर्थिक सहायता से प्रतिस्थापित किया। अमेरिका मे यह सहायता गरीब को केवल मुकदमों मे नही बल्कि उसकी निर्धनता को भी समाप्त कर निर्धनता के अभिशाप से पैदा हुई सब समस्याओ को हल करने के लिए है।

91. अमेरिका के 'हारवर्ड ला रिव्यु' मे प्रकाशित एक समीक्षा मे बताया गया है कि एंग्लो अमेरिकन विधिक सहायता का प्रारम्भ मैग्नाकार्टा के ऐतिहासिक घोषणाओं व सकल्प के बाद हुआ, जिसमे घोषित किया गया- "किसी भी व्यक्ति को न्याय न तो बेचा जायगा, न वह न्याय से वंचित रखा जायगा, न न्याय देने के अधिकार मे विलम्ब किया जायगा।"[1] इसे सारभूत 1495 मे हेनरी-VII ने किया। न्यायविध्ट कारडोजो इसके उद्देश्य के बारे मे कहते हैं कि "संभवतया हम न्याय निर्धन व असहाय को देने की जब बात करते हैं तो वह दान पुण्य के रूप मे की जाती है।"[2] समीक्षक के अनुसार यह केवल सुन्दर स्वप्न दिखाने के समान है क्योंकि लाखो गरीब अमेरिकावासी इस संकल्प को केवल थोथा, खाली व सारहीन पाते है।

केवल 15% गरीब लाभान्वित

92. वहां के विधिक सेवा आयोग के सर्वेक्षण के अनुसार वे 15% से अधिक निर्धन लोगों को सहायता देने में असमर्थ रहे हैं। आयोग से तिरस्कृत व्यक्तियों को बहुत कम सहायता अन्य क्षेत्रों मे मिल सकती है क्योंकि दीवानी मुकदमों में इसका प्रावधान नगण्य हैं।[3] अभिभाषकों के नैतिक दायित्व सम्बन्धित अधिनियम केवल कागजो पर हैं क्योंकि अपनी व्यक्तिगत वकालत करने वाले वकील इस नैतिकता के नाम के लिए काम करने में असमर्थ हैं। अमेरिकन प्रयोग में यह भी पाया गया कि एक समीक्षक के अनुसार मुफ्त कानूनी सहायता लेने वाला

1. मेग्ना कार्टा सो 29 (1215)
2. बा. कारडोजो : "दी ग्रोथ ऑफ दी लॉ 87" (1924)
3. बेला : "लाभल एड इन दी यूनाइटेड स्टेट्स" (1980)

पक्षकार अभिभाषक का पांचगुना अधिक समय लेता है क्योंकि वह निरक्षर होता है, अनुभवहीन होता है। उसे कानूनी पद्धति में विश्वास नहीं होता व वकील व पक्षकार के बीच बहुत अधिक आर्थिक, सामाजिक स्तर का अन्तर होता है। बोस्टन नगर मे किये गये सर्वेक्षण के अनुसार आधे से कम गरीबों की समस्याएं कानूनी सहायता की परिधि में आती हैं[1] व जो सहायता दी जाती है वह भी अपूर्ण व अकिंचन होती है। अत: उपरोक्त अध्ययन से पता लगता है कि अमेरिकन प्रयोग लगभग असफल रहा है एवं वहां निर्धन व गरीब कानूनी सहायता से आर्थिक साधनों के सरकारी अभाव न होने पर भी वंचित हैं।

93. अमेरिका में विधिक सहायता, राजकीय तंत्र से अलग-थलग स्वतन्त्र है। वहां दीवानी मामलों में नि:शुल्क सहायता निर्धन को दी जाती है, जिसमे विशेष तौर से अभिभाषक, इसके विशेषज्ञ होते हैं। पारिवारिक कानून, मकान मालिक किरायेदार के सम्बन्ध सामाजिक सरक्षण योजनाएं व उपभोक्ता के हित के कानन मे विशेष नि:शुल्क सहायता दी जाती है।

94. अमेरिका में प्रथम चरण में जर्मनी से आये हुए नागरिकों ने शोषण के विरुद्ध समितियां बनाईं। दूसरे चरण में चार्ल्स ल्युगियस की अध्यक्षता में विधिक नि:शुल्क सभा का गठन किया गया। सौभाग्य से वह अन्ततोगत्वा सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधिपति बने व उन्होंने इसे गतिमान बनाया। यह भगवती के मुख्य न्यायाधिपति बनने के समकक्ष अवसर था।

95. तीसरे चरण में राष्ट्रपति जोहन्सन द्वारा जब गरीबी हटाने के लिए 1965 में धर्म युद्ध छेड़ा गया तब विभिन्न राज्यों को निशुल्क कानूनी सहायता हेतु आर्थिक व अन्य साधनों से युक्त किया गया।

96. अन्तिम चरण में अब यह एक स्वतन्त्र स्वायत्तपूर्ण आयोग के द्वारा नियोजित है। यद्यपि इसके लिए भी आर्थिक सहायता राजकीय स्तर पर दी जाती है।

अमेरिकी असफलता से शिक्षा

97. इस प्रकार अमेरिका मे प्रचण्ड विधि व विपुल आर्थिक साधनों के उपरान्त भी निर्धन को विधिक सहायता अभियान वहां के बहुचर्चित सर्वेक्षणो के अनुसार लगभग नगण्य व शून्य रहा है। पामर व एरोन्सन ने अपने सर्वेक्षण निष्कर्ष मे लिखा है कि अकेले लोन्स एंजिल्स में वहां की विधिक सहायता संस्थाएँ जिन निर्धन व्यक्तियो को विधिक सहायता की आवश्यकता है उनमें से केवल 10% की सेवाएं करने के लिए सक्षम हैं। परन्तु जे-हैन्डलर, ई-होलिंगसवर्थ व

1. आर स्प्रेनगर वर्ग : एक्शन प्लान फार लीगल सर्विसेज–28 (1977)

एच. एडलान्गर ने अपने अध्ययन से बताया कि अभिभाषकगण जो इस क्षेत्र में अग्रसर हैं केवल अपने वकालत के समय में से 6.4% समय विधिक सहायता हेतु देते हैं व उसमें से भी 1/3 हिस्सा उनके मित्र व रिश्तेदारों को निःशुल्क कानूनी सहायता मे व्यतीत हो जाता है। वहां पर "विधिक सहायता निर्धनों को अभियान की असफलता निश्चित" व "निजी क्षेत्रों के वकीलो द्वारा फीस न लेने या कम फीस लेने से विधिक सहायता की दुर्दशा," शीर्षक पुस्तकें इस बात को प्रदर्शित करती हैं कि विधिक सहायता एक दिखावा मात्र है।

वकीलो का दायित्व : नैतिक बनाम कानूनी

98. वकीलों के नैतिक दायित्व व व्यावसायिक नैतिकता पर प्रकाशित एक रपट मे 1975 मे कहा गया कि यद्यपि जब न्यायालय निर्धन पक्षकारों की पैरवी करने के लिए वकीलो को कहें तो उन्हें अकारण मना नही करना चाहिए, परन्तु न्यायालयो को भी यह ध्यान रखना चाहिए कि वकीलो का दायित्व उन पक्षकारों के प्रति पहिले है जिनसे वे फीस लेकर काम करने का वायदा कर चुके हैं। 1981 मे एक सर्वेक्षण के अनुसार विधिक सहायता वाले एडवोकेट बहुत अधिक बोझे से दबे हैं क्योकि उन्हें आयोग एक समय मे 120 से 150 तक मुकदमो की पैरवी करने के लिए बाध्य करता है। अमेरिका मे इस कारण अत्यन्त निराशाजनक वातावरण है क्योंकि जहा तक कानून का प्रश्न है गरीबो को कानूनी सहायता देने के लिए केवल वकीलो का नैतिक दायित्व लिखा गया है जो एक विधि लेखक के अनुसार केवल थोथा आदर्श है। अधिकतर न्यायालयो ने दीवानी मुकदमो मे निर्धन को विधिक सहायता प्राप्त करने के अधिकार को नकारा है।[1] केवल कुछ न्यायालयों ने इस बात को सीमित अधिकार माना है।[2]

1979 की वार्षिक रिपोर्ट

99. वहा के विधिक सहायता सेवा आयोग की वार्षिक रिपोर्ट 1979 के अनुसार साधारणतया आयोग द्वारा सहायता न देने पर अमरीकन नागरिको को अन्य कोई विधिक सहायता का साधन नही है।

---

1. हन्ट बनाम हैकिट 36 कैलिफोर्निया अपील 3 भाग पृष्ठ 134 सोड बनाम सोड 399 मिक पृष्ठ 367
2. फ्लोरिस बनाम फ्लोरिस 598, द्वितीय भाग 893 (अलिसका 1979) तलाक मे बच्चो के सरक्षण बाबत पायना बनाम सुपिरियन कोर्ट 17 कैलिफोर्निया 3 भाग पृष्ठ 908 (1976 कैदी का न्याय पाने का अधिकार)।

गिद्धों से बदतर

100. भोपाल गैस कांड के मृतकों के परिवारो का अमेरिकी वकीलों द्वारा शोषण व धोखाधड़ी ने सिद्ध किया है कि वे "गिद्ध" पक्षी हैं, जो दीन हीन, दुःखी परिवारो को मृतक की लाशों से मुआवजे रूपी रक्त मांस मज्जा पर "निःशुल्क कानूनी सहायता" का ढोंगी नकाब लगाकर, झूठे मानवीय सवेदना के मुखौटे लगाकर मंडरा रहे हैं। उनमें कव्वो व गिद्धो जैसी भी लज्जा नही है क्योकि वे कम से कम जीवित परिवारो पर यह कुत्सित शोषण चोंचो का हमला तो नही करते।

85% पक्षकार वंचित

101. उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जहां पूरे अमेरिका के निर्धन पक्षकार, जो वहां के कानून के अनुसार निःशुल्क कानूनी सहायता पाने के अधिकारी हैं, में से 85% इससे वंचित रह जाते हैं। जो 15% भाग्यशाली होते हैं उनको भी अभिभाषक अपने अमूल्य समय मे से केवल 6.4% समय देकर व इस समय में से भी उन पक्षकारों मे से जो रिश्तेदार या मित्र होते हैं उनको एक तिहाई भाग का समय देकर वास्तविक कानूनी सहायता से वंचित कर देते हैं।

प्रतिबद्धता आवश्यक

102. यदि विश्व के सबसे आर्थिक सम्पन्न वैभवशाली व विज्ञान तथा इलेक्ट्रोनिक्स की होड़ में प्रथम या द्वितीय जाने-माने राष्ट्र में विधिक सहायता की यह दुर्गति है तो सहज में ही मेरा यह निष्कर्ष सत्य के कगार पर है कि निर्धन को विधिक सहायता राजकीय स्तर पर केवल वित्तीय साधन उपलब्ध कराने से सम्भव नहीं। इसके लिए राजनैतिक, सामाजिक, नैतिक मनोबल, मानस व मानसिक प्रतिबद्धता चाहिए।

"पालकीवाला, मदर टेरेसा नहीं"

103. *दुर्भाग्य से पालकीवाला, सोरावजी व नरीमैन जैसे अभिभाषकों से यह अपेक्षा करना कि वे "मदर-टेरेसा" की तरह दुःखी, गरीब, तृसित, उत्पीड़ित भूमिहीन किसान, आकाश के नीचे सड़क पर सोने वाले फुटपाथियो, झोपड़पट्टी मे रहने वाले नर कंकालों या कामगारो की सेवा निःशुल्क कानूनी सहायता से करेंगे,* एक विकलाग को माउण्ट एवरेस्ट पर चढ़ाने की कल्पना के बराबर है।

कॉल गर्ल नहीं नींव के पत्थर

104. अतः भारत मे निर्धन को न्याय की कल्पना अगर सरकार को करनी है तो अभी केवल स्थायी नीव भरने का कार्य ही सम्पन्न किया जा सकता है बशर्ते कि हम केवल सेमिनार व समारोह मे सुन्दर शिल्पी झरोखे बनकर, अय्यर की व्यंग्यात्मक भाषा मे "कॉल गर्ल मीट" की तरह आकर्षण तक सीमित न रहें।

रूस में सरकारी वकील

105. उपरोक्त अमेरिका, इंगलैण्ड के विश्लेषण के पश्चात् यदि हम सोवियत रूस की ओर ध्यान दें, वहां पर न्यायिक पद्धति लेनिन की वर्गविहीन समाज रचना पर आधारित है। इस कारण पश्चिमी दुनिया की विधिक सहायता की वहा पर आवश्यकता नहीं। वहां हर व्यक्ति सरकारी खर्चे पर सरकारी वकील प्राप्त कर सकता है, क्योकि सारे न्याय व विधि के क्षेत्र का सरकारीकरण है।

106. सोवियत रूस में विलक्षण प्रयोग इस हेतु है क्योकि वहा पर अभियोगी व अभियुक्त पक्ष दोनों को सरकारी तौर से ही नियत्रित किया जाता है। मालिक के विरुद्ध अभियोग ट्रेड यूनियन चलाती है। उपभोक्ता मूल्य समितिया नियंत्रण, खाद्यान्न मे मिलावट आदि के अभियोग चलाती हैं व कई सार्वजनिक संस्थाएं अभियोग को प्रस्तुत करने अथवा अभियुक्त को बचाव करने मे सक्रिय हैं, जहां पर आम जनता सम्बधित होती है।

आस्ट्रेलिया

107. आस्ट्रेलिया मे राजकीय आधार पर उनके नियंत्रण में ही निःशुल्क कानूनी सहायता देने का प्रयोग हो रहा है।

108. भारत में दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 के संशोधित अधिनियम में धारा 304 अभियुक्त को निःशुल्क अभिभाषक देने के हेतु निर्मित की गई है। इसके लिये नियम उच्च न्यायालय द्वारा राज्य सरकार से सलाह कर बनाये जाते हैं। इसी प्रकार दीवानी मामलों में गरीब व्यक्ति बिना कोर्ट फीस दिये अपने आपको आर्थिक रूप से असहाय, साधनहीन साबित करने पर वाद प्रस्तुत कर सकता है, जिसके लिये दीवानी प्रक्रिया सहिता मे आदेश 33 में प्रावधान किये गये हैं।

109. हमारे यहां अपराध से संतप्त परिवार को सहायता देने का प्रावधान अब तक नही है, यद्यपि दण्ड प्रक्रिया संहिता में मुआवजा देने का सीमिति प्रावधान धारा 357 में अब किया गया है।

110. महर्षि कृष्णा अय्यर ने अपने एक निर्णय मे कत्ल होने पर अथवा अन्य प्रकार से सतप्त, अपराध से ग्रसित परिवार को राजकीय कोष से क्षति पूर्ति करने का प्रावधान बनाने के लिये अपना मत दिया है। उन्होंने दण्ड प्रक्रिया पर एक दिल्ली में हुए सम्मेलन मे लार्ड डेनिंग के इस सन्देश को महत्त्वता दी "जहां तक अपराध से संतप्त परिवार का प्रश्न है ब्रिटेन मे [illegible] प्रावधान है कि गम्भीर अपराध उदाहरणतया कत्ल मे [illegible] पीड़ि[illegible] आर्थिक सहायता देगी।"

111. रोमन विचारधारा के अनुसार न्याय की देवी का आसन इतना निर्भीक, निष्पक्ष होता है जिसे कि कोई आकर्षण हिला नहीं सकता। किसी प्रकार के भय, आक्रोश अथवा लोभ में वह अपने तुला को हिलने नही देती। वह किसी के पक्षपात करने या दुर्भावना से निर्णय करने से दूर रहने के लिये अपनी आंखें बन्द करके यह नही देखती कि पक्षकार कौन है व हाथ मे तलवार लिये उद्घोष करती है कि समस्त आततायियों व अपराधियों के विरुद्ध समानता, सकल्प व निष्पक्षता के साथ इसका उपयोग किया जायगा।

112. दुर्भाग्य से इस अंक्षेपन का इस युग मे सदुपयोग न होकर साधन-सम्पन्न, शासक, मालिक, शासनकर्ता, प्रभावशाली व्यक्ति व पक्षकारो के द्वारा इसका दुरुपयोग किया जा रहा है। आवश्यकता है कि अब इस हेतु निर्धन, त्रस्त, उत्पीड़ित, शोषित, विपिन्न, शक्तिहीन पक्षकार को भी न्याय मिले। लेकिन इस हेतु जहा एक ओर निःशुल्क कानूनी सहायता से उसे समकक्ष व प्रभावी बनाने का प्रयोग चल रहा है वही दूसरी ओर इस प्रयोग की वांछित सफलता की सभावना के कारण न्याय देवी की कल्पना में क्रान्तिकारी बदलाव भारतीय न्यायिक क्षितिज पर दृष्टि गोचर हो रहा है। जबकि यह मांग की जा रही है कि न्याय देवी आंख खोलकर सम्पन्न व विपिन्न, सशक्त व निशक्त, साधनयुक्त व साधनहीन, शोषक व शोषित, पूंजीपति व सर्वहारा, भूस्वामी व भूमिहीन, मालिक व कामगर के बीच जो विषमता, अभाव व असंतुलन है उसको अपनी दृष्टि मे रखकर तुला का प्रयोग करे। विधिक कानूनी सहायता का यह भी एक प्रमुख स्तम्भ है कि अंधी न्याय देवी की आखें इस ओर खुलकर आकर्षित हो।

वकालत का राष्ट्रीयकरण

113. किसी युग मे अभिभाषक वर्ग के राष्ट्रीयकरण की माग, निर्धन को न्याय देने हेतु की गई थी परन्तु आज वह लुप्त हो चुकी है व अब व्यक्तिगत क्षेत्र में ही अभिभाषक अर्थार्जन के लिये वकालत करते हैं।

गुजरात सर्वश्रेष्ठ

114. भारत के परिवेश मे यदि हम कुछ प्रदेशो के विधिक सहायता कार्यक्रमो का मूल्याकन करें तो पायेगे कि गुजरात इसमे सर्वश्रेष्ठ रहा है। यहां 15 नवम्बर, 1972 को यह योजना प्रारम्भ हुई, जो छः ताल्लुको मे थी व अब पूरे राज्य मे है। वार्षिक पाच हजार की आय से कम हर व्यक्ति को सरकारी खर्चे पर विधिक सहायता देने का प्रावधान है। जिले व ताल्लुका समितियां बनी हुई हैं,

जिनके अध्यक्ष न्यायिक अधिकारी होते हैं व राजकीय विधिक सहायता समिति के अध्यक्ष उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति होते है। वहाँ प्रारम्भ में सरकारी अनुदान केवल 17,000/- रु. सन् 72-73 मे किया गया, परन्तु अब वह राशि असीमित है।

राजस्थान

115. राजस्थान में विधिक-सहायता कार्यक्रम 197 6में प्रारम्भ हुआ, नियम 1976 मे बने व अब 1984 में नये नियम बन चुके है, जिनका विवरण ऊपर किया जा चुका है। राजस्थान प्रान्त मे विधिक सहायता हेतु अनुदान में सरकार की ओर से कमी नहीं रही परन्तु जो आंकडे उपलब्ध हैं उनके अनुसार उनका उपयोग पूर्ण रूपेण केवल दो वर्ष से होना प्रारम्भ हुआ है। आंकड़े निम्नलिखित है:—

वर्ष	आवंटित रकम	विधिक सहायता व्यय	प्रशासनिक व्यय	कुल व्यय
1976-77	5 लाख	—	20,000.00	20,000.00
1977-78	5 लाख	—	50,000.00	50,000.00
1978-79	5 लाख	—	441.00	441.00
1979-80	5 लाख	—	13,167.70	13,167.70
1980-81	66 हजार	4,953.79	2,500.50	7,454.29
1981-82	1 लाख	2,005.30	6,353.95	8,359.25
1982-83	2 लाख	8,396.50	14,869.10	23,265.60
1983-84	1.50 लाख	36,611.50	9,379.20	45,990.70
1984-85	5 लाख	2,31,363.90	30,127.83	2,61,491 73

116 वर्तमान में न्यायाधिपति श्री दिनकर लाल मेहता व भूतपूर्व मुख्य मत्री श्री शिवचरण माथुर, वर्तमान मुख्य मत्री श्री हरीदेव जोशी व विधि मंत्री की इस कार्यक्रम में पूर्ण प्रतिवद्धता व लगन के कारण जो कार्य छोटे स्वरूप मे न्यायाधिपति श्री पुरुषोत्तम दास कुदाल ने 75-76 मे प्रारम्भ किया था उसे अब पूर्ण गति मिल चुकी है व गुजरात के पदचिन्हों पर इसे गतिशील बनाने का प्रयास किया जा रहा है। वर्ष 84-85 मे 1,100 व्यक्तियों को विधिक सहायता दी गई व 97 साक्षरता शिविर आयोजित किये गये।

कर्नाटक

117. कर्नाटक में 1977 में प्रारम्भ होने के पश्चात् वहां के उस समय के *न्यायाधिपति श्री वेंकटारमैया* ने इसका नेतृत्व संभाला। बेंगलोर में छः केन्द्र व 24 केन्द्र अन्य स्थानों पर खोले गये, जिनमें से दो बेंगलोर के केन्द्र केवल महिलाओं व बालकों को कानूनी समस्याओं में पूरी सहायता देते हैं। पहले पहल कर्नाटक सरकार ने 10 लाख रुपये सहायतार्थ दिये व सफल होने पर 10 लाख रुपये और देने का आश्वासन दिया। यह आंकड़े कर्नाटक विधिक सहायता समिति की रिपोर्ट, 1978 से प्राप्त होते हैं।

तामिलनाडु

118. तामिलनाडु में एक स्वतन्त्र आयोग अवकाश प्राप्त न्यायाधिपति पी० रामकृष्णन की अध्यक्षता में स्थापित किया गया है। इसके द्वारा गरीबों को जिनमें सभी कमजोर वर्ग विशेष तौर से महिलाएं, अनुसूचित जाति व जन जाति शामिल है को *विधिक सहायता* दी जाती है व *वकील उपलब्ध कराये जाते हैं। कई समस्याओ का सुधार प्रशासनिक स्तर पर इस आयोग के द्वारा* कराया जाता है। मोटर वाहन दुर्घटनाओं मे यह आयोग भी भारत मे सबसे सक्रिय रहा है क्योंकि हर वर्ष हजारो दुर्घटनाओं से ग्रसित व पीड़ित परिवारो की पैरवी कर मुआवजा दिलाने में इस आयोग ने नया कीर्तिस्तम्भ प्रस्थापित किया है। आयोग के प्रयासों से ही तामिलनाड वाहन नियमों में परिवर्तन कर पुलिस द्वारा दुर्घटना की प्रथम सूचना की नकल व इन्श्योरेन्स पालिसी, वाहन के मालिक, ड्राइवर आदि का सब विवरण वहा एक ओर दुर्घटना क्षति पूर्ति न्यायाधिकरण को भेजने का प्रावधान है वहा संतप्त परिवार को भी यह सब विवरण निःशुल्क उपलब्ध कराये जाने का *प्रावधान किया गया है। अतः* अब तमिलनाडु इसमें अग्रणी है।

119 इस उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होगा कि भारत के विभिन्न प्रदेशों मे जिनमें से कुछ का सक्षिप्त विवरण दिया गया है विधिक सहायता के कार्यक्रम गति ले रहे हैं, यद्यपि यह केवल आंशिक सफलता कही जा सकती है।

प्रधान मन्त्री द्वारा प्रोत्साहन

120. प्रसन्नता व सन्तोष का विषय यह है कि 1 व 2 सितम्बर को दिल्ली मे प्रधान मन्त्री द्वारा इस कार्यक्रम की असफलता के प्रति व्यक्त की गई चिन्ता से यह संभावना है कि अब इसे गतिमान बनाया जायगा। इस सम्बन्ध में चलतीफिरती लोक अदालतों को हर प्रदेश मे स्थापित करने हेतु केन्द्र द्वारा विधेयक पारित करने का निर्णय सामयिक कदम है।

सरकार लोक अदालत में भागीदार बनें।

121. यह चिन्ता का विषय है कि अब तक गुजरात में भी जैसा कि मैंने पोरबन्दर लोक अदालत मे जानकारी प्राप्त की सरकारी पक्ष समझौते के लिये उपस्थित नही होते व लोक अदालत का परोक्ष मे बहिष्कार करते हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। गुजरात मे इस समस्या को जब तक सरकारी स्तर पर हल नही किया जायगा लोक अदालत में गरीब को कानूनी सहायता प्राप्त नहीं हो सकेगी। यह तो सर्वविदित है कि भारत के न्यायालयों मे जितने मुकदमे हैं उनमे उच्च न्यायालय व उच्चतम न्यायालय में लगभग आधे से अधिक मुकदमों मे सरकार एक ओर पक्षकार है व अधीनस्थ न्यायालयों में भी लगभग एक चौथाई मुकदमों में सरकार प्रत्यक्ष या परोक्ष मे या सरकारी निगम अथवा सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी पक्षकार है। अतः लोक अदालत की सफलता इस पर निर्भर रहेगी कि सरकार पक्षकार के रूप में भी उनमे उपस्थित होकर समझौते में शामिल हो, मुकदमे के निपटाने का प्रयास मुकदमा होने के पहले व वाद में करे, अन्यथा सब मिलाकर यह प्रयोग दिखावा अधिक व वास्तविक न्याय देने वाला कम होकर रह जायगा।

लोकहितवाद आदेश क्रियान्विति : सम्मेलन मौन

122. लोकहितवाद के निर्णय की क्रियान्विति के सम्बन्ध मे दुर्भाग्य से इस सम्मेलन मे विचार नही किया गया इस कारण सामाजिक न्याय का एक महत्वपूर्ण पक्ष तिरस्कृत रह गया। मर्यादाओ से जकड़े हुए बेडियों में कारावासीय मुख्य न्यायाधिपतिगण सम्मेलन मे मूक दर्शक के भांति उपस्थित रहे। न्यायपालिका के अभाव अभियोगो की बात को प्रकट करना संभव नही हो सका। यह उचित भी है कि न्यायपालिका अपनी मर्यादाओं मे रहे परन्तु सामाजिक न्याय के क्षितिज उभरने के पश्चात् अब यह तो निश्चित है कि सरकारी क्रियान्विति के बिना चाहे निर्णय एशियाड के मजदूरो की छटनी या वेतन सम्बन्धी हो अथवा राजस्थान के अकाल राहत कार्य के कामगारों को न्यूनतम मजदूरी का प्रश्न हो या कमला प्रकरण मे राजस्थान, मध्यप्रदेश, दिल्ली मे नारी शोषण व चर्म व्यापार को रोकने का प्रश्न हो अथवा नारी निकेतनो के अमानवीय आवास को सुधारने की समस्या हो या बधुआ मजदूरों की मुक्ति का प्रश्न हो अथवा नागरिक सुविधाएं प्राप्त करने का रतलाम का वाद हो, इनमें सबसे बड़ा प्रश्न है कि निर्णय की क्रियान्विति सरकार द्वारा की जाय।, संभवतः यह प्रश्न आने वाले सम्मेलन मे अथवा अन्य शांतिपूर्ण विधिक प्रतिवेदनो में अभिभापक संघों द्वारा या अन्य

सामाजिक न्यायिक क्षेत्र में अग्रसर संस्थाओं द्वारा हल कराया जा सकेगा, क्योंकि इस सम्मेलन मे यह स्पष्ट हो गया कि प्रधान मंत्री, विधि मंत्री व हर सरकारी तंत्र साधारणतया न्याय व्यवस्था में गतिशीलता लाने व निर्धन को न्याय प्राप्त करने हेतु समस्त प्रयास करने के लिये कृत संकल्प है।

चेतावनी

123. "निर्धन को न्याय" के उपरोक्त विवेचन के अंत मे केवल यह चेतावनी देना उचित होगा कि मैग्ना कार्टा, स्टेट आफ लिबर्टी व विश्व के समस्त सविधानों में निर्धन की सेवा संकल्प को दोहराने के पश्चात् भी सदियों से निर्धन, अशक्त, दलित, त्रसित, उत्पीड़ित व शोषित रहे है। मनुस्मृति व सृष्टि के प्रारम्भ में निर्धनो को न्याय के उद्‌बोधन के पश्चात् भी सब मिला कर विश्व में "मत्स न्याय" का ताडव नृत्य येनकेन प्रकारेण शक्तिशाली द्वारा शक्तिहीन को, साधन सम्पन्न द्वारा साधनहीन को, पूंजीपति मालिक द्वारा सर्वहारा व कर्मचारियों को शोषण करने की परम्परा में ही रहा है। न्याय व्यवस्था पर मनु का यह विचार कि "कानून निर्बल को भी सबल व शक्तिशाली के समकक्ष बनाकर न्याय प्राप्त कर सकता है" केवल आदर्श के रूप में रहा है, पालना के रूप में नही।

भगवती न्यायालय सक्रिय हो

124. आज भी राष्ट्र में जैसा कि अन्य पश्चिमी राष्ट्रों में भी विद्यमान है, नारी का शोषण, दहेज व योन के लिये किया जाता है। आदिवासी व फुटपाथ पर रहने वाले, झोंपड़पट्टी व झुग्गी झोंपड़ियो के निवासी संवैधानिक घोषणाओ व कानूनी सहायता केन्द्र के आरामदेय जलसों, जश्नों के पश्चात् भी नारकीय पशुतुल्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं। शासन की व्यवस्था में आज भी कामगारों के लाभ के अधिकतर कानून उद्योगपतियों के स्वर्ण मुद्रा से नियन्त्रित, राजनीतिज्ञ व कार्यपालिका की तिजोरियों मे बन्द हैं व कमजोर का शोषण उसी गति से हो रहा है। विधिक सहायता समितिया साक्षरता अभियान से अब तक उनको यह बताने मे भी असमर्थ रही हैं कि वह अपने अधिकार के लिये सघर्ष कर सकते हैं। देश की अधिकाश जनसख्या आज भी संवैधानिक उद्‌घोषणा की समानता व न्यायिक स्वतन्त्रता से वचित है व विधिक सहायता समितिया उनका अर्थ भी उनको समझाने में असमर्थ रही हैं। अतः आने वाले भविष्य में क्रियान्विति के क्षेत्र में विधिक सहायता की सुधार योजनाएं भगवती न्यायालय से प्रेरित हो सफलीभूत हो, इसकी आशा अवश्य है।

नींव के पत्थर

125. न्यायिक क्षेत्र के समस्त चिंतकों; अभिभाषकों, विधिवेत्ताओं, न्यायिक अधिकारियों व सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा निर्धन को न्याय दिलाने हेतु राजकीय समितियों अथवा निगम व सार्वजनिक संस्थाओं में सक्रिय कार्य करने का यह उचित समय व वातावरण है। यदि कार्य पूरा न भी हो सके परन्तु उसकी श्रेष्ठ आधार-शिला व नींव इस पीढी ने रखने में सफलता प्राप्त की तो भावी पीढ़ियां उस पर निर्धन, निर्बल, नि:शक्त व असहाय हर व्यक्ति के आसू पोछ कर नव जीवन, समान आर्थिक व सामाजिक न्याय की दिशा में प्रतिस्थापित करने मे अवश्य ही सफल होगी।

126. लोक अदालत, लोकहितवाद, व नि:शुल्क कानूनी सहायता की त्रिवेणी का सफल संगम यदि भगवती न्यायालय करवाने में आंशिक सफलता भी प्राप्त कर सके, तो न्यायिक इतिहास में वह भागीरथ बन सकेंगे।

न्यायपालिका की आर्थिक स्वायत्ता
व
न्यायिक स्वतन्त्रता

1. भारतीय न्यायपालिका को आर्थिक स्वायत्ता अथवा आत्म निर्भरता की आवश्यकता को विधि वेत्ताओं व न्यायाधिपतियों ने विभिन्न परिवेश व प्रसग मे अनुभव किया है। दिल्ली में हाल में हुए दो दिवसीय मुख्य न्यायाधीश, मुख्य मंत्री व विधि मन्त्रियो के सम्मेलन में जहां सस्ता व सुलभ न्याय देने हेतु व न्याय प्रक्रिया में प्रगति व शीघ्रता लाने, गतिमान बनाने के उद्देश्य से कई ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये, परन्तु वहां आर्थिक स्वायत्ता के प्रश्न को किसी भी पक्ष ने नहीं रखा। इस निर्णय में लोक अदालत तथा चलती फिरती अदालत की स्थापना करना, लाखों अनिर्णित पडे दशकों पुराने मुकदमों का निपटारा व न्यायाधीशों की नियुक्ति करना, राष्ट्रीय विधि सेवा कानून को बनाकर निःशुल्क सहायता उपलब्ध कराने का विस्तार करना, न्यायाधीशों की संख्या बढाना, न्यायाधीशों के रिक्त पदो के रिक्त होने के पहले नियुक्ति करने की प्रक्रिया प्रारम्भ करना, न्यायिक सेवा अधिकारियों को प्रशिक्षण के लिये केन्द्र, संस्थान अथवा अकादमी की स्थापना करना, अधीनस्थ न्यायिक सेवाओं में चयन की प्रक्रिया मे उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को सम्मिलित करना, आधुनिक वैज्ञानिक सुधारों के उपयोग हेतु कम्प्यूटर पद्धति आदि को उपयोग में लाना व न्यायाधीशों की सेवा शर्तों पर पुनर्विचार कर उन्हें अधिक सुविधाजनक बनाने का निर्णय भारतीय न्यायिक जगत में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रधान मंत्री व केन्द्रीय विधि मंत्री द्वारा इस हेतु प्राथमिकता देना व चिंता व्यक्त करने से यह अपेक्षा की जा सकती है कि हमारी न्यायपालिका मे प्रभावशाली उपयोगी परिवर्तन भगवती न्यायालय काल मे प्रारम्भ हो जायेंगे।

वित्तीय अधिकारों का अभाव

2. मुख्य न्यायाधिपति श्री भगवती ने इसमे अग्रणी मार्गदर्शन किया है व लोक अदालत, लोक हित वाद, निःशुल्क विधिक सहायता के क्षेत्र मे वे चिरकाल तक न्यायिक जगत मे ख्याति प्राप्त कर सकेंगे, ऐसी अपेक्षा है। परन्तु आर्थिक

स्वतन्त्रता के अभाव में इन निर्णयों की क्रियान्विति सन्देहास्पद है। वर्तमान में दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपतियों को अपने स्तर पर एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी भी बढ़ाने का निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। न्यायाधीशो की संख्या बढ़ाना, उनके कर्मचारियों की नियुक्ति हेतु सख्या में वृद्धि करना अथवा न्यायालय में साधन उपलब्ध करना, इस हेतु उच्च न्यायालय के अधिकारी प्रदेशों के सचिवालय में वर्षों भीख मागने की झोली लिये याचक की तरह हीन अवस्था मे भटकते रहते हैं।

न्यायालयों की दयनीय स्थिति

3. अधीनस्थ न्यायालयो में ही नही बल्कि उच्च न्यायालयों मे भी जब तक संबंधित सरकारी कार्यालय की हरी झण्डी नही मिलती तब तक उच्च न्यायालय के लिये निर्णय लिखने के कागज, पैन्सिल, टंकरण मशीन भी स्वतन्त्र रूप से खरीदने के अधिकारी नही हैं। निरीक्षण में मैंने जयपुर के अधीनस्थ न्यायालयों मे रसीद बुक के अभाव मे जुर्माने की रकम जमा करने की दुविधा, सम्मन व वारन्ट के फार्म न मिलने के कारण खाली कागजो पर छापे लगाकर अपराधी को बुलाने की दयनीय स्थिति, सांगानेरी गेट न्यायालयो में गार्ड रूम न होने के कारण पुलिस कास्टेबिल को सजा देने पर बुलाने मे पाच छः घटे का इंतजार व अलमारियां व फाइल कवर के अभाव मे फर्श पर मुकदमों के कागजो को पडे रखने की दुःखदायी स्थिति देखी है। यही नहीं, कई न्यायालयों मे तो पक्षकार को कागज लेकर प्रस्तुत करने पर बयान लेने व निर्णय की प्रतिलिपि देने या अन्य कार्य करने की दुविधाजनक स्थिति भी सामने आई। सरकारी आवास के अभाव में एक ही छत के नीचे अभिभाषक के मकान में एक ओर न्यायालय व पास के कमरे मे अभिभाषक का कार्यालय होने के आपत्तिजनक मिश्रण भी पाये गये। टूटी गिरने वाली छत के नीचे लगातार गिरते हुए चूने व पानी के नीचे न्यायाधीश सिकुड़कर कार्य करते देखे गये। पिछले अध्यायो मे मैंने इन दुर्दशाओ का विस्तृत वर्णन किया है व बताया है कि किस प्रकार बनी पार्क के न्यायालयों मे लगभग चालीस से अधिक न्यायाधीश कार्य करते हैं व हर समय उन्हें चैम्बर के अभाव में अभिभाषकों की भीड़-भाड़ मे खुले मे टेबल लगाकर कार्य करना पड़ता है। पक्षकारो मे महिलाओं के लिये भी जेठ की कड़ी धूप मे व सावन भादों की मूसलाधार बरसात में सर छिपाने के लिये कोई पक्षकार-शेड या कमरा नही है न शौचालय है। आर्थिक दुर्गति की पराकाष्ठा, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशो को उचित शीघ्रलिपिक की संख्या के अभाव मे लबे समय तक प्रतीक्षा करने व निर्णय लिखाने में असमर्थता में भी प्रकट होती है।

मुख्य मंत्रियों पर निर्भरता मुख्य न्यायाधिपतियों की

4. राष्ट्र के विभिन्न प्रदेशों के न्यायिक जगत में विभिन्न समस्याएं है परन्तु

सब मिलाकर यह स्पष्ट है कि आज के मुख्य न्यायाधिपति आर्थिक दृष्टि से झोला फैलाकर भीख मांगने के लिये प्रशासन के सम्मुख बाध्य कर दिये जाते हैं, जिससे यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने प्रदेश के मुख्य मंत्री, वित्त मन्त्री, राज्यपाल से घनिष्ठ सम्बन्ध रखें ताकि आर्थिक कठिनाइयां न हों, यह सब दुर्गति यदि मुख्य न्यायाधिपति स्तर पर होती है तो छोटे ग्रामो में बैठे हुए दयनीय मुन्सिफ की दुःख-पूर्ण दुर्दशा की कल्पना करने से सिहरन पैदा होती है व लगता है कि न्यायिक स्वतन्त्रता आज नही तो कल निश्चित ही खतरनाक चौराहे पर आ जायेगी।

प्रधान मंत्री की घोषणा

5. सौभाग्य से जैसा कि प्रधान मंत्री ने कहा भारतीय न्यायपालिका की स्वतन्त्रता पर हम सबको गर्व है व अब तक इन सब आर्थिक दुविधाओं, विपदाओं, दयनीय कठिनाइयों के उपरान्त भी हमने अपनी स्वतन्त्रता को अक्षुण्य रखने के पूर्ण प्रयास किये है। आवश्यकता इस बात की है कि यदि हमें चिरकाल चिरस्थाई स्वतन्त्रता के रूप मे प्रस्थापित करना है तो आर्थिक दृष्टि से न्यायपालिका को स्वतन्त्रता प्रदान की जाय।

आर्थिक स्वायत्ता का विवेचन

6. आर्थिक स्वतन्त्रता का विशद विश्लेषण तो यहा करना संभव नही केवल संकेत के रूप मे यह बताया जाना आवश्यक है कि केन्द्रीय स्तर पर राजकीय कोष में प्रति वर्ष आवटन की धनराशि वहां के मुख्य न्यायाधिपति व न्यायपालिका को प्रदान कर दी जाय, जिसके विस्तृत खर्च करने की योजना व क्रियान्विति स्वयं मुख्य न्यायाधिपति अपने स्तर पर न्यायिक विभाग के द्वारा करे व राज्य प्रशासन का इसमे कोई दखल या अंकुश न हो। इतना अवश्य है कि यदि राज्य प्रशासन चाहे तो मुख्य न्यायाधिपति को आर्थिक मामलों में सलाह देने के लिये अथवा सहायता के लिये वित्त विभाग के एक विशिष्ट अधिकारी को न्यायपालिका मे मुख्य न्यायाधिपति के पास उनकी सेवा में रख सके, जो उन्हें वित्तीय विशेष विवरण व विस्तृत योजनाऐं बनाने में सहायता दे।

न्यायाधिपतियों की वित्तीय आवश्यकताओं में काटछांट नहीं

7. वित्तीय आर्थिक स्वतन्त्रता के लिये यह भी आवश्यक है कि जिस प्रकार जापान मे साधारणतया सुप्रीम कोर्ट के द्वारा भेजा गया वित्तीय आवश्यकता का अनुमान राजकीय आवटन द्वारा स्वीकृत कर लिया जाता है व उसमे काटछाट नही की जाती, वैसे ही भारत के मुख्य न्यायाधिपति को इस बारे मे स्वतन्त्रता दी जाय कि वह समस्त राज्यो के मुख्य न्यायाधिपतियो से विचारविमर्श कर हर वर्ष अखिल भारतीय स्तर के ऊपर केन्द्रीय सरकार से व प्रदेशों के स्तर पर प्रदेश सरकार से

वित्तीय अनुदान या आवटन के लिये सिफारिश करे, जिसे न्यायपालिका का अधिकार समझकर स्वीकार कर लिया जाय।

वित्तीय परतन्त्रता-स्वतन्त्र न्यायपालिका का अभिशाप

8. आर्थिक वित्तीय स्वतन्त्रता व स्वायत्ता न्यायिक स्वतन्त्रता के लिये महत्त्वपूर्ण आधार स्तम्भ है। इसकी सैद्धान्तिक स्वीकृति मुख्य न्यायाधिपतियो व मुख्य मंत्रियों द्वारा भविष्य मे की जानी चाहिये। जब तक यह सैद्धान्तिक स्वीकृति नही होती न्यायिक जगत में वित्तीय सहायता स्वीकृत अनुदान के लिये न्यायपालिका के अधिकारी सचिवालय के साधारण से साधारण वित्त विभाग के अधिकारियो के पास दया कृपा की भीख मांगते रहेगे व मुख्य न्यायाधिपति हर बार मुख्य मन्त्री की ओर सहानुभूति प्राप्त करने के लिये या राज्यपाल से सिफारिश करवाने के लिये परतन्त्र रहेंगे, जो परोक्ष में न्यायिक स्वतन्त्रता पर सबसे बड़ा आघात होगा।

कम्पयूटर का अभाव

9. यह तो सर्व विदित है कि आज भी जबकि राजनैतिक दलो के कार्यालयो मे कम्प्यूटर से चुनावी प्रत्याशियों का चयन करने के साधन उपलब्ध करा दिये गये हैं, बैंकों व सरकारी कार्यालयों मे कम्प्यूटर युग पूर्ण रूप से प्रवेश कर चुका है, वहां संविधान मे धारा 141 के द्वारा सबसे सर्वोच्च गोरवान्वित स्तर प्राप्त करने वाली न्यायपालिका इस ओर अपनी योजना तैयार कर राजकीय आर्थिक वित्तीय स्वीकृति के सदेहास्पद माहोल में मन्थर गति से चिंतन कर रही है। इटली जैसे छोटे राष्ट्र मे सुप्रीम कोर्ट इलेक्ट्रोनिक सैन्टर अरबो रुपयो के खर्च से प्रतिस्थापित कर दिया गया व विश्व के अन्य राष्ट्रो मे कम्प्यूटर न्यायपालिका में पूर्ण रुप से प्रवेश कर चुके हैं परन्तु हम अभी तक वित्तीय अभाव मे व स्वायत्ता के नकारने के कारण इस ओर अधिक गतिमान नही हो सके।

प्रधान मंत्री व विधि मंत्री का संकल्प शुभ

10 यह हर्ष का विषय है कि इस ओर इस सम्मेलन मे 1 सितम्बर, 1985 को न्यायिक सुधार के कुछ निर्णय लिये गये परन्तु चूंकि उनका वित्तीय बोझ प्रदेश सरकारो पर होगा अत: उनके क्रियान्विति की हरी झंडी नही दिखाई जा सकी, अब वह विभिन्न प्रदेशो मे वित्त विभाग के द्वारा मथन की प्रक्रिया मे परखे जायेंगे। चूंकि प्रधानमन्त्री व वित्त मत्री इस हेतु कृत संकल्प हैं अत: यह आशा की जा सकती है कि वित्तीय कठिनाइयो को दूर किया जायेगा परन्तु न्यायिक संस्था की स्वतन्त्रता के लिये यह आवश्यक है कि यह एक विशिष्ट प्रधान मन्त्री या वित्त मंत्री का न्यायिक जगत के प्रति सम्मान अथवा अपमान की मंशा पर नही रखा जाय बल्कि संवैधानिक तौर पर इसे स्वायत्ता प्रदान कर दी जाय।

स्वायत्ता स्थायी स्वतन्त्रता का आधार

11. राष्ट्र के जीवन में मुख्य न्यायाधिपति के, प्रधान मंत्री के, वित्त मंत्री के, विधि मंत्री के बदल व आना जाना स्वाभाविक है। अतः यदि जिन गतिशील विचारों से प्रभावित होकर वर्तमान प्रधान मंत्री ने न्यायपालिका की व न्याय प्रणाली में कायाकल्प करने का संकल्प उद्घोषित किया है, यदि उसे हमेशा के लिये चिरस्थाई बनाना है तो यह आवश्यक है कि आर्थिक स्वायत्ता हेतु भी महत्त्वपूर्ण चितन किया जाकर निर्णय लिया जाय।

रेल-बजट

12. एक पहलू आर्थिक स्वायत्ता को समझने के लिये हम रेल विभाग के बजट पर भी विचार कर सकते हैं, जो अलग से रखा जाता है व जिसके लिये रेल विभाग, रेल्वे बोर्ड आदि उत्तरदायी होते हैं। हर प्रदेश मे व केन्द्र में न्यायिक बजट शेष बजट मे सम्मिलित न कर अलग से मुख्य न्यायाधिपति की ओर से आने पर पारित किया जाय व फिर उसे अपनी योजना के अनुसार क्रियान्वित व उपयोग मे लाने के लिये मुख्य न्यायाधिपतियो को या मुख्य न्यायाधिपतियों की एक समिति को जिसमें विधि मंत्रालय व वित्त मन्त्रालय के सदस्य भी हो, सौप दिया जाना चाहिये। उपरोक्त विचारों के मंथन व चिन्तन यदि प्रारम्भ हो सकें तो यह न्यायिक स्वतन्त्रता की नीव को अधिक सुदृढ़ व गहरी करने में सहायक होगा।

आन्ध्रप्रदेश के मुख्य मंत्री के विचार

13. इसी परिवेश मे एक हास्यात्मक उदाहरण भी देना सामयिक होगा। जब आध्रप्रदेश में लगभग 5-6 वर्ष पहले एक मुख्य मत्री ने न्यायिक अधिकारियो की औपचारिक सभा मे कहा कि यदि आप राजकीय पक्ष मे निर्णय देंगे तो राष्ट्र आपकी समुचित आवास व्यवस्था कर सकेगा। हो सकता है कि यह हास्य में या व्यग्य मे कहा गया हो परन्तु यह प्रसंग एक महत्त्वपूर्ण न्यायिक स्वतन्त्रता का संवैधानिक प्रश्न उपस्थित करता है जिसे गम्भीरता से लेना चाहिये।

मुख्य न्यायाधिपति-आवासहीन

14. न्यायिक जगत की मर्यादाओं के कारण व उपरोक्त सकेत विधि विशेषज्ञों के विचारार्थ मैंने प्रस्तुत किये हैं। मेरी अपनी मान्यता है कि न्यायाधीश या न्यायाधिपति उचित आवास, उचित वाहन, उचित स्टेशनरी, उचित कर्मचारियों व कार्यालय की व्यवस्था, उचित टंकण व शीघ्र लिपिक सुविधाओ के अभाव मे यदि पूरे कार्य नहीं कर सके अथवा हीनता का अनुभव करते हैं तो यह राष्ट्रीय स्तर पर चिंता का विषय है। यह संतोष का विषय है कि इस सम्मेलन में आवास यवस्था पर विशेष तौर से नियोजन करने के संकेत दिये गये हैं।

सभी प्रदेशों में एक जैसी सुविधाएँ आवश्यक

15. राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक सहायता के साथ प्रादेशिक स्तर पर न्यायाधीशो को सुविधाओ की समानता भी आवश्यक है। वर्तमान में कई प्रदेशो मे जैसे तमिलनाडु मे हर न्यायिक अधिकारी को राजकीय आवास व राजकीय न्यायालय भवन व उच्च स्तर के न्यायाधीशों को वाहन सुविधाएं आदि उपलब्ध हैं परन्तु अन्य कई प्रदेशो मे इनका पूर्णतया अभाव है। यह सुझाव कि अखिल भारतीय स्तर पर न्यायिक सेवा का निर्माण कर दिया जाय व उनकी सुविधाएं व वेतन शृंखलाओ को केन्द्रीय निर्णय के अनुसार लागू किया जाय, इसी परिवेश में स्वागत योग्य है। परन्तु उसके चयन प्रक्रिया व उस सेवा के नियोजन व न्यायाधीशों पर देखरेख व स्थानान्तरण का उत्तरदायित्व न्यायपालिका का ही होना चाहिये अन्यथा वह कार्यपालिका का एक भाग बनकर न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के लिये सकट उपस्थिति कर सकते हैं।

आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ इसी परिप्रेक्ष्य मे न्यायिक स्वतन्त्रता अक्षुण्य रखने का प्रयास भी महत्त्वपूर्ण रूप से कारगर साबित हो सके इसका प्रयास किया जाना चाहिये।

स्टुअर्ट–युग

16. न्यायिक स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में इंगलैण्ड मे स्टुअर्ट काल में वहा के स्टुअर्ट राजाओ व ससद के बीच शीत युद्ध का अन्त 1701 में अधिनियम से समझौता होकर हुआ, वहां न्यायाधीशों की नियुक्ति व उनका काल राजा के प्रसन्नता पर नही बल्कि उनके अच्छे आचरण पर निर्भर रहेगा, इसका प्रावधान किया। इसके लिये संसद के जेम्स द्वितीय व चार्ल्स प्रथम को पदच्युत करना पड़ा।

सम्राट बनाम मुख्य न्यायाधीश

17. सर एडवर्ड कोक मुख्य न्यायाधिपति ने न्यायाधीश की स्वतन्त्रता के लिये विश्व में नये इतिहास का निर्माण किया जब उन्होने इंगलैण्ड के महाराजा से परिपूर्ण न्यायिक युद्ध कर अपनी स्वतन्त्रता को गिरवी रखने से व पराधीन होने से इन्कार कर अपना बलिदान कर दिया।

जेम्स प्रथम–हिमपात के ठंडे प्रातःकाल में

18. 13 नवम्बर 1608 को वेस्टमिनिस्टर हॉल में ब्रिटिश सम्राट जेम्स प्रथम अपने अधिकार न्यायपालिका के ऊपर थोपने के लिये उतावला हो रहा था। एडवर्ड कोक व वहां की ससद् उसकी प्रभुसत्ता को बार-बार चुनौती देते थे, जब-जब वह अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर नागरिकों को जेल में भेजने का व जब्ती करने का आदेश देने का दुस्साहस करता था। राजा ने अपनी सत्ता की मदमस्ती मे कोक को पत्र लिखा व कहा "चूं कि न्यायाधीश मेरे नियुक्त प्रतिनिधि हैं, मैं उनको

सुपुर्द किया गया कोई भी मुकदमा उनके यहां से वापिस लेकर उनके अधिकार क्षेत्र में से हटाकर मेरे महाराजा की महत्ता के अधिकार मे निर्णीत कर सकता हू।" कोक ने अपने उत्तर में जो कुछ लिखा वह न्यायिक जगत में अजर, अमर व चिरस्थाई हो गया, जिसे न्यायिक स्वतन्त्रता मे विश्वास करने वाले हमेशा स्वर्ण अक्षरो मे लिखेंगे। वह उत्तर निम्नलिखित है :—

"समस्त न्यायाधीशो की स्वीकृति से मै उपरोक्त आज्ञा के उत्तर मे स्पष्ट करना चाहूंगा कि राजा अपने अधिकार मे किसी वाद या मुकदमे का निर्णय नहीं कर सकता। यह निर्णय केवल इंगलैण्ड के कानून व प्रथा (कस्टम) जो इंगलैण्ड में प्रचलित हैं के अनुसार केवल न्यायाधीश द्वारा न्यायालय में ही किया जा सकता है।"

अहंकार से उद्वेलित हो जेम्स ने अपने राजकीय लहजे में फिर आदेश भेजा :—

"मेरा यह मत है कि कानून केवल तर्कों पर आधारित होता है और न्यायाधीश यदि उस तर्कयुक्त कानून को समझ सकते हैं तो वह महाराजा के द्वारा समझने मे व निर्णय करने में कोई दुविधा नहीं।"

कोक का ऐतिहासिक उत्तर

19. मुख्य न्यायाधिपति कोक ने प्रत्युत्तर मे अपने एतिहासिक पत्र में जो हर युग मे हर अभिभाषक व न्यायाधीश के लिये प्रेरणा का स्रोत है और जो युगो-युगों तक आने वाली पीढियों को उत्साहित व प्रेरित करेगा, यह लिखा —

"यह सत्य है कि आप जैसे महामहिम महाराजा को ईश्वर ने समझने की वुद्धि प्रदान की है परन्तु आप महामहिम महाराजा इंगलैण्ड के उन कानूनो को व उस विधि को जिससे कि हर ब्रिटिश नागरिक के जीवन, भरण-पोषण, उत्तराधिकार, वाणिज्य के पेचीदे मुकदमे व उनके भाग्य का निर्णय किया जाता है, समझने की बुद्धिमत्ता नही रखते क्योंकि यह कानून व बुद्धिमत्ता बहुत विधि अध्ययन व अनुभव से आ सकती है, केवल साधारण सहज तार्किक बुद्धि से नहीं। अतः इस प्रकार की प्रबुद्धता व कानूनी अनुभव प्राप्त करने मे केवल न्यायाधीश ही समर्थ हैं व इंगलैण्ड के नागरिकों को न्यायिक व्यवस्था के भाग्य का निर्णय आप अपनी सहज बुद्धि से करने मे सक्षम नही"।

जेम्स उत्तेजित हो उठा और उसने लिखा: —

"इसका अर्थ यह है कि ब्रिटेन के महामहिम महाराजा कानून के पराधीन हैं और यदि आप ऐसा कहते हैं तो यह राज्यद्रोह होगा।"

अब कोक मुख्य न्यायाधिपति की स्वतन्त्रता, निर्भीकता व निष्पक्षता की चरम सीमा पर परीक्षा की घड़ी आई। राजाज्ञा व जेम्स द्वारा कोक को देशद्रोही घोषित करने के पश्चात् उसके उत्तर में कोक ने जवाब लिखा:—

"यह तो ब्रिटेन मे कानूनी स्वतन्त्रता की व्यवस्था है कि राजा महाराजा किसी भी व्यक्ति के पराधीन तो नहीं होते, लेकिन वह ईश्वर व कानून दोनो के अधीन ही कार्य कर सकते हैं।"1

जेम्स की अवज्ञा

20. जेम्स प्रथम उद्वेलित, उत्तेजित व पागल हो उठा था व उसने यह अपेक्षा नहीं की थी कि उसके राज्य में भी कोई उसके महा पद व अधिकार को चुनौती दे सकेगा। अत. 1616 मे उसने राजकीय आज्ञा एटोर्नी जनरल सर फ्रेन्सिस बेकन के माध्यम से भेजी व कोक व उसके न्यायाधीश साथियो को कहा कि "वह एक विशिष्ट मुकदमे में कोई कार्यवाही न करें क्योंकि उसमे ब्रिटेन के राजा के विशेषाधिकार के ऊपर निर्णय करना है।" न्यायाधीशो ने उत्तर भेजा कि 'यह आज्ञा कानून के अनुकूल नही है अतः हमारी शपथ के अनुसार हम इसकी पालना नही कर सकते।"

कोक की निर्भीकता

21. सत्ता के नशे में पागल राजा ने आक्रोश मे आकर समस्त न्यायाधीशो को अपने दरबार मे उपस्थित होने का फरमान जारी किया। अन्य सब न्यायाधीश साष्टांग दंडवत् करने घुटने टेक कर जेम्स के सम्मुख प्रस्तुत हुए व प्रतिज्ञा की कि राजा की आज्ञा के अनुसार ही वे कार्य करेंगे, परन्तु मुख्य न्यायाधिपति कोक अकेले अपनी स्वतन्त्रता, निर्भीकता व निष्पक्षता को किसी भी रूप मे समर्पण करने हेतु तैयार नही हुए व उन्होने उत्तर भेजा:—

"जब कभी कोई वाद या मुकदमा प्रस्तुत होता है वे उसमें वही निर्णय करेंगे जो एक सम्मानित स्वतन्त्र न्यायाधीश को करना चाहिये।"

कोक पदच्युत

22. अपनी स्वतन्त्रता, निर्भीकता के कारण कोक को महान बलिदान देना पड़ा व राजा ने उन्हें 1616 में पदच्युत कर दिया व उसके पश्चात् कहा जाता है कि कुछ समय के लिये इंगलेण्ड के न्यायाधीश सम्राट के केवल भोंपू बनकर रह गये।

23. भारत के कुछ विधि वेत्ताओं ने सुप्रीम कोर्ट मे चार न्यायाधीशो की

---

1. बनार्ड शावर्ट : रूट्स आफ फ्रीडम, पृष्ठ 115-118

वरिष्ठता को नकारने को, कोक के इतिहास को दुहराना कहा है, परन्तु यह कितना सत्य है—यह आने वाली पीढ़ी के निर्णय पर ही निर्भर करेगा।

24. चार्ल्स प्रथम ने न्यायाधीशों का कार्यकाल जो उनके अच्छे आचरण पर निर्भर था उसे फिर राजा की कृपा पर बदल दिया। प्रसिद्ध इतिहासकार हैनरी हैलम ने इस सम्बन्ध में निम्न टिप्पणी की :—

"अब न्यायाधीश निष्पक्ष व अपने स्वयं के मस्तिष्क से निर्णय देने वाले नहीं रहे। जो भ्रष्टाचारी व्यक्ति अपने भविष्य में पदोन्नति की महत्त्वाकांक्षा से अथवा पदच्युत होने के डर से अथवा न्यायाधीश के पद पर की सत्ता से प्रलोभित थे, वही न्यायाधीश के रूप में कार्य करने लगे।"[1]

चार्ल्स प्रथम—"ए पैक्ड बैंच आफ जजेज्"

25. चार्ल्स प्रथम के विरूद्ध अंततोगत्वा मुकदमा चलाकर उसे पदच्युत किया गया व जैम्स द्वितीय ने अपने समय में हैबियस कार्पस एक्ट व अन्य कानून को धूलधूसरित कर समाप्त कर दिया व अपने स्वयं के प्रति प्रतिबद्धता रखने वाले न्यायाधीशों की नियुक्ति कर स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायाधीशों को पदच्युत कर दिया जिसे होल्डसँवर्थ ने आंग्ल भाषा मे "ए पैक्ड बैंच आफ जजेज्" की संज्ञा दी।

स्वर्णिम क्रान्ति

26. इस स्थिति का अन्त सन् 1701 में जैसा कि प्रारम्भ मे इंगित किया गया है, एक स्वर्णिम क्रांति के द्वारा हुआ व न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता को 'एक्ट आफ सैटलमेंट' के द्वारा पुनः प्रतिस्थापित किया गया।

अनिल दीवान का मत

27. जानेमाने प्रसिद्ध विधि-वेत्ता अनिल दीवान ने अपने लेख में उपरोक्त अनुभव से भारतीय न्यायपालिका को चेतावनी दी है व कहा है कि "कोई भी न्यायपालिका यदि कार्यपालिका या राजकीय कृपा या भविष्य पर निर्भर रहेगी तो स्वतन्त्रता से कार्य नहीं कर सकेगी।" अतः श्री दीवान के मत में इस बात का पूर्ण विधि व विधान किया जाना चाहिये कि राजकीय प्रशासन किसी भी रूप में न्यायपालिका के कार्य में हस्तक्षेप न कर सके, उन्हें आघात न पहुंचा सके, न्यायाधीशों को हीन व लज्जित न कर सके व उन्हें अपने स्थान से स्थानान्तरित कर देशनिकाला या निष्कासन न कर सके। अनिल दीवान की यह चेतावनी अन्य कई विधिवेत्ताओं के द्वारा भी समय-समय पर दोहराई गई व अब 1985 में भी उतनी ही सामयिक है। भविष्य के इतिहासकार व विधिवेत्ता यह निर्णय करेंगे कि

1. बर्नार्ड शावर्ट : रूट्स आफ फ्रीडम, पृष्ठ 151

राजीव, सेन, भारद्वाज व भगवती, अनिल दीवान की उपरोक्त अग्निपरीक्षा में कितने खरे उतरते हैं।

28. मुख्य न्यायाधीशो के स्थानान्तर ने भारतीय न्यायपालिका में नये प्रयोग का प्रारम्भ 1980 से हुआ है। राजनेताओं व सत्ता को आरोपित करने के पहले हमे न्यायपालिका के आन्तरिक कलह, षडयन्त्र जातीय, वर्ग, धार्मिक पक्षपात, विद्वेष, भाई भतीजावाद व व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के कारण चाटुकारिता या स्वतन्त्रता का समर्पण की आंशिक स्वीकृति करने का साहस करना होगा। यदि आपसी फूट व संघर्ष ने मुगल, ब्रिटिश साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन दिया तो वही दुर्भाग्यपूर्ण जयचन्द मरिजा फिर हम स्वयं बनाकर; हमारी न्यायिक स्वतन्त्रता, भारत के मुख्य न्यायाधिपति की वरीयता, सर्वोपरिता व न्यायिक नियुक्तियों मे सर्वभौमिकता को समाप्त करने; राजकीय सत्ता को आमन्त्रित कर, "सत्ताशरण गच्छामि:" होने को अधीर हो रहे है। अतः सत्ता व प्रशासन को दोष न देकर हमें आत्म निरीक्षण कर आत्म बल व मनोबल उच्च स्तर पर बढ़ाने का प्रयास करना चाहिये। चन्द्रचूड व भगवती ने अपने साक्षात्कारों में स्वीकारा है कि न्यायपालिका को खतरा अन्दर से ही है।

29. अमेरिका के प्रसंग में यदि हम ध्यान दें तो अलेक्जेण्डर हेमिल्टनने स्वतंत्रता को महत्त्व दिया है व कहा है कि स्वतन्त्रता को अक्षुण्य रखने के लिए न्यायाधीश के कार्यकाल अस्थिरता में न होकर के स्थिरता मे पूर्णरूपेण पूर्ण जीवन काल तक होना चाहिये, ताकि वह निर्भीक व निष्पक्ष व विना भय के स्वतन्त्र निर्णय देकर अपने कर्तव्य का पालन कर सके।[1]

न्यू डील कानून धराशायी

30. अमेरिका मे 1937 तक सुप्रीम कोर्ट ने राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा सामाजिक आर्थिक सुधारों से सम्बन्धित कई अधिनियमो व कानूनों को धराशायी कर दिया। यहां तक कि न्यू डील कानून भी असवैधानिक घोषित कर दिया गया। परन्तु वारेन न्यायालय मे न्यायाधीशों ने कुछ सामाजिक आर्थिक कानूनों की समीक्षा व वैधानिकता के निर्णयों मे अपने ऊपर अंकुश लगाये।

राजनैतिक नियुक्ति पर स्वतन्त्र न्याय

31. चूंकि अमेरिका मे न्यायाधीशो की नियुक्ति से चुनाव पद्धति सम्बन्धित है क्योकि अन्ततोगत्वा सीनेट नियुक्ति को अनुमति देती है अतः राष्ट्रपति द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्तियों में उसकी नीतियों का समर्थन करने वाले व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जाती है। फिर भी अमेरिकी इतिहास में नियुक्ति के पश्चात् न्यायाधीशो ने स्वतन्त्रता का परिचय [illegible]। यद्यपि दुर्भ[illegible] स्वतन्त्रता को गुलामी प्रथा को हटाने का कानून [illegible] ने बनाया [illegible] हटाने का कानून जिसे रूजवेल्ट ने बनाया [illegible] मे लिया गया।

1. अलेक्जेण्डर हेमिल[illegible]

लिंकन के क़ानून रद्द

32. लिंकन द्वारा गठित सैनिक आयोग को लिंकन के द्वारा नियुक्त न्यायाधीशों ने अवैधानिक घोषित कर दिया। उपरोक्त स्थिति मे राष्ट्रपति ट्रूमेन ने जस्टिस टोम कलाई व राष्ट्रपति रूजवैल्ट ने कई न्यायाधीशो की नियुक्तियों को रद्द कर दिया।

रूजवेल्ट का न्यायपालिका पर हमला

33. रूजवैल्ट द्वारा निर्मित सेन्ट्रीट्रस्ट नोरदर्न सिक्योरिटीज केस[1] जब जस्टिस होम्स ने अवैधानिक घोषित किया तब रूजवैल्ट की प्रतिक्रिया निम्नलिखित थी :—

"यदि मैं एक केले (Banana) में से भी न्यायाधीशों का निर्माण करता हूं तो वह अधिक उत्तम रीढ़ की हड्डी बन सकता।"

होम्स की निर्भीकता

34 जे. होम्स ने उपरोक्त व्यंग्य व प्रताडना का उत्तर निम्न दिया "आप न्याय नहीं चाहते, अपितु अपने हित में पक्षपात चाहते हैं। मैं जब अपने कर्तव्य की पालना करता हूं उस समय मुझे इस बात को किंचित भी चिन्ता नहीं है कि महामहिम राष्ट्रपति रूजवैल्ट की क्या इच्छा है।"

ट्रूमेन निराश

35. राष्ट्रपति ट्रूमेन ने यह स्वीकार किया कि न्यायालय मे उनसे प्रतिबद्धित, न्यायाधीश नियुक्त करना सम्भव नहीं है परन्तु रूजवैल्ट ने यह करके दिखा दिया व उस समय के 9 न्यायाधीश अन्ततोगत्वा रूजवैल्ट के सम्मुख प्रतिबद्धित होने के लिए नत-मस्तक हो गये, जिसके लिए इतिहासकारो ने लिखा है कि 'ए स्टिच इन टाइम सेव्स नाइन।' 'ए स्टिच इन टाइम सेव्ड दी नाइन' यह अमेरिकन न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता का अधःपतन था जो जे. होम्स के ऊंचे आदर्शों के विपरीत अन्य न्यायाधीशों ने किया।

आरक्षण न्यायाधीशों का

36. अमेरिका में दुर्भाग्य से सुप्रीम कोर्ट मे न्यायाधीशो की नियुक्तियो में जाति को भी प्राथमिकता दी जाती है जैसा कि कुछ स्थान रोमन कैथोलिक सीट, नीग्रो सीट, यहूदी (ज्यूसोस) सीट के आरक्षण के नाम से प्रसिद्ध हैं, यद्यपि यह व्यवस्था सम्भवतया अल्पसंख्यक अथवा दलित वर्ग की दृष्टि से रखी गई है।

---

1. 193 यू. एस. ए. 197

अधिकांश न्यायाधीश निष्पक्ष व निर्भीक

37. उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष सहज में ही निकाला जा सकता है कि अमेरिकन न्यायिक इतिहास में ट्रूमेन, लिंकन, रूजवेल्ट के समय में अधिकतर न्यायाधीशों ने निर्भीकता व स्वतन्त्रता का परिचय दिया है परन्तु अपवाद के रूप मे यदा-कदा पदच्युत होने से भयभीत होकर राष्ट्रपति के समक्ष-समर्पण भी किया है।

कृष्ण अय्यर का मत

38. कृष्ण अय्यर ने इसके विपरीत प्रसिद्ध लेखक डूले के इस मत से सहमति व्यक्त की है कि अमेरिका की न्यायपालिका चुनाव के पश्चात् चुनाव के नतीजों के अनुसार विजेता का राजनैतिक झण्डा लेकर, उनकी कानूनी सेना बनकर उसे फहराती है।

वाटरगेट कांड में निक्सन के विरुद्ध निर्णय

39. निक्सन के वाटरगेट कांड मे सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के कारण पदच्युत होना सम्भवतया उपरोक्त कथन की सत्यता को प्रमाणित नहीं करता क्योंकि अधिकतर न्यायाधीश निक्सन द्वारा नियुक्त किये गये थे फिर भी उन्होने निक्सन के विरुद्ध निर्णय दिया।

40. मेरे विचार से उपरोक्त उदाहरण व कुछ प्रसंगों का विवरण पूरे न्यायिक इतिहास को समीक्षा के लिए परिपूर्ण नही है परन्तु संकेत मात्र है जो न्यायपालिका के लिए विचारणीय व चिन्तन योग्य है। इस स्वतन्त्रता के उदाहरण की भारत मे पालना की जाय, जैसी कि अधिकतर की जाती है तो न्यायिक स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रह सकेगी।

41. यदा-कदा न्यायाधीशों द्वारा समर्पण के प्रसंगो को मानवीय निर्बलता के रूप में समझ कर अस्वीकार कर दिया जाय ताकि न्यायाधीशों की बौद्धिक व मानसिक निर्भीकता व निष्पक्षता, स्वतन्त्रता, सबलता से प्रस्थापित हो सके व न्याय का संरक्षण समस्त नागरिको को व राज्य को समान रूप से मिल सके।

सन् 1828 में न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता

42. भारत के परिवेश में ब्रिटिश राज्य सरकार मे 1828 मे बम्बई हाईकोर्ट मे चीफ जस्टिस सर एडवर्ड वेस्ट व उनके दो साथी सर पीटर ग्रान्ट व न्यायाधीश चैम्बर्स के हैबियस कार्पस के आदेश द्वारा दो व्यक्ति मूरो रघुनाथ व बापू गणेश को प्रस्तुत किया जाना था, जिन्हें बम्बई के बाहर जिले मे रखा गया था। बम्बई के उस समय के गवर्नर ने इस आज्ञा का पालन नही किया। कई बार आज्ञा प्रसारित की गई लेकिन गवर्नर अपनी जिद् पर अडिग रहे। प्रश्न उपस्थित

हुआ कि वरीयता, श्रेष्ठता व प्रमुखता कौन से महामहिम को मिले–राज्यपाल या मुख्य न्यायाधिपति को ?

43. इस शीतयुद्ध के बीच में जीफ जस्टिस रिटायर्ड हो चुके थे व जस्टिस चैम्बर्स की मृत्यु हो चुकी थी व केवल जस्टिस ग्रान्ड अब इस बैंच मे बचे थे। उन्होने एक अप्रेल 1829 को इतिहास का निर्माण कर के घोषणा की कि 'बम्बई हाईकोर्ट मृत हो चुका है, वह हमेशा बंद रहेगा जब तक कि ब्रिटिश राज्य की ओर से यह आश्वासन न आ जाय कि उसकी आज्ञाओं की पालना होगी।' न्यायालय को बन्द करके ताला लगा दिया गया। प्रीवी कौंसिल में जब यह प्रश्न आया तो उन्होने सर पीटर ग्रान्ट के निर्भीकता व स्वतन्त्रता की प्रशंसा की व कहा कि प्रशासन को यह अधिकार नही है कि वह न्यायाधीश के निर्णय की बुद्धिमत्ता पर विचार कर सके यद्यपि बम्बई हाईकोर्ट के अधिकारक्षेत्र के बाहर यह आज्ञा दी गई थी।[1]

मोरिस ग्वायर का ऐतिहासिक निर्णय

44. सर मोरिस ग्वायर ने फेडरल कोर्ट में भारतीय सुरक्षा नियम की धारा 26 को प्रवैधानिक घोषित करते हुए कहा :—

"यह तो सत्य है कि हमे न्यायाधीश के नाते जो राज्य कार्य अच्छी नियत से किये जाते हैं उनकी आलोचना नही करनी चाहिये। विशेषकर जब राज्य सुरक्षा खतरे में हो व राज्य का अस्तित्व सन्देहास्पद बन जाय। परन्तु इस आधार पर हम प्रशासन द्वारा किये गये उन कार्यों को जो उनके संवैधानिक अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं वैधानिक घोषित नही कर सकते, चाहे हमारे उस निर्णय का दूरगामी परिणाम राज्य सत्ता को उस अधिकार से वंचित करना भी क्यों न हो जिसे वह संकटकाल मे राज्य को बचाने के लिए काम में ले रहे हो।"

45. इसी प्रकार का एक ऐतिहासिक निर्णय जस्टिस मोरिस ग्वायर ने ब्रिटिश साम्राज्य की नींव को हिलाते हुये व सिहरन पैदा करते हुये महात्मा गांधी व राजकोट के महाराजा के बीच उत्तरदायित्व शासन सम्बन्धी जो संधि हुई, उसको परिभाषित करते हुये दिया। इतिहासकारो व विधिवेत्ताओं का कहना है कि इस निर्णय से जो महात्मा गांधी के पक्ष में था, ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें खोखली हो गई एवं यह निर्णय उस समय दिया गया जब अंग्रेजी सत्ता का अस्तित्व भी भयंकर खतरे मे था।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

46. उपरोक्त भावना से प्रेरित होकर न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के

1. I कैनप I (प्रि. को) 12 इ. आर: 222

प्रमुखतः पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने संवैधानिक विचार में संविधान सभा में कहा था :—

"यह महत्वपूर्ण है कि न्यायाधीश केवल प्रथम श्रेणी का ही नहीं होना चाहिये बल्कि वह राष्ट्र में जाना माना प्रथम श्रेणी का उच्चतः विशिष्ट ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो आवश्यकता पड़ने पर राज्य प्रशासन के विरुद्ध भी खड़ा हो सके व अपना निर्णय देते समय बड़े से बड़े प्रभावशाली शासन के विरुद्ध भी स्वतन्त्रता प्रदर्शित कर सके।"[1]

चीफ-जस्टिस कानिया

47. यही कारण था कि चीफ-जस्टिस कानिया ने सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में राय व्यक्त करते हुए 28 जनवरी, 1950 को दिल्ली में कहा :—

"हमारे संविधान में सुप्रीम कोर्ट का निर्माण मौलिक अधिकारों व जनता की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए किया जा रहा है। इसे संवैधानिक अधिकार व कर्तव्य दिये गये हैं, जिनके द्वारा सुप्रीम कोर्ट के ऊपर विधायिका व कार्यपालिका का कोई अतिक्रमण व दमन नहीं हो सके। यदि यह स्वीकार कर लिया जाता है जैसा कि हर जनतंत्रीय समाज में है तब ही हमारा राष्ट्र प्रगति कर सकेगा।" उन्होंने मत व्यक्त किया कि "न्यायाधीश की नियुक्ति में किंचित भी राजनैतिक दृष्टिकोण या पक्षपात को इसका आधार नहीं रखा जाय।"

काम मे दखल करने की है। क्योंकि हमें संविधान से यह दायित्व दिये गये है कि हम मौलिक अधिकारों के ऊपर किये गये समस्त आघातों के विरुद्ध ढाल बनकर रहे व नागरिकों को संरक्षण प्रदान करें अतः उस भावना से व कर्तव्य से हमारा निर्णय प्रेरित होता है।"[1]

नेहरू की भावना

50. मैंने उपरोक्त विवेचन व विस्तृत ऐतिहासिक परिवेश का विश्लेषण केवल इस हेतु किया है कि हमारी न्यायिक स्वतन्त्रता जैसा पंडित जवाहरलाल नेहरू ने संवैधानिक सभा में घोषित किया था अक्षुण्य रहे। इस हेतु कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका सबको सतत रूप से प्रयत्नशील रहना चाहिये।

एफ. नरीमैन द्वारा आलोचना

51. प्रसिद्ध विधिवेत्ता एफ. नरीमैन ने दिल्ली के दो दिवसीय सम्मेलन का स्वागत करते हुए इसे भारतीय न्याय प्रशासन के लिए ऐतिहासिक शुभारम्भ की संज्ञा दी है। परन्तु न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता, निर्भीकता व निष्पक्षता के संदर्भ मे उन्होंने संदेह व्यक्त करते हुए कहा है कि यद्यपि प्रधान मंत्री ने भारतीय न्यायाधीशों की प्रशंसा की है परन्तु यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस महत्वपूर्ण अवसर पर कुछ मुख्य मंत्रियों ने भारतीय न्यायपालिका को कठघरे मे खड़ा करने का दुस्साहस किया। उन्होंने आन्ध्र प्रदेश के मुख्य मंत्री का विशेष तौर से उल्लेख किया जिन्होने सुप्रीम कोर्ट के निर्णय की भर्त्सना की। नरीमैन के शब्दो मे यह आपत्तिजनक व अपमानजनक है क्योकि जब सरकार एक पक्षकार के नाते न्यायालय में हार जाती है तो यह उसे शोभा नही देता कि वह न्यायाधीशो की आलोचना करे। नरीमैन के अनुसार बहुत बड़ी राजकीय रकम को न्यायालयो की आज्ञा के द्वारा रोके रहने के शोरगुल को भी अनावश्यक व गलत परिवेश मे समझा गया क्योकि इसमे न्यायालय से अधिक उन सरकारी विभागों का दोष है जो समय पर जवाब प्रस्तुत नही करते व स्थगन आदेश को रद्द कराने के लिए कोई प्रयास नही करते। यह सरकारी विभागों व उनके अभिभाषकों का कर्तव्य है कि वे भी वादो को शीघ्र निपटाने के लिए प्रयास करे, जिन्हें अधिकतर टाल दिया जाता है।[2]

राजकीय विभागों की लापरवाही

52. नरीमैन के उपरोक्त विचार भारत के अधिकाश न्यायाधीशों के अनुभव के अनुकूल हैं। चाहे यह कटु सत्य ही है परन्तु वस्तु-स्थिति यह है कि

1. 1952 एस. सी. आर. पृष्ठ 597 (605)
2. इंडियन एक्सप्रेस दिनांक 5-9-85–'ज्युडीशियल रिफार्म संन्स रिक्रिमीनेशन' पृष्ठ 6.

अगुवा पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने संवैधानिक विवाद में संविधान सभा में कहा था :—

"यह महत्त्वपूर्ण है कि न्यायाधीश केवल प्रथम श्रेणी का ही नही होना चाहिये बल्कि वह राष्ट्र में जाना माना प्रथम श्रेणी का उच्चतम विशिष्ट ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो ग्रावश्यकता पड़ने पर राज्य प्रशासन के विरुद्ध भी खड़ा हो सके व अपना निर्णय देते समय बड़े से बड़े प्रभावशाली शासन के विरुद्ध भी स्वतन्त्रता प्रदर्शित कर सके।"[1]

चीफ-जस्टिस कानिया

47. यही कारण था कि चीफ-जस्टिस कानिया ने सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में राय व्यक्त करते हुए 28 जनवरी, 1950 को दिल्ली मे कहा :—

"हमारे संविधान में सुप्रीम कोर्ट का निर्माण मौलिक अधिकारों व जनता की स्वतन्त्रता को अक्षुण्य रखने के लिए किया जा रहा है। हमें वे संवैधानिक अधिकार व कर्तव्य दिये गये हैं, जिनके द्वारा सुप्रीम कोर्ट के ऊपर विधायिका व कार्यपालिका का कोई अतिक्रमण व दखल नही हो सके। यदि यह स्वीकृत कर लिया जाता है जैसा कि हर जनतत्रीय समाज में है तब ही हमारा राष्ट्र प्रगति कर सकेगा।" उन्होने मत व्यक्त किया कि "न्यायाधीश की नियुक्ति मे किंचित भी राजनैतिक दृष्टिकोण या पक्षपात या दलगत ग्राधार नही रखा जाय।"

दलगत राजनीति से दूर

48. श्री कानिया ने अभिभाषकगणों को कहा कि ग्राप कानून के नाम पर यदि किसी नागरिक की स्वतन्त्रता या उसके अधिकार पर ग्राघात किया जायगा तो उसके लिए ढाल बनकर रहेंगे। सुप्रीम कोर्ट के दायित्व के बारे मे उन्होने कहा कि वह दलगत राजनीति, राजनैतिक प्रशासन व दल से दूर रहेगा। उसे इस बात से किंचित भी प्रभावित न होना चाहिये कि राज्य सरकार मे कब कोई बदल होता है।

पातंजली शास्त्री

49. न्यायाधीश पातंजली शास्त्री ने मद्रास राज्य बनाम वी. जी. राव[2] के निर्णय में उपरोक्त विचारों को दोहराते हुए फिर कहा :—

"हमारे न्यायालयों को बहुत कठिन दौर से महत्त्वपूर्ण निर्णय करते समय गुजरना पड़ता है परन्तु यह न समझा जाय कि हमारी इच्छा विधायिका के

1. ए. ग्राई. ग्रार. 1943 (प्रि. कौ) पृष्ठ 1
2. संवैधानिक सभा डिबेट खण्ड VIII पृष्ठ 947

काम में दखल करने की है। क्योंकि हमें संविधान से यह दायित्व दिये गये है कि हम मौलिक अधिकारों के ऊपर किये गये समस्त आघातों के विरुद्ध ढाल बनकर रहे व नागरिकों को संरक्षण प्रदान करें अतः उस भावना से व कर्तव्य से हमारा निर्णय प्रेरित होता है।"[1]

नेहरू की भावना

50. मैंने उपरोक्त विवेचन व विस्तृत ऐतिहासिक परिवेश का विश्लेषण केवल इस हेतु किया है कि हमारी न्यायिक स्वतन्त्रता जैसा पंडित जवाहरलाल नेहरू ने संवैधानिक सभा में घोषित किया था अक्षुण्य रहे। इस हेतु कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका सबको सतत रूप से प्रयत्नशील रहना चाहिये।

एफ. नरीमैन द्वारा आलोचना

51. प्रसिद्ध विधिवेत्ता एफ. नरीमैन ने दिल्ली के दो दिवसीय सम्मेलन का स्वागत करते हुए इसे भारतीय न्याय प्रशासन के लिए ऐतिहासिक शुभारम्भ की संज्ञा दी है। परन्तु न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता, निर्भीकता व निष्पक्षता के संदर्भ में उन्होंने संदेह व्यक्त करते हुए कहा है कि यद्यपि प्रधान मत्री ने भारतीय न्यायाधीशों की प्रशंसा की है परन्तु यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस महत्त्वपूर्ण अवसर पर कुछ मुख्य मत्रियो ने भारतीय न्यायपालिका को कठघरे मे खड़ा करने का दुस्साहस किया। उन्होने आन्ध्र प्रदेश के मुख्य मत्री का विशेष तौर से उल्लेख किया जिन्होने सुप्रीम कोर्ट के निर्णय की भर्त्सना की। नरीमैन के शब्दों में यह आपत्तिजनक व अपमानजनक है क्योंकि जब सरकार एक पक्षकार के नाते न्यायालय मे हार जाती है तो यह उसे शोभा नहीं देता कि वह न्यायाधीशो की आलोचना करे। नरीमैन के अनुसार बहुत बड़ी राजकीय रकम को न्यायालयो की आज्ञा के द्वारा रोके रहने के शोरगुल को भी अनावश्यक व गलत परिवेश मे समझा गया क्योंकि इसमे न्यायालय से अधिक उन सरकारी विभागों का दोष है जो समय पर जवाब प्रस्तुत नहीं करते व स्थगन आदेश को रद्द कराने के लिए कोई प्रयास नही करते। यह सरकारी विभागों व उनके अभिभाषको का कर्तव्य है कि वे भी वादों को शीघ्र निपटाने के लिए प्रयास करें, जिन्हें अधिकतर टाल दिया जाता है।[2]

राजकीय विभागों की लापरवाही

52. नरीमैन के उपरोक्त विचार भारत के अधिकांश न्यायाधीशों के अनुभव के अनुकूल हैं। चाहे यह कटु सत्य ही है परन्तु वस्तु-स्थिति यह है कि

1. 1952 एस. सी. आर. पृष्ठ 597 (605)
2. इंडियन एक्सप्रेस दिनांक 5-9-85–'ज्युडीशियल रिफार्म सैन्स रिक्रिमीनेशन' पृष्ठ 6.

अधिकाश भूमि सुधार सीलिंग की रिट याचिकाओं में राजकीय विभागों के द्वारा पाच-पाच वर्ष तक उत्तर प्रस्तुत नहीं किया जाता, स्थगन आदेशों में सबल तरीकों से विरोध नही किया जाता व साधारणतया ऐसी परिस्थितियां न्यायालयों मे सरकार की उचित पैरवी के अभाव में प्रस्तुत की जाती हैं कि प्रार्थी का पक्ष ही सबल रूप से एकतरफा सामने आता है।

53. बुद्धाराम व अन्य की रिट याचिका के निर्णय में राजकीय उपेक्षा अप्रसावधानी, कर्तव्यहीनता व भूमि सुधार कानूनो के मुकदमो में भी पैरवी न करने की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करते हुए मैने निम्न टिप्पणी की :—

"राज्याधिकारियो द्वारा भूमि सुधार कानून के प्रति उदासीनता, निर्लज्ज उपेक्षा व लापरवाही व कर्तव्यहीनता के परिणामस्वरूप इस रिट याचिका मे 3 वर्ष के बाद भी उत्तर प्रस्तुत नही किया गया है। राजकीय अधिवक्ता ने ईमानदारी से यह दुःखद स्वीकृति की कि, जब संबंधित अधिकारी उन्हें सहयोग नहीं देते, पत्रावली व सूचनाएं नहीं लाते व उनकी याचनाओं व प्रार्थनाओं पर भी "गूंगे व बहरे" हो जाते हैं, तो वे उत्तर प्रस्तुत करने में असमर्थ व असहाय हैं। हम न्यायाधीशो को साधारणतया उपरोक्त प्रशासनिक निर्बलताओं व आन्तरिक अन्तर्विरोधों से निलिप्त रहना चाहिये—परन्तु उत्तर के अभाव से व अधिकार देनेवाली विज्ञप्तियो तक प्रस्तुत न करने से निर्णय देने में कठिनाई व दुविधा होती है, जो चिन्ता का विषय है।

54. "श्री अशोक माथुर अतिरिक्त महाधिवक्ता ने भी उपरोक्त असहायता व असमर्थता प्रकट की क्योंकि प्रशासनिक अधिकारियो ने कई बार सूचित करने पर भी उत्तर प्रस्तुत का मसौदा नहीं बनवाया, न तहसीलदार को अधिकार देने वाली (सीलिग कानून) की विज्ञप्ति बताई।

55. "1981 में स्थगन आदेश, उत्तर के समय मांगने पर दिया हुआ था परन्तु अब तक (19-4-84) उसका न उत्तर दिया गया न राज्य की ओर से राजकीय अधिवक्ता को पैरवी के लिये सरकार से सूचित किया गया।

56. "भूमि सुधार कानून की क्रियान्विती की रिटों मे जहां अन्ततोगत्वा सीलिंग से अधिक जब्त भूमिहीन किसानो को आवटित होती है, सरकारी उपेक्षा भयंकर लापरवाही तीन साल तक उत्तर प्रस्तुत न करने की व स्थगन आदेश के पश्चात् भी राजकीय अधिवक्ताओ को आकर उत्तर तक दिलवाने का प्रयास न करने की, बताता है कि राजकीय प्रशासन में कहीं कोई योजनाबद्ध उपेक्षा इन भूमि सुधार सीलिग कानूनों को क्रियान्वित व न्यायालयो मे उत्तर प्रस्तुत न कर असफल करने की है।

57. "यह न्यायालय का कार्य नही है कि वह इस उपेक्षा व लापरवाही को समाप्त करने के लिये क्या करे? परन्तु यह प्रशासन का कर्तव्य है कि वह न्यायालय को उत्तर प्रस्तुत कर उचित सहयोग दे। जब तक कि प्रशासन इस निष्कर्ष पर न पहुंचे कि उनके पास रिट याचिका के तथ्यो व तर्कों का कोई उत्तर है ही नही।

58. "यद्यपि यह रिट याचिका अन्य कारणों से खारिज की जाती है, परन्तु क्योंकि सरकार ने उत्तर प्रस्तुत न कर व पत्रावली व विज्ञप्ति न प्रस्तुत कर जघन्य असावधानी का प्रदर्शन किया है अतः वह खर्चा पाने का अधिकारी नही है।

59. "निर्णय की प्रतिलिपि, राज्य सरकार के मुख्य सचिव को भेजी जावे ताकि वे भविष्य मे आवश्यक सुधारात्मक कार्यवाही करें।"[1]

60. एफ एस. नरीमैन का अनुभव अधिकतर सुप्रीम कोर्ट के महत्त्वपूर्ण वादों का है परन्तु मुन्सिफ से लेकर हाईकोर्ट तक लगभग यही स्थिति है कि सरकारी पक्ष अधिकतर उत्तर प्रस्तुत न करने के कारण अथवा सबल व सशक्त पैरवी के अभाव में न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत नहीं होते। राजकीय विभाग अपनी विभागीय कायाकल्प करने व तत्परता से पैरवी करने की योजना बनाने के स्थान पर सीधा सरल तरीका न्यायालय के दायित्व को बताकर टालने का करते हैं।

61. उपरोक्त टिप्पणी एक निर्णय मे एक न्यायाधिपति की नही, अपितु सैंकड़ों प्रकाशित व हजारो अप्रकाशित निर्णयो मे अनेक वरिष्ठ न्यायाधिपतियो द्वारा समय-समय पर की गई, परन्तु दुर्भाग्य से अन्य आवश्यक कार्यों के समयाभाव अथवा न्यायपालिका के प्रति कहीं-कही उदासीनता के कारण, प्रशासन द्वारा उन्हें पढ़ने का भी कष्ट नहीं किया जाता। युवा प्रधान मंत्री यदि कम्प्यूटर प्रणाली मे एक विभाग इन टिप्पणियों के सकलन, अध्ययन व क्रियान्विति का बना सकें, तो संभवतया "गतिमान सुधार" प्रशासनिक दायित्व मे हो सकेगा व उन्हे अनुत्तरदायित्व सूचनाएं न्यायपालिका के विरुद्ध देना प्रशासन के लिए दुष्कर हो जाएगा।

62. दो दिवसीय सम्मेलन में न्यायपालिका की प्रशंसा के साथ-साथ वित्त वसूली में न्यायिक निर्णयों का विलम्ब का कारण, प्रासंगिक व सामयिक अवश्य है, परन्तु अर्द्ध सत्य, उपरोक्त कारणों से है यह भी स्वीकार किया जाना चाहिए।

राजीव स्वतन्त्र न्यायपालिका के हामी

63. परन्तु, यह संतोष का विषय है कि दो दिवसीय सम्मेलन मे प्रधान मंत्री ने उद्घोषित किया कि उन्हें इस बात का गर्व है कि भारत की न्यायपालिका

1. बुद्धाराम बनाम राजस्थान सरकार ए. आई. आर. 1985 राजस्थान 104

स्वतन्त्र है। इसी सन्दर्भ मे भारत के समस्त विधिवेत्ता, न्यायिक जगत के पुजारी व अभिभाषक यह अपेक्षा करेंगे कि इस घोषणा के अनुकूल राजकीय स्तर पर समस्त कार्यकलापों में चाहे वह न्यायाधीश की सेवाशर्तों का प्रश्न हो अथवा नियुक्तियों व स्थानान्तरण का अथवा उनके अधिकार व निर्णय के बारे में विचार व्यक्त करने का, इस भावना को क्रियान्वित किया जावे। भावी निर्णय, प्रशासन व न्यायपालिका की स्वतन्त्रता रखने व रहने की घोषणा की अग्निपरीक्षा होगी व निर्णायक होंगे आने वाले इतिहासकार।

64. इस स्वतन्त्रता को साकार करने के लिये भी वित्तीय आर्थिक स्वायत्तता देना आवश्यक है व न्यायपालिका जब वित्तीय आर्थिक स्वायत्तता पा लेगी तब पूर्ण स्वतन्त्रता, निष्पक्षता, निर्भीकता व आदरयुक्त, समानता से कार्य करने मे सक्षम होगी।

65. न्यायिक क्रान्ति के उभरते बदलते आयाम मे "आर्थिक स्वायत्तता व स्वतन्त्रता" प्राप्त करने का अभियान न्यायिक जगत में प्रारम्भ होकर, हम उसे पूर्ण गतिमान बनायें यही अपेक्षा है।

66. 'भगवती न्यायालय" के न्यायिक क्षितिज मे दैदीप्यमान नक्षत्र के प्रकाश से, न्यायिक स्वतन्त्रता व आर्थिक स्वायत्तता की गौरवमय प्राप्ति यदि हो सके तो, यह हमारी पीढ़ी की सबसे बड़ी न्यायिक उपलब्धि होगी। 21 वी सदी के नये आयामों की स्वर्णिम भूमिका में "निर्धन को न्याय" की तब ही प्राप्ति हो सकेगी।

'न्याय पंचायत' क्या न्याय गंगा ला सकेगी ?

भगवती युग में देसाई आयोग की प्रथम उपलब्धि

भारतीय विधि आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री डी० ए० देसाई ने जटिल जड़ व कुन्ठायुक्त विलंबकारी भारतीय न्याय प्रणाली मे क्रांतिकारी परिवर्तन का प्रारंभ 'न्याय पचायत' व्यवस्था के सुझाव से किया है। राष्ट्र व्यापी चिन्तन, विचार-विमर्श व सुझाव के लिये उन्होंने हम सबको आमंत्रित किया है ताकि न्याय पंचायत के संबध में अधिकृत योजना के प्रारूप को, अधिनियम के द्वारा विधिवत लागू किया जा सके। यह आह्वान सराहनीय न्यायिक क्रान्ति का बिगुल है।

न्याय पचायत, पंचायत का ही एक अभिन्न अंग के रूप में प्रचलित है। स्वतन्त्रता के साथ ही पंचायत राज्य की परिकल्पना को साकार स्वरूप दिया गया है। इसी संदर्भ में विभिन्न प्रदेशों मे जहां प्रशासनिक विवाद पंचायत, पंचायत समिति व जिला परिषद् को सौंपे गये वहां न्यायिक विवाद न्याय पचायत के अधिकार क्षेत्र में रखे गये। राजस्थान पंचायत अधिनियमों मे धारा 27 बी से 52 तक इसी हेतु निर्मित की गई। समकालीन पचायत अधिनियमो मे 1947 मे उत्तर प्रदेश में धारा 42, 1947 मे ही बिहार मे धारा 49, 1948 मे उडीसा मे धारा 58, आसाम में धारा 74 व अन्य प्रदेशों में 1950 के पश्चात् बम्बई में धारा 53, गुजरात में धारा 212, हिमाचल प्रदेश मे धारा 48, केरल में धारा 48 व उनके आगे विभिन्न धाराओं में न्याय पंचायतो के गठन के प्रावधान प्रस्तावित किये गये। लगभग समस्त भारत में दीवानी मुकदमों के 200) रु. से 1000) रु. तक के मूल्य के विवाद व फौजदारी मुकदमों में छोटे अपराध न्याय पंचायतों द्वारा निर्णित करवाने का प्रयास किया गया। राजस्थान में कोई अपील नही रखी गई व मियाद व साक्षी नियम व एडवोकेट्स के प्रस्तुत होने पर साधारणतया प्रतिबंधित किये गये ताकि शीघ्र सस्ता, सुलभ, सारभूत न्याय ग्रामवासियों को उपलब्ध हो सके। केवल निगरानी मुंसिफ मजिस्ट्रेट के यहा रखी गई।

अन्य प्रदेशों में इसी प्रकार के प्रयोग किये गये जो अब तक दीनहीन, जीर्ण-शीर्ण, निष्क्रीय व अप्रभावी अवस्था में प्रचलित हैं या मृत हो चुके हैं।

राजस्थान में प्रारंभ में न्याय पंचायत कम से कम पांच ग्राम पंचायतों के क्षेत्र के लिये उनके पंचों द्वारा चुने हुये न्याय पंचों से निर्मित होती थी व जिस क्षेत्र का पंच चुनकर आता था उसे वहां के विवादों को सुनने से वर्जित किया जाता था। दुर्भाग्य से यह प्रयोग वहां पंच परमेश्वर द्वारा प्राचीन पद्धति "न्याय चौपाल पर" घर बैठे गंगा लाकर, करने का सफल न हो सका। राजस्थान मे श्री गिरधारीलाल व्यास की अध्यक्षता मे उच्च स्तरीय समिति द्वारा जो पंचायत संस्थान का पूरा लेखा जोखा का विश्लेपण कराया गया तो समिति ने इस संबंध में जो मत व्यक्त किया, वह न्याय पंचायत के असफलता का परिचायक है। श्री व्यास समिति का न्याय पंचायतो के कार्य के मूल्याकन का निचोड निम्नलिखित है:—

> "न्याय पंचायत का कार्य संतोषजनक नही रहा। समिति के दौरे में, विभिन्न स्थानों पर व प्रश्नावली के समस्त उत्तरों में (न्याय पंचायत सभापतियों को छोडकर) यह सर्व सम्मत मांग रही कि न्याय पंचायत समाप्त करना श्रेयष्कर है। कितना दुखान्त है कि न्यायपालिका व कार्यपालिका का विभाजन पंचायत के स्तर पर उपयोगी व सफल न हो सका। राजस्थान की न्याय पंचायतें आज जन विश्वास के अभावग्रस्त होकर, वित्त, पूर्ण अधिकार व कर्मचारियों के अभाव में सड़ रही है। समिति ने पूर्ण विचार कर यह निष्कर्ष निकाला है कि जब न्याय पंचायत न तो जन विश्वास प्राप्त कर सकी है न सफल कार्य कर सकी है तो अब समय आ गया है, जब मरे घोड़े को चाबुक मारकर घसीटने से कोई लाभ नही रहा। हम जानते हैं कि न्याय पंचायतों की समाप्ति का हमारा सुझाव प्रतिगामी कहा जावेगा परन्तु वास्तविकता व कटुसत्य से आंखें मूंदकर हम कब तक चलेंगे।"

(पद 4.43 पृष्ठ 44 : श्री गिरधारीलाल व्यास समिति प्रतिवेदन राजस्थान सन् 1973)

महाराष्ट्र राज्य की पंचायत राज के कार्यकलापो का लेखा-जोखा व विश्लेपण करने वाली समिति ने "न्याय पंचायत" की उपादेयता व उपयोगिता का विवेचन कर कहा :

"हमें प्रसन्नता है, यह एक सुखद प्रसंग रहा कि इन संस्थाओं ने अब तक जोरदार महत्त्वपूर्ण कार्य करना प्रारंभ नही किया जिससे भयंकर नुकसान होने से बच गया। अब इन संस्थाओं के भी, समय आ गया है, कार्यक्रम को वापिस लेने की

घोषणा कर दी जावे व न्याय पंचायत की परिकल्पना व विचार को तर्क कर दिया जावे व इन संस्थाओं को पूर्णतया समाप्त कर दी जावे।"

(पद 4.44 पृष्ठ 44–45 : श्री गिरधारी लाल व्यास समिति प्रतिवेदन राजस्थान सन् 73)

राजस्थान व महाराष्ट्र का उपरोक्त मूल्यांकन स्पष्टतया इसका संकेत था कि न्याय के क्षेत्र मे पंचायती राज्य संस्थान का न्याय पंचायत गठन यदि पूर्णतया असफल न रहा तो भी वांछित फल नहीं दे सका व अनुपयोगी ही सिद्ध हुआ। स्मरण रहे कि राजस्थान, पंचायती राज में भारत में प्रथम अगुआ व सर्वोत्तम रहा है व पंडित जवाहरलाल नेहरु ने इसकी ज्योति नागोर में प्रज्वलित की।

व्यास समिति ने इस असफलता से क्षुब्ध होकर यह सुझाव दिया कि हर ग्राम पंचायत मे एक न्याय उप समिति 5 सदस्यों की बना दी जावे जिनमें से 4 ग्राम पंचायत द्वारा चुने जावें व एक सरपंच अध्यक्ष के रूप में रहेगा। चुने हुये न्याय उप समिति के सदस्यों में से कम से कम एक महिला व एक अनुसूचित जाति व जन जाति का सदस्य हो। इन चार सदस्यो में से 2 सदस्य हर 2 वर्ष के बाद दुबारा चुने जावेंगे।

पंचायत राज्य के कार्यकलापों की मीमान्सा पहिले अन्य समितियो जिनमें अशोक मेहता समिति, सद्दीक अली समिति और बलवन्त राय समिति प्रमुख थी, द्वारा भी समय समय पर की गई। परन्तु जहां तक 'न्याय पंचायत" का प्रश्न है, राजस्थान व महाराष्ट्र के अनुभव ही उपलब्ध हो सके जो निराशामय अन्धकार की ओर संकेत करते हैं।

व्यास समिति के प्रतिवेदन के पश्चात् 1975 में राजस्थान में न्याय पंचायत नाम लोपित कर दिया गया व संशोधन द्वारा हर पंचायत में न्यायिक उप-समिति का प्रावधान किया गया। कहना न होगा कि यद्यपि विधायिका द्वारा यह प्रयोग प्रगतिशील था; परन्तु जन विश्वास के अभाव मे वह ग्राम स्तर पर जाति या दलगत स्वार्थों के प्रभावो होने से चुने हुये पंच न्यायिक प्रक्रिया में कोई कीतिमान प्रस्थापित न कर सके व न्याय पंचायत व न्याय उप समिति के कार्य व नतीजो मे कोई बदल नहीं आया। पंचायत चुनाव गुटबाजी ने "न्याय गंगा" व "परमेश्वर" को मृत कर दिया। न्यायिक उप समितियां मृत हैं।

बहुधा पक्षकार अपना वाद न्यायालयों मे ही निर्णित करवाना हितकर समझते रहे ताकि जाति व दलगत राजनीति से परे रहकर विशुद्ध न्याय प्राप्त कर सके। पंचायत अधिनियम में यह प्रावधान है कि न्याय पंचायत व अब न्यायिक

उप समिति के निर्माण के पश्चात् भी साधारण न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र लोपित नही होते व पक्षकार दोनों मे से उसका वाद कहां निर्णित किया जाए इसका चयन स्वयं कर सकता है। यहा यह भी संकेत करना उचित होगा कि हर प्रदेश में दीवानी लेन देन के प्रकरणों में कर्जा निवारण अधिनियम के तहत कर्जा निवारण न्यायालय के अधिकार मुंसिफ या सिविल जज को विशेष तौर से दिये गये हैं। अतः यह प्रक्रिया भी वही अधिक कारगर हो सकी।

अब यह नवीन प्रयोग न्याय पंचायत के रूप में विधि प्रायोग द्वारा करने का सुझाव उपरोक्त पृष्ठ भूमि में व अनुभव के आधार पर चर्चित व निर्णित होना चाहिये। इस संदर्भ मे श्री देसाई का सुझाव कि मुंसिफ या सिविल जज न्याय पंचायत के सभापति बने व कुछ प्रतिनिधि नामजद भी हों व इसके अतिरिक्त चुने हुये प्रतिनिधि इसमें सम्मलित हों, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण सुझाव यह है कि न्याय पंचायत उच्च न्यायालयों के संविधान में प्रदत्त परिच्छेद 235 के अधिकार क्षेत्र मे हो। यह दोनों सुझाव नयी "न्याय पंचायत" की कल्पना की रीढ़ की सुदृढ़ हड्डी बनेंगे—तब ही सफलता की आशा किरण उजागर होगी। 1986 में यह न्याय पंचायतें निर्मित्त हो सकेंगी।

श्री देसाई की परिकल्पना के अनुसार इनमें खेतीहर मजदूर व साधारण कृषक भी सदस्य हों, भावनात्मक रूप से प्रशंसनीय व सराहनीय है। इसी प्रकार इसके अधिकार क्षेत्र में समस्त जमीन जायदाद सम्पत्ति के उत्तराधिकार के मुकदमो, पारिवारिक झगड़े, शादी, तल्लाक, बच्चों के संरक्षण आदि के विवाद भी सम्मिलित करने का सुझाव है। विस्तृत प्रारूप के अभाव में इस पर अधिक चिन्तन करना अनाधिकृत चेष्टा होगी। परन्तु कुछ पहलुओं पर हमें गम्भीरता से विचार प्रारम्भ कर देना चाहिये ताकि उन पर सेमीनार व प्रश्नावली के उत्तरों व लेखों, प्रलेखों में गम्भीर चर्चा व चिन्तन हो सके।

श्री देसाई ने इंग्लैंड व अमेरिका के जस्टिस आफ पीस व रूस के पीपल्स कोर्टस से प्रेरणा ली है जो उनके प्रगतिशील विस्तृत दृष्टिकोण की परिचायक है।

यह तो मानकर चला जा सकता है कि श्री देसाई के सुझाव भारत मे अब तक न्याय पचायत के प्रयोगों के निष्कर्ष व फल जो विभिन्न प्रतिवेदनो मे अथवा विधान सभा या लोक सभा मे चर्चित हुये हैं; या तो अध्ययन के लिये उपलब्ध हो चुके हैं अथवा अब उपलब्ध करा दिये जावेंगे। इस अध्ययन से निश्चित ही अब तक के प्रयोगों से अधिक आशावादी बनना युटोपियन ही होगा।

एक ग्राम पंचायत क्षेत्र में एक मुन्सिफ या सिविल जज के साथ न्याय पंचायत का निर्माण करना लगभग हमारा वर्तमान वित्तीय साधनों से असम्भव है व मुकदमों

की संख्या को देखते हुये अत्यावश्यक है। वर्तमान मुन्सिफ या सिविल जज या न्यायिक दण्ड नायक के अधिकार क्षेत्र में लगभग एक पंचायत समिति आती है, जिसमें विभिन्न क्षेत्र में कहीं 10–15 या इससे अधिक ग्राम पंचायतें होती हैं। वर्तमान आर्थिक साधनों के अभाव के कारण इन न्यायालयों में न तो न्यायाधीशों को अधिकतर सरकारी न्याय भवन दिया जा सकता है और न उनके रहने के लिये सरकारी मकान ही दिया जा सकता है व उनके पास साधारणतया सम्पूर्ण स्टेशनरी व फर्नीचर भी नहीं मिलती। कुछ समय पहिले मैंने अपने एक लेख "फटेहाल मुन्सिफ" में बताया था कि राजस्थान में किस दुर्गति से मुन्सिफ काम करते हैं जहां कपड़े रखने के लिये आलमारी भी नहीं, जुर्माना जमा कराने के लिये रसीद के फार्म नहीं व वारन्ट जारी करने के लिये भी छपे हुये फार्म का अभाव खटकता रहा है। ऐसी दयनीय परिस्थिति में क्या हम हर पंचायत स्तर पर एक मुन्सिफ की नियुक्ति न्याय पंचायत के लिये कर सकेंगे, यह प्रश्न सबसे प्रथम हमारे सम्मुख है। भारत भर में यदि ऐसा किया जावे तो वर्तमान मुन्सिफ या दण्ड नायक या सिविल जज की जो संख्या है उसका लगभग 10 गुना बढ़ाना होगा जो असम्भव ही कहा जा सकता है।

यदि राजस्थान के आंकड़े लिये जावें तो हमारे यहां वर्तमान में 293 मुन्सिफ है। पंचायत समितियों की संख्या 236 है व पंचायतों की संख्या 7272 है। अतः यह निर्धारित करना होगा कि यह न्याय पंचायत हर प्रदेश मे कितनी पंचायतो के क्षेत्र मे एक इकाई के रूप में गठित की जावेगी।

यहां यह भी संकेत करना उचित होगा कि ग्राम पंचायत मे जाकर वहां के मुकदमो का निर्णय वहीं करना भी चौपाल की कल्पना को साकार कर सकता है व विलंब व खर्चे को भी समाप्त कर सकता है। परन्तु इसके लिये भी वित्तीय साधन प्रचुर मात्रा में चाहिये अन्यथा यह कल्पना वर्तमान वित्तीय अभाव मे साकार नही हो सकती। उदाहरण के लिये पारिवारिक न्यायालयो का निर्माण अत्यन्त प्रगतिशील कदम है, इसी प्रकार अनुसूचित जाति व जन जाति के लिये विशेष न्यायालय भी निर्बल वर्ग के सहायता हेतु बनाये गये। परन्तु वित्तीय साधन के अभाव में पूरे राजस्थान में केवल एक "पारिवारिक न्यायालय" बन सका है व कुछ एक अनुसूचित जाति व जन जाति के न्यायालय निर्मित हुए है, जिनसे सब मिलकर भविष्य मे संख्या बढ़ने पर लाभ हो सकेगा, परन्तु वर्तमान मे पक्षकारो के आने जाने मे अधिक देरी, खर्चो व विलंब हो रहा है। यह सही है कि हर प्रगतिशील कार्य मे प्रारम्भ मे कठिनाइयां आती है अतः हमे यही आशा करना चाहिये कि भविष्य में न्यायालय अधिक संख्या मे बनकर सस्ता, सुलभ न्याय दे सकेंगे।

जहां तक न्याय पंचायतों मे अन्य निर्वाचित चुने हुये सदस्यो व नामजद व्यक्तियों के लाने का प्रावधान करने का श्री देसाई का सुझाव है, यह स्वागत योग्य

है। सावधानी यही रखनी होगी कि जो व्यक्ति नामजद किये जाते हैं व जाति ग्रामीण राजनैतिक तनाव से या स्थानीय गुटबन्दी से दूर हों व उन्हें नामजद करने का अधिकार कोई निष्पक्ष प्रक्रिया से हो।

सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न जो विचारणीय है वह यह है कि इन न्याय पंचायतों मे अभिभाषकों को जाने की अनुमति मिले या नहीं। सम्भवतया इस सम्बन्ध मे श्री देसाई अब तक पूर्ण विचार नहीं कर सके हैं, परन्तु यदि पेचीदे कानूनी मुकदमों को न्याय पचायत निर्णीत करेगी तो निश्चित ही उसमे कानूनी सहायता की आवश्यकता होगी। अतः इस सम्बन्ध मे भी विस्तृत चर्चा व चिन्तन की आवश्यकता है।

लोक अदालत व न्याय पंचायत में मूल अन्तर यह है कि लोक अदालत मे केवल समझौते ही कराये जाते हैं, निर्णय नही लिये जाते हैं। लोक अदालत अब तक केवल किसी अधिनियम या नियम के तहत कार्य नहीं करती, बल्कि विधिक सहायता में एक स्वरूप बनकर पक्षकारों को शीघ्र, सस्ता न्याय दिलाने में बिना सरकारी दखल के कार्य करती है। लोक अदालत का अनुभव अत्यन्त उत्साहवर्धक है परन्तु यह भी सत्य है कि राजस्थान में 1975–76 की कोटा में सांकेतिक "लोक अदालत" अय्यर-भगवति ने प्रारम्भ की, 1985 में कार्यवाहक मुख्य न्यायाधिपति बनने पर मैंने विधिक सहायता समिति के सभापति श्री दिनकर लाल मेहता के सहयोग से लोक अदालत की वृहत योजना नवम्बर में प्रारम्भ की जो अब दिसम्बर में पूर्ण गतिमान हो चुकी है, व बासवाड़ा, अजमेर, पाली (देवली) जयपुर, जोधपुर में सफल रूप से प्रारम्भ हो चुकी है, व 1986 में यह अधिक गतिमान होगी। समस्त न्यायाधिपति व न्याय अधिकारी अब इसमें कार्यरत हो गये हैं–जो भगवती न्यायालय की प्रेरणा की देन है। गुजरात मे 10 हजार मुकदमें ही समझौते से निपटाये जा सके व राजस्थान मे पिछले दो माह मे लगभग 7 हजार मुकदमे निपटाये जा सके हैं। अधिकतर प्रदेशों में अब तक लोक अदालत का कार्य नगण्य सा है व भारत मे अधीनस्थ न्यायालयो में विचाराधीन मुकदमो की संख्या एक करोड़ 50 लाख से अधिक है। हाई कोर्ट में लगभग 13 लाख मुकदमे हैं सुप्रीम कोर्ट में 1,50,000 से अधिक मुकदमे विचाराधीन हैं। अतः न्यायिक निर्णय कराने की पद्धति व समझौते कराने की पद्धति मे जो अन्तर है, उस ओर हमें ध्यान देकर गभीरता से विचार करना होगा। यही अतर लोक अदालत व न्याय पंचायत मे होगा। दोनों का अधिकार क्षेत्र व कार्य प्रणाली कानून से स्पष्ट करनी होगी।

न्यायिक पंचायतों के निर्णय के अधिकार क्षेत्र मे क्या क्या मुकदमे आ सकेंगे यह विस्तृत विचार का विषय होगा : क्या वहां पर भारतीय साक्ष्य अधिनियम व मियाद का कानून व अन्य कानून लागू होगे ? क्या दीवानी व जाब्ता फौजदारी की प्रक्रिया अपनाई जावेगी अथवा इस सम्बन्ध में नई प्रक्रिया बनेगी ?

यदि साक्षी अधिनियम, जाब्ता फौजदारी व जाब्ता दीवानी व मयाद का कानून लागू किया जाता है तो शीघ्र, सस्ता, सुलभ न्याय की आशा समवलतया सफल न हो सकेगी। अतः न्याय पंचायत निर्माण हेतु हमे इन प्रक्रियाओं मे भी आमूल चूल परिवर्तन करना होगा व प्रक्रिया व प्रणाली सरल व सीधी बनानी होगी। देसाई क्या वैकल्पिक प्रक्रिया बना सकेंगे यही उनके क्रांतिकारी दर्शन की कसौटी है।

मेरे विचार में इन पहलुओं के ऊपर *विधि आयोग के विस्तृत प्रारूप* पर राष्ट्रीय विवाद व चिन्तन का प्रारम्भ करना चाहिये। इस व्यापक बहस में जब तक सब पहेलुओं पर विचार नही होगा तब तक श्री देसाई के क्रातिकारी परिवर्तन की सही भूमिका नहीं बन सकेगी।

राष्ट्र में वर्तमान में जब भगवती युग का प्रारम्भ हो चुका है व विधि आयोग में श्री देसाई जैसे प्रगतिशील क्रांतिकारी विचारो वाले जाने माने अन्त-र्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त निदेशक व अध्यक्ष हैं तो हमें बहुत बड़ी आशा है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम सब इसमें सम्मिलित होकर इन आशाओ के अनुकूल भारतीय न्यायिक प्रक्रिया में परिवर्तन लाने में सहायता दें ताकि जन विश्वास बना रहे व सस्ता, शीघ्र, सुलभ, सारभूत न्याय सर्व साधारण को प्राप्त हो सके।

इस चिंतन मंथन व नव प्रयोग में महर्षि कृष्णा अय्यर, जो न्यायिक क्राति व सर्वहारा को सस्ता, सरल, त्वरित, सुलभ, शीघ्र न्याय दिलाने के मसीहा हैं, का उपयोग भी, भगवती व सेन को करना चाहिये। अय्यर का मौलिक "सामाजिक न्याय" का दर्शन केवल भारत ही नहीं विश्व के लिए वरदान है, व यदि राजीव भगवति, देसाई, उनका पूर्ण लाभ समाज के लिए न ले सके तो यह विडम्बना ही कही जावेगी, जिसके लिए इतिहासकार व भावी पीढ़ी हमें कभी भी न बक्सेगी। कितना दुःखद सत्य है कि हम शोषण युक्त समाज के कर्णाधार, "कृष्णा अय्यर" के जीवन दर्शन, अनुभव, ज्ञान, चितन का पूर्ण शोषण, समाज हित मे न कर उन्हे "कोचीन" में चलते फिरते व्याख्याता के रूप मे छोड़ दिया है !

न्याय पंचायत की कल्पना साकार हो, इस हेतु जो अधिनियम या प्रारूप केन्द्रीय स्तर पर बनेगा उसमें निम्न प्रश्नों के बारे मे गंभीर चिंतन व मन्थन का प्रावधान रखना चाहिये:—

1. क्या भारतीय साक्षी अधिनियम पूर्ण रूप से अथवा सूक्ष्म रूप मे वहा लागू किया जावेगा अथवा औद्योगिक विवाद अधिकरण के अनुरूप आंशिक रूप से लागू किया जावेगा ? मेरे विचार से आंशिक ही उचित होगा।
2. क्या दीवानी *प्रक्रिया अधिनियम* व फौजदारी *प्रक्रिया अधिनियम* इन न्याय पंचायतो में लागू होगे अथवा इसकी प्रक्रिया के लिये अलग से नियम बनाये जाकर उन्हें लागू किया जावेगा ? मेरे विचार से इन्हे लागू न किया जावे।

3. क्या अभिभापक एडवोकेट इन न्याय पंचायतों में पैरवी कर सकेगा अथवा क्या उनका आगमन सीमित होगा अथवा पूर्ण निषेध होगा ? मेरी मान्यता 'आंशिक' है।
4. क्या मयाद अधिनियम वर्तमान स्वरूप में न्याय पंचायत में लागू होगा ?
5. क्या इसकी अपील अथवा निगरानी डिस्ट्रिक्ट जज या उच्च न्यायालय में होगी ? मेरे विचार से केवल एक अपील होनी चाहिये।
6 क्या न्यायिक पंचायत को सब प्रकार के मुकदमे सुनने का पूरा अधिकार होगा अथवा उनका अधिकार क्षेत्र वर्तमान मुन्सिफ के अनुकूल होगा ?
7. क्या इन न्याय पंचायतों में जो सार्वजनिक कार्यकर्त्ता नियुक्त किये जावेंगे वे ऐसेसर अथवा ज्यूरी का कार्य करेंगे अथवा न्यायाधीश के समकक्ष अधिकृत होंगे ? केवल एसेसर का कार्य ही करें तो मेरे विचार से उचित होगा।
8. क्या न्याय पचायत निर्माण के बाद न्याय पंचायत के अधिकार क्षेत्र के मुकदमो को सुनने का अधिकार, केवल न्याय पचायत को ही होगा, अथवा अन्य दीवानी अदालतों में उन मुकदमो की सुनवाई पर प्रतिबन्ध होगा ? मेरे विचार में प्रतिबन्ध हो।
9. क्या न्याय पंचायत पूर्ण रूप से हाई कोर्ट के तहत कार्य करेगी व उनकी नियुक्ति व अनुशासन समस्त हाई कोर्ट की देखरेख में होगा ? मेरे विचार से हाईकोर्ट ही हो।
10. क्या न्याय पंचायतों में रेवेन्यू के मुकदमे जो अभी प्रशासनिक दण्डनायक या उप जिलाधीश द्वारा सुने जाते हैं, उनसे लेकर, न्याय पंचायत द्वारा ही सुने जावेंगे व राजस्व के भावी मुकदमे भी सब न्याय पंचायत मे ही होंगे। मेरे विचार से सब रेवेन्यू मुकदमें भी यही हों।

उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर मे न्यायिक प्रक्रिया व प्रणाली मे आमूल चूल परिवर्तन की आधारशिला बनी है व विस्तृत विवेचन से यह पता लगेगा कि यह कोम असाधारण है जिसकी क्रियान्विति के लिये भागीरथ प्रयत्न करने होंगे।

उपरोक्त प्रश्नो व उसके अपेक्षित उत्तरो से यह स्पष्ट है, कि न्याय पंचायत द्वारा सुन्दर, सस्ता, सरल व शीघ्र न्याय देने के लिये "भगवती अय्यर व देसाई" की त्रिमूर्ति के सगम की आवश्यकता है। आशा है कि न्यायिक क्रान्ति का यह सूत्रपात जो 1986 में प्रारम्भ हो जायेगा, हमारी न्याय व्यवस्था मे प्रगतिशील बदलवाकर अन्याय को समाप्त कराने मे व सामाजिक न्याय, शीघ्र, सस्ता व सरल, चौपाल पर प्राप्त कराने में सहायक होगा। यदि यह भगवती युग में, गंगोत्री बन प्रारम्भ हो सका तो, निश्चित ही भगवती, भागीरथ बन न्याय गंगा, घर बैठे नहीं तो कम से कम गाव गाव मे ला सकेंगे, क्योंकि देसाई का विधि आयोग में चयन व चिंतन दोनो मूलतया "भगवती" की देन है, यह ध्रुव सत्य स्वीकार किया जाना ही सार्थक है। मैं बहुत आशावित हूं, यद्यपि कार्य कठिन व दुर्लभ है।

□

परिशिष्ट–एक

भारत के मुख्य न्यायाधीश भगवती का भाषण

1. प्रधानमंत्री जी, विधि मंत्री जी, गृह मंत्री जी, वित्तमंत्री जी विधि एवं न्याय राज्य मंत्री जी एव सम्मेलन में भाग लेने वाले विशिष्ट सज्जनो।

हम जिस अवसर पर मिल रहे हैं वह ऐतिहासिक हैं क्योकि प्रथम बार मुख्य न्यायाधीशो, मुख्य मन्त्रियों व विधि मंत्रियो का, राज्यों मे न्यायपालिका द्वारा अनुभूत समस्याओं पर विचारविमर्श करने एवं उनका स्थायी व प्रभावी निदान ढूंढ़ने हेतु सयुक्त सम्मेलन बुलाया गया है। जैसाकि सर्वविदित है राज्यों में न्यायपालिका आर्थिक व अन्य विवशताओं से ग्रसित है। हम एक प्रभावी एवं कार्यकुशल न्याय-प्रशासन की व्यवस्था केवल उसी स्थिति में स्थापित कर सकते हैं जब राज्य सरकारें आवश्यक साधन व सुविधाएं प्रदान कर न्यायपालिका को पूर्ण सहयोग दे। कई बार यह बात ध्यान में नहीं रखी जाती कि सीमित शक्तियों वाली प्रजातान्त्रिक सरकार की व्यवस्था मे न्यायपालिका का कितना महत्त्व है और राज्य द्वारा अपनी न्यायपालिका के माध्यम से जीवन के प्रजातान्त्रिक स्वरूप को बनाए रखने के लिए त्वरित व सस्ता न्याय दिलाया जाना कितना आवश्यक है। हम आज एक ऐसे समय से गुजर रहें है जिसमें मान्यताओं में भारी परिवर्तन आ रहा है। इस परिवर्तन ने असख्य लोगो के दिलों मे आशाएं जगायी है। लोग जो अब तक अक्षम, अज्ञानी निर्बल, असंगठित निर्धन व निःसहाय थे, उनमे एक नई जीवनदायिनी चेतना पैदा हुई है और बढ़ती हुई आशाओं की क्रांति का जन्म हुआ है।

2. हम प्रगति व स्वतन्त्रता के नये युग के द्वार पर हैं क्योकि आज लोग स्वतंत्रता की मांग ऐसी उत्कट भावना से कर रहे हैं जैसी पूर्व सदियो मे कभी नही की। जब हम स्वतन्त्रता की बात करते है तो हमारा आशय न तो राजनैतिक मताधिकार मात्र से ही है और न ही मात्र नागरिक और राजनैतिक अधिकारों से है वरन् इसका तात्पर्य अभाव व आश्रितता से मुक्ति, दुर्गति व निर्धनता से उभार, अज्ञान व निरक्षरता के छुटकारे से है। यही वह स्वतन्त्रता है जिसकी लाखों लोग देश में आज माग कर रहे हैं। हमारे संविधान में अवस्थित प्रस्तावना व राज्य के नीति निदेशक तत्व उस नए सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था के उभार के प्रतीक हैं जिसमे समस्त व्यक्तियो को वास्तविक स्वतन्त्रता की अनुभूति होगी। प्रस्तावना व

नीति निर्देशक तत्वों मे निहित संवैधानिक लक्ष्य यह माँग करता है कि हमारे विधिक अधिकारों को नवीन रूप दिया जाय और न्याय की संस्थाओं को इस प्रकार पुनर्दिष्ट किया जाय कि हमारे देश की जनता के अधिकतम भाग के लिए न्याय सुनिश्चित हो। इस लक्ष्य का आह्वान न्याय की ऐसी नवीन मान्यताएं हैं, जो अनन्यतः समुदाय के निर्धन, अल्प साधन व अन्य वंचित मानव वर्ग की आशाओं व प्रत्याशाओं को संतुष्ट कर सकेगी। न्यायपालिका को राष्ट्र के सामाजिक व आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी, अतः यह आवश्यक है कि न्याय प्रशासन की व्यवस्था को धाराबद्ध करने का हर प्रयास किया जाय ताकि यह लोगों को न्याय दिलाने के लिए एक प्रभावी माध्यम बन सके।

3. मुझे ज्ञात है कि कुछ राज्यों में न्याय व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता तथा न्याय प्रशासन को निम्न प्राथमिकता दी जाती है जो दुर्भाग्यपूर्ण है। न्याय प्रशासन को एक ऐसा विकास कार्य नहीं समझा जाता जिस पर सामाजिक व्यय का औचित्य हो। कई लोग यह नहीं समझते कि न्याय प्रशासन समस्त विकास का आधार है, और जब तक हम अपने न्याय प्रशासन को सुधार कर न्याय दिलाने का प्रभावी माध्यम नहीं बनायेंगे, राष्ट्र द्वारा किया गया विकास का प्रत्येक प्रयास गम्भीर रूप से बाधित होगा क्योंकि लोग उसमे योगदान नहीं देंगे। हमने 26 जनवरी 1950 को भारत के लोगों को एक नयी सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था लाने का वचन दिया है जिसमें सभी को आर्थिक सामाजिक व राजनैतिक न्याय तथा स्तर व अवसर की समानता प्राप्त होगी, और चूंकि हम विधि के शासन के अधीन प्रजातांत्रिक हैं, यह परिवर्तन हमारे द्वारा विधिक प्रक्रिया के माध्यम से ही लाना होगा। लेकिन विधि इस अपेक्षित परिवर्तन को लाने मे तब तक सक्षम नहीं होगी जब तक उसका उचित क्रियान्वयन न हो और देश के लाखों अर्द्ध-नग्न व भूखों को दिए गए अधिकार व लाभ उनके लिए वास्तविक नहीं बन जाते। यह स्थिति केवल प्रभावी व कुशल न्याय प्रशासन की व्यवस्था के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। जिसमे सबकी, शक्ति, स्थिति व धन का विचार किये बिना न्याय तक पहुंच सुगम होगी और उन्हें त्वरित व सस्ता न्याय सुलभ किया जायगा। देश के लोग और विशेषतः वंचित व निर्बल वर्ग, यदि यह भावना रखता है कि उनकी न्याय की मांग के प्रति न्याय व्यवस्था कठोर व उदासीन है और त्वरित न्याय देने मे अक्षम है, या उनकी स्वयं की निर्धनता, असमर्थता या सामाजिक व आर्थिक अहितकर स्थिति के कारण न्याय तक उनकी पहुंच सुगम नहीं है, तो एक दिन वे व्यवस्था के तन्तुवृत्त को चीर डालना चाहेंगे क्योंकि अन्याय की भावना से बढ़कर कोई अन्य बात मानव हृदय को सतत् पीड़ा पहुंचाने वाली नहीं हो सकती। अतः राष्ट्र के भविष्य के लिए

यह शुभ शकुन है कि मुख्य न्यायाधीश, मुख्य मंत्री व विधि मंत्री इस सभास्थल पर हैं जहां राज्यों की कार्यपालिका एवं न्यायपालिका एक साथ उन समस्याओं पर विचार-विमर्श करेंगी जिनसे न्यायपालिका ग्रस्त है तथा उन परिवर्तनों व सुधारों के बारे में भी सहमति हो सकेगी जिनका उद्देश्य न्याय तक पहुंच को सुगम एवं विलम्ब को निराकरण कर न्यायिक व्यवस्था के स्तर को उन्नत किया जायेगा।

4. कई समस्याएं हैं जिन पर तुरन्त ध्यान दिया जाना आवश्यक है, हम उन्हीं पर विचार करेंगे। मेरे भाषण में मैं उन समस्याओं को उजागर करूंगा जिनको मैं मूलभूत महत्त्व की मानता हूं। सर्वप्रथम तो यह आवश्यक है कि वैकल्पिक विवाद निस्तारण संयत्र विकसित कर न्यायालयों को कार्यभार के कुछ अंश से मुक्त किया जाय। न्यायालयों में आने वाले कई मामले ऐसे हैं जिनका निस्तारण अधिक प्रभावी तौर पर किसी अन्य विवाद निस्तारण सयंत्र द्वारा किया जा सकता है। न्यायालयों के लिए यह संभव नहीं है कि समस्त प्रकार के मामलों का निस्तारण करें, प्रथमतः जनसंख्या वृद्धि, लोगों में अपने अधिकारों के प्रति बढ़ती जागरुकता, औद्योगिक विकास तथा नागरिक के जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करने वाले अनगिनत विधियों के सृजन के कारण मुकदमेबाजी की मात्रा में भारी वृद्धि हुई है और न्यायालयों के लिए इस बढ़ी हुई मात्रा को काबू पाना संभव नहीं है। द्वितीयतः, कुछ विशिष्ट प्रकार के मामले ऐसे होते हैं जिनमें, कुछ मात्रा में विशिष्ट दक्षता अवश्य चाहिए और ऐसे मामले केवल विशिष्ट अधिनिर्णयन अभिकरण द्वारा ही ठीक से निपटाए जा सकते है। मैं इस सम्बन्ध में आपके विचारार्थ व स्वीकारार्थ कुछ निम्न सुझाव प्रस्तुत करना चाहूंगा।

(क) ग्रामीण क्षेत्रों में चलित न्यायालय स्थापित किए जा सकते हैं। कई समीपवर्ती गावों को एक इकाई मानकर उनके केन्द्र स्थान पर चलित न्यायालय माह में एक बार जाएं और छोटे दावे जो वहां उत्पन्न हो गये हों उन्हें निपटाएं। इन चलित न्यायालयों में एक प्रशिक्षित न्यायिक अधिकारी एवं दो अनुभवी व्यक्ति, जो गाव के वयोवृद्ध व्यक्तियों अथवा गण-मान्य नागरिकों में से जिनकी सूची जिला न्यायाधीश द्वारा जिला मजिस्ट्रेट के परामर्श से बनाई गई हो होने चाहिए। चलित न्यायालयों के समक्ष न तो वकीलों को पेश होने दिया जाए और न ही ये न्यायालय किसी प्रक्रिया संहिता से बाधित हों। चलित न्यायालयों का मुख्य कार्य विवादों में समझौता कराना होना चाहिए और केवल समझौता असफल न होने की परिस्थिति में ही इनको निर्णीत किया जाना चाहिए। चलित न्यायालयों की स्थापना के सम्बन्ध में विस्तृत रूपरेखा मैंने गुजरात सरकार को विधिक सहायता पर अपने प्रस्तुत प्रतिवेदन में तथा भारत सरकार को राष्ट्रीय न्याय विधान पर प्रतिवेदन में प्रस्तावित की है। यह मत [illegible]

श्रौर न्यायालयों के उस कार्यभार के कुछ का श्रंश श्रपवर्तन करेगा जिससे श्राज अधीनस्थ न्यायालय दबे हुए हैं।

(ख) लोक श्रदालतों की संस्था काफी लोकप्रिय हो चुकी है श्रौर देश में अपनी जड़ें पकड़ रही है। यह एक विचार था जो मैंने अपने गुजरात मुख्य न्यायाधीश कार्यालय मे दिया श्रौर श्राज इसे देश के कई भागो में विस्तृत रूप से स्वीकार कर लिया गया है। लोक अदालतें विवादों के स्वैच्छिक समझौते के माध्यम के अतिरिक्त कुछ नही हैं। लोक श्रदालतें गुजरात में कार्यशील हैं जिन्हें करीब 12 से 15 वकीलों, सेवा निवृत्त न्यायाधीशो व सक्रिय समाज सेवियों के दल की सेवाएं प्राप्त हैं। वकीलों, सेवा-निवृत्ति न्यायाधीशों व सक्रिय समाजसेवियों का यह दल कम से कम 15 दिन में एक बार विभिन्न तालुकों व तहसीलों के केन्द्र स्थानों पर जाता है; मामलों की प्रकृति के श्रनुसार 4-5 लोक श्रदालतों में बट जाता है श्रौर न्यायालयों में लम्बित विवादो का समझौता कराने का प्रयास करता है। लोक श्रदालत के कार्य-स्थल पर विवादों का अभिलेख उपलब्ध करा दिया जाता है श्रौर किए गए समझौतो को अभिलिखित कर दिया जाता है श्रौर सम्बन्धित न्यायाधीश उसी समय श्रथवा श्रगले दिन समझौते के श्रनुसार डिक्री या श्रादेश पारित कर देता है। लोक अदालतें कितनी सफल हैं, इस उदाहरण से जाना जा सकता है कि गुजरात राज्य में विगत 18 महीनो मे अधीनस्थ न्यायालयों मे लम्बित 10,000 से अधिक मामले इनके द्वारा निपटाए गए हैं। लोक श्रदालतों की संस्था को एक वैधानिक श्राधार प्रदान करना श्रावश्यक है। जब इस विषय पर चर्चा होगी तब मैं इस पर श्रौर विस्तार से बात करूंगा।

(ग) अपीलीय श्रम अधिकरण : श्रभी श्रौद्योगिक अधिकरण अथवा न्यायालय के अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील का कोई प्रावधान नही है। अतः हारने वाले पक्ष के पास संविधान के अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय या अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय में जाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है, इसी कारण से ढेर सारे श्रम सम्बन्धी मामले उच्च न्यायालयों व सर्वोच्च न्यायालय की पत्रावलियों मे चीख रहे हैं। यह मूलभूत सिद्धान्त है कि प्रत्येक वादकारी को अपील का कम से कम एक श्रवसर श्रवश्य प्राप्त होना चाहिये। अतः मैं प्रस्तावित करता हूं कि भारत सरकार एक ऐसा श्रम अपीलीय अधिकरण स्थापित करे जिसकी क्षेत्रीय पीठ हो व श्रावश्यकता होने पर श्रौर भ्रमणशील पीठ बनाने का अधिकार हो। यदि सही व्यक्तियो की नियुक्ति का उचित व संतोषजनक प्रावधान करते हुए अपीलीय श्रम अधिकरण स्थापित कर दिया जावे तो सर्वोच्च न्यायालय में जाने वाले श्रम से सम्बन्धित विशेष अनुमति से अपील के प्रार्थना-पत्रों की संख्या में भारी

कमी होगी तथा अभी जो कार्य उच्च न्यायालय में जाता है वह पूर्णतया से समाप्त हो जायगा। इन अधिकरणों में सही व्यक्ति की नियुक्ति के लिए निःसंदेह भारी सावधानी बरतनी होगी।

(घ) **प्रशासनिक अधिकरण :** हम थोड़े ही दिनों मे केन्द्र सरकार के कर्मचारियों की सेवा सम्बन्धी मामलों के अधिनिर्णयन हेतु देश में प्रशासकीय अधिकरण स्थापित करने जा रहे हैं। यह एक बहुत अच्छा कदम है जो न्यायालयो के कार्यभार को भारी मात्रा में बटाने मे सहायक होगा। किन्तु यह नितान्त आवश्यक होगा कि प्रशासकीय अधिकारो मे सही व्यक्ति हो व उनका चयन योग्य नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा हो।

(ङ) राज्य सरकारों को भी अपने व राज्य पब्लिक सैक्टर निगमो के कर्मचारियों की सेवा सम्बन्धी मामलो पर अधिकारिता वाले सेवा अधिकरण स्थापित करने चाहिये। राज्य सेवा अधिकरणों के सदस्यो के चयन मे भी वही निष्पक्ष नियुक्ति प्राधिकरण का यन्त्र-विन्यास अपनाना होगा क्योकि यह आवश्यक है कि उचित नियुक्तियां गुणों के आधार पर ही हो न कि किसी अन्य आधार पर, अन्यथा अधिकरण की उचित न्याय प्रदान करने की क्षमता से लोगो का विश्वास उठ जायगा।

(च) क्योकि एक अपील का अधिकार तो प्रत्येक वादकारी को होना ही चाहिए, राज्य सेवा अधिकरणों के निर्णयों के विरूद्ध अपीलो की सुनवाई के लिए अपीलीय सेवा अधिकरण भी होने चाहिये। किसी सेवा वादकारी को राज्य सेवा अधिकरण के निर्णय को चुनौती देने के लिए उच्च न्यायालयो या सर्वोच्च न्यायालय में भगाने की अपेक्षा उसे भारत सरकार द्वारा स्थापित सेवा अपीलीय अधिकरण मे ही जिसमे नियुक्ति संयत्र प्रशासकीय अधिकरण के ही समान हो, अपील का अधिकार देना श्रेष्ठ होगा।

(छ) आयकर अपीलीय अधिकरण के निर्णयों के विरुद्ध विधि के प्रश्न पर अपील की सुनवाई के लिए एक केन्द्रीय कर न्यायालय स्थापित करना भी आवहै। चूंकि केन्द्रीय कर न्यायालय के न्यायाधीश कर विधि के विशेषज्ञ होगे अतः न केवल निर्णयों मे एकरूपता होगी वरन् मामलो का निस्तारण भी शीघ्र होगा। यद्यपि केन्द्रीय कर न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध भी विशेष अनुमति से अपील सर्वोच्च न्यायालय मे की जा सकेगी पर ऐसी अपीलों की संख्या नगण्य होगी चूंकि केन्द्रीय कर न्यायालय एक विशिष्ट प्राप्त न्यायालय होगा। इससे उच्च न्यायालयों का कार्यभार कम होगा व उच्चतम न्यायालय मे जाने वाली अपीलों की सख्या भी घटेगी।

(ज) पारिवारिक न्यायालय अधिनियम पहले ही पारित किया जा चुका है परन्तु अभी उसे लागू नहीं किया गया है। यह आवश्यक है कि इसे शीघ्र लागू करने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाएं। एक बार यह हो जाने पर वैवाहिक एवं अन्य पारिवारिक विवाद दीवानी न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से हटकर इन विशिष्ट पारिवारिक न्यायालयों मे चले जायेंगे।

(झ) जब तक पारिवारिक न्यायालय विधि लागू नहीं की जाती राज्य सरकारों द्वारा वैवाहिक व पारिवारिक विवादो के समझौतों के लिए कम से कम मुख्य-मुख्य नगरों मे वैवाहिक परामर्श-केन्द्र स्थापित किये जाने चाहिये। अभी बम्बई के सिटी सिविल न्यायालय मे एक प्रभावी वैवाहिक परामर्श-केन्द्र कार्यरत है जिसको न्यायालय द्वारा वैवाहिक व पारिवारिक विवादों से सम्बन्धित मामले समझौतों के लिए भेजे जाते हैं। अनुभव यह रहा है कि इनमें से 40 से 50 प्रतिशत मामले निपट जाते हैं।

(ञ) जुर्माने से दंडनीय छोटे अपराधों के लिए अवैतनिक मजिस्ट्रेटो का तन्त्र भी स्थापित करना चाहिए।

5. क्योकि न्यायिक तन्त्र को न्यायाधीश ही चलाते हैं, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि न्याय का स्तर उन चलाने वालो से श्रेष्ठ नहीं हो सकता। इसी कारण से अमेरिका के महान् न्यायाधीश कार्डोजो ने कहा है—"निष्कर्षतः न्यायाधीश के व्यक्तित्व के अतिरिक्त न्याय की कोई अन्य गारण्टी नहीं है।" अतः विधिक न्याय न्यायाधीश के न्याय के अतिरिक्त और कुछ नही होता। विधिक न्याय के तन्त्र की प्रभावी, सफल व उद्देश्यपूर्ण कार्यशीलता में न्यायाधीश की स्थिति धुरीय होती है। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि हम न्याय प्रशासन मे सर्वोत्तम प्रतिभा को आकर्षित करे। हमको इस समस्या पर विचार अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्यों एवं उच्च न्यायालयो के न्यायाधीशों के संदर्भ में करना है।

6. जहां तक अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्यों का प्रश्न है, उनके वेतनमान अत्यन्त निम्न स्तर पर हैं और इसलिए वे अच्छी प्रतिभा को आकर्षित करने मे असफल रहते हैं। जिला एवं तालुका स्तर पर भी वकीलों की आमदनी अधीनस्थ न्यायाधीशो से इतनी अधिक है कि उनके लिए न्यायाधीश का पद जो प्रत्येक तीन वर्ष बाद स्थानान्तरणीय है, कोई प्रलोभन नहीं रखता। अतः यह आवश्यक है कि अधीनस्थ न्यायाधीशो की सेवा शर्तों में सुधार किया जाय ताकि इनमे अच्छी प्रतिभाएं आ सकें और अधीनस्थ न्यायपालिका के स्तर पर भी तन्त्र की कुशलता सुधर सके। हमे अधीनस्थ न्यायपालिका को सुदृढ़ करने का हर संभव प्रयास करना है क्योंकि न्यायिक पिरामिड का वह आधार है। मैंने इस सम्बन्ध में अपने साथी मुख्य न्यायाधीशो

के साथ विचार किया है और इस पर हमारा मतैक्य है कि अधीनस्थ न्यायाधीशों व जिला न्यायाधीशों के वेतनमान में भारी सुधार की आवश्यकता है । उन्हें केन्द्रीय सिविल सेवा श्रेणी प्रथम के ही अनुरूप महंगाई भत्ता अतिरिक्त मंहगाई भत्ता व अन्य भत्ते मिलने चाहिएं । मैं अधीनस्थ न्यायाधीशों की सेवा शर्तों में सुधार वेतन व भत्तो में वृद्धि पर मेरे प्रस्तावों को, जब हम इस प्रश्न को विचारण हेतु लेंगे, तब सामने रखूंगा ।

7. मैं अधीनस्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति के तरीके के सम्बन्ध में भी दो शब्द कहना चाहूंगा हमारा सबका यह मत है कि अधीनस्थ न्यायाधीशो का चयन व नियुक्ति लोक सेवा आयोग के बजाय उच्च न्यायालयों द्वारा होनी चाहिए। इस विषय पर भी हमे विचार करना होगा ।

8. यही बात उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति पर लागू होती है । उच्च न्यायालय बार की कमाई इतनी विषम रूप से ऊंची है कि बार के अच्छे सदस्यों को वर्तमान वेतन स्तर पर न्यायाधीश पद स्वीकार करने हेतु आकर्षित करना असम्भव सा है। बार के अधिकांश योग्य सदस्य आसानी से उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के वेतन से दुगुनी तिगुनी राशि कमा लेते हैं । इस लिए अपने साथी मुख्य न्यायाधीशों की पूर्ण सहमति से मैंने उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन सेवा शर्तों में आमूल सुधार सुझाएं हैं । इस सम्मेलन मे भाग ले रहे सभी सदस्यो को इस सम्बन्ध में की गई सिफारिशों का विवरण में वितरित कर चुका हूं ।

9. उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध मे एक बात और है जिस पर गहन विचार की आवश्यकता है । ऐसे कई मामले हैं जिनमें उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा की गई नियुक्ति की सिफारिशों को राज्य सरकार के स्तर पर ही रोक लिया जाता है और कभी-कभी राज्य सरकार द्वारा पुष्टि पर भी केन्द्रीय सरकार के स्तर पर विलम्बित कर दिया जाता है। परिणाम यह होता है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशो के रिक्त स्थानों को भरने के लिए नियुक्तियों में बेहद विलम्ब हो जाता है । कुछ उच्च न्यायालयों मे रिक्त पदो को महीनो से व कुछेक मे वर्ष दो वर्ष से नहीं भरा गया है जिसका परिणाम बकाया मामलों की संख्या में अधिकतर वृद्धि है । अतः यह आवश्यक है कि परामर्श प्रक्रिया के सम्पूर्ण होने की कोई समयावधि निश्चित की जावे ।

10. न्यायिक विलम्ब के निराकरण के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि न्यायाधीश उचित व यथेष्ट रूप से प्रशिक्षित, निष्पक्ष, विचारशील तथा अपनी विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण भूमिका के बारे मे जागरूक हों । हम चाहे कितना भी अच्छा तन्त्र ढूंढ निकाले वह तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसको क्रियान्वित करने वाला मानव योग्य व दक्ष न हो । इस लिए यह आवश्यक है कि हम अधीनस्थ

न्यायालयों के न्यायाधीशो को यथेष्ठ प्रशिक्षण दें। अभी तक दुर्भाग्य से, एक या दो राज्यों को छोड़कर, किसी राज्य में न्यायाधीशों के प्रशिक्षण का प्रावधान नही है। मेरा विचार है कि न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए कोई ऐसी सस्था या अकादमी होनी चाहिए जो उन्हें नियुक्ति पूर्व व सेवाकाल के दौरान गहन प्रशिक्षण दे। अधीनस्थ न्यायाधीशों को पुनश्चर्या व पत्राचार पाठ्यक्रम के माध्यम से निरन्तर शिक्षा प्राप्त होती रहनी चाहिए। केन्द्र सरकार द्वारा भारतीय विधि संस्थान के सयोजन में एक संस्था या अकादमी प्रारम्भ मे किसी एक स्थान पर व कालान्तर में क्षेत्रीय शाखाओं सहित स्थापित की जानी चाहिए जो सर्वोच्च न्यायालय के निदेश व नियन्त्रण में हो।

11. कुशल न्यायिक प्रशासन हेतु मैं यह भी आवश्यक समझता हूं कि हमारे प्रबन्ध व प्रशासन मे आधुनिक तकनीक लागू की जावे। उच्चतम न्यायालय शीघ्र ही टैलेक्स रखने लगेगा और मेरा यह सुझाव है कि प्रत्येक उच्च न्यायालय के पास भी टैलेक्स हो ताकि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए आदेश व निर्देश तुरन्त उच्च न्यायालयो को सूचित किए जा सकें। राज्य सरकार को चाहिए कि वह प्रत्येक जिला न्यायालय को भी टैलेक्स प्रदान कराए ताकि उच्च न्यायालय व जिला न्यायालयों के बीच संचार सुविधा हो सके। प्रत्येक उच्च न्यायालय के पास जिसमे न्यायाधीशों की संख्या 20 से अधिक हो–चार, व जिसमें न्यायाधीशों की संख्या 20 से कम हो–कम से कम दो, शब्द संशोधक (वर्ड प्रोफेसर) होने चाहिए। उच्च न्यायालयों व जिला न्यायालयो में आधुनिकतम फोटोकोपीइंग मशीन भी होनी चाहिए। यह भी वाछनीय है कि उच्च न्यायालयों में मामलों के वर्गीकरण, विवादो के प्रावक प्रबन्ध नियन्त्रण व निर्णय विधि के कम्प्यूटरीकरण के लिए कम्प्यूटर तकनीक भी लागू की जानी चाहिए।

12. हम देखते हैं कि आज उच्च न्यायालयों में बड़ी मात्रा मे मुकदमें सरकार व लोक अधिकारियो के विरुद्ध रिट याचिकाओं के हैं। यह वांछनीय होगा कि प्रत्येक राज्य सरकार 4 अथवा 5 वरिष्ठ, निष्पक्ष वकीलो का एक विवादकक्ष स्थापित करे और ज्योंही वादकारी का नोटिस या उच्च न्यायालय से रिट याचिका पर दिया गया नोटिस या रूल सरकार को प्राप्त हो, मामले को तुरन्त कक्ष के किसी वकील के पास यह सलाह प्राप्त करने के लिए भेजा जाय कि मामला लड़ने योग्य है अथवा नही यदि मामले मे उच्च हित निहित हो अथवा उसकी प्रकृति संवेन्दनशील हो तो सलाह, कक्ष के दो वकीलो से ली जा सकती है। कुछेक मामले ऐसे होते हैं जिनमें राज्य सरकार अथवा उसके अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों मे कोई वैधानिक खामी होती है, उनमे कोई कारण नही होना चाहिए कि वादकारक को याचिका दायर करने के लिए बाध्य किया जावे या दायर की गई याचिका को लड़ा जावे।

यदि कक्ष के वकील की सलाह यह हो कि मामला लड़े जाने योग्य नही है तो चुनौतीग्रस्त आदेश को वापिस लिया जा सकता है और राज्य सरकार ऐसी कार्यवाही कर सकती है जो विधि द्वारा स्वीकृत हो। इससे उच्च न्यायालयो मे आने वाली रिट याचिकाओं की संख्या में भारी कटौती होगी। यही बात भारत सरकार पर भी लागू हो सकती है।

13. न्याय प्रशासन को धाराबद्ध करने के प्रश्न पर विचारण करते समय मैं इस बात पर जोर देना चाहूंगा कि 'न्याय तक पहुच' एक सुदृढ़ व कुशल न्याय प्रशासन के तंत्र के आवश्यक तत्वो में से एक है। वास्तव मे यह मानव के समस्त मूल अधिकारों में सबसे अधिक मौलिक है। विधि को न केवल न्याय की बात करनी चाहिए वरन् न्याय देना भी चाहिए, और इसलिए न्यायिक पद्धति को लोगों की–विशेष कर वंचित वर्ग की–सुगम पहुंच में लाया जाना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब हमारे पास सुदृढ़ व प्रगतिशील विधिक सहायता कार्यक्रम हो। हम एक क्रियाशील विधिक सहायता कार्यक्रम तैयार कर रहे हैं जिसके दो पहलू होगे, एक तो विवाद–निर्दिष्ट व दूसरा नीति–प्रधान। नीति प्रधान विधिक सहायता कार्यक्रम में पांच मुख्य नीतियां होंगी, अर्थात् विधिक जागृति पैदा करना, विधिक सहायता कैम्प व लोक अदालतें लगवाना; चुने हुए विश्वविद्यालयों व विधि महाविद्यालयों में विधि सहायता केन्द्रों की स्थापना करना, सामाजिक-कार्य समूहों व स्वैच्छिक संस्थाओ का गठन और वैधिक–परिधि के परे सामाजिक क्रियाशील व्यक्तियो के समूह को प्रशिक्षित करना और अन्तिम है, लोकहित की वादकारिता। कुछ राज्यो मे विधिक सहायता कार्यक्रम ने अच्छी प्रगति की है, जबकि कुछ अन्य मे ऐसा नही हुआ है, लेकिन मुझे विश्वास है कि उन राज्यो मे भी यह कार्यक्रम तेजी से प्रगति करेगा। शीघ्र ही हम एक राष्ट्रीय विधिक सेवा अधिनियम बनायेंगे जिसके अन्तर्गत एक विधिक आधार पर विधिक सहायता कार्यक्रम स्थापित किया जायगा। मैं माननीय प्रधान मंत्री जी को यह भी सुझाव दूंगा कि न्यायालयो को लोगो के और नजदीक लाया जाय। न्यायालय लोगों के लिए हैं न कि लोग न्यायालयो के लिए। उदाहरण के लिए—उत्तर-पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र को लीजिए, जिसमें पांच राज्य व दो केन्द्र शासित प्रदेश सम्मिलित है, पर उन सब के लिए गोहाटी मे केवल एक उच्च न्यायालय है जिसकी अन्य चार राज्यों मे पीठ तक भी नहीं हैं। कल्पना कीजिए कि नागालैंड या मिजोरम के वादकारी के लिए किसी आवश्यक प्रार्थनापत्र अथवा सुनवाई हेतु गोहाटी तक जाना कितना कठिन या असंभव प्राय: होगा। विशेषकर लम्बी दूरियो कठिन मार्गो व त्वरित एवं सुगम यातायात के साधनो के अभाव को देखते हुए हम

इन पांचो में से प्रत्येक राज्य के लिए अलग उच्च न्यायालय क्यों नहीं बना सकते ? प्रधान मंत्री जी मैं यह प्रस्ताव आपके विचारण हेतु रखना चाहूंगा।

14. न्यायालयों की एक और भी समस्या यह है कि उनके पास भवन, न्यायिक अधिकारियों के लिए आवास व अन्य सुविधाओं का अभाव है। मैंने कई स्थानों पर न्यायालय भवनो को जीर्णशीर्ण अवस्था में देखा है, न्यायालय कक्ष 8'×8' से बड़े नहीं हैं, कहीं कहीं तो न्यायाधीश के लिए शौचालय की भी व्यवस्था नही है। वादकारियों के लिए प्रतीक्षा कक्ष नहीं हैं। न्यायाधीश के लिए और अन्य कोई सुविधाएं नहीं हैं। उसके पास निर्णय लिखाने को शीघ्रलिपिक भी नहीं है। यदि हम न्यायाधीश को गहन प्रशिक्षण दे भी दें तो यह समझ में नहीं आता, वह इस वातावरण में कैसे कुशलतापूर्वक कार्य कर सकेगा। न्यायिक अधिकारियों के लिए यथेष्ट संख्या में आवासीय परिसर भी उपलब्ध नहीं हैं। मेरे ज्ञान में ऐसे मामले भी हैं जिनमें स्थानान्तरण पर न्यायिक अधिकारियों को आवासीय सुविधा ढूंढने के लिए वकीलों पर और कभी-कभी तो वादकारों पर भी निर्भर रहना पड़ता है, और करीब-करीब हर मामले में अपने वेतन का लगभग 30 से 40% भाग उसे किराये के रूप में देना पड़ता है। यह बहुत गम्भीर समस्या है, पर दुर्भाग्य से इस पर कोई लोग ध्यान नही देते हैं। मेरे ज्ञान में ऐसे मामले भी हैं कि यदि उप-खण्ड अधिकारी के लिए न्यायालय खोलना हो तो न्यायालय भवन के लिए तुरन्त उचित व्यवस्था कर दी जाती है, लेकिन न्यायिक अधिकारी के मामले में इस प्रकार की कोई उद्विग्नता नही दिखाई जाती। बजट में आवंटन प्रावधान होते हुए भी प्रशासकीय स्वीकृति के अभाव में अनुदान व्यपगत हो जाते हैं। मैं इन तथ्यों का उल्लेख सामना कराने की भावना से नही वरन् इस सम्मेलन में भाग ले रहे विशिष्ट सदस्यों का ध्यान आकर्षित करने की दृष्टि से कर रहा हूं ताकि स्थिति सुधारी जा सके। मेरी यह उत्कट अभिलाषा है कि राष्ट्र के जीवन में न्यायपालिका अपना सही स्थान ग्रहण करे और संविधान द्वारा निर्धारित भूमिका का निर्वहन करे।

15. मुझे आशा एवं विश्वास है कि यह संयुक्त सम्मेलन—जो अपने प्रकार का एक ही है—न्यायपालिका द्वारा अनुभूत समस्याओं के केवल विवेचन व विचारण में ही समाप्त नही होगा, वरन राज्य सरकारों व मुख्य न्यायाधीशों द्वारा की जाने वाली ठोस कार्यवाही में परिणित होगा। जहां तक मुख्य न्यायाधीशों का प्रश्न है, मैं आपको यह विश्वास दिला सकता हूं कि न्यायिक प्रशासन की कार्यशीलता में सुधार का हर प्रयास किया जा रहा है व किया जावेगा। लेकिन जैसा मैंने अभी पहले कहा ऐसा करना हमारे लिए तब तक संभव नहीं होगा जब तक राज्य सरकारें

[illegible] को उसका अपेक्षित महत्त्व प्रदान नहीं करती हैं, व न्याय प्रशासन को [illegible] करने में अपना सम्पूर्ण सहयोग नहीं देती हैं। हम आशा करते हैं कि इस सम्मेलन के सम्पूर्ण होने पर एक नये युग का प्रारम्भ होगा।

16. मैं अपने भाषण का समापन यह कहते हुए करूं, कि आगस्टस को यह गर्व [illegible] कि रोम को ईंटों का पाया, संगमरमर का छोड़ा, लेकिन हम सब [illegible] सन्तुष्ट हो सकेगा यदि हमारे बारे मे यह कहा जा सके कि हमने [illegible] महंगा पाया, सस्ता छोड़ा; इसे बन्द पुस्तक पाया, जीवित साहित्य छोड़ा; [illegible] की बपौती पाया, निर्धन के उत्तराधिकार के रूप में छोड़ा; इसे शिल्प [illegible] की दुधारी तलवार पाया ईमानदारी की छड़ व निर्दोषता की ढाल छोड़ा।

———

परिशिष्ट—दो

राजस्थान विधिक सहायता नियम, 1984

1. संक्षिप्त नाम, प्रसार और प्रारम्भ:—(1) इन नियमों का नाम राजस्थान विधिक सहायता नियम, 1984 है।

(2) इनका प्रसार सम्पूर्ण राजस्थान राज्य में होगा।

(3) ये, राज-पत्र में इनके प्रकाशन की तारीख से प्रवृत्त होंगे।

2. परिभाषाएं:—जब तक विषय या संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, इन नियमों में,—

(क) "आवेदन" से विधिक सहायता की मन्जूरी के लिए आवेदन अभिप्रेत है और शब्द "आवेदक" से ऐसी सहायता की मंजूरी के लिए आवेदन करने वाला व्यक्ति अभिप्रेत होगा;

(ख) "पात्र व्यक्ति" से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जो भारत का नागरिक हो और जिसकी आय सभी स्रोतों से नगद या वस्तु के रूप में या दोनों को मिलाकर प्रति वर्ष 6000/- रुपये से अधिक नहीं हो—

परन्तु,—

(i) जहां ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य हो;

(ii) जहां पत्नी विवाह-विषयक वाद में एक पक्षकार हो या भरणपोषण की कार्यवाही में वादी या आवेदक हो या जहां कोई स्त्री उसके व्यपहरण, अपहरण, या बलात्कार से अन्तर्वेलित किसी अपराधिक मामले में परिवादी हो;

(iii) जहां वधु दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का केन्द्रीय अधिनियम 28) के अधीन उद्भूत किसी मामले में परिवादी हो या जहां विवाहित या तलाकशुदा स्त्री मेहर की रकम वसूल करने के वाद में वादी हो;

(iv) जहां 16 वर्ष से अनधिक की आयु का बालक किसी अपराधिक मामले में अभियुक्त हो; या

(v) जहां ऐसा व्यक्ति जनजाति उपयोजना क्षेत्र का या राजस्थान के माडा क्षेत्रों की जनजातीय बस्तियां जो राज्य सरकार द्वारा इस रूप में घोषित हों—का या कोटा जिले की शाहबाद और किशनगज तहसीलों का गरीब जनजातीय या

वास्तविक जनजातीय निवासी हो,—वहां पात्र व्यक्ति होने के लिए उपर्युक्त वार्षिक आय की अधिकतम सीमा लागू नहीं होगी ।

(ग) "उच्च न्यायालय" से राजस्थान उच्च न्यायालय अभिप्रेत है;

(घ) "उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति" से नियम 5 के अधीन बोर्ड द्वारा गठित समिति अभिप्रेत है;

(ङ) "विधिक सहायता" से किसी शिकायत या हानि के विधि—अनुसार प्रतितोष के लिये तथा उससे आनुषंगिक मामलों के लिए ऐसी सहायता और साहाय्य अभिप्रेत है जिसमें परामर्श, सलाह, सुलह, न्यायालय फीस, स्टाम्प शुल्क, आदेशिका फीस, प्रतिलिपि और निरीक्षण प्रभार तथा विवरण की नकल तथा साक्ष्य उपलब्ध कराने में होने वाले व्यय सहित साक्षी व्यय, कमिश्नर की फीस, वकील का पारिश्रमिक, पेपरबुक तैयार करने का खर्चा तथा कार्यवाहियों को संस्थित करने या उनका प्रतिवाद या संचालन करने के सम्बन्ध का व्यय, और कोई अन्य व्यय जिसे समिति मामले की विशेष परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए स्वीकृत करना ठीक तथा उचित समझे, सम्मिलित है;

(च) "विधिक सहायता समिति" से नियम 7 के अधीन गठित समिति अभिप्रेत है;

(छ) "विधिक सहायता ब्यूरो" से नियम 9 के अधीन गठित ब्यूरो अभिप्रेत है;

(ज) "पैरा-विधिक क्लिनिक" से विधिक जागरूकता उत्पन्न करने, मुकदमे के पूर्व और मुकदमे के बाद के मामलों का समाधान करने, लोक अदालतों का गठन करने और ऐसे ही मामलों के लिए राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड के कार्यकारी अध्यक्ष द्वारा गठित क्लिनिक अभिप्रेत है;

(झ) "कार्यवाही" से ऐसी न्यायिक या अर्द्ध-न्यायिक कार्यवाही अभिप्रेत है जिसमें कोई पात्र व्यक्ति, किसी सिविल, दाण्डिक या राजस्व न्यायालय में या किसी ऐसे मंच, औद्योगिक सेवा या कानूनी अधिकरण में, जिसमें विधिक प्रतिनिधित्व के प्रयोजन के लिए या किसी शिकायत या हानि के प्रतितोष के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अनुसार विधिक कार्यवाही की जा सकती हो, पक्षकार हो.

(ञ) "गरीब जनजाति" से ऐसा पात्र व्यक्ति अभिप्रेत है जो जनजाति का है और लघु कृषक या सीमान्त कृषक या कृषि मजदूर है.

(ट) "राज्य बोर्ड" से राजस्थान [illegible] अधिनियम, [illegible] की धारा [illegible] के अधीन गठित राज्य बोर्ड अभिप्रेत है;

(ठ) "राज्य बोर्ड विधिक सहायता [illegible]" से नियम [illegible] के अधीन [illegible] विधिक सहायता बोर्ड द्वारा गठित समिति अभिप्रेत है.

(ड) "अनुसूची" से इन नियमों से संलग्न कोई अनुसूची अभिप्रेत है;

(ढ) "राज्य" से राजस्थान राज्य अभिप्रेत है;

(ण) "राज्य सरकार" से राजस्थान राज्य की सरकार अभिप्रेत है।

3. सलाहकार बोर्ड, उसका गठन और कृत्य:—(1) राज्य सरकार राज्य के लिए एक सलाहकार बोर्ड का गठन करेगी जो सलाहकार बोर्ड कहलायेगा।

(2) सलाहकार बोर्ड में निम्नलिखित सदस्य होंगे, अर्थात्:—

(क) अध्यक्ष, जो राज्य का मुख्यमंत्री होगा;

(ख) भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश माननीय न्यायमूर्ति श्री पी. एन. भगवती;

(ग) मुख्य न्यायाधीश, राजस्थान उच्च न्यायालय;

(घ) राज्य का विधि मन्त्री;

(ङ) राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड का कार्यकारी अध्यक्ष।

(3) उप नियम (1) के अधीन गठित सलाहकार बोर्ड राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड को विधिक सहायता संबंधी सभी मामले में सलाह देगा और राज्य में विधिक सहायता कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए सर्वोच्च निकाय होगा।

4. राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड का गठन, उसके कृत्य और शक्तियां:—(1) राज्य सरकार, राज-पत्र में अधिसूचना द्वारा इन नियमों के प्रयोजन के लिए राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड (जिसे इन नियमों में इसके बाद बोर्ड कहा गया है) स्थापित करेगी।

(2) बोर्ड में निम्नलिखित सदस्य होंगे, अर्थात्:—

(क) अध्यक्ष, जो राज्य का मुख्य मंत्री या, राष्ट्रपति शासन के दौरान, राज्यपाल का नामनिर्देशिती, होगा;

(ख) सह-अध्यक्ष, जो राज्य का विधि मंत्री या, राष्ट्रपति शासन के दौरान, राज्यपाल का नामनिर्देशिती होगा;

(ग) कार्यकारी अध्यक्ष, जो उच्च न्यायालय का ऐसा आसीन न्यायाधीश होगा जिसे उस न्यायाधीश के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नामनिर्देशित किया जाये;

(घ) राज्य का महाधिवक्ता;

(ङ) लोकसभा का एक ऐसा सदस्य जिसे लोकसभा अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित किया जाये;

(च) राजस्थान विधान सभा के तीन से अनधिक ऐसे सदस्य, जो विधान सभा अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित किये जायें;

(छ) राजस्थान बार काउंसिल का अध्यक्ष या उसके द्वारा नामनिर्देशित बार काउंसिल का कोई सदस्य;

(ज) उच्च न्यायालय एडवोकेट एसोसिएशन, जोधपुर का एक ऐसा सदस्य, जो उसके अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित किया जाये;

(झ) उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन, जयपुर का एक ऐसा सदस्य, जो उसके अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित किया जाये;

(ञ) राजस्व बोर्ड बार एसोसिएशन, अजमेर का एक ऐसा सदस्य, जो उसके अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित किया जाये;

(ट) जिला बार एसोसिएशनों के, बोर्ड के कार्यकारी अध्यक्ष द्वारा, नामनिर्देशित दो अधिवक्ता;

(ठ) समाज कल्याण बोर्ड का अध्यक्ष-पदेन;

(ड) बोर्ड के कार्यकारी अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित दो सामाजिक कार्यकर्ता;

(ढ) सचिव, वित्त विभाग, राजस्थान सरकार-पदेन;

(ण) श्रम आयुक्त, राजस्थान सरकार-पदेन;

(त) आयुक्त, जनजाति क्षेत्र विकास, राजस्थान सरकार-पदेन;

(थ) सचिव, सामुदायिक विकास और पंचायत, राजस्थान सरकार-पदेन;

(द) निदेशक, समाज कल्याण विभाग, राजस्थान सरकार-पदेन;

(ध) पंजीयक, सहकारी सोसाइटीज, राजस्थान सरकार-पदेन; और

(न) सचिव, विधि एवं न्याय विभाग, राजस्थान सरकार–सदस्य [illegible] रूप में-पदेन।

(3) उप-नियम (2) के अधीन बोर्ड का नामनिर्देशित सदस्य [illegible] की अवधि के लिए पद धारण करेगा।

(4) बोर्ड का नामनिर्देशित सदस्य होने से [illegible], यदि वह–

(क) विकृतचित्त हो जाये;

(ख) दिवालिया न्यायनिर्णीत हो जाये;

(ग) बोर्ड के कार्यकारी अध्यक्ष से [illegible] कारण के लगातार तीन बैठकों में अनुपस्थित रहे; या

(घ) नैतिक अधमता के [illegible] न्यायालय द्वारा सिद्धदोष ठहरा दिया जाये, [illegible] कर दिया जावे; या

(ङ) [illegible]।

(5) बोर्ड का सदस्य [illegible] नामनिर्देशित कर सकेगा।

(6) बोर्ड में [illegible]

अध्यक्ष द्वारा ऐसा त्याग-पत्र स्वीकार कर लिए जाने पर ऐसे सदस्य द्वारा अपना पद रिक्त कर दिया गया समझा जायेगा।

(7) सदस्य के पद की आकस्मिक रिक्ति को ऐसे न नामनिर्देशन के लिए सशक्त व्यक्ति द्वारा नया नामनिर्देशन करके यथाशीघ्र भर दिया जायेगा।

(8) इन नियमो के अधीन बोर्ड द्वारा किये गये कोई भी कार्य पर कार्यवाहियां केवल मात्र निम्नलिखित कारण से अविधिमान्य नही हो जायेगी :—

(क) बोर्ड में कोई भी रिक्ति या उसके गठन में कोई भी त्रुटि;

(ख) उसके सदस्य के रूप में किसी भी व्यक्ति के नामनिर्देशन में कोई भी त्रुटि या अनियमित्ता;

(ग) ऐसे कार्य या कार्यवाहियों में कोइ भी त्रुटि वा अनियमितता जो मामले के गुणावगुणों को प्रभावित न करे।

(9) बोर्ड:—

(क) उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति और अन्य विधिक सहायता समितियो के सभी क्रियाकलापों का पर्यवेक्षण और नियंत्रण करेगा;

(ख) राज्य में के पात्र व्यक्तियो के लिए विधिक सहायता संबंधी विस्तृत नीति अधिकथित करेगा;

(ग) विधिक सहायता निधि और वित्त की व्यवस्था, संग्रहण, परिरक्षण प्रबंध और उपयोग करेगा;

(घ) उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति और अन्य विधिक सहायता समितियों को निधियां आवंटित करेगा; और

(ङ) राज्य में विधिक सहायता के मामलों में पर्यवेक्षीय निकाय के रूप मे कार्य करेगा।

(10) बोर्ड के सदस्य सचिव को किसी अनुसूचित बैंक में खाता खोलने और उसका संचालन करने की शक्ति होगी।

5. *उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति का गठन, अवधि और कृत्य*—(1) राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड एक समिति (जिसे इस नियम मे इसके पश्चात् समिति कहा गया है) का गठन करेगा, जिसे उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति कहा जायेगा।

(2) समिति में निम्नलिखित व्यक्ति होगे:—

(क) अध्यक्ष—जो राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड का कार्यकारी अध्यक्ष होगा;

(ख) राजस्थान का महाधिवक्ता;

(ग) राजस्थान बार काउंसिल के अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित उसका एक सदस्य;

(घ) राजस्थान उच्च न्यायालय एडवोकेट्स एसोसियेशन, जोधपुर का अध्यक्ष या उसका नामनिर्देशिती;

(ङ) राजस्थान उच्च न्यायालय बार एसोसियेशन जयपुर का अध्यक्ष या उसका नामनिर्देशिती;

(च) राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड के कार्यकारी अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित चार से अनधिक अधिवक्ता;

(छ) अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित किये जाने वाले विधिक सहायता से सम्बन्धित कार्य मे रुचि रखने वाले दो सामाजिक कार्यकर्ता, जिनमे से अधिमानतः एक समाज के कमजोर वर्ग से होगा;

(ज) मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर का, उसके कुलपति द्वारा नामनिर्देशित एक प्रतिनिधि; और

(झ) राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर का, उसके कुलपति द्वारा नामनिर्देशित एक प्रतिनिधि ।

(3) इस नियम के उपनियम (2) मे किसी बात के होते हुए भी, समिति दो से अनधिक किन्ही व्यक्तियो को समिति के सदस्य या सदस्यों के रूप मे सहयोजित करने की हकदार होगी ।

(4) समिति के सदस्यों की नियुक्ति उसके अध्यक्ष द्वारा की जायेगी ।

(5) समिति का मुख्यालय उच्च न्यायालय के स्थान पर होगा । समिति ऐसे स्थान पर भी बैठक और कार्य कर सकती है जो उसके अध्यक्ष द्वारा समय-समय पर निश्चित किया जाये ।

(6) नामनिर्देशित सदस्यों का कार्यकाल उनकी नियुक्ति की तारीख से तीन वर्ष का होगा । तथापि, राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड को, अभिलिखित किये जाने वाले कारणों से समिति को तीन वर्ष की अवधि से पूर्व विघटित करने की शक्ति होगी ।

(7) अध्यक्ष समिति के सचिव या सचिवों को नियुक्त करेगा । सचिव या सचिवो को उतना पारिश्रमिक या मानदेय दिया जायेगा जो समिति द्वारा नियत किया जाये ।

(8) समिति पात्र व्यक्तियों को उच्च न्यायालय मे लम्बित, संस्थित या संस्थित की जाने वाली कार्यवाहियों के संबंध में विधिक सहायता प्रदान करेगी ।

(9) समिति को, नियम 6 और 7 के अधीन राज्य भर में गठित विधिक सहायता समितियों के पर्यवेक्षण और नियंत्रण की ओर उन्हें निर्देश देने की शक्ति होगी ।

(10) समिति स्वैच्छिक अभिदाय और दान प्राप्त करने और जैसी वह उपयुक्त समझे वैसी निधि की भी हकदार होगी।

(11) समिति का अध्यक्ष किसी भी अनुसूचित बैंक में बैंक खाता खोलने और उसे संचालित करने के लिये सशक्त होगा।

(12) समिति का अध्यक्ष, राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड या राज्य सरकार द्वारा उसके नियंत्रण मे रखी गई या स्वैच्छिक अभिदाय या दान द्वारा प्राप्त निधियों में से या समिति द्वारा बनायी गई निधि में से विधिक सहायता प्रदान करने के लिए, व्यय करने के लिए सशक्त होगा।

6. राजस्व बोर्ड विधिक सहायता समिति का गठन, अवधि और कृत्य:— (1) राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड एक समिति गठित करेगा (जिसे इस नियम में इसके पश्चात् समिति कहा गया है) जो राजस्व बोर्ड विधिक सहायता समिति कहलायेगी।

(2) समिति मे निम्नलिखित व्यक्ति होगे—

(क) अध्यक्ष, जो राजस्व बोर्ड का ऐसा आसीन सदस्य होगा, जिसे राजस्व बोर्ड के अध्यक्ष से परामर्श करके राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड के कार्यकारी अध्यक्ष द्वारा नाम निर्देशित किया जाये;

(ख) समिति के अध्यक्ष द्वारा नाम निर्देशित दो अधिवक्ता जो राजस्व बोर्ड में वस्तुत: प्रेक्टिस करते हो;

(ग) अध्यक्ष द्वारा नाम निर्देशित किये जाने वाले, गरीबो की विधिक सहायता सम्बन्धी कार्य में रूचि रखने वाले, दो सामाजिक कार्यकर्ता जिनमे से अधिमान्त: एक समाज के कमजोर वर्ग से होगा।

(3) इस नियम के उपनियम (2) में किसी बात के होते हुए भी समिति दो से अनधिक किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को समिति के सदस्य या सदस्यों के रूप में सहयोजित करने की हकदार होगी।

(4) नामनिर्देशित सदस्यों का कार्यकाल उनकी नियुक्ति की तारीख से तीन वर्ष का होगा। तथापि, राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड को अभिलिखित किए गए कारणों से समिति को तीन वर्ष की अवधि से पूर्व विघटित करने की शक्ति होगी।

(5) अध्यक्ष समिति के सचिव या सचिवों को नियुक्त करेगा। सचिव या सचिवो को उतना पारिश्रमिक या मानदेय दिया जायेगा जितना समिति नियत करे।

(6) समिति, पात्र व्यक्तियों को राजस्व बोर्ड में लम्बित, संस्थित या संस्थित की जाने वाली विधिक कार्यवाहियों के संबंध में विधिक सहायता प्रदान करेगी।

(7) समिति स्वैच्छिक अभिदाय और दान प्राप्त करने और जैसी वह उपयुक्त समझे वैसी निधि बनाने को भी हकदार होगी।

(8) समिति का अध्यक्ष किसी भी अनुसूचित बैंक मे बैंक खाता खोलने और उसे संचालित करने के लिए सशक्त होगा।

(9) समिति का अध्यक्ष, राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड द्वारा उसके नियंत्रण में रखी गयी या स्वैच्छिक अभिदाय या दान द्वारा प्राप्त निधि मे से या समिति द्वारा बनायी गयी निधि में से विधिक सहायता प्रदान करने के लिए, व्यय करने के लिए सशक्त होगा।

7. **विधिक सहायता समिति का गठन और अवधि:**—(1) उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति पात्र व्यक्तियों को विधिक सहायता प्रदान करने के लिए जिला, उप-जिला या तहसील मुख्यालयो पर आवश्यकतानुसार एक या एक से अधिक विधिक सहायता समितियां गठित कर सकेगी। ऐसी प्रत्येक समिति उस स्थान पर कार्य करेगी जहा उसका मुख्यालय स्थित हो। श्रम, औद्योगिक तथा सेवा अधिकरणो और अन्य अधिकरणों के लिए, जहां जैसी आवश्यकता हो पृथक्-पृथक् समितियां गठित की जा सकेंगी। समिति की अधिकारिता वह होगी जो उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति द्वारा विनिर्दिष्ट की जाये।

(2) जिला मुख्यालयों पर गठित समिति में निम्नलिखित होगे :—

(क) जिला एवं सत्र न्यायाधीश, उसके अध्यक्ष के रूप मे,

(ख) अपर जिला विकास अधिकारी या उप जिला विकास अधिकारी;

(ग) जिला समाज कल्याण अधिकारी;

(घ) जिला प्रमुख;

(ङ) जिला बार एसोसियेशन का अध्यक्ष

(च) समिति के अध्यक्ष द्वारा नाम निर्देशित, जिला मुख्यालय की बार एसोसियेशन के चार से अनधिक सदस्य;

(छ) समिति के अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित दो सामाजिक कार्यकर्ता और

(ज) समिति के अध्यक्ष द्वारा सहयोजित तीन सदस्य–अनुसूचित जातियो, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं, प्रत्येक मे से एक; तथापि, ऐसी जातियों, जनजातियों या महिलाओं में से कोई सदस्य सहयोजित नही किया जायेगा यदि समिति में पहले से ही इन प्रवर्गों मे से प्रत्येक का कोई सदस्य हो।

(3) जिला मुख्यालयों पर गठित समितियो से भिन्न समस्त समितियों मे निम्नलिखित होगे—

(क) अध्यक्ष, जो सामान्यतः उप खण्ड या यथास्थिति, तहसील मुख्यालय पर पदस्थापित वरिष्ठतम न्यायिक अधिकारी होगा;

(ख) उस पंचायत समिति का खण्ड विकास अधिकारी जिसकी अधिकारिता में समिति गठित की जा रही है;

(ग) समिति के अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित, बार के दो स्थानीय सदस्य;

(घ) अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित ऐसे दो सामाजिक कार्यकर्ता जो विधिक सहायता सम्बन्धी कार्य मे रूचि रखते हों और उस स्थान पर ऐसा कार्य कर रहे हों जहां पर उक्त समिति गठित की गई है।

(4) अधिकरण के लिए गठित समिति में निम्नलिखित होगे :—

(क) संबद्ध अधिकरण का अध्यक्ष–समिति के अध्यक्ष के रूप मे;

(ख) समिति के अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित, अधिकरण मे वस्तुत: प्रेक्टिस कर रहे दो अधिवक्ता;

(ग) समिति के अध्यक्ष द्वारा नाम निर्देशित, अधिकरण मे विधिक सहायता सम्बन्धी कार्य मे रुचि रखने वाले दो सामाजिक कार्यकर्ता।

(5) इस नियम के उपनियम (2), उपनियम (3) या उपनियम (4) मे किसी बात के होते हुए भी, समिति दो से अनधिक किसी व्यक्ति या व्यक्तियो को समिति के सदस्य या सदस्यों के रूप मे सहयोजित करने की हकदार होगी।

(6) समिति के नाम निर्देशित सदस्यों की कार्य अवधि उनकी नियुक्ति की तारीख से तीन वर्ष की होगी। तथापि, उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति को, अभिलिखित किये जाने वाले कारणों से, तीन वर्ष की उक्त कालावधि की समाप्ति के पूर्व समिति को विघटित करने या उसके सदस्य को हटाने और उसे पुनर्गठित करने या तीन वर्ष की उक्त कालावधि के पूर्व उस रिक्ति के स्थान पर नई नियुक्ति करने की शक्ति होगी।

(7) न्यायिक अधिकारी या सम्बन्धित अधिकरण के अध्यक्ष का स्थानान्तरण या पदरिक्त होने के मामले मे, उसका तत्समय पदोत्तरवर्ती समिति का अध्यक्ष होगा और उसकी नियुक्ति के नये आदेश की कोई आवश्यकता नही होगी।

(8) समिति अपनी अधिकारिता में स्थिर किसी भी न्यायालय या अधिकरण में लम्बित, संस्थित या संस्थित की जाने वाली कार्यवाहियों से सम्बन्धित आवेदनो को ग्रहण करेगी। परन्तु, अधिकरणों की सम्बन्धित समितियां केवल अधिकरणों के समक्ष लम्बित, संस्थित और संस्थित की जाने वाली कार्यवाहियो के सम्बन्ध में आवेदन ग्रहण करेगी।

(9) समिति का अध्यक्ष अपने न्यायालय या, यथास्थिति, अधिकरण के मन्त्रालयिक कर्मचारियों में से एक सचिव नियुक्त कर सकेगा। उक्त सचिव को उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति द्वारा नियत दरो पर पारिश्रमिक दिया

(10) जिला मुख्यालयों पर गठित और अधिकरणों के लिए गठित समितियों को छोड़कर सभी विधिक सहायता समितियां, जिला मुख्यालयो पर गठित समिति के अधीन कार्य करेंगी ।

(11) राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड का कार्यकारी अध्यक्ष किसी न्यायिक अधिकारी को जिला मुख्यालयों पर गठित समिति का सचिव नियुक्त कर सकेगा ।

(12) उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति के सामान्य नियंत्रण के अधीन रहते हुए उप-खण्ड और तहसील मुख्यालयों की विधिक सहायता समितियों को निधि का आवंटन जिला मुख्यालयों की विधिक सहायता समिति द्वारा किया जायेगा ।

8. **जनजाति क्षेत्रों में विधिक सहायता समितियां:**—(1) आयुक्त, जनजाति क्षेत्र विकास, राजस्थान सरकार, जनजातिउपयोजना क्षेत्रों या राजस्थान मे 'माडा' क्षेत्रों की जनजाति वस्तियो जिन्हें राज्य सरकार द्वारा इस रूप मे घोषित किया गया है, और कोटा जिले की शाहबाद और किशनगंज तहसीलों, में विधिक सहायता समितियों के गठन में सहयोग और समन्वय करेगा ।

(2) आयुक्त, जनजाति क्षेत्र विकास, जनजाति क्षेत्रों और बस्तियो मे गठित विधिक सहायता समितियों के लिए निधियों की व्यवस्था देखेगा ।

(3) आयुक्त, जनजाति क्षेत्र विकास, को जनजाति क्षेत्रो और वस्तियो मे गठित विधिक सहायता समिति मे दो सदस्य नामनिर्देशित करने की शक्ति होगी । इस प्रकार नामनिर्देशित सदस्यो की कार्यावधि उनकी नियुक्ति की तारीख से तीन वर्ष की होगी । आयुक्त को किसी भी नामनिर्देशन को किसी भी समय जैसा वह ठीक समझे रद्द करने की शक्ति होगी ।

(4) जनजाति क्षेत्रों और वस्तियो मे गठित समितिया, आयुक्त जनजाति क्षेत्र विकास से विधिक सहायता के प्रयोजन के लिए पर्याप्त प्राप्त निधि के सम्बन्ध मे एक पृथक लेखा रखेगी और ऐसे धन को जनजाति क्षेत्रों, उप-क्षेत्रो और वस्तियो मे आरम्भ की गई योजनाओं के प्रयोजन के लिए और उसके अनुसार पूर्णतः उपयोग मे लाया जायेगा ।

(5) जनजाति क्षेत्रो में कार्य कर रही समितियां आयुक्त, जनजाति क्षेत्र विकास से प्राप्त निधियों के सम्बन्ध में आय और व्यय के वार्षिक लेखे प्रत्येक वित्तीय वर्ष के अन्त मे उपर्युक्त आयुक्त को प्रस्तुत करेंगी । इस प्रकार प्राप्त निधियो के सम्बन्ध मे एक उपयोग-प्रमाण-पत्र भी वार्षिक लेखों के साथ प्रस्तुत किया जायेगा ।

(6) आयुक्त, जनजाति क्षेत्र विकास, क्षेत्रों में कार्य कर रही समितियों को ऐसी निधियों के उपयोग के विषय में मार्गदर्शन करा सकेगा जो कि उसके द्वारा समितियों को उपलब्ध करायी जायें।

(7) समाज कल्याण विभाग और समाज कल्याण बोर्ड के पास संघटक योजना या विधिक सहायता योजना के अधीन अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के लाभार्थ उपलब्ध निधियां विधिक सहायता योजनाओं में उपयोग के लिए जनजाति क्षेत्रों या बस्तियों में कार्य कर रही समितियों को उपलब्ध करायी जायेंगी।

(8) निदेशक, समाज कल्याण विभाग, राजस्थान सरकार, समितियों में दो व्यक्तियों को तीन वर्ष की कालावधि के लिए नामनिर्देशित कर सकेगा और यदि जनजाति क्षेत्रों मे काम कर रही समितियों को उसके द्वारा निधियां उपलब्ध करायी गयी हों। इस प्रकार उपलब्ध करायी गयी निधियों को संघटक योजना या विधिक सहायता योजना के अनुसार पूर्णतः उपयोग मे लाया जायेगा। ऐसी निधियो के सम्बन्ध मे समिति द्वारा प्रत्येक वित्तीय वर्ष मे वार्षिक लेखा और उपयोग प्रमाण-पत्र की प्रतिलिपियां निदेशक, समाज कल्याण विभाग को प्रस्तुत की जायेगी।

9. विधि सहायता ब्यूरो, उसका गठन और कृत्य:—(1) उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति, किसी विधिक सहायता समिति द्वारा विनिर्दिष्ट या उसे निर्दिष्ट विधिक सहायता देने के लिए, विधिक सहायता ब्यूरो को गठन कर सकेगी।

(2) ब्यूरो में ऐसे दो अधिवक्ता, जो किसी विधिक सहायता समिति के सदस्य न हों, और सम्बन्धित जिले या स्थान के तीन विख्यात और जिम्मेदार नागरिक होगे। ब्यूरो का अध्यक्ष, उसके सदस्यों मे से, उच्च न्यायालय विधिक समिति के अध्यक्ष द्वारा नियुक्त किया जायेगा।

(3) ब्यूरो उसे उच्च न्यायालय, विधिक सहायता समिति या उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति की मार्फत किसी विधिक सहायता समिति द्वारा यथा विनिर्दिष्ट या निर्दिष्ट विधिक सहायता प्रदान करेगा।

10. विधिक सहायता के लिये आवेदन:—(1) पात्र व्यक्ति द्वारा विधिक सहायता मन्जूरी का प्रत्येक आवेदन, यथासाध्य सम्बन्धित समिति या न्यायालय या अधिकरण को लिखित रूप से प्रस्तुत किया जायेगा और उसमें, यथासाध्य, इन नियमों से संलग्न अनुसूची 'क' में विनिर्दिष्ट विशिष्टयां होगी तथा उसके साथ एक जिम्मेदार व्यक्ति का यह प्रमाणित करते हुए कि आवेदक इन नियमो के अधीन विधिक सहायता के लिये हकदार व्यक्ति है, प्रमाण-पत्र भी लगाया जायेगा।

स्पष्टीकरण—(I) नियम 2 के खण्ड (ख) के पाचवें परन्तुक मे जनजाति के वास्तविक निवासी या गरीब जनजातीय व्यक्ति के सम्बन्ध मे यथानिर्दिष्ट अभिव्यक्ति "जिम्मेदार व्यक्ति" से, सरपंच, मुख्य अध्यापक, विकास अधिकारी, तहसीलदार,

संसद सदस्य, राजस्थान विधान सभा का सदस्य, जिलाप्रमुख और उस पंचायत समिति का जिसमें कि ऐसा जनजातीय व्यक्ति साधारणतया निवास करता है या लाभ के लिये कार्य करता है प्रधान अभिप्रेत है; और

(II) अन्य पात्र व्यक्तियों के सम्बन्ध में, अभिव्यक्ति "जिम्मेदार व्यक्ति" से उस क्षेत्र का जिसके भीतर ऐसा पात्र व्यक्ति साधारणतया निवास करता है या लाभ के लिए कार्य करता है, खण्ड विकास अधिकारी, तहसीलदार, संसद सदस्य, राजस्थान विधान सभा सदस्य, ग्राम पंचायत का सरपंच, पंचायत समिति का प्रधान, जिला परिषद् का जिला प्रमुख, नगर निगम, नगर परिषद् या नगरपालिका का अध्यक्ष या प्रशासक या स्कूल का मुख्य अध्यापक अभिप्रेत है।

(2) विधिक सहायता चाहने वाले किसी व्यक्ति को उपनियम (1) मे निर्दिष्ट आवेदन-पत्र सम्बद्ध विधिक सहायता समिति द्वारा मुफ्त उपलब्ध कराये जायेंगे।

(3) जहा विधिक सहायता की मन्जूरी के लिये आवेदन न्यायालय या अधिकरण को दिया जाये, न्यायालय का पीठासीन अधिकारी या यथास्थिति अधिकरण, का अध्यक्ष सम्बद्ध विधिक सहायता समिति के अध्यक्ष को आवेदन अग्रेषित करेगा।

(4) जहां सम्बद्ध विधिक सहायता समिति का यह समाधान हो जाये कि आवेदक, पर्याप्त कारणो से विधिक सहायता की मन्जूरी के लिये उपनियम (1) द्वारा अपेक्षित किसी उत्तरदायी व्यक्ति का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने में असमर्थ है तो वह उक्त प्रमाण-पत्र के स्थान पर आवेदक से इस आशय का घोषणा-पत्र प्राप्त कर सकेगी कि वह विधिक सहायता प्राप्त करने के लिये पात्र व्यक्ति है। विधिक सहायता की मन्जूरी के लिये व्यक्ति की पात्रता के सम्बन्ध समिति में का निर्णय अन्तिम होगा।

11. विधिक सहायता की मन्जूरी के लिए शर्तें:—(1) सभी पात्र व्यक्तियों को इन नियमों के उपबन्धों के अध्यधीन विधिक सहायता मन्जूरी की जायेगी।

(2) विधिक सहायता वहां मन्जूर नही की जायेगी जहा विधिक सहायता चाहने वाला व्यक्ति—

(क) किन्ही ऐसे अन्य व्यक्तियो के साथ कार्यवाहियों में सयुक्ततः या सम्बन्धित हो जिनके हित उसी के जैसे हैं और ऐसे व्यक्ति का या ऐसे व्यक्तियों में से किसी का समुचित प्रतिनिधित्व कार्यवाहियों में हो रहा है,

(ख) कार्यवाहियों मे एक औपचारिक पक्षकार हो या कार्यवाहियों के परिणाम से तात्विक रूप से सम्बन्धित न हो या किसी भी सम्यक् प्रतिनिधित्व के अभाव के कारण उसके हितो पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सभावना न हो; या

(ग) किसी आर्थिक अपराध या खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम के अधीन के अपराध या भ्रष्टाचार, अस्पृश्यता, स्त्रियो और बालको के प्रति क्रूरता से सम्बन्धित किसी मामले मे अभियुक्त हो या दहेज चाहने के अपराध में अन्तर्ग्रस्त हो।

(3) समिति किसी व्यक्ति को उस स्थिति में विधिक सहायता मन्जूर नहीं भी कर सकेगी जहा अन्तर्विलित मामले की प्रकृति और सामाजिक हितों को दृष्टिगत रखते हुए यह ऐसा करना उपयुक्त समझे।

12. आवेदक की परीक्षा और आवेदन का नामंजूर किया जाना:—(1) नियम 10 के अधीन विधिक सहायता का आवेदन प्राप्त हो जाने पर, समिति अपना यह समाधान करने के पश्चात् कि आवेदन उसे सम्यक् रूप से प्रस्तुत किया गया है और उचित प्रारूप में है, यदि वह ठीक समझे तो आवेदक की परीक्षा उसके दावे के गुणागुण और उसके निवासस्थान और आय के सम्बन्ध में कर सकेगी :

(क) परन्तु आवेदक के दावे के गुणागुणों की परीक्षा, यदि आवश्यकता हो, न्यायिक अधिकारी से भिन्न समिति के सदस्यों द्वारा ही की जायेगी;

(ख) समिति का अध्यक्ष, अत्यावश्यकता की स्थिति मे, ऐसा आवेदन अनुज्ञात कर सकेगा और अनुमोदन के लिए उसे समिति के समक्ष रख सकेगा।

(2) समिति, ऐसी जांच करने के पश्चात् जिसे वह ठीक समझे आवेदन को नामंजूर कर देगी यदि उसका समाधान हो जाये कि—

(क) आवेदक ने तात्विक विशिष्टियों के सम्बन्ध में जानबूझ कर मिथ्या कथन किया है या मिथ्या सूचना प्रस्तुत की है, या

(ख) आवेदक ने सम्बन्धित कार्यवाहियों के विषय में कोई ऐसा करार कर लिया है जिसके अधीन उक्त विषय-वस्तु में किसी अन्य व्यक्ति ने हित प्राप्त कर लिया हो, या

(ग) दाण्डिक अभियोजन सम्बन्धी कार्यवाही से भिन्न किसी कार्यवाही में, कार्यवाहियों को संस्थित करने या, यथास्थिति, उनका प्रतिवाद करने का प्रथम दृष्टया कोई मामला नही है, या

(घ) आवेदन तुच्छ या तंग करने वाला है अथवा मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आवेदक को विधिक सहायता मन्जूर करना अन्यथा युक्तियुक्त नही है।

13. प्रक्रिया-यदि नियम 12 के अधीन आवेदन नामंजूर नहीं कर दिया गया है:—(1) यदि आवेदन को नियम 12 के अधीन नामंजूर नहीं किया गया है तो समिति ऐसी जाच करने के पश्चात् जैसी वह उचित समझे, विधिक सहायता के आवेदन को या तो मजूर कर सकेगी या नामंजूर कर सकेगी और ऐसा निर्णय अन्तिम होगा।

(2) जहां समिति आवेदन को मंजूर कर ले वहां सचिव अथवा अध्यक्ष द्वारा प्राधिकृत समिति का सदस्य या उक्त सचिव या सदस्य की अनुपस्थिति मे समिति का अध्यक्ष, आवेदक को, सम्बन्धित कार्यवाहियों के सम्बन्ध में विधिक सहायता के

लिए हकदार बनाने वाला एक पात्रता प्रमाण-पत्र जारी करेगा। प्रमाण पत्र मे आवेदक को विधिक सहायता की मंजूरी से सम्बन्धित सभी विशिष्टियां होंगी तथा प्रमाण-पत्र इन नियमों से संलग्न अनुसूची 'ख' मे विनिर्दिष्ट प्ररूप में दिया जायेगा।

(3) समिति, आवेदन पर विचार करते समय पक्षकारों में सुलह समझौता करवाने को प्रयास करने का भार, बार या सामाजिक कार्यकर्ताओं मे से नियुक्त सदस्यों को सौंप सकेगी।

(4) समिति, यदि उचित समझे तो मामले को विधिक सहायता ब्यूरो को निर्देशित कर सकेगी।

14. वकीलों का समनुदेशित किया जाना:—(1) नियम 13 के अधीन विधिक सहायता के लिए पात्रता प्रमाण-पत्र दिये जाने के पश्चात् समिति, आवेदक द्वारा उपदर्शित अधिमान को दृष्टि में रखते हुए मामले को यथाशीघ्र ऐसे उपयुक्त, वकील को समनुदेशित कर देगी, जो अपनी सेवाएं देने के लिए रजामन्द हो :

परन्तु किसी वकील को उसकी इच्छाओं के विरुद्ध समनुदेशित नहीं किया जायेगा।

(2) समिति उस व्यक्ति के आवेदन पर जिसको विधिक सहायता मंजूर की गई है या समनुदेशित वकील के आवेदन पर, उन कार्यवाहियों के दौरान किसी भी समय मामले से उस वकील का अलग होना अनुज्ञात कर सकेगी और उस व्यक्ति के लिए पूर्व में समनुदेशित वकील के स्थान पर उसी प्रकार कोई अन्य वकील रखा सकेगी।

(3) उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति प्रत्येक जिले के लिए ऐसे वकीलों का पैनल तैयार करेगी और रखेगी जो अपनी सेवाएं देने के लिए रजामन्द हों और विधिक सहायता के लिए पात्र व्यक्ति को किसी वकील को समनुदेशन, यथासंभव वकीलों के उक्त पैनल मे से किया जायेगा। उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति प्रत्येक जिले मे ऐसे निबन्धनों और शर्तों पर जैसी वह उचित समझे, विधिक सहायता के लिए एक पूर्णकालिक पैनल वकील नियुक्त कर सकेगी।

15. वकील की फीस:—(1) उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति और अन्य विधिक सहायता समितिया विधिक सहायता के पात्र व्यक्ति के लिए प्रथमतः किसी वकील की सेवाएं, उसे किसी फीस का भुगतान किये बिना, उपलब्ध करवाने का प्रयास करेगी।

(2) यदि किसी वकील की सेवाएं फीस भुगतान के बिना प्राप्त न की जा सकें तो संबद्ध समिति उस वकील को, जिसे अपनी सेवाएं देने के लिए प्रतिनियुक्त किया गया है, निम्नलिखित दरों पर फीस का भुगतान कर सकेगी:—

(क) तहसीलदार न्यायालय—100 रुपये प्रति मामला;

(ख) मुंसिफ एवं न्यायिक मजिस्ट्रेट और उपखण्ड अधिकारियों के न्यायालय 200 रुपये प्रति मामला;

(ग) न्यायालय, जिला मजिस्ट्रेट/कलक्टर/और जिला मजिस्ट्रेट/मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट/अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट/राजस्व अपीलीय प्राधिकरण—300 रुपये प्रति मामला;

(घ) न्यायालय, जिला एवं सेशन न्यायाधीश/अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश—400 रुपये प्रति मामला;

(ङ) उच्च न्यायालय—500 रुपये प्रति मामला।

(3) यदि सम्बद्ध विधिक सहायता समिति की यह राय हो कि किसी विशिष्ट मामले की जटिलता को देखते हुए वकील को उप-नियम (2) में विहित दर से अधिक फीस दी जानी चाहिए तो वह उक्त दरो से अधिक ऐसी फीस का भुगतान करने का आदेश कर सकेगी जिसे वह उचित समझे :

परन्तु उप खण्ड या तहसील मुख्यालय पर गठित विधिक सहायता समिति द्वारा उच्चतर फीस के भुगतानों का ऐसा कोई आदेश तब तक नहीं दिया जायेगा जब तक उसने जिला मुख्यालय पर गठित विधिक सहायता समिति से पूर्व अनुमोदन प्राप्त न कर लिया हो।

(4) समनुदेशित वकील को उसकी फीस के 50% का भुगतान अग्रिम रूप से किया जायेगा और शेष का भुगतान मामले में अन्तिम तौर पर निर्णय, आदेश या यथास्थिति, विनिश्चय होने के पश्चात् किया जायेगा।

(5) अपनी सेवाएं देने के लिए प्रतिनियुक्त वकील संबद्ध न्यायालय या अधिकरण द्वारा मामले का अन्तिम विनिश्चय हो जाने के बाद अन्तिम आदेश या निर्णय की प्रतिलिपि के साथ अपनी फीस और खर्चों का अन्तिम बिल, न्यायालय के पीठासीन अधिकारी या अधिकरण के अध्यक्ष से सम्यक् रूप से प्रमाणित करवाकर समिति के अध्यक्ष को प्रस्तुत करेगा।

(6) संबद्ध विधिक सहायता समिति का अध्यक्ष समिति को आवंटित निधि में से इन नियमो के अधीन वकील की फीस का भुगतान करने का प्राधिकारी होगा।

16. विधिक सहायता प्रमाण-पत्र के प्रभाव:—(1) नियम 13 के अधीन प्रदत्त विधिक सहायता पात्रता प्रमाण-पत्र प्राप्तकर्त्ता को विधिक सहायता का हकदार बनायेगा।

(2) जो प्राप्तकर्ता राशि का उपयोग उस प्रयोजन के लिए नहीं करता जिसके लिए वह दी गई है, वह उसे लौटाने का दायी होगा।

(3) उन सभी मामलो मे जहा विधिक सहायता धन के रूप में मंजूर की गई हो, समिति के अध्यक्ष द्वारा पात्र व्यक्ति से इस प्रभाव का एक लिखित वचनबंध

प्राप्त किया जायेगा कि वह व्यक्ति सफल हो जाने पर तथा अपने विरोधी से खर्चों को वसूल कर लेने पर विधिक सहायता के अधीन प्राप्त समस्त धन की प्रतिपूर्ति करेगा और पात्र व्यक्ति समिति की ऐसी प्रतिपूर्ति अपने विरोधी से वसूल की गई रकम की सीमा तक ही करेगा। समिति का अध्यक्ष ऐसी रकम को प्राप्त करने के लिए प्राधिकृत होगा और समिति द्वारा बनायी गई निधि मे उसे जमा करवायेगा।

(4) समिति या उसके अध्यक्ष द्वारा दान या निधियों के आवटन के रूप मे या पात्र व्यक्ति से उपर्युक्त रूप में वसूल की गई सभी रकमों को समिति द्वारा संधारित लेखे में जमा करवायेगा।

17. लेखाओं का रखा जाना:—(1) प्रत्येक समिति इन नियमों के अधीन की विधिक सहायता से सम्बन्धित आय और व्यय के सम्बन्ध में एक पृथक् लेखा रखेगी या रखवायेगी।

(2) लेखा वित्तीय वर्ष के अनुसार रखा जायेगा और प्रत्येक समिति प्रति वर्ष 30 अप्रेल तक राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड के पास वार्षिक लेखे प्रस्तुत करेगी।

(3) बोर्ड द्वारा रखे गये लेखाओं की संपरीक्षा राज्य सरकार द्वारा एतदर्थ नियुक्त चार्टर्ड लेखाकारों द्वारा की जायेगी।

(4) उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति और अन्य सभी समितियों द्वारा रखे गये लेखाओं की संपरीक्षा बोर्ड द्वारा नियुक्त संपरीक्षकों द्वारा की जायेगी।

(5) आयुक्त, जनजाति क्षेत्र विकास, जनजाति क्षेत्रो मे गठित विधिक सहायता समितियो के लेखाओं की संपरीक्षा और निरीक्षण अपने कार्यालय की आन्तरिक जांच पार्टी से करायेगा।

(6) प्रत्येक समिति प्राप्त हुई या वसूल की गई धनराशि को जमा कराने के प्रयोजन के लिए किसी अनुसूचित बैंक में एक खाता खोल सकेगी। उक्त बैंक खाते का संचालन समिति के अध्यक्ष द्वारा किया जायेगा।

18. विधिक सहायता का रद्द किया जाना:—(1) समिति स्वप्रेरणा से या उन जिम्मेदार व्यक्तियों के, जिन्होंने नियम 13 के अधीन प्रमाण-पत्र दिया है या सम्बन्धित कार्यवाहियों में विरोधी पक्षकार के आवेदन करने पर आवेदक को कम से कम पूरे सात दिनों का लिखित नोटिस देने के पश्चात् और उसे सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् उक्त व्यक्ति को दिया गया उक्त प्रमाण-पत्र रद्द कर सकेगी—

(क) यदि उक्त व्यक्ति सम्बन्धित कार्यवाहियों के दौरान तंग करने या अनुचित आचरण का दोषी पाया जाये; या

(ख) यदि यह प्रतीत हो कि पात्रता प्रमाण-पत्र की तारीख के बाद उसकी आय इतनी हो गई है कि उसे अब विधिक सहायता मिलना जारी नहीं रहना चाहिए; या

(ग) यदि उसने इन नियमों के अधीन उसको समनुदेशित किये गये वकील से भिन्न कोई वकील नियुक्त कर लिया है; या

(घ) यदि समिति का किसी अन्य पर्याप्त कारण से यह विचार हो कि उस व्यक्ति को ऐसी विधिक सहायता का जारी रखना उचित नहीं होगा।

(2) उप-नियम (1) के अधीन विधिक सहायता समिति का विनिश्चय, उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति को अपील किये जाने के अध्यधीन रहते हुए, अन्तिम होगा।

19. **बन्दियों को सुविधाएं:**—(1) अभिरक्षा में रखे गये बन्दियों और विचाराधीन व्यक्तियों को, यदि वे विधिक सहायता प्राप्त करने का आशय रखते हों तो, उन्हें इसके लिए आवेदन करने और उसे प्राप्त करने के लिए उन्हें सभी सुविधाएं दी जायेंगी।

(2) अभिरक्षा में रखे गये प्रतिनिधिविहीन विचारणाधीन बन्दी को इस तथ्य पर विचार किये बिना कि वह पात्र व्यक्ति है या नहीं, ऐसा वकील समनुदेशित किया जा सकेगा जो अपनी सेवाएं देने का इच्छुक हो।

20. **आवेदन किसे सम्बोधित किया जायेगा:** इन नियमों के प्रयोजनों के लिए समिति को प्रस्तुत किया जाने वाला प्रत्येक आवेदन या अन्य संसूचना समिति के अध्यक्ष या सचिव को सम्बोधित की जायेगी।

21. **विधिक:**—(1) जहां किसी मामले में विधिक सहायता समिति को यह प्रतीत हो कि किसी ऐसे व्यक्ति को जो पात्र नहीं है, उसकी विशेष परिस्थितियों को देखते हुए विधिक सहायता मंजूर की जानी चाहिए तो, समिति उस व्यक्ति को अपने विवेकानुसार विधिक सहायता मंजूर कर सकेगी।

(2) जहां विधिक सहायता समिति या उसके अध्यक्ष को यह प्रतीत हो कि इन नियमों में किसी विषय के संबंध मे कोई उपबंध नहीं किया गया है या अपर्याप्त उपबंध किया गया है और उसके परिणामस्वरूप किसी मामले में इन नियमों को या उनके किसी उपबन्ध को कार्यान्वित करने में कोई कठिनाई या सन्देह उत्पन्न होता है, तो समिति या, यथास्थिति, अध्यक्ष, उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति को निर्देश करेगा।

(3) किसी जनजाति क्षेत्र में गठित विधिक सहायता समिति का अध्यक्ष, विधिक सहायता संबंधी मामले में उत्पन्न किसी कठिनाई या संदेह के विषय में आयुक्त, जनजाति क्षेत्र विकास को निर्देश कर सकेगा।

(4) उच्च न्यायालय विधिक सहायता समिति या, यथास्थिति, आयुक्त, जनजाति क्षेत्र विकास ऐसे किसी निर्देश के प्राप्त होने पर उस कार्यवाही के सम्बन्ध मे, उसके तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अनुदेश और निदेश जारी करेगा और विधिक सहायता समिति उक्त निदेशों के अनुसार कार्य करेगी।

(5) राजस्थान विधिक सहायता बोर्ड, सलाहकार बोर्ड के सामान्य मार्गदर्शन में कार्य करेगा तथा सलाहकार बोर्ड द्वारा समय-समय पर जारी किये गये अनुदेशों का पालन करेगा।

(6) कार्यकारी अध्यक्ष सलाहकार बोर्ड से समय समय पर प्राप्त अनुदेशों और मार्गदर्शन के अनुसार पैरा विधिक क्लिनिकों का गठन कर सकेगा और उक्त क्लिनिको को निधियां प्रदान कर सकेगा।

22. **निरसन और व्यावृत्तियां:**—राजस्थान विधिक सहायता नियम, 1981 और गरीब जनजातियों को मुफ्त विधिक सहायता प्रदान करने के नियमों को, एतद्द्वारा, विखण्डित किया जाता है :

परन्तु उक्त नियमो का विखण्डन हो जाने पर भी उनके अधीन किया गया कोई कार्य या की गई कोई कार्रवाई इन नियमों के अधीन किया गया या की गई समझी जायेगी।

अनुसूची 'क'

[देखिए नियम 10 (1)]

विधिक सहायता की मंजूरी के आवेदन में विनिर्दिष्ट की जाने वाली विशिष्टियां

1. आवेदक का नाम, विवरण और पता
2. आवेदक के पिता/पति का नाम
3. आवेदक का व्यवसाय
4. निवास का स्थान और उसकी अवधि
5. आवेदक की वार्षिक आय
6. आवेदक की स्थावर सम्पत्ति का ब्यौरा
7. न्यायालय/अधिकरण/अन्य प्राधिकरण का नाम, जिसमे मामला संस्थित किया जाना है या लम्बित है
8. विरोधकर्ता का नाम और पता
9. ऐसे दस्तावेजों, जिन पर अपने मामले के समर्थन मे आवेदक का निर्भर रहने का प्रस्ताव है, की प्रतिलिपियों सहित आवेदक के मामले का संक्षिप्त कथन।
10. वकील, जिससे सम्पर्क किया गया, यदि कोई हो, का नाम और उस वकील का नाम जिसकी सेवाएं आवेदक प्राप्त करना चाहता है।
11. क्या उसी विषयवस्तु के सम्बन्ध में कोई कार्यवाही किसी न्यायालय/अधिकरण/अन्य प्राधिकरण मे संस्थित की गई है, और यदि हां, तो क्या परिणाम रहा ?
12. क्या पहले कभी किसी विधिक सहायता के लिए आवेदन किया गया, उसे प्राप्त किया गया या नामंजूर किया गया ? यदि हा, तो उन कार्यवाहियों और उनमे प्राप्त विधिक सहायता के विवरण दें।

स्थान

तारीख

आवेदक के हस्ताक्षर

सत्यापन

अनुसूची 'ख'

[देखिए नियम 13 (2)]

विधिक सहायता समिति..

तारीख......................................

विधिक सहायता का प्रमाण-पत्र

आवेदक श्री......................................निवासी..................................

उन कार्यवाहियों में, जिनका विवरण नीचे दिया गया है, विधिक सहायता का हकदार है :—

1. न्यायालय/अधिकरण/अन्य प्राधिकरण का नाम
2. कार्यवाहियों की संख्या और विवरण
3. विरोधकर्ता का नाम और पता
4. अन्य सुसंगत विशिष्टियां

स्थान :

तारीख :

अध्यक्ष/सचिव,
विधिक सहायता समिति

परिशिष्ट–तीन

विश्व के अन्य राष्ट्रों में विधिक सहायता की प्रणालियां

इंगलैंड

वर्तमान मे इंगलैंड में प्रचलित विधिक सहायता प्रणाली, लीगल एड एण्ड एडवाइस एक्ट, 1949 पर आधारित है। प्रत्येक न्यायालय में उन वकीलों की सुचि रखी जाती है, जो अपनी स्वेच्छा से निःशुल्क रूप में सेवाएं देना चाहते हैं। प्रार्थी को उस सुचि मे से किसी वकील को अपने वादों के लिए नियुक्त करना होता है। राज्य के कोष में से विधिक सहायता सेवा के लिए धन दिया जाता है और उसे विधि समिति नियंत्रित करती है। एक औसत वकील को उस कोष में से मिलने वाला धन वकील को काफी आकर्षित करता है, इसलिए करीब-करीब सभी वकील विधिक सहायता कार्यक्रम मे भाग लेते हैं। साधारण मुकदमों में मिलने वाले धन से नब्बे प्रतिशत राशि इस कार्य हेतु मिल जाती है। विशेष अधिकरणों में चलने वाली कार्यवाहियों में साधारणतया ऐसी राशि प्राप्त नहीं होती। जो गरीब इन कार्यक्रमों में सम्मिलित वकील से निःशुल्क सलाह लेना चाहता है उसे निःसन्देह सलाह प्राप्त होती है। परन्तु कुछ मामलो मे गरीब को सहायता देने से मना कर दिया जाता है जैसे विवाह भग, या अपमान या प्रतिष्ठा की हानि के लिए क्षतिपूर्ति के दावे। सबसे पहले एक गरीब व्यक्ति को अपने आय के श्रोत विधिक सहायता कार्यालयो मे बताने होते हैं और विधिक सहायता समिति द्वारा उसे इस योग्य मान लिया जाने पर किसी भी वकील द्वारा उसे तत्काल अपना मुवक्किल स्वीकार कर लिया जाता है। विधिक सहायता समिति द्वारा उसे तब तक गरीब माना जाता रहेगा जब तक कि सामाजिक सुरक्षा मंत्रालय उसके विपरीत रिपोर्ट न दे दे। ब्रिटिश पद्धति भी आलोचना से मुक्त नही है। जो वादी मुकदमे का कुछ खर्चा दे सकते हैं उन्हें अपने सामर्थ्य के अनुसार कुछ अंशदान देने की आज्ञा दी जाती है। विधिक सहायता समिति के ऐसे निर्णयों की उस समय अधिक आलोचना होती है जब मध्यम श्रेणी के लोगों को मिलने वाली सहायता में भेदभाव किया जाता है। एक रिपोर्ट के अनुसार ब्रिटिश न्यायालयो मे चलने वाले वादो में से आधे, विधिक सहायता से ही चल रहे हैं।[1]

संयुक्त राज्य अमेरिका

अमेरिका मे, क्रिमिनल जस्टिस एक्ट 1964, संघीय जांच न्यायालयों पर लागू होता है। इस अधिनियम के अनुसार न्यायिक कार्यवाही के हर स्तर पर

---

1. स्टेन फोर्ड लॉ रिव्यू—लीगल एड : माडर्न थीमस् एण्ड वेरियेशन्स—लेखक मोरो केपेलेटि, वाल्यूम 4, 1972 पृष्ठ 376

वित्तीय रूप से असमर्थ व्यक्ति के लिए वकील की नियुक्ति की जा सकती है। विधिक सहायता एजेंसी या बार एसोसिएशन द्वारा तैयार सूचियों में से वकील की नियुक्ति की जाती है। इन वकीलों को अपनी सेवाओं के बदले में उतना ही धन मिलता है जितना कि सरकारी वकील को मिलता है। जिन छोटे या बड़े मुकदमों में काफी पेचीदगियां होती हैं, उन्हें राज्य के विधिक सहायता वकील लेते हैं। अपराध के मामले में निजी वकील को विधिक सहायता के रूप मे दस डालर प्रति घंटा न्यायालय के बाहर किए गए कार्य पर, तथा पन्द्रह डालर न्यायालय के भीतर किए गए कार्यों पर मिलता है। परन्तु हर स्थिति में छोटे अपराध के मामलों में कुल फीस तीन सौ डालर तथा बड़े अपराध के मामले में कुल फीस पाच सौ डालर से अधिक नहीं मिल सकती। अमेरिकन मापदंड से ऐसी फीस कम स्तर की मानी जाती है। अतः कई बार यह शिकायतें सुनने को मिलती हैं कि नए तथा अनुभवहीन वकील की नियुक्ति गरीब अपराधियों के लिए की जाती है।

सिविल मामलों मे इकोनॉमिक ऑपरच्यूनिटी एक्ट, 1964 के अन्तर्गत राष्ट्रीय विधिक सेवा कार्यक्रम के लिए धन प्रदान किया जाता है। पूरे संयुक्त राज्य अमेरिका में, "पडौस के विधिक कार्यालय" (Neighbourhood Law Offices) स्थापित किए गए हैं, जहां वेतनभोगी वकील विधिक सलाह एवं सहायता देते हैं। अतः विधिक सहायता के लिए मुकदमों का भार ऐसे वेतनभोगी वकीलों पर बढ़ता जा रहा है। दूसरे शब्दों में निजी वकीलों की सेवाओं का लाभ, सिविल मामलों में विधिक सहायता हेतु बहुत कम मिलता है।

फ्रांस

फ्रांस में विधिक सहायता चाहने वाले लोगों के लिए वकील नियुक्त करने का काम बार एसोसिएशन का है, जो इसे एक अनावश्यक भार मानकर ऐसे वकीलों की नियुक्ति करता है जो नए या प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले होते हैं। यह सहायता मुकदमों के लिए दी जाती है, जबकि विधिक सलाह प्रत्येक वकील अपनी इच्छा होने पर निःशुल्क रूप मे देता है। जिन अधिकरणों में वकील का उपस्थित होना आवश्यक नहीं है. वहां विधिक सहायता नही दी जाती। फ्रांस में प्रार्थी को सर्वप्रथम अपने शहर के मेयर या सम्बन्धित मंत्री को विधिक सहायता के लिए प्रार्थना पत्र देना पड़ता है, मेयर स्वयं उसकी जांच नहीं करता और इसी कारण से बड़ी संख्या में ऐसे व्यक्ति ही इस व्यवस्था का लाभ उठाते हैं जो गरीब नहीं हैं। सिविल मामले में गरीब को भी केवल तभी सहायता दी जाती है जबकि वह यह सिद्ध करदे कि उसका वाद ठोस आधार पर सत्य है। उसे अपने दावे के प्रबल रूप से जीतने की संभावना सिद्ध करनी होती है। उसके बाद में, उसका प्रार्थना पत्र लीगल एड ब्यूरो को भेजा जाता है जो दूसरे पक्ष को भी सुनकर के

दावे के जीतने की प्रबल संभावना और उसकी गरीबी को देखकर ही विधिक सहायता तय करते हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार, इन सब बाधाओं के कारण फ्रांस में केवल छः प्रतिशत विवादो मे ही विधिक सहायता का लाभ गरीब लोगों ने उठाया है। फ्रांस में इस प्रक्रिया को एक नया रूप देने की काफी मांग उठाई गई है।

इटली

इटली में प्रत्येक न्यायालय के लिए अलग से एक विधिक सहायता कमीशन बनाया जाता है। यह कमीशन कोर्ट का अंग नहीं होता है। वादी के प्रार्थना पर निर्णय करते समय प्रतिवादी को भी बुलाया जाता है, और दोनों में समझौता कराने का प्रयत्न कराया जाता है। अगर प्रतिवादी समझौता करने से मना कर देता है तो कमीशन द्वारा, वादी की कमजोर आर्थिक स्थिति के सिद्ध होने पर उसके लिए वकील नियुक्त किया जाता है। 1971 के पहले वादी के वकील का खर्चा प्रतिवादी से लिया जाना था, परन्तु अब नए संशोधित कानून के अनुसार निजी वकील इस कार्यक्रम में भाग लेकर गरीब की विधिक सहायता कर सकते हैं तथा ऐसे वकील को राज्य द्वारा सामान्य फीस का भुगतान किया जाता है। अब वादी को अपना स्वयं का वकील नियुक्त करने का अधिकार दे दिया गया है। कमीशन केवल उन्हीं मामलों मे वकील नियुक्त करने का अधिकार स्वीकार करता है जहा कि वादी का दावा पूर्ण रूप से आधारहीन हो। इटली मे ऐसी कोई व्यवस्था नही है कि अगर कोई गरीब दावा करना चाहे तो उसे मुफ्त में कानूनी सलाह वकील द्वारा दी जा सके। जो व्यक्ति आयकर देते हैं वे विधिक सहायता के हकदार नहीं हैं।

जर्मनी

पश्चिम जर्मनी में विधिक सहायता के लिए वकील को नियुक्त करने का कार्य सम्बन्धित न्यायाधीशों पर छोड़ दिया गया है। जो बहुत छोटी राशि के दावे होते हैं उनमे विधिक सहायता हेतु बहुत बिरले मामलों में वकील नियुक्त किया जाता है और अधिकतर नए वकीलो को ही विधिक मामलों मे नियुक्त किया जाता है। कुछ शहरो को छोड़कर विधिक सलाह देने का कार्य, निजी व्यक्ति नही करते हैं। जर्मनी मे सबसे पहले गरीब आदमी को न्यायालय मे यह सिद्ध करना पड़ता है कि वह गरीब है तथा विधिक सहायता पाने का अधिकारी है। उसे यह भी सिद्ध करना पड़ता है कि उसके जीतने की प्रबल संभावना है। विधिक सहायता दे दिए जाने के पश्चात् भी अगर दावे के दौरान न्यायाधीश इस निर्णय पर पहुंचता है कि वह कानूनी सहायता प्राप्त करने का पात्र नहीं है तो दावे के बीच मे ही उसकी सहायता बन्द कर दी जाती है। एक रिपोर्ट के अनुसार पश्चिम जर्मनी मे कुल सिविल मामलों के छठे हिस्से तक विधिक सहायता साधारणतः दी गई है।

परिशिष्ट—चार

विधी मंत्री श्री अशोक सेन द्वारा न्यायिक सुधार

उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों में लम्बित प्रकरणों की संख्या को कम करने के लिए विगत वर्षों मे निम्नलिखित कदम उठाये गये :—[1]

1. उच्च न्यायालय मे द्वितीय अपील में एकल पीठ के निर्णय के विरुद्ध लेटर्स पेटेन्ट अपील को समाप्त करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता मे 1976 में संशोधन किया गया (धारा 100 अ द्वारा)

2. विधि, आयोग की सिफारिशों के आधार पर दंड प्रक्रिया संहिता को 1973 में अधिनियमित किया गया।

3. उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीशों की संख्या) अधिनियम, 1956 में संशोधन कर 31-12-77 से मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशो की संख्या 13 से 17 बढ़ाई गई।

4. उच्च न्यायालयो के न्यायाधीशो की स्वीकृत संख्या मार्च, 1977 में 351 से बढ़ाकर जनवरी 1985 को 424 की गई।

5. उच्चतय न्यायालय नियमों में संशोधन कर रजिस्ट्रार एवं चेम्बर्स में न्यायाधीशो मे अधिक शक्तियां निहित की गई ताकि न्यायालय का समय छोटे विविध प्रकरणों मे बरबाद न हो।

6. उच्चतम न्यायालय ने भी निम्नलिखित कदम उठाये हैं :—

(क) कुछ मामलो को प्राथमिकता दी जाती है।

(ख) विविध मामले प्रतिदिन नियत किये जाते हैं।

(ग) समान प्रश्नों वाली रिट याचिकाए 50 से 100 की संख्या में सामूहिक रूप में सुनने के लिए सूचिबद्ध की जाती हैं।

(घ) अन्य मामलों, जिनमे समान प्रश्न अन्तर्वलित हो, को भी समय-समय पर परिलक्षित कर एक साथ रखा जाता है और उनको सामूहिक रूप मे शीघ्र निर्णित करने की कोशिश की जाती है।

---

1. लोकसभा तारांकित प्रश्न क्रमाक 40 (दिनांक 22-1-85 के लिए) के भाग (ब): का उतर लम्बित प्रकरणों की संख्या को कम करने हेतु समय-समय पर उठाये गये कदम।

(छ) उच्चतम न्यायालय नियम को 1966 में पुनरीक्षित किया गया, जिसमें उसके अपने स्वयं के पर्यवेक्षण में अभिलेखों को छापने का प्रावधान है। चूंकि इसमें भी समय लग रहा था इसलिए न्यायालय ने पिछले कुछ समय से जहा कहीं सम्भव हो अभिलेखों को निर्मित किये बिना पक्षकारों द्वारा प्रति शपथ-पत्र एव उत्तर के शपथ-पत्र प्रस्तुत करने के पश्चात् अपील करने की विशेष इजाजत दी व पेपर-बुक पर ही सुनवाई करना शुरू कर दिया है।

उपर्युक्त के अलावा कुछ उच्च न्यायालयों ने प्रकरणों को अच्छे ढंग से निपटाने के लिए निम्नलिखित कदम उठाये है :—

(क) अनेक उच्च न्यायालयों द्वारा प्रकरण जिनमें समान प्रश्न अन्तर्वलित हों को एक वर्ग का रूप दिया जाता है।

(ख) प्रकरण निकट की वापसी तारीख देकर सुने जाते हैं।

(ग) अभिलेखों को छपवाने से अभिमुक्ति दी जाती है।

(घ) कुछ अधिनियमों के अन्तर्गत मामलों को प्राथमिकता दी जाती है।

8. सरकार ने राज्यों के मुख्य मंत्रियों एवं उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों को पत्र लिखे हैं, जिनमें पांच वर्षों से अधिक पुराने सिविल प्रकरण हैं और संविधान के अनुच्छेद 224 के अन्तर्गत अवकाशकालीन न्यायाधीशों की नियुक्ति करने पर विचार करने को कहा गया है।

9. विधि आयोग की 79वी रिपोर्ट में की गई सिफारिशों का परीक्षण किया गया है। चूंकि अधिकांश सिफारिशों पर अमल राज्य सरकारों एवं उच्च न्यायालयों को करना है, ये, केन्द्रीय सरकार के दृष्टिकोण के साथ उन्हें भेजी गई हैं और उनसे आवश्यक कार्यवाही करने का निवेदन किया गया है।

10. सरकार ने देश में न्यायिक प्रशासन पद्धति का पुनर्विलोकन करने के लिए विधि आयोग (10वां विधि आयोग) की नियुक्ति की है। विधि आयोग को निर्देश की शर्तों में निम्नलिखित शर्तें सम्मिलित हैं :—

(क) यह सुनिश्चित करने के दृष्टिकोण से कि न्यायिक प्रशासन पद्धति समय की उचित मांगों के प्रति और विशेष रूप से निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अनुक्रियक है, इस पर पुनर्विलोकन किया जाय :—

(i) निर्णय पूर्ण रूप से उचित हो, के मूल सिद्धान्त को प्रभावित नहीं करते हुए विलम्ब को समाप्त कर, लम्बित मामलों को शीघ्र निर्णीत कर एवं व्यय को कम करके सस्ता और शीघ्र न्याय दिलाने के उद्देश्य को प्राप्त किया जाय।

(ii) प्रक्रिया का सरलीकरण किया जाय एवं विलम्ब की युक्तियों को समाप्त किया जाय ताकि यह स्वयं मे उद्देश्य नही बन जावे, वरन् न्याय प्राप्ति का साधन बने :

(iii) न्याय प्रशासन से सम्बन्धित सभी के स्तर को ऊपर उठाया जाये।

(ख) केन्द्रीय अधिनियमो पर पुनर्विचार किया जावे, उन्हे सरल बनाया जावे और उनमे व्याप्त असंगतियों, अस्पष्टता एव पक्षपातता को दूर किया जावे।

(ग) सरकार को उपायों की सिफारिश की जावे जिनके द्वारा वह उन कानूनो, अधिनियमो और उनके भागों को जो अप्रचलित और अनुपयोगी हो गये हैं, को निरस्त कर कानूनी पुस्तकों को अद्यतन बनावे।

11. 'सरकार ने उच्च न्यायालयो मे बकाया मुकदमों की समस्या पर विचार करने और उपाय सुझाने के लिए 3 मुख्य न्यायाधीशों की समिति बनाई है।

परिशिष्ट—पांच

99वीं रिपोर्ट विधि आयोग उच्चतर न्यायालयों में लिखित बहस

सिफारिशों का संक्षेप

हम रिपोर्ट में की गई सिफारिशों को संक्षेप में नीचे दे रहे हैं :—

(1) मौखिक तर्क के लिए कठोर या गणित के अनुसार समय की सीमा के लिए सिफारिश नही की जा रही है। मौखिक तर्क के लिए न्यूनतम समय अवधारित करने का कोई पक्का नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता, किन्तु न्यायालय के लिए दोनो पक्षों की ओर से हाजिर होने वाले काउन्सिल से मौखिक तर्क में लगने वाले उचित रूप से अपेक्षित समय के अनुमान के बारे मे मांग करना और उनसे उतना ही समय लेने के लिए अनुरोध करना सम्भव होगा। ऐसा ही रास्ता अपनाने के साथ-साथ मामले का समुचित—फाइल किए जाने से संबंधित नियमों के उपबन्धो का पालन करने के लिए न्यायालय द्वारा जोर दिए जाने से न्याय की कोई गंभीर हानि हुए बिना मामलों के निपटारे की सख्या में सुधार करने में बहुत सफलता मिलेगी। इस तरह यह विषय, न्यायाधीश की सद्भावना पर छोड़ दिया जा सकता है जो काउन्सिल से परामर्श करके मामले की प्रकृति और तर्क किए जाने वाले विवादों को ध्यान मे रखते हुए पहले ही समय निश्चित कर सकता है। समय निश्चित करने में न्यायाधीश इस तथ्य को भी ध्यान मे रखा सकता है कि जब लिखित तर्क भली भांति तैयार किए गए हों तब अधिकांश मामलों में मौखिक तर्क में बहुत समय न लिया जावे। यह सुझाव देना कि इस समय की सीमा साधारणतया आधा घंटा हो, अनुचित होगा, किन्तु मुख्य उद्देश्य मौखिक तर्क को उचित सीमा के अन्दर रखने का होना चाहिए। विधि के किसी प्रारूपिक संशोधन की परिकल्पना नही की जा रही है किन्तु यह सिफारिश की जा रही है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयो मे ऐसी ही पद्धति बनाई जानी चाहिये और उसका अनुसरण किया जाना चाहिए।[1]

(2) विधि-लिपिक (ला कल्र्क) उपलब्ध कराने की पद्धति का पूरी तरह परीक्षण किया जाना चाहिए। इसका प्रारम्भ उच्चतम न्यायालय के उन न्यायाधीशों को विधि-लिपिक उपलब्ध करा कर किया जा सकता है जो उनको रखना

1. पिछला पैरा 2.11

चाहें। विधि-लिपिक न्यायाधीशों के साथ लगाए जाने चाहिए और उन्हें केवल न्यायालय के साथ नहीं लगाना चाहिए।

उच्चतम न्यायालयों को ऐसे विषयों, जैसे कि विधि लिपिकों की क्या अर्हताएं हों? उनका उचित पारिश्रमिक कितना हो? वे कितने समय के लिए नियुक्त किए जाएं? और प्रशासनिक प्रकृति के अन्य संबंधित विषय की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी सौंप देनी चाहिए।[1]

विधि लिपिकों की संस्था जटिल मामलों में उच्च न्यायालयो के लिए भी उपयोगी हो सकती है।

(3) कम से कम वर्तमान समय के लिए सभी मामलों में लिखित तर्क फाइल किए जाने की अनिवार्य अपेक्षा को लागू करने की सिफारिश नहीं की जा रही है। किन्तु यदि "मामले का कथन" फाइल किए जाने की युक्ति को समुचित रूप से क्रियान्वित किया जाए तो समय की दृष्टि से मौखिक तर्क में कमी करने या मौखिक तर्क को समुचित दिशा प्रदान करने और प्रत्यक्ष सुसंगति के मुख्य विवादकों पर ध्यान आकृष्ट करने मे बहुत सफलता मिलनी चाहिए जिसमें स्वतः समय बच जाएगा। अतः यह सिफारिश है कि अपील के कथन को काउन्सिल द्वारा समुचित रूप से तैयार किए जाने और न्यायालय में फाइल किए जाने पर जोर दिया जाना चाहिए। यदि काउन्सिल आवश्यक समझे तो उन्हें लिखित पक्षसार (ब्रीफ) फाइल करने की अनुमति दी जा सकती है और यह स्वाभाविक बात है कि लिखित तर्क मामले/अपील के कथन से अधिक विस्तृत होगे।

लिखित पक्षसार फाइल किए जाने का समय अवश्य ही उतना ही लम्बा होना चाहिए जितना उचित हो अन्यथा न्यायाधीशों को पक्षसार पढ़ने में बहुत समय लग जायेगा।[2]

यह सिफारिश निम्नलिखित न्यायालयों में लागू किए जाने के लिए है :—

(क) उच्चतम न्यायालय; और

(ख) उच्च न्यायालयों में ऐसी प्रथम अपीलों/मृत्युदण्ड के मामलो और अन्य जटिल मामलों के बारे में जो उच्च न्यायालयो के समक्ष प्रस्तुत किए जाएं।

(4) संवैधानिक प्रश्न वाले मामलों के बारे मे ऐसे पक्षसार, जिनमें लिखित रूप से तथ्य संबधी सामग्री हो, फाइल करने की पद्धति को बढ़ावा देना चाहिए। अमरीका मे जिस पक्षसार (ब्रीफ) को "ब्रैन्डीस ब्रीफ" कहते हैं वह संवैधानिक न्याय

1. पिछला पैरा 2.12
2. पिछला पैरा 3.14

निर्णयन के लिए बहुत उपयोगी है । ऐसे पक्षसार में संवैधानिक न्याय निर्णयन के लिए सुसंगत तथ्य होने चाहिएं (पक्षकारों की ओर से फाइल किए गए शपथ-पत्रों के अतिरिक्त) और जब कभी समुचित हो तब पक्षसार में ऐसे उद्धरण भी होने चाहिएं जो समितियों या आयोगों द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों से लिए गए हों । यह पद्धति उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में भी अपनायी जा सकती है ।[1]

(5) संवैधानिक मामलों में, जब कभी संभव हो, तथ्यों का ऐसा कथन फाइल किया जाना चाहिए जिनके बारे में दोनों पक्षकारों की सहमति हो, जिससे कि सुनवाई के समय में कमी की जा सके । यह पद्धति उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में भी अपनाई जा सकती है ।[2]

(6) उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों का आपस में सम्मेलन करने के लिए, जहां तक संभव हो, अलग से एक दिन निश्चित कर दिया जाए । उच्च न्यायालयों में पूर्ण न्यायपीठ द्वारा सुनवाई किए जाने वाले मामलो के बारे में यह पद्धति उच्च न्यायालयों में भी अपनाई जा सकती है ।[3]

(7) उच्चतम न्यायालय में किसी मामले या अपील के (जिसके अन्तर्गत ऐसा मामला/अपील भी है जिसमें संवैधानिक विषयों से संबंधित प्रश्न उठाए गए हों) ग्रहण किए जाने के प्रक्रम (स्टेज) पर न्यायालय मौखिक सुनवाई करना छोड़ सकता है (अर्थात नही कर सकता है) किन्तु तब जब कि वह ऐसी सुनवाई को विशेष मामलों मे न्याय के हित में आवश्यक नही समझता हो । इसके लिए वर्तमान प्रणाली के स्थान पर एक ऐसा उचित तंत्र (मशीनरी) स्थापित करना अपेक्षित होगा (जैसे ग्रहण-समिति (एडमिशन कमेटी) या समितियां) जो यह विनिश्चय करे कि क्या उस मामले/अपील को मौखिक तर्क की सुनवाई किए बिना ग्रहण या नामंजूर किया जाना चाहिए ?[4]

विधि लिपिक (लॉ क्लर्क)

2–12 :—उपर्युक्त सिफारिश पर भली भांति तैयार किए गए लिखित तर्क प्रस्तुत किए जाने के विस्तार के साथ जुड़ा हुआ विधि लिपिकों की नियुक्ति करने का प्रश्न भी है जिसके प्रति हम ऊपर निर्देश कर चुके हैं । अमरीका मे सम्पूर्ण रूप में यह पद्धति सफल मानी गई है ।

1. पिछला पैरा 3.15
2. पिछला पैरा 3.18
3. पिछला पैरा 3.19
4. पिछला पैरा 4.6

प्रत्येक संस्था के आलोचक होते हैं और अमरीका मे भी यह विशिष्ट संस्था आलोचना से बच नही पाई है। फिर भी इस विषय पर जो कुछ लिखी गई सामग्री विद्यमान है उसके संबंध में हमारी यह धारणा बनी है कि इस संस्था ने अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है। हमारा यह विचार है कि भारत में इस पद्धति का पूरा और उचित परीक्षण नही किया गया है। इसका ऐसा निरीक्षण किया जाना चाहिए। इसकी शुरूआत उच्चतम न्यायालय के उन न्यायाधीशों के लिए विधि लिपिको की व्यवस्था करके की जा सकती है जो ऐसे विधि-लिपिकों को रखना चाहें। विधि-लिपिक विशिष्ट न्यायाधीशो के साथ लगाए जाने चाहिये और केवल न्यायालय के साथ नही लगाए जाने चाहिए। प्रत्येक न्यायाधीश के काम करने का अपना ढंग होता है, प्रति-सामग्री ढूंढने का अपना तरीका होता है और पूर्वतर मामलों को पढ़ने की रीति के लिए अपनी पसन्द होती है। इन सभी तत्वो की, जो आत्मपरक होते हैं, उपेक्षा न्यायाधीशो को अनुसंधान की सहायता उपलब्ध कराने मे नही होनी चाहिए। हम विस्तार मे यह बताने की आवश्यकता नही समझते हैं कि आदर्श विधि-लिपिकों की अर्हताएं क्या होनी चाहिएं ? उनका उचित पारिश्रमिक क्या होना चाहिए ? और उन्हें कितने समय के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए ? आदि आदि। ये सब बातें और प्रशासनिक प्रकृति की अन्य सम्बन्धित बातें उच्चतम न्यायालय द्वारा निश्चित किए जाने के लिए छोड़ देना अच्छा होगा।[1]

यह कहने की आवश्यकता नही है कि जटिल मामलो मे विधि लिपिको की संख्या उच्च न्यायालयो के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

लिखित पक्षसार के बारे में निष्कर्ष :

3·13:—हमने उक्त विषय के सभी पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि चूंकि यह संभावना विद्यमान है कि ऐसे लिखित पक्षसार की जिसमे विस्तार से तर्क किए गए हों, अपेक्षा करने से उसका प्रयोजन ही निष्फल हो जाएगा क्योकि ऐसा करने मे अनेक कठिनाइयाँ और हानियां हैं इसलिए अभी वह प्रक्रम (स्टेज) नही आया है कि ऐसे पक्षसार प्रस्तुत करने पर जोर दिया जाए। हमें यह बात ध्यान मे अवश्य रखनी चाहिए कि इस विचार का कड़ा विरोध रहा है जैसा कि श्री एस. एम. सीरवई द्वारा व्यक्त किये गये विचारो से यह प्रकट होगा कि लिखित तर्क की पद्धति प्रारम्भ करने के लिए आवश्यक अपेक्षा करने से कुछ व्यावहारिक कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं। पहली बात तो यह है कि भले ही अपीलार्थी के तर्कों का नोट तैयार करना आसान हो लेकिन मौखिक सुनवाई के दौरान तर्क परिवर्तन, विशेपित या विस्तृत हो जाते हैं चाहे वे कुछ मामलों में न्यायपीठ (बैंच) द्वारा पूछे गए प्रश्नो के परिणामस्वरूप या

---

1. पिछला पैरा 2.9 पिछले पैरे 2.8 मे किए गए सुझाव से तुलना की जाय।

दूसरे पक्ष की ओर से की गई आपत्तियों के परिणामस्वरूप ऐसे हो जाएं।[1] दूसरी बात यह है कि श्री सीरवई के मतानुसार न्यायाधीशों को ऐसे नोट, जैसे ही वे दिए जाते हैं, पढ़ने के लिए साधारणतया समय नहीं रहता जिससे कि लिखित तर्क को पहले प्रस्तुत किए जाने का उद्देश्य निष्फल हो जाता है।[2] तीसरी बात जैसा कि श्री सीरवई ने जोर देकर कहा है कि लिखित तर्क का पूर्ण या पर्याप्त रूप से अवलम्बन लिए जाने में (जैसा कि अमरीका में है) यह परिकल्पना की जाती है कि न्यायाधीशों से सुनवाई करने के लिए एक पखवारे तक एक सप्ताह में केवल चार दिन न्यायालय मे बैठना चाहिए (जैसा कि अमरीका में है जहां आगामी दूसरे पखवारे में न्यायाधीश न्यायालय में बैठते ही नही)।[3] चौथी बात, जैसे कि श्री सीरवई ने बताया है, यह है कि अमरीका में लिखित पक्षसार बड़े-बड़े विधि निगमों द्वारा फाइल किए जाते हैं जिनके पास अनुसंधान की अपार सुविधाएं हैं जिनके अन्तर्गत कम्प्यूटरो द्वारा तैयार की गई सामग्री की सुविधाएं भी उन्हें उपलब्ध हैं। भारत में एसी सुविधाएं उपलब्ध नही हो सकती।[4]

1. विधि आयोग संलग्न सं. 21/20
2. विधि आयोग की फाईल क्र.सं. 132
3. पिछला पैरा 2.7
4. पिछला पैरा 2.9

परिशिष्ट-छः

गुजरात राज्य विधिक सहायता एवं सलाहकार मण्डल द्वारा संचालित "लोक-अदालत" योजना का प्रारूप

(1) उद्देश्य

इस संस्था का उद्देश्य मेल-मिलाप कराने वाले व्यक्तियों के दल की सहायता से जो कि विशेष रूप से इस कार्य में दक्ष होते हैं, आपसी विश्वास, सर्वमान्य चेतना तथा मानवीय सद् प्रयास के सिद्धान्त को आधार मानते हुए पक्षकारों के मध्य कानूनी विवादों को हल कराना है।

इसका लक्ष्य उन विवादों का फैसला करना है जो कि (i) अभी तक न्यायालय तक नहीं पहुंचे हों (वाद पूर्व मामले) एवं (ii) जो न्यायालय मे पहुंच चुके हो परन्तु निर्णीत नहीं किये जा सके हो (लम्बित मामले)

(2) दल की संरचना

प्रत्येक लोक अदालत के लिए अलग दल होता है। सेवा-निवृत्त न्यायिक अधिकारी, सेवाभावी अधिवक्ता, शिक्षा शास्त्री एवं गैर राजनैतिक सामाजिक कार्यकर्ता जो कि पक्षकारों के मध्य उपयुक्त पथ-प्रदर्शन एवं सद्प्रयास द्वारा तालमेल बिठाने की भावना रखने वाले हो, इसके सदस्य होते हैं। इस दल मे जहा तक संभव हो एक महिला अधिवक्ता तथा एक महिला सामाजिक कार्यकर्त्री को शामिल किया जाता है।

यह दल एक विशेष वाहन द्वारा जो कि विशेष तौर से लोक अदालत हेतु प्रदान किया गया हो, विभिन्न स्थानों का भ्रमण करता है।

यह दल इस बात का ध्यान रखता है कि उसका मुख्य उद्देश्य व्यावहारिक बातचीत द्वारा विवादों को निपटाने का है। अतः इस दल से यह अपेक्षा की जाती है कि यह दल झगड़ों को आपसी सहयोग द्वारा निपटाने पर अधिक ध्यान देगा न कि अधिक से अधिक वादो को निपटाने में। किसी भी हालत में किसी पक्षकार को यह महसूस नही होना चाहिए कि विवाद को निपटाने के लिए उस पर किसी प्रकार का दबाव डाला गया है। अथवा विवश किया गया है। यह पक्षकारो को खुलासा करता है कि विवादों को आपसी सहयोग और समझ से निपटाया जायेगा और यह

कि यह दल मात्र इसलिए हस्तक्षेप कर रहा है ताकि ग्राप पक्षकार लोग ग्रापसी सहयोग का वातावरण बनावें ग्रौर मित्रवत् किसी समझौते पर पहुंच सकें।

(3) स्थान का चुनाव

लोक ग्रदालत की जहां तक व्यावहारिक हो एक माह में दो बार बैठक होती है। यह बैठक प्रान्त के विभिन्न भागों मे गैरकार्यकारी शनिवारो एवं रविवारों को होती है। प्रान्त के विभिन्न भागों मे से तालुका मुख्यालय को प्राथमिकता दी जाती है। कई बार लोक ग्रदालत जिला मुख्यालय ग्रथवा नगरो मे भी गठित की जाती है।

लोक ग्रदालत को बैठक के लिए स्थान एवं तिथि ग्रध्यक्ष जिला विधिक सहायता समिति एवं ग्रध्यक्ष तालुका विधिक सहायता समिति की राय लेकर एक माह पूर्व निर्धारण की जाती है। ग्रावश्यकता पड़ने पर दोनो ग्रध्यक्ष स्थानीय बार के सदस्यो से भी सलाह लेते हैं तथा उस स्थान पर लोक ग्रदालत गठित करने की सभावनाग्रो का पता लगाते हैं। उपर्युक्त दोनों ग्रध्यक्ष कभी कभी स्वप्रेरणा से भी लोक ग्रदालतो की बैठक बुलाते हैं।

(4) संयोजक

जैसे ही लोक ग्रदालत के बैठक की तिथि एव स्थान का निर्धारण हो जाता है, ग्रध्यक्ष जिला विधिक सहायता समिति स्थानीय बार से एक ग्रथवा ग्रधिक सेवाभावी ग्रधिवक्ता को लोक ग्रदालत के लिए संयोजक नियुक्त करता है। ग्रध्यक्ष जिला विधिक समिति ग्रौर ग्रध्यक्ष तालुका विधिक सहायता समिति के संपूर्ण देखरेख के ग्रधीन संयोजक प्रारंभिक ग्रवस्था से ही लोक ग्रदालत के लिये जिम्मेदारी सौंप दी जाती है। संयोजक लोक ग्रदालत की बैठक के स्थान का प्रबन्ध करता है, प्रचार करता है, ग्रावेदन मांगता एवं प्राप्त करता है, विषय वस्तु की सूची तैयार करता है, गैर राजनैतिक सामाजिक संस्थाग्रों से सम्बन्ध स्थापित करता है ताकि लोक ग्रदालत के समक्ष ग्रपने-ग्रपने मामलों को सुलझाने के लिए ग्राये हुए पक्षकारों के लिए भोजन की निःशुल्क व्यवस्था की जा सके। संयोजक लोक ग्रदालत की कार्यवाही समाप्त होने तक प्रभारी रहता है।

(5) पूर्व तैयारियां

(क) स्थान निर्धारण :—संयोजक किसी विद्यालय, महाविद्यालय ग्रथवा कोई भी सार्वजनिक स्थान जो कि स्थानीय न्यायालय परिसर के पास हो को लोक ग्रदालत के लिए प्राप्त करता है। इस कार्य के लिए न्यायालय परिसर का उपयोग नही किया जाता है।

(ख) प्रचार :—ग्रधिक से ग्रधिक व्यक्तियो को ग्रापसी सहमति से मामलों को निपटाने के लिए लोक ग्रदालत में उपस्थित होने हेतु विस्तृत प्रचार किया जाता है। प्रचार के लिए काम मे लिये जाने वाले कुछ तरीके ग्रग्र लिखित हैं :—

(1) संवाददाता सम्मेलन बुलाना :—लोक अदालत की विचारधारा, तौर-तरीके और विस्तृत जानकारी सम्बन्धी टिप्पणी संवाद समितियों को देना और उनसे निवेदन करना कि इसका विस्तृत प्रचार किया जाय ताकि आम राय जागृत हो सके और अधिक से अधिक लोक अदालत के समक्ष उपस्थित हो सकें।

(2) आकाशवाणी एवं दूरदर्शन अधिकारियों से प्रचार के सम्बन्ध में संपर्क करना और यदि सम्भव हो सके तो छविगृहों में प्रचार करना।

(3) समय समय पर संवाद टिप्पणी जारी करना।

(4) लोक अदालत के निर्धारित स्थान के निवासियो एवं आसपास के ग्रामीणो में पर्चे बांटना।

(5) लोक अदालत की योजना के प्रचार, प्रसार एवं इसकी सफलता के लिए, तालुका और पंचायत स्तर के राजस्व अधिकारियों, समाज कल्याण विभाग के अधिकारियों तथा पंचायत के सरपंचों से सम्पर्क करना।

(6) सरपंचो से निवेदन करना कि वे ग्रामीणों की इस संबध मे सभा बुलावें। ऐसे सामाजिक कार्यकर्ताओं जो ग्रामवासियों से नजदीक सम्पर्क मे हो तथा उनके लिए माननीय हों को निवेदन करना कि वे ग्रामवासियों की बैठक को संबोधित करें ताकि अधिक से अधिक ग्रामवासी अपनी समस्याओं, विवादों एवं न्यायालय मे लंबित वादों को आपसी सहमति से निपटा सकें।

(7) लोक अदालत की विचारधारा संबंधित पट्टे व विज्ञापन-पत्र उस गांव/कस्बे में जहां लोक अदालत की बैठक निश्चित हुई हो तथा उसके आसपास के गांवों मे सार्वजनिक स्थानो पर प्रदर्शित करना।

(ग) आवेदन प्राप्त करना एवं कार्यसूचि बनानाः—(1) प्रार्थना-पत्र के प्रारूप बहुत पहले से ही मुद्रित अथवा साइक्लोस्टाइल करवा लिये जाते है ताकि वें उन्हें भर कर निर्धारित अवधि में संयोजक को दे देवें।

(2) इस प्रकार का प्रबंध किया जाता है कि भरे हुए प्रार्थना-पत्र लोक अदालत की बैठक के दस दिन पूर्व संयोजक को प्राप्त हो जायें। यदि पक्षकार लोक अदालत द्वारा कोई ऐसा मामला सुलझाना चाहता है जो कि अभी तक न्यायालय मे नही पहुंचा है तो संयोजक उस पक्षकार से एक निर्धारित प्रपत्र भरवाता है जिसमे पक्षकार को संक्षेप मे विवाद की प्रकृति तथा विरोधी पक्षकार का नाम और पूरा पता देना होता है। संयोजक पक्षकारों से संबंधित दस्तावेजो की नकलें भी प्राप्त करते हैं तथा पक्षकारों को हिदायत दी जाती है कि निपटारे के समय वे मूल दस्तावेज तैयार रखें।

(3) यदि विवाद न्यायालय में लंबित होते हैं तो संयोजक पक्षकारों अथवा उनके अधिवक्ताओं से दावे, उत्तरदावे तथा दस्तावेजों की नकल प्राप्त कर लेते हैं

जो कि विवाद के समाधान के लिए आवश्यक समझे जाते हैं। पक्षकारों को आगाह कर दिया जाता है कि विवाद निपटाने के समय मूल दस्तावेज तैयार रखें।

(4) यदि मूल दस्तावेज न्यायालय में प्रस्तुत किये जा चुके हैं और संयोजक यह आवश्यक समझे कि प्रकरण के निर्धारण में इनकी महती आवश्यकता है तो वह अध्यक्ष, जिला विधिक सहायता समिति की अनुमति से संबंधित न्यायालय से उक्त दस्तावेज को जीरोक्स प्रति प्राप्त करने हेतु आवेदन करते हैं तथा इस संबंध में लगने वाला न्यायालय शुल्क जिला विधिक सहायता समिति वहन करती है। इस संबंध में अध्यक्ष, जिला विधिक सहायता समिति सौ रुपये तक खर्चा करने हेतु सक्षम होता है परन्तु यदि अधिक खर्चे की संभावना हो तो मण्डल के सह अध्यक्ष से इसकी अनुमति प्राप्त कर लेता है।

(5) प्रत्येक विवाद के लिए अलग से मसविदा तैयार किया जाता है तथा उस विवाद के सम्बन्ध में प्राप्त दस्तावेज उसमें संलग्न कर दिये जाते हैं।

(6) यदि विवाद के दोनों ही पक्षकार लोक अदालत के समक्ष प्रस्तुत होना चाहते हैं तो संयोजक उन्हें निर्धारित तिथि पर उपस्थित होने को कह देते हैं। यदि एक ही पक्षकार आवेदन करता है तो संयोजक दूसरे पक्ष को पत्र लिखता है और निवेदन करता है कि वह लोक अदालत के समक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिये आवश्यक दस्तावेज सहित अमुक-अमुक दिनांक को उपस्थित होवे। ऐसे पत्र में विवाद प्रस्तुतकर्ता का नाम, पता तथा विवाद का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

(7) इन सबके पश्चात् संयोजक विवादों की श्रेणियाँ निर्धारित करता है जैसे कि कौनसे विवाद न्यायालय में विचाराधीन हैं और कौन से नहीं। जहाँ तक न्यायालय में विचाराधीन विवादों का संबंध है, संयोजक उनकी अलग से एक सूचि तैयार करता है तथा उसे संबंधित न्यायालय को भिजवा देता है। अध्यक्ष, जिला विधिक सहायता समिति, जिला न्यायाधीश की हैसियत से मण्डल सहअध्यक्ष द्वारा मुख्य न्यायाधिपति की हैसियत से, जारी निर्देशों के अधीन संबंधित न्यायालय का मूल अभिलेख लोक अदालत द्वारा नहीं मंगाया जाता है, सिवाय विशिष्ट परिस्थितियों के, जिनका कि आगे हवाला दिया जायेगा। संयोजक विवादों को विषयवार भी व्यवस्थित करेगा जैसे कि व्यावहारिक, दाण्डिक, वैवाहिक, श्रम संबंधी, राजस्व संबंधी इत्यादि।

(8) लोक अदालत अलग-अलग इकाइयों में विभक्त कर दी जाती है। एक ही विषय वस्तु संबंधी विवाद एक इकाई को सौंप दिये जाते हैं। एक इकाई सलाह देने के लिए सुरक्षित रख ली जाती है जो कि आवश्यकता होने पर मार्गदर्शन अथवा सलाह प्रदान करती है। प्रत्येक इकाई को करीब 20 मामले सौंपे जाते हैं और

आवश्यकता पड़ने पर एक ही विषय वस्तु संबंधी विवादों के लिए एक से ज्यादा इकाइयों का गठन किया जाता है।

(9) प्रत्येक इकाई के लिए अलग से वाद सूचि तैयार की जाती है और उसकी एक प्रति प्रत्येक अदालत को प्रदान की जाती है जिसके साथ विवाद का संक्षिप्त विवरण जो उस अदालत के समक्ष प्रस्तुत किया जाना है, संलग्न किया जाता है। वाद सूचि की एक प्रति लोक अदालत के सूचना पट्ट पर भी लगाई जाती है।

(घ) लोक अदालत की विभिन्न इकाईयों जैसे कि व्यावहारिक, दाडिक, वैवाहिक, राजस्व, श्रम संबंधी, सहायता इत्यादि के नामों को दर्शाने वाले पट्ट तैयार किये जाते हैं। और टागे जाते हैं और लोक अदालत परिसर में की-वर्ड्स अथवा वाच-वर्ड्स लिखे गये पट्ट भी लगाये जाते हैं।

(ङ) जहां आवश्यकता हो राज्य परिवहन अधिकारियों से भी सम्पर्क साधा जाता है ताकि वे ग्रामवासियों को लोक अदालत तक लाने और ले जाने की व्यवस्था कर सकें।

(6) मंत्रालयिक कार्य के लिए न्यायिक विभाग के सेवानिवृत्त सदस्यों की सेवायें प्राप्त करना

(1) मसविदा तथा अन्य प्राथमिक कार्यों के लिये संयोजक आवश्यकता पडने पर स्थानीय न्यायिक विभाग के सेवानिवृत्त मंत्रालयिक कर्मचारियों की सहायता प्राप्त करते हैं। कई-कई बार इनकी अनुपलब्धता के कारण कनिष्ट अधिवक्ताओं अथवा विधि विद्यार्थियों की भी सहायता ली जाती है। जब सेवा-निवृत्त कर्मचारियों की सेवायें प्राप्त की जाती है तब उन्हे अध्यक्ष, जिला विधिक सहायता समिति जितना उचित समझती है उतना मुआवजा प्रदान करती है परन्तु यह राशि प्रति व्यक्ति बीस रुपये से अधिक नहीं होती है। कनिष्ट अधिवक्ताओं अथवा विधि विद्यार्थियों की सेवाओं के बदले उन्हें प्रशंसा-पत्र प्रदान किये जाते हैं।

(2) मंत्रालयिक कार्यों के लिये लोक अदालत की सहायतार्थ नियुक्त किये जाने वाले कर्मचारियों की सेवायें प्राप्त करते समय संयोजक इस बात का पूरा ध्यान रखता है कि सेवा-निवृत्त कर्मचारी अथवा कनिष्ट अधिवक्ता अथवा विधि विद्यार्थी जहां तक संभव हो उसी क्षेत्र के होने चाहिए तथा वे इस योजना को सफल बनाने की कामना रखते हो। ये लोग समन्वय का कार्य करते हैं तथा विवादों की पुकार लगाते हैं और लोक अदालत की कार्यवाही के अभिलेख का संभाल कर रखते हैं। जब सेवा-निवृत्त कर्मचारियों की सेवायें प्राप्त की जाती हैं तब उन्हे अध्यक्ष, जिला विधिक सहायता समिति जितना उचित समझती है उतना मुआवजा प्रदान करती है परन्तु यह राशि प्रति व्यक्ति बीस रुपये से अधिक नही होती। कनिष्ट अधिवक्ताओं अथवा विधि-विद्यार्थियो की निर्वेतन सेवाओं के बदले उन्हे प्रशंसा-पत्र प्रदान किये जाते हैं।

(3) इसी भांति विवादों और पक्षकारों के नामो की पुकार लगाने एवं अन्य विविध कार्यों के लिए संयोजक स्थानीय सेवा-निवृत्त अमीन अथवा चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की सेवायें भी प्राप्त करते हैं और इस कार्य के बदले अध्यक्ष, जिला विधिक सहायता समिति द्वारा उन्हें कुछ राशि प्रदान की जाती है जो प्रति व्यक्ति दस रुपये से अधिक नहीं होती है।

(7) लोक अदालत की कार्य विधि

(1) लोक अदालत की विभिन्न इकाइयों यथा व्यावहारिक, दांडिक, वैवाहिक, राजस्व, श्रम, सलाह इत्यादि के नामों को पट्ट पर दर्शाया जाकर लोक अदालत परिसर मे लगाया जाता है। इसी प्रकार सांकेतिक शब्द लिखे पट्ट भी टांगे जाते हैं।

(2) लोक अदालत की बैठक से एक घण्टे पूर्व तक लोक अदालत का नाम, इकाई संख्या और उस अदालत द्वारा सुलझाये जाने वाले विवादों की विषय-वस्तु की जानकारी देने वाले सूचना पट्ट टांगे जाते हैं।

(3) लोक अदालत परिसर के प्रवेश स्थान पर सूचना कक्ष स्थापित किये जाते हैं जहां से पक्षकारों को निर्दिष्ट किया जाता है कि वे अपने विवादो के सुलझाने के लिए अमुक इकाई में जावें जहां कि उनका विवाद विचाराधीन है।

(4) प्रत्येक दल मे कम से कम तीन तथा अधिक से अधिक पांच सदस्य होते हैं। प्रत्येक दल मे एक अधिवक्ता, एक शिक्षा-शास्त्री और एक सामाजिक कार्यकर्ता का होना निहायत आवश्यक समझा जाता है।

(5) लोक अदालत प्रायः अपना कार्य 9.30 प्रातः से शुरू करती है और दोपहर 1 बजे मध्यान्तर के बाद पूर्ण कार्य होने तक अपना कार्य जारी रखती है।

(6) जनता के सदस्यो की उपस्थिति में एक एक करके विषय बुलाये जाते हैं एवं अनुरंजको द्वारा प्रत्येक विषय पर संबधित पार्टियों से वाद विवाद किया जाता है। अनुरजक उनको धैर्यता से सुनते हुये समस्या की तह तक पहुंचते हैं और पार्टियों को अपने विवाद को व्यावहारिक ज्ञान के द्वारा तय करने के लिये प्रेरित करते हैं व इस हेतु एक या एक से अधिक न्यायोचित विकल्प सुझाते हैं। लोक अदालत मे मुक्त एवं स्पष्ट विचार-विमर्श होता है।

(7) लोक अदालत आम जनता के लिये खुली होती है।

(8) बोर्ड के सह अध्यक्ष की पूर्व अनुमति के सिवाय कोई औपचारिक उद्घाटन की कार्यवाही नही की जाती। जनता को कार्यवाही मे प्रभावी रूप से सम्मिलित करने के लिये लोक अदालत शुरू करने से पहले सिर्फ विधि एवं कार्य करने के ढग के बारे मे आवश्यक सूचना दी जाती है।

(9) लोक अदालत के कार्य करने मे किसी न्यायिक अधिकारी की आवश्यकता नही होती है। सिर्फ जिले के जिला-न्यायाधीश अपनी पदेन-अध्यक्ष की हैसियत

से, जिला. न्यायिक विधिक सहायता समिति एवं तालुका न्यायालय के मुख्य न्यायिक अधिकारी अपनी पदेन अध्यक्ष तालुका विधिक सहायता समिति की हैसियत से लोक अदालत की कार्यवाही में सम्मिलित होते हैं एवं प्रारम्भिक संगठन कार्य की देखभाल करते हैं एवं लोक अदालत के प्रबंध एवं स्निग्धता से कार्य करने का निरीक्षण करते हैं।

(10) लोक अदालत के समक्ष न्यायालय मे विचाराधीन वाद के मूल रिकार्ड नही लाये जाते हैं। किसी विषय मे निश्चय करते हुए अनुरजक अगर दस्तावेज की जेरोक्स प्रतिलिपि होते हुये भी महसूस करते हों कि मूल दस्तावेज के अवलोकन के विना समाधान सम्भव नही है तब अनुरजक उस सम्बन्ध मे अध्यक्ष जिला विधिक सहायता समिति एव अध्यक्ष कि जिस से प्रार्थना करते है एव अध्यक्ष यदि यह महसूस करे कि जिला विधिक सहायता समिति अपनी जिला न्यायाधीश की हैसियत में मूल दस्तावेज को देखना समस्या के समाधान के लिये जरूरी है, तो वह सम्वंधित केस पत्रावली को मंगवा लेते है तथा उसे अनुरजको को दिखाकर वापिस भेज देते है। अनुभव को देखते हुए ऐसे केस कम ही होते हैं।

(11) जब लोक अदालत किसी मामले को निपटा देती है या निर्णीत करती है तब ऐसे समझौते को लिख लिया जाता है और दोनो पक्षकारो द्वारा हस्ताक्षर हो जाते हैं। अगर समझौता ऐसे विवाद से सम्बन्धित हो जो कि अभी तक न्यायालय में नही गया है तब ऐसे लिखित समझौते को फाइल मे रख लिया जाता है अथवा लिखावट को पक्षकारों के बीच बदल दिया जाता है। पक्षकारो को उसी के अनुसार कार्य करने की सलाह दी जाती है। अगर अनुरजकों को यह महसूस होता है कि किसी तरह की विधिक प्रमाणिकता की आवश्यकता है तब पक्षकारो को उचित कार्यवाही करने के निर्देश दिये जाते हैं एवं उचित समझे जाने पर ऐसे मामले सम्बन्धित विधिक सहायता समिति को सुपुर्द कर दिये जाते हैं।

(12) न्यायालय के समक्ष विचाराधीन वाद मे अगर समझौता हो जाता है और पक्षकार समझौते को लिखकर हस्ताक्षर कर देते हैं तब पक्षकारों को सम्बन्धित न्यायालय मे विधि के अनुसार समझौता पेश करने के लिये ले जाया जाता है। अगर लोक अदालत की दूरी न्यायालय से अधिक हो तब संयोजक अध्यक्ष जिला विधिक सहायता समिति के निर्देश पर उनको ले जाने के लिए किसी वाहन का प्रबन्ध करता है।

(13) अगर विवाद सिर्फ सलाह एवं उचित मार्गदर्शन हेतु रखे गये हैं तब उचित सलाह एवं मार्ग निर्देश दिये जाते हैं और यदि आवश्यक हो तथा विधिक

सहायता की योजना के तहत अनुज्ञेय हो तो विषय विवाद सम्बन्धित विधिक सहायता को भेज दिया जाता है ।

(14) बोर्ड के सह-अध्यक्ष द्वारा मुख्य न्यायाधीश की हैसियत से जरूरी निर्देशों के अधीन अध्यक्ष, जिला विधिक सहायता समिति जिला न्यायाधीश की हैसियत से सम्बन्धित न्यायालयों के न्यायाधीश या मजिस्ट्रेटों से प्रार्थना करता है कि वे स्वयं को न्यायालय के परिसर में लोक अदालत के लगने के दिन उपस्थित रखें चाहे न्यायालयों का उस रोज कार्य दिवस न हो एवं वे उस रोज अपने सम्मुख पेश होने वाले समझौतों को प्राप्त कर सभी औपचारिकताएं पूरी करने के पश्चात् विधि के अनुसार समझौते को लिखबद्ध कर पक्षकारों को जाने की आज्ञा देंगे । अन्तिम आदेश अगले कार्य दिवस को पारित किया जाता है ।

(15) उन मामलों में जिनमें समझौता पूर्ण हो गया है परन्तु कुछ पक्षकार जिनके हस्ताक्षर जरूरी हैं, लोक अदालत में उपस्थित नहीं हो तो पक्षकारों को अगले कार्य-दिवस पर न्यायालय में उपस्थित होने के लिये निर्देश दिया जाता है, और सभी औपचारिकताएं पूरी कर समझौते को न्यायालय के समक्ष पेश करने हेतु कहा जाता है । शिविर का संयोजक ऐसे मामलों में समझौतों के न्यायालयों में होने तक प्रभावी बना रहता है ।

(8) सांख्यिकी आंकड़े

संयोजकों को प्रारूप किये जाते हैं जहां वे प्रत्येक लोक अदालत के समक्ष रखे गये सभी विवादों की विषयवार ऐसे मामलों की संख्या जिनमें दोनों पक्षकार उपस्थित हुये हों और लोक अदालत द्वारा विवादों पर विचार किया गया हो, ऐसे विवादों की संख्या जिनमें समझौते हुए हैं एवं निर्णय हो गया हो व ऐसे विवादों की संख्या जिनमे उचित सलाह दी गई हो लिखते है । एक स्थाई रजिस्टर इस सम्बन्ध में बोर्ड द्वारा रखा जाता है ।

(9) कार्य का अनुमान

(i) समझौते के पश्चात्, न्यायालय के विचाराधीन विवाद के सम्बन्ध में, अध्यक्ष तालुका विधिक सहायता समिति से एक महीने मे सूचित करने को कहा जाता है कि क्या कोई डिग्री या आदेश समझौते के अनुरूप पारित हुआ है, और अगर नहीं तो इसके कारण अभिलिखित किये जाये और आया कोई भी पक्षकार निपटारे से फिर गया है ।

(ii) विवाद से पूर्व विषयों के सम्बन्ध में, तालुका विधिक सहायता समिति का अध्यक्ष, संयोजक के माध्यम से यह जानने का प्रयत्न करता है कि आया कोई पक्षकार पीछे तो नहीं हट गया है । अगर उसकी यह जानकारी मे आता है कि कोई पक्षकार पीछे हट गया है तो वह संयोजक की सहायता से बोर्ड को सूचित करते हुए कार्य का अनुगमन करता है । उचित विवादों मे बोर्ड भी उचित कार्यवाही करता है ।

(10) खाद्य पैकेट का बंटवारा

(i) शिविर के खर्चे हेतु किसी दान या सहायता को प्राप्त या संग्रहित नहीं किया जाता है।

(ii) संयोजक कुछ गैर राजनैतिक, सामाजिक संगठनों जैसे रोटरी क्लब, लायन्स क्लब, जेसीज, या ऐसे दूसरे सामाजिक संगठनों से सम्बन्ध स्थापित करता है कि क्या वे लोक अदालत में एकत्रित होने वाले व्यक्तियों को खाने के पैकेट स्वेच्छा से मुफ्त बांटने का प्रबन्ध करेंगे। अगर कोई ऐसा संगठन इच्छा से ऐसा करने को तैयार होता है तब उस संगठन से निवेदन किया जाता है कि वह इस सम्बन्ध में अपना स्वतन्त्र प्रबन्ध करे। ऐसे संगठन को इस कार्य में सभी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं। अनुभव दर्शाता है कि उक्त संगठन ऐसे कार्य के लिये आसानी से सहमत हो जाते हैं।

परिशिष्ट–सात

दो दिवसीय विधि सम्मेलन के प्रस्ताव

राज्यों के मुख्य न्यायाधीशों, मुख्य मंत्रियों, विधि मंत्रियों एवं भारत के मुख्य न्यायाधीश तथा केन्द्रीय विधि मंत्री एवं केन्द्रीय विधि राज्य मंत्री के दिनांक 31 अगस्त एवं प्रथम सितम्बर 1985 को नई दिल्ली में हुए सम्मेलन में अनुमोदित प्रस्ताव ।

सम्मेलन ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित किया कि सभी न्यायालयो मे लम्बित बकाया को तेज गति से समाप्त किया जाना चाहिए तथा केन्द्र सरकार, सर्वोच्च न्यायालय, राज्य सरकारों व उच्च न्यायालयों द्वारा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सभी प्रयास करने चाहिए ।

इस सम्बन्ध मे उठाये जाने वाले कदमों के बारे में सम्मेलन का मतंव्य निम्न प्रकार हैं:—

1. नागरिकों की उनके अधिकारों के बारे मे जागरूकता, नये अधिकार व कर्तव्यों को सृजित करने वाली अनगिनत विधियो की अधिनियमिति, देश मे औद्योगिक विकास एवं बढते हुए व्यापार व वाणिज्य, तथा नागरिकों के जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करने वाली विधायी व प्रशासकीय सामाजिक व आर्थिक कार्यवाही के प्रादुर्भाव के कारण वादकारिता की गई गुणा वृद्धि जिसकी भविष्य में और बढने की सम्भावना है, के तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक है कि निम्न बातों को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक राज्य की, न्यायालयों की और मांग– जो बढ़ती हुई वादकारिता की आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त हो–का निर्धारण किया जावे:—

(i) कुल लम्बित पत्रावलियां तथा विगत तीन वर्ष का औसत संस्थान व निस्तारण,

(ii) न्यायिक अधिक्रम के सभी स्तरो के न्यायिक अधिकारियों के लिए नियत निस्तारण मानदण्ड, और

(iii) समयावधि जिसमे विभिन्न श्रेणियों के मामले निस्तारित किये जाने चाहिए, के बारे में स्वीकार्य मानदण्ड ।

2. पैरा 1 के निर्धारण के अनुसार न्यायालयों की संख्या तथा न्यायाधीशों की संख्या मे वृद्धि करनी चाहिए ।

3. अधीनस्थ न्यायिक सेवाओं के सभी स्तरों पर न्यायिक अधिकारियों के पदो की रिक्तियां अविलम्ब भरी जावेंगी और रिक्त स्थान होने से तीन माह से अधिक विलम्ब नहीं होगा।

4. जब कभी भी राज्य के लोक सेवा आयोग से, अधीनस्थ न्यायिक सेवाओं में नियुक्ति के लिए प्रत्याशियों के चयन के लिए कहा जावे, तो मुख्य न्यायाधीश द्वारा मनोनीत एक उच्च न्यायालय के कार्यरत न्यायाधीश को विशेषज्ञ के तौर पर आमंत्रित किया जावेगा और उसके द्वारा दी गई सलाह साधारणतया मान्य होगी।

5. न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण हेतु केन्द्र सरकार द्वारा एक संस्थान या अकादमी स्थापित की जानी चाहिए जिसके अध्यक्ष भारत के मुख्य न्यायाधीश होगे। इस संस्थान या अकादमी की क्रियाशीलता एक ऐसे शासी-निकाय के पर्यवेक्षण के अधीन होनी चाहिए जिसका गठन भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से किया जावेगा। भारत के मुख्य न्यायाधीश शासी-निकाय के भी अध्यक्ष होगे। शासी-निकाय यह तय करेगा कि इस प्रकार के प्रशिक्षण के लिए क्या अमुक स्थानो पर व किन स्थानो पर इस संस्थान या अकादमी की शाखाएं स्थापित की जावें?

6. उच्च न्यायालयों में रिक्तिया अविलम्ब भरी जावें, और रिक्त स्थान होने से पूर्व ही विहित प्रक्रिया व परामर्श की प्रक्रिया पूर्ण कर ली जानी चाहिए।

7. मामलों के शीघ्र निस्तारण को सुनिश्चित करने हेतु दिवानी व दण्ड प्रक्रिया संहिताओं के प्रावधानों के संशोधन की भी आवश्यकता है। इन मामलों के बारे मे भारत सरकार द्वारा स्थापित किये जाने वाले न्यायिक सुधार आयोग को सलाह देने के प्रयोजन से, भारत के मुख्य न्यायाधीश व केन्द्रीय विधि मंत्री, मुख्य न्यायाधीशो व मुख्य मन्त्रियो में से एक कार्यरत समुदाय का गठन करेंगे।

8. न्यायालयों के कार्यभार के कुछ अंश का अपवर्तन करने व मामलों–जो ऐसे विवाद समाधान संयत्र के विनिर्णयन मे दिये जा सकते हैं—के शीघ्र निस्तारण को सुनिश्चित करने हेतु एक वैकल्पिक विवाद समाधान सयत्र स्थापित करना आवश्यक है। यह विवाद समाधान संयंत्र अन्य बातो के साथ निम्न प्रकार गठित हो सकता है :—

(क) उत्तरी-पूर्वी पहाड़ी राज्यो के अतिरिक्त व उन्हे छोड़कर जिनमें मुख्य रूप से कबीली जन सख्या है, और जहां विवादों के विनिर्णयन के लिए ग्राम परिषदो व कबीली परिषदों जैसे प्रथागत संयंत्र है, और जहां पूर्व स्थित संस्थाओ को उखाड़ फैंकना वांछनीय नही है वरन सुरक्षित व सुदृढ बनाना है—यह वांछनीय है कि ग्रामीण जन संख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चल न्यायालय स्थापित किये जावें।

(ख) चल न्यायालयों का एक परियोजना-प्रारूप जो इस संयुक्त सम्मेलन मे भाग लेने वालों को पहले ही वितरित कर दिया गया है और जो उनके द्वारा सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया गया है, चल न्यायालय स्थापित करने के लिए संसद द्वारा पारित किये जाने वाले उपयुक्त विधान का आधार होगा।

(ग) परियोजना-प्रारूप के बारे में राज्य सरकारों को अपने विचार व टिप्पणियां आज से एक माह के भीतर भारत के मुख्य न्यायाधीश व केन्द्रीय विधि मंत्री को प्रस्तुत करनी होंगी और ऐसे विचारों व टिप्पणियो पर विचार करने के बाद आगामी सयुक्त सम्मेलन मे उपयुक्त विधान के बारे मे सहमति की जावेगी।

9. गुजरात राज्य विधिक सहायता वोर्ड की परियोजना के अनुरूप जो विधि मत्रालय के कार्यक्रम विवरण के अनुबद्ध 12 के रूप में वितरित की गई है उत्तरी पूर्वी पहाड़ी राज्यो जिनकी भिन्न परिस्थितियां है, को छोड़कर, लोक अदालत की संस्था सभी राज्यो में स्थापित करनी चाहिए। इस सस्था को सांविधिक आधार पर रखना होगा और सामान्य मतैक्य यह है कि इसको, संसद द्वारा पारित किये जाने वाली राष्ट्रीय विधिक सेवा विधि मे सम्मिलित करना चाहिए। मामले जो न्यायालयों मे लम्बित हैं, भी समझौते हेतु लोक अदालत को भेजे जा सकते हैं, इससे सम्बन्धित राज्य तथा राजकीय क्षेत्र निगमो के कर्मचारियों के सेवा मामलों के लिए अपीलीय पीठों के साथ एक राज्य सेवा अधिकरण की स्थापना वांछनीय है। राज्य सरकार को भी इस वारे मे शासकीय अधिकरण अधिनियम के प्रावधानो के अनुसार आवश्यक कदम उठाने हैं।

10. मोटर वाहन अधिनियम के अन्तर्गत तथा अन्य छोटे अपराधों, जिनमे कारावास दण्ड या 1000/– रुपये से अधिक जुर्माना नही है, के निस्तारण के लिए राज्य सरकारो को भी दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 13 व 18 के अधीन उच्च न्यायालय के परामर्श से विशिष्ट मजिस्ट्रेटों की नियुक्ति करनी चाहिए।

11. वार के अग्रणी सदस्यों को, उच्च न्यायालयों एवं जिला न्यायालयो के अतिरिक्त न्यायाधीशो के तौर पर अस्थाई तौर पर कार्य करने के लिए आमन्त्रित किया जा सकता है—यह अवधि जैसे भी आवश्यक समझी जावे दो वर्ष से अधिक नहीं हो।

12. देश में विभिन्न स्तरों पर यथा सम्भव मानक प्रतिमान या न्यायालय भवनो का प्रतिमान होना चाहिए। प्रतिमान निर्धारित करने के लिए रूपात्मकतायें आगामी संयुक्त सम्मेलन में रखी जावेंगी। प्रत्येक राज्य में न्यायालय भवनो व न्यायिक अधिकारियो के आवासीय भवनों की आवश्यकता का निर्धारण राज्य सरकारें करेंगी और इस बारे में समयावधि से आबद्ध कार्य-योजना निर्धारित करेगी।

इस कार्य योजना में केन्द्र सरकार के योगदान की प्रकृति के बारे में विचार विमर्श आगामी संयुक्त सम्मेलन मे करेंगे।

13. इस पर सहमति हो गई है कि प्रत्येक उच्च न्यायालय को टेलेक्स सुविधा दी जानी चाहिए। राज्य सरकारों को भी चाहिए कि वे प्रत्येक जिला न्यायालय को आवर्ती कार्यक्रम से अनुसार टेलेक्स सुविधा प्रदान करें। प्रत्येक उच्च न्यायालय को व जिला न्यायालय को भी आवर्ती कार्यक्रम के अनुसार आधुनिक इलेक्ट्रोनिक व विद्युती उपकरण, जैसे फोटो स्टेट यत्र, प्रदान करने चाहिए। जहां उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या 20 से अधिक हो 3, तथा जहां 20 से कम हो 2, शब्द संशोधक (वर्ड प्रोसेसर) प्रदान किये जावेगे।

14. सम्मेलन का मतंव्य था कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवा शर्तों, वेतन व भत्तो मे भारी सुधार की आवश्यकता है और मुख्य न्यायाधीशों के सम्मेलन में प्रस्तावित रूपरेखा जिस पर संयुक्त सम्मेलन में विचार विमर्श किया गया, के अनुसार केन्द्र सरकार व जम्मू काश्मीर सरकार को आवश्यक कानून बनाने होगे।

15. सम्मेलन का यह भी मत था कि अधीनस्थ न्यायपालिका के सभी स्तरों पर वेतन तथा भत्तों, सेवा शर्तों, कार्यकालावधि व सेवा-निवृत्ति के बाद आवासीय सुविधाओं, स्टाफ कार व यातायात के अन्य साधनों मे भारी सुधार की आवश्यकता है। मुख्य न्यायाधीशों के सम्मेलन द्वारा दिये गये प्रस्तावों पर विचार-विमर्श किया गया, सम्बंधित राज्य सरकारें उन पर विचार करेंगी और इस सम्बन्ध में उनके द्वारा लिए गये निर्णय आगामी सम्मेलन से पूर्व केन्द्रीय सरकार को सूचित किये जावेंगे।

16. यह सम्मेलन सर्वसम्मति से पारित करता है कि यथा शीघ्र राष्ट्रीय विधिक सेवा अधिनियम पारित किया जाना चाहिए ताकि साधारण, दरिद्र व वंचित लोगों को दी जाने वाली विधिक सहायता यथार्थ बन सके।

17. ऊपर वर्णित मतंव्य सम्मेलन में सर्वसम्मति से अपनाया गया।

शब्दानुक्रमणिका

□

1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के सेनानी, सामाजिक एव राजनैतिक कार्यकर्ता, जाने माने एडवोकेट, अग्रिमपंक्ति के विधायक, वर्तमान में न्यायाधिपति श्रीगुमान मल लोढा, "सामाजिक न्याय" के धर्मयुद्ध के सेनानी है।

1951 से 1978 तक 27 वर्ष के अभिभापक के अनुभव से श्री लोढ़ा राष्ट्रीय स्तर के अभिभापको की पंक्ति में आये। 1972 से 1977 तक विधायक के रूप मे राजस्थान विधान सभा के सभापति रहे, याचिका समिति के अध्यक्ष रहे, व 1976 मे दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय कॉमनवेल्थ कांफ्रेंस में राजस्थान विधान सभा का, प्रतिनिधित्व व विरोधी दल का नेतृत्व किया।

राजस्थान हाईकोर्ट एडवोकेट्स एसोसियेशन के 1977-78 मे अध्यक्ष रहे व बार कौंसिल मे चुने गये।

हिन्दी व अंग्रेजी भाषा के प्रभावी वक्ता व लेखक के रूप में राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त श्री लोढा ने कई पुस्तके लिखी जिनमें, "लॉ मोरेलिटी व पोलिटिक्स""ज्युडिसियरी फ्युम्स फ्लेम्स एण्ड फायर" व भारतीय न्यायपालिका आवश्यकता है, सम्पूर्ण कायाकल्प की" राष्ट्रीय प्रसिद्ध प्राप्त कर चुकी है व लार्ड डेनिंग, मुख्य न्यायाधिपति भगवती, चन्द्रचूड़ व कृष्णा अय्यर, ए. के. सेन ने विशेष प्रशंसा की है।

1978 से न्यायाधिपति के रूप मे राष्ट्रीय स्तर पर श्री लोढ़ा के निर्णय-सामाजिक न्याय के नये क्षतिज विस्तृत कर रहे है, जहा उत्पीड़ित पक्षकार व दलित त्रसित असहाय वर्ग को न्याय घर बैठे देने का प्रयोग कर रहे है। चौपाल पर न्याय, लोक अदालत, लोक हितवाद व निर्धन को न्याय के नये स्वप्न सोपान सजोये है। न्यायपालिका को कम्प्यूटर युग मे प्रवेश करा 21वी सदी की भूमिका मे श्री लोढा का महत्वपूर्ण योगदान है, जो यूरोप, अमेरिका, जापान, भ्रमण से उन्हे मिला।

नवम्बर 1985 मे कार्यवाहक मुख्य न्यायाधिपति के रूप मे न्यायिक क्रांतिकारी सुधारों से श्री लोढा ने 'न्यायपालिका' मे जनता के डगमगाते विश्वास को स्थिर कर दिया है व राजस्थान न्याय-पालिका को नई दिशा व गति दे, प्रगति की है।